श्री
जैनतत्त्वादर्शग्रंथ

विद्यमानपंडितप्रवरमहामुनिआत्मारामजी

आनंदविजयजीविरचित,

समस्तजनदुराग्रहतिमिरपाटनप्रभाकरतुल्य

तथा

सुहितोपदेशामृतह्रदमय

तिनकूं

श्री मकशुदाबादनिवासी बाबुसाहेब राय

धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूरके

आश्रयसें

भीमसिंह माणकाभिध श्रावकनें

श्री मुंबापुरीमें

निर्णयसागर मुद्रालयके विषे मुद्रित करायकें प्रसिद्ध किया है.

संवत् १९४० के ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी भृगुवासर तारीख ६ सने १८८४ इ०



मुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी








तेन चित्र

प्रस्तावना.



अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेनी बहोत ग्रंथोंके अवलोकन करने वाले महामुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी है,इनके तत्त्वज्ञानकी शक्ति अरु परोपकारबुद्धि तथा यह पंचम कालके वर्त्तमान समयमें सिद्धांतोक्त उत्सर्गापवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गी सुसाधुयोंकी शुद्ध क्रियामें प्रवर्त्त हो कर पृथ्वीमें विहार करने संबंधी प्रख्याती यह भारतवर्षके बहुत देशोंके रहनेवाले श्रावक मंमलमें प्रसिद्ध है अरु इनकी निश्रामें रहने वाले साधुयोंका समुदायनी पूर्व महामुनियोंके सदृश बहोत गुणवान् निर्विकारी मुद्रावाला है, तातें आत्मस्वरूपको जान कर परम पदकों साधने वाले, क्षांत्यादिक दशविध यतिधर्मके आराधक यह सत्पुरुष विषे हमारे इहां कुछ विशेष प्रशंसा लिखनेकी आवश्यकता नहीं है. इनके तीव्रबुद्धि अरु धर्माभिरुचि आदिक उत्तम गुण जो है,सो इनका बनाया यह ग्रंथ बांचनेसें सद्बुद्धिमान् आपही जान जायंगे. ऐसे सर्वदर्शनग्रंथज्ञाता अरु मुनिधर्मपालनशील महान्पुरुष, यह सांप्रत कालमें थोडेही दिखनेमें आते हैं.

अब पूर्वाचार्योंके संस्कृत अरु मागधी भाषामें रचे हूये ग्रंथोंका आशय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोंके उपर उपकार बुद्धि करकें हालमें पूर्वोक्त महात्माने यह "जैनतत्त्वादर्श" नामा ग्रंथकी रचना न्यारे न्यारे बारह परिछेदरूपसें करी है सो इस प्रकारसें कि–

प्रथम परिछेदमें शुद्ध देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है, दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप वर्णन कीया है, तीसरे परिछेदमें शुद्ध गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है, चौथे परिछेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पाचवे परिछेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसें कथन कीया है,छठे परिछेदमें सम्यक्ज्ञानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोंके स्वरूप कहे है, सातवे परिछेदमें सम्यक्दर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिछेदमें सम्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमे देशविरतिचारित्र संबंधी श्रावकोंके बारह व्रतोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है, नववे परिछेदमें श्रावकोंका दिनकृत्य, श्राद्धविधि ग्रंथानुसारसें लिखा है, दशवे परिछेदमें श्रावकोंका रात्रि

कृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, संवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांच कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवे परिछेदमें श्रीआदीश्वर जगवान्सें ले कर श्रीमहावीर जगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोंका वर्णन करकें उस्से जैनमत अनादि है असा सिद्ध करा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखंमी धर्मके मतों अमुक अमुक वखतसें निकले हैं यहनी दर्शाय दीया है, बार हवे परिछेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीछें के किंचित् इतिहास लिखे है. इस्सेनी कितनेक नवीन मतों निकलनेका वखत मालुम पडजाता है.

इस प्रकारसें उपर लिखे हूये बारह परिछेदों करिके यह ग्रंथ समाप्त कीया है यह ऊपर कहे हुये प्रत्येक परिछेदमें मात्र उसमें लिखे नये वि षयोंकाही वर्णन कीया है, इतनांही नहीं, परतु उसके साथ मीमांसकादि अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखकें पीछें पूर्वाचार्य रचित सम्मतितर्कादि अ नेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खंमननी सविस्तर कीया है, तातें यह ग्रंथके बाचनेवालोंकूं अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कछुक स्वरूपनी मालुम हो जावेगा, फेर उसका यथास्थित खंमननी जाननेमें आवेगा.

जैसें मन.कल्पनासें निकले हूये नवीन दर्शनोंका उछापन करनेमें यह ग्रंथ उपयोगी है तैसेंही कितनेक जैनमतमें प्रवर्त्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी अनेकांत शैलीकों न पीछाननेवाले असे विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञ जनोकी अज्ञानता दूर करनेकोंनी यह ग्रंथ बहोत उपयोगी है, क्यो कि, इस वर्त्तमान कालमें कितने एक जैनमती अपनीअपनी मरजी मा फक अध्यात्मज्ञानी बनके व्यवहारपक्षका त्याग करकें आवश्यकादि क्रि यायोंकों उछाप के एकही निश्चयमार्गकों स्वीकार करनेकाही उपदेश लो कोंकों करते फिरते है, असे अल्पवेत्ता एकांतपक्षके ग्राहक, स्वमतीयोंकों नी बहोत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशंकायोंके निवारण पूर्वक क्रि यादि शुजव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहोत करकें छठे परिछेदमें चौदह गुण स्थानोके स्वरूपमे जहां छठे सातमे गुणस्थानकका स्वरूप कथन कीया है, उसी जगापर अरु दूसरें परिछेदोंमेंनी बहोत स्थलोंमें उपदेश कीया है.

तथा अबके समयमें कछुक संस्कृतादि शास्त्राज्यास करके अरु कोइ ग्रंथ देखे न देखे असें कितनेक लोक अपनी मनःकल्पित बातों कहते है कि जै नमत बौद्धमतमेंसें निकला है, कितनेक कहते है कि गौतमऋषिने जैनमत

चलाया हैं, ऐसी विचित्र प्रकारकी कल्पना अज्ञानी लोक करते हैं, तथा वेदोंकों सच्चा करणे वास्ते उनके पुराना अर्थांकों उलटायकें नवीन अर्थ बनाने वाले दयानंदजीने तो जैनमतके लक्षावधि ग्रंथो आज मोजूद है तिनमेंसूं कोइएक ग्रंथके एक पत्तेभी देखे न होवेंगें तोभी विचारे जडक शिष्योंकों अपना पांडित्य दर्शावनेके वास्ते आपके बनवाये हूये पुस्तकोंमें जैन अरु चार्वाक ए दोनुं मत एकही करके लिख दीये है, ऐसे ऐसें अपनी कपोल कल्पित बातों करकें भोले लोकोंकों फसाने वाले कपटी लोकोंका कपट रूप वल्लीका छेदन करणेकोंभी यह ग्रंथ कुठार समान है

तथा वर्त्तमान समयमें कितनेक अल्पतर,सांसारिक विद्यामात्रकाही कछुक अभ्यास करिकें,ऐसें जान रहे हैं कि,हमही सर्व शास्त्रोंके रहस्यार्थ जान गये है,दूसरे धर्माचार्यादिकों तों कुछभी समजते नहि वो अपनी दुर्बुद्धिके प्राबल्यसें ऐसे जान रहे हैं कि, पुण्यपापादिक, स्वर्ग नरक परभवादिक अरु धर्मकर्मादिक कुछभी नही है, सब ढोंग है. खाना,पीनां और मौज करनां यही सच्चा है,इत्यादि चार्वाक दर्शनके न्याई नास्तिक होय बैठने वालोंकोंभी अनेक शास्त्रोंका हेतु दृष्टांत दर्सायके कोइ कोइ परिछेदके कोइ कोइ स्थलोंमें अच्छी युक्तियों पूर्वक उनका दुराग्रह दूर करणेका उपदेश करणेमें आया है.

तैसेंही मात्र हम जैनमतवाले है, ऐसा नाम धराय कें निःकेवल अपने अज्ञानसें पराभवित हूये हठग्राहित्वकी प्रकर्षतासें श्रीवीतरागभाषित धर्मकों उलटाय के अपनी स्वेछासे श्री जिनप्रतिमाकों उथाप कें जैनमतकी हेलना करनेवाले ऐसे ढूंढकादि लोकों जो यह पंचमकालके महात्म्यसें बहोत दुष्ट परिणतिकों धारण करकें, भद्रकजनोंकों अधर्मका उपदेश करते फिरते रहते है, उन दुर्गतिमें पडनेवाले जनोके विषकों दूर करणे वास्तेभी यह ग्रंथ सुधा तुल्य औषधसदृश दीख पडता है. क्योंकि,इन लोकोकोंभी कुमार्गसे हटायके सन्मार्गमें ल्यावने वास्ते यह ग्रंथके प्रत्येक परिछेदोंमें बहोत जगेपर अनेक शास्त्रोंकी साक्षीयों दर्सायके उपदेश कीया है, इस्सें इन लोकोंपरभी यह ग्रंथ बनानेवालेने बडा उपकार कीया मालुम होता है.

औ इस ग्रंथमें कितनेक इतिहासो ऐसे लिखे है कि—जिन इतिहासकों वांचनेसें शास्त्रोंमें कही हुइ वार्त्तायोंकूं आजके समयमे अयोग्य माननेवालोंकी शंकायों तत्काल दूर होयकें उलटी तिस शास्त्रोंके उपर यथार्थ आस्ता

हो जावे, इत्यादिक अनेक वार्ता चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमें सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ठ सुबोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसें हटाने वाला बहोत मनोरंजक है इन ग्रंथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसें प्रस्तावनाकी वृद्धि होति है इस वास्ते बांचने वाले सज्जनोंकों इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसें विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणेसें यथार्थ स्वरूप समजनेमे आ जावेगा.

और यह ग्रंथकी हिंदुस्थानी भाषामें रचना करी है तिस्सें गुर्जर, मार वाड, पंजाब, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले. कोइभी देशकी भाषा जाननेवालेकोंभी बांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पडेगा.

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अभिमानी, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी भव्यजीवोंकूं इस ग्रंथके बांचने तथा पढने सुननेसें उत्तम प्रकारके सद्बोधका लाभ प्राप्त होवेगा, ऐसा जानिकें श्रीमकसुदाबाद शहेरके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते है, तिन साहेबका बडा आश्रय लेकें मैनें यह ग्रथ छपा कर प्रसिद्ध कीया है, औरभी जैनधर्मकी वृद्धि इछनेवाले हमारे साधर्मिक भाइयोंकों मै अर्ज करता हूं कि, उदारतापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करकें शास्त्राभ्यासी जनोंकों बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देनां, ये बडा उत्तम पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जन करनेका हेतु है, औ इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे है.

यह ग्रंथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों मै बडी नम्रतापूर्वक विनति करता हूं कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लखाण कीया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासें, दृष्टिदोषकी प्रबलतासें तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अभावसें जो कुछ छपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानके मेरे पर सुनजरही रख कर दोष सुधार लेनां चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है. किं बहु विलेखनेन.

॥ श्रावक भीमसिंह माणक ॥

॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिछेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते है ॥

तीसरे परिछेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ चतुर्थ परिछेदमें कुगुरुका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ पंचम परिछेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ षष्ठ परिच्छेदमें चौदह गुणस्थानकका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ सप्तम परिच्छेदमें सम्यग् दर्शनका स्वरूप लिखा है, तिसकी अनुक्रमणिका

॥ अष्टम परिछेदमें चारित्रका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥नवम परिछेदमें श्रावकोंका दिन कृत्य विधि कहा है,तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥दशम परिछेदमें रात्रिकृत्य आदिक पांच कृत्य कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥ एकादश परिछेदमें श्री ऋषभादिसें महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रों
॥ के अनुसार इतिहास कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ बारहवे परिछेदमें श्री महावीर जगवानसें ले कर आजपर्यंत
॥ कितनेक वृत्तांत लिखे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ ॐ नमः स्याद्वादवादिने ॥

॥ अथ तपागच्छीये ॥

॥ मुनिश्री आनंद विजय आत्मारामजी विरचित् ॥

॥ जैनतत्वादर्श नामक ग्रंथ प्रारंभः ॥

॥ तत्र प्रथम परिछेद ॥

॥ अनुष्टुब् वृत्तम् ॥

॥ स्यात्कारमुद्रितानेक, सदसद्भाववेदिनम् ॥
॥ प्रमाणरूपमव्यक्तं, भगवंतमुपास्महे ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथम देव, गुरु औ धर्म इन तीनो ॥
॥ तत्वोंका स्वरूप किंचित् लिख्यते ॥

विदित हो कि जो यह जैनमतहै तिसका स्वरूप श्री तीर्थंकर,गणधर और पूर्वाचार्यादिकोंने आगम निर्युक्ति भाष्य चूर्णि टीका औ प्रकरण तर्कादि अनेक ग्रंथद्वारा स्पष्ट निरुपन कीयाहै परतु पूर्वाचार्य रचित सर्व ग्रंथ प्राकृत वा संस्कृत भाषामे है सो अब जैन लोगोंके पढणेमै उद्यमके नकरणेसें उन अति उत्तम अद्भुत ग्रंथोंका आशय लुप्त प्राय हो रहाहै सोकितनेक भव्य जीवाकी प्रेरणासे तथा स्वकर्म्म निर्ज्जराकी आशयसें जिनकूं प्राकृत वा संस्कृत पढणी कठिनहै तिनोके उपकारार्थ देव, गुरु औ धर्मका स्वरूप किंचित् मात्र इस भाषा ग्रंथमें लिखतेहै.

सर्व श्रोसज्जनोसे नम्रता पूर्वक यह विनतीहैकि जो इस ग्रंथकूं पढे सो जहा मैने जिनमार्गसे विरुद्ध लिखाहो तहा यथार्थ लिख देवें यह मेरे ऊपर बडा अनुग्रह होगा इस ग्रंथके लिखनेका मेरा मुख्य प्रयोजनतो यहहै जो इस कालमे बहुत नविन मत लोकोने स्वकपोल कल्पित प्रगट करेहै तथा अंगरेजोकी औ मुसलमानोकी विद्यापढणेसे तथा अनेक प्रकारके मत मतातरोकी वार्ता सुणनेसें अनेक भव्य जीवाकूं अनेक प्रकारके संशय उत्पन्नहो रहेहै तिनके दूर करणेके वास्ते इस ग्रंथका प्रारंभ कीयाहै अब पूर्वोक्त तीनो तत्वोंमे प्रथम देवतत्वका स्वरूप लिखतेहै.

देव नाम परमेश्वरकाहै सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनेक प्रकारके विकल्प मतांतरिये पुरुष करतेहै सो जैनमतमें परमेश्वरका क्यास्वरूप मान्या है सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप औ विशेषण संयुक्त लिखतेहैं जैन मतमेजो परमेश्वर मान्याहै सो बारां गुण संयुक्त औ अष्टादश दूषणरहित अर्हत परमेश्वरहै औ जो परमेश्वर उक्त बारांगुण रहित तथा अष्टादश दूषण सहित होगा तिसमे कदापि परमेश्वरता सिद्ध नही होगी यह कथन आगे चलकर लिखेंगे.

अब प्रथम बारां गुण लिखतेहैं अशोकवृक्षादि अष्टमहा प्रातिहार्य सर्व जैनलोगोमें प्रसिद्धहैं तथा चार मूलातिशय एवं सर्व बारां गुणहै तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहतेहै (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय (३) अपायापगमातिशय (४) पूजातिशय तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहेहै केवलज्ञान केवल दर्शन करी भूत भविष्य वर्तमान कालमे जो सामान्य विशेषात्मक वस्तुहै तिसकू तथा उत्पाद व्यय ध्रौवयुक्तं सत् त्रिकाल संबंधि जो सत् वस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशयहै. दूजी वचनातिशय तिणमें भगवंतका वचन पैंतीस अतिशय करी संयुक्त होताहै तिन पैंतीस अतिशयका स्वरूप ऐसाहै (१) संस्कारवत्त्व (संस्कृतादि लक्षण युक्त) (२) औदार्यं (शब्दमे उच्चपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्व (ग्रामके रहणहारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगंभीर घोषत्वं (मेघकी तरें गंभीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्व वाजित्रोंके साथ मिलता शब्द) (६) दक्षिणत्वं (वचनकी सरलता संयुक्त) (७) उपनीतरागत्वं (मालव कौशक्यादि ग्राम राग करी युक्तता) ए सातअतिशयतो शब्दकी अपेक्षासें जानने औ अन्य अतिशयजो है सो अर्थाश्रय जानने (८) महार्थता (बहामोटा जिसमे अभिधेय कहेने योग्य अर्थहै) (९) अव्याहतत्व (पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्वं (अभिमत सिद्धांतोकार्थता) एतावता अभिमत सिद्धांतजो कहना सोइ वक्ताके शिष्टपणेका सूचकहै (११) संशयनाम संभवः (जिनोके कहणेमे श्रोताकु संशय नहीं होता) (१२) निराकृताऽन्योत्तरत्व (जिनोके कथनमे कोइभी दूषण नहीं भतो श्रोताकुं शंका उत्पन्न होवे न भगवान दूसरीवार उत्तर देवें) (१३) हृदय गमता (हृदय ग्राह्यत्व) हृदयमे ग्रहणे योग्य (१४) मिथःसाकांक्षता (परस्पर आपसमे

पद वाक्योंका सापेक्ष पणा) (१५) प्रस्तावौचित्यं (देशकाल करके रहित पणा नही) (१६) तत्त्वनिष्टता (विवक्षित वस्तुके स्वरूपानुसारि पणा) (१७) अप्रकीर्णप्रसृतत्वं (सुसंबंध होकर प्रसरणा अथवा असंबंधाधिकारका अतिविस्तार नही) (१८) अस्वश्लाघाऽन्यनिंदता (आत्मोत्कर्ष पर निंदा करके वर्जित) (१९) अभिजात्यं (प्रतिपाद्य वस्तुकी भूमिकानुसारि पणा) (२०) अतिस्निग्धमधुरत्वं (घृत गुडादिवत् सुखकारि) (२१) प्रशस्यता (कहेजो हैं गुण तिनकी योग्यतासें प्राप्तहुइहै श्लाघा) (२२) अमर्मवेधिता (परका मर्म जिसमे उग्घाडणा नहीहै) (२३) औदार्य (अभिधेय अर्थका तुछपणा नही) (२४) धर्मार्थप्रतिबद्धता (धर्म औ अर्थ करके संयुक्त) (२५) कारकाद्यविपर्या सो कारक काल वचन औ लिंगादि जहां विपर्यय नही (२६) विभ्रमादि वियुक्तता विभ्रमवक्ताके मनकी भ्रांति विक्षेपादि दोष रहित (२७) चित्रकृत्त्व (उत्पन्न कखाहै छिन्न कौतुहल पणा) (२८) अद्भुतत्व (अद्भुत पणा) (२९) अनति विलम्बिता (अतिविलंब रहित) (३०) अनेकजाति वैचित्र्य (जातियां वर्णन करणे योग्य वस्तु स्वरूप वनाका आश्रय) (३१) आरोपिता विशेषता (वचनांतरकी अपेक्षा करके स्थापन कियाहै विशेषपणा) (३२) सत्त्वप्रधानता (साहसकरी सयुक्त) (३३) वर्णपदवाक्य विविक्तता (वर्णादिकोंका विछिन्नपणा) (३४) अव्युछित्तिः (विवक्षितार्थकी सम्यक् सिद्धि जहां लग नहोवे तहा तांइ अव्यवछिन्न वचनका प्रमेय पणा) (३५) अखेदित्व (थकेंवा रहित) एह भगवंत की दुसरी वचनातिशयके पैंतीस भेदहै. तीजी अपायापगमातिशय एतावता उपद्रव निवारक औ चोथी पूजातिशय सो भगवान तीनलोकके पूजनीक है इनदोनो अतिशयांकी विस्तार रूप चोंतीश अतिशय होतीहैं सो लिखतेहै.

(१) तीर्थकर भगवानकी देहका रूप औ सुगंध सर्वोत्कृष्ट औ रोग रहित देह तथा पसीना औ मल करि वर्जित (२) स्वास नि.स्वास पद्म कमलकी तरें सुगंधवाला (३) रुधिर औ मांस गो दुग्ध वत् उज्वल (४) आहार निहारकी विधि चर्मचक्षुवालेकूं नही दीखे ए चार अतिशय जन्मसे साथ (१) एक योजन प्रमाणही समवसरणका क्षेत्रहैं परंतु तिसमे देवता मनुष्य तिर्यंचकी कोटाकोटीभि समायसक्तिहै भीड नही होती (२) वाणी भाषा अर्द्ध मागधी देवता मनुष्य तिर्यंचकू अपणी अपणी

नापापणे परिणमतिहै औ एक योजनमै सुणाईदेतीहै (३) प्रनामंमल मस्तकके पीछे सूर्यके विंबकी मानो विडंबना करताहै थापणी शोना करके ऐसा मनोहर नामंमल शोचे है (४) साढे पचीश योजन प्रमाण चारो पासें उपद्रवरूप ज्वरादि रोग नहोवे तथा (५) वैर (परस्पर विरोध नहोवे) तथा (६) इति (धान्याद्युपद्रव कारी घणे मुषकादि नहोवे) (७) मारिमरीका उपद्रव नहोवे (८) अतिवृष्टी (निरंतर वर्षणा नहोवे) तथा (९) अवृष्टी (वर्षणेका अनाव नहोवे) (१०) डुर्जिक्ष नहोवे (११) स्वचक्र परचक्रका नय नहोवे ए इग्यार अतीशय ज्ञानावरणीय आदि चार घाति कर्मोके क्षय होनेसे उत्पन्न होतीहै अब (१) आकाशमें धर्म प्रकाशक चक्र होताहै (२) आकाशगत चामर (३) आकाशमें पाद पीठ सहित स्फटिक मय सिंहासन होताहै (४) आकाशमें तीन उत्र (५) आकाशमें रत्नमय ध्वज (६) जब नगवान चलतेहै तब पगके हेठ सुवर्ण कमल देवता रच देतेहै (७) समवसरणमे रत्न सुवर्ण औ रूपामय तीन कोट मनोहर होतेहैं (८) समवसरणमे प्रनुके चार मुख दीखतेहै (९) अशोक वृक्ष छाया करताहै (१०) कांटे अधोमुख हो जातेहै (११) वृक्ष ऐसे नम्रत होतेह मानो नमस्कार करतेहै (१२) उन्नुनादें डुनि नुवन व्यापक नाद ध्वनी करतीहै (१३) पवन सुखदाइ चलतीहै (१४) पक्षी प्रदक्षणा देतेहैं (१५) सुगंध पाणीकि वर्षा होतीहै (१६) गोडे प्रमाण पंच वर्णके फूलोकी वर्षा होतीहै (१७) केश माढी मुंठ नख अवस्थित रहतेहै (१८) चार प्रकारके देवता जघन्यसें जघन्य नगवतके पास एक कोटी होतेहै (१९) षटऋतु अनुकूल शुन स्पर्श रस गंध रूप शब्द ए पांचो बुरेतो लुप्त हो जातेहै और अछे प्रगट होजातेहै ए उंगणीश अतीशय देवता करते है मतांतर तथा वांचनातरमें कोइ कोइ अतीशय अन्य प्रकारसेंत्रीहै ए पूर्वोक्त चार मूलातिशय और आठ प्रातिहार्य एवं बारां गुणा करी बिराजमान अर्हंत नगवत परमेश्वरहै औ अढारह दूषण करके रहितहै सो अढारह दूषणोका नाम दो श्लोक करके लिखीयेहै.

अंतरायदानलान, वीर्यनोगोपनोगगाः ॥ हासो रत्यरतीनीति, र्जुगुप्सा शोक एवच ॥ १ ॥ कामो मिथ्यात्वमज्ञान, निद्रा चाविरतिस्तथा ॥ रागो द्वेषश्च नो दोषा, स्तेषामष्टादशाप्यऽमी ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका

अर्थ (१) दान देणेमें अंतराय ए प्रथम दोषः (२) लाभगत अंतराय (३) वीर्यगत अंतराय (४) जो एक वेरी भोगीये सो भोग पुष्पमाला दि तिसतो अंतराय सो भोगांतराय (५) वार वार भोगणेमे आवे स्त्र्यादि घरादि कंकण कुंमलादि तिसतांतराय सो उपभोगांतराय (६) हास्य (ह संना) (७) पदार्थोंके उपरि प्रीति (रति) (८) रतिसे विपरीत सो अरति (९) भय सप्त प्रकारका (१०) जुगुप्सा (घृणा) मलीन व स्तुकूं देखकर नाक चढाणा (११) शोक (चित्तका वैधूर्यपणा) विकल पणा (१२) काम (मन्मथ) स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनोंका वेद विका र (१३) मिथ्यात्व (दर्शनमोह) (१४) अज्ञान (मूढपणा) (१५) निद्रा (सोंना) (१६) अविरति (प्रत्याख्यान रहित) (१७) राग (पूर्व सुख तिसके साधनमे गृद्धि पणा) (१८) द्वेष (पूर्व दुःखांका स्मरण औ पूर्व दु· खमे वा तिसके साधन विषय क्रोध) येह अठारह दूषण जिनमे नही सो अर्हत भगवत परमेश्वरहे इन अठारह दूषण मेसे एकबी दूषण जिसमे होगा सो कदेभी अर्हत भगवत परमेश्वर नही हो सक्ता॥ प्रथम पांच विघ्न जिस मे लग रहेहै सो परमेश्वर क्युं कर हो सक्ताहे?

प्रश्न –दानांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर दान देताहै? अरु लाभां तरायके नष्ट होनेसे क्या लाभ परमेश्वरकों होताहै? तथा वीर्यांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर सक्ति दिखलाता है? तथा भोगांतरायके नष्ट हो नेसे क्या परमेश्वर भोग करताहे? उप भोगांतरायके नष्ट होनेसे एतावता क्षय होनेसे क्या परमेश्वर उपभोग करतेहे?

उत्तर पूर्वोक्त पांच विघ्नके क्षय होनेसे भगवतमें पूर्ण पांच शक्तियां प्रगट होतीयांहे जैसे निर्मल चक्षुका पटलादिक बाधकोंके नष्ट होनेसे देखनेकी शक्ति प्रगट होतीहे चाहे देखे चाहे नदेखे परंतु शक्ति विद्यमान है तैसेंही अर्हत भगवतके पांच शक्तियां प्रगट होतीयाहे पीछे दानादि चाहे करे चाहे नकरे परंतु शक्ति विद्यमानहै जो पांच शक्तियोंसे रहित होगा सो परमेश्वर कैसें होसक्ताहे?

६ छठा दूषण "हसना" हास्यजो आताहेसो अपूर्व वस्तुके देखनेसे वा अपूर्व वस्तुके सुननेसे वा अपूर्व आश्चर्यके अनुभवके स्मरणसे इत्यादिक हास्यके निमित्तहे औ हास्यका मोहकर्मकी प्रकृतिरूप उपादान कारणहै

सो ए दोनोही कारण अर्हंत जगवंतमे नहीहै प्रथम निमित्तकारणका संज व कैसें होवे अर्हंत जगवत सर्वज्ञ सर्व दर्शीहै उनके ज्ञानमे कोइ अपूर्व ऐसी वस्तु नही जिसके देखे सुने अनुजवे आश्चर्य होवे इसते कोइजी हास्यका निमित्त कारण नही औ मोह कर्मतो अर्हंत जगवतने सर्वथा क्षय कखाहै सो उपादान कारण क्युंकर संजवे इस हेतुसे अर्हंतमें हास्य रूप दूषण नही औ जो हसनशील होगा सो अवश्य असर्वज्ञ असर्वदर्शी औ मोहकरी संयुक्त होगा सो परमेश्वर कैसें होवे?

७ सातमा दूषण रति जिसकी प्रीति पदार्थो उपर होगी सो अवश्य सुंदर शब्द रूप गंध रस स्पर्श स्त्री आदिके उपर प्रीतिमान होगा जो प्रीतिमान होगा सो अवश्य उस पदार्थकी लालसा वाला होगा अरुजो लालासा वाला होगा सो अवश्य उस पदार्थकी अप्राप्तिसें दुःखी होगा सो अर्हंत परमेश्वर कैसें होसकाहै?

८ आठमां दूषण अरति जिसकी पदार्थो उपर अप्रीतिहोगी सोतो आपही अप्रीतिरूपोये दुःखकरी दुखीयाहै सो अर्हंत जगवंत कैसे हो सके?

ए नवमा दूषण "जय" सो जिसने आपणाही जय दूर नही कीया सो अर्हंत परमेश्वर कैसे होवे?

१० दशमां दूषण जुगुप्साहै सो मलीन वस्तुकूं देखके घृणा करणी (नाक चढाणी) सो परमेश्वरके ज्ञानमे सर्ववस्तुका जासन होताहै जो परमेश्वरमे जुगुप्सा होवेतो बडा दुःख होवे इस कारणते जुगुप्सामान अर्हंत जगवंत कैसें होवे?

११ इग्यारमां दूषण शोक है सो जो आपही शोक वालाहै सो परमेश्वर नही?

१२ बारवा दूषण कामहै सो आपही जो विषयीहै स्त्रीयोके साथ जोग करताहै तिस विषयाजिलाषीकूं कोन बुद्धिमान पुरुष परमेश्वर मानताहै?

१३ तेरवा दूषण मिथ्यात्व है सो जो दर्शनमोह करी जिसहै सो जगवतनही.

१४ चौदवा दूषण अज्ञान है सो जो आपही मूढहै सो अर्हंत जगवत नही.

१५ पदरवा दूषण निद्रा है सो जो निद्रामे होता है सो निद्रामे कुछ नही जानता औ अर्हंत जगवानतो सदा सर्वज्ञ है सो निद्रावान् कैसे होवे?

१६ शोलमां दूषण अप्रत्याख्यान है सो जो प्रत्याख्यान रहित है सो सर्वाभिलाषी है सो तृष्णा वाला कैसे अर्हंत भगवत होसके?

१७–१८ सत्तारवां ओ अठारवां ए दोनो दूषण राग अरु द्वेष है सो राग द्वेषवान मध्यस्थ नही होता अरु जो रागी द्वेषी होता है तिसमें क्रोध मान मायाका संभव है भगवान तो वीतराग, सम शत्रु मित्र, सर्वजीवो पर समबुद्धि, न किसीकूं दुःखी अरु न किसीकूं सुखी करे, जेकर दुःखी सुखी करेतो वीतराग करुणा समुद्र कदेइ नहोसक्ता इस कारणतें राग द्वेष वाला अर्हंत भगवंत परमेश्वर नही ए पूर्वोक्त अठारह दूषण रहित अर्हंत भगवंत परमेश्वरहै अपर कोइ परमेश्वर नही

अथ अर्हंतके नाम दो श्लोकों करि लिखतेहै.–अर्हन् जिनः पारगतस्त्रिकालवित् क्षीणाष्ठकर्मा परमेष्ठ्यऽधीश्वरः ॥ शंभुः स्वयंभूर्भगवान् जगत्प्रभु, स्तीर्थंकरस्तीर्थकरो जिनेश्वर. ॥ १ ॥ स्याद्वाद्यऽभयदसर्वाः सर्वज्ञः सर्वदर्शि केवलिनौ। देवाधिदेव बोधिद पुरुषोत्तम वीतरागाऽप्त ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थ –(१) चौतीश अतीशय करी सबसें अधिक होनेसें सुरेंद्र आदिकोंकी करी हुइ अष्ठ महा प्रातिहार्या जन्म स्नात्रादि पूजाके जो योग्य है सो अर्हन् अथवा ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म रूप वैरी हननेसें अर्हन् अथवा वध्यमान कर्म रजके हननेसे अर्हन् अथवा नही है कोइ पदार्थ छाना जिनोके ज्ञानमे सो अर्हन् तथा नामांतरमें अरुहन् नही उत्पन्न होना भवरूपी अंकूर जिनोके सो अरुहन् ए प्रथम नाम (२) जीते है राग द्वेष मोहादि अष्टादश दूषण जिसने सो जिन ए द्वितीय नाम. (३) संसारके अथवा प्रयोजन जातके, (प्रयोजन मात्रके) पारपर्यंत छेहडेको गत (प्राप्त) हुया है एतावता संसारमे जिनका कोइ प्रयोजन नही सो पारगत. ए तृतीय नाम (४) भूत, भविष्य, वर्त्तमान, इन तीनों कालोकूं जो जाणे सो त्रिकालवित्. ए चतुर्थ नाम (५) क्षीणानि क्षय हूये है आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म जिसके सो क्षीणाष्टकर्मा ए पंचम नाम. (६) परमेश्वर पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी परम उत्कृष्ट पदमे जो रहे है सो परमेष्ठि ए षष्ठ नाम. (७) जगतका ईश्वर (स्वामी) सो अधीश्वर ए सप्तम नाम. (८) शं शास्वतं सुखं तिसमे जो होवे सो शंभु ए अष्टम नाम. (९) स्वयं आपही आपणी आत्मा करके तथा भव्यत्वादि सामग्रीके प

रिपक्क होणोसे परंतु परके उपदेशसे नही यह तिसही नयकी अपेक्षाका कथन् है ऐसाजो होवे सो स्वयंभू ए नवम नाम. (१०) भग शब्दके चौदह अर्थ है तिनमेसे अर्क औ योनि ए दो अर्थ वर्जके शेष बारां अर्थ ग्रहण करणा तिसका नाम कहते है. (१) ज्ञानवत, (२) माहात्म्यवत, (३) शास्वत वैरीयांके वैर उपशमनेते यशस्वि, (४) राज्य लक्ष्मीके त्यागणेसे वैराग्यवत, (५) मुक्तिवत, (६) रूपवत, (७) अनंतबल होणेसे वीर्यवत, (८) तप करनेमे उत्साह वान होनेसे प्रयत्नवत, (९) इच्छावत सो ससार सेती जीवांका उद्धार करणेमे इच्छावंत, (१०) चौतीश अतिशय रूप लक्ष्मी करी बिराजमान होणेसे श्रीमत, (११) धर्मवत, (१२) अनेक देव कोटि करी सेव्यमान होनेसें ऐश्वर्यवत ए बारा अर्थ करी सयुक्त सो भगवान् ए दशम नाम. (११) जगत प्रभु ए एकादशम नाम (१२) तरीये संसार समुद्र जिस करेके सो तीर्थ प्रवचनका आधार चार प्रकारका संघ अथवा प्रथम गणधर तिसके करणेका है शील जिसका सो तीर्थंकर, एकादशम नाम, (१३) रागादिकोंके जीतनेहारे जिन (केवली) तिनका जो ईश्वर सो जिनेश्वर ए त्रयोदशम नाम. (१४) स्यात् एहजो अव्यय है सो अनेकातका वाचक है वस्तुकों अनेकात पणे अनेक स्वरूपे कहणेका शील है जिनका सो स्याद्वादि ए चतुर्दशम नाम. (१५) अभयद भय जो है सो सात प्रकारका है (१) मनुष्यादिकोको मनुष्यादि स्वजातीयसे अर्थात् एक मनुष्यकूं अन्य मनुष्य सेति जो भय होवे सो इहलोक भय, (२) विजातीय तिर्यंच देवतादिक सेती जो भय होवे सो परलोक भय, (३) आदान भय सो आदान कहिये धन तिस धनके कारणे चोरादिक सेती जो भय होवे सो आदान भय, (४) वाहिरले निमित्त विना घरादिको विषे बैठेकू रात्रि आदिक विषे जो भय होवे सो अकस्मात् भय, (५) आजीविका भय सो मैं निर्धनहुं केसे दुर्भिक्षादिकमे अपने आपकूं धार... ऐसाजो भय सो आजीविका भय, (६) मरणसे... भय सो... एह प्रसिद्ध है. (७) अश्लाघा भय अयशका... मे ऐसे... मेरा... अयश होगा अयशके भयमें प्रव... अश... सो... का भय इसका जो विपक्षी सो

का स्वास्थपणा निश्रेयस धर्मनिबंधन नूमिकानूत तिस गुणके प्रकर्षतें अचिंत्य शक्ति युक्त होणेसें सर्वथा परहितकारी होणेसें ऐसा अन्नय देवे सो अन्नयद ए पंचदशम नाम. (१६) सार्वाः सर्व प्राणीयोंके तांइ जो हित सो सार्वा ए षोडशम नाम. (१७) सर्वज्ञ सर्वजो जाणे सो सर्वज्ञ. ए सप्तदशम नाम. (१८) सर्वजो देखे सो सर्वदर्शी, ए अष्टादशम नाम.(१९) सर्वथा प्रकारें कर्मावरणके दूर होनेसे, जो चेतन स्वरूप प्रगट नया "केवल" केवलज्ञान है इसके सो केवली. ए एकोनविसतिम नाम. (२०) देवताओंका जो अधिपति सो देवो देवाधिदेव ए विसतिम नाम. (२१) बोधिः जिनप्रणीत धर्मकी प्राप्ति तिसकूं जो देवे सो बोधिद ए एकविंसतिम नाम. (२२) पुरुषा मांहे उत्तम सहज तथा नव्यत्वादि नव करी श्रेष्ट सो पुरुषोत्तम ए द्वाविंसतिम नाम. (२३) वीतो गतो रागो अस्मात् इति वीतराग ए त्रयोविसतिम नाम. (२४) आप्त हितोपदेशक होणेसें आप्त कहीयें ए चतुर्विसतिम नाम. इत्यादिक हजारो नाम परमेश्वरके है ए पूर्वोक्त सर्व परमेश्वरका स्वरूप श्रीहेमचंद्राचार्य कृत ग्रंथोके अनुसार तथा समवायांग राजप्रश्नीय प्रमुख शास्त्रोंके अनुसार लिखे है अन्यथा जिनसहस्त्रनाम ग्रंथमे तो एकहजार आठ नाम अन्वयार्थ सहित कहे है, सर्व नाम व्युत्पत्ति सहित अर्हंत परमेश्वरके है, सो अर्हंत पद तो एक अनादि अनंतहै, परंतु इसपदके धारक जीव अनंत अतीत कालमे होगये है क्युंके एकेक उत्सर्पिणि अवसर्पिणि कालमे नारत वर्षमे चोवीश चोवीश जीव अर्हंत पदकूं धारकर पीछे सिद्धपदकूं प्राप्त हो गयें है.

इस वर्त्तमान अवसर्पिणिसें पिछलि उत्सर्पिणीमे जो जीव अर्हंत पदके धारक हुये है. तिनके नाम (१) केवलज्ञानी (२) नीर्वाणी (३) सागर (४) महायश (५) बिमल नाथ (६) सर्वानुनूति (७) श्रीधर (८) दत्त (९) दामोदर (१०) सुतेज (११) स्वामि (१२) मुनिसुव्रत (१३) सुमति (१४) शिवगति (१५) अस्ताग (१६) नेमीश्वर (१७) अनिल (१८) यशोधर (१९) कृतार्थ (२०) (जिनेश्वर (२१) शुद्धमति (२२) शिवकर (२३) स्यंदन (२४) संप्रति॥

११ 'श्रेयान्समस्तजुवनस्यैवहितकरः प्राकृतशैल्याछांदसत्वाच्चश्रेयांसइ त्युच्यते" सर्व जगतको जो हित करे सो श्रेयांस तथा "यद्यागर्न्नस्थेऽस्मिन् केनापिनाक्रांत पूर्वीदेवताधिष्टितशय्याजनन्याआक्रांततेतिश्रेयोजातमितिश्रे यांसः" जगवान् जब गर्न्नमेंथे, तदा जगवतके पिताके घरमे देवताधिष्टित श य्याथी उस उपरि जो बैठताथा उसहीकू असमाधि उत्पन्न होतीथी, जग वतकी माताकूं उसी शय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न हूया, माताउसी शय्या उपरि सूती देवता शांति जया उपद्रव नकरया इस हेतुसें श्रेयांस/ ११

१२ "तत्रवसूनांपूज्य.वसुपूज्यः वसवोदेवा" वसूओंकर जो पूज्यनीक होवे सो वसुपूज्यः वसु कहियें देवता "वसुपूज्यनृपतेरपत्यं वासुपूज्यः" वसुपूज्य नामा राजेका जो पुत्र सो वासुपूज्य "वासवो देवराया तस्स गप्नगयस्स अ निरकणं अनिरकणं जणणीए पूयंकरेति तेणवासुपुज्रोति अहवा वसूणि रयणाणि वासवो वेसमणो सो गप्नगए अनिरकणं अनिरकणं तं रायकुलं रयणेहिं पूरेयत्ति वासुपुज्रोत्ति ॥ अस्यार्थः/ वासव नाम इंद्रका है सो जग वान् जब गर्न्नमें आये तदा वार वार इंद्रने जगवतकी माताकूं पूज्या, इस कार णसें वासुपूज्य/ अथवा वसु कहिये रतन अरुवासव नाम है वैश्रमणका सो वैश्रमण यदा जगवान् गर्न्नमेथे तदा वार वार तिस राजाके कुलकूं रत्ना करी पूरण करता जया इस हेतुसें वासुपूज्य ॥ १२ ॥

१३ "विगतोमलोऽस्यविमल. विमलज्ञानादियोगाद्वाविमलः" दूरहूआ है अष्ट कर्म्मरूप मल जिसका सो विमल अथवा निर्मल ज्ञानादि योगसे विमल "यद्यागर्न्नस्थेमातुर्मतिस्तनुश्चविमलाजातेतिविमल" तथा/ जगवा न् यदा गर्न्नमेंथे, तदा माताकी बुद्धि अरु शरीर ए दोनु निर्मल हो गये इस कारणे "विमल" नाम जानना/॥ १३ ॥

१४ "नविद्यतेगुणानामंतोऽस्यअनंत. अनंतकर्मांशजयाद्वानंत' अनंता निवाज्ञानादीनियस्येत्यनंत." नही जाणिये है गुणका अंत जिसका सो अ नंत, अथवा अनंत कर्म्मांस जीतनेसे अनंत, अथवा अनंत है ज्ञानादि गुण जिसके सो अनंत " रयणविचित्तं रयण,खवियं अणंत अतिमह प माणं ॥ दामं सुमिणे जणणीए, दिठं तउ अणंतोत्ति" रत्न विचित्र रत्नजडि

त अति मोटी दाम माला स्वप्नमे माताने देखी तिस कारणे अनंत॥१४॥

१५ "दुर्गतौ प्रततं सत्व संघातं धारयतीतिधर्म्मः" दुर्गतिमें पडतां जीवांके समूहकूं जो धारण करे सो धर्म तथा "गर्भस्थेजननीदानादिधर्म्मे पराजातेति धर्म." परमेश्वरके गर्भमे आवणेसे माता दानादिक धर्ममे तत्पर भयी इस कारणे धर्म नाम॥ १५ ॥

१६ "शांतियोगात्तदात्मकत्वात्तत्कर्तृकत्वाच्चायंशांतिः" शांतिके योगसें वा शांति रूप होणेसें वा शांति करणेसें शांति तथा "गर्भस्थेपूर्वोत्पन्नाशिवं शांतिरभूदितिशांति." तथा गर्भमे भगवान्के उत्पन्न होणेसे पूर्व जो अशिव उत्पन्नथा, सो शांति होगया इस कारणे शांति नाम ॥ १६ ॥

१७ "कुःपृथ्वी तस्यांस्थितिवानितिकुंथुः पृषोदरादित्वात्" कु नाम पृथ्वी का है तिस पृथ्वीमे जो स्थित होता भया सो कुंथु तथा "गर्भस्थे भगवति जननीरत्नानां कुंथुंराशिदृष्टवतीतिकुंथुः" भगवतके गर्भमे स्थित हूया माता रत्नमयी कुंथुओंकी राशि देखती भइ इस हेतुसें कुंथु ॥ १७ ॥

१८ "सर्वोत्तममहासत्वः, कुलेयउपजायते तस्याभिवृद्धायवृद्धै,रसारवउदाहृतः ॥१॥ इतिवचनादर" सर्वसें उत्तम महासात्विक कुलमे जो उत्पन्न होवे, और तिस कुलकी वृद्धिके ताइ है तिसकुं वृद्ध पुरुष, प्रधान अर कहते है तथा "गर्भस्थेभगवतिजनन्यास्वप्नेसर्वरत्नमयोऽरोदृष्टइत्यपरः" तथा भगवतके गर्भमे स्थित होया माताने स्वप्नमे सर्व रत्न मयी अर देख्या इस कारणसे अर इति नाम ॥ १८ ॥

१९ "परीसादिमल्लजयनान्निरुक्तान्मल्लि" परीसहादि मल्लोके जीतनेसे मल्लि' तथा 'गर्भस्थे भगवतिमातु सुरभिकुसुममाल्यशयनीयदोहदोदेवतया पूरितइति "मल्लि" तथा भगवतके गर्भमे स्थित हूया भगवतकी माताकूं सुगंध वाले फूलोकी मालाकी सय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न भया, सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे मल्लि ॥ १९ ॥

० "मन्यतेजगतस्त्रिकालावस्थामितिमुनिः शोभनानिव्रतान्यस्येतिसुव्रत. श्चासौसुव्रतश्चमुनिसुव्रत" मानेजो जगतकूं तीनोही कालमे सो "मुनि" है व्रत जिसके सो सुव्रत ए दोनो पद एकठे करणेसें मुनिसुव्रत तथा

"गर्नस्थेजननीमुनिवत्सुव्रताजातेतिमुनिसुव्रतः"/तथा नगवतके गर्नमें स्थि
त हूया माता मुनिकी तरें नले व्रत वाली होतीनइस हेतुसें मुनिसुव्रत ॥२०

२१ "परीसहोपसर्गादीनांनामनात्नमेस्तुवेतिविकल्पेनोपांत्यस्येकाराना
वपक्षेनमिः" परीसह उपसर्गांकूं नमावणेसे नमि तथा "यद्गागर्नस्थे न
वति परचक्रनृपैरपिप्रणति· कृतेतिनमि"/ नगवतके गर्नमे स्थित होण
वैरी राजायोंनेनी नमस्कार करी इस कारणसें नमि/॥ २१ ॥

२२ "धर्मचक्रस्यनेमिवन्नेमिः" धर्मचक्रकी धारावत् सो नेमि तथा "ग
गएतस्समायाए, रिष्टरयणामउमहतिमहालउ नेमि॥ उप्पयमाणो सुमिण
दिछोत्ति तेणसेरिष्टनेमित्ति नामंकयंति" तथा/नगवतके गर्नगत हूया म
ताने अरिष्ट रत्नमय वडा मोटा नेमी (चक्रधारा) आकाशमे उत्पत मा
स्वप्नमें देख्या तिस कारणे अरिष्ट नेमि नाम कह्या/॥ २२॥

२३ "स्पृशतिज्ञानेनसर्वनावानितिपार्श्वः" स्पर्शे जाणे सर्व पदार्थोंकूं ज्ञा
न करी सो पार्श्व तथा "गर्नस्थेजनन्यानिशिशयनीयस्थयांऽधकारेसर्प
दृष्टइतिगर्नानुनावोयमितिपश्यतीतिनिरुक्तात्पार्श्वः पार्श्वोअस्यवैयावृत्त्यक
रोयक्षस्तस्यनाथः पार्श्वनाथ नीमोनीमसेनइतिन्यायाद्वापार्श्व"/तथा न
गवतके गर्नमे स्थित होणेसे माता निशि रात्रिमे शय्या उपर बैठीने अं
रेमे जाता हूया सर्प देख्या माता पिताने विचार्या जो ए गर्नका प्रना
है देखे सो पार्श्व· अथवा पार्श्व नामा वैयावृत्त करणहारा देवता ति
का जो नाथ सो पार्श्व नाथ ॥/ २३ ॥

२४ "विशेषेणईरयतिप्रेरयतिकर्माणीतिवीरः" विशेष करके प्रेरेजो कर्म
कूं सो वीर तथा वडे उग्र परीसह उपसर्ग सहणेसें, देवताने नाम कर
श्रमण नगवान् महावीर तथा माता पिताका नाम दीया वर्द्धमान्॥२४

इस प्रकार यह अवसर्पिणीमे जो तीर्थंकर हो गये तिनोके नाम अ
किस हेतुसे यह नाम रखेगये सो समाप्त हूये·

यह चोवीश तीर्थंकर है इनमें सुं बावीश अर्हंततो इक्ष्वाकु कुलमे उ
त्पन्न हूये है एतावता ऋषन देवकी संतानमे है, इक्ष्वाकु कुल ऋषनदेवक
सें प्रसिद्ध है, यह स्वरूप आगें चलकर लिखेंगे और एक तो बीशमें मुनि

नुव्रत स्वामी तथा दूसरा बावीशमें श्रीअरिष्टनेमि नगवान्, ए दोनो तीर्थंकर हरिवंशमे उत्पन्न हूये थे तथा इन चोवीसों तीर्थंकरोंमे छठा पद्मप्रन और बारहवा वासुपूज्य ए दोनो तीर्थंकर रक्तवर्ण शरीर वाले हूये है तथा आठवां चंद्रप्रन और नवमे सुविधिनाथ (पुष्पदंत) ए दोनो तीर्थंकर, स्वेत वर्ण स्फटिक वत् उज्वल शरीर वाले हूये है, तथा उन्नीसवा मल्लिनाथ और तेइसवां पार्श्वनाथ ए दोनो तीर्थंकर, हरित वर्ण शरीर वाले हूये है, तथा वीसवां मुनिसुव्रत स्वामी और बावीसवां अरिष्टनेमि नगवान् ए दोनो तीर्थंकर स्यामवर्ण अलसीके फूलवत् रंगवाले शरीरके धारक हूये है अरु शेष शोलां तीर्थंकर सुवर्णवर्ण शरीरवाले हूये हैं.

अथ चोवीश तीर्थंकरोंके चिन्ह उनके दक्षिण पगोंमे रहे हूये वा उनकी ध्वजामे ए चिन्ह होते है अथवा इनकी प्रतिमाके आसनमे ए चिन्ह होने है, सो कहेते है (१) ऋषनदेवजीके बैलका चिन्ह. (२) अजितनाथजीके हाथीका चिन्ह. (३) संनवनाथजीके घोडेका चिन्ह. (४) अनिनंदनजीके बंदरका चिन्ह. (५) सुमति नाथजीके क्रौंच पक्षीका चिन्ह. (६) पद्मप्रनजीके कमलका चिन्ह. (७) सुपार्श्वनाथजीके साथीयेका चिन्ह. (८) चंद्रप्रनजीके चंद्रमाका चिन्ह. (९) सुविधिनाथ (पुष्पदंतजी) के मकरका चिन्ह. (१०) शीतलनाथजीके श्रीवत्सका चिन्ह. (११) श्रेयांसनाथजीके गैंडेका चिन्ह. (१२) श्रीवासुपूज्यजीके महिषेका चिन्ह. (१३) श्रीविमलनाथजीके सूअरका चिन्ह. (१४) अनंतनाथजीके बाजका चिन्ह. (१५) धर्मनाथजीके वज्रका चिन्ह (१६) शांति नाथजीके हरिणका चिन्ह. (१७) कुंथुनाथजीके बकरेका चिन्ह. (१८) अरनाथजीके नंद्यावर्त्तका चिन्ह. (१९) श्रीमल्लिनाथजीके कुंनका चिन्ह (२०) मुनिसुव्रत स्वामीजीके कछुका चिन्ह. (२१) नमीनाथजीके नीले कमलका चिन्ह. (२२) अरिष्टनेमिजीके शंखका चिन्ह. (२३) श्रीपार्श्वनाथजीके सर्पका चिन्ह. (२४) श्रीमहावीरजीके सिंहका चिन्ह. यह चिन्ह चोवीश तीर्थंकरोंके पगोमे होते है.

अथ चोवीश तीर्थंकरोंके पितायोंके नाम तथा मतायोंके नाम कहतेहैं.

१ नानिनह्यत्यन्यायिनोहकारादिन्निर्नीतिन्निरितिनानिरंत्यकुलकरः, (२)

जिताःशत्रवोऽनेनजीतशत्रुः (जीतेहै शत्रु जिसने सो जितशत्रु) (३ जिताअरयोऽनेनजितारिः (जीतेहै वैरी जिसने सो जितारि) (४) संवृतींड्रियाणिसंवरः (वस करीया है इंद्रिया सो संवर, (५) सकलसत्वसंतापहरणात् मेघइवमेघः (सकल जीवाका संताप हरणेसें मेघकी तरें मेघ, (६) धरतिधात्रीमितिधर (धारण करे जो पृथ्वीकुं सो धर. (७) प्रतिष्ठति धर्मकार्ये प्रतिष्ठ. (धर्मके कार्य कार्यमें जो रहे सो प्रतिष्ठ, (८) महतोपूज्यासेनाऽस्यमहासेनः (मोटी पूजने योग्य है सेना जिसकी सो महासेन) सचासौनरेश्वरश्च महासेननरेश्वरः, (९) शोभनाग्रीवाऽस्यसुग्रीव. (भली है ग्रीवा जिसकी सो सुग्रीव, (१०) दृढोरथो, स्यदृढरथः (दृढ (बलवान) है रथ जिसका सो दृढरथ, ११) विवेष्टिवलैः पृथिवीविष्णु. (विवेष्टन कीया है पृथवीकुं सैना करी जिसने सो विष्णु, (१२) अन्यैराजभिर्वसुनिर्धनैः पूज्यते इतिवसुपूज्यः सचासौराट्च वसुपूज्यराट् (दूसरे राजाउंने धन करी पूज्या सो वसुपूज्य राजा, (१३) कृतवर्मानेन कृतवर्मा (कर्या है सनाह जिसने सो कृतवर्मा, (१४) सिंहवत्पराक्रमवतीसेनास्य सिंहसेन. (सिंहकीतरे है पराक्रम वाली सेना जिसकी सो सिंहसेन, (१५) भाति त्रिवर्गेणभानुः सोभे है जो अर्थ काम अरु धर्म करके सो भानु, (१६) विश्वव्यापिनीसेनाऽस्यविश्वसेन (जगतमे व्यापने वाली सेना है जिसकी सो विश्वसेन सचासौराट्चविश्वसेनराट् (१७) तेजसासूरइवसूर (तेज करके सूर्यवत् सो सूर, (१८) शोभनदर्शनमस्यसुदर्शन. (भला है दर्श. जिसका सो सुदर्शन, (१९) गुणपयसामाधारभूतत्वात् कुंभइव कुंभः (गुणरूप पाणीका आधारभूत होणेसे कुंभकी तरे कुंभ, (२०) शोभनानि मित्राणिअस्यसुमित्र. (भले है मित्र जिसके सो सुमित्र, (२१) विजयते शत्रुनितिविजय (जीते है शत्रुओंकूं सो विजय, (२२) गांभीर्येणसमुद्रस्यापिविजेतासमुद्रविजयः (गांभीर्यता करी समुद्रकूं जीतने वाला समुद्रविजय, (२३) अश्वप्रधानासेनास्यअश्वसेनः (घोडों करी प्रधान है सेना जिसकी सो अश्वसेन, (२४) सिद्धार्था पुरुषार्था अस्यसिद्धार्थ ॥ ए ऋषभ आदि चोवीस तीर्थंकरोके क्रम करके चोवीस पिताओंके नाम कहे.

अथ चोवीश तीर्थंकरोकी माताओंके नाम लिखते हैं. (१) मरुद्भिर्दी यतेस्तूयतेमरुदेवा पृषोदरादित्वात् तलोपःमुरदेव्यपि स्यात् (देवतां करी जो तवीये सा मरुदेवा मुरदेवी एसाभी नाम है, (२) विजयतेविजया (ज यवंतविजया, (३) सहअनेनजितारिस्वामिनावर्त्ततेसेना (जितारिराजा के साथ जो वर्त्ते सा सेना, (४) सिद्धोऽर्थोऽस्याःसिद्धार्थाः (सिद्धहूया है अर्थ जिसका सा सिद्धार्थाः (५) मंगलहेतुत्वात्मंगला (मंगलके हे तुभूत होनेसें मंगला, (६) शोभनासीमामर्यादाऽस्याः सुसीमा(भली है मर्यादा जिसकी सा सुसीमा, (७) स्थेम्नापृथ्वीवपृथ्वी (स्थिर है पृथ्वी की तरे पृथ्वी, (८) लक्ष्मीशोभाऽस्त्यस्याः लक्ष्मणा (लक्ष्मीकीतरें शोभा है जिसकी सा लक्ष्मणा, (९) धर्मकृत्येपुरमतेरामा (धर्मकृत्यमें जो रमे सा रामा, (१०) नदतिसुपात्रेणनंदा (वृद्धिवान् होवे जो सुपा त्रदान देणेसें सा नंदा, (११) विवेष्टिगुणैर्जगदिति विष्णुः (लपेटे जो गु णा करी जगत् सा विष्णु, (१२) जयतिसतीत्वेनजया (उत्कृष्टपणेवर्त्ते है सती पणे करी सा जया, (१३) श्यामवर्णत्वात्श्यामा (श्यामवर्ण होनेसें श्यामा, (१४) शोभनंयशोऽस्याःसुयशा (भला है यश जिसका सा सुयशा, (१५) शोभनंव्रतमस्याःसुव्रतापतिव्रतत्वात् (भला है व्रत जिसके सा सुव्रता, (पतिव्रता होनेसें सुव्रता, (१६) नचिरयतिधर्मकार्येष्वऽचिराः (नही चिर करती धर्मकार्यों विषे सा अचिरा, (१७) श्रीरिवश्रीदेवीवदेवीप्रभाऽस्त्यस्याःश्री (लक्ष्मीकी तरे प्रभा है जिसकी सा श्री,(१८) देवीकी तरे प्रभा है जिसकी सा देवी, (१९) प्रभावतीप्रभावती. (२०) पद्मइवपद्मावती (पद्मकी तरे पद्मावती, (२१) धर्मबीजमितिवप्रा, (२२) शिवहेतुत्वात्शिवा (निरुपद्रव होणेके हेतुसें शिवा, (२३) मनोज्ञत्वा द्वामा पापकार्येषुप्रतिकूल्या द्वामा (मनोज्ञ होणेसें वामा) अथवा पापकार्यों विषे प्रतिकूल होनेसें वामा, (२४) त्रिणिज्ञानदर्शनचारित्राणिशलयति प्राप्नोतीतित्रिशला (तीन ज्ञान दर्शन औ चारित्रकूं प्राप्त होवे सा त्रिशला, इस क्रम करकें ऋषभादि चोवीश तीर्थंकरोंके माताओंका नाम है ॥ अथ वा सुगमताके कारण चोवीश तीर्थंकरोंके साथ बावन बोलका संबंध है तिसका स्वरूप यंत्र बंध लिखते है प्रथम बावन बोलका नाम लिखे है.

बावन बोलका नाम कहेते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरका नाम.	२८	गणधरोंकी संख्या.
२	चवणतिथि.	२९	साधुओंकी संख्या.
३	किस विमानसें आये.	३०	साधवीयोंकी संख्या.
४	किस नगरीमें जन्म हूये.	३१	वैक्रिय लब्धिवंतोंकी संख्या.
५	जन्म तिथि.	३२	अवधि ज्ञानीयोंकी संख्या.
६	पिताओंका नाम.	३३	केवल ज्ञानीयोंकी संख्या.
७	माताओंका नाम.	३४	मन.पर्यवज्ञानीयोंकी संख्या.
८	किस नक्षत्रमें जन्मे.	३५	चौदह पूर्वधारियोंकी संख्या.
९	जन्मराशि.	३६	वादिओंकी संख्या
१०	लांछनका नाम.	३७	श्रावकोंकी संख्या.
११	शरीरके उच्च पणेका मान.	३८	श्राविकायोंकी संख्या.
१२	आयुके वर्षका प्रमाण.	३९	शासनके यक्षोका नाम.
१३	शरीरका वर्ण.	४०	शासनके यक्षणीयोंका नाम.
१४	पदवी.	४१	प्रथम गणधरका नाम.
१५	विवाहे के कुमारे ?	४२	प्रथम आर्याका नाम
१६	कितने जनोके साथ दीक्षा लीई	४३	मोक्ष होनेका स्थान
१७	दीक्षा कोनसी नगरीमें लीई.	४४	मोक्ष पोहोचनेकी तिथि.
१८	दीक्षा दिने कितना तप.	४५	मोक्ष दिने तप.
१९	प्रथम पारणे क्या आहार मिला	४६	मोक्ष जानेके आसन.
२०	प्रथम पारणेका घर	४७	परस्पर अंतरका मान.
२१	कितने दिनाका पारणा	४८	गण नाम.
२२	दीक्षाकी तिथि	४९	योनि नाम.
२३	छद्मस्थ पणेका कालमान.	५०	मोक्ष परिवार.
२४	किस नगरीमे केवलज्ञान प्राप्त हूया	५१	सम्यक्त्वपायां पीछे महोटे भव
२५	ज्ञानोत्पत्ति दिने क्या तप.	५२	किस कुलमें उत्पन्न हूया.
२६	किस वृक्षके हेठ दीक्षा लीनी	५३	गर्भवासका कालमान.
२७	किस तिथिमें ज्ञान उत्पन्न हूया.		

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमे कहेते हे.

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१ श्रीऋषभदेव.	१ श्रीअजितनाथ	३ श्रीसंभवनाथ.
२	चवणतिथि	आषाढवदि ४	वैशाखशुदि १ ३	फाल्गुनशुदि ८
३	विमाननाम.	सर्वार्थसिद्ध	विजयविमान	उपरलाग्रैवेयक
४	जन्मनगरी.	विनीताभूमि	अयोध्या	सावत्री
५	जन्मतिथि.	चैत्रवदि ८	माहशुदि ८	माहशुदि १ ४
६	पिताका नाम.	नाभिकुलकर	जितशत्रु	जितारि
७	माताका नाम.	मरुदेवी	विजया	सेना
८	जन्मनक्षत्र.	उत्तराषाढा	रोहिणी	मृगशिर
९	जन्मराशि.	धन	वृष	मिथुन
१ ०	लांछननाम.	वृषभ	हस्ती	अश्व
१ १	शरीरमान.	५००)धनुष	४५०)धनुष	४००)धनुष
१ २	आयुमान.	८४)लक्षपूर्व	७२)लक्षपूर्व	६०)लक्षपूर्व
१ ३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१ ४	पदवी राजकी.	राजपदवी	राजपदवी	राजपदवी
१ ५	पाणिग्रहण.	विवाह हूया	विवाह हूया	विवाह हूया
१ ६	कितनेसाथ दीक्षा.	४०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१ ७	दीक्षानगरी.	विनीता	अयोध्या	सावत्री
१ ८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१ ९	प्रथमपारणेकाआ०	इक्षुरस	परमान्नक्षीर	परमान्नक्षीर
२ ०	पारनेका स्थान.	श्रेयासके घरे	ब्रह्मदत्तके घरे	सुरेंद्रदत्तके घरे
२ १	कितनेदिनकापारणा	एकवर्षपीछे	दो दिन पीछे	दो दिनपीछे
२ २	दीक्षातिथि.	चैत्रवदि ८	महावदि ९	मगसिरशुदि १ ५
२ ३	छद्मस्थकाल.	१०००)वर्ष	१ २)वर्ष	१ ४)वर्ष
२ ४	ज्ञाननगरी.	पुरिमताल	अयोध्या	सावत्री
२ ५	ज्ञानतप.	तीनउपवास	दो उपवास	दो उपवास
२ ६	दीक्षावृक्ष	वटवृक्ष	सालवृक्ष	प्रियालवृक्ष
२ ७	ज्ञानतिथि.	फागुणवदि १ १	पोषवदि १ १	कार्त्तिकवदि ५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	८४)	९५)	१०२)
२९	साधुओंकी संख्या	८४०००)	१०००००)	२०००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	३०००००)	३३००००)	३३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	२०६००)	२०४००)	१९८००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	१२६५०)	१२४००)	१२०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	९०००)	९४००)	९६००)
३४	केवलीसंख्या.	२००००)	२२०००)	१५०००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	१२७५०)	१२५५०)	१२१५०)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४७५०)	३७२०)	२१५०)
३७	श्रावकसंख्या.	३५००००)	२९८०००)	२९३०००)
३८	श्राविकासंख्या.	५५४०००)	५४५०००)	६३६०००)
३९	शासनयक्षनाम.	गोमुखयक्ष	महायक्ष	त्रिमुखयक्ष
४०	शासनयक्षणी.	चक्रेश्वरी	अजितबला	दुरितारि
४१	प्रथमगणधरनाम.	पुण्डरीक	सिंहसेन	चारु
४२	प्रथमआर्यानाम.	ब्राह्मी	फाल्गु	श्यामा
४३	मोक्षस्थान.	अष्टपद	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	माघवदि१३	चैत्रशुदि ५	चैत्रशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा.	६ उपवास	एक मास	एक मास
४६	मोक्षआसन.	पद्मासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतर मान.	५०लाखकोटीसा	३०लाखकोटीसा	१०लाखकोटीस
४८	गणनाम.	मानवगण	मानवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	नकुलयोनि	सर्प्पयोनि	सर्प्पयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१००००)	१०००)	१०००)
५१	भवसंख्या.	तेर भव कस्था	तीन भव कस्था	तीन भव कस्था
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	नवमासचारदिन	८मास पच्चीशदि.	नवमास ६दिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	४ श्रीअभिनंदन	५ श्रीसुमतिनाथ	६ श्रीपद्मप्रभ
२	चवणतिथि.	वैशाखशुदि ४	श्रावणशुदि २	माघवदि ६
३	विमाननाम.	जयंतविमान	जयंतविमान	उवरिमग्रैवेयक
४	जन्मनगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
५	जन्मतिथि.	माघशुदि २	वैशाखशुदि ८	कार्त्तिकवदि १२
६	पिताका नाम.	संवरराजा	मेघराजा	श्रीधरराजा
७	माताका नाम.	सिद्धार्था	मंगला	सुसीमा
८	जन्म नक्षत्र.	पुनर्वसु	मघा	चित्रा
९	जन्मराशि.	मिथुन	सिंह	कन्या
१०	लांछनका नाम.	वंदरका	क्रौंचपक्षीका	पद्मकमलका
११	शरीरमान.	३५०)धनुष	३००)धनुष	२५०)धनुष
१२	आयुमान.	५०)लाखपूर्व	४०)लाखपूर्व	३०)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	रक्तवर्ण
१४	पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितनेसाथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	नित्य भक्त	एक उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीर	क्षीर	क्षीर
२०	पारनेका स्थान.	इन्द्रदत्त घरें	पद्म घरें	सोमदेव घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दोदिन (२)	दोदिन (२)	दोदिन (२)
२२	दीक्षातिथि.	माघशुदि १२	वैशाखशुदि ९	कार्त्तिकवदि १३
२३	छद्मस्थकाल.	अठारहवर्ष	वीशवर्ष	छ मास
२४	ज्ञाननगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	चोथ भक्त
२६	दीक्षावृक्ष.	प्रियंगु वृक्ष	साल वृक्ष	छत्र वृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पोषवदि १४	चैत्रशुदि ११	चैत्रशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	११६)	१००)	१०७)
२९	साधुओंकीसंख्या.	३०००००)	३२००००)	३३००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	६३००००)	५३००००)	४२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवत.	१९०००)	१८४००)	१६१००)
३२	वादीओकीसंख्या.	११०००)	१०४००)	९६००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	९८००)	११०००)	१००००)
३४	केवलीसंख्या.	१४०००)	१३०००)	१२०००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	११६५०)	१०४५०)	१०३००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	१५००)	२४००)	२३००)
३७	श्रावकसंख्या	२८८०००)	२८१०००)	२७६०००)
३८	श्राविकासंख्या.	५२७०००)	५१६०००)	५०५०००)
३९	शासन यक्ष नाम.	नायक यक्ष	तुंबरु यक्ष	कुसमय यक्ष
४०	शासनयक्षणीनाम.	कालिका	महाकाली	श्यामा
४१	प्रथमगणधरनाम.	वज्रनाभ	चरम	प्रद्योतन
४२	प्रथमआर्यानाम.	अजिता	काश्यपी	रति
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	वैशाखशुदि८	चैत्रशुदि९	मगसिरवदि १
४५	मोक्षसलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतरमान.	९लाखकोडीसा.	९०हजारकोडीस	९हजारकोडी
४८	गणनाम.	देवगण	राक्षसगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	छागयोनि.	मूषकयोनि	महिषयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१०००)	१०००)	२०८)
५१	भवसंख्या.	तीनभवकीया	तीनभवकीया	तीनभवकीया
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	८मास२८दिन	नवमास६दिन	नवमास६दिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	७श्रीसुपार्श्वनाथ	८ श्रीचंद्रप्रज	९ श्रीसुविधिनाथ
२	चवणतिथि.	जाद्रववदि ८	चैत्रवदि ५	फागणवदि ९
३	विमाननाम.	मज्ञिमग्रैवेयक	विजयंत	आनतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	वणारसी नगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकंदीनगरी
५	जन्मतिथि	ज्येष्ठशुदि १२	पोषवदि १२	मगसिरवदि ५
६	पिताका नाम.	प्रतिष्ठराजा	महासेनराजा	सुग्रीवराजा
७	माताका नाम.	पृथिवीमाता	लक्ष्मणामाता	रामाराणीमाता
८	जन्मनक्षत्र.	विशाखानक्षत्र	अनुराधानक्षत्र	मूलनक्षत्र
९	जन्मराशि	तुलराशि	वृश्चिकराशि	धनराशि
१०	लांछननाम.	साथीयाकालंछन	चंद्रकालंछन	मगरमच्छकालंछन
११	शरीरमान	२००)धनुष	१५०)धनुष	१००)धनुष
१२	आयुमान.	२०)लाखपूर्व	१०)लाखपूर्व	२)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण
१४	पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितनेसाथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी	वनारसीनगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकंदीनगरी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरकाजोजन	क्षीरकाजोजन	क्षीरका जोजन
२०	पारणेका स्थान.	माहेंद्र घरे	सोमदत्त घरे	पुष्प घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	ज्येष्ठशुदि १३	पोषवदि १३	मगसिरवदि ६
२३	छद्मस्थकाल.	नव मास रह्या	त्रण मास रह्या	चार मास रह्या
२४	ज्ञाननगरी	वणारसी नगरी	चंद्रपुरी नगरी	काकंदी नगरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	सरीसवृक्ष	नागवृक्ष	सालीवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	फागणवदि ६	फागणवदि ७	कार्त्तिकशुदि ३

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	९५)गणधर	९३)गणधर	८८)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	३०००००)	२५००००)	२०००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	४३००००)	३८००००)	१२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१५३००)	१४०००)	१३०००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	८४००)	७६००)	६०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	९०००)	८०००)	८४००)
३४	केवलीसंख्या.	११०००)	१००००)	७५००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	९१५०)	८०००)	७५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	२०३०)	२०००)	१५००)
३७	श्रावकसंख्या.	२५७०००)	२५००००)	२२९०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४९३०००)	४७९०००)	४७१०००)
३९	शासनयक्षनाम.	मातंगयक्ष	विजययक्ष	अजिता यक्ष
४०	शासनयक्षणीनाम	शांता	भृकुटी	सुतारिका
४१	प्रथमगणधरनाम.	विदर्भ	दिन्न	वराहक
४२	प्रथमआर्यानाम.	सोमा	सुमना	वारुणी
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	फागणवदि७	भाद्रवावदि७	भाद्रवाशुदि९
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान.	एसोकोडीसागर	९०कोडीसागर	एकोडीसागर
४८	गणनाम	राक्षसगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	मृगयोनि	मृगयोनि	वानरयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५००)	१०००)	१०००)
५१	भवसंख्या.	तीन भव कीया	तीन भव कीया	तीन भव कीया
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिन१९	मासनवदिनसात	मास८दिनछवीस

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहेते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरनामः	१० शीतलनाथ	११ श्रेयांसनाथ	१२ श्रीवासुपूज्य
२	चवणतिथि.	वैशाखवदि ६	ज्येष्ठवदि ६	ज्येष्ठशुदि ए
३	विमाननाम.	अच्युतदेवलोक	अच्युतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	नद्दिलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
५	जन्मतिथि.	महावदि १२	फागणवदि १२	फागणवदि १४
६	पिताका नाम.	दृढरथराजा	विष्णुराजा	वसुपूज्यराजा
७	माताका नाम.	नंदामाता	विष्णुमाता	जयामाता
८	जन्मनक्षत्र.	पूर्वाषाढा	श्रवणनक्षत्र	शतभिषानक्षत्र
ए	जन्मराशि.	धनराशि	मकरराशि	कुंभराशि
०	लांछननाम.	श्रीवत्सकालांछन	गेंडाका लांछन	पाडाका लांछन
१	शरीरमान.	नेवुं धनुष	अंशीधनुष	सीत्तरे धनुष
२	आयुमान.	एकलाख पूर्व	(८४)लाख वर्ष	(७२)लाख वर्ष
३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	लालवर्ण
४	पदवी राजकी.	राजा	राजा	कुमार
५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
६	कितने साथ दीक्षा.	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(६००) साधु
७	दीक्षानगरी.	नद्दिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
ए	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान.	पुनर्वसुके घरें	नंदके घरें	सुनंदके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	महावदि १२	फागणवदि १३	फागणशुदि १५
२३	छद्मस्थकाल.	तीन मासरह्या	दो मासरह्या	एक मासरह्या
२४	ज्ञाननगरी.	नद्दिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	प्रियंगुवृक्ष	तडकवृक्ष	पाडलवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पौषवदि १४	महावदि ३	महाशुदि २

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	८१)गणधर	७६)गणधर	६६)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या.	१०००००	८४०००	७२०००
३०	साधवीयोंकीसंख्या	१००००६	१०३०००	१०००००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१२०००	११०००	१००००
३२	वादीओकीसंख्या.	५८००	५०००	४७००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	७२००	६०००	५४००
३४	केवलीसंख्या.	७०००	६५००	६०००
३५	मनःपर्यवसंख्या.	७५००	६०००	६५००
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	१४००	१३००	१२००
३७	श्रावकसंख्या.	२८९०००	२७९०००	२१५०००
३८	श्राविकासंख्या.	४५८०००	४४८०००	४३६०००
३९	शासन यक्ष नाम.	ब्रह्मायक्ष	जक्षेटयक्ष	कुमारयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	अशोका	मानवी	चंडा
४१	प्रथमगणधरनाम.	नंद	कच्छप	सुभूम
४२	प्रथमआर्यानाम.	सुयशा	धारणी	धरणी
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	चंपापुरी
४४	मोक्षतिथि.	वैशाखवदि २	श्रावणवदि ३	आषाढशुदि १४
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतरमान.	एककोडीसागर	चोपनसागर	त्रीशसागर
४८	गणनाम.	मानवगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	नकुलयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१०००)परिवार	१०००)परिवार	६००)परिवार
५१	भवसंख्या.	तीन भव कर्या	तीन भव कर्या	तीन भव कर्या
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान	मासनव दिन ६	मासनव दिन ६	मास८दिन२०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१३ विमलनाथ	१४ अनंतनाथ	१५ श्रीधर्मनाथ
२	चवणतिथि.	वैशाखशुदि १२	श्रावणवदि ७	वैशाखशुदि ७
३	विमाननाम.	सहस्रारदेवलोक	प्राणतदेवलोक	विजयविमान
४	जन्मनगरी.	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरीनगरी
५	जन्मतिथि.	महाशुदि ३	वैशाखवदि १३	महाशुदि ३
६	पिताका नाम.	कृतवर्मराजा	सिंहसेनराजा	भानुराजा
७	माताका नाम.	श्यामामाता	सुयशामाता	सुव्रतामाता
८	जन्म नक्षत्र.	उत्तराभाद्रपद	रेवतीनक्षत्र	पुष्यनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मीनराशि	मीनराशि	कर्कराशि
१०	लांछनका नाम.	वराहका लांछन	सीचाणाका लां०	वज्र लांछन
११	शरीरमान.	शाठ धनुष	पचाशधनुष	पीस्तालीशधनुष
१२	आयुमान.	शाठलाखवर्ष	त्रीशलाखवर्ष	दशलाखवर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	कंपिलपुर	अयोध्या	रत्नपुरी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान.	जयराजाकेघरें	विजयराजाकेघरें	धनसिंहके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	महाशुदि ४	वैशाखवदि १४	महाशुदि १३
२३	छद्मस्थकाल.	दो मास	तीन वर्ष	दो वर्ष
२४	ज्ञाननगरी	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	जंबूवृक्ष	अशोकवृक्ष	दधिपर्णवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पौषशुदि ६	वैशाखवदि १४	पौषशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते है

२८	गणधरसंख्या.	५७)गणधर	५०)गणधर	४३)गणधर
२९	साधुओंकी संख्या	६८०००)	६६०००)	६४०००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	१००८००)	६२०००)	६२४००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	९०००)	८०००)	७०००)
३२	वादिओंकी संख्या.	३६००)	३२००)	२८००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	४८००)	४३००)	३६००)
३४	केवलीसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	११००)	१,०००)	९००)
३७	श्रावकसंख्या.	२०८०००)	२०६०००)	२०४०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४२४०००)	४१४०००)	४१३०००)
३९	शासनयक्षनाम.	षण्मुखयक्ष	पातालयक्ष	किन्नरयक्ष
४०	शासनयक्षिणी.	विदिता	अंकुशा	कंदर्पा
४१	प्रथमगणधरनाम.	मंदरगणधर	जस गणधर	अरिष्ट
४२	प्रथमआर्यानाम.	धरा	पद्मा	आर्यशिवा
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	आषाढवदि ७	चैत्रशुदि ५	ज्येष्ठशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान.	नवसागरोपम	चारसागरोपम	तीनसागरोप
४८	गणनाम.	मानवगण	देवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	छागयोनि	हस्तियोनि	मंजारयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	६००)	७००)	१०८)
५१	भवसंख्या.	तीनभवकथा	तीनभवकथा	तीनभवकथ
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मास ८ दिन २१	मासनवदिन ८	मास८दिनछवं

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१६ श्रीशांतिनाथ	१७ श्रीकुंथुनाथ	१८ श्रीअरनाथ
२	चवणतिथि.	भाद्रवावदि ७	श्रावणवदि ९	फागणशुदि २
३	विमाननाम.	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
४	जन्मनगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
५	जन्मतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १४	मगशिरशुदि १०
६	पिताका नाम.	विश्वसेन	सूरराजा	सुदर्शन
७	माताका नाम.	अचिराराणी	श्रीराणी	देवीराणी
८	जन्मनक्षत्र.	भरणीनक्षत्र	कृत्तिकानक्षत्र	रेवतीनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मेषराशि	वृषराशि	मीनराशि
१०	लांछननाम.	हरिणका लांछन	बकराका लांछन	नंदावर्त्तकालांछन
११	शरीरमान.	४० धनुष	३५ धनुष	३० धनुष
१२	आयुमान.	एकलाखवर्ष	(९५०००) वर्ष	(८४०००) वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी.	चक्रवर्त्ती	चक्रवर्त्ती	चक्रवर्त्ती
१५	पाणिग्रहण.	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री
१६	कितनेसाथदीक्षा.	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(१०००) साधु
१७	दीक्षानगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारणेका स्थान.	सुमित्रघरें	व्याघ्रसिंहघरें	अपराजितघरे
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	ज्येष्ठवदि १४	चैत्रवदि ५	मगसिरशुदि ११
२३	छद्मस्थकाल.	एकवर्ष	शोलवर्ष	तीनवर्ष
२४	ज्ञाननगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	नंदीवृक्ष	भीलकवृक्ष	आंबाकावृक्ष
२७	ज्ञानतिथिः	पौषशुदि ९	चैत्रशुदि ३	कार्त्तिकशुदि १२

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	२६ गणधर	२५ गणधर	२३ गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	६२०००	६००००	५००
३०	साधवीयोंकीसंख्या	६१६००	६०६००	६००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	६०००	५१००	३३
३२	वादिओंकीसंख्या.	२४००	२०००	१६
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	३०००	२५००	२६
३४	केवलीसंख्या.	४३००	३२००	२८
३५	मनःपर्यवसंख्या.	४०००	३३४०	२५
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	८००	६७०	६
३७	श्रावकसंख्या.	१९००००	१७९०००	१८४०
३८	श्राविकासंख्या.	३९३०००	३८१०००	३७२०
३९	शासनयक्षनाम.	गरुडयक्ष	गंधर्वयक्ष	यक्षेंद्रयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	निर्वाणी	बला	धणा
४१	प्रथमगणधरनाम.	चक्रयुध	सांब	कुंभ
४२	प्रथमआर्यानाम.	सुचि	दामिनी	रक्षिता
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १	मगशिरशुदि
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान.	० ॥ पल्योपम	० । पल्योपम	१०००क्रोड
४८	गणनाम.	मानवगण	राक्षसगण	देवगण
४९	योनिनाम.	हस्तियोनि	छागयोनि	हस्तियोनि
५०	मोक्षपरिवार.	९०० परिवार	१००० परिवार	१००० परि
५१	भवसंख्या.	बारांभव करया	तीनभव करया	तीनभव कर
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिनछ	मासनवदिनपांच	मासनवदिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१९ श्रीमल्लीनाथ	२० श्रीमुनिसुव्रत	२१ श्रीनमीनाथ
२	चवणतिथि.	फागुणशुदि ४	श्रावणशुदि १५	आशोशुदि १५
३	विमाननाम.	जयंतविमान	अपराजितविमा.	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
५	जन्मतिथि.	मगशिरशुदि ११	ज्येष्टवदि ८	श्रावणवदि ८
६	पिताका नाम.	कुंभराजा	सुमित्रराजा	विजयराजा
७	माताका नाम.	प्रभावती	पद्मावती	विप्राराणी
८	जन्मनक्षत्र.	अश्विनीनक्षत्र	श्रवणनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मेषराशि	मकरराशि	मेषराशि
१०	लांछननाम.	कलशका लांछन	कछपका लांछन	कमलका लांछन
११	शरीरमान.	पचीशधनुष	वीशधनुष	पंदरधनुष
१२	आयुमान.	५५०००) वर्ष	३००००)वर्ष	१००००)वर्ष
१३	शरीरका वर्ण	नीलावर्ण	श्यामवर्ण	पीलावर्ण
१४	पदवीराजकी.	कुमार	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	नहीं परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा	३००) साधु	१०००) साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	मिथिलानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
१८	दीक्षातप.	तीन उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान	विश्वसेन	ब्रह्मदत्त	दिन्नकुमार
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	मगशिरशुदि ११	फागणशुदि १२	आषाढवदि ९
२३	छद्मस्थकाल.	एक अहोरात्र	इग्यार मास	नव मास
२४	ज्ञाननगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	अशोकवृक्ष	चंपकवृक्ष	वकुल वृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	मगशिरशुदि ११	फागणवदि १२	मगशिरशुदि ११

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

२८	गणधरसंख्या.	२८)गणधर	१८)गणधर	१७...
२९	साधुओंकीसंख्या	४००००	३००००	२०००,
३०	साधवीयोंकीसंख्या	५५०००	५००००	४१००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	२९००	२०००	५००
३२	वादिओंकीसंख्या.	१४००	१२००	१०
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	२२००	१८००	१६
३४	केवलीसंख्या.	२२००	१८००	१६०
३५	मन.पर्यवसंख्या.	१३५०	१५००	१२५
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	६६८	५००	४५
३७	श्रावकसंख्या.	१८३०००	१७२०००	१७०००
३८	श्राविकासंख्या.	३७००००	३५००००	३४८००
३९	शासनयक्षनाम.	कुवेरयक्ष	वरुणयक्ष	भृकुटीयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम.	धरणप्रिया	नरदत्ता	गंधारी
४१	प्रथमगणधरनाम.	अभीक्षकगणधर	मल्लीगणधर	शुभगणधर
४२	प्रथमआर्यानाम.	बधुमती	पुष्पमती	अनिला
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	फागुणशुदि १२	ज्येष्ठवदि९	वैशाखवदि १
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतरमान.	५४००००००वर्ष	६००००० वर्ष	५०००००)वर्ष
४८	गणनाम.	देवगण	देवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	अश्वयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५०० परिवार	१००० परिवार	१००० परिवार
५१	भवसंख्या.	तीनभवकरणा	तीनभवकरणा	तीनभवकरणा
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागवंशकुल	हरिवंशकुल	इक्ष्वागवंशकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिनसात	मास नव दिन	८मासनवदिनआ

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	२२श्रीनेमिनाथ	२३श्रीपार्श्वनाथ	२४श्रीमहावीर.
२	चवणतिथि.	कार्त्तिकवदि१२	चैत्रवदि४	आषाढशुदि६
३	विमाननाम.	अपराजित	प्राणतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	सौरीपुर	बणारसी	क्षत्रीकुंम
५	जन्मतिथि.	श्रावणशुदि५	पौषवदि१०	चैत्रवदि१३
६	पिताका नाम.	समुद्रविजय	अश्वसेन	सिद्धार्थराजा
७	माताका नाम.	शिवा देवी	वामादेवी	त्रिशलादेवी
८	जन्मनक्षत्र.	चित्रानक्षत्र	विशाखानक्षत्र	उत्तराफाल्गुनी
९	जन्मराशि.	कन्याराशि	तुलराशि	कन्याराशि
१०	लंछननाम.	शंखलंछन	सर्पलंछन	केशरीलंछन
११	शरीरमान.	दश धनुष	नव हाथ	सात हाथ
१२	आयुमान.	हजार वर्ष	शो वर्ष	बहोंत्तेर वर्ष
१३	शरीरका वर्ण	श्यामवर्ण	नीलावर्ण	पीलावर्ण
१४	पदवी राजकी	कुमारपदवी	कुमारपदवी	कुमारपदवी
१५	पाणिग्रहण.	नही परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा	१०००) साधु	३००)साधु	एकाकी दीक्षा
१७	दीक्षानगरी.	सौरीपुर	बणारसी	क्षत्रीकुंम
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान	वरदिन्न	धन्यनाम	बहुलब्राह्मण
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	श्रावणशुदि६	पौषवदि११	मगसिरवदि११
२३	छद्मस्थकाल.	चौपनदिन	चौराशीदिन	बारा वर्ष
२४	ज्ञाननगरी	गिरनार	बणारसी	ऋजुवालुकानदी
२५	ज्ञानतप.	तीन उपवास	तीन उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	वेडसवृक्ष	धातकीवृक्ष	सालवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	आशोवदि७)	चैत्रवदि४	वैशाखशुदि१०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

२८	गणधरसंख्या.	११)गणधर	१०)गणधर	११)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या.	१८०००)	१६०००)	१४०००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	४००००)	३८०००)	३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१५००)	११००)	७००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	८००)	६००)	४००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	१५००)	१०००)	१३००)
३४	केवलीसंख्या.	१५००)	१०००)	७००)
३५	मन.पर्यवसंख्या.	१०००)	७५०)	५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४००)	३५०)	३००)
३७	श्रावकसंख्या.	१६९०००)	१६४०००)	१५९०००)
३८	श्राविकासंख्या.	३३६०००)	३३९०००)	३१८०००)
३९	शासनयक्षनाम.	गोमेधयक्ष	पार्श्वयक्ष	मातंगयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम.	अंबिका	पद्मावती	सिद्धायिका
४१	प्रथमगणधरनाम.	वरदत्त	आर्यदिन्न	इंद्रभूति
४२	प्रथमआर्यानाम.	यक्षदिन्ना	पुष्पचूडा	चंदनबाला
४३	मोक्षस्थान.	गिरनार	समेतशिखर	पावापुरी
४४	मोक्षतिथि.	आषाढशुदि ८	श्रावणशुदि ८	कार्त्तिकवदि ३
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	दोउपवास क
४६	मोक्षआसन.	पद्मासन	काउस्सग्ग	पद्मासन
४७	अंतरमान.	८३७५०)वर्ष	२५०)वर्ष	चर्मजिनेश्वर
४८	गणनाम.	राक्षसगण	राक्षसगण	मानवगण
४९	योनि नाम.	महिषयोनि	मृगयोनि	महिषयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५३६)परिवार	३३)परिवार	एकाकी आप
५१	भवसंख्या.	नव भव कथा	दश भव कथा	सत्तावीशभव
५२	कुलगोत्रनाम.	हरिवंश	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनव दिन ८	मास नव दिन ७	मासनवदिन

इस यंत्रके अनुसार एकैक तीर्थंकरके साथ बावन बावन बोलका संबंध ान लेना. इनमेंसूं मातादिक कितनेक द्वार जो प्रथम न्यारे लिखे गये , सो व्युत्पत्तिके कारणसें लिखे हैं.

इन चोवीश तीर्थंकरोंमें नववां, दशवां, इग्यारवां, बारवां, तेरवां, चौद ां अरु पंदरवां, ए सात तीर्थंकरोके निर्वाण हुवा पीछें इन सातोंका शास जो द्वादशांग वाणीरूप शास्त्र अरु साधु तथा साधवी, श्रावक, औ ाविका. ए चतुर्विध श्रीसंघरूप तीर्थ सो कितनेक काल तांइ प्रवृत्त हो र पीछेसें व्यवछेद गया, तब तो भारत वर्षमें जैन मतका नामभी न र ा था, तबहीसें अनेक मत मतांतर और कुशास्त्रोंकी प्रायें प्रवृत्ति भयी ो अबतांइ होतीही चली जाती है, बहुत लोकोने स्वकपोल कल्पित शा ्र बना करके पूर्व मुनि, वा ऋषि, वा ईश्वरप्रणीत प्रसिद्ध करे है औसे ती सो त्रेशठ मत प्रवृत्त कर दीये अरु आर्य चारों वेद व्यवछेद होगये अ नवीन वेद बना लीये उन नवीनोकोंभी कइ वार लोकोने नवी नवी चनासें बना कर उलट पुलट कर दीये जो कुछ बन बनाके शेष रहे उ ाकीभी अनेक तरेंके भाष्य, टीका, दीपिका रच कर अर्थोंकी गड बड कर ीनी सो अबतांइ करतेही चले जाते हैं; ए सर्व स्वरूप जहां वेदोंकी उत्प त्ते लिखेंगे तहां स्पष्ट करके लिखेंगे वेद जो नाम है सोतो बहुत प्राचीन ालसे है, अरु जिन पुस्तकोंका नाम वेद अब प्रसिद्ध है सो पुस्तक प्राची नहीं है, इसका प्रमाण आगें चलके लिखेंगे ॥ इति श्री तपगछीये मुनि श्री बुद्धिविजय शिष्यमुनि आनंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे प्रथमः परिछेदः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयः परिछेद प्रारंभः ॥

अब दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप लिखते हैं, कुदेव उसकुं कहते हैं जो भगवान् तो नही परतु लोकोंने अपनी बुद्धिसें परमेश्वरका आरोप कर लीया है सो कुदेवका स्वरूप तो उक्त देव स्वरूपसें विपर्यय सर्व बुद्धि मान् आपही जान लेंगे, परतु विस्तारसें लिखाही जो समझ सके है ति नोंके तांई लिखते है.

॥श्लोक॥ ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादि, रागाद्यंककलंकिताः ॥ निग्रहानुग्रहपरा,

स्तेदेवास्युर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाटयाट्टहाससंगीता, द्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥ ल-
म्भयेयुः पदं शांतं, प्रपन्नान्प्राणिनः कथं ॥२॥ इति योगशास्त्रे ॥ अस्यार्थः
जिस देवके पास स्त्री होवे तथा तिसकी प्रतिमाके पास स्त्री होवे क्युंकि
जैसा पुरुष होता है उसकी मूर्त्तिभी प्राये वैसीही होती है. आज काल
सर्व चित्रोमें वैसाही देखनेमें आता है, सो मूर्त्ति द्वारा देवकाभी स्वरूप प्र-
गट हो जाता है इस कारणें मूर्त्ति द्वारा तथा मतावलंबी पुरुषोंके यथानु-
सार समझ लेनां तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होवे
तथा अक्षसूत्र, जपमाला, आदि शब्दसें कमंमल प्रमुख होवे, फेर कैसा वो
देव होवे? राग द्वेषादि दूषणोंका जिनमें चिन्ह होवे अरु स्त्रीकूं जो पास
रखेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसें भोग करनेवाला होगा. इससें अधिक
रागी होणेका दूसरा कौनसा चिन्ह है? इसी काम रागके वश होकर कुदे-
वोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, अरु पुत्रकी वधू प्रमुखसें अनेक
कामक्रीडा कुचेष्टा करी है

अब जो पुरुष मात्र होकर परस्त्री गमन करता है उसकूं आज कालके
मतावलंबीयोमेंसें कोइभी अच्छा नहीं कहता, तो फेर परमेश्वर हो कर जो
परस्त्रीसे काम कुचेष्टा करें, तो उसके कुदेव होनेमें कोइभी बुद्धिमान् शंका
नहीं कर सक्ता; जो आपणी स्त्रीसे काम सेवन करता है औ परस्त्रीका त्यागी
है उसकूंभी परस्त्रीका त्यागी, धर्मी गृहस्थ, लोक कह सक्ते हैं, परतु उसको मु-
नि वा ऋषि वा ईश्वर कभी नहीं कहेंगे क्युंकि जो आपही कामाग्निके कुंड
में प्रज्ज्वलित हो रहा है तिसमें कभी ईश्वरता नहीं हो सक्ती, इस हेतुसें
जो रागरूप चिन्ह करी सयुक्त है, सो कुदेव है. पुनः जो द्वेषके चिन्ह
करी संयुक्त है वोभी कुदेव है द्वेषके चिन्ह शस्त्रादि धारण करणां क्युं के जो
शस्त्र, धनुष, चक्र, त्रिशूल प्रमुख रखेगा उसने अवश्य किसी वैरीकु मारणा
है, नहीतो शस्त्र रखणेसे क्या प्रयोजन है? तो जिसकूं वैर विरोध लगा हुया है
सो परमेश्वर नहीं हो सक्ता है; जो ढाल वा खड्ग रखेगा वह भयकरी आ-
त्प संयुक्त होगा अरु जो आप ही भय संयुक्त है तो उसकी सेवा करनेसें
हम निर्भय कैसें हो सके है? इस हेतुसें द्वेष संयुक्तको कौन बुद्धिमान् प-
रमेश्वर कह सक्ता है? परमेश्वर जो है सो तो वीतराग है अरु जो राग
द्वेष करी संयुक्त है सो कुदेव है.

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणिकियों बिना भी जपकी संख्या कर सक्ता, अरु जो जपकों करता है, सोभी अपणेसें उच्चका करता है, तो परमेश्व रसें उच्च कौन है जिसका वो जप करता है? इस हेतुसें जो मालासें जप करता है सो कुदेव है.

तथा जो शरीरकूं भस्म लगाता है, औ धूणी तापता है, नंगा होकर कुचेष्टा करता है; भांग, अफीम, धतूरा, मदिरा प्रमुख पीता है तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है; वा हस्ती, ऊंट, बैल, गर्दभ प्रमुखकी जो असवारी करता है सोभी कुदेव है, क्युंकि जो शरीरकों भस्म लगाता है, अरु जो धूणी तापता है सो किसी वस्तुकी इच्छा वाला है, सो जिसका अभीतक मनोरथ पूरा नही हूआ सो परमेश्वर नहीं वो तो कुदेव है.

अरु जो नशें, अमलकी चीजें खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनंद और हर्ष ढूंढता है, अरु परमेश्वर तो सदा आनंद औ सुखरूप है, परमेश्वरमें वो कौनसा आनंद नही था जो नशा पीनेसें उसकूं मिलजाता है? इस हेतुसें नशा पीने वाला अरु मांसादि अशुद्ध आहार करने वाला जो है सो कुदेव है.

और जो असवारी है सो परजीवोंकूं पीडाका कारण है, अरु परमेश्वर तो दयालु है, सो पर जीवोंकूं पीडा कैसें देवे? इस हेतुसें जो असवारी करे, सो कुदेव है.

और जो कमंडल रखता है, सो शुचि होणेके कारण रखता है अरु परमेश्वर तो सदाही पवित्र है उनकूं कमंडलसें क्या काम है?

यत. ॥ श्लोक ॥ स्त्रीसंगः काममाचष्टे, द्वेषं चायुधसंग्रहः ॥ व्यामोहं चाक्षसूत्रादि, रशौचं च कमंडलुः ॥ १ ॥ अर्थ.—स्त्रीका जो संग है सो कामकूं कहता है, शस्त्र जो है सो द्वेषकूं कहता है, जपमाला जो है सो व्यामोहकूं कहती है. अरु कमंडलु जो है सो अशुचिपणेकूं कहता है तथा निग्रह जो (जिसके उपर क्रोध करे) तिसकूं वध,बंधन, मारण, रोगी, शोकी. अतीष्ट वियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, क्षीण करे, सोभी कुदेव है और जो जिसके उपरि अनुग्रह (तुष्टमान) होवे तिसकूं इंद्र, चक्रवर्त्ती, वलदेव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोकों राज्यादि पदवीका वर देवे तथा

सुंदर स्वर्गसदृश स्त्रीका संयोग, पुत्र परिवारादिकोंका संयोग जो करे, सो देव है, क्युंकि जो औसा रागी द्वेषी है वो मोक्षके तांइ कभी नहीं हो सक्ता सो तो भूत, प्रेत, पिशाचादिकोंकी तरे क्रीडाप्रिय देवता मात्र है. औसा देव अपणे सेवकांकू कैसें मोक्ष दे सक्ता है? आपही यदि वो रागी, द्वेषी, और परतंत्र है, तो सेवकोंका क्या कार्य सार सक्ता है? इस हेतुसें वोभी कुदेव है.

पुनः कुदेवके लक्षण लिखते है जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनो रसमें मग्न है वाद्यंत्र (बाजा) बजाता है अरु आप नृत्य करता है तथा औरोंको नचाता है, आप हसता अरु कूदता है, विषयी रागोंको गाता है अरु संगीत बोलता है इत्यादिक मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता है स्वभाव जिसका अस्थिर हो रहा है, जो आपही औसा है तो फेर सेवकोंकू शांतिपद कैसें प्राप्त कर सक्ता है? जैसें एरंमवृक्ष कल्पवृक्षकी तरे इच्छा नहीं पूर सक्ता, किसी मूढ पुरुषने जो एरंमकूं कल्पवृक्ष मान लीया तो क्या वो कल्पवृक्षका सारा काम दे सक्ता है? औसेंही किसी मिथ्यादृष्टि पुरुषने जो कुदेवकूं परमेश्वर मान लीया तो क्या वो परमेश्वर हो सक्ता है? कभी नही हो सक्ता. इसी वास्ते प्रथम परिछेदमे जो लक्षण परमेश्वरके लिखे है तिनही लक्षणों वाला परमेश्वर देव है शेष सर्व कुदेव है.

प्रश्नः—हमने तो औसा सुण रक्खा है जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते. उनका जो मत है, सो अनीश्वरीय है और तुमने तो प्रथम परिछेदमें कइ जगे अर्हंत भगवंत परमेश्वर लिखा है अरु प्रथम परिछेद तो भगवान्हीके स्वरूपकथनमें समाप्त किया है, यह कैसे संभव हो सक्ता है?

उत्तरः—हे भव्य! जे केइ कहते हैं कि जैनमतावलंबी ईश्वरको नहीं मानते औसा कहणा उनका मिथ्या है उनोंने कभी जैनमतका शास्त्र पढा वा सुना न होगा तथा किसी बुद्धिमान् जैनीका संसर्गभी न करा होगा, जेकर जैनमतका शास्त्र पढा, वा सुना होता तो कभी औसा न कहता, जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते. जेकर जैनी ईश्वरको न मानते तो यह जो श्लोक लिखे जाते है, वो किसकी स्तुतिके है ॥श्लोक॥ त्वामव्ययंविभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं. ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम् ॥ योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ॥१॥ अस्यार्थः—हे जिन! (संतः) सत्पुरुष (त्वां) तेरे प्रति (अव्ययं) अव्यय (प्रवदंति) कहते है अव्यय अपचयकू जो न प्राप्त होवे

सो द्रव्यार्थ नयके मतसें अव्यय तीनो कालोंमें एक स्वरूप है. विज्ञातिः–शोजता है परमेश्वर पणा करी सो (विज्ञु) अथवा विज्ञवतिः–समर्थ होवे कर्मोन्मूलन करके सो (विज्ञु) अथवा इंद्रादिक देवताओंका जो स्वामी सो विज्ञु, सत्पुरुष इसवास्ते तुजकूं विज्ञु कहते है. पुनः कैसें तुजकुं? (अचिंत्यं) अध्यात्म ज्ञानीजी तुजकूं चिंतवन करनेकूं समर्थ नही फेर कैसें तुजकूं? (असंख्यं) गुणाकी संख्या (गिणती) नही कि इतने गुण है जगवान्में इस हेतुसें सत्पुरुष तुजकूं असंख्य कहते है. फेर कैसें तुजकूं? (आद्यं) आदिमें जो होवे सर्व लोक व्यवहारके प्रवर्त्तावणेसें, सत तेरेकूं आद्य कहते है, अथवा अपने तीर्थकी आदि करणेसें आद्यं. फेर कैसें तुजकूं? (ब्रह्माणं) अनंत आनंद करी जो सर्वसें अधिक वृद्धि वाला है सो ब्रह्म, सत्पुरुष तुजकूं ब्रह्म कहते है. फेर कैसें तुजकूं? (ईश्वरं) सर्व देवताओंमें गकुर कहते है. फेर कैसें तुजकूं? (अनंत) अनंत ज्ञान दर्शनके योगते अनंत अथवा नही है अंत जिसका सो अनंत कहते है अथवा अनंत चारों करी संयुक्त १ अनतज्ञान, २ अनंतवल, ३ अनंतसुख, ४ अनंतजीवन, सो अनंत कहते हैं. फेर कैसे तुजकूं? (अनंगकेतुं) कामदेवकूं केतुके उदय समान नाशकारक सो अनंगकेतु कहेते है अथवा नही है अंग औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर रूपी चिन्ह जिसके सो अनंग केतु. जविष्य नैगमके मत करी कहते है. फेर कैसे तुजकूं? (योगीश्वरं) योगी जो चार ज्ञानके धरनारे तिनोंका ईश्वर कहते है फिर कैसे तुजकूं? (विदितयोगं) जाण्या है सम्यक् ज्ञानादिरूप जिसने अथवा योगो (ध्यानादि जाण्या है जिसने) अथवा विशेष करकें दितः खंमित कीया है कर्मका संयोग जीवके साथ जिसने सो विदितयोग कहते हैं, फेर कैसे तुजकूं? (अनेकं) ज्ञान करके सर्वगत होनेसें अथवा अनेक सिद्धांके एकत्र रहनेसें अथवा गुण पर्यायकी अपेक्षा करके अथवा रूपनादि व्यक्ति जेदसे अनेक कहते हैं फिर कैसे तुजकूं? (एकं) अद्वितीय उत्तमोत्तम अथवा जीव द्रव्यापेक्ष्या एक कहते हैं. फेर कैसे तुजकूं? (ज्ञानस्वरूपं) ज्ञान क्षायिक केवल है स्वरूप जिसका. सो ज्ञानस्वरूप कहते है. फेर कैसे तुजकूं? (अमलं) नही है अष्टादश दोपरूप मल जिसके सो अमल कहते है, ए पूर्वोक्त पदरा विशेपण ईश्वरके मतांतरोमें प्रसिद्ध है.

तथा श्लोक "बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोसि भु
त्रयशंकरत्वात् ॥ धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भग
पुरुषोत्तमोसि ॥ २ ॥ अर्थः—हे विबुधार्चित! विबुध जो देवताओं क
पूजित्ता सातो सुगतामेसें कोइएक सुगत, तिसकूं बुद्ध कहीयें, सो बुद्ध
है,किस कारणसे? धर्मबुद्धि प्रगट करणेसे फेर तूं शंकर है किस कार
तीन भुवनमें शं जो सुख करे सो शंकर. हे धीर! त्व धाता (ब्रह्मा है)कि
कारणसे ? शिव मोक्ष तिसका मार्ग जो ज्ञान, दर्शन,चारित्र रूप तिस
विधि करणेसे तूं विधाता है. हे भगवन्! तूं व्यक्त प्रगट पुरुषोमें उत्तम
॥२॥ इत्यादि लाखों श्लोक परमेश्वरकी स्तुतिके है, जे कर जैनी ईश्वर
न मानते तो इन श्लोकोसें उनोने किसकी स्तुति करी है? इस कार
जो कहते है कि जैनी लोग ईश्वरकूं नही मानते, वे प्रत्यक्ष मृषावादी

प्रश्नः—बहुत अच्छा हूआ जो मेरे मनका संशय दूर हूआ परंतु
बातका संशय मेरे मनमें है जो तुमने ईश्वर तो मान्या,परतु जगत्का क
ईश्वर जैनमतमें तुमनें मान्या है वा नहीं ?

उत्तरः—हे भव्य! जगत्का कर्त्ता जो ईश्वर सिद्ध हो जावें तो जैनी
नहीं माने? परतु सर्व वस्तुका कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं हो

प्रश्नः—जे कर किसी प्रमाणसे ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध नहीं
ता तो (१) नवीन वेदांती, (२) नैयायिक, (३) वैशेषिक, (४) पातंज
(५) नवीन सांख्य, (६) ईसाइ, (७) मुसलमान प्रमुख अनेक मताव
पुरुष ईश्वरको जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता मानते है. क्या इन
कोइभी ईश्वरकूं जगत्का कर्त्तापणामें निषेध करनेवाला समज वार न भ

उत्तर.—हे भव्य! (१) जैन, (२) बौद्ध, (३) प्राचीन सांख्य, (४)
वैमीमांसाकारक जैमनीय मुनिके संप्रदायी भट्ट प्रभाकर इत्यादिक अ
मतावलंबीयोमेंसें कोइभी समजवार न भया जो ईश्वरकूं जगत्का क
स्थापन करता.

प्रश्नः—जैन बौद्ध अरु प्राचीन सांख्यादि उक्त मतावलंबी सर्व अज्ञ
हूवे है इस हेतुसें ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता नही मानते ?

उत्तर.—नवीन वेदांती, नैयायिक अरु वैशेषिकादि यहभी सर्व अज्ञ
हूवे है, जो इश्वकूर जगत्का कर्त्ता मानते है.

प्रश्नः– ईश्वर जगत्का वा सर्व वस्तुका कर्त्ता है, अैसें जो मानियें, तो
ा दूषण है?

उत्तरः–ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेसें बहुत
षण आते हैं.

प्रश्नः–तुम तो अपूर्व वात सुणाते हो. हमने तो कदेइ नहीं सुना जो ईश्व
ंू जगत् कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेमें दूपण आता है? अब तो आ
कूं कहनां चाहियें जो जगत्का कर्त्ता माननेसें ईश्वरकूं क्या दूपण आता है?

उत्तर.–हे नव्य! प्रथम तुम यह वात कहो की तुम कोणसा ईश्वर जगत्
ा कर्त्ता मानते हो?

प्रश्नः–क्या ईश्वरनी कइक तरेके है, जो आप हमसें अैसा पूछते हो?

उत्तरः–क्या तुम नही जानते जो दो तरेंके ईश्वर मतावलंबीयोंने माने
? एक तो जगदुत्पत्तिसें पहिला केवल एकही ईश्वर था जगत्का उपादा
ादिक कोइनी कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी, एकही शुद्ध बुद्ध सच्चिदानं
ादि स्वरूप युक्त परमेश्वर था. एकैक जीवोंके तो अैसा ईश्वर, जगत् वा
र्व वस्तुका रचने वाला अभिमत है, अोर दूसरोंने तो (१) जीव, (२)
रमाणु, (३) आकाश, (४) काल, (५) दिशादि सामग्री वाला, एतावता
क तो ईश्वर उक्त विशेषण संयुक्त, अोर दूसरी सामग्री जिससें जगत् रचा
ावे, ए दोनो वस्तु अनादि हैं, एतावता एक तो ईश्वर अोर दूसरी जगत्
त्पन्न करणेकी सामग्री. ए दोनो किसीने वणाये नहीं अैसे माने है, तुम
ूं इन दोनो मतोमेंसूं कोनसा मत सम्मत है?

पूर्वपक्षः–हमकूं तो प्रथम मत सम्मत है, क्युं के वेदादि शास्त्रोंमें अैसा
लिखा है. "एतस्मादात्मनआकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्ने
ापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओपधयः ओषधिभ्योऽन्नं अन्नाद्रेतः रेतसः
ुरुषः सवा एषपुरुषोन्नरसमयः" यह तैत्तिरीय शाखाकी श्रुति है, तथा "स
ेव सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीय तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति" यह श्रु
ति छांदोग्य उपनिषद्की है, तथा "नासदासीन्नो सदासीत्तदानीन्नासीद्रजोन
व्योमपरोयत् किमावरीव कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीर" यह श्रु
ति ऋग्वेदकी है, "आत्मा वा इदमग्रआसीन्नान्यत् किंचिन्मिपत् स ईक्षत लो
कान्नुसृजइति" यह ऐत्तरेय ब्राह्मणकी श्रुति है. इत्यादि अनेक श्रुतियोंसे सिद्ध

होता है, जो सृष्टिसें पहेलें एक केवल ईश्वरही था, न जगत् था श्रे
जगत्का कारण था, एकही ईश्वर शुद्ध स्वरूप था, तथा ईसाइ वा मुस
न मतवालेभी ऐसे ही मानते है. इस हेतुसे हम प्रथम पक्ष मानते

उत्तरः—हे पूर्वपक्षी! तुमारा यह कहनां ईश्वरकूं वडा कलंकित करत

पूर्वपक्ष.—जगत्के रचनेसें ईश्वरकूं क्या कलंक प्राप्त होता है?

उत्तरपक्ष—प्रथम तो जगत्का उपादान कारण है नहीं, इस हेतु
गत् कदेभी उत्पन्न नहीं हो सक्ता, जिसका उपादान कारण नहीं
कार्य कदापि उत्पन्न नहीं हो सक्ता; जेसें गधेका सींग.

पूर्वपक्ष.—ईश्वरनें अपणी शक्ति, नामांतर कुदरतसें जगत्कूं रचा
श्वरकी जो शक्ति है, सोइ उपादान कारन है.

उत्तरपक्षः—ईश्वरकी जो शक्ति है सो ईश्वरसें भिन्न है, वा अभिन्न
जे कर कहोगे भिन्न है, तो फेर जड है वा चेतन है? जेकर कहो
है. तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जेकर कहोगे नित्य है, तो फे
जो तुमारा कहनां था जो सृष्टिसे पहिलें एक केवल ईश्वर था दूसरा
नहीं था; यह ऐसा हुवाकि जेसे उन्मत्तोंका वचन, अपने ही वचन
पही जूठ करा. जे कर कहोगे अनित्य है, तो फेर उसका उपादान क
और ईश्वरकी शक्ति हुइ तिस शक्तिकी उत्पन्न करणे वाली और शक्ति
इसी तरे करता अनवस्थादूषण आता है, जे कर कहोगे चेतन है, तो
नित्य है, वा अनित्य है? दोनोही पक्षोमें पूर्वोक्त अपरापरस्ववचनव
अरु अनवस्था दूषण है, जेकर कहोगे ईश्वर शक्ति ईश्वरसें अभिन्न है
सर्व वस्तुकों ईश्वरही कहनां चाहियें, जब सर्व वस्तु ईश्वरही हो ग
फेर अच्छा और बुरा, नरक और स्वर्ग, पुण्य और पाप, धर्म और अ
ऊच नीच. रंक राजा, सुशील और दुःशील, राजा और प्रजा, चोर
नाथ, (संत) सुखी और दुःखी. इत्यादिक सर्व कुछ ईश्वरही आप बना
तो ईश्वरने जगत् क्या रचा, आपही आपणा सत्तानाश कर लीया, ए
कलंक ईश्वरकूं लगता है. (२) तथा जब ईश्वर आपही सब कुछ बन
तो फेर वेदादिक शास्त्र क्युं बनाये? अरु उनके पढणेसे क्या फल
ए दूसरा कलंक. (३) तथा जब वेदादिक बणाये तब आपणे आपकूं
होणे वास्ते पहिलें तो अज्ञानी था ए तीसरा कलंक.(४) तथा शुद्ध

ुद्ध बना, जो जगत्‌रूप होणेकी मेहनत करी, सो निष्फल हुई, ए चौथा कलंक. (५) कोइ वस्तु जगत्‌में अछी वा बूरी नहीं ए पांचवा कलंक. ६) क्युं आपणे आपकूं संकटमे माला? ए छठा कलंक. इत्यादि अनेक कलंक तुम ईश्वरकूं लगाते हो.

पूर्वपक्षः—ईश्वर सर्व शक्तिमान् है, इस हेतुसें ईश्वर, विनाही उपादान कारणसें जगत् रच सक्ता है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहनां है सो प्यारी नार्यो, वा मित्र मा ेगा परंतु प्रेक्षावान् कोइभी नहीं मानेगा, क्युंकि इस तुमारे कहनेमें को ्भी प्रमाण नही परंतु जिसका उपादान कारण नही वो कार्य कदेभी ा हो सक्ता. जैसे गधेका सींग, ऐसा प्रमाण तुमारे कहनेकूं बाधने वाला ो है, परंतु साधने वाला कोइभी नही, जेकर हठ करके स्वकपोलकल्पि ाहीकूं मानोगे तो परीक्षा वालोकी पंक्तिमें कदेभी नही गिने जाउगे. त ्या इस तुमारे कहनेमें इतरेतराश्रय दूषणरूप वज्रका प्रहार पडता है, ाथा सृष्टिसें पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध, एक ईश्वर िद्ध हो जावे तो सर्वशक्तिमान् सिद्ध होवे, जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध हो ो तो सृष्टिसे पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर िद्ध होवे, इन दोनोमेंसूं जब तक एक सिद्ध न होवे तब तक दूसरा कभी िद्ध नही होता, तथा इस तुमारे कहनेमें चक्रकदूषण होता है, सृष्टि ा कर्त्ता सिद्ध होवे, तदा सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे. जब सर्व शक्तिमान् िद्ध होवे तब सृष्टिसे पहिलें सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे. तब सृष्टिकर्त्ता सिद्ध होवे. ऐसे प्रगट, चक्रक दूषण है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरतो प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है, फेर तुम उसकू सृष्टिकर्त्ता क्युं नही मानते?

उत्तरपक्षः—जे कर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध होवे, तो किसीकूंभी अमान्य न होवे, औ तुमारा हमारा ईश्वर विषयिक विवाद कभी नही होवे, क्युंकि प्रत्यक्षमें विवाद नहीं होता है, तथा ईश्वरका प्रत्य क्ष देखणाभी तुमारे वेद मंत्रसे विरुद्ध है. तथा च वेदमंत्र. ॥ अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः शृणोत्यकर्णः॥ स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता,

तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ इस मंत्रसें कहता है ईश्वरकों जानने वा कोइभी नही.

पूर्वपक्ष.–बिना कर्त्ताके जगत् कैसें हो गया? इस अनुमान प्रमा ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होता है, सो तुम क्युं नही मानते?

उत्तरपक्ष.–इस तुमारे अनुमानकूं दूसरे ईश्वरपक्षमे खंडन करेंगे, उक्त प्रकारसें एक केवल उपादानादि सामग्री रहित, ऐसे सृष्टिसें पहि परमेश्वर नहीं सिद्ध हुआ, तोभी हम आगें चलते है कि जब ईश्वरने जीवोंकूं रचे थे तब (१) निर्मल रचे थे? (२) पुण्य वाले रचे थे? (३ पाप वाले रचे थे? (४) मिश्रित पुण्य पाप अर्धो अर्द्ध वाले रचे थे? (५ पुण्य थोडा पापाधिक ऐसे रचे थें? (६) किंवा पुण्याधिक पाप थोडे वा रचे थे? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करो गे तो जगत्में सर्व जीव निर्मल चाहियें, फेर वेदादि शास्त्रों द्वारा उनकूं उपदेश करना वृथा है, अरु वे दि शास्त्रोंका कर्त्ताभी मूढ सिद्ध हो जावेगा, क्युंकि जब आगेंही जीव र्मल हैं तो उसके वास्ते शास्त्र काहेकूं रचने थे, जो वस्त्र निर्मल हो है तिसकूं कोइभी बुद्धिमान् धोता नही, जे कर धोवे तो महामूढ इस कारणसे जो निर्मल जीवोंके उपदेश निमित्त शास्त्र रचे सोभी मूढ

पूर्वपक्ष.–ईश्वरनेंतो जीवोंकूं शुद्ध निर्मल एतावता अच्छाही बना था, परंतु जीवोंने अपणी इच्छासे अच्छा वा बुरा (भूंडा) काम कर ली है, इसमें ईश्वरकूं कुछ दोष नही?

उत्तर पक्ष.–जब ईश्वरने जीवोंमें अच्छा वा बुरा काम करणेकी शक्ति हीं रची. तो फेर जीवोंकूं पुण्य वा पाप करणेकी शक्ति कहांसें आई?

पूर्वपक्ष.–शक्तियां तो जीवमे सर्व ईश्वरनेही रचियां है. परंतु जीव बुरा काम करणेमें प्रवृत्त नहीं करता, बुरे कामोंमें जीव आपही प्रवृत्त जाता है,जैसें कोइ गृहस्थने अपणे प्रिय पुत्र बालककूं खेलणे वास्ते खिलोना दीया है, परतु जो वो बालक, उस खिलोनेसें आपणी अ निकाल लेवे तो माता पिताका क्या दूषण है? तैसेंही जीवोंकूं ईश्वरने हाथ, पग, प्रमुख वस्तु दइ है. सो नित्य केवल धर्म करणेके कारणे हैं. पीछें जो जीव उनसें अपणी इच्छासें पाप कर लेवे तो इसमें ईश्व क्या दूषण है?

उत्तरपक्षः—हे भव्य ! यह जो तुमने बालकका दृष्टांत दीया सो यथा र्थ नहीं, क्युंकि बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान नहीं है, जो हम इस बालकके खेलणे वास्ते खिलोना देते है, सो हमारा बालक इस खिलो नेसे अपणी आंख फोड लेगा जेकर बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान होता जो हमारा बालक, इस खिलोनेसे अपणी आंख फोड लेगा तो माता पिता कभी उसके हाथमें खिलोनां न देते, जे कर जान करकें देवें तो वो माता पिता नही किंतु ? उस बालकके परम शत्रु है, इसीतरें ईश्वर, माता पिता तुल्य है अरु तुम हम उसके बालक है,जे कर ईश्वर जानता था जो में इ सकूं रचा इसके तांइ हाथ, पग, मन. इंद्रियादि सामग्री दीनी है,इस जीवने इस सामग्रीसें बहुत पाप करकें नरक जाना है तो फेर ईश्वरने उस जीवकूं क्युं रचा ? जे कर कहोगे ईश्वर यह बात नही जानता था जो मेरी धर्मकरणेकी दीनी हुइ सामग्रीसें पाप करके यह जीव नरक जावेगा, तो फेर ईश्वर तु मारे कहनेहीसे अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध होता है. जेकर कहोगे ईश्वर जान ता था जो यह जीव मेरी देइ हुइ सामग्रीसें पाप करकें नरकें जायगा तो फेर हमारा रचने वाला ईश्वर, परम शत्रु हुआ के नहीं ? बिना प्रयोजन एक जीवोंकूं सामग्री द्वारा पाप करायके क्युं उनकूं नरकमें डाले ? जब साम ग्रीद्वारा प्रथम पाप कराना और पीछें नरकपात करनेका दंड देना इस तुमारे कहनेसे ईश्वरसें अधिक अन्यायी कोइ नही क्युं के उस जीवकूं प्रथम तो रचा, फेर नरकमें डाला, बस येही तुमने ईश्वरकूं अन्यायी, असर्वज्ञ, निर्द यी, अज्ञानी, वृथा मेहनतीरूप कलंक दीने, इस वास्ते निर्मल जीव ईश्वर ने नहीं रचा. ए प्रथम पक्षोत्तर.

अथ दूसरा पक्षोत्तरः—जेकर कहोगे ईश्वरने पुण्य वालेही जीव रचे है तो यहभी कहनां तुमारा मिथ्या है, क्युंकि जब पुण्यही वाले सर्व जीव थे तो गर्भमेंही अंधे, लंगडे, लूले, बहिरे होनां, भूंडा रूप,नीच वा निर्धन के कुलमें उत्पन्न होना, जाव जीव दुःखी रहनां, खाने पीनेकों पूरा न मि लना, महा कष्ट कारक मेहनत करकें पेट भरनां,यह पुण्यके उदयसें नहीं हो सक्के, अरु बिनाही करे पुंण्यके जीवोंकू ईश्वरने पुण्य क्यु लगा दीया ? जेकर बिनाही कर्या जीवोंकूं ईश्वरने पुण्य लगा दीया तो ऐसे बिनाही धर्म कर्या जीवोंकं स्वर्ग तथा मोक्ष क्यं नहीं पहंचाय देता ? आपतो

देश करायकें, भूखें मारकें, तृष्णा छुडायकें, राग द्वेष मिटायकें; घर बा॑ छुडायकें, साधु बनायकें, टुकडे मंगायकें, दया, दम, दान, सत्यवचन, चो रीका त्याग, स्त्रीका त्याग, इत्यादिक अनेक साधन करायकें, पीछे स्वर्ग मो क्षमे पहुंचानां, यह संकट ईश्वरने व्यर्थ खडा करकें क्युं जीवोंकूं दुःख दीन इस बातसें तो असा प्रतीत होता है, जो ईश्वरकूं कुछभी समझ नहीं. इति

अथ तृतीय पक्षोत्तरः—जे कर कहोगे ईश्वरने पाप संयुक्त ही जीव र है, तो फेर विनाही जीवोंके कह्यां पाप लगा दीया तो फेर जब ईश्वर ही हमारा सत्तानाश करा, तो हम किस आगें विनति करे जो बिना गुन ह हमकूं यह ईश्वर पाप लगाता है, तुम इसकूं मने करो, जो विनाही करे पाप लगा देवे, असे अन्यायी ईश्वरकातो कभी नामही न लेनां चाहिये. तथा जेकर ईश्वरने पाप संयुक्तही सर्व जीव रचे है, तो राजा, आमात्य (मंत्री) श्रेष्ठ, सेनापति, धनवानोके घरमे उत्पन्न होनां, नीरोगकाय, सुंदर रूप, सुंदर सहनन, घरमे आदर, बाहिर यशोकीर्त्ति, पंचिंद्रियविषय भो ग, इत्यादिक सामग्री पापसें कदेइ संभव नहीं होती. इस वास्ते जीवोंकू केवल पापवान् ईश्वरने नहीं रचे ॥ इति तृतीय पक्षोत्तर ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ पक्षोत्तरः—जेकर कहोगे अर्द्धोऽर्द्ध पुण्य पाप वाले जीव ई श्वरने रचे है यह पक्षभी अच्छा नहीं, क्युंकि आधे सुखी आधे दुःखी असे भी सर्व जीव देखनेमें नहीं आते ॥ इति चतुर्थपक्षोत्तर ॥

अथ पंचमपक्षोत्तरः—पांचवा पक्ष सोभी ठीक नहीं, सुख थोडा और दुःख बहुत असेभी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते, परंतु सुख बहुत अरु दुःख अल्प, असें बहुत जीव देखणेमे आते है ॥ इति पंचमपक्षोत्तर ॥

अथ षष्ठ पक्षोत्तर.—छठा पक्षभी समीचीन नहीं, सुख बहुत अरु दुःख थोडा असेंभी सर्व जीव देखणेमे नहीं आते है, दुःख बहुत अरु सुख अल्प, असे बहुत जीव देखणेमें आते है. इन हेतुओंसें ईश्वर जीवोंकू कि सी व्यवस्था वाला नहीं रच सका, तो फेर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता क्यु कर सिद्ध हो सका है? कभी नहीं हो सका. तथा जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकूं क्या दुःख था? अरु जब सृष्टि रची तब क्या सुख हुया?

पूर्वपक्ष—ईश्वर तो सदाही परम सुखी है, क्या ईश्वरमें कुछ न्यूनता

है जो उस न्यूनताके पूर्ण करणेकूं सृष्टि रचे ? वो तो जगत्में अपणी ईश्वरता प्रगट करणेकूं सृष्टि रचता है.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं थी अरु जब सृष्टि रची तब ईश्वरता प्रगट भइ, तो प्रथम जब ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं भइ थी तब तो ईश्वर बडा उदास अरु असंपूर्ण मनोरथ ईश्वरताकों प्रगट करणेमें विव्हल था. इस हेतुसें अवश्य ईश्वरकूं दुःख होनां चाहिये. जब ईश्वर सृष्टिसें पहिलें असा दुःखी था तब तो खाली क्युं बैठ रहा था? इस सृष्टिसे पहिले अपर सृष्टि क्युं नहीं रचकें अपणा दुःख दूर करा?

पूर्वपक्षः—ईश्वरने जो सृष्टि रची हैं सो जीवोसें धर्म करकें उनकूं अनंत सुख देगा इस परोपकारके वास्ते ईश्वरने सृष्टि रची है.

उत्तरपक्षः—धर्म करायकें जीवोंकूं सुख देना यह तो तुमारे कहनेसें परोपकार हुआ परंतु जो पाप करकें नरक गयें उनके उपरि क्या उपकार करा? उनकूं दुःखी करणेसें क्या ईश्वर परोपकारी हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः—उनकूं नरकसें निकालके फेर स्वर्गमें स्थापन करेगा.

उत्तरपक्षः—तो फेर प्रथमही नरकमें क्युं जाने दीये?

पूर्वपक्षः—ईश्वरही सर्व कुछ पुण्य पापादि कराता है, जीवके अधीन कुछजी नहीं. ईश्वर जो चाहता है सो कराता है, जैसे काठकी पुतलीकूं बाजीगर जैसें चाहता है, तैसे नचाता है, पुतलीके कुछ अधीन नहीं.

उत्तरपक्षः—जब जीवके कुछ अधीन नहीं, तो जीवकूं अछे बुरेका फलजी नहीं चाहियें. क्युं के जो कोइ सिरदार किसी नौकरकूं कहे जो तुम यह काम करो, फेर नौकर सिरदारके कहनेसें वो काम करे, अरु वो काम अछा वा बुरा है तो क्या फेर वो सिरदार उस नौकरकूं कुछ दंम दे सक्ता? कुछजी नहीं दे सक्ता. असेंही ईश्वरकी आज्ञासे जब जीवने पुण्य वा पाप करे, तो फेर पुण्य पापका फल जीवकूं नहीं चाहियें. जब पुण्य पाप जीवके करे न हुए तब स्वर्ग अरु नरक एजी जीवकूं न होंगे, तब जीवकूं नरक, स्वर्ग, तिर्यग् अरु मनुष्य, ए चार गतिजी न होगी. जब चार गति न होवेगी, तब संसारजी न होगा, जब संसार न होगा तब तो वेद, पुराण, कुरान, तौरे, तजबूर, इंजील प्रमुख शास्त्रजी न होंगे. जब शास्त्र न

होंगे तव शास्त्रका उपदेशकर्त्ती न होगा जब शास्त्रका उपदेशकर्त्ती नहीं तो ईश्वरभी नही. जब ईश्वरही नहीं तो फेर सर्व शून्यता सिद्ध भइ. कलंक क्युंकर मिटेगा?

पूर्वपक्षः—यह जो जगत् है सो वाजीगरकी वाजीवत् है. अरु ईश्वर इसका वाजीगर है, सो इस जगत्कूं रच कर ईश्वर इस खेलसे खेलता, (क्रीडा करता) है, नरक, स्वर्ग, पुण्य, औ पाप कुछ नही.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने क्रीडाहीके वास्ते जगत् रचा, तो क्रीडाहीमात्र फल होनां चाहियें, परंतु इस जगत्में तो कुष्टी, रोगी, शोकी, धनहीन, बलहीन, महादुःखी, महाप्रलाप कर रहे है, जिनकूं देखनेसें दयाके वश होकर हमारे रोंघटे (रोम) खडे होते है, तो क्या फेर ईश्वरकूं इन दुःखियांकूं देख कर दया नहीं आती? जब ईश्वरकूं दया नही तो फेर निर्दयीभी कदेइ ईश्वर हो सक्ता है? अरु जो क्रीडा करने वाला है, सो वालककी तरें रागी, द्वेषी, अज्ञ होता है, जब राग द्वेष है, तो उसमें सर्व दूषण है जब आपही औगुणोंसें भरया है, तो वो ईश्वर काहेका? वोतो संसारी जीव है. अरु जब राग, द्वेष वाला होवेगा तब सर्वज्ञ कदापि न होवेगा जब सर्वज्ञ नहीं तो उसकूं ईश्वर कौन कह सक्ता है?

पूर्वपक्षः—जीवोंके करे हूये पुण्य पापके अनुसार ईश्वर दंड देता है इस हेतुसे ईश्वरकूं क्या दोष है? जैसा जिसने कीया, वैसाही उसकूं फल दीया.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें यह संसार अनादि सिद्ध हो गया, अरु ईश्वर कर्त्ता नहीं, ऐसा सिद्ध हुआ. वाह रे मित्र! तेने अपणे हाथसें अपणां मुंह काला किया, क्युं के जे जीव अव है, अरु जो कुछ इनकूं इहां फल मिला है, सो पूर्व जन्ममें करा हुआ उदरा अरु जो पूर्व जन्म था उसमें जो दुःख सुख जीवकूं मिला था, वो उससें पूर्व जन्ममें करा था, इसी तरें पूर्व पूर्व जन्ममें दुःख सुख करणां अरु उत्तरोत्तर जन्ममें सुख दुःखका भोगणा इसी तरें संसार अनादि सिद्ध होता है. अब शोचो कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर कैसें सिद्ध हूआ?

पूर्वपक्षः—हम तो एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप मानते हैं.

उत्तरपक्षः—जे कर एकही परम ब्रह्म सद्रूप है, तो फेर यह जो सारा

नाल, प्रियाल, हंताल, ताल, तमाल, प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामि पणे रकें जो प्रतीत होते है, वे क्युं कर सत् स्वरूप नही है?

पूर्वपक्षः–ए पूर्वोक्त जो पदार्थ प्रतीत होते है, वे सर्व मिथ्या है तथा च अनुमान प्रपंच मिथ्या है, प्रतीत होणेसे जो औसा है, सो औसा है. यथा सीप, चांदी रूप, तैसाही यह प्रपंच है, इस अनुमानसें प्रपंच मिथ्यारूप है, अरु एक ब्रह्मही पारमार्थिक सद्रूप है.

उत्तरपक्ष–हे पूर्वपक्षी! इस अनुमानके कहनेसें तूं तीक्ष्ण बुद्धिमान् नही है, सोइ वात कहते है, यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है सो मिथ्या तीन तरेका होता है, एक तो अत्यंत असत् रूप, अरु दूसरा है सो कुछ और, अरु प्रतीति होवे औरतरें. अरु तीसरा अनिर्वाच्य इन तीनोंमेंसूं कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचकूं माना है?

पूर्वपक्षः–इन तीनों पक्षोंमेंसें प्रथम दो पक्ष तो मेरे स्वीकारही नहीं इस कारण मैं तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानता हूं, सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्यारूप है.

उत्तरपक्षः–प्रथम तो तुम यह कहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है? एतावता तुम अनिर्वाच्य किस वस्तुकूं कहते हो? (१) क्या वस्तुका कहनेवाला शब्द नही है? (२) वा शब्दका निमित्त नही है? प्रथम विकल्प तो कल्पनाही करने योग्य नहीं है? यह सरल है, यह रसाल है, औसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है. अथ दूसरा पक्ष है तो शब्दका निमित्त ज्ञान नहीं है? वा पदार्थ नही है? प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं. सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान तो प्राणी प्राणी प्रत्यें प्रतीत है, सर्व जीव देखनेवाले जानते है, जो सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान हमकूं है. अथ दूसरा पक्ष तो पदार्थ, भावरूप नही है? कि अभावरूप नही है? जेकर कहोगे पदार्थ भावरूप नहीं अरु प्रतीत होता है, तो तुमकूं विपरीतख्याति मानणी पडी अरु अद्वैतवादीयोंके मतमें विपरीतख्याति मानणी महा दूषण है. अथ दूसरा पक्ष. जो पदार्थ अभावरूप नहीं तो भावरूप सिद्ध भया, तब तो सत् ख्याति मानणी पडी अरु जब अद्वैतवाद मतांगीकार कीया, अरु सत्ख्याति मानणी पडी, तब तो सत् ख्यातिके माननेसें अद्वैत मतकी जडकूं कुहाडेसे काटा. कदापि अद्वैतमत नही सिद्ध होगा.

पूर्वपक्षः—नावरूप तथा अनावरूप ए दोनोही प्रकारें वस्तु नहीं.

उत्तरपक्षः—हम तुमकूं पूछते है जो नाव अरु अनाव इन दोनोका अर्थ जो लौकिकमें प्रसिद्ध है वही तुमने माना है? वा इससें विपरीत और का अर्थ, नाव अरु अनावका तुमने माना है? जे कर प्रथम पक्ष मानों तो जहां नावका निषेध करो गे तव तो तहां अवश्यमेव अनाव कहना पडेगा, अरु जहां अनावका निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव नाव कहना पडे गा, जो परस्पर विरोधी है, तिसमें एकका निषेध करोगे तो दूसरेकी विधि अवश्य कहनी पडेगी अनिर्वाच्यता तो जडामूलसें नष्ट हो गइ अथ दूसरा पक्ष—तव तो हमारी कुछ हानी नहीं.क्यु के अलौकिक एतावता तुमारे मनःकल्पित शब्द अरु शब्दका निमित्त जो नष्ट हो जावेगा, तो लौकिक शब्द अरु लौकिक शब्दका निमित्त कदापि नष्ट नही होगा, तो फेर अनिर्वाच्य प्रपंच किस तरें सिद्ध होगा? जव अनिर्वाच्य न सिद्ध हुआ, तो प्रपंच मिथ्या कैसें सिद्ध हुआ? तव एकही अद्वैत ब्रह्म कैसें सिद्ध हुआ?

पूर्वपक्षः—हम तो जो प्रतीत न होवे, उसकूं अनिर्वाच्य कहते है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें तो वहुत विरोध आवे है, जे कर प्रपंच प्रतीत नहीं होता तो तुमने अपणे प्रथम अनुमानमें जो प्रपंचको प्रतीयमान हेतु स्वरुप पणे क्यु कर ग्रहण कीया? अरु प्रपंचकूं अनुमान करती वेलां धर्मीपणे क्युं कर ग्रहण कीया? जे कर कहोगे धर्मी पणे वा प्रतीयमान हेतुपणे प्रपंचकूं ग्रहण करणेमें क्या दूषण है? तो फेर तुमने यह जो उपर प्रतिज्ञा करी थी, कि हम तो जो प्रतीत नहीं होवे उसकूं अनिर्वाच्य कहते है, तो फेर प्रपंच अनिर्वाच्य कैसे सिद्ध हुआ? जव प्रपंच अनिर्वाच्य नहीं तव या तो नावरूप प्रपंच सिद्ध होगा, वा तो अनावरुप प्रपंच सिद्ध होगा. इन दोनोही पक्षोमें एकरुप प्रपंचके माननेसें पुर्वोक्त विपरीतख्याति तथा सत्ख्याति रूप दोनो दूषण फेर तुमारें गलेमें रस्सी मालते है, अव नाग कर कहां जावोगे? हम फेर तुमकों पूछते है कि यह जो तुम इस प्रपंचकू अनिर्वाच्य मानते हो, तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे मानते हो? वा अनुमान प्रमाणमें मानते हो? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इस प्रपंचकूं सत्स्वरूपही सिद्ध करता है, जैसा जैसा पदार्थ है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है. अरु प्रपंच जो है सो सत्

र (आपसमें) न्यारी न्यारी जो वस्तु है सो अपणे अपणे स्वरूपमें भाव रूप है अरु दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षासें अभाव रूप है, इस इतरे तर विविक्त वस्तुओंकूंही प्रपंच रूप माना है, तो फेर प्रत्यक्ष प्रमाण प्रपंचकूं अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध कर सक्ता है?

पूर्वपक्षः–पूर्वोक्त जो हमारा पक्ष है, तिसकूं प्रत्यक्ष प्रतिक्षेप नहीं कर सक्ता, क्युं कि प्रत्यक्ष तो विधायकही है, जे कर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूपका निषेध करे, तो हमारे पक्षकूं बाधक ठहरें, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाण तो ऐसा है नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाणतें इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूप निषेध करणेकुं कुंठ है

उत्तरपक्षः–यहभी तुमारा कहनां असत्य है अन्य वस्तुके स्वरूपके बिना निषेध्यां वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होगा, पीतादिक वर्णों करी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होगा. तथा जब प्रत्यक्ष प्रमाण करी यथार्थ वस्तु स्वरूप ग्रहण कीया जायगा, तब तो अवश्य अपरवस्तुके स्वरूपका निषेधभी तिहां जाना जायगा. जे कर अन्य वस्तुके निषेधकूं अन्य वस्तुमें प्रत्यक्ष न जानेगा तो तिस वस्तुके विधि स्वरूपकूंभी प्रत्यक्ष न जान सकेगा, केवल जो वस्तुके स्वरूपकूं ग्रहण करणा है, सोइ अन्य वस्तुके स्वरूपका निषेध करनां है. जब प्रत्यक्ष प्रमाण, विधि अरु निषेध दोनोहीकूं ग्रहण करता है, तब तो प्रपंच मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा, जब प्रपंच मिथ्यारूप प्रत्यक्ष प्रमाणसें न सिद्ध भया, तब तो परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसें सिद्ध भया? तथा जो तुम प्रत्यक्षकूं नियम करकें विधायकही मानोगे, तब तो विद्यावत् अविद्याकीभी विधि तुमकूं माननी पडेगी. सो यह ब्रह्म अविद्यारहित प्रत्यक्ष प्रमाणसें ग्रहण कीया, तब तो अविद्याभी प्रत्यक्ष सें निषेध ग्रहण होगी. फेर जो तुमारा यह कहनां है की 'प्रत्यक्ष जो है, सो विधायकही है, परंतु निषेधक नहीं.' ऐसे वचन कहने वालेकूं क्युं न उन्मत्त कहना चाहिये? अब जो आगें अनुमान कहेगे, तिस करकेंभी पूर्वोक्त तेरे अनुमानका पक्ष बाधित है, सो अनुमान हमारा ऐसे है, प्रपंच मिथ्या नहीं है, असत्‌से विलक्षण होणेसें जो असत्‌से विलक्षण है, सो ऐसा है. यथा आत्मा तैसा ही यह प्रपंच है, तथा प्रतीयमान जो तुमा

रा हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, जैसें ब्रह्मात्मा प्रती‌‌‌
तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है, जे कर कहोगे कि ब्रह्मात्मा अ
है तो वचनगोचर न होगा, जब वचनगोचर नही तब तो तुमकूं
वनना ठीक है, क्युं कि ब्रह्म बिना अपर तो कुछ है नही, अरु आ
त्मा है, सो प्रतीयमान नही, तो फेर तुमकूं हम गुंगेके बिना और
कहे? प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दीया था, सो
विकल है, क्युं कि जो सीप है सोभी प्रपंचके अंतर्गत है, अरु तुम प्र
पंचकूं मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो, यह कभी नही हो सक्ता है.
साध्य होवे सोइ दृष्टांतमें कहा जावे, जब सीपकाभी अनीतक सत्
त् पणा सिद्ध नहीं, तो उसकूं दृष्टांतमें काहेकूं लाना? तथा
तुमकूं पूछते है कि यह जो तुमने प्रथम अनुमान, प्रपंचके मिथ्या
नेकूं कीना था सो अनुमान, इस प्रपंचसें भिन्न है वा अभिन्न है? जे
कहोगे भिन्न है, तो फेर सत्य है, वा असत्य है? जे कर कहोगे
है, तो तिस अनुमान सत्यकी तरें प्रपंचभी सत्यही स्वरूप है. जे
कहोगे असत्य स्वरूप है, तो फेर क्या शून्य है? वा अन्यथा
है? वा अनिर्वचनीय है? प्रथम दोनो पक्ष तो कदापि साध्यके
धक नही है, मनुष्यके शृंगकी तरे, तथा सीपके रूपेकी तरें. अरु त
रा जो अनिर्वचनीय पक्ष है तिसका तो संभवही है नहीं; सो अ
साध्यकूं कैसे साधेगा?

पूर्वपक्षः—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहार सत्य है, इस का
असत्य नहीं, फेर आपणे साध्यकूं क्युं कर नही साध्य सक्ता? अ
साध्यही सक्ता है.

उत्तरपक्षः—हम तुमसें पूछते हैं कि जो यह व्यवहारसत्यका क्या स्व
प है? व्यवहृतीति (व्यवहार) ऐसें जो व्युत्पत्ति करियें तब तो ज्ञान
ही नाम व्यवहार ठहरा, ज्ञानमें जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है,
पक्षमें सत् ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुवा. जब प्रपंच सत् सिद्ध हु
तब तो एकही परम ब्रह्म सद्रूप अद्वैततत्त्व किसी तरेंभी सिद्ध न
हो सक्ता. जे कर कहोगे व्यवहार नाम शब्दका नाम है, तो फेर हम तु
कूं पूछते है जो व्यवहार नाम शब्दका है, तो फेर शब्द, स्वरूपसें सत्य है

वा असत्य है? जे कर कहोगे शब्द सत्स्वरूप है तो शब्दकी तरें प्रपंचनी सत् स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्स्वरूप शब्द है, तो फेर ब्रह्मादि शब्दसें कहे हुये, कैसें सत् स्वरूप हो सकेंगे? क्युं कि जो आपही असत् स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करणे वा कहनेका हेतु कनी न हो सक्ता.

पूर्वपक्षः—जैसे खोटा रूपक सत्य रूपकके क्रय विक्रयादिक व्यवहारका जनक होणेसें सत्य रूपक माना जाता है, तैसें ही अनुमान हमारा यद्यपि असत् स्वरूप है तोनी जगत्में सत् व्यवहार करकें प्रवर्त्तक होणेसें व्यवहार सत् है, इस वास्ते आपणे साध्यका साधक है.

उत्तरपक्षः—हे नव्य! इस तुमारे कहनेसें तुमारा अनुमान पारमार्थिक असत् स्वरूप है, फेर तो जो दूषण असत् पक्षमें दीने हैं, सो सर्व इहां पडेंगे, जे कर कहोगे कि हम प्रपंचसें अनेद अनुमानकूं मानते है, तब तो प्रपंचकी तरें अनुमाननी मिथ्यारूप ठहरा, तब तो आपणे साध्यकूं कैसें साध सकेगा? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु आत्माकी तरें सत्रूप है, तो फेर एक ही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है यह तुमारा कहनां क्युं कर सत्य हो सक्ता है? कनी नहीं हो सक्ता.

पूर्वपक्षः—हमारी उपनिषदोमें तथा शंकर स्वामीका शिष्य आनंदगिरि, शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखता है कि "परमात्मा जगदुपादानकारणमिति" परमात्मा जो है, सोइ इस सर्व जगत्का कारण है, कारणनी कैसा उपादान रूप है. उपादान कारण उसकूं कहते है कि जो कारण होवे सोइ कार्यरूप हो जावे, इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ जो कुछ जगत्में है, सो सर्व कुछ परमात्मा ही आप बन गया, तब तो जगत् परमात्मा रूप ही है, फेर तुम सृष्टि कर्त्ता ईश्वर क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्षः—वाह रे नास्तिक शिरोमणि! तुम अपणे कहणेकूं कनी विचार शोच कर कहते हो, वा नहीं? इस तुमारे कहनेसे तो पूर्ण नास्तिक पणा तुमारे मतमे सिद्ध होता है, यथा जब सर्व कुछ जगत् स्वरूप परमात्मरूपही है, तब तो न कोइ पापी है, न कोइ धर्मी है, न कोइ ज्ञानी है, न कोइ अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, साधुनी नहीं, अरु चोर नी नहीं, सत्शास्त्र नी नहीं, अरु मिथ्या शास्त्रनी नहीं, तथा जैसा गोमासनक्षी, तैसाही अन्नजक्षी है, जैसा स्वजार्यासें कामनो

ग सेवन कीया तैसा ही माता, बहिन, बेटीसें कीया, जैसा चमाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा गधा, तैसा संन्यासी, क्युं के जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही ठहरा, तब तो सर्व जगत् एकरस एक स्वरूप है, दूसरा तो कोइ है नही.

पूर्वपक्ष.—हम एक ब्रह्म मानते है, अरु एक माया मानते है. सो तुमने जो उपर बहुतसे आल जंजाल लिखे है, सो सर्व मायाजन्य है अरु ब्रह्म तो सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरुप है.

उत्तरपक्ष.—हे अद्वैतवादी! यह जो तुमने पक्ष माना है सो बहुत असमीचीन है यथा. माया जो है सो ब्रह्मसें भेद है, वा अभेद है? जेकर भेद है तो जड है, वा चेतन है? जे कर जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है, तो अद्वैत मतकें मूलहीकूं दाह करती है, क्युंकि जब ब्रह्मसें भेद रूप हुइ, अरु जड रुप भइ. अरु नित्य हुइ, फेर तो तुमने द्वैतपंथ आपही आपणे कहनेसें सिद्ध कर लीया. अरु अद्वैत पंथ जड मूलसें कट गया, जे कर कहोगे कि अनित्य है, तो द्वैतता दूर कभी नहीं होगी, क्युंकि जो नाश होने वाला है, सो कार्य रूप है, अरु जो कार्य है, सो कारण जन्य है, तो फेर उस मायाका उपादान कारण कौन है? सो कहनां चाहियें. जे कर कहोगे अपर माया तब तो अनवस्था दूषण है, अरु अद्वैत तीनो कालोमें कदापि सिद्ध नहीं होगा, जे कर ब्रह्महीकूं उपादान कारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्व जड बन गया. तब तो पूर्वोक्त दूषण आया जे कर मायाको चैतन्य मानोगे. तोभी यही पूर्वोक्त दूषण होगा, जे कर कहोगे माया ब्रह्मसें अभेद है तब तो ब्रह्मही कहनां चाहियें, माया नही कहनां चाहियें.

पूर्वपक्ष.—हम तो मायाकूं अनिर्वचनीय मानते है.

उत्तरपक्ष.—इस अनिर्वचनीय पक्षकूं उपर खंमन कर आये हैं, तेमें खंमन करणां, इहांभी कह देनां तथा अनिर्वचनीय जो शब्द है तिसमें निर् जो उपसर्ग है. तिसका अर्थ तो निषेध रूप कीया है. कहापि व्याकरणमें शेष जो शब्द है. सो या तो भावका वाचक है या अभावका वाचक है? जब भावकूं निषेध करोगे, तब तो अभाव आ जायेगा, अरु जे कर अभावकूं निषेधोगे तब तो भाव आ जावेगा. ए भावाभाव दोनो सर्व

के तीसरा वस्तुका रूप कोइ नहीं. इस वास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो दंनी पुरुषोनें छलरूप रचा प्रतीत होता है, इस कहनेसें तो द्वैत ही सिद्ध होता है, अद्वैत नही.

पूर्वपक्षः—यह जो अद्वैत मत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी है जिनोंने सर्वमतोंकूं खंमन करकें अद्वैत मत सिद्ध कीया है, तो फेर अैसे शंकर स्वामी साक्षात शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उनोंके अद्वैत मतकों खंमने वाला कौन है?

उत्तरपक्षः—हे वल्लन्न मित्र! तुमारी समज मूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है, परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिने शंकरदिग्विजयके अट्ठावनवे प्रकरणमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढनेसें तो अैसा प्रतीत होता है, जो शंकरस्वामी सर्वज्ञ नही, अरु कामी है, अरु अज्ञानी है, अरु असमर्थ है, तिस लिखनेसें अैसाजी प्रतीत होता है कि वेदांतीयोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान जब तांइ यह स्थूल देह रहेगी, तब तांइ रहेगा, परंतु इस शरीरके छूटया पीछें किसी वेदांतीयोंकों ब्रह्म ज्ञान नहीं रहेगा.

पूर्वपक्षः—वो कौनसा शंकरस्वामीका वृत्तात है जिस्सें तुमारी पूर्वोक्त बाते सिद्ध होती है?

उत्तरपक्षः—जो तुमकूं वृत्तांत सुनना है, तो हमारे क्या ढील है, हम इसी जग्गे लिख देते है जब शंकरस्वामीने मंमनमिश्रकूं जीता, तब मंमनमिश्रने यतिव्रत लीया, अरु मंमनमिश्रकी जार्या जिसका नाम सरसवाणी था, सो सरसवाणी आपणे पतिकूं यतिव्रत लीया देख कर आप सरसवाणी ब्रह्मलोककूं चली, सरसवाणीकूं जातीकूं देख कर शंकरस्वामी जीवनडुर्गामंत्र करके दिग्बंधन करते हुये, तिसके पीछें हे सरसवाणी! तुं ब्रह्मशक्ति है, ब्रह्मके अंशजूत मंमनमिश्रकी तूं जार्या है, उपाधि करकें सर्वकूं फलित है, तिस कारणसें मेरे साथ प्रसग करकें फेर तुमकूं जाणां योग्य है. अैसे शंकरस्वामीने कहा. पीछें सरसवाणी शंकरस्वामी प्रतें कहती हुई कि—पतिके संन्यासतें प्रथम ही वैधव्य होणेके जयसें मैने पृथिवी त्यागी है, तिस कारणसें फेर मै पृथिवीका स्पर्श न करुंगी. हे यति! तूं तो पृथिवीमें स्थित है कैसें तेरे प्रसगके तांइ एक विषय स्थिति होवे, अैसे शंकरस्वामीकूं कहती प्रतें फेर शंकरस्वामी कहते जये कि:—हे माता!

तोनी चूमिकाके उपरि ठ हाथ प्रमाण उंची आकाशमें रहो मेरे साथ सर्व वचनका प्रपंच संचार करकें, पीठेसें जानां. अैसें आदर पर होके शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषे वेद, इतिहास, पुराणों विषे समग्र प्रसंग करकें पीठें शंकरकूं तिरस्कारके तांई जिसमे दुःखें प्रवेश है, अैसा जो कामशास्त्र, तिस विषे नायिका, अरु नायक, इनके भेद विस्तारसें सरसवाणी शंकरकों पूछे. तब तो शंकरस्वामी इस विषयकूं जानते नहीं थे, ताते शंकरस्वामी उत्तर न दे सके, मौनी होते नये, तिस पीठें सरसवाणी शंकरस्वामीकूं सत्य करकें कहती हुइ किः—तुमारे जाननेमें यह शास्त्र नहीं आया, निश्चय करके तिस शास्त्रकूं मैंही जानती हूं, कालका जानकार शंकरस्वामी सरसवाणी प्रति कहते हुये किः—हे माता! तुम इहांही ठ महीने रहो, पीठे में सर्व अर्थोंका निश्चय करके तेरे कहेका उत्तर कहुंगा. अैसे कह कर शंकरस्वामी आग्रह पूर्वक सरसवाणीकूं तिहांही आकाश मण्डलमें स्थापन करके सर्व शिष्योंकूं यथास्थान भेज करके चार शिष्यो सहित (१) हस्तामलक, (२) पद्मपाद, (३) विधिवत्, (४) आनंदगिरि, ए चार नामक प्रधान शिष्यों करी सेव्यमान तिस नगरसें पश्चिमदिशा नाम गढमें गये, सरसवाणीके प्रश्नोके उत्तर जानने के तांइ उस नगरका राजा मर गया था, उसका शरीर तिस अवसरमे चितामें जलानेके वास्ते रखा था, उस शरीरकूं देख कर शंकरस्वामीने अपणा शरीर उस नगरकें प्रांत एक पर्वतकी गुफामे स्थापन करकें, शिष्योंकूं कह दीया कि तुमने इस शरीरकी रक्षा करनी. अरु आप शंकरस्वामी परकाय प्रवेश विद्या करके, लिंगशरीर संयुक्त अभिमान सहित उस राजाके शरीर में ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश कर गये, तब तो राजाजी उग शीतोपचार करा, औ उत्सवसे नगरमें ले आये, राजा मरा नहीं था यह वात प्रसिद्ध कर दीनी, तब तो शंकरस्वामीकूं लोकोनें राजसिंहासन उपर बिठलाया. पश्चात् राजसिंहासनसे उठ कर स्वामीजी बडी राणीके घरमें गये. तहां जाकर उस राणीसें काम क्रीडा करने लगे, तब तो शंकरस्वामीकी कुशलतासें तिसके आलिंगन करनेसें उत्पन्न हुआ जो सुख संभोग ताकरिके शंकरस्वामीने उस राणीके मुखके साथ तो अपणा मुख जोडा, औ अपणी ठाती उस राणीके दोनो कुचों (स्तनो) के उपर जोडी, तैसेंही उस राणीकी

नीसें अपनी नाभी जोडी, औ अपणे पगों करकें राणीके पग संकोचे. शवता जंघोमें जंघा फसाइ अर्थात् एक शरीरवत् हो गये, दोनो जने व िन गाढा आलिगन करनेमें तत्पर हुये, तब तो शंकरस्वामी राणीके कक्षा थानो विषे हाथों करी स्पर्श करते हुये, बहुत सुखमें मग्न हुये, तब तो णी उनकी आलाप, चतुराइ देख कर चित्तमें विचार करने लगी कि देह वित्र करी तो मेरा भर्त्ता है, परंतु इसका जीव मेरा भर्त्ता नही, एतो कोइ र्वज्ञ है. असा विचार करके राणीने आपणे नौकरोकूं चारों दिसामें भे जा, अरु कह दीया कि जो पर्वतोमें, वा गुफाउमें बारह योजनोके बिचमें जितने शरीर जीव रहित होवे सो सर्व शरीर चितामें रख कर जला दिउ. कंरस्वामी तो विषयमें मूर्छित हो गये, तब तो राणीके नौकरोने चार शिष्योकूं रक्षक देख कर शंकरस्वामीके शरीरकूं चितामे रख कर उनके शरीरकूं अग्नि करके दाह करने लगे, तब तो शंकरस्वामीके चारों शिष्य, उस नगरमें गये, जिहा शंकरस्वामी थे, उहां शंकरस्वामिकूं काम लोलुपी अति विषयमें बद्धबुद्धि देख कर शकर राजाके आगें नाटक करने लगे, शंकरस्वामीकूं परोक्ति करकें प्रतिबोध करने लगे सो यह है, जो लिखते हैं.—

(१) ‘ यत्सत्यमुख्यशब्दार्थानुकूलं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (२) ह्येतत्त्वं विदितं नृपु नाव, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (३) विश्वोत्पत्त्यादि विधिहेतुतत्त्व, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (४) सर्वचिदात्मकं सर्वमद्वैत, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (५) परतार्किकैरीश्वरसर्वहेतु, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (६) यद्वेदांतादिभिर्ब्रह्मसर्वस्थं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (७) यज्जैमिनिनोक्तमखिलकर्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (८) यत्पाणिनिः प्राह शब्दस्वरूपं तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (९) यत्सांख्यानां मतहेतुभूतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१०) अष्टांगयोगेन अनंतरूपं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (११) सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१२) नह्येतदृश्यप्रपंच, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१३) यद्ब्रह्मणोब्रह्मविपावीश्वराद्यनवत्, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१४) त्वद्रूपमेवमस्माभिर्विदितं राजन् ! तव पूर्वयस्याश्रमस्थम् ” ॥ इन परोक्तिया करके राजा प्रतिबोध हुआ, सर्वके सन्मुख तिल राजाकी देहसें निकल कर जब गये तब तो उस पर्वतकी कंदरामें

अपणे शरीरकूं न प्राप्ति हुवे तब तो अपणे शरीरकूं चितामें देखा. दे
कर कपालमध्यमें हो कर प्रवेश करा; तब शरीरके चारो ओर अग्नि
ज्वलित हो रही थी, तब तो निकलनां डुष्कर हो गया,फेर शंकरस्व
लक्ष्मी नृसिंहकी स्तुति करी तब लक्ष्मीनृसिंहने शंकरस्वामीकूं जीता,
मेंसें बाहिर निकाला॥इति कथा समाप्ता ॥ अब हे नव्य ! तूं विचार
देख जो में पूर्वे तुजकूं वार्त्ता कही थी सो सर्व सत्य है या नहीं ? क्युं
(१) जब सरस वाणीके कहनेके प्रश्नका उत्तर नहीं आया, तब तो शंकरस्व
मीकूं सर्वज्ञ कौन बुद्धिमान् निष्पक्षी मान सक्ता है ? कोइनी नहीं मानेग
(२) अरु जब राजाकी राणीसें विषय सेवन करा, तब तो कामी होणे
कोइ शंकानी रहती है ? (३) अरु जब शिष्योंने आकर प्रतिबोध करा
तब तो अज्ञानी अवश्य हो चूके, (४) जब चितामेंसें न निकल सके, त
लक्ष्मीनृसिंहकी स्तुति करी तब नृसिंहने आय करकें ज्वलती अग्निमेंसें
काढे, तब शंकरस्वामी असमर्थ सिद्ध हो गये, जब शंकरस्वामीने फेर आ
कर सरसवाणीके प्रश्नोका उत्तर दीया, तब तो सरसवाणीने कहा;
स्वामी! तूं सर्वज्ञ है क्या मृतकके शरीरमें प्रवेश करके उसकी राणी
साथ विषय सेवन करकें राणी पासों कबुक कामशास्त्रकी वातां शीख
सर्वज्ञ हो सक्ता है ? सर्वज्ञ तो नहीं हो सक्ता, परतु गर्द्ध खुरकणी तो व
गइ. सरसवाणीकूं उसने सर्वज्ञ कह दीया, अरु शंकरकूं सरसवाणीने स
ज्ञ कह दीया. वाह क्याही सर्वज्ञोंकी जोडी मिली है ? सरसवाणी त
ब्रह्मकी शक्ति हो कर फेर स्त्री बन कर मंडनमिश्रसें विषय सेवन करती रह
अरु सर्वज्ञनी बन वैठी, अरु शंकरस्वामी परस्त्रीसें विषयसेवन करा
अरु कबुक काम-शास्त्र शीख कर सर्वज्ञ बन बैठे, क्या यह गर्द्ध खुरकण
न होइ तो और क्या हुआ ? जब शंकरस्वामी, अपणां स्थूल शरीर छो
कर राजाके शरीरमे गये, अरु ब्रह्मविद्या सर्व नूल गये, जे कर न नूल
होते तो उनके शिष्य काहेकूं तत्त्वमसिका उपदेश करने ? जब शंकरस्वा
मी स्थूल शरीरके बदल जाने परब्रह्म विद्या नूल गये, तब तो ब्रह्मविद्या
का संबंध. न तो लिंग शरीरके साथ रहा, न आत्माके साथ संबंध रहा
किंतु स्थूल शरीरहीके साथ रहा. इस्सें यह सिद्ध हुआ कि—जब वेदांती
मर जाते है. तब उनका ज्ञाननी नष्ट हो जाता है, अरु स्थूल शरीरहीके

नाथ ज्ञानका संबंध रहा परंतु आत्माके साथ नहीं अरु जो तुमने कहा था कि.–शंकरस्वामीके प्रगट कथन कीये अद्वैत मतकूं कौन खंडन कर सक्ता है? सो हे नव्य! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फेर उनके कहे हुये मतकूं कौन सयौक्तिक समज सक्ता है?

पूर्वपक्षः–" पुरुषएवेदं " इत्यादि श्रुतियोंसें अद्वैतही सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः–यहभी तुमारा कहनां असत् है. क्युंकि जो पुरुष मात्र रूप अद्वैततत्त्व होवे तब तो यह जो दिखलाइ देता है कोइ सुखी, कोइ दुःखी, इ सर्व परमार्थसे असत् हो जावेंगे. जब असें होगा तब तो यह जो कहनां है, " प्रमाणतोऽधिगम्य संसारनैर्गुण्यं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि " अस्यार्थ–संसारका निर्गुणपणा प्रमाणसें जान कर. तिस संसारसें विमुख बुद्धि हो करकें तिस संसारके उच्छेदके ताइ प्रवृत्ति करे, यह जो कहनां है, सो आकाशके फूलकी सुगंधिका वर्नन करने सरिखा है, क्युं कि जब अद्वैत रूपही तत्त्व है, तब तो नरकादि भवभ्रमण रूप ससार कहा रहा? जिस संसारकूं निर्गुण जान कर तिसके उच्छेद करणेकी प्रवृत्ति होवे.

पूर्वपक्षः–तत्त्वतः पुरुष अद्वैत मात्रही है, अरु यह जो संसार निर्गुण वर्णन करा है, सो सदा सर्व जीवोंकूं जो प्रतिभासन हो रहा है, सो सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उंचे नीचे जैसे प्रतीत होते है, तैसे सर्व संसार प्रतीत होता है परतु सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्च नीचकी तरे भ्रांतिरूप है वा भ्रांतिजन्य है

उत्तरपक्षः–यह जो तुमारा कहनां है सो असत् है, इस बातमें कोइ वास्तव्य प्रमाण है नहीं. तत् यथा जे कर अद्वैत सिद्ध करणे वास्ते कोइ पृथग्भूत प्रमाण मानोगे, तब तो द्वैतापत्ति होगी, क्युंकि प्रमाणके विना किसीकाभी मत नहीं सिद्ध होता, जे कर प्रमाणके विनाही सिद्ध मानोगे तब तो सर्ववादी अपणे अपणे अभिमतकूं सिद्ध कर लेवेंगे, तथा भ्रांतिभी प्रमाणभूत अद्वैतसें भिन्नही माननी चाहिये. अन्यथा प्रमाणभूत अद्वैत अप्रमाणही हो जावेगा, भ्रांति जब अद्वैतकाही रूप हुइ तब तो पुरुषका रूप हुइ, तातें भ्रांतिस्वरूपवाला पुरुषही है नहीं, तब तो तत्त्वव्यवस्था कुछभी सिद्ध न होइ जे कर भ्रांति भिन्न मानोगे, तब

तो द्वैतापत्ति होवेगी, अद्वैत मतकी हानि हो जावेगी, जेकर स्थंनकूं उ
दिकोंसें नेद माननां इसीकूं भ्रांति कहोगे, तब तो निश्चय करकें
प कुंनादिक किसी जगें तो जरूर होंगे. अभ्रांतिके देखे बिना कदापि भ्रां
देखनेमें नहीं आवेगी, पूर्व जिसने सच्चा सर्प्प नही देखा, तिसकूं रज्जु
सर्प्पकी भ्रांति कदापि न होवेगी ॥ तडुक्तं ॥ श्लोक ॥ नादृष्टपूर्वसर्प्पस्य
रज्ज्वां सर्प्पमतिः क्वचित् ॥ ततः पूर्वानुसारित्वाद्भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १
इस कहनेसेंनी अद्वैत तत्त्व खंमन हो गया तथा पुरुष अद्वैतरूप
अवश्य करके दूसरेकूं निवेदन करना. अपणे आपकूं नहीं. आपणेमें
व्यामह है नही जे कर कहने वालेमें व्यामोह होवे तब तो अद्वैतकी
तिपत्ति कबीनी नही होवेगी.

पूर्वपक्षः—जब आत्माकूं व्यामोह है तब ही तो अद्वैत तत्त्वका उ
श कीया जाता?

उत्तरपक्ष—जब आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा अवस्थ
अवस्थांतरकूं प्राप्ति होगी, जब अवस्था बदलेगी, तब तो अवश्य
त्ति हो जावेगी, तथा जब अद्वैत तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकूं उपदे
करेगा, तब तो परकूं अवश्य मानेगा, फेर अद्वैत तत्त्व परकूं निवेदन
रनां अरु अद्वैत तत्त्व माननां, यह तो ऐसें हुआ के, जैसें मेरा पिता
मार ब्रह्मचारी है, इस वचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है, जेक
अपणेकूं अरु परकूं इन दोनोकूं जब मानेगा, तब तो द्वैतापत्ति अवश्
होगी, इस कारणसें जो अद्वैत माननां है, सो युक्ति विकल है.

पूर्वपक्षः—परमब्रह्मरूप सिद्धही सकल नेद ज्ञान प्रत्ययोंके निरालंब
पणेकी सिद्धि है.

उत्तरपक्ष—ए कथन नी तुमारा ठीक नहीं है, क्युंकि परम ब्रह्मही
सिद्धि नही है जे कर है तो स्वत सिद्धि है, वा परत सिद्धि है? तह
स्वतःसिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किसीकानी विवाद न रहे
जे कर कहोगे परत सिद्धि है, तो क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है
जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनसा है? कहो

पूर्वपक्षः—सो अनुमान यह है कि विवादरूप जो अर्थ है सो प्रतिभा
सात प्रविष्ट ब्रह्मनासके अंतर है, प्रतिभासमान होणेसें जो जो प्रतिभा

ान है सो सो प्रतिभासांत प्रविष्टही देखा है, जैसें प्रतिभास आत्मा
ंभासमान है सकल अर्थ सचेतन अचेतन विवादरूप है तिस का
ासें प्रतिभासात प्रविष्ट है, घटपटादि यह अनुमान है.

उत्तरपक्षः—यह अनुमान तुमारा सम्यक् नहीं है, (१) धर्मी, (२) हेतु.
( ) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिभासांत प्रविष्ट होणेसें साध्यरूपही हुये.

पूर्वपक्षः—तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत. इन तीनोके न हो
ं अनुमानही नहीं बन सक्ता. जे कर कहोगे कि, (१) धर्मी, (२) हेतु,
) दृष्टात, ए तीनो प्रतिभासांत प्रविष्ट नहीं है, तो इनोंहीके साथ हेतु,
भिचारी होगा जे कर कहोगे अनादि अविद्या वासनाके बलसें हेतु दृष्टात
है, सो प्रतिभासके बाहिरकी तरें निश्चय करते हैं, जैसें प्रतिपाद्य, प्रतिपा
,सभा, सभापति जनकी तरे तिस कारणसें अनुमानभी हो सक्ता है, अरु
ब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर हो जावेगा, तब तो प्रतिभा
त प्रविष्टही प्रतिभास होगा. विवादभी न रहेगा, प्रतिपाद्य प्रतिपादक,
ध्य साधन भावभी नहीं रहेगा, तब तो अनुमान करनेकाभी कुछ फल
हीं, आपही अनुभवमान परम ब्रह्मके होते हुये देश काल अव्यवछिन्न
रूपके होयां निर्व्यभिचार, सकल अवस्था व्यापकपणे वालेमें अनुमा
का कुछ प्रयोगभी नहीं चाहिये है.

उत्तरपक्षः—जो अनादि अविद्या प्रतिभासांत प्रविष्ट है, तब तो विद्या
हो गइ. तब तो असत्रूप (१) धर्मी, (२) हेतु. (३) दृष्टांत आ
क भेद कैसें दिखा सके ? जे कर कहोगे प्रतिभासके बाहिरभूत है, तब
(१) अविद्या प्रतिभासमान है ? वा (२) अप्रतिभासमान है ?
स अविद्याकूं प्रतिभासमान रूप होणेसें अप्रतिभासमान तो नहीं. जे
र कहोगे प्रतिभासमान है, तो तिसहीके साथ हेतु व्यभिचारी है तथा
तिभासके बाहिरभूत होणेसें तिसके प्रतिभासमान होणेसें जेकर तुमारे
तमे ऐसा होवेंकी अविद्या जो है, सो नतो प्रतिभासमान हैं, न अप्रति
ासमान, न प्रतिभासके बाहिर, न प्रतिभासके अंदर प्रविष्ट है न
क है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यभिचारिणी
, न अव्यभिचारिणी है, सर्वथा विचारके योग नहीं सकल विचा

रांतर अतिक्रांत स्वरूप है. रूपांतरके अनावसें अविद्या जो है, निरूपता लक्षण है, यहनी तुमारी बडी अज्ञानताका विस्तार तैसी निरूपता स्वनावकूं यह अविद्या है, यह अप्रतिनासमान है, कौन कथन करनेकूं समर्थ है? जे कर कहोगे यह अविद्या तिनास है, तो फेर क्युंकर अविद्या नीरूपसिद्ध होगी, जो वस्तु, जिस स्वरूप रकें प्रतिनासमान है, सो तिसही वस्तुका रूप है; तथा अविद्या जो सो विचार गोचर है, वा विचार गोचर रहित है? जे कर कहोगे वि गोचर है तब तो नीरूप नहीं, जे कर विचार गोचर नहीं, तब तो मानने वाला महा मूर्ख है, जब विद्या अविद्या दोनोही सिद्ध है, तो एक परमब्रह्म अनुमानसें कैसें सिद्ध हुआ? इस कहने करकें जो निपद्में ऐक ब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है सोनी खंमन हो गइ, तथा वैवैखल्विदंब्रह्मेत्यादि" वचनकूं परमात्माके अर्थांतर होणेसें हताप हो जावेगी, जे कर कहोगे अनादि अवियासे ऐसा प्रतीत होता है तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा, तिस वास्ते अद्वैतकी सिद्धि वंध्य पुत्रकी शोनावत् है. इस कारणसे अद्वैतमत युक्तिविकल है. इस एकही ईश्वर जगतुसें प्रथम था, यह कहना मिथ्या है. यह प्रथम के माननेवालोंके मतका खंमन हुआ.

अथ दूसरा ईश्वर जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर अरु दू री सामग्री, ए दो पदार्थ अनादि है, तिन दोनोमेंसें सामग्री जो है, ऐसे है, (१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु इन चार के परमाणु, (५) आकाश, (६) दिशा, (७) आत्मा, (८) मन, (९) काल, ए नव वस्तु नित्य है, अनादि है, किसीके बनाइ होइ नहीं सो ईश्वर इस पूर्वोक्त कारणोसे इस सृष्टिकों रचता है अथ मतावलंबीयोंने जिस रीतिसें ईश्वरकों जगत्का कर्त्ता माना है, सो रीती इहां लिखते है.

उपजातिछंद ॥ कर्त्तास्ति कश्चिज्जगत सचैक, ससर्वग. सस्ववशः सनित्यः ॥ इमा· कुहेवाकविडंबनास्यु, स्तेषा न येषामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥

अस्यार्थ.—जगत् जो है,सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके लक्ष्यमाण (दीसता) है, चराचर रूप तीनो जगत्का कोइक जिसका स्वरूप कह्या नहीं मर्क ऐसा पुरुष विशेष रचनेवाला है, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानने वाले

वादी ऐसें अनुमान करते हैं किः—पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व, बुद्धिवाले कर्त्ताके करे हुये है, कार्य होणेसें जो जो कार्य है, सो सो सर्व बुद्धिवालेके करे हुये है, जैसें घट तैसेंही यह जगत् है, तिस कारणसे जगत् बुद्धि वालेका रचा हुआ है, जो बुद्धिवाला है, सोही नगवान् ईश्वर है, ऐसाजी मत कहनां, जो यह तुमारा हेतु असिद्ध है, किस कारणसें असिद्ध है ? सो कहते है किः—पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक अपणे अपणे कारणके समूह करके उत्पन्न होये है, इस वास्ते कार्य रूप है तथा अवयवी है, इस करकें कार्यरूप है; सर्व वादीयोकूं निश्चित है. तथा ऐसेंजी न कहना जो यह तुमारा हेतु अनेकांतिक है तथा विरुद्ध है क्युंकि हमारा हेतु विपक्षसें अत्यंत हटा हुआ है, तथा ऐसेजी मत कहनां जो यह तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, क्युंकि प्रत्यक्ष अनुमान आगम करके बाध्या नही है, धर्म धर्मी अनंतर कहनेसें. तथा यहजी मत कहनां जो तुमारा हेतु प्रकरण सम है, क्युं कि अनुमानसें जो साध्य है, तिसका शत्रुनूत दूसरे साध्यके साधने वाले अनुमानके अनावसें. तथा ऐसेजी मत कहनां जो ईश्वर, पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिकोंका कर्त्ता नही है, बिना शरीरके होणेसें मुक्त आत्माकी तरें. यह पीछले तुमारे अनुमानका वैरी अनुमान है, सो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्तासिद्ध नही होणे देता; क्युं कि तुमने तो ईश्वरकूं शरीर रहित सिद्ध करकें जगत्का अकर्त्ता सिद्ध कीया, परंतु हमने तो ईश्वर शरीरवाला माना है इस कारणे तुमारा अनुमान असत्य है, अरु हमारा जो हेतु है, सो निरवद्य है. तथा ईश्वर जो है सो एक है, क्युं कि जो बहूत ईश्वर मानीयें, तब तो एक कार्य करनेमें ईश्वरोंकी न्यारी न्यारी बुद्धि हो जावे, तब तो इनके मने करने वाला तो और कोइ है नही, फेर कार्य कैसे उत्पन्न होवे ? कोइ ईश्वर तो अपणी इछासें चार पगवाला मनुष्य रच देवे, अरु दूसरा ईश्वर छ पग वाला रच देवे, तथा तीसरा दो पग वाला रच देवे, अरु चौथा आठ पग वाला रच देवे, इसी तरें सर्व वस्तुकूं विलक्षण विलक्षण रच देवे, तब तो सर्व जगत् असमंजस रूप हो जावे. परंतु सो है नही इस हेतुसें ईश्वर एकही होनां चाहिये, तथा ईश्वर सर्वगत् सर्वव्यापी है, जे कर ईश्वर सर्व व्यापक न होवे, तब तो तीन भुवनमे एक साथ जो उत्पन्न होणे वाले कार्य है, सो सर्व एक कालमें कच्चा

उत्पन्न न होगे, जैसे कुंनारादिक जहां होवेंगे, तहांही कुंनादिक कर ॥ गे, परतु देशातरमें कन्नी कार्य न कर सकेंगे. तथा ईश्वर जो है, सो ज्ञ है, जे कर सर्वज्ञ न होवेगा तव तो सर्व कार्योंका उपादान कैसें जानेगा? जव कार्योंके उपादान कारणकूं न जानेगा, तव तो तु विचित्र कैसें रच सकेगा? तथा स्ववश· ईश्वर जो है, सो स्वतंत्र किसि दूसरेके अधीन नहीं. ईश्वर अपणी इन्नासें सर्व जीवोंकूं सुख दु का फल देता है ॥उक्तं च॥ ईश्वरप्रेरितोगन्नेत्, स्वर्गं वा स्वन्नमेव वा ॥ जंतुरनीशोय, मात्मन· सुखदुःखयोरिति ॥ १ ॥ अस्यार्थ.—ईश्वरहीकी णाहीसें जगत्वासी जीव, स्वर्ग तथा नरकमें जाता है, क्युं कि ईश्वरके ना और सर्व जीव आपणे आपकूं सुख दुःखका फल देनेकूं समर्थ है, जे कर ईश्वरकूं न्नी परतंत्र (पराधीन) मानीयें, तव तो मुख्य कर्त्ता श्वर न रहेगा, अपर अपरके अधीन माननेसें अनवस्था दूषणन्नी जावेगा, इस हेतुसें ईश्वर अपणेही वश है, परतु पराधीन नहीं ॥ "सनित्यः" (सो ईश्वर) नित्य है जेकर ईश्वर अनित्य होवे तव तो सके उत्पन्न करने वाला कोइ और चाहियें, सोतो है नहीं, इस ईश्वर नित्यही है, असें पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त ईश्वर (न्नगवान जगत्का कर्त्ता है, इति पूर्वपक्षः

उत्तरपक्षः—हे वादी! जो तुमारा यह कहना है पृथिवी, पर्वत, दिक बुद्धिवाले कर्त्ताके रचे हुये हैं, सो अयुक्त है, क्युं के इस अनुमानमे व्याप्तिका ग्रहण नहीं हो सक्ता है, अरु हेतु जो होता सो सर्वत्र व्याप्तिमें प्रमाण करकें सिद्ध हुया होयाही अपणे साध्यका मक होता है, इस कहनेमें सर्व वादियोंकी सम्मति है.

अथ प्रथम तुम यह कहो जव ईश्वर जगतकूं रचता है, तो ईश्वर रीर वाला है? वा शरीर रहित है? जेकर कहोगे ईश्वर शरीर वाला है तो हमारा सरीखा दृश्य शरीर अर्थात् दिखलाइ देने वाला शरीर है अथवा पिशाच आदिकोकी तरे अदृश्य (न दिखलाइ देने वाले) शरीर करी संयुक्त है? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तव तो प्रत्यक्ष वाधा है तिस ईश्वरके विनाही अव न्नी उत्पन्न होते हुये तृण, वृक्ष, इंद्रधनुष, वादल प्रमुख

...के देखनेसें, जैसें "अनित्यशब्दप्रमेयत्वात्" जैसें यह प्रमेयत्व हेतु सा...रण अनेकांतिक है, तैसें ही यह कार्यत्व हेतुसाधारण अनेकांतिक है.

२ जेकर दूसरा पक्ष मानोगे, तब जो ईश्वरका शरीर नहीं दिखलाइ दें...ता (१) सो ईश्वरके माहात्म्य करकें नहीं दिखलाइ देता? (२) वा हमा...री बुरी अदृष्टका प्रभाव है? एतावता हमारे खोटे कर्मके प्रभावसें नहीं ...दिखलाइ देता है? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे जो ईश्वरके माहात्म्यसें ...ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, इस पक्षमें कोइ भी प्रमाण नहीं है, जिस...सें ईश्वरका माहात्म्य सिद्ध होवे परंतु हे वादी! जे कर त्रपु (जिस्त) त...पा कर पीवें ऐसी सच्ची धीज करे तो कदाचित् मान भी लेवे, अन्यथा ...नहीं. अरु इस तुमारे कहनेमें इतरेतर आश्रय दूषण भी है जब माहात्म्य ...विशेष सिद्ध हो जावे तब अदृश्यशरीर वाला सिद्ध होवे, जब अदृश्य शरी...रवाला सिद्ध होवे, तब माहात्म्य विशेष सिद्ध होवे, इतीतरेतराश्रय दूषण. ...जे कर दूसरा पक्ष पिशाचादिकोंकी तरे अदृश्य शरीर ईश्वरका है ऐसे मानोगे, ...तब तो संशय की निवृत्ति न होवेगी सो कैसें किः—क्या ईश्वर है नहीं जिस ...करकें उसका शरीर नहीं दीख पडता? तब तो बांझके पुत्रके शरीरकी तरें, ...अथवा हमारे पूर्व पापोंके प्रभावसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता; यह संशय ...कभी दूर न होवेगा जे कर कहोगे हमारा ईश्वर शरीर रहित है, तब तो ...दृष्टांत अरु दार्ष्टांतिक यह दोनो विषम हो जावेंगें और हेतु विरुद्ध हो ...जावेगा, क्युंकि घटादिक कार्योंका कर्त्ता शरीरवालाही कुंभारादिक दीख प...डता है, अरु ईश्वरकूं जब शरीर रहित मानोगे तब तो ईश्वर कुछभी कार्य ...करणेकूं समर्थ न होवेगा, आकाशकी तरें नित्यव्यापक अक्रिय जो है, ...सो अकर्त्ता है, इस हेतुसे शरीर सहित तथा शरीर रहित ईश्वरके साथ कार्यत्व हेतुकी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है, तथा तेरा हेतु कालात्ययापदि...ष्ट भी है, तेरे साध्यके धर्मीका एक देश, वृक्ष, बीजली, बादल, इंद्रधनुषादि...कोंका अबभी कोइ बुद्धिमान् कर्त्ता नहीं दीख पडता है, इस वास्ते प्रत्य...क्ष करकें बाधित होयां पीछे तुमने अपणा हेतु कह्या, इस वास्ते तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, इस तुमारे कार्यत्वहेतुसे बुद्धिमान (बुद्धिवाला) ईश्वर जगत्का कर्त्ता कभी सिद्ध नहीं होता है.

तथा दूसरी तरे जगत् कर्त्ताके खमन करनेका स्वरूप लिखते है; जो

कोइ ईश्वरवादी यह कहते है. जगत् सर्व ईश्वरका रचा हुआ है, यह
नका कहनां समीचीन नहीं है. काहेतें कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी
माणसे सिद्ध नही होता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण
तथाहि जो ठहर ठहर करकें अभिमत फलके संपादन करनेके ताई
वृत होवे, तिसका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर होनां चाहियें. जै
वसोला आरी प्रमुख शस्त्र, काष्ठके दो टुकडे करणेमें प्रवर्त्ततें हैं, तैसे
ठहर ठहर कर सर्व जगत्कूं सुख दुःखादिक जे फल देते है तिनका अ
ष्ठाता कोइ बुद्धिमान जरूर चाहिये है, तुमने ऐसें न कहनां जो वसो
आरी प्रमुख आपही काष्टके दो टुकडे करणेमें प्रवृत्त होते हैं, क्युं कि
तो अचेतन है आपही कैसे प्रवृत्त हो सके? जे कर कहोगे बसोलाय
प्रमुख स्वभावसे प्रवृत्त होते है तब तो तिनकूं सदाही प्रवृत्त होना चा
ये, बीचमें कभी ठहरनां न चाहिये, परतु ऐसे है नहीं, इस पूर्वोक्त दे
जो ठहर ठहर कर अपणे अपणे फलके साधनेवाले जीव है, तिनका
धिष्ठाता ईश्वर (भगवान्) ही सिद्ध हो सक्ता है, तथा दूसरा अनुम
जो परिमंडलादिक. वृत्त, त्र्यंश, चतुरंश, संस्थान वाले गाम, नगरा
है; वे सर्व ज्ञानवान्के करे हुये हैं, जैसे घटादिक पदार्थ, तेसंही पूर्व
संस्थान संयुक्त पृथिवी, पर्वत प्रमुख है इस अनुमानसेंभी जगत्का क
ईश्वर सिद्ध होता है, इति पूर्वपक्षः ॥

उत्तरपक्षः—जिस अनुमानसे तुमने जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध करा
सो तुमारा अनुमान अयुक्त है, क्योकि यह तुमारा पूर्वोक्त अनुमान
मारे मतमें जैसें आगें सिद्ध है, तैसेंही सिद्ध करता है, इस वास्ते सि
साधन दूषण तुमारे अनुमानमें होता है, जैसे हमारे मतमे आगें
सिद्ध है तैसे लिखते हैः—संपूर्ण यह जगत्की विचित्रता जो है सो
कर्मके फलसे है, ऐसें हम मानते है. क्योंकि यह जो भारतवर्षमें अ
क देशोमें, अनेक टापुओंमें, अनेक हेमवत आदिक पर्वतोमें, अनेक प्र
रके मनुष्यादि प्राणी जो वास करते है, अरु जो उनकूं सुख दुःखादि
अनेक तरेंकी अवस्था बण रही है, तिन सर्व अवस्थायोंका कारण क
ही जानने. दूसरा कोइ नहीं. अरु देखनेमेंभी कर्मही कारण हो सके

क्योंकि जब कोइ पुण्यवान् राजा राज करता है, तब उसके राजमें सुका
ल, निरुपद्रव देशोमें होता है, तो वो उस राजाके शुभ कर्मका प्रभाव है,
इस कारणसें जो उहर उहर जीवोंकूं फल देते है सो कर्म है कर्म जो है
सो जीवोंके आश्रय है, अरु जीव जो है सो चेतन होणेसें बुद्धि वाले है
तब तो बुद्धिवालेके अधीन हो कर कर्म उहर उहर कर फल देते हैं. इस
कारणसें सिद्ध साधन दूषण है. जे कर कहोगे हम तो विशिष्ट बुद्धिवाला
ईश्वरही सिद्ध करते है; परंतु सामान्य बुद्धिवाले जीव नहि सिद्ध करते?
तब तो तुमारा दृष्टांत साध्यविकल है, बसोला आदि प्रमुख विषे ईश्वर
अधिष्ठितका व्यापार, नही उपलंभ होता है, किंतु कुंभकारादिकोंका व्या
पार तहां तहां अन्वयव्यतिरेक करकें उपलब्ध होता है.

पूर्वपक्षः—वर्द्धक्यादिकभी ईश्वरकी प्रेरणाहीसें तिस तिस काममें प्रवृत्त
होते है, इस वास्ते हमारा दृष्टांत साध्य विकल नही है.

उत्तरपक्षः—तब तो ईश्वरभी और ईश्वरकी प्रेरणाहीसें प्रवृत्त होवेगा प
रंतु आप नही प्रवृत्त होता, सोभी ईश्वर दूसरे ईश्वरकी प्रेरणासे प्रवृत्त
होगा, तब तो अनवस्था दूषण होगा.

पूर्वपक्षः—बढइ प्रमुख जीव तो सर्व अज्ञानी हैं, इस वास्ते ईश्वरकी
प्रेरणाहीसें अपणे अपणे काममें प्रवृत्त होते है, अरु ईश्वर (भगवान) तो
सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, इस वास्ते अनवस्था दूषण नही है.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि इस तुमारें कहनेमें
इतरेतर दूषण होता है, प्रथम ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप ज्ञाता
सिद्ध हो जावे, तब अन्यकी प्रेरणा विना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है
ऐसा सिद्ध होवे, जब अन्यकी प्रेरणा विना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है
ऐसे सिद्ध हो जावे तब तो ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप जान
नेवाला सर्वज्ञ सिद्ध होवे, जब तांइ दोनोमेंसें एक सिद्ध न होवे, तब
तांइ दूसरेकी सिद्धि कभी न होगी, तथा हे ईश्वरवादी! हम तुमकूं पूछ
ते है जे कर ईश्वर सर्वज्ञ अरु वीतराग है तो काहेकूं और जीवोंकूं अ
सत् व्यवहारमें प्रवर्त्तावे है? क्योंकि जो विवेकी होते है वे मध्यस्थही
होते हैं. फेर तो जीवोंकूं सत्व्यवहारहीमें प्रवृत्त करना चाहियें परंतु
असत् व्यवहारमें नही प्रवृत्त करनां चाहियें अरु ईश्वर तो असत् व्यवहा

रोंमेंजी जीवोंकूं प्रवृत्त करता है,तब तो ईश्वरकूं सर्वज्ञ और वीतराग क्ष
कर कहना चाहियें ?

पूर्वपक्षः–ईश्वर (जगवान्) तो सर्व जीवोंकूं शुन कर्म करनेहीमें प्र
त्त करता है, इस वास्ते जगवान् सर्वज्ञ और वीतरागही है, अरु जो जी
अधर्म करनेवाले है, उनकूं असत् व्यवहारमें प्रवृत्त करकें पीछे नरकपा
करकें उनकूं फल देता है, जो फेर वो जीव इस दुःखसें मरता हुआ फेर प
न करे, इस वास्ते उचित फल देणे करकें ईश्वर (जगवान्) विवेकवान् अ
वीतराग सर्वज्ञ है, उसमें कोइजी दूषण नहीं है.

उत्तरपक्षः–यहजी तुमारा कहना विना विचारेका है,क्योंकि प्रथम पा
करनेमेंजी तो ईश्वरही प्रवृत्त करता है, ईश्वर विना दूसरा तो कोइ प्रेरक
नहीं. अरु जीव आप तो कुछ कर सक्ता है नहीं,क्योंकि जीव तो अज्ञानी
पापमें वा धर्म्ममें आप नहीं प्रवृत्त हो सक्ता,तो फेर प्रथम पाप करानेकूं
वोंकूं प्रवृत्त करनां, पीछे नरकमें मालके उस जीवकूं फल जुक्तानां, पीछें ध
में प्रवृत्त करनां, क्या यही ईश्वरकी ईश्वरता, अरु विचार पूर्वक करणां है

पूर्वपक्षः–ईश्वर (जगवान्) जीवोंकूं कदेइ नहीं प्रवृत्त कर्त्ता, कि
जीव आपही प्रवृत्त होता है, तब तो जो जीव जैसा जैसा कर्म कर
है, उस कर्मके वशसें ईश्वर (जगवान्) जी तैसा तैसा फल उन जीवों
देता है, जैसें राजा राज करता है, परतु राजा चोरकूं अैसें नहीं कह
जो तूं चोरी कर, किंतु चोरी करनेकी मनाइ तो करता है, फेर जे कर
चोर जो आपही चोरी करेगा, तब दंम तो राजा देवेगा, तैसें ईश्वर (ज
वान्) पाप तो नहीं कराता, परंतु पाप करने वालोकों दंम देता है.

उत्तरपक्षः–यहजी तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि दूसरे जो रा
है, सो चोरोंकू निषेध करनेमें समर्थ नहीं है; क्योंकि कैसाही उग्र (कठिन
हुकम वाला राजा होवे और मन वचन काया करकें कितनाही चो
आदिक पाप कर्म मने करा चाहे, परतु लोक चोरी आदिक पापकर्म
दापि सर्वथा न छोडेगे, अरु ईश्वर (जगवान्) तो सर्व शक्तिमान् तु
मानते हो, तो फेर सर्व जीवोंकूं पाप करनेमे प्रवृत्त होतोंकूं क्यों नहीं
ने करता ? जब ईश्वर जीवोंकूं पाप करता मने नहीं करता, तब तो ई
रही जीवोंपासों पाप कराता है, फेर उनकू दंम देता है, तो फेर वा

ःक्त दूषण है. जेकर कहोगे कि जीवोंकूं पापमें प्रवृत होतोंकूं ईश्वर म
करने समर्थ नही, तो फेर ऊंचे शब्दसें ऐसें न कहना जो "सर्व कु
ईश्वरनेही करा है, और ईश्वर सर्व शक्तिमान् है" तथा जेकर जीव पा
ो आपही करता है, अरु धर्मभी आपही करता है, तो फलभी आप
भोग लेवेगा, तो फेर हे पूर्वपक्षी! ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना व्यर्थ है.
पूर्वपक्षः—धर्म अधर्म तो जीव, आपही करते हैं, परंतु उनका फल
ान तो ईश्वरही कर्त्ता है, जीव जो है, सो आपणे करे हुवे धर्म अधर्म
फल आप भोगनेकूं समर्थ नही है, जैसें चोर चोरी करता है सो
ी तो आपही करता है, परंतु उस चोरीका फल (बंदीखाना) भोगना
प नहीं भोग सक्ता, कोइ दूसरा बंदीखानेमें डालने वाला चाहियें.
उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि जब जीव, धर्म
र्म करने समर्थ है, तो फेर फल भोगनेमें समर्थ क्युं नही? इस सं
रमें जैसा जैसा जो जीव पाप, धर्म करता है, तैसा तैसा पाप धर्मके
त भोगनेमें निमित्तभी बन जाता है, जैसें चोर चोरी करता है, तिस
रीका फल राजा देता है, तथा कुष्ट हो जाता है, तथा शरीरमें कीडे
जाते हैं, तथा अग्निमें जल मरता है, तथा पाणीमें डूब मरता है,
ा खड्गसें कट जाता है, तथा तोप बंदूककी गोला गोलीसें मर जाता
तथा हाट, हवेली,औ माटीके खानेके नीचें दब कर अनेक तरेके संक
भोग कर मर जाता है, निर्धन हो जाता है, इत्यादि असंख्य निमित्तों
अपणे करे कर्मके फलकूं भोक्ता है. इहां विना निमित्तके दूसरा ईश्वर
लदाता कोइ नही दीखता, ऐसें ही नरक स्वर्गादि परलोकमे भी शुभा
न कर्म फल भोगनेके असंख्य निमित्त है. जे कर कहोगे जो परस्त्री गमन
रनेसे इत्यादि पापफलमें क्या निमित्त मिलेगा, जिसके जोगसें फल भो
ना होगा? यह बात तो मै (ग्रंथकार) नही जानता, जो इस पुण्य पा
का यह निमित्त तुमकूं मिल कर फल होगा, क्युंकि मेरेकूं इतना ज्ञान
ही जो ठीक ठीक पूरा पूरा निमित्त बता सकूं? परंतु इतना कह सक्ता
कि जो जो जीव पुण्य पाप करते है, उनके फल भोगनेमें अवश्य कोइक
मित्त जरूर होगा. अरु इस तरेंसें फल भोगेगा, यह निमित्त मिलेगा,
मुक देशमे, अमुक कालमे, इत्यादि सर्व प्रत्यक्षपणे तो अर्हंत, भगवंत

(परमेश्वर) सर्वज्ञके ज्ञानमें नासन होता है. निमित्त विना कोऽनी फ
हो नोग सक्ता. इस वास्ते ईश्वर फलदाता कल्पना व्यर्थ है, क्या य
बुद्धिमानोका कहना है कि जो रोटी पका तो सक्ता है, परतु आप
नही सक्ता, तथा ईश्वरकूं फलदाता कल्पना करनेसें एक औरनी
तुम परमेश्वरकूं लगाते हो, जैसें किसी पुरुषकूं किसी दूसरे पुरुषने
दि शस्त्रसें मारे, तब तो मरने वालेने जो संकट पाया, सो किसके
गसें ? किसकी प्रेरणासें पाये ?,जे कर कहोगे ईश्वरने उस शस्त्र वालेकूं प्रे
तब तिसने उसकूं मारा, तो फेर उस मारने वालेकूं फांसी क्युं मि
है ? क्या ईश्वरका यही न्याय है, जो प्रथम पुरुषके हाथसें उसकूं म
मालनां, अरु पीछे फेर उस मारने वालेकूं फासी देनां, इस तुमारे
ऽने ईश्वरकूं बडा अन्यायी सिद्ध करा है जे कर कहोगे ईश्वरकी प्रे
के विना ही उस पुरुषने दूसरे पुरुषकूं मारा, अरु दुःखदीया, तब तो
मित्तहीसे सुख दुःखका नोगनां सिद्ध हो गया, फेरनी ईश्वर फलद
कल्पना करना यह अल्प बुद्धिवालोंका काम है, तथा हे ईश्वर वा
तुमकूं एक और वात पूछते है कि जो धर्मका फल है कि उन्मत्त देवां
ओंके सुकुमार शरीरका स्पर्श करना सो तो जीवोंकूं सुखका कारण है,
वास्ते ईश्वरने यह फल तो जीवोंकूं दीया. परतु जो अधर्मका फल
रकके कुंभमें पडनां, नाना प्रकारकें दुःख,(संकट) त्रास कुंनीपाक चर्म
र्त्तन, अग्निमें ज्वलना, इत्यादि महा दुःख ईश्वर उस जीवकूं क्यों देता

पूर्वपक्ष —उस जीवने जो पाप करे थे, उनका फल उस जीवकूं
र होनां चाहियें इस वास्ते ईश्वर फल देता है

उत्तरपक्ष —इस तुमारे कहनेसें तो ईश्वर व्यर्थ ही जीवोंकूं पीडा
है, क्योंकि जब ईश्वर उस जीवकूं पापका फल न देगा. तब तो जीव
र्मका फल आप तो नोग सक्ता नहीं. फेर नतो शरीर धारेगा अरु
न पापनी न करेगा, फेर वैठे वेगाये ईश्वरकूं क्या गुदगुदी उठती है
फेर उन जीवोंकूं नरकमें माल देता है ? जो मध्यस्थ नाव वाला अरु
रम दयालु होता है. वो किसी जीवकूं कनी निरर्थक पीडा नहीं देता.

पूर्वपक्ष —ईश्वर (नगवान्) अपणी क्रीडाके वास्ते किसीकूं नरकमें
ता है, किसीकूं तिर्यचयोनिमें उत्पन्न करता है, किसीकूं मनुष्य जन्म

नीकूं स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीट विलाप करते हैं, तब ईश्वर अपणी रची हुइ बाजीका तमासा देखता इस वास्ते जगत् रचता है

उत्तरपक्षः—जब ऐसे है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नही है, क्युं कि नकी तो क्रीडा होती है, अरु रंक जीव तडफ तडफके महा करुणा द हो कर मर रहे है, तो फेर ईश्वरकूं दयालु माननां यह कैसी तुमा अज्ञानता है? क्योकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते है, वै कदा किसी जीवोंकूं दुःख दे कर क्रीडा नही करते, तो फेर ईश्वर क्रीडार्थी नें हो सक्ता है? तथा क्रीडा जो है, सो सरागीकूं होती है अरु ईश्व (जगवान्) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (जगवान्कूं) क्रीडा रसमें मग्न णा कैसे सजवे?

पूर्वपक्षः—हमारा जो ईश्वर है सो रागी द्वेषी है, इस कारणसें उसमे डा करणेका सजव हो सक्ता है

उत्तरपक्ष.—तब तो तुमने मुख चोपडनेके बदले आपणा मुख काला र लीया, क्योकि जब रागी द्वेषी होगा, तब तो ईश्वर शेष जीवोंकी तरें रागी हुवा, वीतराग न हुवा, अरु सर्वज्ञजी न हुवा, तब तो हमारे सरी हुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यों कर हो सक्ता है?

पूर्वपक्ष.—हम तो ईश्वरकूं राग द्वेष संयुक्त सर्वज्ञ मानते हे, इस वास्ते वै जगत्का कर्त्ता है

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें कोइजी प्रमाण नही है. जिस प्रमाण ईश्वर रागी, द्वेषी, सर्वज्ञ सिद्ध होवे?

पूर्वपक्ष—ईश्वरका स्वजाव ही ऐसा है, जो रागी द्वेषीजी होनां. अरु र्वज्ञजी रहना, स्वजावमें कोइ तर्क नही हो सक्ती जैसे अग्नि तो दा क है, परंतु आकाश दाहक क्यो नही? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया ायगा जो अग्निमें दाहक स्वजाव है, आकाशमें नही. इसी तरे ईश्वर ी स्वजावसेंही रागी, द्वेषी अरु सर्वज्ञ है

उत्तरपक्ष—ऐसे तो कोइक वादी जी कह सक्ता है जो यह हमारे न्मुख गद्धा खडा है, सो सर्व जगत्का रचने वाला है. जे कर कोइ वादी हेकि किस हेतुसें यह गर्दज जगत्का रचने वाला है? तब तो तिसकूं

अैसा उत्तर दीया जायगा जो इस गर्दनका स्वनाव ही अैसा है, जो गत्कूं रचके राग द्वेष वाला सर्वज्ञ हो कर फेर गर्दन बन जाता है, तरें महिष आदिक सर्व जीव जगत्के कर्त्ता वादी सिद्ध कर देवेंगे, तो ईश्वर क्या हुआ जो कुछ अपने मनमें मान्या सो बना लीया, तो ईश्वरकूं बडा कलंक लगाना है. इस हेतुसें ईश्वर (नगवान्) सर्वज्ञ वीतराग है, फेर क्रीडाके अर्थें कनी जगत्कूं न रचेगा, तथा हे दी! तेरे कहनेसें जब ईश्वरनेही सर्व कुछ रचा है तब तो सर्व त्रेशठ पाखंम मतके सर्व शास्त्रनी ईश्वरहीने रचे हैं, अरु शास्त्र सर्व पसमें विरुद्ध हैं, तब तो अवश्य कितनेक शास्त्र सत्य अरु कितनेक सत्य है, तब तो जूठ अरु सत्य दोनोंका उपदेशक ईश्वर ही ठहरा, तब ईश्वर आपही सर्व मतांतरीयोंकों आपसमें लडाता है, हजारों मनुष्य इन मतोंके जगडोंमें मर जाते हैं, तब तो ईश्वरने शास्त्र क्या एक जगत्में बडा उपद्रव रचा, अैसे जूठे सच्चे शास्त्र रचनेवालेकूं महा ते कहना चाहियें, नतु ईश्वर. जे कर कहोगे ईश्वरने तो सच्चे शास्त्र ही हैं, जूठे नहीं रचे जूठें तो जीवोनें आपही बना लीयें है, तब तो ने जगत् नी नहीं रचा होगा, जगत् नी जीवोंने ही रचा होगा, ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध हुआ नहीं.

तथा तुमने जो पूर्वें दूसरा अनुमान करा था, कि जो जो आकार वस्तु है, सो सो सर्व बुद्धिवालेकी रची हुइ है, जैसें पुराना कूवा यद्यपि कारीगर तहां नहीनी उपलब्ध होता, तोनी कारीगर ही अनुमानसें सिद्ध होगा, जैसे नवे कूवेका कर्त्ता उपलब्ध होता है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां समीचीन नहीं, क्यों कि आकार वा हेतु, तुमारा संध्या, बादल, सर्प्पकी वंबी प्रमुख संस्थान वालोमें है परतु बुद्धिवाला कर्त्ता कोइ नहीं है. जे कर कहोगे बादल, इंद्रधनुष सर्प्पकी वंबी प्रमुख संगण वाले बुद्धिमान्के करे हुये नहीं माने जाते है तैंसे ही पृथिवी, पर्वत नी बुद्धिमानके करे हुये नहीं मानने चाहियें.

इन पूर्वोक्त प्रमाणोसे किसी तरें नी ईश्वर जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता. अब जे पुरुष, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानते है, उनसें हम यह कहेते है, कि जब तक इन हमारी युक्तियोंका उत्तर सर्वथा न दीया जावें

ब तांइ ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता न मानना चाहियें. जब कोइ ईश्वरवादी न युक्तियोंका उत्तर, पूरा दे देवेगा, तब तो हमभी जगत्का कर्त्ता ईश्वर ान लेवेंगें, अन्यथा कभी नही माना जावगा.

पूर्वपक्षः—ईश्वर तो जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, परंतु एक ईश्वर है ऐसा तो सिद्ध होता है कि नही ?

उत्तरपक्षः—ईश्वर एकही है, यह बात सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं ; तब तो ईश्वर एक सिद्ध कैसे होवे ?

पूर्वपक्षः—ईश्वरके एकत्व सिद्ध होणेमें यह प्रमाण है, कि जहां बहुते कठे हो कर एक कामकूं करने लगते है, तब तो अन्य अन्य मति होणेसें क कार्यभी नहीं बन सक्ता, ऐसेही जब ईश्वर अनंत होंगे, तब तो सृष्टि मुख एकही कार्यके करनेमें न्यारी न्यारी मति होणेसें असमंजस कार्य त्पन्न होवेगा, इस वास्ते ईश्वर एकही होना चाहियें.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे प्रमाणसें तो ईश्वर, एक नहीं सिद्ध होता है, क्यों कि ईश्वर तो किसी वस्तुका कर्त्ता उक्त प्रमाणोंसें सिद्ध नहीं होता है, तथा एक मधुछत्तेके बनानेमें सर्व मक्षीयोंका एक मता तो हो जाता है, अरु ईश्वर, परमात्मा, निर्विकार, निरुपाधिक, ज्योतिःस्वरूपोंका एक मता नहीं हो सक्ता, यह बडे आश्चर्यकी बात है ? क्या तुमने ईश्वरोंकूं कीडों सेंभी बुद्धिहीन, अभिमानी, अरु अज्ञानी बना दीया. जो उन सर्वका एक मता नहीं हो सक्ता ?

पूर्वपक्षः—मक्षिका जो बहुत एकठी हो कर एक मधुछत्ता आदिक कार्य बनाती है, तहांभी एक ईश्वरहीके व्यापारसे एक मधुछत्ता बनता है.

उत्तरपक्षः—तब तो घडा बनाना, चोरी करना, परस्त्रीगमन करना, इत्यादिक सर्व काम, ईश्वरके व्यापारसें बने सिद्ध होंगे, अरु जीव सर्व, अकर्त्ता सिद्ध हो जावेगे; फेर पुण्य पापका फल किसकूं होगा ? अरु नरक स्वर्गमें जीव, क्यों भेजे जायगे

पूर्वपक्षः—जीव, कुंभारादिक चोरादिक सर्व स्वतंत्रतासें अपना अपना कार्य करते है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है.

उत्तरपक्षः—क्या मक्षीयोंहीने तुमारा कुछ अपराध करा है, जो उनकूं स्वतंत्र नहीं कहते हो ? इस तुमारे एक ईश्वरके माननेसें तो ऐसाभी प्र

तीत होता है,जे कर अनंत ईश्वर माने जावे, तब जो कदाचित् एक रचनेमें विवाद हो जावे, तो फेर उस विवादकूं दूर कौन करे? गिर, तो कोइ है नही, तथा एक ईश्वरकूं देख के दूसरा ईश्वर ईर्ष्या करेगा, यह मेरे तुल्य क्युं है? इत्यादिक अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जावेंगे. वास्ते ईश्वर एकही मानना चाहियें, यहनी तुमारी समज घुणकी खाइ हुइ है, क्युं कि जब ईश्वर (जगवान्) सर्वज्ञ है, तब तो के ज्ञानमें एकही सरीखा ज्ञान होनां चाहिये, तो फेर विवाद क्यों होगा? तथा ईश्वर तो राग, द्वेष, ईर्ष्या, अनिमानादि सर्व दूषणोसें है,तब तो दूसरे ईश्वरकूं देख कर ईर्ष्या अनिमान क्यों कर करेंगे? जे ईश्वर हो करनी आपसमें विवाद,जगडे,ईर्ष्या, अनिमान करेगे, तो तिन रोंकूं ईश्वरही कैसें माना जायगा? जब जगत्कर्त्ताही ईश्वर सिद्ध नहीं हो तब तो विवाद जगडाही ईश्वरोंका आपसमें काहेकूं होगा? इस वास्ते ईश्व अनंते माननेमे कुठनी दूषण नही. तथा "सर्वगतत्व" ईश्वर सर्व व्यापक है यहनी जो मानते है, सो नी प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि जब ईश्वरकूं सर्व व्यापक, वादी मानते हैं, तब शरीर करके व्यापक मानते हें? वा ज्ञान स्व रूप करके व्यापक मानते है? जे कर शरीर करकें ईश्वरकूं व्यापक मानें तब तो ईश्वरका शरीरही सर्व जगा समा जायगा, दूसरे पदार्थोके रहने वास्ते कोइनी अवकाश न मिलेगा? इस वास्ते ईश्वर देह करकें तो सर्वत्र व्यापक नहीं है.

प्रश्न.—क्या ईश्वरकेनी शरीर है, जो तुम अैसे विकल्प करते हो?

उत्तर —हे नव्य! अैसेनी इस जगत्मे मत है, जो ईश्वरकूं देहधारी मानते हैं

प्रश्न —वो कोनसे मत है, जिनोने शरीरधारी ईश्वर माना है?

उत्तर —तौरेतनामा ग्रंथ है, तिसमे अैसे लिखा है, जो ईश्वरने अब्राहामके यहा रोटी खाइ, इस लिखनेसे, तथा याकूबके साथ कुस्ती करी, इन लिखनेसे प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है तथा शंकरदिग्विजयके दूसरे प्रकरणमें शंकरस्वामीका शिष्य, आनंदगिरि जो कि इसी ग्रंथकी आदिमें लिखता है, जो मैं सर्वज्ञ हुं सो लिखता है कि जब नारदजी ने देखा की इस लोकमें बहुत कपोलकल्पित मत उत्पन्न हो गये है, अरु सनातन धर्म लुप्त हो गया है, तब तो नारदजी शीघ्रही ब्रह्मा

जीके पास पहुंचे, अरु जा कर कहने लगे कि हे पिताजी! तुमारा मत तो
ाय· नहीं रहा, अरु लोकोंने अनेक मत बना लीयें हे. सो इस वातका
छ उपाय करनां चाहियें. तब तो ब्रह्माजी बहुत काल तांइ चिंता करकें
ुत्र, मित्र, भक्त जनोंकूं साथ ले कर अपणे लोकसें चल कर शिवलोक
ं प्रवेश करते हुये. आगें क्या देखते है कि जैसे मध्यान्हमें कोटि सूर्या
ा तेज तथा कोटि चंद्रमा समान शीतल, और पांच जिसके मुख हें, चंद्
ा मुकुट है, बिजलीवत् पिंगल जटाका धारक, औ पार्वती जिसके वामा
र्ध अंगमें है, सर्वका ईश्वर महादेव देखा. फेर ब्रह्माजीने नमस्कार करकें
तुति करी, और कहते हुये कि जो महादेव, सर्वज्ञ, सर्वलोकेश, सर्व साक्षी,
र्वमय, सर्वकारण, इत्यादि इस लिखनेसें प्रगट प्रतीत होता है जो ई
वर देहधारी है, जे कर देहधारी ईश्वर न होवे, तो फेर पांच मुख कैसें हो
? इस लिखनेसें ईश्वर शरीर रहित नहीं सिद्ध हो सक्ता है. अब जे
र शरीरधारी ईश्वर होवे तब तो इस लोकमें एकिला ईश्वरही व्यापक
ो कर रहेगा, दूसरे पदार्थोंके वास्ते कोइ दूसरा लोक रहनेकूं चाहियें ?
े कर कहोगे ज्ञानात्मा करके ईश्वर सर्व व्यापक है, तब तो सिद्ध सा
य नहीं है, हमभी तो ज्ञानस्वरूप करकें भगवान्कूं सर्वव्यापी मान
े हें, परंतु जे कर तुमारे वेदसें न विरोध होवे? क्युंकि वेदोमें शरीर कर
हीं सर्व व्यापक कहा है॥ तथाच ॥ "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो वि
श्वतो बाहुरुत विश्वतस्पादित्यादि श्रुतेः" इस श्रुतिसे सिद्ध है, जो ईश्वर
शरीर करकें सर्व व्यापक है, फेर तो पूर्वोक्त दूषण है, इस वास्ते ईश्वर
व्यापक नहीं. तथा तुम कहते हो जो ईश्वर सर्वज्ञ है, परंतु तुमारा ईश्वर
सर्वज्ञ भी नहीं. क्यों के हम जो ईश्वर सृष्टिकर्त्ताके खंमने वाले है, सो
उससें विपरीत चलते है, फेर हमकूं उसने क्यों रचा? जे कर कहोगे ज
न्मांतरोंमें उपार्जित जो जो तुमारे शुभाशुभ कर्म, तिनोके अनुसारसें तुम
कूं ईश्वर फल देता है, तो फेर तुमारे कहनेहीसें ईश्वरके स्वतंत्रपणेकूं ज
लांजलि दीनी गइ, क्यों कि जब हमारे कर्मोके बिना ईश्वर फल नहीं दे स
का, तब तो ईश्वरके कुछ अधीन नहीं, जैसें हमारे कर्म होंगे, तैसा हमकूं
फल मिलेगा. जे कर कहोगे ईश्वर जो इछे, सो करे, तब तो क्यों न जानता
है जो ईश्वर क्या करेगा, धर्मीयोंकूं नरकमे, पापीयोंकूं स्वर्गमे भेजेगा? जे कर

कहोगे परमेश्वर न्यायी है, जैसा जैसा जो करेगा, उसकूं वैसा वैसा देता है, तो फेरभी वोही परंतत्रतारूप दूषण ईश्वरमें लगता है, ईश्वर नित्य है, यह भी कहनां उनका अपणे घरहीमें सुंदर लगता क्यों कि नित्य तो उस वस्तुकूं कहते हैं, जो तीनों कालोंमें एक रूप जब ईश्वर नित्य है, तो क्या जगत्को बनानेवाला स्वभाव है वा जे कर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वभाव है, तब तो ईश्वर निरंतर गतकूं रचाही करेगा, कदापि रचनेसें न बंध होगा, क्योंकि जगत्के नेका स्वभाव तो ईश्वरमें नित्य है. जेकर कहोगे ईश्वरमें जगत् र स्वभाव नही है, तब तो ईश्वर कदापि जगत्कूं न रचेगा. क्योंकि जगत् नेका स्वभाव ईश्वरमें हैही नही. तथा जे कर ईश्वरमें एकांत नित्य रचनेका स्वभाव है, तब तो प्रलय कदेइ न होगी, क्यों कि ईश्वरमें करनेका स्वभाव नही है. जे कर कहोगे ईश्वरमे रचनेकी अरु प्रलय की दोनोही शक्तियां नित्य है, तब तो न कदापि जगत् रचा जायगा न कदेइ प्रलय होगी, क्योंकि दो शक्तियां परस्पर विरुद्ध एक जगे एक कालमें कदापि नही रहेगी; जे कर रहेगी, तब तो जगत् न रचा जावेगा न प्रलय करा जयगा, क्योंकि जिस कालमें रचने वाली शक्ति रचेगी तिसी कालमे प्रलय करनेवाली शक्ति प्रलय करेगी, अरु जिस कालमें प्रलयशक्ति प्रलय करेगी, तिसी कालमें रचने वाली शक्ति रच देवेगी, असें व शक्तियोंका परस्पर विरोध होगा, तब तो न जगत् रचा जावेगा, न प्रलय कीया जावेगा. तब तो हमाराही मत सिद्ध हो गया, क्योंकि न किसीने जगत् रचा है, अरु न इस जगत्की कदेइ प्रलय होती है, तातें यह जगत् अनादि, अनंत सिद्ध हो गया. जे कर कहोगे ईश्वरमें दोनोंही शक्तियां नहिं है, फेरभी तो जगत् न रचा, न प्रलय किया जायगा, तब तो अनादि, अनंत सिद्ध हुवा. जेकर कहोगे ईश्वर जब चाहता है, तब रचनेकी इछा कर लेता है, अरु जब प्रलय करता है, तब प्रलयकी इछा कर लेता है, इसमें क्या दूषण है? तब तो ईश्वरकी शक्तियां अनित्य होवेगी, सो सुखेन अनित्य होवे इसमें हमारी क्या हानी है? जे कर ईश्वरकी शक्तियों अनित्य है, तब तो ईश्वर भी अनित्य हो जावेगा, क्यों कि ईश्वर अपणी शक्तियोंसें अभेद है. जे कर कहोगे शक्तियां ईश्वरसें

रूप है, तबजी शक्तियांके नित्य होणेसें जगत् न रचा जायगा, न प्र न कीया जायगा, अरु ईश्वर अकिंचित्कर सिद्ध हो जावेगा, क्यों कि ज ईश्वर सर्व शक्तियोंसें रहित है, तब तो ईश्वर कुछजी करने समर्थ नहीं फेर जगत् रचनेमें क्यों कर समर्थ होवेगा? अरु शक्तियोंका उपादा कारण कौन होवेगा? अरु ईश्वरका अनाव हो जावेगा. क्योंकि जब वरमें शक्तिही कोइ नही, तब तो ईश्वर काहेका? वो तो आकाशके फू समान असत् है, फेर जगत्का कर्त्ता किसकूं मानोगे?

अथाग्रे खरड ज्ञानीयोंका ईश्वरवाद लिखते हैं. खरडज्ञानी कहता है, जगत्में जितने पदार्थ है, उनके विलक्षण विलक्षण संयोग, आकृति, था गुण, और स्वजाव, दीख पडते हैं, जे कर इनका तथा इनके निय का कर्त्ता कोइ न होगा, तो ये नियम कजी न बनेंगे, क्योंकि जड प र्थोमें तो मिलने वा जुदे होनेकी यथावत् समर्थता नहीं, इस हेतुसें ई र कर्त्ता अवश्य होनां चाहिये.

उत्तर.—प्रथमही हम जगत् कर्त्ता ईश्वरका खंमन कर चूके है, तो र आप जगत् कर्त्ता क्यों कर मानते है? अरु जो तुमने लिखा है कि गत्के पदार्थोंमें न्यारे न्यारे स्वजाव दीख पडते है, इस्सें ईश्वर सिद्ध होता है, इस कहनेसें ईश्वर जगत्कर्त्ता नही सिद्ध होता, क्यों कि सर्व प र्थोंमे अनंत शक्तियां हैं. सो अपणी अपणी शक्तियोसें सर्व पदार्थ अ पणें अपणें कार्यकूं करते है, इनके मिलनेमें निमित्त यह है, एक तो का ल, दूसरा पदार्थका स्वजाव, तीसरी नियती, चउथा जीवोंका कर्म, पां चवा जीवोंका उद्यम, इन पूर्वोक्त पांचों निमत्त बिना कोइजी और निमित्त नही है, इन पांचोंका स्वरूप, आगें चल कर लिखेंगे?

प्रत्यक्षमेंजी इन पांचोंके निमित्तसें ही सर्व कुछ उत्पन्न होता है, जैसें बीजांकुर जब बीज बोया जाता है, तब कालही यथानुकूलही होना चा हिये, अरु बीज तथा जल, पृथिवी, इत्यादिकोंका स्वजावजी अवश्य होना चाहिये. तथा नियतीजी जो जो पदार्थोंका स्वजाव है, तिन पदार्थों का तथा तथा जो परिणाम होता है, तिसका नाम नियती है, सोजी कारण है. तथा अष्टविध कर्मजी कारण है तथा पुरुषाकार (जीवोंका उद्यमजी) कारण है. ए पांचो वस्तु अनादि है, कीसीनेजी प्रथम रची

नहिं है, क्यों कि जो जो वस्तुका स्वभाव है, सो सो सर्व - अना- है जे कर वस्तुमें अपणा अपणा स्वभाव न होवेगा, तब तो कोइ सत्रूप न रहेगी. सर्व शशशृंगवत् असत् हो जायगी; अरु जो दृष्ट पृथिवी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, आदि पदार्थ दीख पडते है इसी तरें अनादि रूपसें सिद्ध है, अरु पृथ्वी उपर जो जो रचना ती है, सो सर्व प्रवाहसें ऐसेंही चली आती है; अरु जो जो ज नियम है, वे सर्व इन पांचो निमित्तोंके विना नही हो सके है. इ स्ते सर्व पदार्थ अपणे अपणे नियममें है, जे कर तुम इव्यकी श ईश्वर मान लोगे, तब तो हमारी कुछ हानी नहीं, क्यों कि हम ५ अनादि शक्तिका नाम ईश्वर रख लेवेंगे, अरु तुम अनादि इव्यकी कूं ईश्वर मान लेवेंगे, तब तो तुमारा हमारा विवाद दूर हो जावेगा. तुमने लिखा जो जडमें यथावत् मिलनेकी शक्ति नहीं है, मारा कहना मिथ्या है, क्यों कि जगत्में अनेक तरेके जड पदार्थ अ आप ही इन पूर्वोक्त पाच निमित्तोंसें आपसमें मिल जाते हैं, जैसे र किरणां बादलोंमें पडती है, तब इंद्रधनुप बन जाता है, तथा संध होनां, पांच वर्णके बादलोंकी चित्री हुइ घटा, चंद्रमा सूर्यके गिरद कुं आकाशमें पवनोंके मिलनेसें जल और अग्निका उत्पन्न होना, अरु व होनेसे उन पूर्वोक्त पांचो निमित्तोसें अनेक प्रकारकें घास तृणादि अ प्रकारकी वनस्पति, तथा अनेक प्रकारके कीट पतंग प्रमुख जीव उ हो जाते है, इन पांचो निमित्तोंके विना किसी वस्तुको बनाता हुआ र नहीं दिखलाइ देता; जरा पक्षपात छोड कर विचार कर देखो के, कर्त्ता किस तरेंसे हो सक्ता है? क्यो कि पृथिवी, आकाश, चंद्र, सूर्य. दिक तो इव्यार्थिक नयके मतसें अनादि है. फेर इनके वास्ते पूछन यह किसने बनाये हैं? तो फेर हम पूछते है, ईश्वर किसने बनाया? कर कहोगे ईश्वर तो, किसीनेही बनाया नहीं. वो तो अनादिसें बनायाही है, तो फेर पृथिवी प्रमुख कितनेक पदार्थभी बने बनाये नादिसेंही है. ऐसे माननेमें क्युं लज्जा करते हो?

खरड ज्ञानी कहते है की स्वभावसे जगत्की उत्पत्ति जो मानते हैं, उ मतमें यह दोष आवेंगे. यह पृथिवी स्व होतो. तो इसका कर्त्ता

ता न होता, इस पृथिवीसें भिन्न दशमे कोश अंतरिक्षमें दूसरा आपसें प पृथिवी बन जाती, सो आज तक नही बनी, इस्सें जाना जाता है, ईश्वर कर्त्ता है.

उत्तर.–तुमकूं कुछ विचार है, वा नहीं? जे कर है, तो पूर्वोक्त तुमारा ना अयुक्त है, क्यों कि जब हम तो यह कहते है, जो पृथ्वी आदिक नादि है, किसीनें नहीं बनाये अरु तुम कहते हो आकाशमेंउंची दश को अंतरे दूसरी पृथिवी क्यों नहि बन जाती? अब विचारो यह तुमारा मूर्खताइका है, वा नहीं? तथा इस प्रश्नके उत्तरमें जो कोइ तुमकू पूछे, ईश्वर स्वनावसें बना होवे, तब तो ईश्वरसें अलग दूसरा ईश्वर क्यों हीं उत्पन्न होता? जे कर कहोगे ईश्वर तो अनादि है, वो क्यों कर नवा नरा ईश्वर बन जावे? इस तरे हमनी कह सक्के हे जो पृथ्वी अनादि है, वीन नही बनती, तो फेर दश कोश आकाशमे क्यों कर बन जावे?

पूर्वपक्ष.–जे कर आपसें आपही वस्तु बनती होवे, तब सर्व परमाणु कठे क्यों नही मिल जाते? अथवा एकेक हो कर विखर क्यों नही जाते?

उत्तरपक्ष.–हमारी कुछ आज्ञा जड नहीं मानते है, जो हमारे कहेसें एक होकर एकरूप हो जावे, अथवा एक एक हो कर विखर जावे, पूर्वोक्त पांच निमित्त मिलनेके जहां होंगे, तहां मिल जावेंगे, जहां निमित्त नही होवेगे, तहां नही मिलेंगे.

पूर्वपक्षः–सर्व परमाणुओंके एकत्र मिलनेके पांच निमित्त क्यों नहीं मिलते?

उत्तरपक्ष.–जो अनादि संसारकी नियतीरूप मर्यादा है, वो कदापि अन्यथा नही होती, जे कर हो जावे, तब तो संसारमें जो जीव जन्म लेते है, सो सर्व, स्त्रीयोंहीके वा पुरुषोंकेही रूपसें क्यों नहीं उत्पन्न होते? जे कर कहोगे जेसें जैसे कर्म करे थे, वैसा वैसा ही उनकूं फल मिलता है, फेर एक स्त्री आदिक स्वरूपसे कैसें उत्पन्न होवे? तब हम यह पूछते है, जो सर्व जीवोंने स्त्री होनेके वा पुरुष होनेके न्यारे न्यारे कर्म क्यो करे? एकही सरीखे कर्म क्यों न करे? जे कर कहोगे संसारमे यह सनातनसें रीति है, जो सर्व जीव, एक सरीखे कर्म कदापि नही करते. तब तो परमाणुओंमेंनी यही सनातन स्वनाव है, जो एकत्र कदेही न मिलना, तथा एक एक हो कर विखरनी नही जानां? हे पूर्वपक्षी! यह तुमारा ई

श्वर जगत् जो रचता है, सो तुमारे कहनेसें आगें अनंत सृष्टियां का है, अरु एकैक जीवकूं अशुभ कर्मोंका फल, अनंत वेर दे चूका है, भी वो जीव आज तांइ पाप करतेही चले जाते है, तो फेर इंस ईश्वरकूं क्या लाभ हुआ? जो अनंत कालसें इसी विडंबनामें फस है? तथा ईश्वरकूं सृष्टि रचनेसें क्या प्रयोजन था?

पूर्वपक्षः—ईश्वरकूं सृष्टि नहीं रचनेका क्या प्रयोजन था?

उत्तरपक्षः—वाह रे बछडेके बाबा! यह तूंने क्या उत्तर दीया, क्या उत्तर देखके विद्वान् तेरा उपहास्य न करेंगे? ईश्वर जे कर सृष्टि रचे, ईश्वरताही नष्ट हो जावे, यह वृत्तांत उपर अछी तरेंसे लिख आये.

पूर्वपक्षः—ईश्वरकी जो सर्व शक्तियां है, सो सर्व अपनां अपनां करती है, जैसे आंख देखनेका काम करती है, कान सुननेका काम ते है, तैसेही जो ईश्वरमें रचना शक्ति है, सो रचनेसेंही सफल होती इस वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः—जब तुमनें ईश्वरकूं सर्व शक्तिमान् माना, तब तो ईश्वर सर्व शक्तियां सफल होनी चाहिये, तब तो ईश्वर एक सुंदर पुरुष रूप रच कर १ सर्व जगत्की सुंदर सुंदर स्त्रीयोंसें भोग करे, अरु २ चोर कर चोरी करे, ३ विश्वास घातीपना करे, ४ जीवहत्या करे, ५ जूठ ले, ६ अन्याय करे, ७ अवतार हो कर गोपीयोंसें कल्लोल करे, ८ कुब्जासे भोग करे, ९ दूसरेकी मांगकूं भगा कर ले जावे, १० तथा शिर जटा रखे. ११ तीन आंख बनावे, १२ बैल उपर चढे, १३ तनमें भूति लगावे, १४ एक स्त्रीकूं वामाऽंगमे रखे, १५ किसी मुनिके आगे नंगा हो कर नचे, १६ किसीकूं वर देवे, १७ किसीकूं शाप देवे, इसी तरे १८ चार मुख बनाके एक स्त्री रखे, अरु १९ अपनी पुत्रीमें भोग करे तथा २० संग्राम करे, २१ स्त्रीको चोर ले जावे, तो पीछें उस स्त्रीके वास्ते रोता फिरे, २२ एक अपना भाइ बनावे, उसकूं जब संग्राममें कोइ शस्त्र लगे, तब भाइके दुखसें बहुत रोवे, २३ अपणे आपको तो अज्ञानी समजे, २४ भाइकी चिकित्सा वास्ते वैद्य बुलावे, २५ सर्व कुछ खावे, २६ पीवे, २७ नाचे, २८ कूदे, २९ रोवे, ३० पीटे. पीछेमें ३१ निर्मल, ३२ ज्योतिरूप, ३३ निरहंकार, ३४ सर्वव्यापक, बन बैठे, इत्यादिक पूर्वोक्त शक्तियां

रमें है, वा नहीं ? जे कर है तो इतने पूर्वोक्त सर्व काम ईश्वरकूं करने
गे जे कर न करेगा, तब तो ईश्वरकीयां सर्व शक्तियां सफल न होवेगी ? त
तो ईश्वर महा दुःखी हो जावेगा ? क्योंकि जिसने नेत्र तो पाये है, अरु दे
ना उसकूं न मिले, तो वो कैसा दुःखी होता है ? जे कर कहोगे पूर्वोक्त अ
ग्य शक्तियां ईश्वरमें नही है, तब तो सर्व शक्तिमान् ईश्वर है, ऐसे फिर
शपि न कहनां चाहियें. जे कर कहोगे कि योग्य शक्तियांकी अपेक्षा हम
र्व शक्तिमान् मानते है, तब तो जगत् रचनेकीभी शक्ति अयोग्यही है, यह
परमात्मामे नही इस शक्तिकी अयोग्यता उपर लिख आये है. तथा
पूर्वपक्षी ! जब ईश्वरने प्रथमही सृष्टि रची थी, तब तो स्त्री पुरुषादिक
नही, तब तो माता पिताके विना मनुष्य क्यों कर उत्पन्न होये होंगे ?

पूर्वपक्षः—जब ईश्वरने सृष्टि रची थी, तबही बहुत पुरुष, अरु बहुत स्त्रीयों,
ता पिताके विनाही रच गये थे, उनके आगें फिर गर्भसें उत्पन्न होने लगे.

उत्तरपक्षः—यह अप्रामाणिक कहना कोइभी विद्वान् नही मानेगा, क्यों
कि माता पिताके बिना कभी पुत्र नही उत्पन्न हो सक्ता है ? जेकर ईश्वरने
थम माता पिताके बिनाहि मनुष्य, स्त्री, उत्पन्न करे थे, तो अब भी घडे
डाये, बने बनाये, स्त्री पुरुष क्यों नहीं भेज देता ? गर्भ धारण कराणां,
ी पुरुषका मैथुन कराणां, गर्भवासका दुःख भोगानां, योनियंत्रद्वारा खै
के निकालना. इत्यादि संकट काहेकूं रचने थे ? अनंत वार ईश्वरने सृष्टि
ची, अरु प्रलय करी, तब तो ईश्वर थाका नही, तो क्या मनुष्योंहीके
नानेसें थकेंवा चढ गया ? जो घडे घडाये, बने बनाये, नहीं भेज सक्ता ?
यह कभी नही हो सक्ता, जो माता पिताके बिना पुत्र उत्पन्न हो जावे.
इस हेतुसेंभी जगत्का प्रवाह अनादिसें इसी तरें तारतम्य रूपसें चला
आता सिद्ध होता है

पूर्वपक्षः—जे कर ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता न होवे, अरु जीवही कर्त्ता होवे,
तब तो जीव आपही शरीर धारण कर लेवेगा, अरु शरीरकूं कदेइ न छोडे
गा, अरु आपणे आपकूं अच्छा फल लगा लेवेंगे, फेर तो कभी मरेगे नहीं.

उत्तरपक्षः—जो तुमने कहा है सो सर्व, कर्मोंके वश है, परतु जीवके
अधीन नहीं जे कर कहोगे कर्मभी तो जीवनेही करे थे, तब क्यो भी
बने अशुभ कर्म करे ? क्योंकि कोइ भी अपणे बुरे करणेमे नही है, इस

का उत्तर तो दीया गया है, परंतु तुमारी समझ थोडी है, जो नहीं क्यों कि जो जो अवस्था जीवोंकी शुभ अशुभ है, सो सर्व है. तथा जीव जो है, सो कर्म करणेमें तो प्रायः स्वतंत्रही है, परंतु नोगनेमें स्ववश नहीं. क्योंकि जैसें कोइ जीव धनुषसें तीर चलावे, फिर उस तीरकूं पकडने सामर्थ्य नहीं. तथा कोइ जीव विष खावे. स्ववश है, परंतु उस विषवेगके रोकणेमें जीव समर्थ, नहीं ऐसेही कर्म तो स्वतत्रतासे प्रायः करता है, परंतु फल नोगनेमें जीव वश है, जैसे वर्तमानमें रेलगाडी सर्व जीवोंहीने इस तरेंकी परंतु उस चलती हुइ रेलके तथा तारके वेगकूं जितना चिर, उस प्रेरणाशक्ति नहीं हटती, इतना चिर, कोइ जीव नहीं रोक कर ऐसेही कर्मफल वेगके रोकणेकूं जीवनी समर्थ नहीं है, तथा कूं नवांतरमें कौन ले जाता है ? तथा जीवके शरीरकी रचना पडवे तथा नाना प्रकारके रंग वरंगके हाड, चाम, लोहु, वीर्य त्यादिक रचना कौन रचता है ? इसका पूर्ण स्वरूप जहां कर्म (१४७) का स्वरूप लिखेंगे, तहांसे जाननां. इस हेतुसें ईश्वर जगत् किसी तरेंनी सिद्ध नहीं होता, विशेष करकें जगत् कर्त्ता ईश्वरका देखनां होवे, तो श्री (१) सम्मतितर्क, (२) द्वादशसार नयचक्र (३) द्वादरत्नाकर, (४) अनेकांतजयपताका, (५) शास्त्रसमुच्चय स्या ल्पलता. (६) स्याद्वादमंजरी, (७) स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, (८) त्रकृतांग, (९) नंदीसिद्धांत, (१०) शब्दांनोनिधिगंधहस्तीमहानाष्य, (११ प्रमाणसमुच्चय, (१२) प्रमाणपरीक्षा, (१३) प्रमाणमीमांसा, (१४) नमीमांसा, (१५) प्रमेयकमलमार्त्तंड, (१६) प्रमेयरत्नमार्त्तंड, (१७) यावतार, (१८) धर्मसंग्रहणी, (१९) तत्त्वार्थ, (२०) १९८ इत्यादि जैनमतके ग्रंथ देख लेने. इस वास्ते जो कामी, क्रोधी, अज्ञी, र्त्त, परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, नाचने वाला, गाने बजाने वाला, ने पीटने वाला, नस्म लगाने वाला, माला जपने वाला, संग्राम करने वाला, तथा डमरु आदिक वाजे वजाने वाला, वर वा शापके देने वाला विना प्रयोजन अनेक संक्लेशोंमें फसने वाला, इत्यादिक जो अवगुण पण करी सहित है, सो कुदेव है, उसकूं ईश्वर मानना सोइ मिथ्यात्व है

कुदेवोंकूं मानने वाले पत्थरकी नावो उपर बैठे है, इस वास्ते लिखनेका जन इतना ही है, जो कुदेवकूं कदेइ अर्हंत नगवंत परमेश्वर करी न नां ॥ इतिश्री तपागच्छीयेमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्यमुनिआनंदविजयआ रामविरचिते, जैनतत्त्वादर्शे, कुदेवनिर्णयनामा द्वितीयःपरिच्छेदःसंपूर्णः२

॥ अथ तृतीयपरिच्छेद प्रारंभः ॥

यह तीसरे परिच्छेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहते है, जैनमतमें गुरुके लक्षण ने लिखे है ॥ अनुष्टुब् वृत्तं ॥ महाव्रतधरा धीरा, नैक्षमात्रोपजीविनः ॥ मायिकस्था धर्मोप, देशकागुरवो मताः ॥१॥ अस्यार्थः—अहिंसादि पांच म व्रतका धारने पालने वाला होवे, अरु आपदा आ पडे, तब धीर साह कपणा करे, अपणे जो व्रत हैं, तिनकूं दूषण लगा के कलंकित न करे, श बेंतालीश दूषण रहित, निक्षावृत्ति माधुकरीवृत्ति करी, अपणे चारित्र नेके तथा शरीरके निर्वाह वास्ते नोजन करे, नोजननी पूरा पेट नर र न करे, नोजनके वास्ते अन्न, पाणी, रात्रिकूं न राखे, तथा धर्मसाध के उपकरण वर्जके और कुछनी संग्रह न करे तथा धन, धान्य, सुवर्ण, पा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह न राखे. तथा राग, द्वेषके परिणाम हेत, मध्यस्थ वृत्ति हो कर, सदा वर्त्ते, तथा “धर्मोपदेशक” जो धर्म, जीवों उद्धार वास्ते सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप परमेश्वर, अर्हंत, नगवं स्याद्वादअनेकांत स्वरूप निरूपण कीया है, उस धर्मकूं जो नव्य जी के तांइ उपदेश करे, परतु ज्योतिषशास्त्र, अष्ट प्रकारका निमित्त शा , तथा वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवा आदिक अनेक ास्त्र, जिनसें धर्मकूं बाधा पहुंचे, तिनका उपदेशक न होवे, क्यों कि लौ कि जो शास्त्र है, सो तो बुद्धिमान् पुरुष वर्त्तमानमेनी बहुत सीखते ३, तथा नवीन नवीन अनेक सांसारिक विद्याके पुस्तक बनाते हुये चले ाते है, तथा अंगरेजोकी बुद्धि देख कर इस देशके लोकनी बहुत सां ारिक विद्यामें निपुण होते चले जाते है. इस वास्ते साधुकूं धर्मोपदेश ही करना चाहियें. क्यों कि धर्महो जीवोकूं पाना कठिन है; ऐसे गुरु के लक्षण जैन मतमे है.

तथा प्रथम जो पांच महाव्रत साधुकुं धारने कहे है, सो कोन सें वे पांच महाव्रत है ? सो कहते हैंः—श्लोक ॥ अहिंसा ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ॥ पंचभिः पंचभिर्युक्ता, भावनाभिर्विमुक्तये ॥ १ अस्यार्थः—(१) अहिंसा, (जीवदया,) (२) सूनृत, (सत्य बोलनां,) (३) अस्तेय (साधुके उचित, वस्तुकूं बिना दीया लेनां,) (४) ब्रह्मचर्यका पालनां, (५) सर्व परिग्रहका त्याग, पांचोंका नाम महाव्रत कहते है, तथा ए पांच महाव्रतोंमें महाव्रतकी पांच पांच भावना हैं, यह पांच महाव्रत, अरु पच्चीश ए सर्व मोक्षके वास्ते पाले.

अब इन पांचो महाव्रतोंमेंसूं प्रथम महाव्रतका स्वरूप लिखीये ॥ श्लोक ॥ न यत् प्रमादयोगेन, जीवितव्यपरोपणं ॥ त्रसानां णां च, तदहिंसाव्रत मत ॥ २ ॥ अस्यार्थः—त्रस, (द्वींद्रियादिक जीव) स्थावर, (१) पृथवीकाया, (२) अप्काया, (३) अग्निकाया, (४) नकाया, (५) वनस्पतिकाया, ए पांचोकूं स्थावर जीव कहते हैं इन वे पूर्वोक्त जीवोंकूं प्रमाद वश हो कर मारे नहीं, प्रमाद नाम है, द्वेष, असावधानपणा, अज्ञान, मन वचन कायाका चंचल पणा, विषे अनादर, इत्यादि प्रमादके वश हो कर जो प्राणातिपात करनां, का जो त्याग करणां, इसका नाम अहिंसा व्रत है.

अब दूसरे महाव्रतका स्वरूप लिखते है ॥ श्लोक ॥ प्रियं पथ्यं स्तथ्यं, सूनृतव्रतमुच्यते ॥ तत्तथ्यमपि नो तथ्य, मप्रियं चाहित च यत् ॥ ४ ॥ अस्यार्थः—जिस वचनके सुननेसें दूसरा जीव हर्ष पावे, तिस चनकूं प्रिय वचन कहियें, तथा जो वचन जीवोकूं पथ्यकारी होवे, णामसुंदर होवे, एतावता जिस वचनसे जीवके आगे बहुत सुधारा वे, तथा जो वचन सत्य होवे, ऐसा जो वचन बोले, सो सूनृतव्रत हियें, इस व्रत विषे कछुक विशेष लिखते हैं, जो वचन व्यवहारमें चाहे सत्यही होवे, परतु जो आगले जीवकूं दुःखदायी होवे, ऐसा वचन न बो ले, जैसे काणेकूं काणा कहनां, चोरकूं चोर कहनां, कुष्टीकूं कुष्टी कहनां, इत्यादिक जो वचन दूसरेकू दुःख दायी होवे, सो न बोले, तया जो वचन जीवोंकू आगें अनर्थका हेतु होवे, वसुराजावत् सांची न बोले. जे

दोनों बचन बोले, तब तो उस साधुके सूनृत व्रतमें कलंक लग जावें, क्योंकि ए दोनो बचन जूठहीमें गिने हैं.

अब तीसरा महाव्रत लिखते है ॥ श्लोक ॥ अनादानमदत्तस्या, स्ते व्रतमुदीरितं ॥ बाह्याः प्राणानृणामर्थो, हरताचहताहिते ॥ ५ ॥ अस्या र्थः—अदत्त, मालिकके विना दीया ले लेणां, तिसका जिसके नियम है, सो अस्तेय व्रत कहीयें, अचोरीव्रत नामांतर है, अदत्तादान चार प्रकारका है (१) जो वस्तु साधुके लेने योग्य है, अचित्त जीवरहित वस्तु तृण, काष्ट, पाषाणादिक वस्तुयोंके स्वामीकूं विना पूछे लें लेनां सो स्वामी अदत्त. (२) तथा जैसें कोइ भेड. बकरी, गौ प्रमुख कोइ इनका स्वामी मारे हिंसक जीवकूं मोल लेकर दे देवे, अथवा बिना मोल दे देवे, अरु लेने वाले लेने देइ होइ वस्तु लीनी है, परंतु उस जीवने तो अपणा शरीर नहीं दीया है, इस हेतुसे जीवअदत्त. (३) तथा जो जो वस्तु आधाकर्मादिक आहार, अचित्त जीव रहितनी है, अरु दीनीनी उस वस्तुके स्वामीने है, परंतु तीर्थंकर भगवतें निषेध करी है, फेर जो साधु उस वस्तुकूं लें लेवे, सो तीर्थंकर अदत्त. (४) तथा जो वस्तु निर्दोष है, वस्त्र आहारादिक अरु उस वस्तुके स्वामीने वो दीनी है, अरु तीर्थंकर भगवते निषेध नहीं करी है, परंतु गुरुकी आज्ञा विना वो वस्तुकूं साधु ले लेवे, सो गुरु अदत्त. इस महाव्रतमें ए चार प्रकारका अदत्त न लेणा. जितने व्रत नियम है, वे सर्व अहिंसाव्रतकी रक्षा वास्ते वाडी समान है, यह पूर्वोक्त तिसरे व्रतका जो पालनां है, सो अहिंसा व्रतहीकी रक्षा होती है. अरु जो तीसरा महाव्रत न पाले तो अहिंसा व्रतकूं दूषण लगे है, यही वात कहते है ॥ "बाह्याः प्रणा नृणां" मनुष्योंका अर्थ, (लक्ष्मी) जो है, सो बाहिरला प्राण है. जब कोइ किसीकी चोरी करता है, सो निश्चय करकें उसके प्राणोहीका नाश करता है. इसी हेतुसें चोरी करनां महा पाप है, सर्व चोरीका जो त्याग करना है, इसीका नाम तीसरा अदत्तादान त्यागरूप महा व्रत है.

अब चोथे महाव्रतका स्वरूप लिखते है ॥ श्लोक ॥ दिव्यौदारिककामाना, कृतानुमतिकारितैः ॥ मनोवाक्कायतस्त्यागो, ब्रह्माष्टदशधा मतम् ॥ ६ ॥ अस्यार्थ.—दिव्य (देवताके) वैक्रिय शरीर संबंधि जो काम भोग, अरु औदारिक शरीर तिर्यंच मनुष्यका, तिन संबंधी जो काम भोग, एतावता वैक्रिय

शरीर अरु औदारिक शरीर, ए दोनोंके साथ विषय सेवन करनां, औ
सरायोंसें विषय सेवन करावणां, विषय सेवन जो करे उसकूं अच्छा
ए ७ भेद मन करकें, ७ बचन करकें, अरु ७ काया करकें, एवं अठार
कारका जो मैथुन सेवनका त्याग करे, उसकूं ब्रह्मचर्य व्रत कहते है.

अब पांचवा महाव्रत लिखते हे ॥ श्लोक ॥ सर्वभावेषु मूर्छाया,
गस्यादपरिग्रह. ॥ यदि सत्स्वपि जीयेत, मूर्छया चित्तविप्लवः ॥ १ ॥
स्यार्थः—सर्व संपूर्ण जो अछाभाव पदार्थ, द्रव्य, क्षेत्र, कालभावरूप
स्तु, तिस विषे जो मूर्छा, ममत्वभाव मोह, तिसका जो त्याग करे,
का नाम अपरिग्रह व्रत कहिये, परंतु जिसके पास अपणे शरीरके
दूसरी कोइ वस्तु नहीं, तोभी तिसकूं निष्परिग्रहपणा न कहियें.
जिसकी मूर्छा, ममत्व, सर्व वस्तुसें हट जावे, उसीको निष्परिग्रह क
हियें, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नही, अरु अण होइ वस्तुकी
कूं चाहना लग रही है, वो त्यागी नही, जे कर ज्ञानद्वारा मूर्छा
विना, त्यागी हो जावे, तब तो कुत्ते अरु गद्धेभी त्यागी होना चाहियें.
रु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास
साधनके कितनेक उपकरणभी हैं, तोभी मूर्छाके न होनेसें वो परिग्रह

अब इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच भावना लिखते हे
श्लोक ॥ भावनाभिर्भावितानि, पंचभिः पंचभि· क्रमात् ॥ महाव्रतानि
कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अस्यार्थ.—यह जो पांच म
पच्चीश भावना है, जो कोइ इन भावना करकें अपणे अपणे म
जित्त वासित करे. एतावता पाच पाच भावना पूर्वक अखंड महाव्रत
से तो ऐसा कोइ जीव नही है, जिसकूं ए महाव्रत मोक्षपदमें न प्हुचावे

अब प्रथम महाव्रतकी पांच भावना लिखते हे ॥ श्लोक ॥ मन
देषणादाने, र्याभिः समितिभि· सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे ना हिंसा भा
येत्सुधि. ॥१॥ अस्यार्थ —मनकूं पापके काममे न प्रवर्त्तावे, किंतु पापके का
मसें अपणे मनकू हटा लेवे, इसका नाम मनोगुप्ति कहते है. जे कर पापके
काममें मनकू प्रवर्त्तावे, अरु चाहो बाह्यवृत्ति करकें हिंसा नहीभी करता,
तोभी प्रसन्नचंद्र राजर्षिकी तरें सातमी नरकके जाने योग्य कर्म उपा
र्जन कर लेता है, इस वास्ते मुनिकू अवश्य मनोगुप्ति करनी चाहियें, ए

म नावना. दूसरी नावना एषणासमिति. सो आहारादिक चार वस्तु
धाकर्मादिक बेंतालीश दूषण रहित लेवे, बेंतालीश दूषणका पूरा स्वरू
देखनां होवे, तो पिंमनिर्युक्ति शास्त्र (७०००) श्लोक प्रमाण है, सो
लेनी, ए दूसरी नावना. तीसरी नावना आदाननिक्षेप नामा है, जो
पात्रक. दंम, फलक प्रमुख लेना पडे, तथा नूमिकाके उपरि रखना प
तब प्रथम नेत्रोसे देख लेनां, पीछें रजोहरण करकें पूंज लेवे, पीछे
लेना अरु रखना करें, क्योकि विछु सर्प्पादिक अनेक जहेरी जीव,
कर उस उपकरणके उपर बैठे होवे, तब तो काट खावें, अरु दूसरा
बिचारा अनाथ कोइ बेठा होवे, तो हाथके स्पर्शसे मर जावे, तब
जीवहत्याका पाप लग जावे, इस वास्ते जो काम करनां, सो यत्नपूर्वक
नां, ए तीसरी नावना. चोथी नावना जब चलनेका काम पडे, तब अ
आखोसें चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा दे
चलता है, उसकूं इस लोकमें कितनेक गुण प्राप्त हो जाते है, प्र
पगकूं ठोकर नही लगती, दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे,
पडा पैसा, रूपक, आदि मिल जावे, तीसरे लोकमें नला म
री वहू बेटीकूं देखता नही, ऐसा प्रसिद्ध हो जाता है, चो
ना करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चोथी नावना. पाचमी
. पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगासें लेवे, अंधकार
, क्योकि अधकारवाली जगामें एक तो जीव नही दीख
साप विछुके काटनेका मर रहेता है, तथा गृहस्थका
जाता रहे, तब उसके मनमें शंका उत्पन्न हो जा
रेमेंसे साधुही ले गया होगा? तथा अंधेरेमें सुंदर
धुर्हत्र् कोइ उत्कट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु
स्त्री छता होवे, तो धर्मकी वडी निंदा होवे, तथा सा
प्रीति देख कर बिगड जावे, साधु स्त्रीकूं पकड लेवे,
पांचमेंबडी धर्मकी हानी, होवे तथा साधुओकी अ
अंधेरेकी जगासें साधु अन्नादिक न लेवे, ए
नकी पांच नावना हैं.
रना लिखते है ॥ श्लोक ॥ हास्यलोनन

नन्
वा
नक
घोडी,
जिस
न्न करने
पणों सं
ना. तथा
ग स्त्रीके सा
, शृंगार प्र
स्नेह सहि
कूं प्राप्त होग
दीक्षा लेनेसे

शरीर अरु औदारिक शरीर, ए दोनोंके साथ विषय सेवन करना, सरायोंसें विषय सेवन करावणां, विषय सेवन जो करे उसकूं अच्छा ए ठ नेद मन करकें, ठ वचन करकें, अरु ठ काया करकें, एवं अ॰ कारका जो मैथुन सेवनका त्याग करे, उसकूं ब्रह्मचर्य व्रत कहते है.

अब पांचवा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वनावेषु मूर्छाया, गस्यादपरिग्रह. ॥ यदि सत्स्वपि जीयेत, मूर्छया चित्तविप्लवः ॥ ४ स्यार्थ.—सर्व संपूर्ण जो अच्छानाव पदार्थ, द्रव्य, क्षेत्र, व स्तु. तिस विषे जो मूर्छा, ममत्वनाव मोह, तिसका जो त्याग करे, का नाम अपरिग्रह व्रत कहिये, परंतु जिसके पास अपणे शरीरके दूसरी कोइ वस्तु नही, तोनी तिसकूं निष्परिग्रहपणा न कहियें. जिसकी मूर्छा, ममत्व, सर्व वस्तुसें हट जावे, उसीको निष्परिग्रह व्रत हिये, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नही, अरु अण होइ वस्तुकी कूं चाहना लग रही है, वो त्यागी नही, जे कर ज्ञान द्वारा मूर्छा बिना, त्यागी हो जावे, तब तो कुत्ते अरु गद्धेनी त्यागी होना चाहियें रु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास साधनके कितनेक उपकरणनी हैं, तोनी मूर्छाके न होनेसें वो परिग्रह

अब इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच नावना लिखते श्लोक ॥ नावनानिर्नावितानि, पंचनिः पंचनिः क्रमात् ॥ महाव्रतानि कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अस्यार्थ—यह जो पांच महाव्रत पच्चीश नावना हैं, जो कोइ इन नावना करकें अपणे अपणे व्रत जित वासित करे, एतावता पाच पाच नावना पूर्वक असंग महाव्रत ले तो ऐसा कोइ जीव नही है, जिसकूं ए महाव्रत मोक्षपदमें न पहुंचावे,

अब प्रथम महाव्रतकी पांच नावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ मनो स्येषणादाने, याभिः समितिभिः सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे ना हिंसा ना येत्सुधि· ॥१॥ अस्यार्थ—मनकूं पापके काममें न प्रवर्त्तावे, किंतु पापके मसें अपणे मनकूं हटा लेवे, इसका नाम मनोगुप्ति कहते है. जे कर पापके काममें मनकूं प्रवर्त्तावे, अरु चाहो बाह्यवृत्ति करकें हिंसा नहींनी करता तोनी प्रसन्नचंद्र राजर्षिकी तरें सातमी नरकके जाने योग्य कर्म उप न कर लेता है, इस वास्ते मुनिकूं अवश्य मनोगुप्ति करनी चाहियें,

म नावना. दूसरी नावना एषणासमिति. सो आहारादिक चार वस्तु
धाकर्मादिक बेंतालीश दूषण रहित लेवे, बेंतालीश दूषणका पूरा स्वरू
देखनां होवे, तो पिंमनिर्युक्ति शास्त्र (७०००) श्लोक प्रमाण है, सो
लेनी, ए दूसरी नावना तीसरी नावना आदाननिक्षेप नामा है, जो
पात्रक. दंम, फलक प्रमुख लेना पडे, तथा नूमिकाके उपरि रखना प
तव प्रथम नेत्रोसे देख लेनां, पीछें रजोहरण करकें पूंज लेवे, पीछे
लेना अरु रखना करे, क्योंकि विछु सर्पादिक अनेक जहेरी जीव,
कर उस उपकरणके उपर बैठे होवें, तब तो काट खावें, अरु दूसरा
व विचारा अनाथ कोइ बेठा होवे, तो हाथके स्पर्शसे मर जावे, तब
जीवहत्याका पाप लग जावे, इस वास्ते जो काम करनां, सो यत्नपूर्वक
नां, ए तीसरी नावना. चोथी नावना जब चलनेका काम पडे, तब अ
आखोसे चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा दे
चलता है, उसकूं इस लोकमे कितनेक गुण प्राप्त हो जाते है, प्र
पगकूं ठोकर नही लगती, दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे,
पडा पैसा, रूपक, आदि मिल जावे, तीसरे लोकमें नला म
री वहू बेटीकूं देखता नहीं, असा प्रसिद्ध हो जाता है, चो
ना करनेसें धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चोथी नावना. पाचमी
, पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगासे लेवे, अंधकार
है, क्योंकि अंधकारवाली जगामे एक तो जीव नही दीख
साप विछुके काटनेका मर रहेता है, तथा गृहस्थका
जाता रहै, तव उसके मनमें शंका उत्पन्न हो जा
रेमेंसें साधुही ले गया होगा ? तथा अंधेरेमें सुंदर
धुर्दत् कोइ उत्कट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु
स्त्री खता होवे, तो धर्मकी वडी निंदा होवे, तथा सा
प्रीति देख कर विगड जावे, साधु स्त्रीकूं पकड लेवे,
पांचमें वडी धर्मकी हानी, होवे तथा साधुओंकी अ
अंधेरेकी जगासे साधु अन्नादिक न लेवे, ए
नकी पाच नावना है.
ना लिखते है ॥ श्लोक ॥ हास्यलोनज

(left fold fragments:) दोष, तेथे, तन्था, वा, नक, घोडी, जिस, न्न करने, पणों संयु, ना. तथा, ग स्त्रीके सा, है, शृंगार प्र, र स्नेह सहि, कूं प्राप्त होगा, दीक्षा लेनेसें

यक्रोधः,प्रत्याख्यानैर्निरंतरम् ॥ श्यालोच्य नाषणमपि,नावयेत्सूनृतं व्र...
श्रस्यार्थः–प्रथम तो किसीकी हांसी न करें, हांसीका त्याग करे, क्यों...
पुरुष किसीकी हांसी करेगा, वो श्रवश्य जूठ वोलेगा, ए जो पर...
करणी है, सो वडा श्रनर्थका कारण हो जाती है. श्रीहेमचंद्र...
रामायणमें लिखा है, कि रावणकी वहिन शूर्पनखाकी श्रीरामचंद्र...
क्ष्मणजीने हांसी करी थी, तब शूर्पनखा क्रुद्ध हो कर श्रपने नाइ...
पास जा कर सीताका वर्णन करा, फेर रावण सीताकूं हर कर ले गया...
वडा संग्राम हुश्रा, श्राज तांइ लोक नकल वनाते है, इस सारी रामा...
निमित्त शूर्पनखाकी हांसी है, इस वास्ते पर हास्यका त्यागरूप...
नावना जाननी. दूसरी नावना लोनका त्याग करनां, क्योंकि जो...
होगा सो श्रवश्य श्रपने लोनके वास्ते जूठ वोलेगा, क्योंकि यह वा...
वें लोकोमें प्रसिद्ध है, जो लोनी होगा, वो जरूर जूठ वोलेगा, ए...
नावना. तथा नय न करनां, क्योंकि नयवत पुरुषनी जूठ वोल देता...
ए नय त्यागरूप तिसरी नावना. तथा क्रोध करनेका त्याग करे, क्योंकि...
रुप क्रोधके वश होगा, वो दूसरायोके हूवे श्रणहूवे दूपण जरूर वोलेगा...
वास्ते क्रोध त्यागरूप चोथी नावना. तथा प्रथम मनमें विचार कर लेवे,...
वोले क्यो कि जो विचार करे विना वोलेगा वो श्रवश्य जूठ वोलेगा, इस...
विचार पूर्वक वोलनां. ए पाचमी नावना. ए दूसरे महाव्रतकी पांच नाव...

श्रव तीसरे महाव्रतकी पांच नावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ श्रम...
वग्रहयाञ्चा, नीक्ष्णावग्रहयाचनं ॥ एतावन्मात्रमेवैत, दित्यवग्रह...
॥ १ ॥ समानधार्मिकेन्यश्च, तथावग्रहयाचनं ॥ श्रनुज्ञापि तथा...
नमस्तेयनावना ॥ २ ॥ श्रस्यार्थः–जिस मकानमें साधुने ... पड़...
तो प्रथम उस मकानके स्वामीकी श्राज्ञा लेणी, घरका स्वामी ... ॥ ...
सा जान कर श्राज्ञा लेणी, जे कर स्वामीकीश्राज्ञा विना रहे ... हिंसा...
श्ररु रात्रिमें कदाचित् घरका स्वामी क्रोध करके साधुकूं ... पाप...
देवे, तब साधु रात्रिमें कहां जावे? इत्यादि श्रनेक क्लेश ... जे कर...
है, इस वास्ते मकानके स्वामीकी श्राज्ञा ले कर उसके ... नहीं...
प्रथम नावना. दूसरी नावना उपाश्रयके स्वा... योग्य कर्म...
क्योंकि कदाचित् कोइ साधु रोगी हो जावे, त... करनी

: जगा चाहियें, गृहस्वामीकी आज्ञाके विना जो उसके मकानमें मल करे, तो चोरी लगे. इस वास्ते गृहस्वामीकी आज्ञा वार वार लेनी, ए ी भावना. तीसरी भावना उपाश्रयकी भूमिकाकी मर्यादा कर लेवे, कि ी जगा तक हमारेकूं तुमारी आज्ञा रही, जे कर मर्यादा न कर लेवे अधिक भूमिकाकूं काममें लानेसें चोरी लगती है, इस वास्ते प्रथमही दा कर लेवे, ए तीसरी भावना. तथा चोथी जो साधु समान धर्मी होवे, वो किस जगामें प्रथम उतर रहा है, पीछें दूसरे साधु जो उस मका उतरा चाहे, तो प्रथम साधुकी आज्ञा विना न रहना, जे कर प्रथम की आज्ञा न लेवे, तो स्वधर्मी अदत्त लागे, ए चोथी भावना. पांचमी ना साधु जो कुछ अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, शिष्यादिक लेवे, सो सर्व ी आज्ञासें लेवे, जे कर गुरुकी आज्ञा विना कोइ वस्तु ले लेवे, तो अदत्त लागे. ए पांचमी भावना. ए तिसरे महाव्रतकी पांच भावना हैं. अब चौथे महाव्रतकी पांच भावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ स्त्रीपंढपशु श्मा, सनकुड्यांतरोज्झनात् ॥ सरागस्त्रीकथात्यागात्, प्राग्गतस्मृतिव ात् ॥ १ ॥ स्त्रीरम्यांगेक्षणस्वांग, संस्कारपरिवर्जनात् ॥ प्रणीतात्य त्यागात्, ब्रह्मचर्यं तु भावयेत् ॥ २ ॥ अस्यार्थः—जिस घरमे अथवा ानमें अथवा भीतके अंतरे देवी अथवा मनुष्यकी स्त्री वसे, (रहे,) ावा देवांगनाकी वा स्त्रीकी लेप, चित्राम प्रमुखकी मूर्ति होवे, तथा पंढ ्सक तीसरे वेद वाला जिस घरमें रहता होवे, तथा पशु, गाय, महि घोडी, बकरी, भेड प्रमुख तिर्यच स्त्री जिस मकानमें रहती होवे, ा जिस मकानमें काम सेवन करती स्त्रीका शब्द तथा दूसरा कोइ मोह ान्न करनेका शब्द, तथा आभूषणोंका शब्द, सुणाइ देवे, इन पूर्वोक्त ापणों संयुक्त मकानमे तथा एक भीतके अंतरेमें साधु न रहे, ए प्रथम ावना. तथा सराग (प्रेम सहित) स्त्रीके साथ वार्त्तालाप न करे, अथवा ाग स्त्रीके साथ वार्त्ता न करे तथा स्त्रीके देश, जाति, कुल, वेष, भाषा, ह, शृंगार प्रमुखकी कथा सर्वथा न करे, क्योंकि सराग स्त्रीके साथ जो व स्नेह सहित कामशास्त्र प्रमुखकी कथा करेगा. सो अवश्य विकार वकूं प्राप्त होगा, इस वास्ते सराग स्त्रीसे कथा न करे, ए दूसरी भावना. ा दीक्षा लेनेसे पहिले गृहस्थावस्थामें जो स्त्रीके साथ कामक्रीडा, वद

नचुंबन, चौरासी कामासनसें विषयसेवन प्रमुख क्रीडा करी होवे, तो
फेर मनमें कदेइ न स्मरण करणां, क्योंकि पूर्व क्रीडास्मरणरूप इंधन
माग्नि फिर धुखने लग जाती है, ए तीसरी भावना. तथा अविवेकी ..
देखने, अरु चाहने योग्य स्त्रीके अंग जो मुख, नयन, स्तन, जघन, .
मुख तिनोंकों सराग दृष्टिसें देखनां तथा अपूर्व विस्मय रसके पूरमें
कर आख फाड देखना वर्जे, परंतु जो राग रहित दृष्टि करी कदाचित्
में आ जावें, तो दोष नहीं. तथा अपणे शरीरकूं संस्कार करणां,..
विलेपण, धूप करणी, नख, दांत,केश,समा रचनां, कंगी सुरमासें विभूष
रणी, इत्यादिक शरीरसंस्कार न करे, क्योंकि स्त्रीके रमणिक अंग...
जैसे दीप शिखामें पतंगीया जल जाता है, असे कामी पुरुषभी ...
जाता है, क्यों कि शरीर जो है, सो सर्व अशुचिका मूल है, इसका जो
र करणा है, सो अज्ञानता है, जैसे मलिन वस्तुकी कोथलीके उपर जे
चंदन घस कर लगा दिया, तो क्या वह कोथली सुगंधित हो जाती है?
शरीर अंतमे मशानकी एक मुठी राखकी बन जायेगी, फिर किस वास्ते
स शरीरकी शोभा करणेमें व्यर्थ काल खोवें है? ए चौथी भावना. त
प्रणीत, स्निग्ध, मधुरादि रस, इनका अधिक आहार करणां, तथा रू
भोजनभी कंठ उदर पूर कर खाना, ए दोनोंही प्रकारके आहारका त्य
करे, क्योंकि जो पुरुष, निरंतर स्निग्ध, मधुर रसका आहार करेगा, उस
जरूर धातुपुष्ट होवेगी, तब तो वेदोदय करी अवश्य कुशील सेवेगा.
रूक्ष भिक्षावृत्तिका भोजनभी प्रमाणसें अधिक नहीं करणां, क्योंकि रू
भोजन अधिक करणेसें काम उत्पन्न हो जाता है. अरु अधिक खाने
शरीरकूं पीडा उत्पन्न हो जाती है, विशुचिका प्रमुख रोग हो जाते हैं
स वास्ते प्रमाणसें अधिक भोजनभी न करे. पूर्व पुरुषोंने खानेकी
मर्यादा लिखी है कि॥यत॥ अद्धमसणस्स सवं, जणस्स कुज्जा दवस्स
भागे॥ वाउपविआरणठा, छब्भाय ऊणगं कुज्जा॥१॥ अस्य ता
र्थः-बुद्धि करिकें अपणे उदरके ६ भाग करणे,तिनोमें तीन भाग तो अ
में भरने, अरु दो भागमें पानी, एक भाग खाली रखणां,जिस्सें सुखें
च्छ्वास निःश्वास आता रहे,ए पांचमी भावना. ए चोथे व्रतकी पांच भाव
अब पाचमे महाव्रतकी पाच भावना लिखते है॥श्लोक॥ स्पर्शे रसे

च, रूपे शब्दे च हारिणि ॥ पंच सुइंद्रियार्थेषु, गाढं गार्ध्यस्य वर्जनं ॥ एतेष्वेवामनोज्ञेषु, सर्वथा द्वेषवर्जनं ॥ आकिंचन्यव्रतस्यैवं, ना पंच कीर्त्तिताः ॥ २ ॥ युग्मं ॥ अस्यार्थः—स्पर्शादिक मनोहर पांच योंमें जो अत्यंत गृद्धिपणा सो वर्जनां, अरु स्पर्शादिक अमनोज्ञ पां वेषयोंमें द्वेष न करणां. ए पांचमे महाव्रतकी पांच नावना. एवं पू : पांच महाव्रत, अरु पच्चीश नावना जिसमें होवे, सो गुरु. तथा च सित्तरी अरु करणसित्तरी करकें संयुक्त होवे, सो जैनमतमें गुरु है.

अथ चरण सित्तरीके सित्तर नेद लिखते है ॥ गाथा ॥ वय समण ध संजम, वेयावच्चं च बंन गुत्तीर्ज ॥ नाणाइ तियं तव को, ह निग्गहाइं रणमेयं ॥ १ ॥ अर्थः—व्रत पांच प्रकारका, श्रमणधर्म दश प्रकारका, म सत्तर प्रकारका, वैयावृत्त्य दश प्रकारका, ब्रह्मचर्य गुप्ति नव प्रकारकी, , दर्शन, चारित्र, ए तीन प्रकारका, तप बार प्रकारका, निग्रह क्रोधादिक प्रकारका, ए सर्व सित्तर हुये, तीनमेंसूं पांच व्रतका स्वरूप तो उपर ना संयुक्त लिख आये है, सो जानना.

था श्रमणधर्म दश प्रकारका लिखीयें है ॥ गाथा ॥ खंतिय मद्दव ज्जव, तव संजमे य बोधवा ॥ सच्चं सोयं आकिंचणं च बंनं च जइधम्मो ॥ १ ॥ पार्थः—(१) क्षांतिः (क्षमा) करणी. चाहो सामर्थ्य होवे, चाहो असामर्थ्य , परंतु दूसरेके डुर्वचन सहनेके जो परिणाम मनोवृत्ति है, तिसका नाम कहते है, सर्वथा क्रोधका त्याग क्षमा, (२) कोमल कहीये अहंकार र , तिसका जो नाव, वा कर्म सो कहियें मार्दव, नीचा हो कर अनिमान त होणां, (३) ऋजु कहियें मन, वचन, काया करी सरल, तिसका जो , वा कर्म, सो आर्जव, मन वचन कायाकी कुटिलताइसें रहित, (४) वनं मुक्तिः बाहिर, अंदर, तृष्णाका त्याग लोनका त्याग, (५) रसादिक अथवा अष्ट प्रकार कर्म, जिस करकें तपे सो तप अनशनादि बारा रका, (६) संयम, आश्रवकी त्यागवृत्ति, (७) सत्यं, मृषावाद विरति का त्याग, (८) शौच, अपणी संयमवृत्तिमें कोइ कलंक न लगावनां, (९) नहीं है किंचित् मात्र द्रव्य जिसके पास सो आकिंचन, (१०) नव चर्यकी गुप्ति, ए दश प्रकारका यतिधर्म, तथा मतांतरमें दश प्रकारका

यतिधर्म ऐसेभी कहते हैं ॥गाथा॥ खंती मुत्ती अज्जव, मद्दव तह . तवे चेव ॥ संजम वियोग किंचण, वोधवे वंभचेरेय ॥१॥ अस्यार्थः सु

अथ सत्तर भेद संयमके लिखते है ॥ गाथा ॥ पंचासवाविरमण चिंदिय निग्गहो कसाय जउ ॥ दंमत्तयस्स विरई, सत्तरसहा संजमो ॥ १ ॥ अथवा ॥ पुढवि दग अगणि मारुय, वणसइ बि ति चउ पं अजीवा ॥ पहु पेह्पमज्जण, परिठवण मणो वई काए ॥२॥ इनोंका अ उत्पन्न करीयें कर्म इनों करकें सो आश्रवाः सो आश्रव पांच प्रका है, जो पांच महाव्रतोमें त्यागने लिखे है. (१) हिंसा, (२) जूठ, (चोरी, (४) अब्रह्म. (५) परिग्रह. ए पांच आश्रवका त्याग करे, स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु अरु श्रोत्र, ए पांचों इंद्रियका स्पर्शादिक प विषयोंविषे लंपटपणा त्यागे, तथा क्रोध, मान, माया अरु लोभ, चारों कषायका जीतनां. इन चारोंके उदय होयाकूं नि फल करणा, अरु नहीं उदय आये उनकूं उत्पन्न न करणां तथा दंमीयें चारित्र धर्मरूप ऋमी जीव पासों इनों करकें सो खोटा मन, खोटा वचन. खोटी काया, तीनो दंमकी विरति करणी. एव सत्तर भेद करिकें संयम है, अथवा प्रक तर करकें सत्तर भेदसें संयम कहते है,(१) पृथिवी, (२) उदक, (३) अ (४) पवन, (५) वनस्पति, (६) द्वीन्द्रियजीव, (७) त्रींद्रियजीव, (८) रिंद्रिय जीव, (९) पंचेंद्रिय जीव, इन पूर्वोक्त नवविध जीवोंकूं मन, न. अरु काया करी करणां,करावणां,अरु करणे वालेकूं नला जाननां, त समारम्नाऽरंन, इन नव विकल्पोमें पूर्वोक्त नवविध जीवोंकी हिंसा त्याग ए नव प्रकारका संयम. जो प्राणीके प्राणकूं विनाशनेका संकल्प करण इसका नाम सरंन है, जीवके प्राणकूं जो परिताप करना, (पीडा देनी) सका नाम समारंन है, तथा जीवोंका प्राणका जो विध्वंस करनां, इस नाम आरंन है, तथा (१०) अजीव संयम जिस अजीव वस्तुके रा णेमें संयम कलंकित हो जावे, जैसें मास, मदिरा, सुवर्ण प्रमुख स धातु. मोति आदिक सर्व रत्न अंकुश ... न शस्त्र, इत्यादिक अजीव रखनेमें संयममें कलंक ... मो ... उ न ... तथा अजी रूप जो पुस्तक, अरु ... तर बुद्धि नहीं, आयु लंबी ... हीन

ये हैं, विद्या कंठ रहती नही, इस वास्ते इस कालमें जो पुस्तक रखणां, सो तिलेखणा, प्रमार्जनापूर्वक यतनोसें राखणां, ए दसवा अजीव संयम. (११) प्रेक्षासंयम. सो नेत्रोंसें देख करकें बीज, हरि प्रमुख जीवों करी हित स्थानमें सोनां, बैठणां, चलनां, इत्यादिकके करणेसें प्रेक्षासंयम. था (१२) उपेक्षासंयम सो गृहस्थकूं पापका व्यापार करतेकूं उपेक्षे ां सो (उपदेश देणां) कि यह काम तुम असें करो, एसें जो गृहस्थकूं हनां, सो उपेक्षा संयम, अथवा केइ साधु संयमसें चलायमान हो ग ा होवे, उसकूं हित करकें जो उपदेश करनां, सो प्रेक्षासंयम, तथा ार्श्वस्थादिक जो साधुकी समाचारीसें भ्रष्ट हो गये है, अरु वो भ्रष्ट ाधु कोइ अनुचित काम कर रहा है, अरु साधुजी अपणे मनमें जा जावे जो इसकूं उपदेश करुंगा, तो इसने माननां नही है, इस वास्ते ो औदासीन्य रहणां, उसका नाम उपेक्षासंयम, (१३) प्रमार्जन यम, सो देखे हुये स्थानमें वस्त्र पात्रादिक जो लेने, वा रखने पडे, तब थम रजोहरणादिकसें प्रमार्जन करकें पीछेसें लेनां, रखनां, सोनां, बैठनां रे, तब प्रमार्जना संयम, तथा (१४) भात, पाणी, वस्त्र, पात्रादिक जि नमें जीव पड गये होवे, तब तिनकूं जीवों रहित शुद्ध भूमिकामे शास्त्रो क विधि कर जो परिष्ठापना करे, सो परिष्ठापनासंयम, तथा (१५) मनमें द्रोह, ईर्ष्या, अभिमान, तो न करणां, अरु धर्मध्यानादिकमें मन प्रवृ त्त करणा, सो मनःसंयम. तथा (१६) हिंसाकारी कठोर वचनकों त्यागनां, अरु शुभ वचनमें प्रवृत्त होनां, सो वचनसंयम, तथा (१७) गमनागमन करणेमें अरु अवश्यकरणे योग्य कामोंमें उपयोग पूर्वक जो कायाकूं प्रवृत्तावे, सो कायासंयम, ए सत्तरभेद संयमके जाननां.

अथ वैय्यावृत्तके दश भेद कहते हैं ॥ गाथा ॥ आयरिय उवझाए, तवस्सि सेहे गिलाण साहुसु ॥ समणोन्न संघ कुल गण, वेयावच्चं हवइ दसहा ॥१॥ अर्थ—(१) ज्ञानादिक पाच आचारकूं जो पाले, सो आचार्य, तथा सेवीये जो, सो आचार्य तथा (२) जिनके समीप आ कर पढीये, सो उपाध्याय. तथा (३) तप जो करे, सो तपस्वी, तथा (४) जिसने न वाही साधुपणा लीया है, सो शिष्य, तथा (५) ज्वरादि रोग वाला जो साधु सो ग्लान, तथा (६) जो धर्मसें डिगतेकूं स्थिर करे, सो स्थविर, साधु

तथा (७) जिस साधुकी अपणे समान एक समाचारी होवे, सो स
तथा (८) साधु, साधवी, श्रावक अरु श्राविका इन चारोंको जो समुद
संघ, तथा (९) बहुते एक सरिखे गच्छोंका सजातियोंका जो समूह,त
चंद्रादिक जाननां, तथा (१०) एक आचार्यकी वाचनावाले साधुवों
ह, सो गण गच्छ कोटिकादिक. इन पूर्वोक्त आचार्यादिक दसोंका
पाणी, वस्त्र, पात्र, मकान, पीठ, फलक, संस्तारक प्रमुख धर्म
करकें जो साहाय्य करणां, शुश्रूषा करणी, भेषज करणी, उजाड
में रोग उत्पन्न होनेसें. तथा नाना प्रकारके उपसर्गोंमें पालना कर
सका नाम वैय्यावृत्त है.

अथ जो शीलवान् साधु होवे, सो नव वाड सहित शील पाले,
नवविध ब्रह्मचर्यकी गुप्ति कहते है. सो लिखते हैं ॥गाथा॥ वसहि
तिंदिय,कुड्डंतर पुव्वकीलिय पणीए ॥ अइमायाहार विभू,सणाइ न
गुत्तीउ ॥१॥ अर्थः—१ (वसहि के०) वस्ती सो जो ब्रह्मचारी साधु हो
स्त्री,पशु,पंडक इनों करी, संयुक्त जो वस्ती होवे,तहां ब्रह्मचारी न रहे,
सूं प्रथम तो स्त्री जो है,सो दो तरेंकी है, एक तो देवी, दूसरी
इन दोनोके दो दो भेद है, एक तो असल, और दूसरी इनकी मूर्ति
चित्रामकी मूर्त्ति, यह दोनो प्रकारकी स्त्री जहां न होवे, तिस वस्ति
तथा पशु जो तिर्यंचिणी, गौ, महिषी, घोडी, बकरी, भेड प्रमुख जिस
में नहीं रहे, तहां रहे, तथा पंडक सो नपुंसक, तीसरे वेद वाला, म
दवाला काम करनेहारा, स्त्री अरु पुरुष, इन दोनोंके साथ विषय सं
ला, जिस वस्तिमें रहता होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, क्योंकि इन तीन
संयुक्त वस्तिमें रहते थके उनोंकी कामविकारकी चेष्टा देखनेसें,
रीके मनमे विकार उत्पन्न होनेसें ब्रह्मचर्यकूं बाधा होती है, जैसे मूष
बिल्ली दोनु एक जगे रहे, तो मूषेकूं सुख नहीं; तैसेही इन तीनो सं
स्तिमें रहणेसें शीलकूं उपद्रव होवे, ए प्रथम ब्रह्मचर्य गुप्ति.

२ तथा (कह के०) कथा सो केवल स्त्रीयांहीकूं तथा एकली स्त्रीकूं ध
ना वचनका प्रबंधरूप कथा न कहे, तथा स्त्रीकी कथा नकरे ॥ यथा ॥
सुरतोपचारचतुरा, लाटी ललितप्रिया ॥ इत्यादिक कथा न करे, क्यों
कथा जो है, सो राग उत्पन्न करनेकी हेतु है, जो स्त्रीके देश,

न, वेष, भाषा, गति, (चलना) विभ्रम, इंगित, हास्य, लीला, कटाक्ष,
ह, रति, कलह, शृंगार, इत्यादिक जो विषयरसकी पोखने वाली कामि
की कथा है, सो कदेइ न करे. जे कर करे, तो अवश्य मुनिकाभी मन वि
रकूं प्राप्त हो जावे. ए दूसरी ब्रह्मचर्यकी गुप्ति है.

३ तथा (निसिज्ज के०) आसन सो स्त्रीयोंके साथ एक आसन उपर न बै
ठां,तथा जिस जगेसें स्त्री उठी होवे,उस आसन वा स्थानमें दो घडी तक
धु न बैठे, क्यों कि उस जगे तत्काल बैठनेसें स्त्रीकी स्मृति होती है,
ै स्त्रीके बैठनेसें शय्या वा आसन, मैलसें मलिन होता, स्त्रीके स्पर्शवाले
ासनादि स्पर्शसें विकार उत्पन्न हो जाता है, ए तीसरी ब्रह्मचर्यगुप्ति.

४ तथा (इंदिय के०) इंद्रिय सो अविवेकी लोकोकूं देखने योग्य, स्त्रीयोंके
ंगोपांग जो नाक,स्तन,जघन प्रमुख है,उसकूं ब्रह्मचारी साधु अपूर्व रसमें
ग्न हो कर,नेत्र फाड कर,न देखे,कदाचित् दृष्टि पड जाय,तो पीछेसें ऐसी
ंतवना भी न करे, जैसें कि बडे सुंदर लोचन है ! नासिका बहुत सीधी
! बांधने योग्य दोनो कुच है ! जे कर स्त्रीके पूर्वोक्त अंगोपांग एकाग्र रस
ग्न हो कर चिंतवना करे,तो अवश्य मन मोहे,तथा विकारकूं प्राप्त होवे.

५ तथा(कुड्डंतर के०) कुड्यांतर सो जिन भीतके, टट्टीके, कनातके,
ंतर बीचमें होनेसें स्त्री पुरुष,मैथुन करते होवें,अरु उनका शब्द सुणाइ
वे, तहां साधु ब्रह्मचारी न रहे. ए पांचमी गुप्ति.

६ तथा (पुव्वकीलिय के०) पूर्वक्रीडा सो पूर्वगृहस्थ अवस्थामें स्त्रीके
ाथ जो विषय भोग क्रीडा करी होवे, तीसकूं स्मरण न करे; जे कर करे,
ो कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाता है, ए छट्ठी गुप्ति.

७ तथा (पणीय के०) प्रणीत सो अति चीकणा, मीठा, दूध, दधि प्र
मुख अति धातुपुष्ट करनेवाला आहार निरंतर न करे; जे कर करे, तो
ीर्यकी वृद्धि होनेसें अवश्य वेदोदय होगा, फेर जरूर विषय सेवेगा,
्योंकि जो बोदी कोथलीमे बहुत रूपिये भरेगा, तो जरूर फाट जायगी.

८ तथा (अइमायाहार के०) अतिमात्राहार, सो रूखा भिक्षाभी प्रमा
णसे अधिक न खावे, क्यों कि अधिक खानेसें विकार हो जाता है, अरु
शरीरकू पीडा विशूचिकादिक होनेका कारण है, ए आठमी गुप्ति.

९ तथा (विभूसणाइ के०) विभूषणादि शरीरकी विभूषा सो स्नान, विले

पन, धूप, नख, दांत, केश, इनकी सुंदरताइके वास्ते समारणां, तिलक, सुरमा, कज्जल, विनूपाके वास्ते नेत्रोंमें गेरनां, तथा कानोंमें मांजने, सावु, तेल प्रमुख मसल कर गरम पाणीसें सुकोमलताइसें धोनां, इत्यादिक शरीरकी विनूषा न करे, ए नवमी ब्रह्मचर्यगुप्ति. ९ प्रकारकी गुप्ति सो ब्रह्मव्रतकी रक्षा रूप नव वाड है.

अथ ज्ञानादि तीन कहेते है, उसमें यथार्थ वस्तुका जो बोधक ज्ञान, सो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षय तथा क्षयोपशमके होनेसें जो हूया है बोध, तिसका हेतु जो द्वादशांग औ द्वादशोपांग, तथा उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहियें. तथा दूसरा दर्शन सो १ जीव, अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्ज्जरा, ८ बंध, ९ इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमें श्रद्धा (रुचि) करनी सेकी ए नव तत्त्व तथ्य है, मिथ्या नहीं, ऐसी तत्त्वरुचि तिसका नाम न है, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसें ज्ञान, श्रद्धान पूर्वक जो होना, इसका नाम चारित्र है, इस चारित्रकेनी दो नेद है, एक दे- त्र, दूसरा सर्व विरतिचारित्र; उसमें देशविरति चारित्र तो जहां गृहाश्रम स्वरूप लिखेंगें, तहांसे जान लेना, अरु जो सर्वविरति चारित्र है, स्वरूप, इसी गुरुतत्त्वमें लिखने लग रहे हैं, ए ज्ञानादिक तीन जानना

अथ बारा प्रकारका तप लिखते है ॥ गाथा ॥ अणसण मू वित्तीसंखेवणरसच्चाउ ॥ कायकलेसो संली, णया य बज्झो तवो होइ ॥ पायच्छित्तं विणउ, वेयावच्चं तहेव सज्जाउ ॥ ज्झाणं उस्सग्गोविय, रउ तवो होइ ॥ २ ॥ इनका अर्थ.—१ व्रत करणा, २ थोडा ३ नाना प्रकारके अनिग्रह करणे, ४ रस जो दूध, दही, घृत, तेल,

। ४ एक आप दूसरायोंकों पढानां, दूसरा संशय उत्पन्न हूया गुरुकूं पू
, तीसरा अपने सीखे हूयेकूं वारंवार उच्चारन करनां, चौथा जो कुछ
। है, उसके तात्पर्यकूं एकाग्रचित्त करकें चिंतनां, इसका नामअनुप्रेक्षा
पांचमी धर्मकथा करनी, ए पांच प्रकारका स्वाध्याय तप है, तथा ५
आर्त्तध्यान, दूसरा रौद्रध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्यान, इन
ोंमेंसूं आर्त्तध्यान अरु रौद्रध्यान, ए तो दोनो त्यागने, औ धर्मध्यान
र शुक्लध्यान, ए दोनो अंगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६ सर्व उपा
ोंकों त्याग देनां सो व्युत्सर्ग तप है, ए छ प्रकारका अभ्यंतर तप है,
सर्व मिल कर बारा प्रकारका तप है.
क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारोंका निग्रह करनां. यह पांच
, दश श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका संयम, दश प्रकारका वैयावृत्त, नव
ारकी ब्रह्मचर्यगुप्ति, तीन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बारां प्रकारका तप,
र क्रोधादिक चारका निग्रह, ए सर्व मिल करकें सित्तर भेद चारित्रके है,
वास्ते इनकूं चरणसित्तरी कहते है.
अथ करणसित्तरीके भेद लिखते है ॥ गाथा ॥ पिंडविसोही समिई, भा
। पडिमाय इंदिय निरोहो ॥ पडिलेहण गुत्तीउं, अभिग्गह चेव करणं
॥ १ ॥ इसका अर्थः—पिंडविशुद्धि सो एक आहार, दूसरा उपाश्रय,
ारा वस्त्र, चौथा पात्र, ए चार वस्तुकूं साधु बैंतालीश दूषण करके र
र लेवे, तिसका नाम पिंडविशुद्धि है. बैतालीश दूषणका जो पूरा स्व
देखनां होवे, तब तो पिंडनिर्युक्ति ग्रंथ भद्रबाहुस्वामिकृत उसकी
ायगिरिसूरि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी.
॥ पिंडविशुद्धि ग्रंथ जिनवल्लभसूरिकृत औ उसकी जिनपतिसूरिकृत
ासें जान लेना, तथा प्रवचनसारोद्धार श्रीनेमिचंद्रसूरिकृतसूत्र,
ा उसकी सिद्धसेनसूरिकृतटीकासें जान लेनां, तथा श्रीहेमचंद्र सूरि
। योग शास्त्रसें जान लेना.
अथ समिई सो पाच समिति, उसका स्वरूप लिखते है. प्रथम ईर्या
मिति, सो चलनेका नाम ईर्या कहते है, अरु समिति कहिये सम्यक्
ागमके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहिये. त्रस स्था
जीवोंकूं अभयदान दाता जो मुनि है, तिस मुनिकूं अवश्य प्रयोज

पन, धूप, नख, दांत, केश, इनकी सुंदरताइके वास्ते समारणां, तिलक, सुरमा, कज्जल, विनूषाके वास्ते नेत्रोमें गेरना, तथा मांजने, साबु, तेल प्रमुख मसल कर गरम पाणीसें सुकोमलताइके धोनां, इत्यादिक शरीरकी विजूषा न करे, ए नवमी ब्रह्मचर्यगुप्ति. प्रकारकी गुप्ति सो ब्रह्मव्रतकी रक्षा रूप नव वाड है.

अथ ज्ञानादि तीन कहेते हैं, उसमें यथार्थ वस्तुका जो बोधक ज्ञान, सो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षय तथा क्षयोपशमके होनेसें जो हूया है बोध, तिसका हेतु जो द्वादशांग औ द्वादशोपांग, तथा उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहियें. तथा दूसरा दर्शन सो १ जी अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्ज्जरा, ८ बंध, ए इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमें श्रद्धा (रुचि) सेकी ए नव तत्त्व तथ्य हैं, मिथ्या नही, ऐसी तत्त्वरुचि तिसका नाम न है, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसें ज्ञान, श्रद्धान पूर्वक जो होनां, इसका नाम चारित्र है, इस चारित्रकेजी दो नेद है, एक देशविर त्र, दूसरा सर्व विरतिचारित्र; उसमें देशविरति चारित्र तो जहां स्वरूप लिखेंगें, तहांसें जान लेनां, अरु जो सर्वविरति चारित्र है, स्वरूप, इसी गुरुतत्त्वमें लिखने लग रहे हैं, ए ज्ञानादिक तीन जा

अथ बारा प्रकारका तप लिखते है ॥ गाथा ॥ अणसण मूणो वित्तीसंखेवणरसच्चाउ ॥ कायकलेसो संली, णया य बज्झो तवो होइ पायछित्तं विणउ, वेयावच्चं तहेव सप्नाउ ॥ झाणं उस्सग्गोविय, रउ तवो होइ ॥ २ ॥ इनका अर्थ.—१ व्रत करणां, २ थोडा ख ३ नाना प्रकारके अनिग्रह करणे, ४ रस जो दूध, दही, घृत, तेल, पक्वान्न, इनोका त्याग करनां, ५ कायक्लेश, वीरासन, दंमासन आदिक अनेक तरेका कायक्लेश करनां, ६ पांचो इंद्रियोंकूं अपणे अपणे योंसें रोकनां, ए ठ प्रकारका बाहिर तप है, १ जो कुछ अयोग्य काम अरु पीछेसें गुरुके आगें आपणा पाप जैसे करा था, वैसेही प्रगट पणे ना, आगेकूं फेर वो पाप न करना, अरु पूर्वे जो करा है, उसकी त्तिके वास्ते गुरु पासों यथा योग्य दंम लेना, इसका नाम प्रायश्चित त तथा २ अपनेसें गुणाधिककी विनय करनी, तथा ३ वैयावृत्त नक्ति क

४ एक आप दूसरायोंकों पढानां, दूसरा संशय उत्पन्न हूया गुरुकूं पू
तीसरा अपने सीखे हूयेकूं वारंवार उच्चारन करनां, चौथा जो कुछ
है, उसके तात्पर्यकूं एकाग्रचित्त करकें चिंतना, इसका नामअनुप्रेक्षा
पांचमी धर्मकथा करनी, ए पांच प्रकारका स्वाध्याय तप है, तथा ५
आर्त्तध्यान, दूसरा रौद्रध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्यान, इन
मेंसूं आर्त्तध्यान अरु रौद्रध्यान, ए तो दोनो त्यागने, औ धर्मध्यान
शुक्लध्यान, ए दोनो अंगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६ सर्व उपा
कों त्याग देनां सो व्युत्सर्ग तप है, ए छ प्रकारका अभ्यंतर तप है,
सर्वे मिल कर बारा प्रकारका तप है.

क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारोंका निग्रह करना. यह पांच
दश श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका संयम, दश प्रकारका वैय्यावृत्त, नव
रकी ब्रह्मचर्यगुप्ति, तीन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बारा प्रकारका तप,
क्रोधादिक चारका निग्रह, ए सर्वे मिल करूँ सित्तर भेद चारित्रके है,
वास्ते इनकूं चरणसित्तरी कहते है.

अथ करणसित्तरीके भेद लिखते है ॥ गाथा ॥ पिंडविसोही समिई, भा
पडिमाय इंदिय निरोहो ॥ पडिलेहण गुत्तीउं, अभिग्गह चेव करणं
१ ॥ इसका अर्थः—पिंडविशुद्धि सो एक आहार, दूसरा उपाश्रय,
रा वस्त्र, चौथा पात्र, ए चार वस्तुकूं साधु. बैतालीश दूषण करके र
लेवे, तिसका नाम पिंडविशुद्धि है. बैतालीश दूषणका जो पूरा स्व
देखनां होवे, तब तो पिंडनिर्युक्ति ग्रंथ भद्रबाहुस्वामिकृत उसकी
यगिरिसूरि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी.
पिंडविशुद्धि ग्रंथ जिनवल्लभसूरिकृत औ उसकी जिनपतिसूरिकृत
से जान लेनां, तथा प्रवचनसारोद्धार श्रीनेमिचंद्रसूरिकृतसूत्र,
उसकी सिद्धसेनसूरिकृतटीकासे जान लेनां, तथा श्रीहेमचंद्र सूरि
योग शास्त्रसें जान लेनां.

अथ समिई सो पाच समिति, उसका स्वरूप लिखते हैं. प्रथम ईर्या
ति, सो चलनेका नाम ईर्या कहते है, अरु समिति कहिये सम्यक्
मके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहियें त्रस स्था
जीवोंकू अभयदान दाता जो मुनि है, तिस मुनिकूं अवश्य प्रयोज

नके वास्ते चलनां पडे, तब किस रीतिसें चलनां? प्रथम तो प्रसिद्ध चलनां, जो रस्ता सूर्यकी किरणोसें प्रतप्त होवे, प्रासुक जीव रहित जिसमें स्त्री पुरुषका संघट्ट न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा शरीरकी रक्षा निमित्त पगके अंगूठेसें ले कर चार हाथ प्रमाण भू आगेसें देख कर चलनां, इसका नाम ईर्यासमिति है इस रीतिसें साधु चले. तथा दूसरा कोइ काम करे, तिस काममें कदाचित् कोइ मरनी जावे, तोभी साधुकूं पाप नही लगता, क्योंकि उसका हुत शुन है, यह प्रथम ईर्यासमिति. तथा पाप सहित नाषा, तथा नाषा, जैसें के तूं धूर्त्त है, कामी है, राक्षस है, चार्वाक प्रमुखके कहे न कहे, जो शब्द, जगत्में निंदनिक होवे, सो न बोले, परकूं सुखदाइ में थोडा बहुत प्रयोजनोंका साधनेवाला संदेह रहित असा बचन दूसरी नाषासमिति. तथा बेतालीश दूषण रहित आहारादिक ग्रहण सो तीसरी एषणासमिति, तथा आसन, संस्तारक, पीठ, फलग, वस्त्र, दंमादिककों नेत्रोंसें देख कर उपयोग पूर्वक लेनां, अरु रखनां, करनां चोथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रश्रवण, थूक, नाकका शरीरमल वस्त्र, अन्न, पानी, जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकूं रहित नूमिकामें स्थापन करनां, सो पांचमी परिस्थापना समिति, पांच समिति कही.

अथ बार नावना लिखते हैं. प्रथम अनित्यनावना, दूसरी नावना, तीसरी संसारनावना, चोथी एकत्वनावना, पांचमी अ ना, बठी अशुचित्वनावना, सातमी आश्रवनावना, आठमी नवमी निर्ज्जरानावना, दशमी लोकस्वनावनावना, अग्यारमी त्व नावना, बारमी धर्मका कथन करने वाला, अर्हन् है. यह बारा ना जिस तरेसे नावने योग्य रात दिनमें है, तैसें अन्यास करनां, बारां नावनायोंका किंचित् स्वरूप लिखते है,

१ अनित्यनावना. सो जिनका वज्रकी तरे सार अरु कठिन शरीर, वोन्नी अनित्य रूप राक्षसेनें नक्षण कर लीये, तो फेर केलेके तरे निःसार जो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप कैसें बचेंगे? तथा लोक, बिल्लीकी तरे आनंदित हो कर, विषय सुख

ंकी तरें स्वाद लेते है, परंतु लाठीकी मारकूं नही देखते हैं, नावार्थः-
पयसुख नोग कर आनंद तो मानते है, परंतु जन्मांतरमे नरकपतन
प संकटसें नही डरते है, तथा जीवोंका शरीर तो पाणीके बुज बुलेकी
रें है, अरु जीवोंका जो जीवित है, सो ध्वजाकी तरें चंचल है, तथा
ावण्य, स्त्री, परिवार, आंखकी पापण, (नांफण) की तरें चंचल है, अ
यौवन जो है, सो हाथीके कानकी तरे चंचल है, तथा स्वामीपणा
ो है, सो स्वप्नश्रेणीकी तरें है, अरु लक्ष्मी जो है सो चपला (बीजली)
ी तरें चपल है, इसी तरें सर्व पदार्थोंकूं अनित्य पणा विचारता प्यारा
त्रादिकनी मर जाये, तोनी अपणे मनमें शोच न करे, तथा जो मूर्ख
ीव सर्व नावकूं नित्य माने है, वो जीर्ण पत्रोकी झोंपडीके नंग होनेंसें
त दिन रुदन करता है; तिस वास्ते तृष्णाका नाश करकें ममत्व रहित
ुद्ध बुद्धि वाला जीव, अनित्य नावना नावे ॥ इति प्रथम नावना ॥ १ ॥
२ दूसरी असरण नावनाका स्वरूप कहते हैं. पिता, माता, पुत्र, नार्या,
मुखके आगें बहुत आधि व्याधिके समूह रूप शृंखलामें बंधा हुये रुदन
रते हुयेकूं कर्मरूप योद्धोनें यमके (कालके) मुखमें प्रक्षेप करता थकां ब
ा दुःख है, जो लोक शरण रहित अनाथ है, वे क्या करेंगे? तथा
ाना प्रकारके शास्त्र विषयोंकूं जो जानते है, तथा नाना प्रकारके मंत्र
त्रोकी क्रिया जो जानते है. तथा जो ज्योतिषविद्याकूं जानते है, तथा
ो नाना प्रकारकी औषधि, रसायन प्रमुख वैद्यक क्रियाओंमें कुशल
ं, ए सर्व विद्यावानोंकी क्रिया कालके आगें कुछनी करनेकूं समर्थ नही
ं, तथा नाना प्रकारके शस्त्रों वाले नटजोद्धाओंकी सेना करकें परिवे
ष्टितनी है, नाना प्रकारके मदझर हाथीयोंकी वाडनी है. ऐसे इंद्र, वासु
देव, चक्रवर्त्ती सरीखे वलवान्नी कालके घरमे खेंचे हुये चले जाते है.
बडा दुःख है कि जो प्राणियोकूं कोइनी त्राण नही. तथा जो मेरुका दंम
अरु पृथ्वीका छत्र करनेकूं समर्थ थे, अरु थोडानी जिनकूं क्लेश नही था,
ऐसें अनतवली तीर्थंकरनी लोकोकूं कालसें बचानेकूं समर्थ नही, तो फेर
दूसरा कौनसा समर्थ है? स्त्री, मित्र, पुत्रादिकोके स्नेहरूप नूतके दूर कर
णे वास्ते शुद्धमति जीव अशरण नावना नावे. ए दूसरी अशरण नावना.
३ तीसरी संसार नावना कहते है. बुद्धिमान् तथा बुद्धि रहित, सुखी,

दुःखी, रूपवान् तथा कुरूपवान्, स्वामी तथा दास, प्यारा तथा वैरी, रा
तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक, इत्यादिक अनेक प्रकारके
र्मोके वशसें सांग धार कर, इस संसार रूप अखाडेमें यह जीव ना-
रता है, तथा अनेक पाप बांध करकें महारंभ, मांस भक्षण, आदि-
दिक कारणों करके, महा अंधकार जहां कुछ नहीं दीखता, ऐसी
मिकामें जा करके पडता है, तिहां अंग छेदन, अग्निमें वलनादि
दुःख जो जीवकूं होते हैं, उन दुःखोंकूं केवलीभी कथन नहीं कर
यह प्रथम नरकगति कही. तथा छल, जूवादिक कारणोंसें प्राणी
गतिमें सिंह, वाघ, हाथी, मृग, बैल, बकरे प्रमुखके शरीर धारण कर
अरु तिस तिर्यंच गतिमे क्षुधा, तृषा, वध, बंधन, ताडन, रोग, हल
में वहनां. इत्यादिक दुःख सदा जो जीव सहता है वो दुःख कौन
नेकूं समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यग्गति कही.

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी,
न करनेमें एक समान निःशुक्ता वर्तन है, तहां जो अनार्य मनुष्य
वोतो निरंतर जीवघात, मांस भक्षण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख कार
करकें बडा भारी पापकर्म महा दुःखोंका देने वाला उत्पन्न करते हैं,
आर्यदेशमेंभी क्षत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो है, वेभी अज्ञान, दरिद्र,
दौर्भाग्य, रोगादिक करके पीडत है. दूसरोंका काम करणां, मानभंग,
पमान प्रमुख अनेक दुःख निरंतर भोग रहे है, तथा अग्निवत् रक्त
है जिनका ऐसीयों सूइयों एक एक रोममें एकेक सूइ किसी जुवान
पके एक कालमे चोभनेसे जैसा उसकूं दुःख होवे तिस दुःखसे आठ
दुःख जीव स्त्रीके गर्भमें जब रहता है तब पाता है, इस दुःखसें
गुणां दुःख जन्म समय होते है, तथा बाल अवस्थामें मूत्र, पुरीष,
लिमे लोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्की निंदा, यौवनमें धन अर्जन करना
इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका संयोग, अरु वृद्ध अवस्थामे शरीरका
कंपना, नेत्रोका वलहीन हो जानां, श्वास, खासी प्रमुख करकें महा दुःखी
होनां तोवो कौनसी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइभी नहीं
यह मनुष्यगति कही. तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसे जो जीव देवता
होता है, सोभी शोक, विषाद, मत्सर, भय, थोडी ऋद्धि करके ईर्ष्या, काम, मद,

क्षुधा प्रमुख करकें पीडित हो कर,आपणां आयु दीनमन हो कर पूर्ण करते है. यह देवगति कही. इस तरेसें मोक्षाभिलाषी पुरुष तीसरी संसार भावना भावे.

४ चोथी एकत्व भावना कहते हैं. एकलाही जीव उत्पन्न होता है, अरु एकलाही मृत होता है, एकलाही कर्म करता है, अरु एकलाही तिनका फल भोगता है, तथा जो जीवने बहुत कष्ट करके धन उपार्ज्या है, सो धन, स्त्री, मित्र, पुत्र, भाइ प्रमुख खा जावेंगे अरु जो पाप कर्म उपार्ज्या है, उसका फल तो करने वाला जीव एकलाही नरक, तिर्यंच गतिमें जाकर भोगता है, देखो यह कैसा आश्चर्य है! तथा यह जो जीव इस देहके वास्ते रात दिन फिरता है, अरु दीनपणा अवलंबन करता है, धर्मसें भ्रष्ट होता है, अपणे हितकूं ठगाता है, न्यायसें दूर होता है, सो देह इस आत्माके साथ एक पग तकभी परभवमें न चलेगी, तो फेर यह देह क्या करेगी? क्या साहाय्य देगी? अरु स्वजन जो है, सो अपने स्वार्थमें तत्पर हैं, तेरा वास्तवमें कोइभी नहीं. इस वास्ते हे बुद्धिमान्! तूं अपने हितके वास्ते धर्म करनेमें प्रयत्न कर. इस तरेसें चोथी एकत्व भावना भावे.

५ पांचमी अन्यत्वभावना कहते है, जीव इस देहकूं छोड कर परलोककूं जाता है, इस वास्ते इस शरीरसें जीव भिन्न है, तो फिर नाना प्रकारका सुगंधि लेपन करनां व्यर्थ है, इस वास्ते इस शरीरकूं कोइ दंभादिक करकें मारे तो समता रस पीना चाहिये क्रोध न करना, जो पुरुष अन्यत्वभावना भावे, तिसकूं शरीर, धन, पुत्रादिकके वियोग होनेसेभी शोक नहीं होता है यह पांचमी अन्यत्व भावना कही.

६ छठी अशुचि भावना लिखते हैं. जैसें लूणकी खानमें जो पदार्थ पडता है वो सर्व लूण हो जाता है, तैसेही इस कायामें जो कुछ आहार पडता है सो सर्व मलरूप हो जाता है, ऐसी यह काया अशुचि है, तथा यह काया लोहि, अरु शुक्र इन दोनोके मिलनेसें गर्भ उत्पन्न होता है, जरा करकें वेष्टित होता है, जो कुछ माता खाती है, उसीके रससें वो गर्भ, वृद्धिकूं प्राप्त होता है, अरु स्थिल धातुयो करी पूर्ण है, ऐसी देहकू कौन बुद्धिमान् शुचि मानता है? तथा जो सुस्वाद, शुभ गध वाले मोदक, दहीं, दूध, इक्षुरस, शालि, उदन, द्राक्ष, पापड, अमृता, घेउर, आंब प्रमुख खाता है, सो तत्काल मलरूप हो जाता है, ऐसी अशुचि कायाकूं

महा मोहांध पुरुष, शुचि माने हैं. तथा पानीके सौ (१००) स्नान करकें सुगंधि, पुष्प, कस्तूरि प्रमुख द्रव्यों करकें बाहिरली कितनेक कालतांइ मुग्धजीव शुचि सुगंधित करते हैं, परंतु विष्ठेका मध्य भागमें कैसें शुचि होवे? तथा बडे हर्ष वृद्धिवाले द्रव्य करके त है, दिशा, तथा चंदन, कस्तूरी, कर्पूर, अगरु, कुंकुम प्रमुख वस्तुका रके साथ जब संबंध होता है, तब ए पूर्वोक्त सर्व वस्तु दुर्गंध रुप मात्रमें हो जाती है, फेर इस कायाकूं कौन बुद्धिमान् शुचि मानता ऐसे शरीरकी अशुचिरूपता विचार करकें बुद्धिमान् पुरुष, इस ममत्व न करे. यह छठी अशुचि भावना कही.

७ सातमी आश्रवभावना कहते है. मन, वचन, औ क शुभाशुभ कर्म जो जीव ग्रहण करते है, तिसका नाम आश्रव, देव कहते हैं. सर्व जीवों विषे मैत्र भावना, गुणाधिक जीवमें वना, अविनीत शिष्यादिकमें मध्यस्थ भावना, दुःखी जीवोमें कारु वना, इन चारो भावनाओं करकें जिस पुरुषका अंतःकरण निरंतर व त होवे, वो पुण्यवान् जीव, बैतालीश प्रकारका पुण्य उपार्ज्जन करता तथा रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान, पाच प्रकारका मिथ्यात्व, शोल प्रकारकी य, पांच प्रकारका विषय, इनो करकें जिनोका मन वासित है, वे जीव, शी प्रकारका अशुभ कर्म उपार्जन करते है, तथा सर्वज्ञ अर्हंत भ गुरु, सिद्धांत द्वादशांग, चार प्रकारका संघ, इन सर्वका जो कीर्त्तन करता है, अरु सत्य वचन हितकारी बोलता है, वे जीव, उपार्ज्जन करते हैं. तथा श्रीसंघ,गुरु सर्वज्ञ, धर्म, अरु धर्म्मी इन सबके अवर्णवाद बोले, जूठे मतका, वा कपोल कल्पित मतका जो उपदेश वो जीव अशुभ कर्म उपार्ज्जन करता है तथा जो पुरुष वीतराग, की पुष्पादिके करी पूजा करे तथा साधुकी भक्ति, विश्रामण प्रमुख करे, पापसें काया गुप्त करे, वो जीव, शुभ कर्म उपार्ज्जन करता है. तथा जीव, मांसभक्षण, सुरापान, जीवघात, चोरी, जूआ, परस्त्रीगमनादिक व वो अशुभ कर्म उपार्ज्जन करता है. ए अनुक्रमसें मन, वचन, काया के शुभाशुभ आश्रव उपार्ज्जन करता है, इस प्रकारसे यह आश्रव भाव जो जीव भावे है, सो अनर्थ परपराकूं त्याग देता है, अरु महानंदरू

, दुःख दावानलकूं मेघसमान ऐसी शर्मवल्लि मोक्षकी देने हारी
ीकार करता है इस तरेसें सातमी आश्रवभावना भावे.
आठमी संवरभावना कहते है, सो आश्रवोंका जो निरोध करनां, तिसकूं
र कहते है, सो संवर दो प्रकारका होता है, एक देशसंवर, दूसरा सर्व
र. उसमें सर्व करिके संवर तो अयोगी केवलीमें होता है, अरु जो दे
ं संवर है, सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने वालेमें होता है.
ा वली संवर दो प्रकारका है, एक द्रव्यसंवर, दूसरा भावसंवर उस
जो कर्मपुद्गल आश्रव करकें जीव ग्रहण करता है, तिनका जो देशसें
सर्वसें छेदन करनां, सो द्रव्यसंवर अरु जो भव हेतु क्रियाका त्याग,
भावसंवर. मिथ्यात्व कषाय प्रमुख आश्रवोंकों जो बुद्धिमान् उपाय
कें निरोध करे, अरु आर्त्त, रौद्र ध्यान जो बुद्धिमान् वर्ज्जे, धर्मध्यान
ध्यान ध्यावे, क्रोधकूं क्षमा करके जीते, मानकूं मृदुभाव करके जीते,
याकूं सरलता करकें जीते, लोभकूं संतोष करके जीते, इंद्रियोंके विषय
ानिष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसें जीते, इस प्रकारसें जो बुद्धिमान् संवरभा
ा भावे, तो स्वर्ग मोक्षरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीभूत हो जाती है.
नवमी निर्ज्जरा भावना लिखते है. संसारकी हेतुभूत जो कर्मकी संत
है, तिसकी अतिशय करकें जो हानी करे, तिसका नाम निर्ज्जरा है.
निर्ज्जरा दो प्रकारकी है. एक सकाम निर्ज्जरा, दूसरी अकाम निर्ज्जरा,
दोनोमेंसूं जो सकाम निर्ज्जरा है, सो उपशांति चित्तवाले साधुकूं हो
है, अरु अकामनिर्ज्जरा, शेष जीवोकूं होती है. शेष जीवोकूं जो अ
म निर्ज्जरा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायसें
कर्मका पाक होता है, जैसें आंबका फल स्वयमेवही वृक्षकी भालीमें
ा हूवाही पक जाता है, अरु कोद्रवादिक पलाल गर्त्ताक्षेप करनेसेंभी
क हो जाता है, ऐसेही निर्ज्जराभी दो प्रकारकी है. हमारे कर्मोंकी निर्ज्ज
होवे ऐसे आशय वाले पुरुष जो तप प्रमुख करते है, उनोंके सकाम
र्ज्जरा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकूं विशेष ज्ञान तो नहि
ंतु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, छेदन, भेदनादिक करके सदा जो वो कष्ट भो
ेसें कर्म निर्ज्जरा होती है, उसका नाम अकाम निर्ज्जरा है, ऐसे तप
ुख करके जो निर्ज्जराकी वृद्धि करे, सो नवमी निर्ज्जरा भावना जाननी

१० दशमी लोकस्वभाव भावना कहते हैं. यह पृथिवी, चंद्र, सूर्य नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, स्वर्ग प्रमुख सर्वकूं मिलाके एक लोक कहनेमें आता है, तिस संपूर्ण लोकका आकार जैनमतके सिद्धांतमें लिखा है. जैसें कोइ पुरुष जामा पहिरकें कमरमें दोनो हाथ लगा डा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसाही लोकका आकार है, ५. करकें पूर्ण है, उत्पत्ति, स्थिति,अरु व्यय,इन तीनों स्वरूपों करी अनादि अनंत है, किसीका रचा हूआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक तिर्लोक, इन तीन स्वरूपोमें बढा हूया है जो जीवपुद्गल, सब दर है, बाहिर नहीं. लोकसें बाहिर तो केवल एक आकाशही है, वो काशभी अनत है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोमें अलोक नाम के लिखा है, अधोलोकमें न्यारी न्यारी हेठ ऊपरि सात पृथिवी है, नरकवासी जीव रहते है, अरु किसी जगे भवनपति व्यंतरभी हैं, तिरछे लोकमे मनुष्य अरु तिर्यंच और व्यंतर रहते है, ऊर्ध्व कमें देवता रहते है, विशेष करकें जो लोकस्वरूप देखनां होवे, तो कनाडी द्वात्रिंशतिकासें तथा लोकप्रकाश ग्रंथसें जान लेनां. इसतरें के स्वरूपका जो चिंतन करनां है, सो दशमी लोकस्वभावभावना है

११ अगीयारमी बोधिदुर्लभत्व भावना कहते है, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वनस्पति, इनमें अपणे करे हूये क्लिष्ट कर्मो करके जीव भ्रमण करता है, भयानक संसारमें अनंतानंत पुद्गलपरावर्त्तन करता हूवा यह जीव अकाम निर्जरा करके, अरु पुण्य उपार्जन करके, बेंद्रिय, त्रींद्रिय, चार . पंचेंद्रिय रूप त्रस पणा पावै है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, भला कुल, रोग रहित शरीर, संपदा, वडा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्त्वातत्त्वके विवेचन करने वा. बोधबीजके बोने वाली, कर्मक्षय करकें मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी सर्वज्ञ अर्हतकी देशना मिलनी बहुत दुर्लभ है, जे कर जीव एक सम्यक्त्वरूप बोधि पालता, तो इतने काल तांइ कदापि संसारमें न करता, जो अतीत कालमें सिद्ध हूये, जो वर्त्तमानमें सिद्ध होते अरु जो अनागत कालमें सिद्ध होवेगे, वे सर्व बोधिहीके माहात्म्य है इस वास्ते भव्य जीवकूं बोधिकी प्राप्तिमें यत्न करनां चाहियें, क्योंकि

क जीवोंने अनंत वार द्रव्य चारित्र पाया है, परंतु बोधिके विना
निष्फल हूवा. यह अगीआरमी जावना कही.

२ बारमी धर्म कथाके कथन करनेवाला अर्हन् है यह जावना लिखते
जो पुरुष परहित करनेमे उद्यत है, अरु बीतराग है. वो किसी ज
मेंजी जूठ न बोलेगा. ईस वास्ते उसके कहे हूये धर्ममें सत्यता है,
सा तो लोकालोककूं केवलज्ञान करके प्रकाश करनहार, अर्हंतही हो
का है, दूसरा नही. क्षांत्यादि दश प्रकारका धर्मकूं जिनेश्वर कहते हूये
न धर्म करके जीव, संसार समुद्रमें डूबता नही, जो अर्हंतकी वाणी
सो पूर्वापर अविरुद्ध है, अरु तिन वचनोंमें हिंसाका उपदेश नही.
न जो कहते है, सो निर्ज्जरा वास्ते. दूसरेका उपदेश बिना वि
त्र तरेंसें कह जाते है, तथा कुतीर्थीयोंके जो वचन हे सो सर्व सज्ञ
के वैरी है, क्यों के यज्ञादिकोंमे पशुवध रूप हिंसा करकें क
कित है, पूर्वापरविरोधी है, निरर्थक वचनजी बहुत है, इस वास्ते जो
तीर्थी धर्म कहते हैं, वोजी धर्माजास है, धर्म नहीं. ईस हेतुसे तिनका
चन किस तरें प्रमाण हो सक्ता है? अरु जो जो कुतीर्थीयोके शास्त्रोंमें
ही कहीं दया सत्यादिकोंका कथन है, सोजी कहनेही मात्र है, परंतु
स्वमे वोजी कुछ नही है, क्यो के यथार्थ ईनका स्वरूप वे जानते नही
, अरु यथार्थ पालते नही हैं, प्रथम तो उन शास्त्रोंके जो उपदेशक
, वेही सर्व कामाग्निमें प्रज्वलित थे, यह बात सर्व सुज्ञ जनोंकों वि
ात है, ईस वास्ते अर्हत जगवंतही सत्यार्थके उपदेशक हैं, तथा बडे
दफर हाथीयोकी घटा संयुक्त जो राज्यका पावनां, औ सर्व जनोंकों आ
द देने वाली संपदाका पावना, तथा जो चंद्रमाकी तरें निर्मल गुणका
समूह पावनां, अरु जो उत्कृष्ट सौजाग्यका विस्तार पावनां, यह सर्व धर्म
ीका प्रजाव है, तथा समुद्र जो पृथिवीकूं अपणी कल्लोला करी वहाता
ही है, तथा मेघ जो सर्व पृथिवीकूं रेल पेल नहीं करता, अरु चद्रमा,
र्य, जो उदय होते हैं, सर्व अंधकारका विछेद करते है, सो सर्व जय
त धर्महीका प्रजाव है. जिसका जाई नही, जिसका मित्र नहीं, जिस
ोगीका कोई वैद्य नही, जिसके पास धन नहीं, जिसका कोई नाथ नही,
जसमें गुण नही, ईन सर्वका जाई, मित्र, वैद्य. धन, नाथ, गुणोका निधान.

नोगुप्ति शास्त्रानुसारी,परलोकके साधनेवाली ...
परिणति करणी, ए दूसरी मनोगुप्ति. संपूर्ण शुभाशुभ मनोवृत्तिका
अयोगी गुणस्थान अवस्थामें स्वात्मारामरूपता, ए तीसरी मनो

वचनगुप्ति दो प्रकारकी है. उसमें मुख, नेत्र, भ्रूविकार, अंगु
ऊंचा होना, खांसी करणी, हुंकारा करणां, पत्थर फेंकणा, इन
वोंसें अपणा सूचन कराणा वर्ज्जनां, ए प्रथम वचनगुप्ति. क्यों
चेष्टा द्वारा सर्व कुछ सूचन करा दीया, तब मौन रहना व्यर्थ है.
दूसरेके प्रश्नका उत्तर देना, सो लोकसें अरु आगमसें अविरोध होवे,
वस्त्रादिकसें मुखका यत्न करकें बोलनां, ए दूसरी वचनगुप्ति, इन
भेदों करके वचनका निरोध अरु सम्यक् भाषण रूप वचनगुप्ति

कायागुप्ति दो प्रकारसे है. एक चेष्टाका निःषेध, दूसरी
चेष्टाका नियम करणां. तहां देवता मनुष्यादि उपसर्गमें क्षुधा
रीसहोंके संभव होयां, जो कायोत्सर्ग करणादि करकें कायाकूं
रणा, तथा अयोगी अवस्थामे जो सर्वथा कायाकी चेष्टाका निरोध
ए प्रथम कायगुप्ति. तथा गुरु प्रछन्न शरीर संस्तारक, भूम्यादि
प्रमार्जनादि, जैसें शास्त्रमें है, तिसी तरें क्रियाकलाप पूर्वक
धुकूं करणी, शयनासन लेनां, रखनां, इन सर्व कृत्योमें स्वछंद चेष्टाका
ग देनां, मर्यादा सहित कायाकी चेष्टा करणी. ए दूसरी कायगुप्ति.

अथ अभिग्रह प्रतिज्ञा लिखते है. सो अभिग्रह द्रव्य, क्षेत्र, काल
भाव करि चार प्रकारके है, इसका विस्तार प्रवचनसारोद्धार वृत्तिमें है.
करणसित्तरीकी गणती कहते है. यद्यपि आहारादिकके बैंतालीस दूषण
तथापि पिंम, शय्या, वस्त्र, पात्र, ए चारही वस्तु सदोष नहीं ग्रह
करणी. इस वास्ते संख्यामें ए चारही दूषण लिये है. तथा पांच समिति
बारा भावना, बारा प्रतिमा, पांच इंद्रियनिरोध, पच्चीश प्रतिलेखना, तीन
गुप्ति, चार अभिग्रह, ए सर्व एकठे करेसे सित्तरे, करण सित्तरीके भेद है.

प्रश्न.—चरण सित्तरी औ करण सित्तरी, ए दोनोमें क्या विशेष है?

उत्तरः—जो नित्य करनां सो चरण, अरु जो प्रयोजन हुया तो कर
नां, औ प्रयोजन नहीं होवे तदा न करणां, सो करण यह इनका भेद
है. ए चरण सित्तरी औ करण सित्तरीके भेद समाप्ति हुये है.

इत्यादि जैनमतके गुरु तत्त्वके स्वरूप लिखनेमें लखों श्लोक लिखे
यगे. तोजी संपूर्ण जैनमतके गुरुका स्वरूप नहीं जाना जायगा, इस वा
थोडाहीसा स्वरूप लिखा है. जेकर विशेष जाननेकी इच्छा होवे, तदा
उघनिर्युक्ति, श्रीआचारांग, दशवैकालिक, बृहत्कल्पनाष्य वृत्ति, पंचकल्प
र्णी, जितकल्पवृत्ति, महाकल्पसूत्र, कल्पसूत्र, निशीथनाष्यचूर्णी, महा
शीयसूत्र, इत्यादि पदविनाग समाचारीके शास्त्र देख लेने

प्रश्नः—जैसा जैनमतके शास्त्रोमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्तिवा
कोइनी जैनका साधु देखनेमें नही आता है, तो फेर जैनमतके साधु
कों इस कालमें गुरु क्युं कर मानना चाहियें?

उत्तरः—तुमने किसी गीतार्थको संगत नही करी होगी, क्योंकि जे कर
नमतके चरण करणानुयोगके शास्त्र पढे होते, अथवा किसि गीतार्थ
के मुखारविंदसें वचन रूप अमृत पान करा होता, तो पूर्वोक्त संशय
र रोगकी कसमसी कदापि न उत्पन्न होती? क्योंकि जैनमतमे ठ प्रका
निर्ग्रंथ कहे है. इस कालमें जो जैनके साधु हैं, वे सर्व पूर्वोक्त ठ प्र
रमेंसें दो प्रकारके है, क्योंकि श्रीनगवती सूत्रके पच्चीशमें शतकके ठठे
देशेमे लिखा है, कि पंचम कालमे दो तरेंके निर्ग्रंथ होगें, उनोंसें तीर्थ
लेगा. कषाय कुशील निर्ग्रंथ तो किसिमे परिणामापेक्षा होगा, मुख्य
दोही रहेंगे. अरु जो जैन शास्त्रोमे गुरुकी वृत्ति लिखी है, सो प्रायः
त्सर्ग मार्गकी अपेक्षा है, और इस कालमें तो प्रायः अपवाद मार्गकी
वृत्ति है, सो उत्सर्गवृत्तिवाले मुनि इस कालमें क्योंकर हो जावे? कदा
त् होइ नही सक्ते है. क्योकि न तो वो संहननवज्रऋषभनाराच है,
मनोबल वैसा है, न जीवोंकें वैसी श्रद्धा है, न वैसा देश काल है,
धैर्य है, तो फेर इस कालके जीव वैसी उत्सर्ग वृत्ति कैसें कर सके?

प्रश्न—जे कर वैसी वृत्ति इस कालमें नहीं तो उनकूं साधुनी काहेकूं
हना चाहिये?

उत्तरः—यह तुमारा कहनां बहुत वे समझका है, क्यों के व्यवहारसूत्र
ाष्यमे ऐसें लिखा है ॥ गाथा ॥ पोरकरिणी आयारे, आणयण ते गाय
ीयहे ॥ आयरिय उएए, आहरण हुंति नायवा ॥ १ ॥ लठ परिसा
क्षाय, अहिगमो पिम उत्तरियाए ॥ रुक्के वसहे जूहे, जोहे सोहीय पु

रकरिणी ॥२॥ "दार गाहा दो" इन दोनो द्वार गाथाका व्याख्यान कारने पंदरा नाष्यगाथा करकें कीया है, जे कर नाष्यगाथा इछा होवे, तो व्यवहारनाष्य देख लेनी, इहां तो उन पंदरां ॥ अर्थ नाषामें लिख देता हुं, अर्थः—जैसीयों पूर्वकालमे सुगंधित लियों पुस्करिणीयों बावडीयों थी, वैसे फूलो वालीयों अब है नहीं, पुस्करिणीयों बावडीयों तो है, लोक इन सामान्य बावडीयोंसें कार्य करते है ॥ १ ॥ तथा संपूर्ण आचारप्रकल्प, नवमे पूर्वमें था, नवमे पूर्वसें उद्धार करकें पूज्यपाद वैशाख गणिनें निशीथ रचा, तो उस निशीथकूं आचारप्रकल्प न कहनां चाहिये? ॥ २ ॥ पूर्वकालमे दूघाटिनी, अवस्वापिनी आदिक विद्याके धारक चोर थे, औ इस वो विद्या तो नहीं है, तो फिर क्या चोरी करने वालोंकूं चोर न कहनां हियें ? ॥३॥ पूर्वकालमें तो चौदह पूर्वके पाठीकूं गीतार्थ कहते थे. इस कालमें जघन्य आचार प्रकल्प, निशीथ औ मध्यम आचार वृहत्कल्पके पढे हूयेकूं इस कालमे क्या गीतार्थ न कहनां चाहियें? ॥ पूर्वकालमे श्रीआचारांगका शस्त्रप्रज्ञा अध्ययनके पढनेसें, [illegible] चारित्रमे स्थापन करते थे, तो क्या अब दशवैकालिकके छ जीवनीय ध्ययनके पढनेसें न स्थापन करना चाहिये? ॥ ५ ॥ दूसरे [illegible] चमे उद्देशमे जो आमगंधी सूत्र है, उस सूत्रानुसार पूर्वं मुनि आहार हण करते थे, तो क्या अब पिंडैषणा अध्ययन अनुसारें न करना चा यें? ॥ ६ ॥ पूर्वं आचारांगके पीछे उत्तराध्ययन पढते थे, तो क्या अब शवैकालिकके पीछे न पढना चाहियें ? ॥ ७ ॥ पूर्वं मत्तांगादिक दश रके वृक्ष थे, तो क्या अब अंबादिक वृक्ष न कहने चाहियें? ॥ ८ पूर्वं बहुत गौवोंके समूहवाले नव गोपकूं ग्वाल कहते थे, तो क्या अब थोडी गौवों वालेकूं ग्वाल न कहनां चाहिये? ॥ ए ॥ पूर्वं सहस्र मह योद्धे थे, तों अब क्या किसीकूं योद्धा न कहना चाहियें? ॥ १० ॥ पूर्वं छ मासी तपका प्रायश्चित्त था, तो क्या उसके बदले निवी प्रमुख प्राय श्चित्त न लेनां चाहिये ? ॥ ११ ॥ इसी तरे जो पूर्वकाल मुनियोंकी वृत्ति नहीं, तो क्या आचार्य वा साधु न कहना चाहियें? किंतु जरुरही साधु माननां चाहियें. तथा जीवानुशासन सूत्रकी वृत्तिमेंभी लिखा है कि पांच

कालमें साधु असाजी होवे, तोजी संयमी कहना चाहियें, तथा नियमेंजी लिखा है ॥ जाष्य गाथा ॥ जा संजमया जीवे, सु ताव मूले गुत्तर गुणाय ॥ इत्तरियछेय संजम, नियंठवउ सा पडिसेवी ॥ १ ॥ इस थाकी चूर्णीकी जाषा लिखते है, छकायोंके जीवों विषे जब तांइ दयाके रिणाम है, तब तांइ बकुश निर्ग्रंथ औ प्रतिसेवना निर्ग्रंथ रहेंगे, वास्ते प्रवचन शून्य औ चारित्र रहित पंचमकाल कदापि न होवे , तथामूलोत्तरगुणोमें दूषण लगनेसे तत्काल चारित्र नष्टजी नहीं ता, मूलगुणजंगमे दो दृष्टांत है, उत्तरगुण जंगमें मंमपका दृष्टांत , निश्चयनयमें एक व्रत जंग हूया सर्व व्रत जंग हो जाता है, परंतु वहारनयके मतसें जो व्रत जंग होवे, सोइ जंग होवे. दूसरे नही. इस स्ते बहुत अतिचारके लगनेसें संयम नही जाता, परंतु जो कुशील सेवे, रु धन रखे, औ कच्चा सचित्त पानी पीवे, प्रवचन अनपेक्ष, वो साधु हीं. जहां ताइ छेद प्रायश्चित्त लगे, तहां ताइ संयम सर्वथा नही जाता. था जो इस कालमें साधु न माने, सो मिथ्यादृष्टि है, क्यों कि स्थानां सूत्रमें लिखा है, जो अतिचार बहुत लगते देखके औ आलोचना प्राश्चित्त यथार्थ कोइ लेता देता नहीं है, इस वास्ते साधु कोइ नहीं जो असे हे के वो चारित्र जेदिनी विकथाका करनेवाला है, तथा श्रीजगवती सूके पच्चीशमे शतकके छठे उद्देशेकी संग्रहणीकार श्रीमदजयदेवसूरि, इन नो निर्ग्रंथोका जो स्वरूप है सो लिखते है, सो इहां जाषामें प्रगट लेखा जाता है ॥ गाथा ॥ बउसं सबलं कब्बर, मेगठंतमिह जस्स चारि ॥ अइयार पंकजावा, सो बउसो होइ निग्गंथो ॥ १ ॥ व्याख्या—बकु, शबल, कर्बुर, ए तीनो एकार्थ है एकही वस्तुकों कहते है, असा है चारित्र जिसका, अतिचार रूपपंक होनेसें सो बकुशनामा निर्ग्रंथ है, इस जारत वर्षमे इसकालमे बकुश औ कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ है, शेष तीनो तो व्यवछेद हो गये हैं ॥ तथा चोक्तं परम मुनिजिः ॥ "बकुश कुशीला दो पुण, जातित्थं तावहो हंति इति ॥" इसका अर्थ बकुश कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ जहां लग तीर्थ रहेगा तहां तक रहेंगे,

अब जो बकुश निर्ग्रंथ है, तिसके दो जेद है, सो कहते हैं. तहां जो वस्त्र पात्रादि उपकरणकी विजूषा करे सो उपकरण बकुश, ए प्रथम जेद

औ जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अवयवोंकी विभूषा — शरीरबकुश, ए दूसरा भेद जाननां. ए दोनों भेदोंके पांच भेद हैं ॥ उवगरणसरीरेसु, सो डुहा डुविहोवि होइ पंचविहो ॥ अभोग भोग, असंवुड संवुडे सुहुमे ॥ १ ॥ अर्थः—इसमें दो पदोंका अर्थ र लिखा है, अगले दो पदोंका अर्थ लिखते है. साधुकूं यह करने नहीं, ऐसें जानताभी है, तोभी उस कामकों जो करे, सो प्रथम ग बकुश, और जो अजाण पणोंसें करे सो दूसरा अनाभोग बकुश, गुण, उत्तर गुणोमें जो छिप कर छाना दोष लगावे, सो ती... कुश, जो मूलगुण उत्तरगुणोंमें प्रगट दूषण लगावे, सो चौथा ... कुश. नेत्र, नासिका, मुखादिककी जो मल दूर करे, सो पांचमा बकुश जाननां.

अथ जो उपकरन बकुश है, तिसका स्वरूप लिखते हैं ॥गाथा॥ जो गरणे बउसो, सो धुवइअ पाउसे विवबइ ॥ इछइय लण्हयाइं, क भूसाइ भुंजइय ॥ १ ॥ व्याख्याः—जो उपकरण बकुश है, सो प्रावट(वस) ऋतु विनाभी जल क्षारसें वस्त्र धोता है, पावस ऋतुमें तो छवासी साधुवोंकूं आज्ञा है; जो एक वार वर्षासें पहिले आपणें सर्व पकरण जल क्षारसें धो लेवे, नही तो वर्षाऋतुमें मलके ससर्गसें दिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावेगी, औ यह जो बकुशनिर्ग्रंथ है, सो वस ऋतु विना अन्य ऋतुवोमेंभी जल क्षारसे वस्त्रादिक धो लेता है, बकुश निर्ग्रंथ, सुंदर, सुकुमाल, वस्त्रभी वांछता है, और उपकरण शोभाके वास्तेभी कछुक पहिरता है॥ गाथा ॥ तह पत्त दंमयाई, मठं सिणेह कयतेय ॥ धारेइ विभूसाए, बहुं च बछेई उवगरणं ॥ १ व्याख्या.—तथा पात्र, दंम प्रमुख घोटेसे घोटकें सुकुमार करे, तथा घी, ... प्रमुख करी चोपडके तेजवंत चमकदार करकें रखे, अरु विभूषाके स्ते बहुत उपकरण रखने चाहे, एतावता रखे

अथ शरीर बकुशका स्वरूप लिखते है ॥ गाथा ॥ देह बउसो अकज करचरण नहाइयं विभूसेइ॥ डुविहोवि इमो इढि, इछइ परिवार पभिईय॥ व्याख्या —देहबकुश जो है, सो विना कारण हाथ, पग, नखादिककी वि भूषा करे, जलादिसें धोवे, ऐसे उपकरण औ शरीर ए दोनों प्रकारका ब

निर्ग्रंथ परिवार प्रमुखकी ऋद्धि वांछता है ॥ गाथा ॥ पंमिच्च तवाइ क
जसं च इच्छेइ तंमि तुस्सइय ॥ सुहसीलो नयबाढं. जयइ अहोरत्त किरि
ु ॥ १ ॥ व्याख्याः—पंमितपणे करी तथा तपादि करकें यशकी इच्छा
, तिस यशके हुवे थके बहुत खुशी माने, औ सुखशीलिया होवे, औ
रात्रिकी क्रिया समाचारीमें बहुत उद्यमीनी नही होवे ॥ गाथा ॥ परि
े य असंजम, अविवित्तो होइ किंचि एयस्स ॥ घंसिय पाउ तिल्लाइ,
लणि कित्तरिय केसो ॥ १ ॥ व्याख्याः—इसका जो परिवार होवे, सो अ
मी कहते असंयम वाला होवे, वस्त्र पात्रादिकके मोहसें वस्त्र पात्रादि
ं दूर न जावे. पग, जोजावे आदिकसे औ तैलादिक चोपडके सुकुमा
रे, औ शिर, दाढी, मूछके बाल, कतरणीसें कापे, (कतरे) एतावता
चकी जगें उस तरे, वा कत्तरणीसें बाल दूर करे, परंतु लोच न करे
ाथा ॥ तह देस सव्वछेयारि, देहिं सबलेहि संजुउ बउसो ॥ मोहक्खयछ
ु,छिउय सुत्तंमि नणियं च ॥ १ ॥ व्याख्याः—तथा देशछेद सर्वछेद योग्य
रों करी जिसका चारित्र कर्बुर है, परतु मनमें उसके मोहक्षय करनेकी इ
है, एतावता मनमें संयम पालनेमें उत्साह है, परंतु पूर्ण संयम पाल
ी सक्ता, इन पूर्वोक्त कृत्यों करी संयुक्त होवे, उसकूं बकुशनिर्ग्रंथ कहिये.
सूत्रमेंभी कहा है, सो यह आगें लिखते है ॥ गाथा ॥ उवगरण देह चु
, रिद्धि रसगारवासिया निच्च ॥ बहु सबल छेय जुत्ता, निग्गंथा बउसा न
या ॥ १ ॥ आनोगो जाणंतो, करेइ दोसं अयाण मण नोगे ॥ मूलुत्तरेहि
ुम, विवरिय असंवुमो होइ ॥ २ ॥ अच्छि मुह मज्जमाणो, होइ अहा सु
उं तहा बउसो ॥ सीलं चरणं जं जस्स, कुच्छियं सो इह कुसीलो ॥ ३ ॥
डेसेवणा कसाए, डहा कुसीलो डहावि पंचविहो ॥ नाणे दंसण चरणे,
य अह सुहुमए चेव ॥ ४ ॥ इह नाणाइ कुसीलो, उवजीवं होइ नाण
नेईए ॥ अह सुहुमो पुण तुस्सई, एस तवस्सि संसए ॥ ५ ॥ इन पाचो
थाओंकी व्याख्या.—उपकरण देह शुद्ध रखे, ऋद्धि, रश, साता, ए तीनो
रवमें नित्य आश्रित होवे, उपकरणोंसें अविविक्त रहे, परिवार जिसका
द योग्य शबल चारित्र सयुक्त सो निर्ग्रंथ वकुश कहते है ॥ १ ॥ साधुओंके
ह करने योग्य नही, ऐसें जानताभी है, तोभी उस कामकूं करता है, सो
यम आनोग वकुश कहिये. अरु अनजानपणेसे अकृत करे, तिसकूं अ

नाभोग बकुश कहियें, ए दूसरा भेद. मूलोत्तर गुणों करी संयुक्त है, ऐसें जानते हैं, परंतु ग़ना (गुप्त) दोष लगावे है, तिसकूं संवृत कहियें. ए तीसरा भेद. अरु जो प्रगट मूलोत्तर गुणमें दोष लगावे असंवृत बकुश कहियें. ए चौथा भेद ॥ २ ॥ तथा जो आंख मांजे, मलादि दूर करे, सो यथा सूक्ष्मबकुश कहियें. ए पांचमा भेद.

अथ कुशील निर्ग्रंथका स्वरूप लिखते है, शील कहियें चारित्र सो त्र जिसका कुत्सित है, सो कुशील निर्ग्रंथ, इसके दो भेद है ॥३॥ एक सेवना कुशील, दूसरा कपायों करी कुशील, सो संज्वलनकी कषायों जो कुशील सो कषाय कुशील, ए दोनोंही भेद पांच प्रकारसें हैं, सो हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूक्ष्मतः ॥४॥ ज्ञानादि कुशील तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अरु तप, यह चारो विकाके वास्ते करे, सो इन चारोंका प्रतिसेवना कुशील तथा एह [illegible] इत्यादि प्रशंसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा [illegible] कुशील जाननां. तथा जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ तपांसि तप, [illegible] कषायके उदय करकें इनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चा[illegible] कुशील जाननां जो कषाय कुशील है. सो कषायके वश हो कर के देता है, मन करकें जो क्रोधादिकोंकों सेवे, सो [illegible] अथवा कषायों करकें जो ज्ञानादिकोंकों विराधे, सो ज्ञानादिक जाननां. कोइक आचार्य, तप कुशीलके स्थानमें लिंगकुशील कहते यह दो प्रकारके निर्ग्रंथ पाचमे आरेके पर्यंत तक रहेगे. जो कोइ रेके साधुकूं साधु वा गुरु न माने, वो जीव, मिथ्यादृष्टि बहुल संस जिनमतका उत्थापक है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी संगतभी करनी योग्य नहीं

इतिश्री तपगछीये मुनिश्री बुद्धिविजयशिष्य मुनिआनंदविजय आत्माराम विरचिते, जैनतत्त्वादर्शे गुरुतत्त्वस्वरूपनिर्णयनामा तृतीयःपरिछेदःसंपूर्ण.॥

॥ इति तृतीय परिछेद संपूर्णः ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थपरिच्छेद प्रारंभः ॥

॥ यह चतुर्थ परिच्छेदमें कुगुरु तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वा भिलाषिणः सर्वे, भोजिनः सपरिग्रहा ॥ अब्रह्मचारिणो मिथ्यो, पदेशागुर वोमताः ॥ १ ॥ अस्यार्थः-(सर्वाभिलाषिणः) सर्व जो, स्त्री, धन, धान्य, हिरण्य, (सोना) रूपादि सर्व धातु तथा क्षेत्र, वास्तु क्षेत्र(खेत) हाट, हवे ली, चतुःपदादिक अनेक प्रकारकें पशु, इन सर्वकी अभिलाषा करनेका शील है जिसका, सो सर्वाभिलाषी, तथा (सर्वभोजिनः) सो सर्व मद्य, मांसादिक बावीश अभक्ष्य, तथा बत्तीस अनंतकाय, तथा अपर जो अ चित्त आहारादिक है, इन सर्वका भोजन करनेका शील है जिसका सो सर्वभोजिन. (सपरिग्रहाः) जो पुत्र, कलत्र, बेटा, बेटी प्रमुख करी स हित वर्ते, सो सपरिग्रह. इसी वास्ते अब्रह्मचारी है. जो अब्रह्मचारी होता है, तिसमें महा दोष होते है, इस वास्ते अब्रह्मचारी असा न्यारा उप न्यास कस्या है, अथ अगुरुपणेंका असाधारण कारण कहियें है, (मि थ्योपदेशा) मिथ्या (वितथ) आप्तके उपदेश विना धर्मका उपदेश है जिनका सो अगुरु है, जे कर इहां कोइ असी तर्क करे जो धर्मोपदेशका दाता है, सो गुरु है, तो फेर निःपरिग्रहादि गुणोंका काहेकूं अन्वेषण कर णां ? इस शंकाके दूर करणे वास्ते दूसरा श्लोक फेर कहते हैं.

॥ श्लोक ॥ परिग्रहारंभमग्ना, स्तारयेयुः कथं परान् ॥ स्वयं दरिद्रो न पर, मीश्वरीकर्तुमीश्वरः ॥ २ ॥ अर्थः-परिग्रहः रूपादि आरंभ जीवोंकी हिंसा सर्वाभिलाषीपणा, औ सर्व भोजिपणां इन दोनो वस्तुओंमें जो मग्न है, औं भवसमुद्रमें डूबा हूआ है, वो किसतरेंसें दूसरे जीवोंकूं संसार सागरसें तार सक्ता है ? इस बातमें दृष्टांत कहते है, कि जो पुरुष आपही दरद्री है, सो दूसरोंको क्युं कर धनाढ्य कर सक्ता है ? प्रथम श्लोकके चोथे पदमें "मि थ्योपदेशागुरवोमताः" इस पदका विस्तार लिखते हैं, कुगुरु जो है, उनका उपदेश इस प्रकारसें मिथ्या है इस मिथ्या उपदेशके स्वरूपहीमें प्रथम तीन सौ त्रेशठ मतका स्वरूप लिखते है, उनमें एक सौ अस्सी मत तो क्रिया वादीके है, औ चौरासी मत, अक्रियावादीके हैं, औ सदसठ मत, अज्ञानवा दीके है, अरु बत्तीस मत, विनयवादीके है, ए पूर्वोक्त सर्व मत एकत्र कर नेसें तीन सौ त्रेशठ होते है.

तीनमें जो क्रियावादी हैं सो ऐसे कहते हे कि कर्त्ताके विना एयबंधादिलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो त्माके साथ समवाय संबधवाली है, ऐसे कहनेका शील स्वनाव है नका सो क्रियावादी हैं. यह जो क्रियावादी हैं, सो आत्मादिक नव र्थोंकों एकांत अस्तिस्वरूप पणे माने है, तिस क्रियावादीके एक सो स्सी मत इस उपाय करकें जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ आ ४ बंध, ५ संवर, ६ निर्ज्जरा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य, ९ मोक्ष, यह नव अनुक्रम करकें पट्टी पत्रादिकमें लिखने. फेर जीव पदार्थके हेठ स्वत परत. यह दो नेद स्थापन करने. फेर इन स्वतः परतःके हेठ न्यारे न्यारे अरु अनित्य यह दो नेद स्थापन करने फेर नित्य अनित्यके इन ४ हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वनाव, यह स्थापन करने, पीछेसें विकल्प कर लेनें, सो आगें लिखते है. यंत्रस्थापना.

जीव.

स्वतः		परतः	
नित्य.	अनित्य.	नित्य.	अनित्य
१ काल.	१ काल.	१ काल.	१ काल
२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.
३ आत्मा	३ आत्मा	३ आत्मा.	३ आत्मा.
४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.
५ स्वनाव.	५ स्वनाव.	५ स्वनाव.	५ स्वनाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं. अस्ति जीवः स्वतोनित्य- त्येकोविकल्प ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा नि अपणे रूप करकें कालसें उत्पन्न हुइ है, कालवादीके मतमें यह वि ल्प है, कालवादी उसकूं कहते हैकि जो कालहीसें जगत्की उत्पत्ति, स्थि ति अरु प्रलय मानते है, तैसेंही कालवादी कहते है कि चपक, अशोक, सहकार, नींब, नंबू, कदंबादि जो वनस्पति है, सो कालके विना फूलोंका लगना, फलका बंधादिक नहीं हो सक्ता है, तथा हिमकण संयुक्त शीत का पडणां, तथा नक्षत्र गर्नका धारण, वर्षाका होणां, यह काल विना

होते हैं, तथा षट् रुतुवोंका विनाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ
तादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सक्ती हैं, जो जो प्रति
त काल विनागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर का
ं नियंता न मानीये, तो किसी वस्तुकीनी व्यवस्था नही होवेगी, क्यों
जैसे कोइ पुरुष, मूंग रांधता है, सो नी काल विना नहीं रांधे जाते
नहीं तो हांमी इंधनादि सामग्रीके संयोगसें प्रथम समयेहीमें मूंग रं
ाते ? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथाचोक्तं ॥
ालव्यतिरेकेण, गर्नबाल शुनादिकं॥ यत्किंचिज्जायते लोके, तदसौ का
किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुजपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्थाल्यादि
धानेऽपि, ततःकालादसौ मत ॥ २ ॥ कालनावे च गर्नादि,सर्वं स्याद
स्थया ॥ परेष्टहेतुसन्नाव, मात्रादेव तङ्गवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका
ार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ काल पचति नूतानि, कालः संहर
जा. ॥ कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालोहि डुरतिक्रमः ॥ ४ ॥ इहां परे
ेतुके सन्नाव मात्रादिकसें दूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके सं
मात्र हेतुसें गर्नकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यों
हो जाते है ? इस वास्ते कालही गर्नकी उत्पत्तिका हेतु है,तथा जब
ह गर्न होनेमें रुतुकाल है तिसके विना स्त्री पुरुषके सयोगसें क्यों न
गर्न होता है ? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक
ंकों परिणामांतरकों पहुंचाता है, तथा "कालः संहरते प्रजाः" कालही
पर्यायसें पर्यायांतरमें लोकोंकों स्थापन करता है तथा "कालः सुप्तेषु जा
" कालही सुते हूये जनोंकी रक्षा करता है. तिस वास्ते प्रगट है कि काल
तिक्रम है, कालकों दूर करणेमै कोइनी समर्थ नहीं है, यह कालवादी
विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरे दूसरा विकल्पनी कह देनां परंतु कालकी जगे ईश्वर कह
ा "यथा अस्ति जीव स्वतो नित्यः ईश्वरतः" जीव, अपणे स्वरूप करकें
य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत्
रहीका करा हूया मानते है, ईश्वर उसकूं कहते है, कि जिसके १
न, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वत सिद्ध होवे, अरु
ोंकों स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तङ्क्तं ॥

ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्म्मश्च, ...
तुष्टयम् ॥ १ ॥ अज्ञोजंतुरनीशोय, मात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वर
गच्छे, त्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ इत्यादि ॥ २ ॥

तीसरा विकल्प आत्म वादीयोंका है, आत्मवादी उनको कहते
जो " पुरुष एवेदं सर्व मित्यादि " (जो कुछ दीखता) है, सो सर्व ..
हैं. ऐसें मानते है॥ ३ ॥

चौथा विकल्प नियतवादीयोंका है, वो नियतवादी ऐसें कहते
पदार्थोंमें एक ऐसी सामर्थ्य है कि जिसकी सामर्थ्यसें सर्व पदार्थ
अपणे स्वरूप नियमों करकें वैसे वैसेही होते हैं, परंतु अन्यथा
होते है, सोइ कहते हे, जो पदार्थ जिसकालने जिस करिकें होता है,
दार्थ तिस कालने तिस करिकें नियत रूप करकेंही होता दीखता है,
था नही, तो कार्य कारण भावकी व्यवस्था नियामकके अभावसें
न होवेगी, तिस वास्ते ऐसें कार्य नियततासें प्रतीत होती है जो
तिसकों कौन पुरुष प्रमाणपंथका कुशल है जो बाध सक्ता है ? जे
नियति बाधित हो जावेगी तो और जगेभी प्रमाण मिथ्या हो
था चोक्तं ॥ नियते नैव रूपेण, सर्वे भावा भवति यत् ॥ ततो
ते, तत्स्वरूपानुवेधतः ॥ १ ॥ यद्यदेव यतो यावत्, तत्तदेव ततस्तथा॥
यतं जायते न्यायात्, क एनां बाधितुं क्षमः ॥ २ ॥ इन दोनो ...
अर्थ उपर लिख दीया है ॥ ४ ॥

पांचमा विकल्प, स्वभाववादीयोंका है, वो स्वभाववादी ऐसें कहते
कि इस संसारमें सर्व पदार्थ स्वभावहीसें उत्पन्न होते है, सो कहते है
माटीसें घट होता है, परंतु वस्त्र नहीं होता है, अरु ततुओंसें वस्त्र
है, परंतु घटादिक नहीं होता है, यह जो मर्यादा संयुक्त होना है
स्वभाव विना कदापि नहीं हो सक्ता है, तिस वास्ते यह जो कुछ
है, सो सर्व स्वभावसेंही होता है, तथा अन्यकार्य तो दूर रहो, परंतु
जो मूंगोका रंध जाणा है, सोभी स्वभाव विना नहीं रंधते हैं, तथा
हामी, इंधन, कालादि सामग्रीका संभवभी है तोभी कोकडु (कठिनमुं
नहीं रंधते है, तिस वास्ते जो जिसके होयां होवे, जिसके न होयां

ोवे, सो सो अन्वय व्यतिरेक करकें तिसका कर्त्ता है, स्वनावहीसें मूंग रं
है, इस वास्ते स्वनावही सर्व वस्तुका हेतु है, ए पांचमा विकल्प ॥ ५ ॥
यह पांच विकल्प स्वतः ईशपद करकें होते हैं, ऐसेही पांच परतः ईश
करकें उपलब्ध होते हैं, परतः शब्दका अर्थ तो ऐसा है, कि पर पदा
नें व्यावर्त्त रूप करके यह आत्मा निश्चय करकें है, ऐसें नित्य शब्द करकें
विकल्प हूये हैं, ऐसेही अनित्य पद करकेंनी दश विकल्प होते हैं, सर्व
ल्प एकठे करेसें वीश होते है, यह वीश विकल्प जीव पदार्थ करके
ये है, ऐसेही अजीवादिक पदार्थोंके साथ, न्यारे न्यारे वीश विकल्प
र लेनें. तब वीशकों नवसूं गुणाकार कस्यां सब मिलिके एक शो अस्सी
क्रियावादीके होते है ॥ इति क्रियावादी ॥

अथ अक्रियावादीके चोरासी मत लिखते हैं. अक्रियावादी कहते
के क्रिया, पुण्य पाप रूपादि नहीं है, क्योंकी क्रिया, पुण्य पाप रूपादि स्थि
पदार्थकों लगती है, अरु स्थिर पदार्थ तो जगत्में कोइ नी नही है, क्यों
उत्पत्त्यनंतरही पदार्थका विनाश हो जाता है. ऐसें जो कहते है, सो
यावादी ॥ तथा चाहुरेके ॥ श्लोक ॥ क्षणिकाः सर्वसंस्कारा, अस्थिराणां
तः क्रिया ॥ नूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थः—
सर्व संस्कार पदार्थ क्षणिक है, इस वास्ते अस्थिर पदार्थोंकूं पुण्य पापादि
या कहांसें होवे? पदार्थोंका जो होणा है, सोइ क्रिया है, सोइ कारक है,
स वास्ते पुण्यापुण्यादि क्रिया नही. यह जो अक्रियावादी हैं, सो आत्माकूं
हीं मानते है, तिनके चोरासी मत जाननेका यह उपाय है कि १ जीव,
२ अजीव, ३ आश्रय, ४ संवर, ५ निर्ज्जरा, ६ बंध, ७ मोक्ष, यह सात
पदार्थ लिखने, पीछे यह जीवादि सातो पदार्थोंकें हेठ न्यारे न्यारे स्व अरु
पर यह दो विकल्प लिखने फेर इन दोनोके हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २
ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वनाव, ६ यदृछा, यह छे लिखने. इहां
नित्यानित्य यह दो विकल्प इस वास्ते नही लिखे हैं कि जब आत्मादि
पदार्थही नहीं है, तो फेर नित्य अनित्यका संनव कैसें होवे? तथा जो
यह यदृछावादी हैं, सो सर्व नास्तिक अक्रियावादी हैं, इस वास्ते क्रिया
वादी यदृछावादी नही है, इस वास्ते क्रियावादीके मतमे यदृछा पद नहीं
ग्रहण कीया है, इस मतके चौरासी नेद इसी रीतिसें जानने सो कहते है.

" नास्ति जीवः स्वतः कालतइत्येकोविकल्पः " नहीं है जीव स्वरूप करकें कालसें उत्पन्न हूया, यह एक विकल्प, ऐसेही स्व कर यहच्छा पर्यंत सर्व छै विकल्प हूये इनका अर्थ पीछली तरें रतु इतना विशेष है जो यहा यहच्छावादी अधिक है.

प्रश्नः—यहच्छावादीयोंका क्या मत है ? उत्तरः—जो पदार्थोंकू की अपेक्षा नियत कार्य कारण भाव नहीं मानते, किंतु " यहच्छया कुछ होता है, सो सर्व यहच्छासें होता है, एतावता कार्य कारण नहीं यहच्छाहीसें होता है, यहच्छावादी ऐसें कहते है, कि नहीं है करके पदार्थोंकों आपसमें कार्य कारण भाव, क्यो कि कार्य कारण प्रमाणसें ग्रहण नही कस्या जाता है, तथाही मृतक मेंडकसेंभी उत्पन्न होता है अरु गोबरसेंभी मेंडक उत्पन्न होता है अग्निसेंभी उत्पन्न होती है. अरणीके काष्टसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है, म उत्पन्न होता है, अरु अग्निसेंभी धूम उत्पन्न होता है, कदलीके सेंभी केला उत्पन्न होता है, अरु केलेके बीजसेंभी केला उत्पन्न बीजसेंभी वटवृक्ष उत्पन्न होता है, अरु वटवृक्षकी शाखासेंभी वृक्ष उत्पन्न होता है, इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण भाव सी जगेंभी नहीं देखणेमे आता है, इस वास्ते यहच्छा करीके जगे कुछ होता है, ऐसे मानना चाहियें, क्योंकि जब जान कि जो कुछ होता है, सो यहच्छासे होता है, तो फेर काहेकों बुद्धि कार्य कारण भावकों माने, औ आत्माकों क्लेश देवे यह जैसे साथ छै विकल्प करे है, ऐसेही नास्ति परत.के साथभी छै विकल्प हें, यह जब सर्व विकल्प मिलाइये तब बारा विकल्प होते हें, रांकूं जीवादिक सात पदार्थो करके सात गुणा कस्या चौरासी भेद वादीके होते है ॥ इति अक्रियावादी ॥ २ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका भेद कहते है, कि कुत्सित ज्ञान है, जिनका अज्ञानवादी जाननां, अथवा अज्ञान करकें जो प्रवर्त्ते, सो अज्ञानिका नवादी, ऐसें कहते है कि ज्ञान अछी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब गा, तब परस्पर विवाद होगा, जब विवाद होगा तब चित्त मलिन होगा, ब चित्त मलिन हूवा, तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जैसें किसी पुरुषने

स्तु उलटी कही, तब जो ज्ञानीने सुण करकें ज्ञानके अभिमानसें उ
पुरुषके उपर बहुत मलिन चित्त करकें उसके साथ विवाद करणे ल
विवाद करते थके अत्यंत तीव्रचित्त मलिन अरु अहंकार बढा, उ
अहंकार औ चित्तकी मलिनतासे महा पाप कर्म उत्पन्न हूवा, तिस
तसे दीर्घतर संसारकी वृद्धि हूइ, इस वास्ते ज्ञान अच्छी वस्तु नही.
जब अज्ञानी अपणेकों मानीयें, तब तो अहंकारका संभव नही
ता है, अरु दूसरोंके उपर चित्तका मलिन पणाभी नही होता है, ति
वास्तें कर्मका बंधभी नहीं होता है, तथा जो कार्य विचार करीयें है,
समें महा कर्मका बंध होता है, उसका फलभी महा भयानक होता
अरु जो काम, मनोव्यापार विना करीयें है, तथा मनोव्यापार विना
भी जीवका वध करीये है, तिसका फल अवश्यमेव भोगनेमें नहीं आ
है, अरु जो उस काममें किंचित् कर्मबंध होता है, सोभी चूने गजभी
उपरि बालु (रेतिकी) मुष्टिके संबंधवत् स्पर्शमात्र है, परंतु बंध
हीं होता है. इस वास्ते अज्ञानही मोक्षगामीयों पुरुषोंकों अंगीकार क
रणा श्रेय है, परंतु ज्ञान अंगीकार करणां श्रेय नहीं है यह अज्ञानवा
कहते है की ज्ञान हम मानभी लेवें, जे कर ज्ञानका निश्चय करणेमें
समर्थ होवें? क्योंकि प्रथम तो ज्ञान सिद्धही नही हो सक्ता है, तथाहि
जितने मतावलंबी पुरुष है, सो सर्व परस्पर भिन्नही ज्ञान अंगीकार कर
है, इस वास्ते क्यों कर निश्चय करणेमें समर्थ होवे? जो इस मतका
ज्ञान सम्यग् है, अरु इस मतका ज्ञान सम्यग् नही है; जे कर कहोगे कि
सकल वस्तुके समूहकों साक्षात् कारी ऐसे ज्ञानवाला जो भगवान्
, तिसके उपदेशसे जो ज्ञान होवे सो सम्यग् ज्ञान है, अरु जो इसके
विना दूसरे मत है, उनका ज्ञान सम्यग् नही. क्योंकि उनके मतमें जो
ज्ञान है. सो सर्वज्ञका कथन कीया हुआ नही है.

अज्ञानवादी कहते है कि यह तुमारा कहना है, सो तो सत्य है, कि
सकल वस्तु समूहका साक्षात् करणेवाला ज्ञानी सुगत, ईश्वर, विष्णु,
ब्रह्मादिककों हम माने? किंवा भगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामीकों सकल
वस्तु समूहके साक्षात् करणे वाला माने? फेरभी वोही संशय रहा, निश्च
न हूआ, जो कौन सर्वज्ञ है? जे कर कहोगे कि जिस भगवान्के पादार

विद सुगत सर्व देवता, इंद्र, परस्पर अहं पूर्वक विशिष्ट विशिष्टतर द्युति करकें संयुक्त, सैंकडों विमानोमें बैठ करकें सकल आकाश आछादित करते हूये पृथिवीमें उतर करकें पूजते नये है, सो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ है. परंतु सुगत, शंकर, विष्णु, ब्रह्मादिक क्योंकि सुगतादिक सर्व, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य हूये है, इस वो देव नही हूये है; जे कर सुगतादिकनी सर्वज्ञ होते, तो ता, इंद्र, पूजा करते, परंतु किसीनी देवता, इंद्रने पूजा नहीं वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नही हूये है. हे जैन! यह जो तुमने है. सो अपणे मतके राग करके कही है, परंतु इस बातसें ही है, क्योंकि वर्द्धमान स्वामीकी देवता, इंद्र, देवलोकसें आ करके करते थे, यह तुमारा कहनां हम क्योंकर सच्चा मान लेवे ? नगवान् महावीरकों तो बहुत काल हूयांकों हो गया है, उनके सर्वज्ञ होणेमें इनी साधक प्रमाण नहीं है ? जे कर कहोगे कि संप्रदायसें एतावता वीरके शासनसे महावीर सर्वज्ञ सिद्ध होता है, तो इसमें यह तर्क कि यह जो तुमारी संप्रदाय है, सो कौन जाने किसी धूर्त्तकी चलाइ है ? वा किसी सत्पुरुषकी चलाइ हुइ है, हम क्यों कर जान सके ? तर्क सिद्ध करने वाला कोइनी प्रमाण नही है. अरु विना प्रमाणके मान लेवे.तो हम प्रेक्षावान् काहे के ? तथा मायावान् पुरुष आप नी होते तोनी अपणे आपकूं जगत्में सर्वज्ञ होनां प्रगट कर देते है. लके (२४) पीठ है, तिनमेंसूं कितनेक पीठोके पाठक अपणे आपकों करका रूप अरु इंद्र, देवता, पूजा करते हूये बना सके है, तो फेर ओंका आगमन पूजा देखनेसे सर्वज्ञ पणा क्यों कर सिद्ध होवे. जो श्रीमहावीरजीकूं सर्वज्ञ मान लेवे? तुमारे मतका आचार्य समंतभद्र कारनी कहता है ॥ श्लोक ॥ देवागमननोयान, चामरादिविनूतयः ॥ याविष्वपि दृश्यंते, नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥ इस श्लोकका न ताओंका आगमन आकाशमें चलनां, छत्र चामरादिककी विनूति, आडंबर, इंद्रजालीयमेंनी हो सक्ता है, इस हेतुसें तो हे नगवन्! तू ग महान स्तुति करणे योग्य नहीं हो सक्ता है. तथा हे जैन! तेरे कह सें महावीरही सर्वज्ञ होवे, तोनी यह जो आचारांगादिक शास्त्र है, सो

ीर सर्वज्ञहीके कथन करे हूये हैं, यह क्योंकर जाना जाये? क्या
ने किसी धूर्त्तने रच करकें महावीरका नाम रख दीया होवेगा? क्योंकि
वात इंद्रिय ज्ञानका विषय नही है, अरु अतीद्रिय ज्ञानकी सिद्धिमें
ज्नी प्रमाण नही है.

नला कदी यहनी होवे कि जो आचारांगादिक शास्त्र है सो महावीर
ज्ञहीके कहे हुये है, तोनी श्रीमहावीरजीके कहे हुये शास्त्रका यही अ
ाय, यही अर्थ है, और अर्थ नही,यह क्योंकर जान्या जाय? क्योंकि
रोंके अनेक अर्थ है, सो इस जगत्में प्रगट सुननेमें आते हैं, क्या जाने
ही अक्षरों करकें श्रीमहावीर स्वामीजीने कोइ अन्यही अर्थ कह्या
वे, अरु तुमारी समजमें उनही अक्षरों करकें कछु और अर्थ नासन
ता होवे, फेर निश्चय क्यों कर होवे जो इन अक्षरोंका यही
र्थ नगवानने कह्या है, जे कर तुमने यह मान रखा होवे कि नगवा
के समयमें गौतमादिक मुनि थे, उनोने नगवानके मुखाराविंदसें
क्षात् जो अर्थ सुना था, सोइ अर्थ आज तांइ परंपरासें चला आता
इस वास्ते आचारांगादिक शास्त्रोंका यही अर्थ है, अन्य नही.
ज्नी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि गौतमादिकनी उद्मस्थ थे, अरु
स्थकों दूसरेकी चित्तवृत्तिका ज्ञान नही होता है, दूसरेकी चित्तवृत्ति तो
तीद्रिय ज्ञानका विषय है, उद्मस्थ तो इंद्रिय द्वारा जान सक्ता है, इं
यज्ञानी सर्वज्ञके अनिप्रायकों क्यों कर जान सके, जो सर्वज्ञका यही
निप्राय है? इस अनिप्रायसें सर्वज्ञनें यह शब्द कह्या है? इस वास्ते नग
न्का अनिप्राय तो गौतमादिक नही जान सक्के है, केवल जो वरणा
ली नगवान् कहते नये सोइ वरणावली नगवानके पीछें लगे हूये गौत
ादिक उच्चारण करते आये, परंतु नगवान्का अनिप्राय किसीनें नही
ाना, जैसें आर्य देशोत्पन्न पुरुषके शब्द उच्चारणसें म्लेछनी वैसा शब्द
च्चार सक्ता है, परंतु तात्पर्य कुछ नही जानता, ऐसेही महावीरके शब्द
अनुवादक गौतमादिक है, परंतु महावीरका अनिप्राय नहीं जानते,
स वास्ते सम्यग् ज्ञान किसी मतमेंनी सिद्ध नही होता है. एक तो ज्ञान
ोणेसें पुरुष अनिमानसें बहुत कर्म वांध कर दीर्घ संसारी हो जाता है,
सरा सम्यग् ज्ञान किसी मतमें है नही, इस वास्ते अज्ञानही श्रेय है,

॥ इत्यज्ञानवादीका श्रद्धान ॥सो अज्ञानी सडसठ प्रकारके हैं, तिन्होंनेका यह उपाय है कि जीवादिक नव पदार्थ किसी पट्टादिकमें लिखने, अरु दशमे स्थानमे उत्पत्ति लिखनी, तिन जीवादि नव पदार्थोंके हेठ न्यारे सत्त्वादिक सात पद स्थापन करणे,सो यह है कि.–१ सत्त्वं, २ असत्त्वं, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्त्वं, ५ सदवाच्यत्व, ६ असदवाच्यत्वं, ७ सदसदवाच्यत्वं, तहां १ सत्त्व, सो स्वरूप करकें विद्यमान पणां, २ असत्त्व, सो पररूप करकें अविद्यमान पणां, ३ सदसत्त्वं, सो स्वरूप पररूप करकें विद्यमान अविद्यमान पणां. तहां यद्यपि सर्व वस्तु स्वपररूपों करके सर्वदाही सदसत् स्वभाव है, तोभी किसी जगे कदाचित् उद्भूत रूप करके विवक्षा करियें है, तिस हेतुसें यह तीन विकल्प होते हैं, तथा ४ सोइ सत्त्व असत्त्व, जब युगपत् एक शब्द करकें कहनेकी इच्छा करियें, तदा तिसका वाचक कोइभी शब्द नहीं है, इस वास्ते अवाच्यत्त्वं. यह चारों विकल्प सकलादेश ऐसा नाम कहीयें, क्यों के यह चारों सकल वस्तु विषयक ग्रहण करते है, ५ अरु यदा एक भागमें सत्, दूसरे भागमे अवाच्य, युगपत् विवक्षा करियें, तदा सदवाच्यत्त्वं, ६ यदा एक भागमें असत्, दूसरे भागमें अवाच्य, तदा असत् अवाच्यत्त्वं, ७ यदा एक भागमें सत्, दूसरे भागमें असत्, तीसरे भागमें अवाच्य युगपत् कल्पना करिये, तदा सदसदवाच्यत्त्व. इन सातों विकल्पोंसें अन्य (दूसरा) विकल्प कोइभी नहीं है, जे कर कोइ करभी लेवे, तो इन सातोंहीके अंतरभाव हो जायंगे, इन सातोंसें अधिक विकल्प कदापि न होवेंगे, यह जो सात विकल्प कहे हैं, इन सातोको नव गुणा करे, तब त्रेशठ होतेहै, अरु उत्पत्तिके चार विकल्प आदिकेही होते हैं. १ सत्त्व. २ असत्त्व, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्त्वं, यह चार विकल्प त्रेशठमें प्रक्षेप करीयें, तब सडसठ मत अज्ञानवादीके होते हैं. अब इन सातों विकल्पोंका अर्थ लिखते हैं, कि कौन जानता है कि जीव सत्य है,यह एक विकल्प हूया. कोइभी नहीं जानता है सत्, जीव, क्योंकि इसका ग्रहण करनेवाला प्रमाण कोइभी नही है जे कर कोइ जाणभी लेवेगा जो जीव सत् है तो कौनसे पुरुषार्थकी सिद्धि हो गइ क्यों कि, जब ज्ञान हो जावेगा तब अभिनिवेश,अभिमान, चित्त मलिन लोकोंसें विवाद

ं जावेगा, तब तो ज्ञानवान् बहुत कर्म बंध करकें दीर्घतर संसारी हो जा
ं ऐसेही असत् आदिक शेष विकल्पोंकाजी अर्थ जान लेनां ॥इति॥
विनय करकें जो प्रवर्त्ते, सो वैनयिका· इन विनयवादीयोंके लिंग अरु
ा नही होता है, केवल विनयहीसें मोक्ष मानते है, तिन विनय वा
ोंके बत्तीस मत है, सो इस तरेसे है, कि १ सुर, २ राजा, ३ जाति,
ाति, ५ स्थविर, ६ अधम, ७ माता, ८ पिता, इन आठोंकी मन क
वचन करके, काया करके ,अरु देशकाल उचित्त दान देने करकें विनय
इन चारोंसें आठकों गुण्या बत्तीस हूये ॥ इति विनयवादी ॥ ४ ॥
ए सब मिल कर तीनसौ त्रेशठ मत हुये. ए सर्व मतधारी तथा इन म
के प्ररूपणे वाले सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि यह सर्व मत मिथ्यादृष्टियोंके है,
सब एकांतवादी हैं, परतु स्याद्वादरूप अमृत स्वादसे रहित है, इनका
अनिमत तत्त्व है, सो प्रमाण करकें बाधित है, इनके मतोंकों पूर्वाचा
ने अनेक युक्तियोंसें खंडन करा है, सो नव्य जीवोंके जानने वास्ते मैं
पूर्वाचार्योंकी युक्तियां इन जाषाग्रंथमें किंचित् मात्र नीचे लिखता हुं.
प्रथम जो कालवादी कहेते हेकि सर्व वस्तुका कालही कर्त्ता है, तिस
खंडन लिखता हुं. हे कालवादी! यह जो काल है सो क्या १ एक
जाव नित्य व्यापी है? २ किंवा समयादिक रूप करकें परिणामी
? जे कर आदि पक्ष मानोगे सो तो अयुक्त है, क्योंकि ऐसे कालकों
द्ध करने वाला कोइजी प्रमाण नही है, जैसा आद्य पक्षमें तूनें काल
न्या है, तैसा काल, प्रत्यक्ष प्रमाणसें उपलब्ध नहीं होता है, अरु ऐ
कालका कोइ लिंगजी अविनाजावरूप नही दीखता, इस वास्ते अनु
नसेंजी सिद्ध नही होता है

पूर्वपक्ष –क्योंकर अविनाजावलिंगका अजाव कहते हो? क्योंकि दि
ता हैकि जरत रामचंद्रादिकों विषे पूर्वापर व्यवहार सो पूर्वापर व्यव
र वस्तुरूप मात्र निमित्त नहीं है? जे कर वस्तुरूप मात्र निमित्त होवे,
ा वर्त्तमानकालमें वस्तु रूपके विद्यमान होणे करके तैसें व्यवहार हो
ा चाहिये, तिस वास्ते जिस करके यह जरत रामादिकोविषे पूर्वापर
यवहार है, सो काल है, तथाहि पूर्वकालयोगी, पूर्व जरतचक्रवर्त्ती, अ
रकालयोगी अपर रामादि.

उत्तर पक्षीकी तर्कः—जे कर भरत रामादिकोंविषे पूर्वापर सें पूर्वापर व्यवहार है, तो कालका पूर्वापर व्यवहार कैसें सिद्ध

पूर्वपक्षीका समाधान. कालका जो पूर्वापर व्यवहार है, सो अव रे कालके योगसें है.

उत्तरपक्षः—जे कर दूसरे कालके योगसें प्रथम कालका पूर्वापर है, तब तो दूसरे कालका पूर्वापर व्यवहार तीसरे कालके योगसें ऐसेंही करते जाइयें, तब अनवस्था दूषणका प्रसंग होता है.

पूर्वपक्षः—यह दूषण हमकूं नहीं लगता है, क्योंकि हम तो लहीके स्वयमेव पूर्वापर विभाग मानते हैं, किसी कालादिक योगसें मानते हैं, तथा चोक्तं ॥ पूर्वकालादि योगी यः, पूर्वादिव्यपदेशभाक् ॥ परत्वं तस्यापि, स्वरूपादेव नान्यतः ॥ १ ॥ अस्यार्थः—जो पूर्वापर के योगी भरत रामादि है, सो भरत रामादि पूर्वापर व्यपदेश वाले अरु कालका जो पूर्वापर विभाग है, सो स्वतःही है, परंतु योगसें नहीं है.

उत्तरपक्षः—हे पूर्वपक्षीः—यह तुमारा कहनां ऐसा है कि जैसा कोइ मदिरा पीके मदिरा पानीका प्रलाप, तैसा है, क्योंकि तुमनें प्रथम काल एकांत एक नित्य व्यापी मान्या है, तो फेर कैसें तिस कालका पर व्यवहार होवे ?

पूर्वपक्षः—सहचारिके संगसें एक वस्तुकाभी पूर्वापर कल्पनामात्र हार हो सक्ता है, जैसें सहचारि भरतादिकोंका पूर्वापर व्यवहार है, ही भरतादि सहचारियोंके संगसें कालकाभी कल्पनामात्र पूर्वापर देश होता है, सहचारियो करकें व्यपदेश सर्व तार्किकोंके मतमें है, यथा "मंचाः क्रोशंतीति" जैसें मंचा गालीयां देता है.

उत्तरपक्षः—यहभी मूर्खोंहीका कहना, है क्योंकि इस कहनेमें अ दोषका प्रसंग है सोइ कहते हैकि सहचारि भरतादिकोंकों कालके योग पूर्वापर व्यवहार हुआ अरु कालकों पूर्वापर व्यवहार, सहचारि भरता कोंके योगसें हुआ, जब एक सिद्ध नहीं होवेगा तब दूसराभी सिद्ध न होगा ॥ वक्तंच ॥ एकत्वव्यापितायांहि, पूर्वादित्वं कथं भवेत् ॥ सहचारि शात्तत्रे, दन्योन्याश्रयतागमः ॥ १ ॥ सहचारिणां हि पूर्वत्व, पूर्वकाल

ामात् ॥ कालस्य पूर्वादित्वं च, सहचार्यवियोगत ॥ २ ॥ प्रागसिद्धा
ेस्य, कथमन्यस्य सिद्धिरिति ॥ इस वास्ते प्रथम पक्ष श्रेय नही है
अथ दूसरा पक्ष मानोगे, सोनी अयुक्त है, क्योंकि समयादिक रूप
णामी काल विषे काल एकभी है, तोभी विचित्र पणा उपलब्ध होता
तथाहि एक कालमें मूंग रांधता कोइ रंधता है ? कोइ नहीं रंधता है
। समकालमें एक राजाकी नौकरी करते थके एक नोकरकूं थोडेही
लमें नौकरीका फल मिल जाता है,अरु दूसरेकूं बहु कालांतरमेभी वैसा
ल नही मिलता है, तथा समकालमें खेती करता एक जाटके तो बहु
न्य उत्पन्न हो जाते है, अरु दूसरेकूं थोडा फूटा हुआ खंमित उत्पन्न
ता है, तथा समकालमें कौडीयोंकी मूठी भर कर भूमिकामें गेरीयें, तब
तनीक कौडीयां सूधी पडती है, अरु कितनीक औंधी पडती है अब
कर कालही एकला कारण होवे, तब तो सर्व मूंग एकही कालमें रंध
ते, परंतु सर्व रधते नही है, इस वास्ते निःकेवल कालही जगत्के वि
त्रताका कर्त्ता नहीं है, किंतु कालादि सामग्रीके मिलनेसें कर्म कारण
यह सिद्ध पक्ष है ॥ इति प्रथम कालवादीके मतका खंमन ॥ १ ॥
अथ दूसरा ईश्वरवादी अरु तीसरा अद्वैतवादी, ए दोनो मतोंका खंमन
श्वरवादमे लिख आये है, तहांसें जान लेनां ॥ ३ ॥
अब चौथा मत नियतिवादीका है, तिसका खंमन लिखते हैं कि नियतिवा
जो कहते है, कि सर्व पदार्थोका करता नियति है, नियति उसकूं कहते
जो तत्त्वांतर होवे, सोभी नियति, ताडयमान अति जीर्ण वस्त्रकी तरें
चार रूप ताडनाकूं असहमान सैकडे टुकडोंकों प्राप्ति होती है, सोइ क
ते है हे. नियतवादी! तेरा जो नियतिनाम तत्वांतर है, सो भावरूप है,
ंवा अभाव रूप है? जे कर कहोगे कि भावरूप है, तो फेर एकरूप है, वा
नेक रूप है? जे कर कहोगे कि एक रूप है, तो फेर नित्य है,वा अनित्य
? जे कर कहोगे नित्य है,तो किस तरे पदार्थोंकी उत्पत्त्यादिकमे हेतु है?
योंकि नित्य जो होता है, सो किसीकाभी कारण नही होता है, सोइ क
ते है कि नित्य जो होता है सो सर्व कालमें एकरूप होता है, नित्यका
क्षण "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावतया नित्यत्वस्य व्यावर्णात्" नित्य
ा लक्षणतो ऐसा है, जो छरे नहीं अरु उत्पन्नभी न होवे, स्थिर एक

स्वनाव करकें रहे, सो नित्य. तब तो नियति तिस नित्य रूप करके कार्य उत्पन्न करे, तब तो सर्वदा तिसही रूप करकें कार्य उत्पन्न क्योंकि तिसके रूपमे कोइनी विशेष नहीं है, एकही रूप है, अरु तिसही रूप करकें तो कार्य उत्पन्न नही करती है, क्योंकि कनी अरु कनी कैसा कार्य उत्पन्न होता दीख पडता है, तथा एक त है कि, जो दूसरे तीसरे आदि क्षणमें नियतिने कार्य करणे हैं, वेंही कार्य प्रथम समयहीमें उत्पन्न कर लेवे, क्योंकि तिस नित्य करण स्वनाव द्वितीयादि क्षणमें है सो स्वनाव प्रथम विद्यमान है, जे कर प्रथम क्षणमें द्वितीयादि क्षणवर्त्ती कार्य शक्ति नही तो द्वितीयादि क्षणमेंनी कार्य न होनां चाहियें. क्यों द्वितीयादि क्षणमें कुछनी विशेष नही, जे कर प्रथम द्वितीयादि तिके रूपमें परस्पर विशेष मानोगे तबतो जोरा जोरी नियतिके नित्यता आ गइ "अतादवस्थ्यमनित्यतां ब्रूमः इतिवचन प्रामाण्यात्, जैसा है वो तैसा न रहे इस वचन प्रमाणसे उसकों हम अनित्य

पूर्वपक्षः—नियति नित्य विशेष रहितनी है, तोनी तिस तिस रिकी अपेक्षा करके कार्य उत्पन्न करती है, अरु जो सहकारि है, सो नियति देश काल वाले है, तिस वास्ते सहकारियोंके योगसें कार्य रकें होता है.

उत्तरपक्षः—यह नी तुमारा कहनां असमीचीन है, क्योंकी हैं, सोनी नियति करकेही प्राप्त होते है, अरु नियति जो है, सो क्षणमेनी तिसके करणेवाले स्वनाव वाली है, जेकर द्वितीयादि दूसरे स्वनाववाली नियति मानोगे, तब तो नित्यपणेकी हानी हो तिस वास्ते प्रथम क्षणमें सर्व सहकारियोंके संनव होणेसे प्रथम सर्व कार्य करणेका प्रसग हो गया. तथा एक औरनी बात है. कि योके होणेसें कार्य हूआ, अरु सहकारियोंके न होणेसें कार्य न हूआ, सहकारियांहीकों अन्वय व्यतिरेक देखनेसे कारण कल्पना करनी परंतु नियति कारण नहीं हुइ,क्यों कि नियतिमें व्यतिरेकका असंनव है, च ॥श्लोक॥ हेतुनान्वयपूर्वेण, व्यतिरेकेण सिध्यति ॥ क्तो हेतुत्वसंनव ॥ अथ जे कर इन पूर्वोक्त दूषणोंके नयसें अनित्य

ोगे, तव तो तिस नियतिके प्रतिक्षण अन्य अन्य रूप होणेसें नियति
बहुत हो गइयां, तब तो जो तुमनें नियति एकरूप मानी थी, तिस
ज्ञाका व्याघात होनेका प्रसंग हो गया, अरु जो पदार्थ क्षणक्षयी
ा है, वो किसीका कार्य कारण नही हो सक्ता है, तथा एक औरजी
ा है कि जे कर नियति एकरूप होवे, तदा तिससें जो कार्य उत्पन्न
ेंगे सो सर्व एकरूपही होने चाहिये, क्योंकि विना कारणके नेद
ा कार्य नेद कदापि नहीं हो सक्ता है, जे कर हो जावे, तब तो
कार्यनेद निर्हेतुकही होवेगा, अरु हेतुविना किसी कार्यका नेद
ीं है, जे कर अनेकरूप नियति मानोगे, तब तो तिस नियतिसें अन्य
ारूपी विशेषण विना नियति नानारूप कदापि न होवेगी, जैसें मेघका
ी, काली, पीली, उखर नूमिके संबंध विना नानारूप नही हो सक्ता
यडुक्तं "विशेषणं विना यस्मा,न्न तुल्यानां विशिष्टतेति वचनप्रामाण्यात्"
स वास्ते अवश्य तिस नियतिसे अन्य नानारूप विशेषण नियतिके नो
मानने चाहियें. तिन नानारूप विशेषणोंका जो होणां है, सो क्या
स नियतिसेंही होता है अथवा किसी दूसरेसें होता है? जे कर कहोगे
नियतिसें ही होता है, तब तो तिस नियतिकों स्वत: एकरूप होणेसे
ें तिस नियतिसें हूये होये विशेषणोंकों नानारूपता होवे?

अथ विचित्र कार्यकी अन्यथानुपपत्ति करकें नियतिनी विचित्र रूपही
ानते है, तब तो नियतिकी विचित्रता बहुत विशेषणों विना नहीं हो
ी, तिस वास्ते तिस नियति विषे विशेष्य बहुत अंगीकार करणे चाहिये,
व तिन विशेषणोंका जो नाव है, सो तिस नियतिहीसें होता है, अ
वा किसी दूसरेसें? इत्यादि. सोइ फेर आ गया, इस वास्ते अनवस्था
षण होता है.

अथ जे कर कहोगे अन्यसें होता है, तो यहनी पक्ष अयुक्त है, क्यों
नियति बिना और किसीकों तुमने हेतु नहीं मान्या है, यह तुमारा
हना किसी कामका नहीं है, तथा अनेक रूप नियति है, जे कर तुम
से मानोगे, तब तो तुमारे मतके वैरी दो विकल्प हम तुमकूं नेट कर
है, तुमारी नियति अनेकरूप जो है, सो मूर्त्त है? वा अमूर्त्त है? जे
र कहोगे कि मूर्त्त है, तब तो नामांतर करकें कर्मही तुमने माने, क्यों

कि कर्म जो है, सो पुद्गलरूप होणेंसे मूर्त्तिनी है, अरु अनेक रूपनी
तो तुमारा हमारा एकही मत हो गया, क्योंकि हम जिनकूं
उनहीं कर्मोंका नामांतर तुमने नियति मान लीया, परंतु वस्तु
है. अथ जे कर नियतिकूं अमूर्त्त मानोगे, तब तो नियति सुख
तु अमूर्त्ति होनेसें न होवेगी, जैसें आकाश अमूर्त्त है, परंतु सुख
हेतु नांहि है, पुद्गलही मूर्त्ति होनेसें सुख दुःखका हेतु हो सका है, जे
तुम ऐसे मानोगे कि आकाशनी देश नेद करके सुख दुःखका हेतु है,
से मारवाड देशमें आकाश दुःखदायी है, शेष सजल देशोंमें सुखदायी
यहनी तुमारा कहना असत् है, तिन मारवाडादि देशोमेंनी
रहे हूये जो पुद्गल हैं, उन पुद्गलोंही करी दुःख सुख होते है, तथाहि
स्थली जो है, सो प्रायः जल करकेर हित है अरु वालु (रेति)नी बहुत
अरु रस्तेमें चलतां पग वालुमें धस जाते है, तब तो पसीना बहुत
जाता है, अरु उष्णकालमे सूर्यकी किरणोंसें वालु तप जाता है, त
हुत संताप होता है, अरु जलनी पीनेकों पूरा नहीं मिलता है, ति
खननेमें कोइ प्रयत्न करनां पडता है, इस वास्ते उन देशोंमें बहुत
है अरु सजल देशोमें पूर्वोक्त कारण नहीं है, इस वास्ते पूर्वोक्त दुः
नहीं है, इस हेतुसें पुद्गलही सुख दुःखका हेतु है, परंतु आकाश नहीं

अथ जे कर नियतिकूं अनावरूप मानोगे, तो यहनी तुमारा प
युक्त है, क्योंकि अनाव जो है सो तुबरूप है, शक्ति रहित है, औ
करणेमें समर्थ नहीं, क्यों कि कटक कुंमलादिकोंका जो अनाव है,
कटक कुंमल उत्पन्न करनेकूं समर्थ नहीं, तैसेही देखनेमें आता है,
र कटक कुंमलादिकोंका अनाव कटक कुंमलादिक उत्पन्न करे, तब तो
तूमें कोइनी दरिद्री न रहे.

पूर्वपक्षः–घटानाव जो है सो मृत्पिंम है, तिस माटीके पिंमसें घ
त्पन्न होता है, तो फेर हमारे कहनेमें क्या अयुक्तता है? अरु जो म
का पिंम है सो तुबरूप नहीं है क्योंकि वो अपणे स्वरूप करकें विद्य
है, तो फेर अनाव पदार्थकी उत्पत्तिमें हेतु क्यों नही हो सका?

उत्तरपक्षः–यहनी तुमारा पक्ष असमीचीन है, क्योंकि जो माटीके पिं
नाव स्वरूप है सो नावानावका आपसमें विरोध होनेसें अनाव रूप

ी सक्ता, क्योंकि जे कर नावरूप है तो अनाव कैसें हुआ? जे कर अनाव रूप है,तो नाव कैसें हुआ? जे कर कहोगे कि स्वरूप अपेक्षा नावरूप है,अरु पररूपापेक्षा अनावरूप है, तिस वास्ते नावानाव दोनोके न्यारे निमित्त हो नेसें कुछनी दूषण नहीं, इस कहनेसें तो माटीका पिंम नावानावरूप अ नेकांतात्मिकरूप तुमारेकूं प्राप्त हुआ, परंतु यह अनेकांतात्मपणा जैनोंहीके मतमें शोनता है, क्योंकि जैनमतवालेही सर्व वस्तुकूं स्वपरनावादि स्व रूप करकें अनेकांतात्मिक मानते है, परंतु तुमारे सरीखे एकांतग्रहग्रस्त मतवालोंकों नही शोनता है, जे कर कहोगे कि मृत्पिंममें जो पररूपका अनाव है, सो तो कल्पित है, अरु जो नावरूप है, सो तात्विक है, इस वास्ते अनेकांतात्मिक वाद हमारे मतमें नहीं आता है, तब तो तिस मृत्पिंमसें कैसें घट होवेगा? क्यों कि तिस मृत्पिंममें परमार्थसें घ टके प्रागनावका अनाव है, जे कर प्राग् अनाव विनानी तिस मृत्पिंमसें घट हो जावे, तब तो सूत्र पिंमादिकसेंनी घट क्यों नही होजावे? जैसा मृत्पिंममें घट प्रागनावका अनाव है, तैसाही सूत्रपिंमादिकमेंनी घट प्रागनावका अनाव है, तथा तिस मृत्पिंमसें खरशृंग क्यों नही हो जाता है? इस वास्ते यह तुमारा कहना कुछ नहीं है, तथा जो तुमने क हा था कि जो वस्तु जिस अवसरमें जिससेति होवे है, सो कालांतरमेंनी सोई वस्तु तिस अवसरमें तिसतें नियतरूप करके होती हुई दीखती है, य ह तो तुमारा कहनां ठीक है, क्योंकि कारण सामग्रीके अनादि नियमोसें कार्यनी तिस अवसरमें तिसतें नियतरूप करकेंही होता है, जब कारण शक्तिके नियमसे कार्य हो गया, तब कौन ऐसा प्रेक्षावान् प्रमाणपंथका कुशल है जो प्रमाण बाधित नियतिकों अंगीकार करे? ॥इति नियति खंमनं॥

अथ पांचमा स्वनाववादीका खंमन लिखते है. स्वनाववादी ऐसे कहते हैं कि इस संसारमे सर्व नावपदार्थ स्वनावहीसे उत्पन्न होते हैं, यह स्वना ववादीयोंका मत नियतिवादके खंमनसेंही खंमन हो गया, क्योंकि जो दू षण, नियतिवादीके मतमें कहे है, वे सर्व दूषण, प्राय यहांनी समानही है, सोई कहते है, कि यह जो तुमारा स्वनाव है, सो नावरूप है? अथवा अनावरूप है? जे कर कहोगे कि नावरूप है, तो क्या एक रूप है? वा अनेक रूप है? इत्यादि सर्व दूषण नियतिकी तरे कह देने.

एक औरभी बात है, कि स्वभाव आत्माके भावकों कहते हैं, भाव कार्यगत हेतु है? वा कारण गत है? कार्य गत तो नहीं है, कि जब कार्य हो जावेगा तब कार्यगत स्वभाव होवेगा परंतु विना के हूये कार्य गत कैसें होवे? अरु जब कार्य हो गया, तब तिसका हेतु भाव कैसें होवे? जो जिसके अलब्ध लाभ संपादनमें सामर्थ्य होवे, तिसका हेतु है, अरु कार्य तो निष्पन्न होने करकें लब्ध आत्मलाभ है, ही तो तिस स्वभावहीकूं अभावका प्रसंग हो जावेगा, तब तो वो स्वभा कैसें कार्यका हेतु होवेगा? जे कर कहोगेकि कारणगत हेतु है, यह तोह मकूंभी संमत है, सो स्वभाव प्रति कारण भिन्न है, तिस करकें माटीसें घट होता है, परंतु माटीसें पटादि नहीं होता है, माटीके पिंडमें पटादि होनेका स्वभाव नहीं है, अरु तंतुओंसें पटही होता है, घटादि नहीं होते हैं, क्योंकि ततुओंमें घट होनेका स्वभाव नहीं है, तिस वास्ते जो तुमने कहा था कि माटीसें घटही होता है, पटादि नहीं होता, सोतो सर्व कारणगत स्वभाव माननेसें सिद्धहीकों साध्या है. यह पक्ष, हमारे मतका बाधक नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि मूंगोंमें रंधनेका स्वभाव है, को कडुमें नही? इत्यादि सोभी कारणगत स्वभाव अंगीकार कर्यां सर्वही समीचीन हो जाता है, जैसें एक कोकडु मूंग है, स्वकारण वशतें तैसे रूप वाले हूये है; हांडी, इंधन, कालादि सामग्रीका संयोगभी है, तोभी नहीं रंधते है, अरु स्वभाव जो है सो कारणसे अभेद है, इसतें सर्व वस्तु तत्कारणही है, यह सिद्ध पक्ष है ॥ यह क्रियावादीयोंका मत तो खंडन हो चुका॥

अथ अक्रियावादीयोमें जो यदृच्छावादी है, तिनोंनें जो कहा था कि वस्तुओंका नियम करके कार्य कारणभाव नहीं है, इत्यादि. सोभी कहना कार्य कारणके विवेचने वाली बुद्धिसें रहित होनेका सूचक है, क्यों कि कार्य कारणकों प्रतिनियतताका संभव होनेसें है, सोई कहते हैं कि जो शालूकसें शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा शालूकहीसें उत्पन्न होता है, परंतु गोबरसे नहीं. अरु जो गोबरसे शालूक उत्पन्न होता है. सो सदा गोबरहीसें उत्पन्न होता है, परंतु शालूकसे नहीं, अरु इन दोनों शालूकोंकों शक्तिवर्णादि वैचित्र्यतासें भी परस्पर जात्यंतर होनेसें एकरूपभी नहीं है, अरु जो अग्निसें अग्नि उत्पन्न होता है, सोभी सदैव अग्निहीसें उत्प

होता है, परंतु अरणीके काष्ठसें नहीं होता, अरु जो अरणीके काष्ठसें ग्नि उत्पन्न होता है, सो सदा अरणीकाष्ठसेंही उत्पन्न होता है, परंतु ग्निसें नहीं होता, अरु जो कहा था कि बीजसेंभी केला उत्पन्न होता है, यादिक सोभी परस्पर विभिन्न होनेसें सोइ उत्तर है कि जो उपर लिख ाये हैं. एक औरभी बात है, कि जो केला कंदसें उत्पन्न होता है, सो । परमार्थसें बीजहीसें होता है, तातें परंपरा करकें बीजही कारण है, सेही वटादिकभी शाखाके एक देशतें उत्पन्न होते हूये परमार्थसें बीज ही उत्पन्न होते है, सोइ कहते है कि शाखासें शाखा होती है, परंतु उ शाखाकी हेतु शाखा है, ऐसा लोकमें व्यवहार नहीं है, काहेतें कि वट जहीकूं सकल शाखा प्रशाखा समुदाय रूप वटका हेतु होने करकें प्र ऽद है, ऐसेंही शाखाके एक देशसेंभी उत्पन्न होता हूआ वट परमार्थसें न, वटशाखारूपही है, इसतें सोभी मूल बीजहीसें उत्पन्न हूया मान चाहियें, तिस वास्ते किसी जगेसेंभी कार्य कारण भाव व्यभिचारी न है ॥ इति यदृच्छावादि मतखंडनं ॥

अथ अज्ञानवादी मत खंडन लिखते हैं. अज्ञानवादी जो कहते कि ज्ञान श्रेय नहीं है, क्योंकि जब ज्ञान होता है, तब परस्पर विवा दे योगसें चित्तमें कलुष पणेसें दीर्घतर संसारकी वृद्धि होती है, त्यादि. यह जो अज्ञान वादीयोंनें कहा है, सो भी मूर्खताका सूचक सोइ दिखाते है, कि और बात तो रहो परंतु प्रथम हम तुमकों दो तें पूछते है सो यह बातें है कि ज्ञानका जो तुम निषेध करते हो, । क्या ज्ञानसें करते हो ? वा अज्ञानसें करते हो ? जे कर कहोगे ज्ञानसें करते है, तो फेर कैसें कहते हो कि अज्ञान श्रेय है ? इस हनेसें तो ज्ञानही श्रेय हूआ, ज्ञानके बिना अज्ञानकों कोई स्थापन रने समर्थ नहीं है, जे कर उक्त कहनेको मानोगे, तो तुमारी प्रतिज्ञा । व्याघात प्रसंग होगा, जे कर कहोगे कि अज्ञानसें निषेध करते है, ोभी अयुक्त है, सो अज्ञानको ज्ञान निषेधनेका सामर्थ्य नहीं है, योंकि अज्ञान किसीकेभी साधने बाधनेमें समर्थ नही है, अज्ञान हो से जब अज्ञान निषेधनेमें सामर्थ्य न हूआ तब सिद्ध हूआ कि ज्ञानही य है, अरु जो तुमने कहा था कि जब ज्ञान होगा, तब परस्पर विवादके

योगसें चित्त कालुष्यादि नावकूं प्राप्त होगा, इत्यादि. सोनी विना कहनां है, हम परमार्थसें ज्ञानी उसकों कहते हैं कि जिसकी विवेक करकें पवित्र होवे, अरु जो ज्ञानका गर्व न करे, अरु जो ज्ञानी हो कर कंठ लग मद्य पी कर जैसें उन्मत्त बोलता है तैसें रु सकल जगत्कों तृणोंकी तरें माने, सो परमार्थसें अज्ञानीही है, कि उनकों ज्ञानका फल नहीं है, ज्ञानका फल तो राग द्वेषादि त्यागनां है. जब यह नहीं हूवा, तब तो परमार्थसें ज्ञानही नहीं " च ॥ तत् ज्ञानमेव न नवति, यस्मिन्नुदिते विनाति रागगणः ॥ तोस्ति शक्ति,र्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुं ॥१॥ " असा ज्ञानी विवेक वित्र आत्मा वाला परजीवोंके हित करणेमें एकांत रसीया होवे, जे वादनी करेगा, सोनी परजीवोंके उपकार वास्ते करेगा, अरु राजा क परीक्षक निपुण बुद्धिवालोंकि परिषदामें करेगा, अन्यथा नहीं असेंही तीर्थंकर गणधरोनें वाद करणेकी आज्ञा दीनी है. जब असें हुए तब कैसें चित्तकी मलिनता करकें कर्मका बंध होनेसे दीर्घतर संसा वृद्धि होवे ? केवल ज्ञानवान्का जो वाद है, सो वादी नरपति परीक्षकोंके अज्ञानके दूर करणेके वास्ते है, सम्यक् ज्ञानके प्रगट होनेमें बडा उपका र होता है, इस वास्ते ज्ञानही श्रेय है.

अरु जो अज्ञानवादी कहता है, कि तीव्राध्यवसाय करकें जो कर्म उ त्पन्न होते है, उनसे दारुण विपाक फल होता है, सो तो हम मानते हैं, परंतु जो अशुनाध्यवसाय है, तिनका हेतु ज्ञान नहीं है, क्योंकि अशु नाध्यवसायोंका अज्ञाननी हेतु देखनेमें आता है, केवल इतनी बात तो है कि ज्ञानके होते हूया जे कर कदाचित् कर्म दोषतें अकार्यमें प्रवृत्तिनी होवेगी, तोनी ज्ञानके बलसें प्रतिक्षण संवेग नावनासे तीव्र अशुभ परि णाम नहीं होते हैं, सोइ दिखाते हैं.

जैसें कोईक पुरुष राजादिकोंके दुष्ट नियोगसें विषमिश्रित अन्न है, असें जानता हुवा नयचीत मन करकें जीमेगा, तैसेंही सम्यक् ज्ञानीनी कर्म चित्कर्म दोषसें अकार्यनी आचरेगा, तोनी संसारके दुःखों करकें नयनीत मनवाला होवेगा, परंतु निःशंक नहीं होवेगा. अरु जो संसारसें नयनीत होता है, तिसहीका नाम संवेग कहते है, तबतो संवेगवान् तीव्र अशुना

वसायवाला नहीं होता है, अरु जो तुमने कहा था कि अज्ञानही सत्पु
ोंको मोक्ष जाने वास्ते श्रेय है, परंतु ज्ञान श्रेय नहीं, यह जो कहनां है,
मूढताका सूचक है, जिसका नामही अज्ञान है. वो श्रेय क्यों कर हो
ता है? अरु जो तुमने कहाथा कि हम ज्ञानकूं माननी लेवे, जो ज्ञानका
श्चय करणेमें कोइ समर्थ होवे, सोनी मूर्खोंका कहनां है, क्योंकि
द्यपि सर्व मतो वाले परस्पर निन्नही ज्ञान अंगीकार करते है, तोनी जि
का वचन दृष्टेष्ट बाधित नही अरु पूर्वापर व्याहत नही है, सोइ सम्य
रूप जाननां तैसा वचन तो नगवान्हीका कह्या हूआ हो सक्ता है,
इ प्रमाण है, शेष नही. अरु जो कहा था कि बौधनी अपनें बुद्ध नग
न्को सर्वज्ञ मानते है, इत्यादि सोनी असत् है, क्योंकि दृष्टेष्टकरकें
नका वचन बाधित है, इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नही है, तिनका व
न जैसें बाधित है, तैसें आगें लिखेंगे.

तथा जो तुमने कहाथा कि जो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ होवे, तोनी तिस
र्द्धमान स्वामीहीका कह्या हूआ यह आचारांगादि शास्त्र है, सो क्योंकर प्रती
होवे? यहनी तुमारा कहनां दूर हो गया, क्योंकि और किसीका ऐसा
ष्टेष्ठ बाधा रहित वचन है नही. अरु जो तुमने कहाथा कि यहनी तुमारा
हनां होवेकि आचारांगादि यह जो शास्त्र है, सो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञके
हे हूये है तोनी वर्द्धमान स्वामीके उपदेशका यही अर्थ है अन्य नही है
त्यादि. सोनी अयुक्त है क्योंकि नगवान् जो है, सो वीतराग है, अरु जो
ीतराग होता है, सो किसीकूं कपट उपदेश देकर नूलाता नही है. क्योंकि
प्रतारणेका हेतु जो रागादि दोषोंका समूह सो नगवान्में नही है,
रु जो सर्वज्ञ होता है, सो जानता है, जो इस शिष्यने विपरीत समजा
, अरु इसने सम्यक् समजा है, तब तो जिसने विपरीत समजा है, ति
कूं मनाकर देते है, अरु नगवानने तो गौतमादिकोंको मने नही करा,
स वास्ते गौतमादिकोने सम्यग्ही जाना है, अरु जो कहाथा कि गौत
ादि छद्मस्थ हैं, इत्यादि. सोनी असार है, क्योंकि छद्मस्थनी उक्त रीति
रकें नगवानके उपदेशसेंही यथार्थ वक्ता निश्चय हो सक्ता है, तथा विचि
 अर्थोंवाले शब्दनी नगवान्नेही कहे है, सो शब्द जैसें जैसे प्रकरण हो
ा, तैसें तैसें ही अर्थका प्रतिपादक हो सक्ता है, इस वास्ते कोइनी दूषण

नहीं क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारें तिस तिस अर्थका निश्चय जाता है, अरु गौतमादिकोंनें जिस जिस जगे जिस जिस शब्दका जैसा अर्थ करा है, सो नगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेनी जाना जाता है जो गौतमादिकने यथार्थही जाना है, अरु यथार्थही शब्दोंका अर्थ करा अरु जो कुछ गोतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविछिन्न करकें अब ताइ तैसेही अर्थका अवगम होता है, ऐसेंनी न कहनां कि आचार्योंकी परंपरा हमकूं प्रमाण नहीं? क्यों कि अविपरीतार्थ कहने आचार्योंकी परंपराकों कोइनी जूठी करने समर्थ नहीं.

एक औरनी बात है, कि तुमारा जो मत है, सो आगम मूल है? अनागम मूल है? जे कर कहोगे कि आगम मूल है, तब तो परंपरा क्योंकर अप्रामाणिक हो सक्ति है? आचार्योंकी परंपरा विना, आगमका अर्थही क्योंकर जाना जाये? जे कर कहोगे कि अनागममूल है तब तो उन्मत्तके विरचित वचनवत् प्रामाणिक न होवेगा.

पूर्वपक्षः–यद्यपि हमारा मत अनागम मूल है, तोनी युक्ति संयुक्त है, इस वास्ते हम मानते हैं.

उत्तरपक्षः–अहो "डुरंतः स्वदर्शनानुरागः" कैसा नारी अपणे मतका राग है, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध नाषण तो अज्ञान मतका नूषण है!

पूर्वपक्षः–किसी तरे हमारा पूर्वापर विरुद्ध बोलनांही हमारे मतका नूषण है?

उत्तरपक्षः–युक्तियां जो होतीयां है, सो ज्ञानमूलही होतीयां हैं; अरु तुम तो अज्ञानहीकूं श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें सत् युक्तियों का कैसें संनव होवे? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके नाषक हो, इस हेतुसें तुमारा मत किसीनी कामका नहीं है॥इति अज्ञानवादि मत खंमन॥

अथ विनयवादीके मतका खंमन लिखते है. अब जो विनयहीसें मोक्ष मानते हैं सोनी एकांत वादके मोहसें हैं, क्योंके विनय मुक्तिका अंग है, जो मुक्ति मार्गमें चलते हैं. तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः. इति वचनात्" सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, अरु सम्यक् चारित्र रूप है, ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण है, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार नूत जो बहुश्रुतादिक

ाय है, तिनकी जो विनय करे, बहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, परंपरा करकें मुक्तिका अंग हो सक्ता है; परंतु जो सुर, नरपति आ ककी विनय है, सो संसारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय कर है, वो उसके गुणोंकों बहु मान देता है; अरु सुर, नरपति, प्रमुखोंमें विषय भोगनेका प्रधान गुण है, जब उनकी विनय करी, तब तो उन भोगोंकूं बहु मान दीया, जब भोगोकूं बहु मान दीया, तब दीर्घ संसा धकी प्रवृत्ति कर लीनी. इस वास्ते एकांत विनयसें जो मोक्ष मानते सोभी असत् वादी है, क्योंकी ज्ञानादिकोंसें रहित विनय साक्षात् मु का अंग नही है. ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें रहित पुरुष, केवल पादपत दिक विनयसें मुक्ति नही पा सक्ता है. किंतु ज्ञानादिक सहितही पा स है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अंग हूये विनय नहीं.

पूर्वपक्षः—कैसे हम जानीयें जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अंग है?

उत्तरपक्ष—इस संसारमें मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोही कर कर्म वर्गणाका संबंध आत्माकों होता है, अरु कर्मकालका जो क्षय ना है, सोइ मोक्ष है. “मुक्तिः कर्मक्षयादिष्टेति वचनप्रामाण्यात्” अ कर्मका क्षय तो तब होगा, जब कर्मबंधका कारण उछेद होगा, अरु र्मका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है, इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष म्यक् दर्शन है, अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरति प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र है, जब इन तीनोकों सेवता हुवा, यह तीनो कर्ष भावको प्राप्त होगे. तब सर्वथा कर्मोका कारण दूर होवेगा. जब ारण उछेद होवेगा, तब निर्मूल कर्मोछेदके होनेसें मोक्ष होवेगी, इस स्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अंग है, परंतु विनय मात्र नही. अरु जो ज्ञा ादिकों विषे विनय करता हूवा परपरा करके मुक्ति अंग है, अरु साक्षा मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोंमें केइ जगें लिखा कि “सर्वकल्याणभाजनं विनयः” सो ज्ञानादिकोंकी प्रवृत्ति वास्ते है, रु जे कर विनयवादीभी इसी तरे मानता है, तब तो विनयवादीभी हमा मतमेंही वर्त्ते है, तब तो विवादकाही अभाव है॥ इति विनयवादी मत ंभनं॥ यह समुच्चय (३६३) मतका किंचित् मात्र सरूप लिखा है.

अथ भव्य जीवोंके शीघ्र बोध होने वास्ते षट् दर्शनोंका किंचित् स्वरू

प लिखते हैं. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं,
मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक
हुवा, २ चामका टूकडा, ३ कमंडलु, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो
का वेष है. अरु शौचक्रिया बहुत है, कोमल शय्यामें सोनां, सवेरे
र पेया पीनां, मध्यान्हकालमें भात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, २
खंड, मिसरी. अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका वचन है,
मनगमता भोजन करनां. मनगमती शय्या. आसन, अरु मनगमता
का स्थान, ऐसी अच्छी सामग्रीसे मुनि अच्छा ध्यान करता है, अरु
पात्रमें जो कुछ पड जावे, सो सर्व शुद्ध, ऐसे मान करके मांसभी
लेते है, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते है, यह
आचार है, १ धर्म्म, २ बुद्ध, ३ संघ, यह तीनोंकों रत्नत्रय
ते हैं, अरु शासनके विघ्नोके नाश करने वाली तारा देवी मानते
अरु विपश्यादिक सात बौद्धावतार जिनोंकी मूर्त्तियोंके कंठमें तीन
रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं भगवान् मानते है, तिसकूं सर्वज्ञ मानते

अरु बुद्ध भगवान्कों जितने नामों कर कहते है, सो लिखते
१ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्म्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बो
सत्त्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान.
षडभिज्ञ, १३ दशार्ह, १४ दशभूमिग, १५ चतुस्त्रिंशज्जातकज्ञ, १६ दश
रमिताधर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशबल, १९ त्रिकाय, २० श्रीघन,
अद्वय, २२ समंतभद्र, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६
रजित्, २७ लोकजित्, २८ मुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमातृ
३१ महामैत्र, ३२ मुनींद्र. यह बत्तीस नाम, बुद्ध भगवानके कहते
अरु सात बुद्ध मानते है, १ विपश्वी, २ शिखी, ३ विश्वभू, ४ क्रकुं
५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. पीछला जो शाक्यसिंह बुद्ध है,
सके नाम, १ शाकसिंह, २ अर्कबांधव, ३ राहुलसू. ४ सर्वार्थसिद्ध,
गौतम, ६ मायासुत, ७ शुद्धोदनसुत, ८ देवदत्ताग्रज. तथा १ भिक्षु,
सौगत, ३ शाक्य, ४ शौद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवादी
द्धोंके नाम हैं. तथा १ शौद्धोदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्चट. ४ धर्मकीर्ति.
प्रज्ञाकर, ६ दिग्नाग, ७ रामट. इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु है. त

र्कनाषा, २ न्यायबिंड, ३ हेतुबिंद, ४ अर्चट, ५ तर्ककर्मनशैत, ६ न्या
वेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके है. तथा बौद्धोंकी शा
चार है, सो कहते है, १ वैन्नाषिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.
अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते है, सो लिखतेहैं, १ दुःख, २
दाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है,
का नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४
कारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो विना अपर कोइन्नी आत्मादिक
र्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, रस
ानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान है, सो विज्ञान स्कंध, २ सुखा
ा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोसें हो
है, ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध, ४ पुण्य अपु
दिक धर्म समुदाय जो है, सो संस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्र
ासें पूर्व अनुन्नवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आ
ः अरु रूपादिक. यह रूपस्कंध है, इन पांचोसें अतिरिक्त आत्मादि
कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध है, वे सर्व एक क्षणमा
रहते है, नित्यन्नी नही है, अरु कितनेक काल तांइ रहनेवालेन्नी नहीं है,
ः दुःख तत्त्वके पांच न्नेद कहे.

अथ दुःख तत्त्वका कारणन्नूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं,
इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका स
ः कैसा है? कि "आत्मात्मीयन्नावाख्यः" मैं हूं, यह मेरा है, ऐ
जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो सं
ा, सोइ है नाम जिसका इस करके जो राग द्वेपादिक उत्पन्न होते है,
सका नाम समुदायतत्त्व है. अथ दुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों
सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु है.

अब इन दोनोंके जो विपक्षीन्नूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं.
"परमनिःकृष्टं कालःक्षणं" तिसमें जो होवे, सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ
णमात्र रह कर नाश हो जाते हैं, आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं पू
क्षणके नाश होनेसे तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता
ासना सो उत्तर ज्ञानमे शक्ति है, अरु क्षणोंकी परपरा करकें जो मान

सी प्रतीति होवे, तिसका नाम मार्ग है, सो निरोधका कारण
अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते है, निरोध नामा तत्त्व
कहते हैं. चित्तकी जो निःक्लेश अवस्था तिस्का नाम निरोध तत्त्व है
मांतर करिकें मोक्ष कहते है, यह दुःखादि चारकों आर्यतत्त्व कहते
अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे है, सो सौतांत्रिक बौद्धमतकी ॥

अरु जेकर नेद रहित समुच्चय बौद्धमतकी विवक्षा करियें, तब
बौद्धमतमें बारा पदार्थ होते हैं, उसमें १ श्रोत्र. २ चक्षु, ३
ण, ४ रसन, ५ स्पर्शन. यह पांच तो इंद्रिय, अरु इन पांचों
द्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है,
दुःखादि तिनका जो आयतन (घर) सो क्या है ? कि शरीर है यह
द्वादश तत्वोंका नाम आयतन कहते हैं, अरु यह बारा आयतन
है, उक्त प्रकारसें. चार तत्त्व तो सौतांत्रिकके मतके, अरु सामान्य
सें बौद्धमतके बारा आयतन कह करकें अब बौद्धमतके प्रमाण लि
ते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण मा
हैं ॥ इति संक्षेप मात्र बौद्धदर्शन ॥ १ ॥

अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं. नैयायिक मतका अपर नाम यौगमत
कहते हैं; इन नैयायिकोंके गुरु १ दंम रखते है, २ वडी कोपीन पहे
हैं, ३ कांबली उढते हैं, ४ जटा राखते है, ५ शरीरकों नस्म लगाते
६ नीरस आहार करते हैं, ७ बांहके मूलमें तुंबी राखते हैं, ८ प्राय
रकें वनोमें रहते है, ९ आतिथ्य कर्ममें तत्पर होते है, १० कंद, मू
फल, खाते हैं, ११ कितनेक स्त्री रखते हैं, औ कितनेक नहीं रखते
१२ जो स्त्री नहीं रखते हैं, सो तिनमें उत्तम गणे जाते हैं, १३ पंचाग्नि
तापते हैं, १४ जटामें प्राणलिंग धरते है, १५ उत्तम संयम अवस्था
जब प्राप्त होते है, तब नग्न हो कर भ्रमण करते है. १६ सवेरे दंत
दादि शौच करकें शिवका ध्यान करते हैं, १७ नस्म करकें तीन तीन
र अंगकूं स्पर्श करते हैं, १८ जो उनका नक्त वंदना करता है, सो "
नमः शिवाय " कहता है, अरु १९ गुरु नक्तके तांइ " शिवाय नमः " ऐ
से कहता है. उनका कहना ऐसाभी है, कि जो पुरुष शैवी दीक्षा बा
वर्षपाल करकें ठोड देवे, जे कर पीछे वो दास दासीभी होवे, तोभी निर्वाण

पाता है, अरु शंकर इनका देव है, सो शंकर कैसा है कि:—सर्व सृष्टि संहारका कर्त्ता है.

तिस शंकरके अगारह अवतार मानते हैं, तिसका नाम लिखते हैं. नकुलीश, २ कौशिक, ३ गार्ग्य, ४ मैत्र, ५ कौरुप, ६ ईशान, ७ अप गार्ग्य, ८ कपिलांम्, ९ मनुष्यक, १० अपर कुशिक, ११ अत्रि, १२ पि ङ्गाक्ष, १३ पुष्पक, १४ वृद्धाचार्य, १५ अगस्ति, १६ संतान, १७ राशिकर, १८) विद्यागुरु, यह अगारह उनके तीर्थेश है, इनकी बहुत सेवा करते इनका पूजन, अरु प्रणिधान तिनके शास्त्रोंसें जान लेनां.

अरु इनका अक्षपाद मुनि अर्थात् गौतम मुनि गुरु है, तिनके मतमें ट पूजनिक है, सो कहते है, देवतावोंके सन्मुख हो कर नमस्कार करणी, जैसा नैयायिक मतमें लिंग, वेष, देवादि स्वरूप है, तैसाही वै पिक मतमेंभी जान लेनां, क्योंकि नैयायिक वैशेषिकोंके प्रमाण अरु त्वोंमें थोडासा भेद है, इस वास्ते यह दोनो मत तुल्य ही है, इन दोनों कों तपस्वी कहते है, अरु तिनके शैवादिक चार भेद है, एक शैव, दू रा पाशुपत, तीसरा महाव्रतधर, चौथा कालमुख इनके अवांतर भेद रट, भक्तलैंगिक, तापसादिक है, भरटादिकोंकों व्रत ग्रहणेमें ब्राह्मणा वर्णोका नियम नही, किंतु जिसकी शिव विषे भक्ति होवे, सो व्रती भ रादिक होता है, परंतु नैयायिक जो है, सो सर्व सदाशिवभक्त होनेसें नका नाम शैव कहते है, अरु वैशेषिकोंको पाशुपत कहते है.

इन नैयायिकोंके मतमे १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शा , यह चार प्रमाण मानते है, अरु १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ योजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क. ९ निर्णय, १० वा , ११ जल्प, १२ वितंडा, १३ हेत्वाभास, १४ छल, १५ जातय, १६ ग्रहस्थान. यह सोला पदार्थ मानते हैं, इनका विस्तार बहुत है, इस वा े नहीं लिखा, अरु आत्यंतिक दुःखोंका जो वियोग तिसकू मोक्ष कहते . इनके १ न्यायसूत्र, अक्षपाद मुनि कर्त्ता, २ भाष्य, वात्स्याय मुनि कर्त्ता, ३ न्याय वार्त्तिक, उद्योतकर कर्त्ता, ४ तात्पर्य टी ा, वाचस्पति कर्त्ता, ५ तात्पर्य परिशुद्धि, उदयन कर्त्ता, ६ न्या ालंकार वृत्ति, श्रीकंठाभयतिलकोपाध्याय कर्त्ता, ७ भासर्वज्ञप्रणीत,

न्यायसार. तिसविषे अगारह टीका है, तिनमेंसूं न्यायभूषण न. टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि यह इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ है, यह नैयायिकदर्शन, संक्षेपसे लिखा.

अथ वैशेषिकभी यहां लिख देते है. कि वैशेषिकोंका मत नै के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अर मान यह दो प्रमाण मानते हैं, अरु १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ न्य, ५ विशेष, ६ समवाय, यह भावरूप ७ तत्त्वों मानते है, इन विस्तार देखनां होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोमें देख लेना, तथा पागछाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित षट्दर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका लेनी. अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ है, सो कहते हैं, तो ६००० श्लोक प्रमाण, कंदली श्रीधर आचार्य कर्त्ता, वैशेषिकसू त्र, २००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर भाष्य, ७०० श्लोक मान, व्योमशिवाचा र्यकृत व्योममतीटीका, ९००० श्लोक मान, उदयनकी करी हूई किरणा ली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यकृत लीलावती टीका ६०० श्लोकमान, अरु एक आत्रेय तत्र था, सो व्यवछेद हो गया है. यह शेषिक मतवाले कहते हैं की शिवजीने उलूकका रूप करके कणाद मु के आगें यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका ना औलूक्य मतभी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मत ॥

अथ सांख्यमत लिखते है. प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने स्ते उनका लिंगादिक लिखते है. सो त्रिदंडीभी होते हैं, कौपीन पहर हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते है, कोइ शिर उपर शिखा रखते हैं, अरु कोइ टा रखते हैं, कोइ मस्तक क्षुरमुंड कराते हैं, मृगचर्मका आसन रखते हैं, जके घरका अन्न खाते है, केइ पांचही ग्रास खाते है, अरु बारा अक्षर जाप करते है, तिनके भक्त, जब गुरुकूं वंदना करता है, तब "ॐ नमो ना यणाय" असें कहते है, तब गुरु उनकूं "नमो नारायणाय" असें कह है, अरु महाभारतमें जिसका नाम "वीटा" अैसा लिखा है, यह काष्ठ मुखवस्त्रिका मुखके निरोधके वास्ते रखते हैं, जिससें मुखभा से जीवहिंसा न श्लोक ॥ तेप्राणावनुयातेन, श्वासेनैक तय ॥१॥ दिनः ॥ १ ॥ ते साम्य गुरु,

के जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके गानने वास्ते गलनां राख
है, अरु अपने नक्तोकूं पाणीके गानने वास्ते तीस अंगुल प्रमाण लां
। और वीश अंगुल प्रमाण चौडा, दृढ गलना राखनेका उपदेश करते है, अरु
ो जीव पानीके गाननेसें निकले, वो उसी पाणीमें पीछे प्रक्षेप करने,
योंकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जाते है, अरु खारे पा
ीके मिलनेसें मीठे पाणीके पूरे मर जाते हैं, इस वास्ते परस्पर पानी
ोंका मेल न करनां, बहुत सूक्ष्म पाणीके एक बिंदुमें इतने जीव है कि
। कर न्नमर समान उस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे
ीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमांसाया ॥
यह सांख्यन्नी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरेंके हैं, नवीनोका
ूसरा नाम पातांजलन्नी कहते है, इनमेंसूं प्राचीन सांख्य ईश्वरकों नहीं
ानते है, अरु नवीन सांख्य ईश्वरकों मानते है, जो निरीश्वर है वो ना
ायण पर है, अरु उनके जो आचार्य है, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैत
य प्रमुख शब्दों करके कहे जाते है, अरु सांख्य मत कहने वाले यह
आचार्य है सो लिखते है. कपिल, आसुरी, पंचशिख, नार्गव, उलूक, ईश्वर,
ृष्ण, यह शास्त्रोंके कर्त्ता है. सांख्यमत वालोंकों कापिलान्नी कहते है, तथा
कपिलाका परमर्षि ऐसा दूसरान्नी नाम है, इस वास्ते तिनकों पारमर्षान्नी
कहते है, वाणारसीमें सो बहुत होते है. मासोपवासन्नी करते है, अरु ब्रा
ह्मण जो है, सो अर्चिमार्गसें विरुद्ध धूममार्गानुगामी है, अरु सांख्य
जो है, सो अर्चिमार्गानुयायी है, तिस वास्ते ब्राह्मणोको तो वेद
प्यारे है, अरु यज्ञमार्गानुयायी है, अरु सांख्य जो है सो हिंसा करके
पूर्ण, ऐसे जो वेद, तिनोसें निवर्त्त हूये है, अध्यात्मवादी है सो सांख्य
अपने मतकी महिमा ऐसी मानते है. माठर शास्त्रके प्रांतमे लिखा है
॥श्लोक॥ हस पिव खवाद मोदं, नित्यं जुंक्ष्व च न्नोगान् यथाऽन्निकामं ॥ यदि
विदित कपिलमतं, तत्प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अस्यार्थः—जे कर
तुमने कपिल मत जाना है तो हसो, पीयो, खेलो, खाउ, सदा खुशी रहो,
जैसे रुचि होवे, तैसे न्नोगोंको सदा न्नोगो, तो तुमकों थोडेसे कालमें मुक्ति
सुख प्राप्त होवेगा. शास्त्रांतरमेन्नी कहा है ॥ श्लोक ॥ पचविंशति तत्त्वज्ञो,
यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ शिखी मुंडी जटी वापि, मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥

न्यायसार. तिसविषे अगारह टीका है, तिनमेंसें न्यायनूषण टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि प्र इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ है, यह नैयायिकदर्शन. संक्षेपसें लिखा.

अथ वैशेषिकनी यही लिख देते है. कि वैशेषिकोंका मत नै के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अर मान यह दो प्रमाण मानते है, अरु १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ न्य. ५ विशेष, ६ समवाय, यह नावरूप ६ तत्त्वों मानते हैं, इन विस्तार देखनां होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोमें देख लेनां, तप पागछाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित षट्दर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका लेनी. अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ है, सो कहते हैं, तो ६००० श्लोक प्रमाण, कंदली श्रीधर आचार्य कर्त्ता, वैशे त्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर नाष्य, ७०० श्लोक मान, व्योमशिव र्यकृत व्योममतीटीका, ए००० श्लोक मान, उदयनकी करी हूइ किरण ली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यकृत लीलावती टीका ६० श्लोकमान, अरु एक आत्रेय तत्र था, सो व्यवछेद हो गया है. यह शेषिक मतवाले कहते है की शिवजीने उलूकका रूप करके कणाद के आगें यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका औलूक्य मतनी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मत ॥

अथ सांख्यमत लिखते है प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने स्ते उनका लिंगादिक लिखते है. सो त्रिदंमीनी होते है, कौपीन पहे हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते है, कोइ शिर उपर शिखा रखते है, अरु कोइ टा रखते है, कोइ मस्तक क्षुरमुंम कराते है, मृगचर्मका आसन रखते हैं, जके घरका अन्न खाते है, केइ पांचही ग्रास खाते है, अरु बारा अक्षर जाप करते है, तिनके नक्त, जब गुरुकूं वंदना करता है, तब " ॐ नमो नारायणाय" असे कहते है, तब गुरु उनकूं " नमो नारायणाय " असे कहते है, अरु महानारतमे जिसका नाम "वीटा" असा लिखा है, यह काष्ठकी मुखवस्त्रिका मुखके नि.श्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, 'जिससें मुखश्वास से जीवहिंसा न होवे. यदाहुः" ॥ श्लोक ॥ तेप्राणादनुयातेन, श्वासेनैकेन ज तवः ॥ हन्यंते शतशो ब्रह्म, न्नणुमात्राक्षरवादिनः ॥ १ ॥ ते सांख्य गुरु, ज

के जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके गानने वास्ते गलनां राख
हैं, अरु अपने नक्तोंकूं पाणीके गानने वास्ते तीस अंगुल प्रमाण लां
ा और वीश अंगुल प्रमाण चौडा, दृढ गलना राखनेका उपदेश करते है, अरु
ो जीव पानीके गाननेसें निकले, वो उसी पाणीमें पीछे प्रक्षेप करने,
योंकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जाते है, अरु खारे पा
ीके मिलनेसें मीठे पाणीके पूरे मर जाते है, इस वास्ते परस्पर पानी
ोंका मेल न करनां, बहुत सूक्ष्म पाणीके एक बिंदुमें इतने जीव है कि
ा कर भ्रमर समान उस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे
ीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमांसायां ॥

यह सांख्यनी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरेंके हैं, नवीनोका
सरा नाम पांताजलनी कहते है, इनमेंसूं प्राचीन सांख्य ईश्वरकों नहीं
ानते है, अरु नवीन सांख्य ईश्वरकों मानते है, जो निरीश्वर है वो ना
ायण पर हैं, अरु उनके जो आचार्य है, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैत
य प्रमुख शब्दों करके कहे जाते है, अरु सांख्य मत कहने वाले यह
प्राचार्य है सो लिखते है. कपिल, आसुरी. पंचशिख, नागेव, उलूक, ईश्वर,
कृष्ण,यह शास्त्रोंके कर्त्ता है. सांख्यमत वालोंकों कापिलानी कहते है, तथा
कपिलाका परमर्षि ऐसा दूसरानी नाम है, इस वास्ते तिनकों पारमर्षानी
कहते है, वाणारसीमें सो बहुत होते है.मासोपवासनी करते है, अरु ब्रा
ह्मण जो है, सो अर्चिमार्गसें विरुद्ध धूममार्गानुगामी है, अरु सांख्य
जो है, सो अर्चिमार्गानुयायी है, तिस वास्ते ब्राह्मणोको तो वेद
प्यारे है, अरु यज्ञमार्गानुयायी है, अरु सांख्य जो है सो हिंसा करकें
पूर्ण, ऐसे जो वेद, तिनोंसे निवर्त्त हूये है, अध्यात्मवादी है सो सांख्य
अपने मतकी महिमा ऐसी मानते है. माठर शास्त्रके प्रांतमे लिखा है
॥श्लोक॥ हस पिब चखाद मोदं,नित्यं नुंक्ष्व च नोगान् यथाऽनिकामं॥ यदि
विदित कपिलमतं, तत्प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अस्यार्थ —जे कर
तुमने कपिल मत जाना है तो हसो, पीयो, खेलो, खाउ. सदा खुशी रहो,
जैसे रुचि होवे, तैसे नोगोंको सदा नोगो, तो तुमकों थोडेसे कालमें मुक्ति
सुख प्राप्त होवेगा. शास्त्रातरमेंनी कहा है ॥ श्लोक ॥ पचविंशति तत्त्वज्ञो,
यत्र तत्राश्रमे रत ॥ शिखी मुंडी जटी वापि, मुच्यते नात्र संशय॰ ॥ १ ॥

अस्यार्थः—पच्चीश तत्वोंका जो जानकार होवे,सो चाहो किसी अ शिखावाला होवे, वा मुंडित होवे, अथवा जटावाला होवे, वे सर्व धिसें छुट जाते है, इसमें संशय नहीं.

अब साख्यमतमें सर्वसांख्य पच्चीश तत्त्व मानते हैं,जब पुरुष खोसें अनिहत होता है, तब तिन दुःखोंके दूर करणे वास्ते स्पन्न होती है, सो तीन दुःख यह हैं १ आध्यात्मिक, २ विक, ३ आधिजौतिक, यह तीन दुःख हैं, आध्यात्मिक जो आधि है दो प्रकारकी है, एक शारीरी, दूसरी मानसी, तहां जो वायु, पित्त, इन तीनोकी विषमतासें देहमें जो अतिसारादिक होते है, सो है. अरु काम, क्रोध, लोन, मोह, ईर्ष्या, विषयोंके देखनेसें जो होवे, मानसी. यह दोनोही आंतर उपायसे दूर हो सक्ति है इस वास्ते आध्यात्मिक दुःख कहते हैं, २ अरु जो बाह्य उपाय करकें साध्या जावे दुःख दो प्रकारके हैं, एक आधिजौतिक, दूसरा आधिदैविक, तहां दुःख मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सर्प, स्थावर आदिके निमित्त करिके हो है ताकूं आधिजौतिक कहते हैं, ३ अरु यक्ष, राक्षस, जूतादिकका प्र हो जाना, तथा महामारी अनावृष्टि अतिवृष्टिका होनां तिसका नाम धिजौतिक है. इन तीनों दुःखो करकें रज परिणामके जेद करकें प्रा योंकों दुःखोंके दूर करणे वास्ते तत्त्वोंके जाननेकी इछा होती है, सा त्त्व, पच्चीश प्रकारके हैं.

अब प्रथम पच्चीश तत्त्वोंका स्वरूप लिखते है. तिनमें प्रथम सत्त्वादि णोंका स्वरूप कहते है. १ प्रथम सत्त्वगुण सुखलक्षण, २ दूसरा रजो दुःख लक्षण, ३ तीसरा तमोगुण मोहलक्षण, इन तीनो गुणोंके यह है, १ सत्त्वगुणका चिन्ह प्रसन्नता, २ रजोगुणका चिन्ह संताप, ३ त गुणका चिन्ह दीनपणा, अब १ प्रसाद, २ बुद्धिपाटव, ३ लाघव, ४ प्र ५ अनजिष्वग, ६ अद्वेष, ७ प्रीत्यादय, यह सत्त्वगुणके कार्यलिंग १ ताप, २ शोष, ३ जेद, ४ चलचित्त, ५ स्तंज, ६ उद्वेग, यह रजो के कार्य लिंग है, १ दैन्य, २ मोह, ३ मरण, ४ असादन, ५ बीनत ६ ज्ञानगौरवादि, यह तमोगुणके कार्यलिंग है. इन कार्यो करकें सत्त्व गुण जाने जाते है ॥ तथाहि ॥ लोकमे जो कुछ सुख उपलब्ध होता

१ आर्जव, २ मार्दव, ३ सत्य, ४ शौच, ५ लज्जा, ६ बुद्धि, ७ क्षमा, अनुकंपा, प्रसादादि, यह सर्व सत्त्व गुणके कार्य्य है. अरु जो कुछ ख उपलब्ध होता है, सो १ द्वेष, २ द्रोह, ३ मत्सर, ४ निंदावचन, ५ बंधन, पादि स्थान हैं, सो रजोगुणके कार्य्य है. अरु जो कुछ मोह, उपलब्ध ता है, सो १ अज्ञान, २ मद, ३ आलस्य, ४ नय, ५ दैन्य, ६ कृपण , ७ नास्तिकता, ८ विषाद, ९ उन्माद स्वप्नादि, यह तमोगुणके कार्य्य यह सत्त्वादिक परस्परोपकारी तीन गुणों करकें सर्व जगत् व्याप्त है, तु ऊर्ध्व लोकमें देवतायों विषे बाहुल्य करके सत्त्वगुण है, औ अ लोक तिर्यंच नरकों विषे बाहुल्य करके तमोगुण है, औ मनुष्यों बहुलता करकें रजो गुण है, इन तीनो गुणों की जो सम अवस्था है, तका नाम प्रकृति है, तिस प्रकृतिकों प्रधान, अव्यक्त शब्दों करकेंभी हते है, सो प्रकृति नित्य स्वरूप है, "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं स्थं नित्यं" यह नित्यका लक्षण है. अरु यह जो प्रकृति है सो अ य, वा असाधारणी, अशब्दा, अस्पर्शा, अरसा, अरूपा, अगंधा, अ या, कहते है. अरु जो मूल सांख्यमती है, वे एकैक आत्माके साथ रा न्यारा प्रधान मानते है, अरु जो नवीन सांख्य है, वे सर्वात्मा में एक, नित्य, प्रधान मानते है, प्रकृति अरु आत्माके संयोगसें सृष्टि ती है, इस वास्ते सृष्टि होनेका क्रम लिखते हैं

तिस प्रकृतिसेंती बुद्धि उत्पन्न होती है, गौ आदिकोंके आगें दीखने यह गौही है घोडा नही, यह स्थाणुही है, परंतु पुरुष नही, ऐसा जो श्चयरूप अध्यवसाय होता है, तिसका नाम बुद्धि कहते है, दूसरा ति का नाम महत्तत्त्वभी कहते है. तिस बुद्धिके आठ रूप है. १ धर्म, २ ज्ञान, वैराग्य, ४ ऐश्वर्य, यह चार तो सात्विक बुद्धिके रूप है, १ अधर्म, २ ज्ञान, ३ अवैराग्य, ४ अनैश्वर्य्य, यह चारो तामसी बुद्धिके रूप है. ति बुद्धिसे अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसेंति सोला गुणका मूह उत्पन्न होता है, सो गुण यह है, १ स्पर्शनं (त्वक्) २ रसनं ज्व्हा, ३ घ्राणं नासिका, ४ चक्षु लोचनं, ५ श्रोत्र श्रवणं. इन पांचोको धीन्द्रिय कहते हैं, क्योंकि यह पाचों अपणे अपणे विषयको जानती , अरु पांच कर्मेंद्रिय है. १ पायु गुदा, २ उपस्थ स्त्री पुरुषका चिन्ह, ३

कंठादि आवस्थानोसें जो शब्द उच्चारियें है, सो वच, ४ हाथ, ५ पग, पांचोसें पांच काम होते हैं. १ मलोत्सर्ग, २ संभोग, ३ वचन, पकडनां, ५ चलनां, इस वास्ते इन पाचोंकों कर्मेंद्रिय कहते है. गीआरवा मन. यह मन जो है. सो बुध्धीइयोंसें मिलता है, तब यरूप हो जाता है, अरु जब कर्मेंद्रियोंसें मिलता है, तब हो जाता है, अरु यह मन जो है, सो संकल्पवृत्ति है, तथा अ पांच तन्मात्रा जिनकी सूक्ष्म संज्ञा है, सो उत्पन्न होते है, तहां १ तन्मात्रा सो शुक्ल कृष्णादिरूप विशेष, २ रस तन्मात्रा सो तिक्तादि विशेष, ३ गंध तन्मात्रा सो सुरभ्यादि गंध विशेष, ४ शब्दतन्मात्रा, मधुरादि शब्द विशेष, ५ स्पर्श तन्मात्रा, सो मृदु काठिन्यादि स्पर्श प, यह षोडशका गण है. अथ पांच तन्मात्राओंसें पांच भूत उत्पन्न है, सो कहते हैं. १ रूप तन्मात्रा सूक्ष्म संज्ञासें अग्नि उत्पन्न होता २ रस तन्मात्रासे जल उत्पन्न होता है, ३ गंध तन्मात्रासें पृथिवी होती है, ४ औ शब्द तन्मात्रासे आकाश उत्पन्न होता है, तथा ५ तन्मात्रासें वायु उत्पन्न होता है ऐसें पांच तन्मात्राओंसे पांच भूत होते हैं, ऐसें यह सब मिल कर चोवीश तत्त्व रूप सांख्य मतमें अ निवेदन कीया, " औ अकर्त्ता विगुण भोक्ता " ऐसा पुरुष तत्त्व चिद्रूप मानते है, चोवीश तत्त्वरूप प्रधान ऐसे हैं कि १ प्रकृति, २ ३ अहंकार, ८ पांच ज्ञानेंद्रिय, १३ पांच कर्मेंद्रिय, १४ मन, १९ च तन्मात्रा, २४ पांच भूत, यह चोवीश तत्त्व हैं. तिनमेंसूं प्रथम एक प्रकृति है, ऐसें अनुत्पन्न होनेसें बुध्दि आदिक सात अगलोंके तो कारण है, अरु पीछलोंके कार्य है, इस वास्ते इन सातोंको प्रकृति विकृति कहते है, अरु षोडशका गण सो कार्यरूप होणेसें विकृति रूप हैं, अरु पुरुष जो है, सो न प्रकृति है, न विकृति है, न किसीसें उत्पन्न हूआ है, न किसीकों उत्पन्न करता है, इस हेतुसें ॥ तथाचेश्वर· कृष्ण सांख्यसप्ततौ ॥ " मूलप्रकृतिरविकृति,र्महदाद्या· प्रकृतिविकृतय· सप्त ॥ षोडशकस्तुवि कारो,विकृतय न प्रकृतिर्न विकृति· पुरुष इति ॥ अर्थः–तथा ईश्वर कृष्ण सांख्यमतका आचार्य सांख्यसप्तति ग्रंथमे लिखता है, कि मूल प्रक ति अविकृति है, महत् आदिक सात प्रकृति विकृति है, षोडशक विकार

ते हैं. न प्रकृति है, न विकृति है, सो पुरुष है. तथा महदादिक, प्रकृ
। विकार है, सो व्यक्त हो कर फेर अव्यक्तभी हो जाते है, सो अनित्य
सें अपणे स्वरूपसें भ्रंश हो जाते है, अरु प्रकृति जो है, सो अविकृ
प है, सो कदापि अपणे स्वरूपसें भ्रंश नही होती है. तथा महत्
ंकोंका अरु प्रकृतिका स्वरूप सांख्यमतवाले ऐसें मानते है १ हे
ु, २ अनित्य, ३ अव्यापक, ४ सक्रिय, ५ अनेक, ६ आश्रित, ७ लि
८ सावयव, ९ परतंत्र, १० व्यक्त, इनसें विपरीत प्रकृति है. तहां १ हे
ु कारण वाले हैं, महत् आदिक २ अनित्य, उत्पत्ति धर्मवाले है, ३ बु
ादिक अव्यापी है, सर्वगत नही, ४ अध्यवसाय करकें संयुक्त वर्त्ते है, ३
ेतुसें सक्रिय सव्यापार चलने वाले हैं, ५ अनेक, तेवीस प्रकारके है
वास्ते, ६ आश्रित, आत्माके उपकार वास्ते प्रधानकों अवलंब करिकें
है, ७ लिंग, जो जिससेतें उत्पन्न होते है, सो तिसहीमें "लयं कृयं
तीति लिंगं," तहां पाच भूत, पांच तन्मात्राओमें लय होते हैं,
पांच तन्मात्रा, अरु दश इंद्रिय, अरु मन, यह अहंकारमें लय
े है, अरु अहंकार बुद्धिमें लय होता है, अरु बुद्धि प्रकृतिमें लय
ी है, औ प्रकृति किसीमेंभी लय नहीं होती हैं, ८ सावयव, शब्द,
र्श, रूप, रस, गंधादिकों करकें संयुक्त है, ९ परतंत्र, कारणके अधीन
ैसें, १० ऐसेही महत् आदिक व्यक्त है, प्रकृति इनसे विपरीत है,
सुगम है, आपही समज लेनी यह थोडासा स्वरूप लिखा है, जे कर
तार देखना होवे तदा सांख्य सप्तति आदिक, तिनोंके शास्त्रोंसे जान लेनां.
अथ पच्चीशवा पुरुष तत्त्वका स्वरूप कहते हैं, पुरुषजो है सो " अक
त्रिगुणोभोक्ता नित्यचिदभ्युपेतश्च" पुरुष तत्त्व आत्माकों कहते है, १ आ
ाजो है, सो विषय सुखादिक तिनका कारण पुण्यादिक नही करता है,
ा वास्ते "अकर्त्ता" है, क्योंकि आत्मा तृण मात्रभी तोडने समर्थ नही है,
ै कर्त्ता जो है, सो प्रकृति है, क्योंकि प्रकृतिमें प्रवृत्ति स्वभाव है, तथा २
त्रैगुण " सत्त्वादि गुणरहित है, क्योंकि सत्वादिक जो है सो प्रकृतिके धर्म
, तथा ३ "भोक्ता" आत्मा भोक्ता भोगने वाला है, भोक्ताभी साक्षात् नही
ंतु प्रकृतिका विकार भूत उभय मुख दर्पणाकार जो बुद्धि है, तिसमे सं
मण होय हुवे सुख दुःखोंको पुरुष स्वात्म निर्मलविषे प्रतिबिंबोदय मात्र

करकें "भोक्ता" कहियें है, "बुद्ध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतत" इति वचनात् जैसें जाइकें फूलोंके सन्निधानके वशसें स्फटिकमें रक्तादि कहेनेमें है, तैसें प्रकृतिके निकट होनेसें पुरुषभी सुख दुःखोंका भोक्ता कहा है, सांख्यमतका वाद महार्णवभी कहता है, उक्तंच "बु ... समर्थप्रतिबिंबकं ॥ द्वितीयदर्प्पणं कल्पे, पुंसिअध्यारोहति ॥ तदेव मस्य नत्वात्मनोविकारापत्तिरिति" ॥ इसका तात्पर्यार्थ उपर लिखा

तथा च कपिलका शिष्य आसुरिभी कहता है ॥ श्लोक ॥ विवेके ... णतौ, बुद्धौ भोगोऽस्य कथ्यते ॥ प्रतिबिंबोदयः स्वछे,यथा ... तथा विंध्यवासी सांख्याचार्य आत्माकों असें भोक्ता कहता है, कि ... जो है, सो अविकृतात्माही है, स्वनिर्भास अचेतनमन करता है, तिस नकी निकटतासें उपाधि स्फटिकवत् दिखलाइ देती है, तथा " ... या चिच्चेतना तयाऽभ्युपेतः" इस कहने करकें पुरुषही चैतन्य स्वरूप "नतु ज्ञानस्य" (परंतु ज्ञान को नहीं) क्योंकि ज्ञानकों ... नेसें. तथा पतंजलीभी असेही कहता है. तथा "पुमान्" यह जो ए वचन है, सो जातिकी अपेक्षा है, परंतु आत्मा अनंत है, क्योंकि ज न्म मरण कारणोंके नियम देखनेसें, तथा धर्मादिक प्रवृत्ति नाना दे नेसें. सो सर्व अनंत आत्मा सर्वगत अरु नित्य है ॥ उक्तंच ॥ अमूर्तिश्चेतनो भोगी,नित्यः सर्वगतोऽक्रियः॥अकर्त्ता निर्गुणः सूक्ष्म,आत्माकापिलदर्शने॥

सांख्यमतमें प्रमाण तीन मानते है, १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शा ब्द, इस मतका नाम सांख्य वा शांख्य किस वास्ते कहते है? तिसका हेतु कहियें हैं. संख्या प्रकृति तत्त्व पच्चीश रूप तिनकों जो जाने, वा पढे इति सांख्य. तथा जे कर तालवी शकारसे बोलियें तब शांख्य, तिनके मत में शंख ध्वनि है असी वृद्धोंकी आम्नायसें यह नाम है, तथा शख नामक कोइ आद्य पुरुष हूआ है, "तस्यापत्यं पौत्रादिरिति गर्गादित्वादयञ्प्रत्यये शांख्यास्तेषामिदं दर्शनं सांख्यं शांखं वा ॥ इति सांख्यमत संक्षेपत संपूर्ण ॥

अथ मीमांसक मत लिखते है. इसका दूसरा नाम जैमिनीयाभी कहते हैं, इस मत वाले सांख्यमतकी तरें एकदंडी, त्रिदंडी होते हैं, धा तु रक्त वस्त्र पहिरते हैं, मृगचर्मके आसन उपर बैठते हैं, कमंडल रख ते है, शिर मुंडित रखते है, संन्यासी प्रमुख द्विज इस मतमे होते हैं, ति

का वेदही गुरु है, परंतु और वक्ता गुरु कोइ नहीं. सो आपणे आपकों न्नस्त सन्नस्त कहते हैं, यज्ञोपवीतको प्रक्षाल करकें तीन वार जल पीते ; सो मीमांसक दो प्रकारके हैं. एक याज्ञिकादि है, ते पूर्व मीमांसक ; दूसरे उत्तर मीमांसावादी हैं, कुकर्मके वर्जक यजनादिक षट् कर्मके रणहार, ब्रह्मसूत्रके धारक, गृहस्थाश्रममें स्थित,शूद्रका अन्नादिक वर्जते ; तिनकेजी दो नेद हैं, एक नट्ट, दूसरे प्रनाकर, उसमें नट्ट छे प्रमाण ानते है, अरु प्रनाकर पांच प्रमाण मानते हैं, अरु जो उत्तरमीमांस ; है, सो वेदांतिक है, ब्रह्माद्वैतही मानते है, "सर्वमेवेदं ब्रह्मेति नार्पते" स पर प्रमाण देते हैं, कि एकही आत्मा सर्व शरीरोंमें उपलब्ध होता ; ॥ श्लोक ॥ एकएव हि नूतात्मा, नूते नूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा व, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ "पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूत ाव्यमिति वचनात्" ॥ आत्माहीमें लय होना मुक्ति मानते है, और ोइ मुक्ति नही मानते सो, मीमांसक द्विजही नगवत्जिनका नाम है, ो चार प्रकारके हैं, १ कुटीचर, २ बहूदक, ३ हंस, ४ परमहंस. तिन सूं १ त्रिदंमी, सशिखा, ब्रह्मसूत्री. गृहत्यागी, यजमान, परिग्रही, एक ार पुत्रके घरमें नोजन करता हैं, कुटीमें वसता है, तिनकों कुटीचर क ते है. २ तुल्य वेष, पूर्वोक्त विप्रके घरमें नीरस निक्षानोजी, विष्णुजाप र नदीके तीरमें रहता है, तिसकों बहूदक कहते है, ३ ब्रह्मसूत्र शिखा रकें रहित, कषाय वस्त्र, दंमधारी, ग्राममें एक रात्रि अरु नगरमें तीन ात्रि रहता है, धूम रहित जब अग्नि हो जावे, तब ब्राह्मणके घरमें नो न करता है, अरु तप करकें शोषित शरीर, देशोमें फिरता रहता है, तिसकूं हंस कहते है, हंसकूंही जब ज्ञान हो जाता है, तब चारो वर्णोंके रमे नोजन कर लेता है, अपनी इछासें दंम रखता है, ईशानदिशाके स मुख जाता है, जे कर शक्ति हीन हो जावे, तब अनशन ग्रहण करता है, ४ वेदांतिकध्यायी तिसकूं परमहंस कहते है, इन चारोंमेंसूं परःपरो धिक यह चारोंही केवल ब्रह्माद्वैतवाद साधनेमें व्यसनी है, इत्यादिक इस मतका स्वरूप है.

अथ पूर्वमीमांसा वादीयोंका मत विशेष करकें लिखते हैं. जैमिनी मत वाले कहते है, कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, सृष्ट्यादिकका कर्त्ता,इन

पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त कोइनी देव नहीं है, जिस देवका वचन माणिक होवे,प्रथम तो देवही वक्ता कोइ नहीं,जिसका कह्या हूआ प्रमाण होवे, अनुमानं पुरुष सर्वज्ञ नहीं, मनुष्य होनेसें, रथ्या पु

पूर्वपक्षः—किंकर हो कर जिसकी असुर, सुर, सेवा करते है, औ लोकके ऐश्वर्यके सूचक, छत्र चामरादि जिसकी विनूति है, सो सर्वज्ञ ना क्यों कर हो सक्ती है ?

उत्तरपक्षः—यह विनूति तो इंद्रजालीयानी बना सक्ता है, क्योंकि बातका साक्षी जैनमतका समंतनद्र आचार्यजी है॥श्लोक॥ देवा न,चामरादिविनूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते,ध्यतस्त्वमसि नो महान् ॥

पूर्वपक्षः—जैसें अनादि सुवर्णका मल, क्षार मृत्पुटपाकादिकोंकी या विशेषसें शोध्यमान सुवर्णकों सर्वथा निर्मलता हो जाती है, ऐसें त्मानी निरंतर ज्ञानादिकोंके अभ्याससें निर्मल होनेसें सर्वज्ञ पणेका नव क्यों कर न होवे ? किंतु होही जावेगा

उत्तरपक्षः—यह कहनानी तुमारा ठीक नही है, क्योंकि अभ्यास क नेसेंनी शुद्धिकी तारतम्यताही होती है, परंतु परम प्रकर्ष अवस्था नहीं होती है, क्योंकि जो पुरुष चलनेका अभ्यास करे, एतावता कूदनेका, लांक मारनेका, ठाल मारनेका अभ्यास करेगा, वो दश हाथ कूद जावेगा, वीश हाथ कूद जावेगा,परंतु शत योजन कूदनेका अभ्यास कदापि न हो वेगा, सर्व लोककूं कूदके जानेका अभ्यास कदापि न होवेगा,ऐसे आत्मा नी अभ्यास द्वारा सर्वज्ञ नहीं हो सक्ती है.

पूर्वपक्षः—मनुष्यकों सर्वज्ञता मत होवो, परंतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरा दिकोंकों तो सर्वज्ञता होवे, क्योंकि तिनको तो जगत् ईश्वर मानता है इस बातकों कुमारिलनी कहता है. अथापि दिव्य देह होनेसें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनकों सर्वज्ञता होवे, मनुष्यकों सर्वज्ञता क्यों कर होवे ?

उत्तरपक्षः—जो राग द्वेषमें मग्न है, औ निग्रह अनुग्रहमें ग्रस्त है, काम सेवनमें तत्पर है, ऐसे लक्षण वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्यों कर सर्वज्ञ हो सके है ? क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणनी सर्वज्ञका साधक नहीं है, कारणके इंद्रियों वर्तमान वस्तुहीको ग्रहण करती है. अरु अनुमानसेंनी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्व

ही प्रवृत्त हो सक्ता है, अरु आगमभी सर्वज्ञकी सिद्धि करणेवाला कोइ
ही. क्योंकि आगम सर्व विवादास्पद हैं, उपमानभी नहीं, क्योंकि
सरा सर्वज्ञ कोइ होवे, तब उपमान बने, तैसेंही अर्थापत्तिसेंभी सर्वज्ञ
द्ध नहीं होता है, क्योंकि अन्यथा अनुपपद्यमान अैसा कोइ पदार्थ
हीं है, जिसके होनेसें सर्वज्ञ सिद्ध होवे. जब भावग्राहक पांच प्रमाणों
सिद्ध न हूआ, तब सर्वज्ञ अभाव प्रमाणका विषय हूआ, यह अनु
ानभी सर्वज्ञकी नास्ति सिद्धकर्त्ता प्रयोग नहीं है, सर्वज्ञ प्रत्यक्षादि
ोचरके अतिक्रांत होनेसें शशशृंगवत् जब कोइ सर्वज्ञ देव नहीं, अरु उ
सर्वज्ञ देवका कह्या हूआ कोइ शास्त्र नहीं,तब अतींद्रिय अर्थका ज्ञान
सें होवे ? अैसी मनमें आशंका करकें जैमिनी कहता हैकि "तस्मात्"
स कारणसें, "अतीन्द्रिय" इंद्रियोंकी विषय रहित जो आत्मा, धर्माधर्म,
ाल, स्वर्ग, नरक, परमाणु प्रमुख जो पदार्थ है, तिनका साक्षात् करत
ामलकवत् देखने वाला कोइ नहीं. इस हेतुसें नित्य जो वेद वाक्य हैं,
तिनोंहीसें यथार्थ तत्त्वका निश्चय होता है, क्योंकि वेद जो है, सो अपौ
पेय है, एतावता किसीकेभी रचे हूये नहीं. अनादि नित्य है, तिन वेद
चनोसेंही अतींद्रिय पदार्थोंका ज्ञान होता है, परंतु किसी सर्वज्ञके कहे
ये आगमसें नहीं होता है, क्योंकि सर्वज्ञ कोइभी न हुआ है,न वर्त्तमा
में है,न आगें कोइ होवेगा ॥ यथाहुस्ते ॥ अतींद्रियाणामर्थानां, साक्षा
द्रष्टा न विद्यते ॥ वचनेनहि नित्येन, यः पश्यति स पश्यति ॥१॥

प्रश्न.—अपौरुषेय वेदांतका अर्थ कैसें जाना जाये ?

उत्तरः—अव्यवच्छिन्न जो हमारी परंपरा तिससें जाना जाता है,इसी वास्ते
र्वज्ञादिकोंके अभाव होनेसें प्रथम वेदोंहीका पाठ प्रयत्नसें करना चाहियें.
द चार है, १ ऋग्, २ यजुष्,३ साम,४ आथर्व, इन चारोंका पाठ करकें
तिसके पीछें धर्मकी जिज्ञासा करनी चाहियें, धर्म जो है, सो अतींद्रिय
, अरु जो धर्म है, सो कैसा है ? अरु किस प्रमाणसे हम जानेंगे ? अै
ी जो जाननेकी इछा है, तिसका नाम जिज्ञासा है. सो करणी कैसी
? वो जिज्ञासा धर्मसाधनी (धर्मसाधनेका) उपाय है, तब तिस नो
नाके निमित्त दो है, एक जनक, दूसरा ग्राहक, इहां ग्राहक निमित्त जा
ना. इसहीका विशेष स्वरूप कहते है.

प्रेरीयें श्रेय साधक इव्यादिकों विषे जीवोंकों, इस करकें सो वेदवचनकी करी हूइ प्रेरणा है ॥ इत्यर्थः॥ धर्मजो है, सो नोदना करकें नीयें है. इस वास्ते नोदना लक्षणधर्म है, धर्मकों अतींद्रिय होने नोदनाहीसें जानीयें है, और किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाणोसें नहीं जाता है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक विद्यमानके उपलंनक है, अरु धर्म है, सो कर्त्तव्यतारूप है, अरु कर्त्तव्य जो है, सो त्रिकाल स्वनाव है, तिस कर्त्तव्यताका ज्ञान नोदनाही उत्पन्न कर सक्ती है, यह कोंका अन्युपगम है.

अथ नोदनाका व्याख्यान करिये हैं. अग्निहोत्र, सर्व जीवोंकी सा दानादिक क्रिया, इनोके करने वास्ते जो प्रवर्त्तक प्रेरक वेदोंके है, सोइ नोदना है. जैसे "अग्निहोत्रं जुहूयात्स्वर्गकामः" ऐसा तक वेदवचन है, सो नोदना जाननी. "यथा ॥ न हिंस्यात् तथा न वैहिंस्रो नवेत्" इन वचनों करकें प्रेरया हूआ इव्य, गुण कें जो हवनादिक विषे प्रवर्त्त होता है, सो धर्म है, अरु इन वेद करकें प्रेरया हूआनी जो न प्रवर्त्ते, वा विपरीत प्रवर्त्ते, तिसकों अनिष्ट फल होता है. शावर नाष्यमेंनी ऐसेही कहता है.

यह जैमनी षट् प्रमाण मानता है. १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ ४ उपमान, ५ अर्थापत्ति, ६ अनाव, इनका विस्तार षट्दर्शन समुच्चय की टीकासे जानना ॥ इति संक्षेपतो मीमांसमतं ॥ ५ ॥

यह पांच दर्शन आस्तिक कहे जाते है, अरु बठा जैन दर्शन है तिसका स्वरूप अगले परिछेदमें लिखा जायगा,तथा नास्तिक जो है, सो दर्शनमे नही. "नास्तिकं तु नदर्शनमिति राजशेखर सूरिकृत षट्दर्शन समुच्चय वचनात्" तोनी नव्य जीवोके जानने वास्ते कबुक स्वरूप लिखते हैं.

कपाली, नस्म लगाने वाले, योगी, ब्राह्मणादि, अंत्य जातिके लोक, जिनको लोक वाममार्गी कहते है, तथा कौलिक, इत्यादिक नास्तिक है, तिनके मतका नाम नास्तिक चार्वाक कहते है, वो जीव पुण्य पापादिक कुछ नही मानते है, चार नौतिक देह मानते है, तथा सर्व जगतही चार नौतिक मानते है.

अरु कोइ चार्वाकैकदेशीया आकाशको पांचमा नूत मानते हैं, पांच

ात्मक जगत् है, औसें कहते हैं, तिनोके मतमें नूतोंसेंतीही मद्यशक्ति
चैतन्य उत्पन्न होता है, पाणीके बुलबुलेंकी तरें जो शरीर है, सोही
त्र है, इस मत वाले मद्य मांस खाते है, माता, बहिन, वेटी, आदिक
अगम्य है, तिनकोंनी गमन कर लेते हैं, ते नास्तिक वामी, वर्ष वर्ष
ो एक दिनमें सर्व एक जगा एकठे होते है, स्त्रीको नंगी करके उसकी
नेकी पूजा करते है, अरु विषय सेवननी करते है, इत्यादि औसा बु
काम करते है, जो इस पुस्तकमें लिखते मुझकों लज्जा आती है, इस
ते नही लिखा है, सो नास्तिक,कामसें अपर (दूसरा) कोइ धर्म नही मा
है, किंतु कामहीकूं धर्म मानते हैं.

इस मतकी उत्पत्ति जैनमतके शीलतरंगिणी नामक शास्त्रमें औसें लिखी
सो कहते है. एक बृहस्पतिनामा ब्राह्मण था, दूसरा उसका ना
देवव्यासनी था, उसकी एक बहिन थी, वो उसकी बहिन बाल विध
हो गइ थी, उसके सासरोमें औसा कोइ न था, जिनके आश्रयसें वो
ना जीवितव्य संपूर्ण करती, ताते निराधार हो कर, अपनें नाइके घ
आ रही, वो अत्यंतरूप अरु यौवनवंत थी, अरु जो उसका ना
था तिसकी नार्या मृत्युकों प्राप्त हो गइ थी, तब तो बृहस्पतिकों का
अत्यंत पीडा दीनी, तब उनकूं आपनी बहिनके साथ विषय सेवनकी
ा नइ, अपनी बहिनसें प्रार्थना करी कि हे नगिनी! मेरे साथ तुं संनो
कर, तब तिसकी बहिनने कहा कि हे नाई! यह बात उनय लोक वि
है,सो में क्योकर करुं? क्यो कि प्रथम तो मै तेरी बहिन हूं,जे कर
रके साथ विषय नोग करुं तो अवश्यमेव नरकमें जाउंगी,अरु यह वा
जो जगतमें प्रसिद्ध हो जावेगी, तब तो लोक मुझकों धिक्कार देवेगे.
ती बात सुन कर बृहस्पतिने अपने मनमें शोचा कि जब तक इसके म
ा पाप अरु नरकादिकोंका नय दूर न होवेगा, तब तक यह मेरे साथ
नी संनोग न करेगी? औसा विचार करके बृहस्पति सूत्र रचे, तिन सूत्रोंसे
य, पाप, स्वर्ग, नरकका अनाव,सिद्ध करके अपनी बहिनकों शास्त्र सुना
कें प्रतिबोध करा. तब तो तिसकी बहिनने अपने मनमें विचार करा
यह जो शरीर है, सोतो पांच नौतिक है, अरु इस शरीरसे अतिरिक्त
ात्मा नामक कोइ पदार्थ नहीं है, तब तो पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, कु

जनी सिद्ध नहीं होता है, तो फेर मैं इन मूर्ख लोकोंकी लज्जा करके ना यौवन वृथा काहेकों खोऊं? ऐसे विचार करकें अपने जाइके विषयजोग करनेंमें लुब्ध हो गई, जब लोकोंको यह वात जान पडी, लोक निंदा करने लगे, तब तो बृहस्पति निर्लज्ज हो कर लोकोंका स्तिक मतका उपदेश करने लगा, तब तो जो अत्यंत विषयी अरु जन थे, वे उसके शिष्य होते जये, कितनेक काल पीछें उनके अपने मतकों वडा करनेके वास्ते कहते जये कि यह जो हमारा मत सो देवतावोंका गुरु जो बृहस्पति नामक आकाशमें ग्रह है, ...ने करा है, अरु बृहस्पतिसेति अन्य कोइ दूसरा बुद्धिमान् नहीं है, इस स्ते हमारा मत सच्चा है, इस बृहस्पतिका होना हमारे चोवीशमे त कर श्रीमहावीरसें पहिलें सिद्ध है, क्योंकि श्रीमहावीरके कथन करे शास्त्रोंमें चार्वाकमतका निरूपण है. ऐसें चार्वाक मतकी उत्पत्ति है मतका नाम चार्वाक, लोकायितादि है, "चर्व अदने चर्वंति, जक्षयंति तो न मन्यंते पुण्यपापादिकं परोक्षवस्तुजातमिति चार्वाकाः॥ मयाकश्या माकेत्यादि सिद्ध है, मोणादि दंभकेनशब्दनिपातनं. लोका निर्विचार सामान्या लोकास्तद्वदाचरंति स्मेति लोकायिताः लोकायितकाइत्यपि॥ बृह स्पतिप्रणीतमतत्वेन बार्हस्पत्याश्चेति" चर्व जो धातु है. सो जक्षण अर्थ में है, चर्वण (जक्षण) जो करे, तात्पर्यार्थसें जो पुण्य पापादिक परोक्ष वस्तु समूहको न माने, सो चार्वाक, मयाक श्यामाक इत्यादि सिद्ध है, मव्याकरणके उणादिदंभक करकें निपातसे सिद्ध है, तथा लोक निर्विचा है,सामान्य लोकोंकी तरें जो आचरण करते जये है, ते लोकायिता लोक यितका ऐसेंजी है. तथा बृहस्पतिके प्ररूपणेसे इस मतका नाम बार्हस्पत्यजी कहते है.

अथ चार्वाकका मत लिखते है. नास्तिक ऐसें कहते है कि, जीव चे तना लक्षण परलोकमे जानेवाला नहीं, पांच महाजूतसें जो चेतन उत्प न्न होता है, सोजी इहांही जूतोंके नाश होनेसें नाश हो जाता है, जे कर जीव परलोकसे आया होवे, तब परलोकका स्मरण होना चाहियें, परंतु सो तो होता नहीं, इस वास्ते जीव ... आया है, अरु न परलो कमें जाने वाला है. तथा जीव ... देव ... मानीये, त

र्वज्ञादि विशेषण विशिष्ट कोइ देव नहीं, तथा मोक्षभी नहीं, धर्माध
नहीं, पुण्य पाप नहीं, पुण्यपापका जो फल नरक, स्वर्ग, सोभी नहीं,
याच तन्मत ॥श्लोक॥ एतावानेव लोकोयं, यावानिंद्रियगोचरः ॥ भद्रे
पदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुताः ॥१॥ अस्यार्थः—इतनाही मनुष्य लोक है,
ना प्रत्यक्ष देखनेमें आता है. क्योंकि जो पदार्थ इंद्रियोंसें ग्रह्या जाता
सोइ पदार्थ है, और दूसरा कोइभी पदार्थ नहीं है, यहा लोक शब्द
जगें लोकमें जो रहे हूये पदार्थ है, सो ग्रहण करणे. अरु सो इस
सें परे है, जीव, पुण्य, पाप, अरु तिनका फल जो स्वर्ग नरकादिक
अप्रत्यक्ष होनेसें नहीं है. जे कर अप्रत्यक्षभी माने जावे तब तो
शृंग वंध्यापुत्रादिभी होने चाहियें, पंचविध प्रत्यक्ष करके यथाक्रम
मृदु कठोरादि वस्तु २ तिक्त, कटु, कषायादि द्रव्य, ३ सुरभि डरभिरूप
, ४ भू, भूधर, भुवन, भूरुह, स्तंभ, कुंभ, अंभोरुहादि, नर, पशु, श्वा
दि, स्थावर, जंगम प्रमुख पदार्थोंका समूह, ५ विविध, वेणु वीणादि
ी ध्वनि, इन पाचोंके विना और कुछभी नहीं प्रतीत होता है, पांच
ोंसें व्यतिरिक्त नरक स्वर्गके जाने वाला जीव जब प्रत्यक्ष प्रमाणसें न
र भया, तब तो जीवोंके सुखदुःखोंका कारण धर्माधर्म है, अरु तिन
धर्मके उत्कृष्ट फल भोगनेकी भूमि स्वर्ग नरक है, अरु सर्वथा पुण्य
के क्षय होनेसें मोक्ष सुख जो वर्णन करते है, यह सर्व पूर्वोक्त वर्णन
ा है, कि जैसा आकाशमें चित्राम करणां है. क्योंकि जीव नतो किसी
स्पर्शा है, न किसीने खा कर स्वाद चक्खा है, न किसीने सूंघा है, न
ीने देखा है, न किसीने शब्दवत् सुना है, फेर मूढमति किसतरें जीव
मान करके स्वर्गादि सुखोंकी इछा करकें शिर, दाढी, मौछ, मुंमवा करकें
ा प्रकारका डुःकर तप करकें शीत, आतप सह करकें वृथाही इस श
की विडंबना करकें इस मनुष्य जन्मकों खराब कर रहे है? यह उनकी
मझकी विडंबना है॥ तदुक्तं ॥श्लोक॥ तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो भोग
ना ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥१॥ यावज्जीवेत् सुखं
वेत्, तावद्वैषयिकं सुखं ॥ भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुत. ॥ १ ॥
ादि. तिस वास्ते यह सिद्ध हूआकि जो इंद्रियगोचर है, सोइ तात्त्विक है.
अथ जो परोक्ष प्रमाण, अनुमानागमादिकों करके जीव, अरु पुण्य

पापादिकोंकूं व्यवस्थापन करते हैं, अरु कदाचित् स्थापन करतेसें नही है, तिनके प्रतिबोधने वास्तें दृष्टांत कहते हैं " नइ त्रायं संप्रदायः " कोइक पुरुष नास्तिक मत करकें वा पणी नार्याकों आस्तिक मत विषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करकें ऐ शास्त्रोक्त युक्तियों करकें " प्रत्यहं " प्रतिबोध करता है, जब बोध नहीं होती, तब उसने विचारा जो यह इस उपाय करकें होवेगी, औसें स्वचित्तमें चिंतन करकें रात्रिके पीछले प्रहरमे तिस थ नगरसें निकल करकें तिस आपणी नार्याकों कहता हूआ, हे ह जो इस नगरके वसने वाले लोक परोक्ष पदार्थोंकों - दि करकें सिद्ध करते है, अरु लोकमें बहुत शास्त्रोंके पढे हूये अब तूं तिनको चातुर्य देख, औसें कह कर नगरके दरवाजेसें ले क तक सूक्ष्म धूलीमें अपणे हाथो करकें नेडीयेके पंजोंका आकार दीया, तस पीछें प्रातःकालमें ते नेडीयेंके पंजे देख कर बहुत लोक मार्गमें मिलते नये, तब तो बहुश्रुतजी तहां आ गये, सो बहुश्रुत लोक कों कहने लगे कि नो लोको! नेडीयेंके पगोंकी अन्यथा अनुपपत्ति करके निश्चयही कोईक नेडीया रात्रिमें वनसेंती इहां आया था, तब तो वो नास्तिक मती तिनकों तैसें कहते हूआंकों देख करकें निज नार्याकों कह ता हूआ कि हे नद्रे? "वृकपदं" (नेडीयेका पंजा) तूं देख, जिस पंजेको नेडीयेका पंजा अबहुश्रुत कहते है, लोक रूढीसें यह बहुश्रुत कहलाते है, परंतु परमार्थसें महा ढोर है, क्योकि ये परमार्थ तो कुछ जानते नही है, केवल देखा देखी रौला करने लग रहे है, परमार्थसें इनका वच न मानने योग्य नहीं है, औसेंही बहुत मतोंवाले धार्मिक, छद्म (धूर्त, दूसरोंके ठगनेमे तत्पर सो कछुक अनुमान आगमादि करके दृढपणेसें जी वादिकी अस्ति सिद्ध करकें वृथाही नोले लोकोंको स्वर्गादि सुखोंका लोभ दिखा कर नक्ष्याभक्ष्य, गम्यागम्य, हेयोपादेयादि, संकटोमे गेरते हैं, बहु त मूर्खोंकों धार्मिक पणेका व्यामोह उत्पन्न करते हैं, इस वास्तें बुद्धि मानोंकों उनका वचन मानना न चाहियें. तब तो तिसकी नार्या अपने पतिके सर्व वचन मानती नई, तिसके पीछें तिसका पति जो अपनी ना र्याकूं उपदेश देता नया, सो इहा लिखते हैं.

॥ श्लोक ॥ पिब खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि
रु गत निवर्त्तते, समुदायमात्र मिदं कलेवरं ॥ १ ॥ व्याख्या—हे चारुलो
ने ! शोभन (सुंदर) आंखवाली " पिब " पी, तूं पेयापेयकी व्यवस्था
ड कर मदिरापान कर. न केवल मदिराही पी, "खाद च" भक्ष्याभक्ष्यकी
रपेक्षा करके मांसादिक खा, तथा गम्यागम्यका विभाग त्याग कर भोगों
ं भोग कर अपना यौवन सफल कर, जो कुछ यौवनादि अतिक्रांत, (व्य
त) हो गया है! हे वरगात्रि! हे प्रधानांगि ! फेर वो तुजकों न मिलेगा,
ति काम राग जनावनेके वास्ते बहुत संबोधन पद कहे हैं. इस वास्ते
नरुक्ति दोष नहीं है. किसीकी आशंका मनमें ला कर बृहस्पति मत वा
ा कहता है, कि अपनी इछा करकें जो खान, पान, भोग, विलास
रेगा, उसकूं परलोकमें कष्ट परंपरा पावणी बहुत सुलभ है, औ जो
ृकृत करेगे, उनकों भवांतरमें सुख यौवनादिक पावनां सुलभ है, ऐसी
रकी आशंका दूर करने वास्ते बृहस्पति कहता है. नहीं हे भीरु ! प
के कहने मात्र करकें नरकादि दुःखोंकी प्राप्ति, इस लोकके यौवनादिको
ं निवर्त्त होनां, एतावता इस लोकमें विषयभोग करकें यौवनका सुख
ो नहीं लेनां, अरु परलोकमें हमकों यौवनादिक फेर मिलेगा. ऐसे पर
ोकके सुखोंकी इछा करकें तपश्चरणादि कष्ट क्रिया करके जो इस लोक
ं सुखोंकी उपेक्षा करनी है, सो महा मूढताका चिन्ह है.

अथ शुभाशुभ कर्मके वश करके इस जीवने अवश्य परलोकमेंभी स्व
र्मे हेतुक सुख दुःखादि वेदना होवेगी, ऐसी आशंका मनमे ला करके बृह
पति कहता है कि "समुदायमात्रं" समुदायभूत चारोंका संयोग मात्रही
ह " कलेवरं " (शरीर है,) परंतु चारों भूतोंके सयोग मात्रसे अपर दूसरा
भवांतरमे जानेवाला, शुभाशुभ कर्मविपाकका भोगने वाला, ऐसा जीव ना
मक कोइभी पदार्थ नहीं, अरु चारों भूतका जो सयोग है, सो विजलीके
उद्योतकी तरें क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है, इस वास्ते परलोकका भय
मत कर. हे हरिणाक्षि! जैसे मन माने, ऐसा खा, पी. भोग विलास कर.

अथ प्रमेय प्रमाण दोनो कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्वी जल तथा ते
जो, वायुर्भूतचतुष्टयं ॥ आधारो भूमिरेतेषा, मानं त्वक्षजमेव हि ॥ १ ॥
अर्थः—१ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, यह चारभूत है, अरु इन

चारोंकी आधार पृथ्वी है, अरु किसी जगें ऐसा पाठ है कि " ... तेषां " इन चारोंकों चैतन्यभूमि कहते हैं, यह चारों एकठे होके चैतन्य उत्पन्न करते हैं. तथा इन चार्वाकोंके मतमें यह चारों भूत भूमिका प्रमाणका विषय तात्त्विक है, अरु इन चार्वाकोंके मतमें, तो एक प्रत्यक्षही है.

अथ भूतचतुष्टयसें देहकों चेतनता क्यों कर हो जाती है? आशंका करकें कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्व्यादिभूतसंहत्या, तथा परीणतेः ॥ मदशक्तिः सुरांगेभ्यो, यद्वत्तद्वच्चिदात्मनि ॥ १ ॥ अर्थः- "पृथिव्यादीनि" पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तिनकी जो "संहतिः" तिस करके जो देहकी परिणाम, तिसते जैसें मदिराके अंगोसें (गुड की आदिकोंसें) उन्माद शक्ति उत्पन्न होती है, ऐसेंही इस देहमें शक्ति उत्पन्न होती है, परतु देहसें अन्य जीव पदार्थ नहीं होते, आदि शब्दसें पर्वतादि सर्व पदार्थ चार भूतोंसेंही उत्पन्न है, इस वास्ते दृष्ट सुखोंका त्याग न करनां अरु अदृष्ट सुखोंमें प्रवृत्त होनां, यह तो लोकोंकी वडी मूर्खता है, अरु जो शांतिरसमे मग्न हो कर मोक्ष सुखका वर्णन करते हैं, वेभी महा मूढ है. क्योंकि काम (मैथुन) सेवनसे अधिक न कोइ धर्म है, अरु न कोइ मोक्ष है, न कोइ सुख है ॥ इति चार्वाकमत संक्षेपतः संपूर्ण ॥

यह जो उपर मत लिखे है, इनके जो उपदेशक है, वे सर्व कुगुरु है, क्योंकि जो इनोंके मत है, वे युक्तिप्रमाणसें खंडित हो जाते है अरु पूर्वापर व्याहत है, पूर्वापर विरोधी है.

पूर्वपक्ष.—अहो जैन! अरिहंतके कहे हूये तत्त्वका तुमको वडा राग है, इस करकें तुम अपने मतको तो निर्दोष ठहराते हो, अरु हमारे मतोंको पूर्वापर विरोधी कहते हो, परंतु हमारे मतोंमें कुछभी पूर्वापर व्याहतपणां नही है, क्योंकि हमारे जो मत हैं, सो निर्दोष हैं, उनको जो पूर्वापर व्याहत (कलंक) देना है, सो ऐसा है कि जैसा अमृतके पुंजमे मक्षीका विड गेर देना.

उत्तरपक्षः—हे वादीयो! तुम अपने अपने मतका पक्षपात छोड कर मध्यस्थपणेको अवलंबन करकें अरु निरभिमान हो करकें सुंदर बुद्धिसें

ार करकें सुनो. में तुमारे मतोमें पूर्वापर व्याहत पणा दिखलाता हूं.
थम बौद्धमें पूर्वापर विरोध उद्भावन करते हैं.

प्रथम तो बौद्ध मतमें सर्व पदार्थ क्षणभंगुर कह करकें पीछेसें ऐसें हा है. "नाननुकृतान्वयव्यतिरेकं कारणं नाकारणं विषय इति" अस्याय ार्थः—ज्ञान अर्थके होते हूयाही उत्पन्न होता है,परंतु अर्थके बिना नहिं ोता है. ऐसें अनुकृत अन्वयव्यतिरेक अर्थज्ञानका है अरु कारण जिस की अर्थज्ञान उत्पन्न होता है, तिस कारणहीकों विषय करता है. स कहनेसें अर्थकों दो क्षण स्थिति वाला कहा ॥ तद्यथा ॥ अर्थरूप ारणसे ज्ञान कार्य उत्पन्न होता है, अरु एकही समयमें कारण, कार्य, त्पन्न नही होते है, तब तो ज्ञान अपने जनक अर्थहीकों ग्रहण रता है. "नापरं नाकारणं विषय इति वचनात्" ॥ जब ऐसें हूआ ब तो अर्थकों दो समयकी स्थिति जोरा जोरी हो गइ. अरु बौद्ध मतमें ो समय स्थिति वाला कोइ पदार्थ नहीं, एक तो यह पूर्वापर विरोध है.

तथा "नाकारणं विषय इत्युक्तं" जो पदार्थ ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है, उस पदार्थकों ज्ञान विषयभी नही करता है, ऐसें कह कर फेर योगी प्रत्यक्ष ज्ञानकों अतीत अनागत पदार्थोका जानने वाला कहा है, अरु अतीत पदार्थ तो नष्ट हो गये है, तथा अनागत पदार्थ उत्पन्न नही हूये हैं, इस वास्ते अतीत अनागत पदार्थ ज्ञानके कारण नहीं हो सके है, तब अकारणकों योगी प्रत्यक्षका विषय कहना. यह दूसरा पूर्वापर विरोध है.

ऐसेही साध्य साधनोंकी व्याप्ति औ ग्राहक व्याप्ति ग्रहण करानें वालेकूं कारण पणेके अभावसें त्रिकालगत अर्थकों विषय कहने वालेकों क्यों नही पूर्वापर व्याघात होवेगा? क्योंकि कारणहीकों प्रमाणका विषय मान्या है. इस वास्ते तीसरा पूर्वापर विरोध है.

तथा क्षण क्षय अंगीकार करणेमें जिनका काल भिन्न भिन्न है, ऐसे जो अन्वयव्यतिरेक तिनकी प्रतिपत्ति नही संभव होती है, तब तो साध्य साधनोंके त्रिकाल विषय व्याप्ति ग्रहण मानने वालेकों पूर्वापर व्याहति क्यो नही? यह चोथा पूर्वापर विरोध है.

तथा सर्व पदार्थोंकों क्षणक्षयी मान करकें पीछेसें बुद्धने ऐसें कहा

है ॥ श्लोक ॥ इतएकनवते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषोहतः ॥ तेन पाकेन, पादे विद्धोस्मि भिक्षवः ॥ १ ॥ इस श्लोकमें जन्मांतरविषेमें का प्रयोग क्षण क्षय विरुद्ध बोलता हूआ बुद्ध, क्यों कर पूर्वापर वि॰ न कहनां चाहियें ? यह पांचमा पूर्वापर विरोध है.

तथा "निरंश सर्व वस्तु है" असें प्रथम कह कर फेर " हिंसा. दान चित्तस्वसंवेदनं अरु स्वगतं सद्व्यचेतनत्व स्वर्गप्रापण शक्त्यादिकं तदपि स्वर्गप्रापण शक्त्यादेरशस्येति सांशता पश्चाद्वदतः सौगतस्य पूर्वापरविरुद्धं वचो न स्यात् ॥" यह छठा विरोध है.

असेही निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रमाण नीलादिक वस्तुओंकों सर्व करकें ग्रहण करता हूआभी नीलादिक अंश विषे निर्णय उत्पन्न है, परंतु नीलादि अर्थगत क्षणक्षय अंशविषय निर्णय नही उत्पन्न ता है, असें सांशताकों कहता हूआं सौगतको पूर्वापर बचन विरोध बोधही है. यह सातमा विरोध है.

तथा हेतुकों तीन रूप वाला मानता है, अरु संशयकों दो उल्लेख वाला मानता है, अरु कहता है फेर सांश वस्तुको नही मानता है, यह भी आठमा पूर्वापर विरोध है.

तथा परस्पर अनमिले हुये परमाणु निकटता संबंध वाले एकठे हो कर घटादि रूपपणे प्रतिभास होते हैं, परंतु आपसमे अंगांगीभाव रूप करके कोइभी कार्य नही आरंभ करते, यह बौद्धोंका मत है, तिसमें यह दूषण है कि आपसमें परमाणुओंके अनमिलनेसें घटका एक देश जब हम हाथसे पकडेंगे, तब संपूर्ण घटको नही रहनां चाहियें, तथा घटके उठानेसेंभी एक देशही घटका उठना चाहियें, परतु संपूर्ण घट नहीं उठना चाहियें, तथा जब घटकों कांठ पकडके हम खेंचेगे तबभी घटका एक देशही हमारे पास आना चाहियें, परंतु संपूर्ण घट नहीं, अरु जलादि धारण रूप घटका अर्थ क्रियालक्षण सत्व अंगीकार करणे करके सौगतोंने परमाणुओंका मिलना मान्या है, अरु तिनके मतमें परमाणुओंका मिलना है नही, तिस वास्ते यह नवमा पूर्वापर विरोध है. इत्यादि बौद्ध मतमें अनेक पूर्वापर विरोध है.

अथ बौद्धमतका खंडनभी थोडासा लिखते है. इन बौद्धोंका यह

ंत है कि सर्व पदार्थ नैरात्म्य है, एतावता आत्मस्वरूप आपणे स्वरू करकें सदा स्थिर रहनेवाले नही है, असी जो भावना, तिसका नाम नैरात्म्य भावना है, यह जो नैरात्म्य भावना है, सो रागादि क्लेशोंके ना श करने वाली है, तथाहि जब नैरात्म्य भावना होवेगी, तब अपणे आ त्मा विषे तथा पुत्र, भाइ, भार्या, आदिकोंविषेभी आत्मीय अभिनिवेश नही होवेगा, एतावता 'यह मेरे हैं' असा मोह न होवेगा, क्योंकि जो आ त्म उपकारी है, सो आत्मीय है, अरु जो आपणा प्रतिघातक है, सो द्वे ष है, जब आत्माही नही है, किंतु पूर्वापर क्षण टूटे हूयाका अनुसंधान है, पूर्व पूर्व हेतु करकें जो प्रतिबद्ध हैं ज्ञानक्षण, सोइही तैसें तैसें उत्प न्न होते है, तब कौन किसीका उपकर्त्ता अरु उपघातक है? क्योंकि क्ष णोंकों क्षण मात्र रहने करकें परमार्थसें उपकार अनुपकार नही कर स के हैं, इस वास्ते तत्त्ववेदीयोंकों अपने पुत्रादिकोंमें आत्मीय अभिनिवे श नही है. अरु वैरीयों विषे द्वेष नही है, अरु जो लोकोकों अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मीय अभिनिवेश है, सो अतत्त्व मूल होनेसे अनादि वास नाके परिपाकने करा है, असें जाननां.

प्रश्नः—यदि परमार्थसें उपकार्युपकारक भाव नही, तब तो असें तुम कैसें कहते हो कि भगवान् सुगत, करुणा करकें सकल जीवोंके उपकार वास्ते देशना करता हूआ? अरु क्षणिक पणाभी जे कर एकांतही है, त ब तो तत्त्ववेदी एक क्षण पीछें नष्ट हो गया, अरु तत्त्ववेदी जान ता था जो मै पीछें नहीं था अरु आगेंको मैने होना नही, तो फेर काहे कों मोक्ष वास्ते यत्न करे?

उत्तरः—जो तुमने कहा, सो हमारा अभिप्राय न जाननेसे अयुक्त है भगवान् जो है, सो प्राचीन अवस्था विषे अवस्थित है, अरु सकल जग तुको राग द्वेषादि दुखों करके संकुल जानता थका कैसे यह सकल जग तुका दुःख मेरेको दूर करणां योग्य है? असी दया उत्पन्न होनेमें नैरा त्म्य क्षणिकत्वादिक जानता हूआभी तिन उपकार्य जीवोंके निःक्लेश क्षण उत्पन्न करनेके वास्ते स्वप्रजा हित राजेकी तरे अपणी संतति बुद्धि विषे सकल जगत् साक्षात् करण समर्थ अपणी संततिगत विशिष्ट क्षणकी उत्पत्तिके वास्ते यत्न आरंभ करता है. क्योंकि सकल जगत् साक्षात्कार

करे विना सर्वकों अक्षण विधान उपकार करणेंकों अशक्य होनेसें वास्ते समुत्पन्न केवल ज्ञान पूर्वस्थापन कृपाके विशेष ... गवान् कृतार्थभी है, तोभी देशना देवेमें प्रवृत्त होता है, तब तो दे... न करके निर्मल बुद्धि नैरात्म्य तत्त्व विचारता हूआ जीवकों भावना विशेषसें वैराग्य उत्पन्न होता है, तिससेंही मुक्तिलाभ होता है, जो आत्माकों मानता है, तिसकों मुक्तिका संभव नहीं, क्योंकि सेंती आत्माके होते हूयां तिस आत्मामें स्नेह वर्त्तेगा, तिस स्नेहके सें तिस आत्माके सुखी होनेकी तृष्णा वाला होता है, अरु ... शसें सुखोंके साधना विषे प्रवृत्त होता है, जब गुण उत्पन्न हूये, गुणोमें राग करता है, तिस रागसें यावत्काल आत्माभिनिवेश रहे तावत् काल संसार है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ ये पश्यत्यात्मानं,तत्रास्याह ति शाश्वतः स्नेहः ॥ स्नेहात्सुखेषु तृष्यति, तृष्णा दोषास्तिरस्कुरुते ॥१॥ णदर्शिपरितृष्यन्, ममेति तत्साधनान्युपादत्ते ॥ तेनात्माभिनिवेशो, याव त्तत्संसारः ॥ २ ॥ इति बौद्धमत पूर्वपक्ष ॥

अथ जैनमतकी तरफसें उत्तरपक्षः—यह सर्व कहना तुमारा अंत णमें वास करणेवाले महा मोहका मोटा विलास है, क्योंकि आत्माके भाव हूये बंध मोक्षादिकोंका एकाधिकरणत्व नहीं होवेगा, सोइ दिखाते

हे बौद्धो! तुम आत्मा नहीं मानते हो, किंतु पूर्वापर क्षण टूट अनुसंधान ज्ञान क्षणाहीको मानते हो, जब असे माना,तब अन्यको हूआ, अरु अन्यकों मुक्ति हुई,औ क्षुधा औरकों लगी, अरु तृप्ति अ हो गइ, तैसेही अनुभवता और हूआ, अरु स्मर्त्ता और हो गया, दु औरने लीया, अरु रागीरोग रहित तो और हो गया, तपः क्लेश तो अ करा, अरु स्वर्गादिकका फल औरने भोगा, औ पढनेका अभ्यास और लगा, अरु और कोई पढ गया, यह बात अतिप्रसंग होनेसें कोइ युक्ति त नहीं है, जे कर कहोगे कि संतानकी अपेक्षा करके बंध मोक्षादिक एक अधिकरण हो सक्ता है, सोभी ठीक नहीं, क्योंकि संतानभी तुमारे में नहीं हो सक्ता है, संतान जो है सो संतानीसें भिन्न है? वा अभिन्न जे कर कहोगेकि भिन्न है, तब तो फेर दो विकल्प तुमारी भेट करते हैं संतान नित्य है? वा अनित्य है? जे कर कहोगेकि नित्य है,तब तो ति

धमोक्षादिकका संभव नहीं है, क्योंकि सर्वकाल एक स्वभाव होने कर तिसके अवस्था विचित्र नहीं हो सक्ती है, अरु तुम तो नित्य मानते नही हो, "सर्वं क्षणिकमिति वचनात्" अथ जे कर कहोगे कि क्षणिक है, तब तो वोही प्राचीन बंध मोक्षादि वैय्यधिकरण दूषण प्राप्त हूआ,जे कर कहोगे कि अभिन्न है, तब तो तिससें अभिन्न होनेसें तिसके स्वरूपकी तरें संतानीही हूआ, संतान नहीं भई. जब ऐसें हूआ, तब तो तदवस्थही पूर्वला दूषण है, जे कर कहोगे कि क्षणासेंति अन्य संतान कोइ नहीं. किंतु जो कार्य कारण भाव प्रबंध करकें क्षण भाव है, सोइ संतान है, तिस वास्ते दोष कोइ नहीं है, यहभी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि तुमारे मतमें कार्य कारण भावभी नहीं घटता है, सोइ दिखाते है, कि प्रतीत्य समुत्पादमात्र कार्य कारण भाव है, तिसमें यथाविवक्षित घट क्षणानंतर घट क्षण है, तैसें पटादि क्षणभी है, अरु जैसें घट क्षणसें पहिला अनंतर विवक्षित घटक्षण है, तैसें पटादि क्षणभी है, तब तो कैसें प्रतिनियत कार्य कारण भावका अवगम होवे ?

एक औरभी दूषण है, सो यह है कि.—कारणसेंती उत्पन्न होता हूआ जो कार्य, सो सत् उत्पन्न होता है ? वा असत् उत्पन्न होता है ? जे कर कहोगेकि सत् उत्पन्न होता है, तब तो कार्योत्पत्ति कालमेंभी कारण सत् हूआ, अरु तब कार्य कारणकों समकालताका प्रसंग हूआ, अरु एक कालमें दो पदार्थोंका कार्य कारण भाव मान्या नहीं है,अन्यथा माता पुत्रका व्यवहार न होवेगा, घट पटादिकोकाभी परस्पर कार्य कारण भावका प्रसंग हो जावेगा. जे कर असत् पक्ष मानोगे, तो सोभी अयुक्त है, क्योंकि जो असत् है, सो कार्य नहीं हो सक्ता है, अन्यथा खरशृंगसेंतीभी कार्य उत्पन्न होना चाहियें, अरु अत्यंताभाव, प्रध्वसाभाव. दोनोंही जगे वस्तुसत्ताका संभव होनेसें इन दोनोका कोइभी विशेष न हूआ, जे कर कहोगेकि प्रध्वंसाभावमें वस्तु थी, इस करके हेतु है, तब तो जब थी तब हेतु नहीं, अन्यदा हेतु हुआ; ऐसे तो बहुत अच्छी तत्त्वव्यवस्था भइ.

एक औरभी बात है, कि तद्भावे भाव ऐसे अवगममें कार्य कारण भावका अवगम है, सो जो तद्भावे भाव है, सो क्या प्रत्यक्ष करकें प्रतीत होता है ? वा अनुमान करके प्रतीत होता है ? प्रत्यक्ष करकें तो

नहीं, क्योंकि पूर्व वस्तुगत प्रत्यक्ष करकें पूर्ववस्तु परिछिन्न हुइ, अरु वस्तुगत करके उत्तर वस्तु हुइ, अरु ये दोनो परस्पर स्वरूपकों नहीं, अरु इन दोनोंका अनुसंधान करने वाला ऐसा तीसरा एक कोइ मानते नहीं है, तिस वास्ते इसके अनंतर इसका भाव है, ऐसें स तरें अवगम होवे? सो तो तिसकूंभी प्रत्यक्षपूर्वक होनेसें अनुमान केंभी नहीं होवे, अरु अनुमान जो है, सो लिंग लिंगी संबंध ग्रह प्रवृत्त होता है, अरु लिंग लिंगीका संबंध तो प्रत्यक्ष करके ग्राह्य है. कर अनुमानसें संबंध ग्रहण करिये, तब अनवस्थादूषण आता है. कार्य कारण भाव विषे प्रत्यक्ष प्रवृत्त होता नहीं, तिस वास्ते भी प्रवृत्ति नहीं. ऐसेंही ज्ञानके दोनो क्षणोंकोंभी परस्पर कार्य भावका अवगमभी निषेध हुआ जाननां तहांभी स्वसंवेदन करके अपणे रूपके ग्रहणेमें परस्पर स्वरूप अनवधारणसें तदनंतरमै उत्पन्न आ हूं, अरु इसका मै जनक हू, ऐसी अवगतिके न होनेसें तुमारे कार्यकारण भाव नही है. अरु तिसका अवगमभी नहीं है, तिसतें मूर्ख ही यह तुमारा कहनां है कि एक संतति पतित होनेसे बंध मोक्षका एक विकरण है, इस कहने करके जो कहते है कि उपादेयोपादान परस्पर वास्यवासक भाव होनेसें, उत्तरोत्तर विशिष्ट विशिष्टतर क्षणो त्पत्तिसें मुक्तिका संभव है. सोभी उपादानोपादेय भावका उक्तरीतिमें अनुपपद्यमान होनेसे प्रतिक्षिप्त जानना, अरु जो वास्यवासक भाव कह्या है, सोभी तिल फूलोकी तरें एक कालमें दोनो होवे तब हो सक्ता है, " उक्तंचान्यैरपि ॥ अवस्थिताहि वास्यते, भावाभावैरवस्थितै " तब कैसें उपादेयोपादान क्षण दोनोंकों परस्पर असाहित्य होनेसें वास्यवासक भाव होवे? उक्तं च ॥ श्लोक ॥ वास्यवासकयोश्चैव, मसाहि त्यान्न वासता ॥ पूर्वक्षणैरनुत्पन्नो, वास्यते नोत्तरः क्षण ॥ १ ॥ उत्तरे ण विनष्टत्वान्न च पूर्वस्य वासना ॥ इति ॥

एक औरभी बात है, कि वासना वासकसें भिन्न है? वा अभिन्न है? जे कर कहोगे कि भिन्न है, तब तो तिस वासना करके शून्य होनेसें अन्यकों वस्त्वंतरवत् कदापि वासित न करेगी, जे कर कहोगे कि अभिन्न है, तब तो वास्यक्षणमें वासनाका संक्रम कदापि नहीं होवे, ऐसें तिसके स्वरूपकी

रै तिससें अभिन्न होनेसें वासककीभी संक्रांति है, जे कर कहोगे कि सं
ंति है, तब अन्वयका प्रसंग होवेगा, इस वास्ते तुमारा कहनां किसी
ामका नही है, अरु जो तुमनें कह्या था कि सकलही जगत् राग द्वेषा
ि दुःख संकुल जानता हुवा सकल जगत्कों दुःखोंसें कैसें में उद्धार क
? इत्यादि. सोभी पूर्वापर असंबंध है, क्योंकि तुमारे मत क्षणही पूर्वाप
टूटे हूये परमार्थसें सत् है, अरु क्षणोंके रहनेका कालमान एक पर
ाणुके व्यतिक्रम मात्र है, इस वास्ते उत्पत्तिसें व्यतिरिक्त तिनकी कोइ
िया नहीं उपपद्यमान होती, "भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव वोच्य
॥ इति वचनात्" तिसतें ज्ञान क्षणोंकों उत्पत्ति अनंतर न गमन है,
अवस्थान है. न पूर्वापर क्षणोसेंभी अनुगम है, तिस वास्ते तिनोंकूं
रस्पर स्वरूपावधारण नही. अरु न कोइ उत्पत्ति अनंतर व्यापार है, त
कैसें मेरे सन्मुख यह अर्थ साक्षात् प्रतिभासता है? इस प्रकारसें अ
र्थके निश्चयमात्र करणेमेंभी अनेक क्षणोंका संभव है, अनुस्यूत हो कर
उत्पन्न होते है, अरु तिस अनुस्यूतके अभावसें कहांसें सकल जगत् राग द्वे
षादिक दुःख संकुलता करकें विचारणां है? अरु कहांसें दीर्घतर कालके अ
नुसंधान करके शास्त्रार्थका चिंतन है? जिसके प्रभावसें सम्यक् उपाय जा
न करके दया विशेषसें मोक्षके वास्ते घटना होवे?

पूर्वपक्षः–यह जो सर्व व्यवहार है, सो ज्ञान क्षणोंकी संततिकी अपे
क्षा करके है, फेर तुम क्यों इस पक्षमें दूषण देते हो?

उत्तरपक्षः–"सुकुमारप्रज्ञोदेवानां प्रियः सदैव सप्त घटिका मध्यमिष्टान्न
भोजन मनोज्ञाशयनीय शयनाभ्यासेन सुखेधितो" परंतु वस्तुके यथार्थ त
त्त्व विचारनेसें तेरी बुद्धि क्लेशित नही हुइ है, तिस करकें हमारा कह्या
तेरी समझमें नही आता है, क्योंकि ज्ञान क्षण संततिविषेभी वोही दू
षण है, जो हमने उपर कह्या है, सोइ दिखातें है, कि वैकल्पिक, अरु
अवैकल्पिक, जो ज्ञान क्षण है, सो परस्पर अनुगमके अभावसे परस्पर
स्वरूप नही जानते, अरु क्षणमात्रसे उपरांत रहते नहीं, तब तो कैसें
पूर्वापर अनुसंधान रूप दीर्घकालिक सकल जगत् दुःखिताका विचार शा
स्त्र विचारण रूप यह व्यवहार होवे? आखों मीच करकें विचारो तो स
ही? इत्यादि बौद्धमतका खंडन, नंदीसिद्धांत, तथा सम्मतितर्क, द्वादशा

र- नयचक्र, अनेकांत जयपताका, स्याद्वादरत्नाकर, स्या... तारिका प्रमुख अनेक शास्त्रोमें अछी तरें कीया है, सो देख इति वौद्ध मत खंमनं ॥ १ ॥

१ अथ द्वितीय नैयायिक मतमें पूर्वापर व्याहतपणां लिखते हैं, कि योगसें सत्त्व है. ऐसें कह कर सामान्य विशेष समवाय इन पदार्थोंके योगसे विनाही सत् कहतेकों क्यों नहीं पूर्वापर व्याहत वचन ...

२ ज्ञान आपणे आपकों नहीं जानता, आपणे आप विषे विरोध है, इस वास्ते ऐसें कह करकें फेर कहिते हैं कि ईश्वरका जो है, सो आपणे आपकों जानता है, अरु स्वात्माविषे क्रियाका विरो... नते नहीं है, तो फेर क्योंकर स्ववचन विरोध न हूआ?

३ अरु दीपक जो है, सो अपणे आपको आपही प्रकाश करता है, अ... जगे स्वात्म विषे क्रिया विरोध मानते नहीं, यह पूर्वापर वचन व्याह...

४ दूसरोंके ठगने वास्ते छल, जाति, निग्रह, स्थान, इनको त... पणे करके उपदेश करते हुवा अक्षपाद ऋषिका वैराग्य वर्णन ऐसा है कि जैसा अंधकारकों प्रकाशवाला कहना यह क्यों कर... पर व्याहत नहीं है?

५ आकाशको निरवयवी स्वीकार करकें फेर तिसका गुण शब्द सो एक देशमें सुणाइ देता है, सर्वत्र नहीं. तव तो आकाशको सांश गइ. यह पूर्वापर व्याहत पणा है.

६ सत्तायोगसे सत्त्वं अरु योग जो है सो सर्व वस्तुवोंके सांशत... हीसें होता है, अरु सामान्यकों निरंश एक मानते है, तब कैसें पू... व्याहत वचन न होवे?

७ समवाय, नित्य एकस्वनाव मानते हैं, अरु सर्व समवायी पद... साथ संबंध नैयत्य करके होता हूआ समवाय, अनेक स्वनाव वा... गया. तव तो पूर्वापर विरोध हो गया.

८ "अर्थवत्प्रमाणं" अर्थ सहकारी है, जिसका सो अर्थवत् प्रमा... ह कह करके फेर योगी प्रत्यक्षकों अतीताद्यर्थ विषय कहतेकों क्यों पूर्वापर विरोध है? क्योंकि अतीतादिक जो है, सो विनष्ट अनुत्पन्न से सहकारी नहीं हो सके है.

९ तथा स्मृतिगृहीतग्राही होने करके प्रमाण नहीं मानते है, "अनर्थ यत्वेन" विना अर्थके होने करके अरु गृहीतग्राही होनेसें प्रमाण नही, ८ धारावाही ज्ञानभी गृहीतग्राही है, तिनकोंभी अप्रमाणता होनी चा यें, परंतु धारावाही ज्ञानकों नैयायिक औ वैशेषिक प्रमाण मानते हैं, ५ अनर्थजन्य होने करकें स्मृतिकों जब अप्रमाण मान्या, तब अती नागत अनुमानभी अनर्थजन्य होने करकें प्रमाण न हूआ, अरु अनुमा कों शब्दकी तरे त्रिकाल विषयक मानते हैं, क्योंकि धूम करकें वर्त्तमान ग्नि अनुमेय है, अरु मेघोन्नति करकें भविष्यत् वृष्टि, अरु नदीका पूर वे नेंसें अतीत वृष्टिका अनुमान, यह दोनोही अनर्थ जन्य हैं, तो फेर धा ाही ज्ञान, अरु अनर्थ जन्य अनुमान, इन दोनाको तो प्रमाण माननां रु स्मृतिकों अप्रमाण नहीं माननां. यह पूर्वापर विरोध है.

१० ईश्वरका सर्वार्थ विषय प्रत्यक्ष जो है, सो इंड्रियार्थ सन्निकर्ष नि ाक्ष मानते हो? वा इंड्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हो? जे कर कहोगे ; इड्रियार्थ सन्निकर्ष निरपेक्ष मानते हैं,तब तो "इड्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ानमव्यपदेश्यमित्यत्र सूत्रे" सन्निकर्षोपादान निरर्थक होवेगा, क्योंकि ईश्वर त्यक्ष ज्ञान सन्निकर्षके विनाभी हो सक्ता है, जे कर कहोगे कि ईश्वर त्यक्ष इंड्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हैं, तब तो ईश्वरके मनकों अणु ात्र प्रमाण होनेसे युगपत् सर्व पदार्थोंके साथ संयोग न होवेगा? तब ो ईश्वर जब एक पदार्थकों जानेगा, तब दूसरे पदार्थ होते हूयांकोंभी न ा जानेगा तब तो हमारेकी तरे तिस ईश्वरकों कदापि सर्वज्ञता न होवे ी, क्योंकि सर्व पदार्थोंके साथ युगपत् सन्निकर्ष नहीं हो सक्ता है, जे र कहोगे कि सर्व पदार्थोंको क्रम करके जाननेंसें सर्वज्ञ है, तब तो ब ुत काल करके सर्व पदार्थोंके देखने करकें ईश्वरकी तरें हमकूंभी सर्वज्ञ हनां चाहिये. एक औरभी बात है कि अतीत, अनागत जो पदार्थ है, ो विनष्ट अनुत्पन्न होनेसें मनके साथ सन्निकर्ष नहीं हो सक्ता है, हो ेही पदार्थोंका संयोग होनेसे, अरु अतीत अनागत तो तिस अवसरमे ोनो असत् है, तब किस तरे महेश्वरका ज्ञान अतीत अनागत अर्थका ाहक होवे? अरु तुम तो ईश्वरका ज्ञान सर्वार्थका ग्राहक मानते होत.

व तो पूर्वापर विरोध सहजहीमें हो गया, ऐसेंही योगीयोंकोंनी ग्राहक ज्ञानका डुर्धर विरोध जान लेना.

११ कार्य द्रव्यके प्रथम उत्पन्न होनेसें तिसका जो रूप है,सो उत्पन्न होता है, विना आश्रयके गुण क्योंकर उत्पन्न होवे? यह करकें पीछेसें यह कहते हैकि कार्य द्रव्यके विनाश हूये पीछें ति... नष्ट होता है, यह पूर्वापर विरोध है, क्योंकि जब कार्यद्रव्य ... या, तब रूप आश्रय विना पीछें क्यो कर रह सकेगा?

१२ नैयायिक औ वैशेषिक जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हैं. तनी एक महामूढताका चिन्ह है, क्योंकि जगत्का कर्त्ता ईश्वर प्रमाणसें सिद्ध नही हो सक्ता है, यह जगत् कर्त्ताका खंमन दूसरे दमें अछी तरें विस्तार पूर्वक लिख आये है, तोनी नव्य जीवोंके वास्ते थोडासा इहानी लिख देते है.

कोइक कहते है कि साधुवोंके उपकार वास्ते अरु डुष्टोंके संहार ईश्वर युग युगमें अवतार लेता है, अरु सुगतादिक कितनेक यह बात ते है कि मोक्षकों प्राप्त हो करके अपने तीर्थकों क्लेशमे देख कर ... वान् अवतार लेता है,"यदाहु रन्ये ॥ ज्ञानिनोधर्मतीर्थस्य,कर्त्तारः परम... गत्वा गछंति नूयोपि, नवंतीर्थनिकारत इति ॥ १ ॥" जो फिर सं... अवतार लेता है, वो परमार्थसें मोक्षरूप नही हूआ है, क्योंकि ... सर्व कर्म क्षय नही हूये है,जे कर मोहादिक कर्मक्षय हो जाते, तो ... हेकों अपने मतका तिरस्कार देखके पीडा पाता, अरु अवतार लेत... कर साधुवोंके उपकारार्थ अरु डुष्टोके संहार वास्ते अवतार लेता है तो असमर्थ हूआ, क्योंकि विनाही अवतारके लीयां वो यह काम कर सक्ता था, जे कर कर सक्ता था, तो फेर काहेकों गर्नावासमे पड... स वास्ते सर्व कर्म क्षय नहीं हुये, जे कर क्षय हो जाते तो कदीनी... तार न लेता ॥ यडुक्तं ॥ दग्धे बीजे यथात्यंतं,प्राडुर्नवति नांकुरः ॥ का... जे तथा दग्धे, न रोहति नवांकुरः ॥ १ ॥ उक्तंच श्रीसिद्धसेन दिवाक... देरपि ॥ नवानिगामुकानां, प्रबलमोहविजृंनितं ॥ श्लोक ॥ दग्धेंधन... रुपैति नवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितनीरनिष्टं ॥ मुक्तः स्वयं कृत... परार्थशूर, त्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्य ॥ १ ॥ इत्यलविस्तरे

पूर्वपक्षः–सुगतादिक ईश्वर मत होवो, परंतु सृष्टिका कर्त्ता तो महादेव ईश्वर है, सो क्यों नही मानते?

उत्तरपक्षः–जगत् कर्त्ता ईश्वरकी सिद्धिमें प्रमाणका अनाव है, इस वास्ते नही मानते.

पूर्वपक्षः–जगत् कर्त्ताकी सिद्धिमें प्रमाण है. पृथिव्यादिक किसी बुद्धिमानके करे हूये हैं घटादिवत् कार्यरूप होनेसे यह हेतु असिद्ध नहीं है, पृथिव्यादिकोंकों सावयव होने करिके कार्यत्वकी प्रसिद्धि होनेसे तथाहि पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व सावयव होनेसें घटवत् कार्यरूप है, अरु यह हेतु विरुद्धनी नहीं है, निश्चित कर्तृक घटादिकों विषे कार्यत्व हेतुके देखनेसें अरु जिनोंका कर्त्ता नहीं है, उनसें व्यावृत्त होनेसें अनेकांतिकनी नहीं है, अरु प्रत्यक्ष आगम करकें अबाधित विषय होनेसें कालात्ययापदिष्टनी नही है,इस निर्दोष हेतुसें जगत्कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः–तहां प्रथम पृथिवीआदिक बुद्धिमान्के बनाये हूये हैं, इस सिद्धिके वास्ते जो तुमनें कार्यत्व हेतु कहा था, सो हेतु क्या सावयवत्व है? वा प्राग्वत् स्वकारण सत्ता समवाय है? वा 'कृत' असे प्रत्ययका विषयत्व है? वा विकारित्व है? इन चारों विकल्पोंमेंसूं कार्यत्व हेतुका कौनसा स्वरूप है? जे कर कहोगेकि सावयवत्व स्वरूप है, तो यह सावयवपणा अवयवों विषे वर्त्तमानत्व है? वा अवयवों करकें आरन्यमाणत्व है? वा प्रदेशत्व है? वा सावयव असी बुद्धिविषयत्व है?

तहां आद्य पक्षविषे अवयव सामान्य करके यह हेतु अनेकांतिक है, तथा अवयवों विषे वर्त्तमाननी निरवयव अरु अकार्य कहते है, तथा दूसरे पक्षमें हेतु साध्यके समान है, जैसा पृथिव्यादिकोंको कार्यत्व साध्य है, असेही परमाणु आदिकोंकों अवयव आरन्यत्व पणा है, तथा तीसरे पक्षमें आकाशके साथ हेतु अनेकांतिक है, क्योंकि आकाश प्रदेश वाला तो है, परंतु कार्य नही है. तथा चउथे पक्षमेंनी आकाशके साथ हेतु व्यनिचारी है, क्योंकि जो व्यापक होता है, सो निरवयव नहीं होता है, अरु जो निरवयव होता है, सो परमाणुवत् व्यापक नही होता है.

तथा प्रागसतः स्वकारण सत्तासमवाय कार्यत्वनी नही, क्योंकि तिसको नित्य होने करकें तिसके लक्षणके न होनेसे. जे कर तिसका लक्षण

होवेगा, तब तो पृथिव्यादिकोंके कार्यत्वकोंनी नित्यताका प्रसंग तब बुद्धिमत्का बनाया हूआ क्या सिद्ध करोगे? एक औरनी दूषण कि योगीयोंके अशेष कर्मके क्षय हूआं थकां पक्षांतपातिविषे होने करकें यह हेतुनांगा असिद्ध है, क्योंकि योगी प्रत्यक्षकों नाव रूप होने करकें सत्ता स्वकारण समवाय इन दोनोंके अनावसें.

तथा "कृतं" असे प्रत्ययका जो विषयत्व है सोनी कार्यत्व नहीं सक्ता है, खनन उत्सेचनादिक करके कृतं आकाशं असें अकार्य नी वर्त्तमान होने करके अनेकांतिक है.

तथा विकारत्वकोंनी कार्यत्वका अनुषंग है, सत् वस्तुकों जो है, सो विकारित्व है. तब तो ईश्वरकोंनी विकारित्व पणा है, अपर मत् हेतुकत्व प्रसंग होनेसें अनवस्था हो जावेगी, जे कर कहोगेकि विकारी नही तब तो कार्यका कारित्व पणा दुर्घट है, असें कार्य कों विचारता थकां उपपद्यमान न होनेसे "कार्यत्वात्" यह हेतु है,एक औरनी दूषण है कि कदे होना कदे न होना, लोकमे उसकों त्वकी प्रसिद्धि है. अरु यह जो जगत् है, सो तुमारे महेश्वरकी तरें सत्व होनेसें कैसें कार्यत्व होवे?

पूर्वपक्षः–तिस जगत्के अंतर्गत तृणादिकोंकों कार्यत्व होनेसें कोंनी कार्यत्व है.

उत्तरपक्षः–महेश्वर अंतर्गत बुद्धिआदिकोंकों तथा परमाणु अंतर्गत पाकज रूपादिकोंको कार्यत्व रूप होनेसें महेश्वरकों तथा आदिकोको कार्यत्वका अनुषंग होवेगा, तब तो इस ईश्वरकों अपर बु त् हेतुकत्व प्रसंगसें अनवस्था दूषण आता है. अरु अपसिद्धांतका षंग है, तथा हे ईश्वरवादि! जैसे तैसें करकें जगत्को कार्यत्वपणा होवे तोनी कार्यमात्र इहा हेतु तुमने माना है? वा कार्य विशेष हेतु माना है

जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तिससेंती बुद्धिमत्कर्ता विशेष सिद्धि नही. क्योंके तिसके साथ व्याप्तिकी सिद्धि नहीं, किंतु कर्तृ सामान्यकी सिद्धि होती है. जे कर असेंही मानोगे, तब तो हेतु अकिंचित्कर है, साध्य विरुद्ध साधनेसे हेतु विरुद्ध है. तिस वास्ते कार्यत्वकृत बुद्धि उत्पा बुद्धिमत् कर्त्ताका गमक नहीं, अरु जे कर सर्व सारूप्य मात्र करकें गमक

त्र होवे, तब तो वाष्यादिकोंकोंनी अग्नि प्रतिगमकत्वका प्रसंग होवे ा, अरु महेश्वर आत्मत्व करकें सर्व जीवोंके सदृश होनेसें १ संसारिप ा, २ किंचित् ज्ञत्वपणा, ३ संपूर्ण जगत्का अकर्तृत्वपणेके अनुमापकका नुषंग है, क्योंकि तुल्य अक्षेप समाधान होनेसें. तिस वास्ते वाष्प अरु म इन दोनोकों किसी अंश करकें साम्यनी है, तोनी कोइक ऐसा वि ष है, जिस करकें धूम अग्निका गमक है, परंतु वाष्पादिक नहीं. तैसेही थिव्यादिकोंको इतर कार्योंसेंनी कबुक विशेष अंगीकार करो.

जे कर दूसरा पक्ष मानोगे, तब हेतु असिद्ध है, कार्य विशेषके अना सें. नावे वा जीर्ण कूप प्रासादादिकोंकी तरें अक्रिया देखने वालेकोंनी तबुद्धि उत्पादकका प्रसंग है, जे कर कहोगेकि समारोपसें प्रसंग नहि ता है, सोनी दोनों जगें एक सरीखा होनेसें क्यों नहीं होता है? दो ों जगें कर्त्ताकों अतींद्रियत्वके अविशेषसें. पूर्वपक्ष प्रामाणिककों है, य ा कृतबुद्धि. उत्तरपक्ष कैसें तहां तिसकों कृतत्वका अवगम होवे? इ ा अनुमान करके अथवा अनुमानांतर करकें आद्य पक्षमें परस्पर आश्र ा दूषण है, तथाहि सिद्ध विशेषण हेतुसें इस अनुमानका उठान है, तसके उठानके होयां हेतुके विशेषणकी सिद्धि है अरु दूसरे पक्षमें अ ुमानांतरकोंनी सविशेषण हेतुसें उठान होवेगा, तहांनी अनुमानांतरसे तसकी सिद्धि. इसी तरें अनवस्था दूषण होता है, इस वास्ते कृत बुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण सिद्धि नही, तब तो विशेषण असिद्ध हेतु है.

अरु जो कहते हैं कि खातप्रतिपूरित पृथिवीके दृष्टांत करके कृतकों को आत्मविषे कृतबुद्धि उत्पादकत्वका अनाव है, सोनी असत् है, त हां आकृति नूनागादि सारूप्यकों तिसके उत्पादकके अनावसें, तिसके उ त्पादककी उत्पत्तिसें.

अरु ऐसेंनी न कहनांकि पृथिव्यादिकोंमेंनी अकृत्रिम संस्थान सारू प्य है, जिस करकें आकृतिमत्त्व बुद्धि उत्पन्न होती है, तिसहीके न मान नेसें अपसिद्धांतकी प्रसक्ति होवेगी, ऐसें कृतबुद्धि उत्पादकत्व रूप विशे षण असिद्ध होनेसें हेतु विशेषण असिद्ध है, सो सिद्ध होवो, तोनी यह हेतु घटादिकोंकी तरें शरीरादि विशिष्टकोंही बुद्धिमत् कर्त्ताका इहां प्रसाधनसें हेतुविरुद्ध है.

प्रश्नः—ऐसे दृष्टांत दार्ष्टांतिक साम्य अन्वेषणमें सर्व जगे अनुपपत्ति होवेगी.

उत्तरः—ऐसें नहीं है धूमादि अनुमानमें महानस इतर साधा. अग्निकी प्रतिपत्तिसें, यहांजी ऐसेही बुद्धिमत् सामान्य प्रसिद्धिसें हेतु रोध नहीं, ऐसेंजी कहनां अयुक्त है, क्योंकि दृश्य विशेष था। तिस सामान्यकों कार्यत्व हेतुकी प्रसिद्धि है, परंतु अदृश्य नहीं, तिसकी स्वप्नेमेंजी प्रतिपत्ति नहीं है, तिस सामान्य वालेका आधार है, तिस वास्ते जैसे कारणसें जैसा कार्य उपलब्ध होता है, सोही अनुमान करने योग्य है, यथावत् धर्मात्मक अग्निसें यावत् त्मकस्य धूमकी उत्पत्ति है, सुदृढ प्रमाणसें प्रतिपन्न है, तैसेही धूमसें सेंही अग्निका अनुमान है, ऐसें कहने करकें साध्य साधन दोनोंका वि पण करकें व्याप्तिविषे ग्रहण करतां हूआ, सर्वानुमानकी उछेद है, इत्यादि जो कहनां है, सोजी खंमन हो गया.

तथा विना बीजके बोयां जो तृणादिक उत्पन्न होते हैं तिनके यह कार्यत्व हेतु व्यभिचारी है, बहुतसें कार्य देखनेमें आते हैं, कितनेक तो बुद्धिमान्के करे हुये दीखते हैं, जैसें घटादिक.

अरु कितनेक उनसे विपरीत दिखाइ देते है, जैसें बिना बोयां दिक. जे कर कहोगेकि हम सर्वकों पक्षमे कर लेवेंगे तब तो "स श्यामस्त्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्" इत्यादिजी गमक होने चाहियें, तब तो कोइजी हेतु व्यभिचारी न होवेगा. जहां जहां व्यभिचार होवेगा, तहां तहां तिस कों पक्षमें कर लेनेसें तथा यह हेतु ईश्वर बुद्धि आदिकों करकेंजी व्यभि चारी है, ईश्वर बुद्ध्यादिकोंको कार्यत्वके होयां हूयांजी समवायि कारणसें ई श्वरादिकोंसे भिन्न बुद्धिमत्पूर्वकत्वके अभावसें, जे कर यहांजी इसी तरे मानोगे, तब अनवस्थादूषण होवेगा, तथा यह कार्यत्व हेतु कालात्ययापदिष्टजी है, विना बोया उत्पन्न हुये तृणादिको विषे बुद्धिमत् कर्ताका अभाव प्रत्यक्ष प्रमाणसें अग्निके अनुष्णत्व साध्यविषे द्रव्यत्व हेतुवत् दीख पडता है.

प्रश्नः— अंकुर तृणादिकोकाजी अदृश्य ईश्वर कर्त्ता है

उत्तरः—यहजी ठीक नहीं, तहां अदृश्य ईश्वरका होनां इसी प्रमाणसें

से? अथवा और किसी प्रमाणसें है? प्रथम पक्षमें चक्रक दूषण है, इस
माणसें तिसका सद्भाव सिद्ध होवें, तब अदृश्य होने ईश्वरके अनुपलं
की सिद्धि होवे, तिसकी सिद्धिके होयां कालात्ययापदिष्टका अभाव सि
द्ध होवे, तिसके पीछें इस प्रमाणकी सिद्धि होवे. दूसरा पक्षभी अयुक्त
है, ईश्वरके भावावेदिक प्रमाणके अभावसें होवे, तहां प्रमाणका सद्भाव
है भी १ ईश्वरके अदृश्य होनेमें क्या शरीरका न होनां कारण है? २ वा
विद्यादि प्रभाव हैं? ३ वा जाति विशेष है? प्रथम पक्षमें अशरीरी हो
नेसें मुक्त आत्मावत् कर्त्तापणेकी अनुपपत्ति है.

प्रश्नः– शरीरके अभाव करकेंभी ज्ञानेछा प्रयत्नाश्रयत्व करकें शरीर व
त्न करकें ईश्वर कर्त्ता हो सक्ता है.

उत्तरः–यहभी विना विचारहीका तुमारा कहनां है, क्योंकि शरीर सं
बंध करकेंही तिसकी प्रेरणा होनेसें शरीरके अभाव हूयां मुक्त आत्मवत्
तिसका असंभव होनेसें अरु शरीरके अभावसें ज्ञानादि आश्रयित्वकाभी
असंभव है, तिसकी उत्पत्तिमें इसकों निमित्त होनेसें अन्यथा मुक्तात्मा
ओंभी तिसकी उत्पत्ति होवेगी. अरु विद्यादि प्रभावकों अदृश्यपणेमें हेतु
हुयां कदाचित् यह दीखना चाहियें, परंतु सर्वदा नही. क्योंकि विद्यावान् सदा
अदृश्य नही रहते है, पिशाचादिकोंकी तरें जाति विशेषभी अदृश्यमें हे
तु नहीं, क्योंकि ईश्वर एक है, एकमें जाति नहीं होती है, जाति जो हो
ती है, सो अनेक व्यक्ति निष्ठ होती है. भलेही ईश्वर दृश्य अथवा अदृ
श्य होवे, तोभी १ क्या सत्ता मात्र करकें? २ वा ज्ञानवत्त्व होने करकें?
३ वा ज्ञानेछा प्रयत्नवत्त्व करकें? ४ वा तत्पूर्वक व्यापार करके? ५ वा
ऐश्वर्य करकें पृथिव्यादिकोंका कारण है?

तहां आद्य पक्षमें कुलालादिकोंकोंभी सत्त्वके अविशेष होनेसें जगत्कर्तृका
प्रसंग होवेगा. दूसरे पक्षमें योगीयोंकोभी जगत् कर्त्ताकी आपत्ति होवेगी, ती
सरा पक्षभी ठीक नहीं, क्योंकि अशरीरकों प्रथमही ज्ञानादि आश्रयत्वका प्रति
षेध करनेसें. चउथेकाभी संभव नहि क्यों कि अशरीरकों काय वचनके व्या
पारवत्त्वका असंभव होनेसें. अरु ऐश्वर्यभी ज्ञातपणा है? अथवा कर्त्तापणा
है? अथवा और कुछ है? जे कर कहोगे कि ज्ञातपणा है, तब क्या ज्ञा
तृत्वमात्र है? अथवा सर्वज्ञातृ पणा है? आद्यपक्षमें ज्ञाताही होवेगा,

परतु ईश्वर न होवेगा. अस्मदाद्यन्यज्ञातृयोंकी तरें. दूसरे पक्षमें सर्व इसकों होवेगा परंतु सुगतादिवत् ईश्वरपणां न होवेगा.

अथ जे कर कहोगे कि कर्तृत्वपणा है तब तो ...दिकोंर, नेक कार्य करने वालोंकों ऐश्वर्यकी प्रसक्ति होवेगी, अरु इच्छा प्रयत्न ना और कोइनी वस्तु ईश्वरके ऐश्वर्यकी निबंधन नहीं है.

एक औरनी बात है, कि ईश्वरके जगत् बनानेमें यथारुचि है ? वा कर्मके वश हो करकें है ? वा दया करकें है ? वा क्रीडा है ? वा निग्रहानुग्रह करने वास्ते है ? वा स्वनावसें है ? आद्य कदाचित् और तरेंकी सृष्टि हो जावेगी, दूसरे पक्षमें ईश्वरकी ... हानी होवेगी, तीसरे पक्षमे सर्व जगत् सुखीही करना था.

पूर्वपक्षः–ईश्वर क्या करे ? जैसें जैसें जीवोंने कर्म करे हैं, तिन वशसें ईश्वर तैसा तैसा डुःख सुख देता है.

उत्तरपक्षः–तब तो तिसका क्या पुरुषाकार है ? जब कर्महीकी करकें कर्त्ता है, तब तो ईश्वरकी कल्पना करकें क्या करना है ? उनसें सब कुछ हो जावेगा, तथा चउथे पांचमे विकल्पमें ईश्वर, रागी हो जावेगा, तब तो ईश्वर क्यों कर सिद्ध होवेगा ? तथाहि क्रीडा ... बालवत् रागवान् ईश्वर है ? तथा ईश्वर अनुग्रह निग्रह करनेसें तरें राग द्वेष वाला है ?

जे कर कहोगे कि ईश्वरका स्वनावही जगत् करने (रचनेका) है, तो तो जगत् स्वनावसेंही हूआ है, ऐसें मान लेवो फेर ईश्वरकी कल्पना काहेको करते हो ? इस वास्ते कार्यत्व हेतु बुद्धिमत् कर्त्ता ईश्वरको नहीं सिद्ध कर्त्ता है, इस वास्ते नैयायिक, वैशेषिक जो जगत्का कर्त्ता ईश्वरको मानते है, सो मूर्खताका सूचक है, विशेष करके जगत् कर्त्ताका खंडन देखना होवे, तदा सम्मतितर्क ग्रंथ देखनां.

अरु जो नैयायिकोंने सोला पदार्थ माने है, सोनी बालकोंकी सें है, क्योंकि सोला पदार्थ घटते नहीं है, सोला पदार्थ यह है उनका नाम कहते है. १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२

तमा, १३ हेत्वाजास, १४ बल, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान, य सोला पदार्थ कहे है.

तहां, हेय उपादेय प्रवृत्तिरूप करकें जिस करकें पदार्थोंकी परिछित्ति क यें है, "तत्त्वमीयतेऽनेनेति प्रमाणं" सो प्रमाण, सो प्रमाण १ प्रत्यक्ष, अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द जेदसें चार प्रकारका है, "तत्रेंद्रियार्थ न्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यजिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं इति तम सूत्रं ॥" इसका यह तात्पर्य है कि इंद्रिय अरु अर्थका जो संबंध ससेती जो उत्पन्न हूआ व्यपदेश रहित व्यजिचार रहित निश्चयात्मक सको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते है, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणका यह लक्षण नही , तथाहि जहां आत्मा अर्थ ग्रहण प्रति साक्षात् व्यापारिये, सोइ प्रत्य प्रमाण है, सो अवधि, मनःपर्यव, अरु केवल है, अरु यह जो प्रत्य नैयायिकोने कह्या है, सो उपाधि द्वारा प्रवृत्ति होनेसें अनुमानकी त परोक्ष है, जो उपचार प्रत्यक्ष माने, तव तो है, परतु तत्त्वचिंतामे पचारका व्यापार नही होता है.

अरु अनुमान प्रमाण तीन जेद करिकें मानते हैं, १ पूर्ववत्, २शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट. तहां कारणसें कार्यका जो अनुमान, सो पूर्ववत्, तथा ार्यसे कारणका जो अनुमान, सो शेषवत्, तथा एक आंवका वृक्ष फूला ख कर आंव, जगत्में फूले है, ऐसें जाननां; अथवा देवदत्तादिकोमें गति र्वक स्थानसें स्थानातरकी प्राप्ति देख कर सूर्यमेंजी गतिका अनुमान क नां इसका नाम सामान्यतो दृष्ट है, तहांजी अन्यथानुपपत्तिही गमक है, तु कारणादिक. क्योंकि अन्यथानुपपत्तिके विना कारणकों कार्य प्रति व्य नचार होनेसे. अरु जहां अन्यथानुपपत्ति है, तहां कार्य कारणादिको विनाजी गमकजाव देखीये है, सोइ दिखाते है. कृत्तिकाके देखने ां रोहिणीका उदय होवेगा ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र त्र त्रयेण कि ॥ नान्यथानुपपन्नत्त्व, यत्र तत्र त्रयेण कि ॥ १ ॥ तथा क औरजी वात है कि जव प्रत्यक्ष प्रमाणही नैयायिकका कह्या प्रमाण न हूआ तव प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान जो है सो क्योंकर प्रमाण होवे? तथा "प्रसिद्ध साधर्म्यात्" अर्थात् प्रसिद्ध साधर्म्यसे जो साध्यका सा धन है, सो उपमान है, जैसा गौ है तैसा रोज है, यहाजी सज्ञा संज्ञी

संबंधकी प्रतिपत्ति उपमानका अर्थ है, इहांभी अन्यथानुपपत्तिके होनेसे उपमानभी अनुमानके अंतरभावही है, परंतु पृथग् प्रमाण. जे कर कहोगे कि इहां अन्यथानुपपत्ति नहीं है, तब तो प्र नेसें उपमान प्रमाणही नही है, शाब्दभी सर्व प्रमाण नहीं है, किंतु आप्त प्रणीत आगम है, सोइ प्रमाण है, अरु अर्हत बिना दूसरा आप्त नहीं. इस बातका निर्णय देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, नंद, त, आप्तमीमांसादि शास्त्र देख लेने. तथा एक औरभी बात है, चारों प्रमाण आत्माका ज्ञान है, अरु ज्ञान वस्तुके गुणोंको पृथग् मानीयें, तब तो रूपरसादिकोभी पृथग् पदार्थ माननां चाहिये. जे कर कि प्रमेयके ग्रहणे करकें, औ इंद्रियार्थ होने करके तेभी ग्रहण जाते हैं, यहभी तुमारां कहनां युक्ति युक्त नही है, क्योंकि द्रव्यसें गुणोंका अभाव है, द्रव्यके ग्रहण करनेसें गुणोंकाभी ग्रहण सिद्ध है, स वास्ते पृथग् पदार्थ माननां ठीक नहीं.

२ तथा प्रमेयका भेद, १ आत्मा, २ शरीर, ३ इंद्रिय, ४ अर्थ, ५ बुद्धि, ६ मन, ७ प्रवृत्ति, ८ दोष, ९ प्रेत्यभाव, १० फल, ११ दुःख, १२ अ तहां १ आत्मा सर्वका देखने वाला अरु भोक्ता है, अरु इच्छा, द्वेष, प्रयत्न सुख, दुःख, ज्ञान, इन करके अनुमेय है, सो तो हमने जीवतत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु २ शरीर जो है, सो आत्माका भोगायतन है, इंद्रिय भोगोंके साधन है, अरु ३–४ इंद्रियार्थ भोग्य है, येभी शरीरादिक जीवाजीव के ग्रहण करकें हमने ग्रहण करे हैं, अरु ५ बुद्धि जो है, सो उपयोग रूप ज्ञान विशेष है, सो बुद्धि जीवके ग्रहणहीमें आ गइ, एतावता जीव तत्त्वमेंही ग्रहण हो गइ, अरु ६ सर्व विषय अंतःकरण है, युगपत् ज्ञान का न होना यह मनका लिंग है, तहां द्रव्य मन तो पौद्गलिक है, सो अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु भावमन जो है सो ज्ञानरूप आत्माका गुण है, सो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु ७ आत्माकी इच्छाका नाम प्रवृत्ति है, सो सुख दुःखोंके होनेमें कारण है, सो ज्ञानरूप होणेसें जीवतत्त्वमें ग्रहण करी है, ८ आत्माके जो अध्यवसाय राग, द्वेष, मोहादि दोष हैं, यह दोषभी जीवके अभिप्राय रूप होनेसें जीवतत्त्वमेंही ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ नहीं. ९ प्रेत्यभाव, पर-

ोकका सद्भाव होनां सोभी जीवाजीवके विना और कुछ नहीं है, तथा ० फल, जो सुख दुःखका भोगनां है, सोभी जीव गुणोंके अंतर्भाव है, स वास्ते पृथग् पदार्थ कहनां ठीक नही, तथा ११ दुःख, यहभी फलसें यारा नही, अरु १२ जन्म मरण प्रबंध उच्छेदरूप करकें सर्व दुःखोंको दूर रणां, ऐसा मोक्षका लक्षण है, सो हमने नवतत्त्वमें मान्याही है.

३ तथा यह क्या है? ऐसा अनिश्चयरूप प्रत्ययको संशय कहते हैं, ोभी निर्णय ज्ञानवत् आत्माहीका गुण है.

४ तथा जिस करकें प्रयुक्त हूआ होयां प्रवर्त्ते है, तिसका नाम प्रयोज ा है, सोभी इच्छा विशेष होनेसें आत्माका गुण है.

५ तथा अविप्रतिपत्ति विषयमें प्राप्त है, अर्थ सो दृष्टांत है, सोभी ीवाजीवपदार्थोंसें न्यारा नहीं है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं है. योंकि अवयवग्रहणेमेंभी आगें इसका ग्रहण हो जावेगा.

६ तथा सिद्धांत चार प्रकारका है, १ सर्वतंत्राविरुद्धः सर्व शास्त्रो में अविरुद्ध जैसें स्पर्शनादि इंद्रिय है, अरु स्पर्शादि इंद्रियार्थ है, तथा प्रमाणों करकें प्रमेयका ग्रहण होता है, २ समानतंत्रसिद्धः, परतंत्रा सिद्धः, प्रतितंत्रासिद्धांतः, जैसें सांख्य मत वालोके असत् आत्म लाभको प्राप्त नहीं होता है, अरु सत्का सर्वथा विनाश नही है, तथा ३ जिस की सिद्धिके हूया औरभी अर्थ अनुषंग करकें सिद्ध हो जावे, सो अधिक रणसिद्धांत है तथा ४ "अपरीक्षितार्थाभ्युपगमत्वात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्यु पगमसिद्धांत." जैसें किसीने कहा शब्द क्या वस्तु है? कोइक कहता है शब्द द्रव्य है, सो शब्द नित्य है? वा अनित्य है? इत्यादि विचार यह चार प्रकारका सिद्धांत ज्ञान विशेषसें अतिरिक्त नही है, अरु ज्ञानविशे ष आत्माका गुण है गुणीके ग्रहणेसें ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नही.

७ अथावयवाः प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, यह पांचो अवयवकों जे कर शब्दमात्र मानीयें, तब तो पुद्गल रूप होनेसें अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीये है. जे कर ज्ञानरूप मानीये. तब तो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीये है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहना ठीक नही, जे

कर ज्ञान विशेषकों पृथक् पदार्थ मानीयें, तब तो पदार्थ बहुत हो क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारकें है.

८ संशयसें उपरि भवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक तर्क कहते हैं, जैसें कि यह स्थाणु अथवा पुरुष जरुर होवेंगा, ज्ञान विशेषही हैं, ज्ञानविशेष जो है, सो ज्ञातासें अभिन्न है, इस पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

९ संशय अरु तर्कसेंती उत्तर काल भावी निश्चयात्मक ऐसा ज्ञान, तिसका नाम निर्णय है, यहभी ज्ञानविशेष है, अरु ऐसें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अंतर्भाव होनेंसें पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं

१०-११-१२ तथा वाद,जल्प,वितंडा,तहां प्रमाण तर्क साधन सिद्धांत अविरुद्ध पंचावयव करकें संयुक्त पक्ष प्रतिपक्षका जो ग्रहण तिसका नाम वाद है. सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु होता है, अरु सोइ वाद जिसकों जीतना होवे, तिसके साथ छल. निग्रह स्थान करके साधनोपलंभ, सो जल्प है, तथा सो वादही स्थापना करकेही वितंडा है, यह वाद, जल्प, वितंडा, इन तीनोंका ही नहीं हो सक्ता है, क्योंकि तत्त्वचिंताविषे तत्त्वके निर्णयार्थ वाद रनां चाहियें, परंतु छल जाति आदिक करकें तत्त्वका निश्चय नहीं होता है, क्योंकि छलादिक जो है, सो परके वचने वास्ते करियें हैं, तिनसें त्त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती है, जे कर इनका भेदभी मानोगे, तो ये पदार्थ नही हो सक्ते है, क्योंकि जो परमार्थसें वस्तु है, सोइ पदार्थ है. अरु वाद जो है,सो पुरुषकी इच्छाके अधीन है, नियतरूप वास्ते पदार्थ नहीं, तथा एक औरभी बात है, कि नके वादमेंभी पक्ष प्रतिपक्ष ग्रहण करते है, तिनो होनी चाहियें, परंतु यह तुम नही मानते हो,इस

१३ तथा १ असिद्ध. २ अनेकांतिक, ३ विरु हैं. हेतु तो नही, परतु हेतुकी तरें भासन होते कहते है. जब सम्यक् हेतुवोंकीही तत्त्वव्यवस्थिति का तो क्याही कहना है? क्योंकि जो नियत

, अरु हेतु तो किसी साध्यवस्तुमें हेतु है, दूसरे साध्यमें अहेतु है, इ
वास्ते नियतस्वरूप वाला नहीं.

१४–१५–१६ तथा छल, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनो पदार्थ नहीं. क्योंकि यह तीनोही वास्तवमें कपटरूप हैं, जिनोंने इनकों तत्त्व करके क थन करे है, उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहनां है ? इस संसारमें जो चोरी, ठगी, हथफेरी प्रमुख सिखावे, तिसकोंभी तत्त्वज्ञानका उपदेशक मानना चा हियें ? यह नैय्यायिकमतके सोला पदार्थोंका खंमन कीया. जे कर विशेष क रके देखना होवे, तो न्यायकुमुदचंद्र देख लेनां. यह खंमन, सूत्रकृतांग सिद्धांतसें लिखा है, जे कर विशेष देखनां होवें, तब बारहवा अध्ययन देख लेनां ॥ इति नैयायिक दर्शन खंमनं संपूर्णम् ॥

अथ वैशेषिक मत खंमन लिखते है वैशेषिकोंके कहे हूये तत्त्वभी तत्त्व नही है, सोइ दीखाते है. १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामा न्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोंने यह छ तत्त्व माना है. तहां १ पृथि वी, २ अप्, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ९ मन, यह नव द्रव्य हैं. तिनमें पृथिवी, अप्, तेज, अरु वायु, इन चारोंकों भिन्न भिन्न द्रव्य माननेसें ठीक नही. क्योंकि परमाणु जो हैं, सो प्रयोग विश्रसा करकें पृथिवी आदिकोंके रूपपणे परिणमतेभी है, तोभी अपणे द्रव्य पणेकों नहीं त्यागते है, अरु अति प्रसंग होनेसें अव स्था भेद करके द्रव्यका भेद माननां युक्त नहीं है, अरु आकाश, त था कालको तो हमनेभी द्रव्य माना है, अरु दिशा जो है, सो आकाश का अवयवभूत है, इस वास्ते पृथग् द्रव्य नही. अरु आत्मा शरीर मात्र व्यापी उपयोग लक्षण तिसकों हमभी द्रव्य मानते है, अरु द्रव्य मन जो है, सो पुजलद्रव्यके अंतर्भाव है, तथा भावमन जो है, सो जीवका गु ण होनेसें. आत्माके अंतर्भाव है, यद्यपि वैशेषिक कहते हैं, कि जैसें पृ थिवीत्वके योगसे पृथिवी है, यहभी उनका कहनां स्वप्रक्रिया मात्र है, क्योंकि पृथिवीसें अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नही है, जिसके योगसें पृ थिवी होवें, अपि तु सर्वही जो कुछ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, न रसिंहाकारवत् उभयस्वभाव है.

तथा चोक्तं ॥ श्लोक ॥ नान्वय· सहि भेदत्वान्न, भेदोन्वयवृत्तितः ॥ मृ

कर ज्ञान विशेषकों पृथक् पदार्थ मानीयें, तव तो पदार्थ बहुत हो क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारके हैं.

८ संशयसें उपरि नवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक तर्क कहते है, जैसें कि यह स्थाणु अथवा पुरुष जरुर होवेगा, ज्ञान विशेषही है, ज्ञानविशेष जो है, सो ज्ञातासें अभिन्न है, इस पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नही.

९ संशय अरु तर्कसेंती उत्तर काल नावी निश्चयात्मक ऐसा ज्ञान, तिसका नाम निर्णय है, यहनी ज्ञानविशेष है, अरु निश्च... ऐसें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अंतर्नाव होनेंसें पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक

१०-११-१२ तथा वाद,जल्प,वितंमा,तहां प्रमाण तर्क साधन ... सिद्धांत अविरुद्ध पंचावयव करके संयुक्त पक्ष प्रतिपक्षका जो ग्रहण ... तिसका नाम वाद है. सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु ... होता है, अरु सोइ वाद जिसकों जीतना होवे, तिसके साथ छल, जा... निग्रह स्थान करके साधनोपलंन, सो जल्प है, तथा सो वादही प्रति... स्थापना करकेही वितमा है, यह वाद, जल्प, वितमा, इन तीनोंका ... ही नहीं हो सक्ता है, क्योंकि तत्त्वचिंताविषे तत्त्वके निर्णयार्थ वा... रना चाहिये, परंतु छल जाति आदिक करकें तत्त्वका निश्चय नहीं हो... है, क्योंकि छलादिक जो है, सो परके वचने वास्ते करियें हैं, तिनसें ...त्त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती है, जे कर इनका नेदनी मानोगे, तो ये पदार्थ नहीं हो सक्ते है, क्योंकि जो परमार्थसें वस्तु है, सोइ पदा... है. अरु वाद जो है,सो पुरुषकी इच्छाके अधीन है, नियतरूप नहीं है, ... वास्ते पदार्थ नही, तथा एक औरनी वात है, कि कुक्कड, लाल, मीढे, ...नके वादमेंनी पक्ष प्रतिपक्ष ग्रहण करते है, तिनोंकोंनी तत्त्वज्ञानकी प्रा... होनी चाहिये. परतु यह तुम नहीं मानते हो,इस वास्ते वाद पदार्थ नहीं

१३ तथा १ असिद्ध, २ अनेकांतिक, ३ विरुद्ध, यह तीनो हेत्वाना... हैं. हेतु तो नहीं, परंतु हेतुकी तरे नासन होते है, इस वास्ते हेत्वाना... कहते है. जव सम्यक् हेतुवोंकीही तत्त्वव्यवस्थिति नहीं, तो हेत्वाना... का तो क्याही कहनां है ? क्योंकि जो नियत स्वरूप करके रहे, सो व...

, अरु हेतु तो किसी साध्यवस्तुमें हेतु है, दूसरे साध्यमें अहेतु है, इ वास्ते नियतस्वरूप वाला नही.

१४–१५–१६ तथा छल, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनो पदार्थ नही. क्योंकि यह तीनोही वास्तवमें कपटरूप हैं, जिनोंने इनकों तत्त्व करकें कथन करे हैं, उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहनां है? इस संसारमें जो चोरी, ठगी, हथफेरी प्रमुख सिखावे, तिसकोंभी तत्त्वज्ञानका उपदेशक मानना चाहयें? यह नैय्यायिकमतके सोला पदार्थोंका खंमन कीया. जे कर विशेष करकें देखना होवे, तो न्यायकुमुदचंद्र देख लेनां. यह खंमन, सूत्रकृतांग सिद्धांतसें लिखा है, जे कर विशेष देखनां होवें, तब बारहवा अध्ययन देख लेनां ॥ इति नैयायिक दर्शन खंमनं संपूर्णम् ॥

अथ वैशेषिक मत खंमन लिखते हैं वैशेषिकोंके कहे हूये तत्त्वभी तत्त्व नहीं है, सोइ दीखाते हैं. १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म. ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोंने यह ६ तत्त्व माना है तहां १ पृथिवी, २ अप्, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ९ मन, यह नव द्रव्य हैं. तिनमें पृथिवी, अप्, तेज, अरु वायु, इन चारोंकों भिन्न भिन्न द्रव्य माननेसें ठीक नही. क्योंकि परमाणु जो हैं, सो प्रयोग विश्रसा करकें पृथिवी आदिकोंके रूपपणे परिणमतेभी हैं, तोभी अपणे द्रव्य पणेकों नही त्यागते है, अरु अति प्रसंग होनेसें अवस्था भेद करके द्रव्यका भेद मानना युक्त नहीं है, अरु आकाश, तथा कालको तो हमनेभी द्रव्य माना है, अरु दिशा जो है, सो आकाशका अवयवभूत है, इस वास्ते पृथग् द्रव्य नही. अरु आत्मा शरीर मात्र व्यापी उपयोग लक्षण तिसकों हमभी द्रव्य मानते है, अरु द्रव्य मन जो है, सो पुज्जलद्रव्यके अंतर्भाव है, तथा भावमन जो है, सो जीवका गुण होनेसें. आत्माके अंतर्भाव है, यद्यपि वैशेषिक कहते हैं, कि जैसें पृथिवीत्वके योगसे पृथिवी है, यहभी उनका कहनां स्वप्रक्रिया मात्र है, क्योंकि पृथिवीसें अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नहीं है, जिसके योगसें पृथिवी होवें, अपि तु सर्वही जो कुछ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, नरसिंहाकारवत् उभयस्वभाव है.

तथा चोक्त ॥ श्लोक ॥ नान्वयः सहि भेदत्वान्न, भेदोन्वयवृत्तितः ॥ मृ

भेदद्वयसंसर्गे, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ इसका भावार्थः-घट तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध्न उदराकारादिकों हेतुसें भेद है, अरु अन्वयवर्त्ति होनेसें घटका मृत्तिकासें एकांत हीं है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोंके सें घडा जो है, सो जात्यंतर रूप है, एतावता मृत्तिकासें ंचित् भेद रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नरः सिंहरूपत्वा, न्नसिंहो .. ॥ शब्दविज्ञानकार्याणां, भेदो जात्यंतरं हि सः ॥ १ ॥ भावार्थः होनेसें नर नही है, अरु नररूप होनेसें सिंहभी नही है, तो क्या है, शब्द, २ विज्ञान, ३ कार्य, इनके भेद होनेसें नरसिंह जो है सो तीसरी जा

२ अथ रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूपी द्रव्यमें इनकी प्रवृत्ति है. अरु गुण है, तथा १ संख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ संयोग, ५ ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण हैं, इनकी सर्व द्रव्यमें वृत्ति है था १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इछा. ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म, अधर्म, ए संस्कार, ये आत्माके गुण हैं तथा गुरुत्व, पृथिवी है, द्रव्यत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है. वेग संस्कार ये मूर्त्त द्रव्योंमें हैं, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें दिक सामान्य गुण रूपादिवत् द्रव्यस्वभाव होने करकें, अरु परोपाधि गुणही नही है, क्योंकि जब गुण, द्रव्यसें पृथग् हो जावेंगे, तब द्रव्य स्वरूपकी हानी हो जावेगी, "गुणपर्यायवद्द्रव्यं" इस कहने करकें गु जो है, सो द्रव्यसें न्यारे नही है, द्रव्यके ग्रहणहीसे गुणका ग्रहण य है, परतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आ शका गुण नही है, क्योंकि यह तो पौद्गलिक है, अरु आकाश तो मूर्त्त है, अरु शेष जो वैशेषिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन णोंका अंग नही है.

३ अरु कर्मभी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है.

४ अथ सामान्य दो प्रकारके है, एक पर, दूसरा अपर. तिनमें पर मान्य महासत्ता नाम है, द्रव्यादि तीन पदार्थोंसें व्यापी है, अरु जो पर है, सो द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्वादिक है, तिनमें महासत्ताकों पृथक् प थी माननां अयुक्त है. क्योंकि सत्तामे जो सत् यह प्रत्यय है, सो अ

सी सत्ताके यागसें है? वा स्वरूप करकें है? जे कर कहोगे कि और स
के योगसें है, तव तो तिस सत्तामें सत् प्रत्यय, और सत्ताके योगसें
नां चाहियें? ऐसें करतां अनवस्था दूषण आता है, अरु जे कर क
गेकि स्वरूप करके सत् है, तब तो द्रव्यादिकभी स्वरूप करकें सत् हैं,
ब तो अजाके गलेके स्तनोकी तरे निःफल सत्ताके कल्पनेसें क्या प्रयो
न है? एक औरभी बात हैकि द्रव्यादिक जो है, सो सत्ताके योग होने
सत् कहे जाते हैं? अथवा सत्ताके संबंध विनाही सत् स्वरूप है? जे
र कहोगेकि स्वतःही सत् स्वरूप है, तव तो सत्ताकी कल्पना करनी व्य
है, जे कर कहोगे कि सत्ताके योगसें सत् है, तब तो शशविषाणभी
त्ताके योगसें सत् होनां चाहिये ॥ तथा चोक्तं ॥ श्लोक ॥ स्वतोऽर्थाः
तु सत्ताव,त्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैषास्या, त्सर्वथा ति
संगतः ॥ १ ॥ इत्यादि येही दूषण तुल्य योग क्षेम होनेसें अपर सामा
मेंभी जोड लेने. तथा हमभी सामान्य विशेष रूप होनेसें वस्तुकों
थचित् सामान्यरूप मानतेही हैं, इस वास्ते द्रव्यके ग्रहण करनेसें
ामान्यकाभी ग्रहण हो गया, इस हेतुसें सामान्य जो है, सो कुछ द्र
यसें पृथक् पदार्थ नहीं.

५ अथ विशेष जो है, सो अत्यंत व्यावृत्ति बुद्धिके हेतु होने करकें
शेषिकोंनें माने हैं. तहां यह विचार करते है कि तिन विशेषोंमें जो
वेशेष बुद्धि है, सो अपर विशेषों करके है? वा स्वतःही स्वरूप करके है?
अपर विशेष हेतुक तो नही है, अनवस्था अरु विशेषमें विशेषका अंगी
ार नहीं है, जे कर कहोगेकि स्वतःही विशेष बुद्धिके हेतु हैं, तब तो
द्रव्यादिकभी स्वतःही विशेष बुद्धिके हेतु हे, तो फेर विशेषोंकों द्रव्यसें
अतिरिक्त पदार्थ कल्पने व्यर्थ है अरु द्रव्योंसें अव्यतिरिक्त विशेषोंको स
वस्तुओंको सामान्य विशेषात्मक होनेसें हमभी मानते है.

६ अरु समवाय जो है, सो अयुत सिद्ध आधार आधेय भूतोंका जो
इह प्रत्ययका हेतु है, सो समवाय कहते है, अरु समवाय जो है, सो
नित्य अरु एक है, ऐसें वैशेषिक मानते है. तिस समवायके नित्य होनेसे
समवायीभी नित्य होने चाहिये. जे कर समवायी अनित्य है, तो समवा
यभी अनित्य होना चाहिये? क्योंकि समवायका आधार समवायी है, इस

भेदद्वयसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ इसका भावार्थ. तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध्न उदराकारादिकों हेतुसें भेद है, अरु अन्वयवर्त्ति होनेसें घटका मृत्तिकासें एकांत हीं है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोके सें घडा जो है, सो जात्यंतर रूप है, एतावता मृत्तिकासें भेद रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नरः सिंहरूपत्वा, न्नसिंहो ॥ शब्दविद्ज्ञानकार्याणां, भेदो जात्यंतरं हि सः ॥ १ ॥ भावार्थ होनेसें नर नहीं है, अरु नररूप होनेसें सिंहभी नहीं है, तो क्या शब्द, २ विज्ञान, ३ कार्य. इनके भेद होनेसें नरसिंह जो है सो तीसरी जा

२ अथ रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूपी द्रव्यमें इनकी प्रवृत्ति है. अरु गुण है, तथा १ संख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ संयोग, ५ वि ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण है, इनकी सर्व द्रव्यमें वृत्ति है था १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इच्छा, ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म, अधर्म, ए संस्कार, ये आत्माके गुण हैं. तथा गुरुत्व, पृथिवी है, द्रव्यत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है, वेग संस्कार ये मूर्त्त द्रव्योंमें है, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें दिक सामान्य गुण रूपादिवत् द्रव्यस्वभाव होने करके, अरु पर गुणही नहीं है, क्योंकि जब गुण, द्रव्यसें पृथग् हो जावेंगे, तब स्वरूपकी हानी हो जावेगी, "गुणपर्यायवद्द्रव्यं" इस कहने करके जो है, सो द्रव्यसे न्यारे नहीं हैं, द्रव्यके ग्रहणहीसें, गुणका ग्रहण य है, परतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आका शका गुण नहीं है, क्योंकि यह तो पौद्गलिक है, अरु आकाश तो अ मूर्त्त है, अरु शेष जो वैशेषिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन दू णोंका अंग नहीं है.

३ अरु कर्मभी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है.

४ अथ सामान्य दो प्रकारके है, एक पर, दूसरा अपर. तिनमें पर सा मान्य महासत्ता नाम है, द्रव्यादि तीन पदार्थोंमें व्यापी हैं, अरु जो अ पर है, सो द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्वादिक है, तिनमें महासत्ताकों पृथक् पदा र्थ मानना अयुक्त है. क्योंकि सत्तामें जो सत् यह प्रत्यय है, सो और

वास्ते. तथा समवायके एक होनेसें समवायीभी एकही होने अ-
थवा समवायीयोंके अनेक होनेसें समवायभी अनेक रूप होना
तथा यह जो समवाय पदार्थोंका समवायी संबंध करता है, सो
य उन पदार्थोंके साथ अपणा संबंध अपर समवायके योगसें
किंवा आपही अपणा संबंध करता है? जे कर कहोगे कि अपर
यसें करता है, तब तो अनवस्थादूपण है. अरु समवायभी दू
नहीं, जे कर कहोगे कि आपही आपणा संबंध करता है; तब तो गुण
यादिकभी इव्यसें स्वरूप करके तथा अविष्वंगभाव संबंध करकें
तब तो समवायभी कल्पना व्यर्थही है.

ऐसें वैशेषिक मतमेंभी सम्यक् पदर्थोंका कथन आप्तोक्त नहीं,
नैयायिक वैशेषिक मतमें जो मोक्ष मानी है, सोभी प्रेक्षावानांकों
योग्य नहीं है, क्योंकि जब आत्मा ज्ञानसें रहित होवे, एतावता
हो जावे, तब आत्माको मोक्ष मानते है, ऐसी मोक्षको कौन बु
उपादेय मानता है? क्योंकि ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो सर्व सुख और
नसें रहित पापाण तुल्य आपणी आत्माकों करना चाहे? इसी वास्तेकिसी
वैशेषिकोका उपहास्यभी करा है, सो कहते है ॥ श्लोक ॥ वरं वृंदाव
रम्ये, क्रोष्टृत्वमभिवांछति ॥ नतु वैशेषिकीं मुक्तिं, गौतमोगंतुमिच्छति ॥१॥
अस्यार्थ.—स्वर्गके जो सुख है, सो सोपाधिक, सावधिक, परिमितआनं
द रूप है, अरु मोक्ष जो है, सो नैरुपाधिक, नैरवधिक, अपरमितानं
ज्ञानसुख स्वरूप, विचक्षण पुरुष कहते है, जब मोक्ष होना पापाण
के तुल्य है, तब तो ऐसी मोक्षसें कुछ प्रयोजन नहीं. इस्सेंतो संसारही
अच्छा है कि जिस संसारमे दुःख करके कलुपित सुख भोगनमें आता है.
जरा विचार तो करो, कि थोडे सुखका भोगनां अच्छा है? वा सर्व सुखों
का उच्छेद अच्छा है? इत्यादि विशेष चर्चा स्याद्वादमंजरीकी टीकासें जा
ननी. इस वास्ते नैयायिक मत, अरु वैशेषिक मत उपादेय नहीं है ॥इति॥

अथ सांख्य मतका खम्डन लिखते है. सांख्य मतका स्वरूप तो उपरलिखा
है,सो जान लेना,सांख्यका मत ठीक नहीं हैं,क्योंकि परस्पर विरोधी सत्व,
रजो, तम, गुणोंका प्रकृति रूपोंका गुणीके विना एकत्र अवस्थान अर्थात्
रहणां युक्त नहीं है, जैसे कृष्ण श्वेतादि गुण गुणी विना एकत्र नहीं रह

ः हैं, तथा महदादि विकारके होनेमें प्रकृतिमें विषमता उत्पन्न करनेमें
भी कारण नहीं है,क्योंकि प्रकृतिके विना और वस्तु, सांख्य कोइ मानते
ा है,अरु आत्माकों अकर्त्ता अकिंचित् कर मानते हैं,जे कर स्वभावसें
ाम्य मानेगे, तब निर्हेतुकताकि आपत्ति होवेगी, क्योंकि जो कार्य कभी
वे,अरु कभी न होवे, वो हेतुके विना नहीं हो सक्ता है,अरु जो खरशृं
दि नित्य असत् है,तथा आकाशादिनित्य सत् है, सो हेतुसें नहीं होते
॥ उक्तंच ॥ श्लोक ॥ नित्यसत्त्वमसत्त्वं वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षा
हि भावानां, कदाचित्कत्वसंभवः ॥ १ ॥

तथा स्वभाव प्रकृतिसें भिन्न है ? वा अभिन्न है ? भिन्नतो नहीं. क्योंकि
कृति विना सांख्योंने अपर कोइ वस्तु मानी नहीं है, जे कर कहोगे कि
भिन्न है, तब तो प्रकृति है "नतुस्वभाव" (स्वभाव नहीं है.)

तथा एक औरभी बात है कि महत् अरु अहंकार ज्ञानसें भिन्न हम
हीं देखते हैं, सोइ दिखावते है, कि बुद्धि जो है सो अध्यवसायमात्र
, अरु अहंकार जो है सो अहं सुखी, अहं दुःखी, ऐसें स्वरूप वाला
, इन दोनोकों चिद्रूप होनेंसें आत्माका गुणत्व पणा है, परतु जडरूप
कृतिका विकार नहीं.

तथा यह जो तन्मात्रोंसें भूतोंकी उत्पत्ति मानते है, कि जैसें १ गंध
न्मात्रात् पृथिवी, २ रसतन्मात्रासें जल, ३ रूप तन्मात्रासें अग्नि, स्पर्श
न्मात्रासें वायु, ५ शब्दतन्मात्रासें आकाश, यहभी माननां युक्ति न
ी है, जे कर बाह्यभूतकी अपेक्षा करके कहते हो सो अयुक्त है, इन बा
। पाच भूतोंके सदाही होनेसें उत्पत्ति नहीं "न कदाचिदनीदृशं जगत्
ति वचनात्" अर्थात् यह जगत् प्रवाह करकें अनादि कालसे ऐसाही
ला आता है.

जे कर कहोगेकि प्रति शरीरकी अपेक्षा हम कहते है,तिनमेंसूं त्वचा,हा
, कठीन लक्षणा पृथिवी है. श्लेष्म, रुधिर द्रव लक्षण आप. (जल) है.
क्ति लक्षण अग्नि है, पानापान लक्षण वायु है, शुषिर अर्थात् पोलाड
क्षण आकाश है, यहभी कहनां ठीक नहीं है, क्योंकि तिनमेंभी कितने
रीरोंकी उत्पत्ति पिताका शुक्र, अरु माताके रुधिरसें होती है, तहां तन्मा
ाओंकी गंधभी नहीं है, अरु अदृष्ट वस्तुको कारण कल्पनेमें अति प्रसंग

दूषण है, अरु अंडज, उद्भिज्ज, अंकुरादिकोंकीभी उत्पत्ति अपरही व
होती दीख पडती है, इस वास्ते महदहंकारादिकोंकी उत्पत्ति जो सांख
नें अपनी प्रक्रिया करकें मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल अ
मतके रागसेंही यह माननां है अरु आत्माकों अकर्त्ता माने है, तब
कृतनाश अकृताभ्यागम दूषण है, अरु बंध मोक्षका अभाव है. अरु
गुण होनेसें आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व पूर्वो
बालप्रलापमात्र है.

अथ सांख्यमतकी मोक्ष विचारियें हैं, " प्रकृतिपुरुषांतरपरिज्ञानात्
क्तिः " अर्थात् प्रकृति पुरुषसें अन्य है, असा जब ज्ञान होता है, तब
क्ति होती है. सोइ दिखाते है ॥ श्लोक ॥ शुद्धचैतन्यरूपोयं, पुरु
पुरुषार्थतः ॥ प्रकृत्यंतरमज्ञात्वा, मोहात्संसारमाश्रित ॥ १ ॥ भावार्थ
पुरुष जो है, सो परमार्थसें शुद्ध चैतन्यरूप है, अपणें आपकों प्रकृ
सें एकमेक समझता है, इस मोहसें संसारकों आश्रित हो रहा है, ति
हेतुसें प्रकृतिसुखादि स्वभावसें जहां लगि विवेक करकें न ग्रहण करे
तहां लगि मुक्ति नही. अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसें मुक्ति है, यह
असत् है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो हैं, सो
त्पाद व्यय स्वभाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म संसर्गसें आत्मासें
प्रकृतिका भेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नही ?

अथ यही तो संसारी विचार नहीं करता है, इस वास्ते मुक्ति नह
जे कर ऐसें कहोगे तब तो तुमारे कहनेसें कदापि मुक्ति नही होवेग
असा विवेकाध्यवसाय संसारीको कदापि नही हो सक्ता है,सोइ दिखाते है
जहां लग संसारी है, तहा लग विवेक परिभावना करकें संसारी
णा दूर नहीं होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अभावसें कदापि
सारसें छूटनां नहीं है.

एक औरभी बात है, कि इस सृष्टिके पहिला केवल आत्मा है, असे
तुम मानते हो, तब फेर आत्माकों ससार कहांसे लिपट गया ? जे क
कहोगेकि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोक्ष हूआ
पीछें फेरभी संसार लिपट जायगा, तब तो मोक्षभी क्या हूइ, एक विग
ना खमी हो गई.

पूर्वपक्षः—सृष्टिसें पहिलां आत्माकों दिदृक्षा भइ, तब तिस दिदृक्षाके व
ं प्रधानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तब संसारी हो गया,
ि जब प्रकृतिका दुष्टपणा विचारमें आया, तब प्रकृतिसें वैराग्य हुआ,
ह प्रकृतिविषे दिदृक्षा नही. तब संसारजी नही.

उत्तरपक्षः—यहजी तुमारा कहनां स्वकृतांत विरोध होनेसें अयुक्त है,सोई
ताते है. दिदृक्षा सो देखनेकी अनिलाषाका नाम है, सो अनिलाषा
ं देखे हूये पदार्थोमें तथा स्मरणसें होता है,अरु प्रकृति तो पूर्वे कदापि
ी नही है, तब कैसें तिस विषे स्मरण अनिलाषा होवे ? जे कर कहो
के अनादि वासनाके वशसें प्रकृतिमेही स्मरण अनिलाषा है, सोजी अ
्त है, क्योंकि वासनाजी प्रकृतिका विकार होने करकें प्रकृतिके पहिलां
ी थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वनावरूप है,
तो आत्मस्वरूपवत् वासनाका कदापि अनाव नहीं होवेगा, अरु
क्षजी कदापि नहिं होवेगी,तब तो सांख्यका मतजी बालकोंका खेल जैसा
गया ॥ इति सांख्यमत खंमनं समाप्तम् ॥

अथ मीमांसक मतका खंमन लिख्यते ॥ इस मतका स्वरूप उपर लिख
ये है, अरु वेदांतियोंके ब्रह्म (अद्वैत)का खंमन ईश्वर वादमें अबी
से कर चुके है. इस वास्ते यहां नही लिखा इति मीमांसक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खंमन लिखते है. जैमिनीया ऐसें कहते है, कि
"हिंसागाध्यात्' अर्थात् इंद्रियोंके रस वास्ते अथवा कुव्यसन करकें
िये सोइ हिंसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसें शोनिक लु
कादिकोंकी तरे. अरु वेदोमें जो हिसा कही है, सो हिंसा नही है,
तु धर्मका हेतु है, देवता, अतिथि, पितरोंके प्रीतिसंपादक हो
से तथाविध पूजा उपचारवत्. अरु यह प्रीति संपादकत्व असिद्ध नही
, क्योके कारीरी प्रभृति यज्ञोंके स्वसाध्य विषे वृष्ट्यादि फलोंका जो अ
निचारी पणा है, सो यज्ञ करनेसें जो देवता तृप्त होते है, वो वृष्ट्या
कोंके हेतु है, ऐसेही "त्रिपुरार्णववर्णित छगल" अर्थात् बकरेके मां
का होम करनेसें पराराष्ट्रका जो वश होनां है, सोजी उस मांसकी आहु
योंसे तृप्त हूये होय देवताओंकाही अनुनाव है, अरु अतिथि प्रीतिजी
मधुसपर्कसस्कारादिसमास्वादजा" प्रत्यक्षही दीख पडता है, अरु पित

दूषण है, अरु अंमज, उद्भिज्ज, अंकुरादिकोंकीनी उत्पत्ति अपरही होती दीख पडती है, इस वास्ते महदहंकारादिकोंकी उत्पत्ति जो ने अपनी प्रक्रिया करकें मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल मतके रागसेंही यह माननां है. अरु आत्माकों अकर्त्ता माने है, कृतनाश अकृताभ्यागम दूषण है, अरु बंध मोक्षका अनाव है. अरु गुण होनेसें आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व बालप्रलापमात्र है.

अथ सांख्यमतकी मोक्ष विचारियें हैं, " प्रकृतिपुरुषांतरपरिज्ञान क्तिः " अर्थात् प्रकृति पुरुषसें अन्य है, असा जब ज्ञान होता है, क्ति होती है. सोइ दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ शुद्धचैतन्यरूपोयं, पुरुषार्थत. ॥ प्रकृत्यंतरमज्ञात्वा, मोहात्संसारमाश्रित. ॥ १ ॥ पुरुष जो है, सो परमार्थसें शुद्ध चैतन्यरूप है, अपणें आपकों से एकमेक समझता है, इस मोहसें संसारकों आश्रित हो रहा है, हेतुसें प्रकृतिसुखादि स्वनावसें जहां लगि विवेक करकें न ग्रहण तहां लगि मुक्ति नही. अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसें मुक्ति है, असत् है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो है, त त्पाद व्यय स्वनाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म संसर्गसे प्रकृतिका नेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नहीं ?

अथ यही तो संसारी विचार नही करता है, इस वास्ते मुक्ति न जे कर ऐसे कहोगे तब तो तुमारे कहनेसें कदापि मुक्ति नही होवे असा विवेकाध्यवसाय संसारीकों कदापि नही हो सक्ता है, सोइ दिखाते

जहां लग ससारी है, तहा लग विवेक परिनावना करकें ससार णा दूर नही होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अनावसें कदापि सारसें छूटनां नही है.

एक औरनी बात है, कि इस सृष्टिके पहिला केवल आत्मा है, तुम मानते हो, तब फेर आत्माकों ससार कहासें लिपट गया ? जे कहोगेकि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोक्ष हु पीछें फेरनी संसार लिपट जायगा, तब तो मोक्षनी क्या हूइ, एक वि ना खनी हो गई.

पूर्वपक्षः–सृष्टिसें पहिलां आत्माकों दिदृक्षा नइ, तब तिस दिदृक्षाके व
ां प्रधानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तब संसारी हो गया,
 जब प्रकृतिका डुष्टपणा विचारमें आया, तब प्रकृतिसें वैराग्य हुआ,
 प्रकृतिविषे दिदृक्षा नही. तव संसारनी नहीं.

उत्तरपक्षः–यहनी तुमारा कहनां स्वकृतात विरोध होनेसें अयुक्त है,सोई
वाते है. दिदृक्षा सो देखनेकी अनिलाषाका नाम है, सो अनिलाषा
 देखे हूये पदार्थोंमें तथा स्मरणसें होता है,अरु प्रकृति तो पूर्व कदापि
ी नही है, तव कैसें तिस विषे स्मरण अनिलाषा होवे? जे कर कहो
 अनादि वासनाके वशसें प्रकृतिमेंही स्मरण अनिलाषा है, सोनी अ
 है, क्योंकि वासनानी प्रकृतिका विकार होने करकें प्रकृतिके पहिलां
 थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वनावरूप है,
 तो आत्मस्वरूपवत् वासनाका कदापि अनाव नहीं होवेगा, अरु
क्षनी कदापि नहिं होवेगी,तब तो सांख्यका मतनी बालकोंका खेल जैसा
गया ॥ इति सांख्यमत खंमनं समाप्तम् ॥

अथ मीमांसक मतका खंमन लिख्यते ॥ इस मतका स्वरूप उपर लिख
ये हैं, अरु वेदांतियोंके ब्रह्म (अद्वैत)का खंमन ईश्वर वादमें अन्नी
सें कर चुके है. इस वास्ते यहां नही लिखा. इति मीमांसक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खंमन लिखते है. जैमिनीया ऐसें कहते है, कि
"हिंसाधर्माय' अर्थात् इंद्रियोंके रस वास्ते अथवा कुव्यसन करकें
ये सोइ हिंसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसें शौनिक लु
कादिकोंकी तरें. अरु वेदोमें जो हिंसा कही है, सो हिंसा नही है,
तु धर्मका हेतु है देवता, अतिथि, पितरोंके प्रीतिसंपादक हो
 तथाविध पूजा उपचारवत्. अरु यह प्रीति संपादकत्व असिद्ध नहीं
 क्योके कारीरी प्रनृति यज्ञोके स्वसाध्य विषे वृष्ट्यादि फलोंका जो अ
निचारी पणा है, सो यज्ञ करनेसें जो देवता तृप्त होते है, वो वृष्ट्या
कोके हेतु है, ऐसेही "त्रिपुरार्णववर्णित छगल" अर्थात् बकरेके मा
का होम करनेसें परराष्ट्रका जो वश होनां है, सोनी उस मांसकी आहु
योंसें तृप्त हूये होय देवताओंकाही अनुनाव है, अरु अतिथि प्रीतिनी
मधुसंपर्कसंस्कारादिसमास्वादजा" प्रत्यक्षही दीख पडता है, अरु पित

रोंके तांइ जो श्राद्ध करते हैं, उस करके पितर तृप्त हुवे होयें, नकी वृद्धि प्रत्यक्षही करते दीखते है, अरु इस बातमें आगमभी देता है, आगममें देव प्रीत्यर्थ अश्वमेध, नरमेध, गोमेधादिक कहे है, अरु अतिथि विषय "महोक्षं वा महाजं वा, श्रोत्रियाय ऐसा कहा है, अरु पितरोंकी प्रीति वास्ते यह श्लोक है ॥ श्लोक द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन, त्रीन् मासान् हारिणेन तु ॥ औरभ्रेणाथ चतुर, शकुनेनेह पंच तु ॥ १ ॥ षण्मास छागमांसेन, पार्षतेनेह सप्त वै ॥ अष्टाणस्य मांसेन, रौरवेण नवैव तु ॥ २ ॥ दशमासांस्तु तृप्यंति, वराहमहिषामिषैः ॥ शशकूर्मयोर्मांसेन, मासानेकादशैव तु ॥ ३ ॥ संवत्सरं गव्येन, पयसा पायसेन तु ॥ वाध्रीणसस्य मांसेन, तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ४ ॥ यह श्लोक स्मृतिके हैं, इनका अर्थ कहते है.

जे कर पितरोंकों मत्स्यका मांस देवे तो पितर दो मास लग तृप्त रहते, जे कर हरिणका मास पितरोंकों देवे, तो पितर तीन मास लग तृप्त रहते, जे कर मीढेका मांस पितरोंको देवे, तब चार मास लग पितर तृप्त रहते है, जे कर जंगली कूकडका मांस पितरोंकों देवे, तो पितर पांच मास तृप्त रहते है ॥ १ ॥ जे कर बकरेका मांस देवे, तो पितर छमास लग तृप्त रहते है, जे कर पृषतबिंदु करके युक्त जो हरिण होवे, उसकों पार्षत कहते है, तिसका मांस जो पितरोंकों देवे, तो पितर सात मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर एण मृगका मांस देवे, तो आठ मास लग पितर, तृप्त रहते, जे कर बडे काले मृगका मांस देवे, तो नव मास लग पितर तृप्त रहते है, जे कर सूवर अरु महिषका मांस देवे, तो दश मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर शश अरु कछु, इन दोनोके मांस देवे, तो अग्यारह मास लग पितर तृप्त रहते है, जे कर गोका दूध अथवा खीर देवे, तो बारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, तथा वाध्रीण कहते हैं जो अति बूढा बकरा होवे तिसका मांस देवें, तो बार वर्ष लग पितर तृप्त रहते है, यह मीमांसक मानते हैं.

अब इसका खंडन लिखते है. कि हे मीमांसक! वेदोमें जो हिंसा कही है, सो धर्मका हेतु कदापि नहीं हो सक्ती है, इस तुमारे कहनेमे प्रत्यक्ष स्ववचनविरोध है, तथाहि- जे कर धर्मका हेतु है, तब तो हिंसा क्यों

? अरु जे कर हिंसा है,तो धर्मका हेतु क्यों कर हो सक्ती है ? ॥श्लोक॥ यतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यतां ॥ आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न माचरेत् ॥१॥ इत्यादिक जे धर्म कहे है, तो हिंसा क्यों कर है? क्यों मातानी है. अरु वंध्यानी है, ऐसा कभी नहीं होता है.

पूर्वपक्षः—हिंसा कारण है, अरु धर्म तिसका कार्य है.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जो जिसके साथ न्वय व्यतिरेक वाला होता है, सो तिसका कार्य होता है, जैसें मृ पंमादिकोंका घटादिक कार्य है, तो कुछ धर्म हिंसाही करनेसें नहीं होता , क्योंकि तप, दान, पढनादिकनी धर्मके कारण हैं.

पूर्वपक्षः—हम सामान्य हिंसाकों धर्म नहीं कहते हैं, किंतु विशिष्ट हिं कों धर्म कहते हैं, सो विशिष्ट हिंसा वोही है, जो वेदोमें करनी कही है.

उत्तरपक्षः—जे कर वेदकी हिंसा धर्मका हेतु है, तो क्या जो जीव य दिकोंमें मारे जाते है, वो मरते नहीं है? इस वास्ते धर्म है? अथ क्या उनके मरणेमें उनको आर्त्तध्यानका अनाव है, इस वास्ते धर्म ? अथवा जो यज्ञादिकोमें मारे जाते है, वो मरके स्वर्गको जाते हैं? इ वास्ते धर्म है? इसमें आद्य पक्ष तो ठीक नहीं, क्योंकि प्राण त्यागते ये तो वो जीव प्रत्यक्ष दीख पडते हैं. तथा दूसरा पक्षनी असत् है, योंकि दूसरेके मनका ध्यान डर्लक्ष है, इस वास्ते आर्त्तध्यानका अनाव हना, यहनी परमार्थ शून्य वचनमात्र है, आर्त्तध्यानका अनाव तो या होना था? वलिक हा डुःखी है? है कोइ करुणारस नरा जो हमकूं डावे? ऐसा अपनी नाषामें कहते हूये अरु अपनी नाषा करकें विरस रराट करता हूआ बदन दैन्य,नयन तरलादिक लिंग देखनेसें स्पष्ट उन बेचारोंके आर्त्तध्यान उपलब्ध होता है.

पूर्वपक्षः—जैसें लोहेका गोला पानीमें डूबने वालानी है, तोनी तिस के सूक्ष्म पत्र कर दीये जाय तो जलके उपर तरेंगे, परंतु डूबेंगे नहीं, त था विष जो है सो मारणे वालानी है, तोनी मंत्रो करके संस्कार करा हू आ गुण करता है, तथा जैसे अग्नि दाहक स्वनाव वालानी है, तोनी स त्य शीलादिकके प्रनावसें दाह नहीं करता है. ऐसेंही वेद मंत्रादिको कर के सस्कार करी हुइ जो हिंसा सो दोषका कारण नहीं, अरु वैदिकी हिं

सा निंदनीय कभी नहीं है, क्योंकि तिस हिंसाके करने वाले याज्ञिक ब्राह्मणोंकों जगत्में पूजनिक देखते है.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जितने दृष्टांत ने कहे है, सो सर्व वैषम्य है इस वास्ते सिद्धि कुछभी नही कर सके लोहेका जो पिंम, पत्रादि रूप होनेसें जलके उपरि तरता है, सो परिणामांतर होनेसें तरता है, परंतु वेद मंत्रोसें संस्कार करकें जब मारते है, तब उसमें क्या परिणामांतर होता है? क्या उस पा... सें उन पशुओंकों मारते दुःख नहीं होता है? दुःख करकें तो वे ... राट शब्द करते हैं, तो फेर लोह पत्रका दृष्टांत कैसें समीचीन हो सक्ता.

पूर्वपक्षः—जो पशु यज्ञमें मारे जाते हैं, वो सर्व देवता हो जाते है, ह यज्ञ करनेमें परोपकार है

उत्तरपक्षः—इस बातमें कौनसा प्रमाण है? तिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण नही है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो इंद्रिय संबंध वर्त्तमान वस्तुकाही ग्राहक है, "संबंधोवर्त्तमानं च, गृह्यते चक्षुरादिनेति वचनात्" अरु अनुमानभी नहीं है, क्योंकि तत्प्रतिबद्धलिंग कोइभी नही दीखता है, अरु आगम प्रमाणभी नही. क्योंकि आगम तो झगडेका घर है, इस वास्ते सिद्ध हुआ नही है. तथा अर्थापत्ति अरु अनुमान यह दोनो अनुमानकेही अंतर्गत है, तो अनुमानके खंमनेसें यहभी दोनुं खंमन हो गये.

पूर्वपक्षः—जैसें तुम जिनमंदिर बनाते हूये पृथिवीकायादि जीवोंकी हिंसाको परिणाम विशेष करके पुण्यके तांइ कल्पते हो, ऐसे हमभी यज्ञमें जो हिंसा करते है, सो पुण्यके वास्ते है, क्योंकि वेदोक्त विधि विधान रूप परिणाम विशेष इहांभी निःसंदेह होनेसें पुण्य क्यों कर नहीं होता?

उत्तरपक्षः—परिणाम विशेषभी वेही पुण्यका कारण होते है, जहां और कोइ उपाय न होवे, अरु यत्नसे प्रवृत्त होवे, ऐसी प्रवृत्ति जिनमंदिरमें हो सक्ती है, क्योंकि जिनमंदिरके विना श्रीभगवान्की प्रतिमा रहती नहीं, जहां प्रतिमा रहेगी उसीका नाम जिनमंदिर है, जे कर कहोगेकि जिनप्रतिमा पूजनेसें क्या लाभ है? तो हम तुमकूं पूछते है कि जो पुस्तकमें ककारादि अक्षर लिखते हो, इनके लिखनेसें क्या लाभ है? जे कर कहोगे कि ककारादि अक्षरोंकी स्थापना देखनेसें वस्तुका ज्ञान होता है, तो ...

ही जिनप्रतिमा देखनेसेंन्नी श्रीजिनेश्वर देवके स्वरूपका ज्ञान होता है,जे
र कहोगेकि प्रतिमा तो कारीगरने पाषाणकी बनाइ है, इससें क्या ज्ञान
ता है? तो हम पूछते है कि वेद, कुरान, इंजील, प्रमुख पुस्तक लिखा
योंने स्याही, और कागजोंके बनाये है, इनसें क्या ज्ञान होता है? जे
र कहोगेकि ज्ञान तो हमारी समझसें होता है, अक्षरोंकी स्थापना तो
मारे ज्ञानका निमित्त है, तैसेही जिनेश्वरदेवका ज्ञान तो हमारी समझ
होता है परंतु उस स्वरूपका निमित्त प्रतिमा है. क्योंकि जो बुद्धिमान्
रुप, किसी वस्तुका नकशा नही देखेगा, अर्थात् चित्र नही देखेगा,
कन्नी उस वस्तुका स्वरूप नहीं जान सकेगा? इस वास्ते जो बुद्धिमान्
, वो अवश्य स्थापना मानता है.

जे कर कहोगेकि परमेश्वर तो निराकार, ज्योतिःस्वरूप,सर्व व्यापक है,
सकी मूर्त्ति क्योंकर बन सक्ती है?

उत्तरः–यह तुमारा कहनां वडे उपहास्यका कारण है, क्योंकि जब तु
ने परमेश्वरका रूप आकार (मूर्त्ति) नही मानी, तव तो वेद, वा इंजी
, वा कुरान, इनकों परमेश्वरका वचन माननां क्यों कर सत्य हो सके
? विना मुखके साक्षर शब्द कदापि नही हो सक्ता है.

जे कर कहोगेकि ईश्वर, विनाही मुखके शब्द कर सक्ता है, तो इस बा
कहेनेमें कोइ प्रमाण नही इस वास्ते जो साक्षर शब्द है, सो विना
खके नही, अरु शरीरके विना, मुख नही हो सक्ता है, इस वास्ते जो
इ वादी किसी पुस्तककों ईश्वरका वचन मानेगा, वो जरुर ईश्वरका मुख
ौर शरीरन्नी मानेगा, अरु जब शरीर माना, तब नगवान्‌की प्रतिमान्नी
रुर माननी पडेगी, जब प्रतिमां सिद्ध हो गइ, तब मंदिरन्नी जरुर बना
ं पडेगा, इस वास्ते जिनमंदिरका बनानां जो है, सो आवश्यक है, अ
जो बनानें वाला है, सो यत्न पूर्वक बनाता है, अरु पृथिवी कायादिक
जो जीव है, सो अस्पष्ट चैतन्य है. उनकी हिंसामें अल्प पाप अरु
हुत निर्ज्जरा है, अरु तुमारे पक्षमें तो श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास
मुखोंमें यम नियमादिकों करकेन्नी स्वर्गकों होनां कहा है, तो फेर कृप
, दीन, अनाथ, ऐसें पंचेंद्रिय जीवोंका वध काहेको यज्ञमें करते हो?
ससे यही सिद्ध होता है कि जो तुम निरपराध, कृपण, दीन, अनाथ,

जीवोंकों यज्ञादिकोंमें मारते हो. तिस्सें संपूर्ण पुण्यका नाश करके अ श्य दुर्गतिमें जाओगे, शुनपरिणामका होनां तुमकों बहुत दुर्लन है.

जे कर कहोगेकि जिनमंदिर बनानेमेंनी हिंसा होती है, इस वास्ते जिनमंदिर बनानेमेंनी पुण्य नही है.

उत्तरः—यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि जिनमंदिर. नीतिना के देखनेसें उनके दर्शनसें नगवान्के गुणानुराग करकें कितनेक नव्यजीवोंकों बोधिलान होता है, अरु पूजातिशय देखनेसें मनः प्रसाद होता है, तिस मनःप्रसादसे समाधि होती है, पीछें क्रम करकें निःश्रेयस अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ तथा च नगवान् पंचलिंगीकार ॥ पुढवाइयाण जइविहु, होइ विणासो जिणालयाहिं तो ॥ तब्विसयावि सुदिठिस्स, नियमओ अत्थि अणुकंपा ॥ १ ॥ एआहिं तो बुद्धा, विरिया रस्कति जेण पुढवाइ ॥ इत्तो निव्वाण गया, अबाहया आनव मणंत ॥ २ ॥ रोगसिरावेहो इव, सुविज्ज किरियाव सुप्पउत्ताउ ॥ परिणाम सुंदरच्चिय, चिठासे बाह जोगेवित्ति ॥ ३ ॥ इनका नावार्थ लिखते है यद्यपि जिनमंदिर बनानेमें पृथिवीआदिक जीवोंकी हिंसा होती है, तोनी सम्यक् दृष्टिकी तिन जीवों उपर निश्चयही अनुकंपा है ॥ १ ॥ इनकी हिंसासें निवर्त्त हो कर ज्ञानी निर्वाणकों प्राप्त होये है. कैसें निर्वाणकों ? अव्याहत, अनंत काल लगि ॥ २ ॥ जैसे रोगीकी नाडीकों बडे यत्नसें वैद्य वींधता है. उस वैद्यके अैसे परिणाम अछे है कि कदाचित वो रोगी मरनी जावे, तोनी वैद्यकों पाप नहीं, तैसेही जिनमंदिरके बनानेमे यत्नपूर्वक प्रवर्त्तमान पुरुषोंकों उन जीवोंके उपर अनुकंपाही है, अरु वेदके कहे मुजब बंध करनेमें किंचित् मात्रनी पुण्य हम नहीं देखते है

पूर्वपक्षः—ब्राह्मणोके तांइ पुरोमाशादि प्रदान करनेसें पुण्यानुबंधी गुण होता है

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां ठीक नही. क्योंकि पवित्र सुवर्णादि प्रदान मात्रसेंनी पुण्योपार्जनेका संनव होता है, अरु जो कृपण, दीन, अनाथ, पशु गणको मारणा, अरु तिनके मांसका दान करना, यह केवल तुमारी निर्दयता अरु मांस लोलुपताहीका चिन्ह है.

पूर्वपक्षः— हम नि·केवल प्रदान मात्रही पशुवध क्रियाका फल नही करते है, किंतु भूत्यादिकं अर्थात् लक्ष्मी आदिभी होती है, यदाह श्रुतिः " श्वेतवायव्यामजमालाभेत् भूतिकामइत्यादि " भावार्थः—श्वेतवर्णका जिनका वायु देवता स्वामी है ऐसें बकरेकों आलाभेत् हिंसेत् अर्थात् मारे. कौन मारे ? लक्ष्मीका कामी मारे.

उत्तरपक्ष—यहभी तुमारा कहनां व्यभिचार पिशाच करी ग्रस्त होनेसें अप्रमाणिक है,क्योंकि भूति जो है,सो अन्य उपाय करकेंभी साध्यमान है

पूर्वपक्षः— तहां यज्ञमें जो छागादिक मारे जाते है वे मरके देवगतिको प्राप्त होते है, यह यज्ञ करनेमें उन जीवों उपरि उपकार है

उत्तरपक्ष.—यहभी तुमारा कहनां प्रमाणके अभावसें वचन मात्र है, क्योंकि यज्ञमें मारे गये पशुयोंमेंसूं सद्गतिके लाभ होनेसें मुदित मन हो करके कोइभी पशु पीछा आ करके अपणे स्वर्गके सुखोंका निरूपण नहीं करता है.

पूर्वपक्षः—इस कहनेमें आगम प्रमाण है ॥ यथा ॥ औषध्य. पशवोवृक्षा,स्तिर्यंच.पक्षिणस्तथा ॥ यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः,प्राप्नुवंत्युछ्रित पुनरित्यादि ॥ भावार्थ —औषधियो, अजादिक पशु. किंजल्कादि पक्षी. जो ये यज्ञमें मारे जाते है, वे फेर उछ्रितं अर्थात् उन्नतिकों प्राप्त होते है.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहनां ठीक नहीं. तुमारा आगम पौरुषेय अपौरुषेय विकल्पों करके हम आगें खंडन करेंगे अरु श्रोत्रविधि करके पशुओंके मारनेंसे जे कर स्वर्गप्राप्ति होती होवे, तब तो कसाइ (खटीक) प्रमुख भी स्वर्गवासी हो जावेगे ॥ तथा च पठंति पारमर्पा. ॥ यूपं छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमं ॥ यद्येवं गम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ॥ १ ॥ एक औरभी बात है, जे कर अपरिचित, अस्पष्ट चैतन्य, अनुपकारी पशुओंके मारनेसें त्रिदिव पदवी प्राप्त होवे, तदा परिचित, स्पष्ट चैतन्य, परमोपकारी, माता पितादिकोके मारनेंसें याज्ञिकोंको अधिकतर पदकी प्राप्ति होवेगी? यहभी करनां चाहिये.

पूर्वपक्ष—" अचिंत्योहि मणिमंत्रौषधीना प्रभाव इति वचना त् " इस वास्ते वैदिक मंत्रोंकी अचिंत्य शक्ति होनेसें उन मंत्रों करके संस्कार करा हूआ पशुके मारनेसे अवश्य स्वर्ग प्राप्ति होती है.

उत्तरपक्षः—यहजी कहनां व्यभिचारी है. क्योंकि इह लोकमें गर्भाधान, जातकर्मादिकोंके विषे तिन मंत्रोंका व्यभिचार देखनेमें है, तो अदृष्ट स्वर्गादिकोंमेंजी तिनोके व्यभिचारका अनुमान करते हैं कि वेदोक्त मंत्रो करिकें संस्कार करे हूये विवाहसेंजी अनंतरही स्त्री धवा, अल्पायुष्या, दारिद्र्यादि उपद्रव करकें विधुर होते हूये, देखनेमें आ है, अरु वेद मंत्रोंके संस्कार विनाजी कितनेक विवाह करने वाले सु धनी, आदिक दीखते हैं.

पूर्वपक्षः—जिस विवाहादिकोंमें विधवादि हो जाती हैं तहां क्रिया वैगुण्यतासें विसंवाद होता है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें यह संशय कभी दूर नहीं होवेगा, तहां क्रियाकी वैगुण्यता विसंवादका हेतु है? किंवा वेदमंत्रोकी अस थैता विसंवादका हेतु है?

पूर्वपक्षः—जैसे तुमारे मतमें "आरोग्ग बोहिलानं समाहिवरमुत्तमं दिंतु इत्यादिक वचनोंका कालांतरमेंही फल चाहते (वांछते) है, ऐसें हमारे निमत्त वेद वचनोकाजी इस लोकमे फल नहीं कल्पना करते है, किंतु कालां कातरमें फल होता है. इस वास्ते विवाहादिकका उपालंभावकाश नहीं

उत्तरपक्षः—अहो वचन वैचित्री! जैसें वर्त्तमान जन्मविषे विवाहादि कोंमें प्रयुक्त मंत्र, संस्कारों करके आगम जन्ममें तिसका फल है, ऐसें ही द्वितीयादि जन्ममेंजी विवाहादिकोंके पुण्य हेतु माननेसें अनंत भव का अनुसंधान होवेगा, ऐसें तो कदापि संसारकी समाप्ति नहीं होवेगी, तब तो किसीकोजी मोक्षप्राप्ति नही. इस्से यही सिद्ध हूआ जो वेद अपर्यवसित संसार वल्लरीका मूल (कंद) है, अरु आरोग्यादि प्रार्थना जो है, सो असत्य अमृषा भाषा है, परिणाम विशुद्धिका कारण होनें दोषके वास्ते नही, क्योंकि तहां भाव आरोग्यादिककीही विवक्षा है, अरु वो जो आरोग्यपणा है, सो चातुर्गतिक संसार लक्षण भावरोग परिक्ष रूप होनेसें उत्तम फल है, तिस विषयक जो प्रार्थना है, वो कैसें विवेक वानोकों आदरणीय नहीं? ऐसेंजी मत कहनां जो परिणाम शुद्धिसें तिस फलकी प्राप्ति नही, क्योंकि सर्व वादीयोके भावशुद्धिसें फल प नेमें विवाद नही. ऐसेंजी मत कहना जो वेदविहित हिंसा बुरी नहीं, क्य

के सम्यक् दर्शन ज्ञान संपन्न अर्चिमार्गप्रतिपन्न वेदांतवादीयोनेंभी निं
दा की है "तथा च तत्त्वदर्शिन. पठंति ॥ श्लोक ॥ देवोपहारव्याजेन, य
ज्ञव्याजेन वाथवा ॥ घ्नंति जंतून् गतघृणा, घोरां ते यांति दुर्गतिं ॥ १ ॥
वेदांतिका अप्याहुः ॥ अंधे तमसि मज्जामः, पशुभिर्ये यजामहे ॥ हिंसा ना
म नवेद्धर्मो, न नूतो न नविष्यति ॥१॥ "तथा अग्निर्मामेतस्मात् हिंसाकृ
तादेनसोमुंचतु छांदसत्वान्मोचयतु इत्यर्थः" व्यासेनाप्युक्तं ॥ ज्ञानपालिपरि
क्षेपे, ब्रह्मचर्यदयांनसि ॥ स्नात्वातिविमले तीर्थे, पापपंकापहारिणि ॥ १ ॥
ध्यानाग्नौ जीवकुंमस्थे, दममारुतदीपिते ॥ असत्कर्मसमित्क्षेपै, रग्निहोत्रं
कुरुत्तम ॥२॥ कषायपशुनिर्दुष्टै, धर्मकामार्थनाशकैः ॥ शममंत्रहुतैर्यज्ञ, वि
धेहि विहित बुधैः ॥ ३ ॥ प्राणिघातात्तु यो धर्म, मीहते मूढमानसः ॥
स वांछति सुधावृष्टिं, कृष्णाहिमुखकोटरात् ॥ ४ ॥ इत्यादि.

अरु जो यज्ञ करने वालोंकों पूजनिक पणा तुम कहते हो, सोजी असा
र है, क्योंकि अबुद्ध जनही उनकों पूजते है, नतु विविक्त बुद्धिमान्.
अरु मूर्खोंका जो पूजना है, सो प्रामाणिक नहिं, क्योंकि मूर्ख तो कुत्ते औ
गर्दभकोंनी पूजते हैं.

अरु जो तुमने कहा था कि देवता, अतिथि, पितृ प्रीति संपादक होने
सें वेद विहिता हिंसा, दोषके तांइ नही, यहजी जूठ है, क्योंकि देवता
ओंके संकल्प मात्रसेंही अनिमत आहारके रसका स्वाद, प्राप्त हो जाता है,
अरु देवताओंका शरीर वैक्रियरूप है, सो तुमारी जुगुप्सित पशुमांसा
दि आहुतिके लेनेकों उनकी इछाही नही हो सक्ती है, क्योंकि औदारिक
शरीर वालेही तिन मांसादिकोंके ग्राहक है, जे कर देवताओंकोनी कवल
आहारी मानोगे, तब तो देवताओंका शरीर तुमने मंत्रमय माना है, तिस
के साथ विरोध होवेगा, अरु अन्युपगमकी बाधा है, देवताओंका शरीर
मंत्रमय तुमारे मतमे असिद्ध नहीं है, "चतुर्थ्यंत पदमेव देवता इति जैमि
नीय वचनप्रामाण्यात् ॥ तथा च ॥ मृगेंद्रः शब्देतरत्वे युगपद्भिन्नदेशेषु यष्टृषु
नसा प्रयाति सांनिध्यं मूर्त्तत्वादस्मादिवदिति"

तथा जिस वस्तुकी आहुति देवताओंकों देते है, वोतो जस्मीजावमा
प्त हो जाती है, तो फेर देवता क्या उस जस्म अर्थात् राखकों खाते
है? इस वास्ते तुमारा कहनां प्रलापमात्र है.

तथा एक औरनी बात है, यो यह त्रेताग्नि है, सो तेतीस कोटि मुख है, "अग्निमुखा वै देवा इति श्रुतेः" तब तो उत्तम, मध्यम, सर्व देवता एकही मुख करकें खाने वाले सिद्ध हूये. अरु सर्व आ... खाने वाले बन गये, तब तो तुरकोंसेंनी अधिक हो गये. क्यों कि एक पात्रमें एकठे खाते है, परंतु एक मुख करकें सर्व नहीं खाते है.

एक औरनी दूषण है, एक शरीरमें मुख बहुत हैं, यह बात तो आगेंनी सुनते थे, परंतु अनेक शरीरोंका एक मुख, यह तो बडा है. जब सर्व देवताओंका एक मुख माना, तब तो किसी पुरुषने एक देवताकी पूजादि करकें आराध्या, अरु अन्य देवताओंकी निंदादि विराध्या, तब तो एक मुख करकें युगपत् अनुग्रह, निग्रह, वाक्यके रणमें संकरका प्रसंग होवेगा.

तथा एक औरनी बात है कि, मुख जो है सो देहका नवमा ... तो जब उन देवताओंका मुखही दाहात्मक है, तब एक एक शरीर दाहात्मक होनेसें तीनो नवनही नस्मीनूत हो जाने चाहियें त्यलमतिचर्चया ॥

अरु जो कारीरी यज्ञादिकोमें वृष्टयादि फलका अव्यनिचार है, फलमें आहुति करके प्रीणीत देवताका अनुग्रह जो तुम कहते हो स अनेकांतिक है. किसी जगे व्यनिचारनी देखनेमें आता है, अरु जहां निचार नही, तहांनी आहुतिके नोजन करनेसें अनुग्रह नहीं. कि देवता विशेष अतिशय ज्ञानी है, स्वउद्देश्य पूजोपचारकों देख करकें, णे स्थानमेंही स्थित हूये थके पूजा करनें वाले प्रति प्रसन्न हो कर का कार्य, अपणी इछासें कर देता है, अनुपयोग करके अनजानता थवा जानता थकानी पूजकके अनाग्य करकें कार्य नहींनी करता क्योंकि इव्य, क्षेत्र, काल, नावादि सहकारियो करकें कार्यका होना ही पडता है, अरु वो जो पूजा उपचार है, सो नि.केवल पशुओंहीके मारने नहीं हो सक्ती, दूसरी तरेंसेंनी हो सक्ती है. तो फेर पाप एक फल शौनिकवृत्ति करनेसें क्या है ?

अरु जो बगल अर्थात् बकरेके मांस होमनेसें परराष्ट्र वश करने वा सिद्धयादेवीके परितोष होनेका जो अनुमान है, तो इसमें क्या आश्चर्य है

योंकि कितनेक क्षुद्र देवताकों तैसेंही प्रीति है, तहांन्नी वे दुष्ट देव सो अन्नी पूजा देखके राजी होते हैं, परंतु मलिन (बीनत्स) मांसके खाने नहीं राजी होते. जे कर होम करी हूइ वस्तुकों खाते है, तब तो निंबपत्र, कडुवा तेल, आरनाल, धूमांशादिन्नी हूयमान द्रव्यन्नी तिनका नोजन हो जावेगा, वाह क्याही तुमारे देवता सुंदर नोजन करते हैं!

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो संस्कार संपन्न पक्वान्नादिक करकेंन्नी हो सक्ती है, तो फेर तिनके अर्थ महोक्ष महाजादिकोंका कल्पनां सो न.केवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है.

अरु श्राद्धादिकोंके करनेसें पितरोंकी जो प्रीति है, सोन्नी अनेकांतिक है, क्योंकी कितनेक श्राद्ध नहीन्नी करते है, तोन्नी तिनकी संतानवृद्धि देखते है, गर्दन्नशूकरादिके जैसें वृद्धि है. तिस वास्ते श्राद्धादिकोंका जो करणां है, सो मुग्ध जनोकों विप्रतारणमात्रही फल है. जो पितर लोकांतरमें प्राप्त हूये हैं, सो अपणे सुकृत दुःकृत कर्मोके अनुसार सुर नारकादि गतियोंमें सुख दुःख नोग रहे है, तो फेर पुत्रादिकोंके दीयें हूये पिंडोकों क्योंकर नोगनेकी इछा कर सक्ते हैं? "तथा च युष्मद्यूथिन' पठति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जतूनां, श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणं ॥ त निर्वाणप्रदीपस्य, स्नेहः संवर्द्धयेछिखामिति ॥

तथा श्राद्ध करनेसें पुण्य क्यों कर उस पितरोंके पास चला जाता है? क्योंकि वो पुण्य तो औरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप है, औ पगोंसें रहित है. जे कर कहोगेकि उद्देशतो पितरोंहीका है, परंतु पुण्य, श्राद्ध करनेवाले पुत्रादिकोंकों होता है, यहन्नी कहनां ठीक नहीं पुत्रादिकोंकों पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकोके मनमें यह वासना नहीं जो हम पुण्य करते है, इसका फल हमकों मिलेगा, तो बिना पुण्यकी नावनासें पुण्य फल नहीं होता है, इस हेतुसें नतो पितरोंकों, अरु न पुत्रादिकोंकों श्राद्ध करनेका फल है, किंतु बिचमेंही त्रिशंकुके दृष्टांत करिकें विलीन हो गया.

अरु पापानुबंधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसें पाप रूपही है, जे कर कहोगे कि ब्राह्मण जो कुछ खाते है, वो उनको मिलता है, तो इस कहनेकी तुमकोंही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोंहीका मोटा उदर दिखला

ड देता है, परंतु उनके पेटमें प्रवेश करकें पितर खाते हूये कदापि दिखते है, भोजनावसरमें ब्राह्मणोके उदरमें प्रवेश करते हूये [कोइभी लिंग हम नही देखते हैं,केवल ब्राह्मणोहीको तृप्त होते दे

अरु जो तुमने कहाथाकि हमारे पास आगम प्रमाण है, सो आगम पौरुपेय है? वा अपौरुपेय है? जे कर कहोगेकि पौरुपेय है, क्या सर्वज्ञका करा हूआ है? वा असर्वज्ञका करा हूआ है? जे कर द्य पक्ष मानोगे, तब तो तुमारे मतकी व्याहति होवेगी, क्योंकि तु यह सिद्धांत है, " अतीन्द्रियाणामर्थानां, साक्षाद्रष्टा न विद्यते ॥ वेदवाक्येभ्यो, यथार्थत्वविनिश्चय· ॥ १ ॥ दूसरे पक्षमें दूषण वाले के करे हूये शास्त्रका विश्वास नहीं होता है, जे कर कहोगेकि अ है, तब तो संभवही नहीं हो सक्ता है, स्वरूप निराकरणेसें तु पुरुषक्रियानुगत रूप इसका है. पुरुष क्रियाके विना यह क्योंकर है? इस वास्ते जो साक्षर वचन है. सो पौरुपेयही है, वचनवत्. वचनात्मकही वेद है, " तथा चाहु· ॥ ताल्वादिजन्मा ननु वर्णो, वर्णात्मको वेद इति स्फुटं च ॥ पुंसश्च ताल्वादिरतः कथं स्या,दपौ पेयोयमिति प्रतीतिः ॥१॥ इति श्रुतिकों अपौरपेयत्व " अंगीकार करकेंभी तुमने तदर्थव्याख्यान पौरुपेयही अंगीकार करी है, अन्यथा " अग्निहोत्र जुहूयात् स्वर्गकामः ' इसका अर्थ " श्वमांसं भक्षयेत इति" नियामकके अ भावसें ऐसें क्यों न हो जावे? तिस वास्ते यही अच्छा है जो शास्त्रका पौ रुपेय मानना होवे. तुमारे हठसें अपौरुपेय वेद माने, तोभी तिसको प्रमा णता नही, क्योकि प्रमाणता जो है, सो आप्त पुरुपाधीन है. जब वेद प्रमा ण न हूये, तब तिन वेदोका कहा हूआ तथा वेदानुसारी स्मृतिभी प्रमाण भूत नही. हिंसात्मक याग श्राद्धादिविधि प्रामाण्य विधुरही है.

पूर्वपक्षः—जो यह कहा है कि "न हिंस्यात् सर्वभूतानीत्यादि" करकें जो हिंसाका निपेध करा है, सो औत्सर्गिक मार्ग है, अर्थात् सामान्य विधि है, अरु वेदविहिता जो हिंसा है, सो अपवाद विधि है, अर्थात् विशेष वि धि है, तव तो अपवाद करकें उत्सर्गकी बाधा होनेसे वैदिकी हिंसा दोष का कारण नहीं " उत्सर्गापवादयोरपवादविधिर्बलीयानिति न्यायात् " तु मारे जैनोंके मतमेंभी एकांत हिंसाका निपेध नही है, कितनेक कारणोंके

होनेसें पृथिव्यादिक जीवोंकी हिंसा करनेकी आज्ञा है, अरु जब साधु रोग पीडित होता है, "असंस्तरे" अर्थात् असामर्थ्य होता है, तब आधाकर्मादि आहारके ग्रहणेकीभी आज्ञा है, ऐसेही हमारे मतमें याज्ञिकी हिंसा जो है, सो देवता अतिथिकी प्रीतिके वास्ते पुष्टालंबनरूप होनेसें अपवाद रूप है, इस वास्ते दोष नही.

उत्तरपक्षः—अन्यकार्यके वास्ते उत्सर्ग वाक्य, अरु अन्य कार्यके वास्ते अपवाद पद कहनां, यह उत्सर्ग, अपवाद, कदा भी नही हो सक्ता है, किंतु जिस अर्थके वास्ते शास्त्रमें उत्सर्ग कह्या है, तिसी अर्थके वास्ते अपवाद होवे, तबही उत्सर्ग अपवाद हो सक्ता है, तिन दोनोंहीकों उन्नत निम्नादि व्यवहारवत् परस्पर सापेक्ष होनेसेंही एकार्थके साधक हो सक्ते है, जैसें जैनोंके संयम पालनेके अर्थ नवकोटि विशुद्ध आहारकों ग्रहणां, सो उत्सर्ग है, तैसेंही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, आपत्में पडनेसें गत्यंतरके अभावसें पंचकादि यत्ना करके अनेषणीयादि आहारकों जो ग्रहण करनां, सो अपवाद है, सोभी संयमहीके पालने वास्ते है, ऐसेंभी मत कहनां कि जिस साधुकों मरणाही एक शरणा है, तिसकों गत्यंतर अभावकी असिद्धि है ॥ उक्तं चार्षेभिः ॥ सव्वछ सं जमं सं,जमाउ अप्पाणमेव रक्खिज्जा ॥ मुच्चइ अइवायाउ, पुणो विसोही नयाविरई ॥१॥ इत्यागमात् ॥ इसका भावार्थः—सर्वत्र संयम करणां, जे कर संयमके दूषित होनेसें प्राण रहित होवे, तो संयममें दूषणभी लगा कर प्राणोंकी रक्षा करणी, प्राणोके रहणेसे प्रायश्चित्त द्वारा उस पापसें छूट करके शुद्ध हो जावेगा, अरु अविरतिभी नही रहेगी, तथा आयुर्वेदमें भी जो वस्तु किसी रोगमें किसी अवस्थामें अपथ्य है, सोइ वस्तु उसी रोगमें उसी अवस्थामे अवस्था, देश, काल, देख कर देवे, तो पथ्य है. देशादि अपेक्षा करकें ज्वर वालेकों दही खानेको देते है॥ तथाच वैद्याः ॥ कालाविरोधिनिर्दिष्टं, ज्वरादौ लंघनं हितं ॥ ऋतेऽनिलश्रमक्रोध, शोककामकृतज्वरात् ॥ १ ॥ जैसें प्रथम अपथ्यका परिहार करना, अरु जो तहांही अवस्थांतरमे तिसीकों भोगना, सो दोनोही जगे रोगके दूर करनेका प्रयोजन है. इस्सें यह सिद्ध हूआ जो एकही वस्तुविषयक उत्सर्ग अपवाद है.

अरु तुमारे तो उत्सर्ग, और अर्थ वास्ते है, तथा अपवाद,और अर्थ

वास्ते है. क्योंकि तुमारे तो "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" यह जो सो डुर्गतिके निषेध वास्ते है, अरु जो तुमारी अपवाद हिंसा है, ता, अतिथि, पितरोंकी प्रीति संपादनेके अर्थे है, इस वास्ते परस्पर पेक्ष होनेसें उत्सर्ग अपवाद विधि नहीं हो सक्ती है. तब कैसें अ. पवाद, उत्सर्ग विधिकों बाधा कर सक्ता है?

ऐसेंनी मत कहनां कि वैदिक हिंसाकी जो विधि है, सो स्वर्गहेतु नेसें डुर्गति निषेधार्थही है, वैदिकहिंसा स्वर्गका हेतु नहीं है, यह अच्छी तरेसें लिख आये हैं, वैदिक हिंसाके विनाजी स्वर्गकी प्राप्ति की है, गत्यंतरके अनावमेंही अपवाद हो सक्ता है, कुछ हमही झ करनेसें स्वर्गका निषेध करते हैं, किंतु तुमारा व्यासजीजी कहता यदाह व्यास महर्षिः ॥ पूजया विपुलं राज्य,मग्निकार्येण संपदः ॥ तपः विशुद्ध्यर्थं, ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदं ॥१॥ यहां अग्निकार्य शब्दवाच्य गादिविधि उपायांतर करके जो साध्य है सपदा, तिसहीका हेतु हूआ आचार्य तिस यागकों सुगतिका हेतु अर्थात् ही कदर्थन ... है, तथा सोइ व्यासजी जावाग्निहोत्र "ज्ञानपाली" इत्यादि श्लोकों स्थापन कर गया है ॥ इति मीमांसकमतखंमनम् ॥ ५ ॥

अथ चार्वाकमत खंमन लिखते है ॥ चार्वाक कहता है की अ नही है, तब किस वास्ते मतावलंबी पुरुष, वचनकलहा करते है? आत्माही नास्ति है. तब जैन, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, अरु मिनीय, यह जो षट् दर्शन है, सो निःकेवल लोकोंकों भ्रममे माज जोग विलास छुडा देते है, वास्तवमें आत्मानामा कोइ वस्तु नहीं. वास्ते हमारा मत अछा है, जे कर आत्मा है,तो कैसें तिसकी सिद्धि है?

उत्तरपक्षः—प्रतिप्राणी स्वसंवेदन प्रमाण चैतन्यकी अन्यथानुपपत्ति सिद्ध है, तथाहि यह जो चैतन्य है, सो जूतोंका धर्म नहीं है, जे कर भू तोंका धर्म होवे, तब तो पृथिवीकी कठीनताकी तरे सर्वत्र सर्वदा उपलंभ होनां चाहिये, सो सर्वत्र सर्वदा उपलंन होता है नहीं, क्योंकि लोष्टादिकों में अरु मृत् अवस्थामें चैतन्य उपलंन नही होता.

पूर्वपक्षः—लोष्टादिकोंमें अरु मृत् अवस्थामेंजी चैतन्य है, केवल शक्ति रूप करिकें है, तिस वास्ते नहीं उपलंन होता है.

उत्तरपक्षः—दो विकल्पके न उल्लंघनेसें यह तुमारा कहनां अयुक्त है, याहि वो शक्ति, चैतन्यसें विलक्षण है? अथवा चैतन्यही है? जे कर होगेकि विलक्षण है,तब तो शक्तिरूप करकें चैतन्य है ऐसा मत कहो, योंकि नही पटके विद्यमान हूआ पटरूप करकें घट रहता है, "आह च प्रज्ञाकरगुप्तोपि ॥ श्लोक ॥ रूपांतरेण यदित, त्तदेवास्तीति मारटीः ॥ चै न्यादन्यरूपस्य, जावे तद्विद्यते कथम् ॥१॥ जे कर दूसरा पक्ष मानोगे,तव चैतन्यही वो शक्ति है,तो फेर क्युं नही उपलंन होती? जे कर कहोगेकि आवृत्त होनेसें उपलंन नही होती, तो यहजी ठीक नही, क्योंकि आवृत्ति तम आवरणका है, सो आवरण क्या विवक्षित परिणामका अनाव है? अथवा परिणामांतर है? अथवा जूतोंसें अतिरिक्त और वस्तु है? उसमें विवक्षित परिणामोंका अनाव तो नही हैं, क्योंकि एकांत तुछ होने कर तिस विवक्षित परिणाम अनावकों आवरण शक्ति नही है, अन्यथा सकों अतुछ रूप होनेसें सोजी जावरूप हो जावेगा. अरु जब जावरू हूआ, तब तो पृथिवी आदिकोमेंसूं अन्यतम हूआ,क्योंकि "पृथिव्यादी येव जूतानि तत्त्वमिति वचनात्" अरु पृथिवी आदिक जो जूत है, सो तन्यके व्यंजक हैं, परतु आवरक नहीं. तब कैसें आवरकत्व सिद्ध होवे?

अथ जे कर कहोगेकि परिणामांतर है,सोजी अयुक्त है, क्योंकि परिणा मांतरकों जूत स्वनाव होने करकें जूतोंकी तरें चैतन्यका व्यंजकही हो सक्ता है, आवरक नही.

अथ जे कर कहोगेकि जूतोंसें अतिरिक्त वस्तु है, यह कहनां बहुत ही असगत है, क्योकि जूतोसे अतिरिक्त वस्तु माननेसे "चत्वार्यैव पृथ्व्यादि जूतानि तत्त्वमिति" इस कहनेंसें तत्त्वसंख्याका व्याघात हो जावेगा

एक औरजी बात हैकि यह जो चैतन्य है, सो एक एक जूतका धर्म है? वा सर्व जूत समुदायका धर्म है? एक एक जूतका धर्म तो नहीं, क्योंकि एक एक जूतमें दीखता नहीं औ एक एक परमाणुमे संवेदन उपलंन नही होता है जे कर प्रति परमाणुमें होवे, तब तो पुरुष, सहस्र चैतन्य वृंदकी तरें परस्पर जिन्न स्वनाव होवेगा, परतु एक रूप चैतन्य नहीं होवेगा, अरु देखनेमें एक रूप आता है. "अहं पश्यामि" अर्थात् मै देखता हूं, मै करता हूं, ऐसें सकल शरीरका अधिष्ठाता एक उपलंन होता है.

जे कर समुदायका धर्म मानोगे सोजी प्रत्येकमें अजाव होनेसें है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामे असत् है, वो समुदायमेंजी नहीं का है, जैसें रेणुकायोंमें तेल.

जे कर कहोगेकि मद्यागोमें मद शक्ति नही है समुदायमें हो जाती ऐसें चैतन्यजी हो जावे, तो क्या दोष है? यहजी अयुक्त है, क्योंकि क मद अंगोमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते हैं, त. दीखता है माधुर्यादि इक्षुरसमें धातकी फूलोंसें थोडीसी विकलता दक शक्ति, ऐसें चैतन्य, सामान्य प्रकारसें जूतोमें नहीं उपलंज होता तब कैसें जूत समुदायमें चैतन्य हो सक्ता है? जे कर प्रत्येक असत् समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुछ हो जाना हियें. यह अति प्रसंग होवेगा.

एक औरजी बात है, कि जे कर तुमने चैतन्य धर्म माना है,तब तो वश्य धर्मके अनुरूप धर्मीजी मानना चाहियें, जे कर अनुरूप न मानो तब तो जल अरु कठिनता इन दोनोको धर्म धर्मी माननां चाहियें, सेंजी मत कहनां जो जूतही धर्मी हैं, क्योंकि जूत, चैतन्यसें विलक्ष हैं, तथाहि चैतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त्त है, अरु जूत इससें वि ण हैं, तब कैसें परस्पर धर्म धर्मी जाव हो सक्ता है? अरु यह चैतन्य तोंका कार्यजी नही है, अत्यंत वैलक्षण्य होनेसें कार्य कारण जाव पि नहीं होता है ॥ उक्तंच ॥ काठिन्याबोधरूपाणि, जूतान्यध्यक्षसिद्धित चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं जवेत् ॥ १ ॥

एक औरजी बात हैकि जे कर जूतकार्य चेतना होवे, तब तो स जगत् प्राणीमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विशेष सन्नावके अ सें सकल जगत् प्राणिमय नही होता है, तो वो परिणति विशेष स सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होती है? सोजी परिणति जूनमात्र निमित्त है, तब कैसे तिसका किस जगे होनां न होनां सिद्ध होवे? तथा वो णति विशेष किस स्वरूपवाली है, जे कर कहोगेकि कठिनादि रूप है, इ दिखाते है कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते हूये काष्टादिकोमें दीखते तिस वास्ते जहां कठिनत्वादि विशेष है, सो प्राणिमय है, शेष नहीं. जी व्यजिचार देखनेसें असत् है तथाहि अविशिष्टजी कठिनत्वादि विशे

ंया कहीं होता है, और कहीं नही होता, अरु किसी जगे कठिनत्वादि
ेशेषके विनाजी संस्वेदज घने आकाशमे संमूर्छिम उत्पन्न होते है.

एक औरजी वात है कि कितनेक जीव समानयौनिकजी विचित्रवर्ण
ंस्थान वाले दीखते है, तथाहि गोबर आदि एक योनिवालेजी कितने
क नीले शरीर वाले हैं, अपर पीत शरीर वाले है, अन्य विचित्र वर्ण वा
ा है, अरु संस्थानजी इनका परस्पर जिन्न है, जे कर जूतमात्र निमित्त
ातन्य होवे, तब तो एक योनिक सर्व एक वर्ण संस्थान वाले होने चा
हियें, परंतु सोतो होते है नहिं, तिस वास्ते आत्माही तिस तिस कर्मके
ाश तैसें उत्पन्न होती है, यही सिद्ध माननां चाहियें.

जे कर कहोगेकि आत्मा होवे. तब जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध
होता ? केवल देहके हुवांही संवेदन उपलब्ध होता है, अरु देहके अजा
व होयां जस्म अवस्थामें नही दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नहीं. कि
तु सवेदन मात्रही एक है, सो संवेदन देहका कार्य है, देहहीमे आश्रित
है, जींतके चित्रवत् चित्र, जींतके विना नही रह सक्ता है,अरु दूसरी जींत
उपर संक्रमणजी नही होता है, किंतु जींत उपर उत्पन्न हूआ है, अरु
जींतके साथही विनाश हो जाता है, संवेदनजी ऐसेही जान लेना.यहजी
असत् है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करके अमूर्त्त है, अरु आंतर शरीर अति
सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नही ॥ तडुक्तं ॥ श्लोक ॥ अंतराजावदेहोपि,
सूक्ष्मत्वान्नोपलज्यते ॥ निःक्रामन् प्रविशन् वात्मा,नाजावोऽनीक्षणादपि ॥१॥
तिस वास्ते आंतःशरीर युक्तजी आत्मा आता जाता हूआ नही दीखता
है, परतु लिंगसे उपलब्ध होता है, तथाहि तत्काल उत्पन्न हूआजी
कृमी जीवकों अपने शरीर विषे ममत्व है, घातककों जान करके जोड
जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वले ममत्वके अन्यास
पूर्वक है, तैसेही देखनेसें. अरु जितना चिर, किसी वस्तुके गुण दोष नहीं
जानता, उतना चिर, उस वस्तुमे किसीकोंजी आग्रह नही होता है, तब
तो जन्मकी आदिमें जो शरीरका आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अन्या
सपूर्वक संस्कार निबंधन है, इस वास्ते आत्माका जन्मांतरसे आवनां सि
द्ध हुआ॥ उक्त च ॥ शरीरग्रहरूपस्य, चेतसः संजवोयदा ॥ जन्मादौ देहि
नां दृष्टः, किन्न जन्मांतरा गतिः॥ १ ॥

अथ आगति प्रत्यक्षसें नहीं दीखती है, तब कैसें तिसका बोध होवे ? यह तुमारा कहनां कुछ दूषण नहीं, क्योंकि अनुमेय विषे प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती है, परस्पर विषयकों परिहार प्रत्यक्ष अनुमानका प्रवर्त्तनां बुद्धिमान् मानते है, तब कैसें यह पण है ? आह च ॥ अनुमेयेस्ति नाध्यक्ष, मिति कैवात्र दुष्टता ॥ ध्यानुमानस्य, विषयो विषयो नहि ॥ १ ॥

अरु जो चित्रका दृष्टांत तुमने कहा था, सोजी विषम होनेसें है, तथाहि चित्र जो है सो अचेतन है अरु गमन स्वजाव रहित है आत्मा जो है सो चैतन्य है सो कर्मोंके वशसें गति आगति करता है, कैसें दृष्टांत अरु दार्ष्टांतकी साम्यता होवे ? जैसें देवदत्त किसी विव ग्राममे कितनेक दिन रह करके फेर ग्रामांतरमें जाता रहता है,तैसेंही त्माजी विवक्षित जवमें देहकों त्याग कर जवांतरमें देहांतर रच कर रहता

अरु जो तुमने कहा था कि संवेदन देहका कार्य है, सोजी ठीक न क्योंकि चक्षुरादि इंद्रियद्वारे उत्पन्न होनेसें चाक्षुषादि संवेदन कथं देहसेंजी उत्पन्न होता है, परंतु जो मानस ज्ञान है, वो कैसे देहका क हो सक्ता है ? तथाहि सो मानस ज्ञान देहसें उत्पद्यमान होता हुवा द्रियरूपसें उत्पन्न होता है ? वा अनिंद्रिय रूपसें उत्पन्न होता है ? केश नखादि लक्षणसें उत्पन्न होता है ? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं, कर इंद्रियरूपसें उत्पन्न होवे, तब तो इंद्रिय बुद्धिवत् वर्त्तमानार्थका ग्राहक होनां चाहिये, इंद्रियज्ञान जो है, सो वर्त्तमान अर्थही ग्रहण सक्ता है, इस सामर्थ्यसे उपजायमान मानस ज्ञानजी इंद्रियज्ञानवत् र्त्तमान अर्थकाही ग्रहण कर सकेगा.

अथ जब चक्षुरूप विषय व्यापार करता है, तब रूप विज्ञान उ होता है, शेष काल नहीं. तब वो रूपविज्ञान वर्त्तमानार्थ विषय है, कि वर्त्तमानार्थ विषयही चक्षुका व्यापार होनेसे. अरु रूप विषय व्या त्तिके अजावमें मनोज्ञान है, तिस वास्ते नियत काल विषयक नहीं ऐसेही शेष इंद्रियमेंजी जान लेना, तब कैसें मनोज्ञानको वर्त्तमान ग्रहण प्रसक्ति होवे ? उक्तं च ॥ अक्षव्यापारमाश्रित्य, जवदक्षजमिष्यते तद्व्यापारोन तत्रेति, कथमक्षजव जवेत् ॥ १ ॥

अथ अनिंद्रिय रूपसें है, सोजी तिसकों अचेतन होनेसें अयुक्त है, केश नखादिक तो मनोज्ञान करकें स्फुरत चिद्रूप नहीं उपलंन होते तब कैसें तिनसेंती मनोज्ञान होवे? आह च ॥ चेतयंतो न दृश्यंते, श्मश्रुनखादयः ॥ ततस्तेभ्यो मनोज्ञानं, जवतीत्यतिसाहसं ॥ १ ॥ जे कर केश, नखादिकों करकें प्रतिबद्ध मनोज्ञान होवे, तब तो ति के उछेद हूया मूलसेंही मनोज्ञान नही होवेगा? अरु केश, नखा दिकों उपघात हूआं ज्ञानजी उपहत होनां चाहिये, परंतु सोतो हो है नही, इस वास्ते यह तीसरा पक्षजी ठीक नही.

एक औरजी बात है, कि मनोज्ञानके सूक्ष्म अर्थ जेतृत्व अरु स्मृ पाटवादि विशेप जो है, सो अन्वयव्यतिरेक करके अभ्यासपूर्वक है, तथाहि वोही शास्त्र, इहा अपोहादि प्रकार करकें जे कर वार वार चारियें, तब सूक्ष्म सूक्ष्मतर अर्थावबोध उल्लास होता है, अरु स्मृ पाटव अपूर्व वृद्धि होती है, ऐसें एक शास्त्रविपे अभ्याससेंती सू र्थ जेतृत्व शक्तिके होयां, अरु स्मृतिपाटवके हूयां अन्य शास्त्रोमेंजी हजसेंही सूक्ष्मार्थावबोध, अरु स्मृतिपाटव उल्लास होती है, ऐसें अ यास हेतुक सूक्ष्मार्थ जेतृत्वादिक मनोज्ञानके विशेप देखे है, अरु कितनें कों अभ्यासके विनाजी देखियें है, तिस वास्ते अवश्य परलोकका अभ्यास हेतु है, सो काहेते? कि कारणके साथ कार्यका अन्यथानुपपन्न पणा है, तिस प्रतिबंधसें अदृष्ट तिसके कारणकीजी सिद्धि है, तिस वास्ते जीवका परलोकमें जाना सिद्ध हूआ.

अरु देह, क्षयोपशमका हेतु है, इस वास्ते देहजी कथंचित् ज्ञानकों उपकारी हम मानते है नहीं देहके दूर होनेसें सर्वथा ज्ञानकी निवृत्ति होती. जैसे अग्नि करके घटकों कुछ विशेपता है, परतु अग्निकी निवृत्ति हूया घट मूलसेंही उछेद नही हो जाता है, केवल कछुक विशेप दूर हो जाता है, जैसे सुवर्णकी द्रवता. ऐसें इहांजी देहकी निवृत्ति हूआ कोइक ज्ञानविशेप तत्प्रतिबद्धही निवृत्त होता है, परंतु समूल ज्ञानका उछेद नहीं होता है, जे कर देहही ज्ञानका निमित्त मानेगे, अरु देहकी निवृत्तिसें ज्ञान निवृत्तिवाला मानोगे, तब तो स्मशानमें देहके जस्म हूयां तो ज्ञान न होवे, परतु देहके विद्यमान हूआ मृत अवस्थामे किस वास्ते नही होता?

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानभी ज्ञानके हेतु है, तिनके ज्ञान नहीं होता है, यहभी कहनां ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान हेतु नही हो सके है, किंतु ज्ञानहीसें तिनकी प्रवृत्ति होनेसें. तथाहि प्राणापानका करने वाला मंद इछा करता है, तब मंद होता है, अरु व दीर्घकी इछा करता है, तब दीर्घ होता है, जे कर देहमात्र नै° प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तब तो वशसें प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी, क्योंकि जिनका निमित्त देह ऐसी जो गौरता औ श्यामता, वो इछाके वशसें प्रवृत्त नहीं होती जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके बहुतेके होनेसें ज्ञानभी थोडा वा बहुत होनां चाहियें, क्योंकि कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यभी हीन होवेगा. जैसें माटीका पिंम बडा किंवा छोटा होवेगा, तब घटभी अरु छोटा होवेगा, अन्यथा वो कारणभी नहीं. तुमारेभी तो नके न्यून अधिक होनेसें ज्ञान, न्यून अधिक नहीं होता है. किंतु होता तो दीखता है क्योंकि मरणावस्थामे प्राणापान अधिकभी होत तोभी विज्ञान घट जाते है.

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करकें देहके णी हो जानेसें प्राणापानकी वृद्धिसेंभी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है, सेंही मृतावस्थामेंभी देहके विगुणीभूत होनेसें चेतनता नहीं है, यहभी असमीचीन है, जे कर ऐसें होवे, तब तो मरा हूआभी जिंदा होनां चाहियें॥ तथाहि ॥ "मृतस्य दोषाः समीभवति" अर्थात् मरण पीछें वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, औ ज्वरादि विकारके न देखनेसें दोषोका न रहना प्रतीत होता है, अरु जो दोषोका समपणा है, सोइ आरोग्यता है, "तेषां समत्वमारोग्य, क्षयवृद्धिविपर्यय.॥ इति वचनात्" ॥ आरोग्य होनेसें देहको फेर जिंदा होनां चाहियें, अन्यथा देह कारणही नहीं, जिनके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं. जे कर मारा हुवा भी उठे, तो हम देहकों कारणभी मान लेवे.

पूर्वपक्ष—यह फेर जी उठनेका प्रसंग तुमारा अयुक्त है, क्योंकि यद्यपि दोष, देहकों वैगुण्य करके निवृत्त हो गये है, तोभी तिनका वैगुण्य पणा

...रा हुआ नहीं निवृत्त होता है, जैसें अग्निका करा हुआ काष्ठमें विकार ...ग्निके निवृत्त होनेंसेंज्नी नहीं निवृत्त होता है.

... उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां अयुक्त है,क्योंकि विकारज्नी दो प्रकारका ..., एक निवृत्त होता है, एक नहीं निवृत्त होता है, अनिवृत्त विकार जैसें ...ष्ठमें अग्निका करा हूआ श्यामता मात्र अरु निवृत्त विकार जैसें अग्नि ...त सुवर्णमें इवता. वायु आदिक जो दोष है, सो निवृत्त विकार है, चि...त्सा प्रयोग देखनेसें. जे कर वायु आदि दोषज्नी अनिवृत्त विकार होवे, ...ब तो चिकित्सा वैफल्य हो जावेगी, ऐसेंज्नी मत कहना मरणेंसें पहिलां ...षनिवृत्त विकारारंनक है, अरु मरण कालमें अनिवृत्त विकारारंनक है, ...योंकि एककों एक जगें निवृत्त अनिवृत्त विकार दो रूप नही हो सक्के है,

... पूर्वपक्षः—व्याधि दो प्रकारकी लोकमें प्रसिद्ध है. एक साध्य, दूसरी अ...ाध्य, उसमें साध्य जो है, सो चिकित्सासें दूर हो सक्ती है, अरु दूस...ी दूर नहीं होती है, तब दो प्रकारकी व्याधि क्यों नही सिद्ध हो सक्ती है?

... उत्तरपक्ष.—यहज्नी असत् है, क्योंकि तुमारे मतमें असाध्य व्याधिही ...नही हो सक्ती है तथाहि व्याधिका जो असाध्यपणा है, सो आयुके क्ष...य होनेसें होता है, क्योंकि तिसी व्याधिमें समान औषध वैद्यके योगसें ...नी कोइ मर जाता है, कोइ नही मरता है, अरु जो प्रतिकूल कर्मोंके उ...दय करकें चित्राढि व्याधि है, वो हजार औषधसेंज्नी साधी नही जा...ती है, यह दोनों प्रकारकी व्याधि परमेश्वरके वचनोंके जानने वालोंके म...तमेंही सिद्ध होती है, परतु तुमारे जूतमात्र तत्ववादीयोके मतमें नही ...हो सक्ती है. कहीक आसाध्य व्याधि इस वास्ते हो जाती है, दोषकृत विकारके दूर करणेमें समर्थ औषधि, अरु वैद्यके अन्नावसें जब औषधि अरु वैद्यके अन्नावसें व्याधि वृद्धिमान हो कर सकल आयुको उपक्रम करती है, अर्थात् क्षय कर देती है. तथा कोइक दोषोंके उपशम होनेसें अकस्मात् मर जाता है. अरु कोइक अति दुष्ट दोषोंके होनेंसेंज्नी नहीं मरता है. यह वात तुमारे मतमें नही हो सक्ती है॥ आह च ॥ श्लोक ॥ दोषस्योपशमेऽप्यस्ति, मरणं कस्यचित्पुनः ॥जीवनं दोषदुष्टत्वे. प्येतन्न स्याद्भवन्मते ॥ १ ॥ हमारे मतमें तो जहां लगि आयु है, तहां लगि दोषो करके पीडितज्नी जीता रहता है, अरु जब आयु क्षय हो जाता है, तब

दोपोंके विकार विनाभी मर जाता है, इस वास्ते देह,ज्ञानका निमित्त
एक औरभी बात है कि देह जो तुम ज्ञानका कारण मानते हो सहकारी कारण मानते हो? वा उपादान कारण मानते हो? जे सहकारी कारण मानते हो, तब तो हमभी देहकों क्षयोपशमका हेतु ते है, कथचित् विज्ञानका हेतु मानते है, जे कर उपादान कारण गे तब तो अयुक्त है, उपादान वो होता है कि जिसके विकारी कार्यभी विकारी होवे, जैसें मृत्तिका और घट. देहके विकार करकें विकारी नहीं होता है, अरु देह विकारकें विनाभी जय शोकादिकों संवेदनकों विकारी देखते हैं, इस वास्ते देह, संवेदनका उपादान नही ॥ उक्तं च ॥ अधिकृत्य हि य द्वस्तु, यः पदार्थो विकार्यते ॥ तत्तस्य, युक्तं गोगवयादिवत् ॥१॥ इस कहने करकें जो कहते है, ता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यका उपादान कारण है,सोभी खंमन गया. तहां माता पिताके विकारी होनेसे पुत्र विकारी नहीं होता है, जो जिसका उपादान होता है, सो अपने कार्यसें अभेद होता है, माटी और घट. जब माता पिताका चैतन्य,पुत्रके चैतन्यके साथ हूआ, तब तो पुत्रका चैतन्य,माता पिताके चैतन्यसें अभेद होनां इसी वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है, इस हेतुसें भूतोंका वा भूतोंका कार्य चैतन्य नहीं है, इस वास्ते आत्मा सिद्ध है. विशेष चार्वाकमतका खंमन देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, स्याद्वाद रत्नाकर शास्त्र देख लेनां ॥ इति चार्वाक मत खंमनं ॥ इस परिच्छेदमें जो कुगुरुके लक्षण कहे है, वे लक्षण चाहो जैनके साधुमे होवें, चाहो अन्यमतके साधु होवे, उन सर्वकों कुगुरु कहनां चाहियें ॥ इतिश्री तपगच्छीये मुनि श्रीबुद्धि जयशिष्य मुनि आनंदविजयआत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे कुगुरुस्व पनिर्णयनामो चतुर्थः परिच्छेद संपूर्ण. ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्थ परिच्छेद संपूर्ण. ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचम परिछेद प्रारंभः ॥

यह पंचम परिछेदमें धर्मतत्त्वका स्वरूप लिखते हे धर्म उसकों कह हे, जो दुर्गति जाते हुवे आत्माकों धरी राखे, एतावता दुर्गतिमें न जा देवें, उसकूं धर्म कहते हैं. तिस धर्मके तीन भेद है १ सम्यक् ज्ञान, २ स क् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र, इन तिनोमेंसूं प्रथम ज्ञानका स्वरूप संक्षेपसें खते हैं ॥श्लोक॥ यथावस्थिततत्त्वानां, संक्षेपाद्विस्तरेण वा ॥ योवबो तमत्राहु:, सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः ॥ १ ॥ अस्यार्थः— यथावस्थित नय माणों करकें प्रतिष्ठित हे स्वरूप जिनका, अैसें जो जीव, अजीव, आश्रव, वर, निर्ज्जरा, बंध, मोक्ष रूप सप्त तत्त्व, तथा प्रकारांतरें पुण्य पापके धिक होनेसें नव तत्त्व होते हैं, इनका जो अवबोध, अर्थात् ज्ञान सो म्यक् ज्ञान जानना. अरु वह जो ज्ञान है, सो क्षयोपशमके विशेषसें किसी विकों संक्षेप करकें अरु किसी जीवकों विस्तार करके होता है. इन नव त्वोंमें प्रथम जो जीवतत्त्व हे तिसका स्वरूप अैसा है कि जीव कहो अ वा आत्मा कहो यह दोनो एकही वस्तुके नाम है.

प्रश्नः— जैनमतमें आत्माका क्या लक्षण है ?

उत्तरः— चैतन्य लक्षण है,

प्रश्न.— जैनमतमें जीव प्राणी आत्मा किसकों कहते हे ?

उत्तर.—॥ श्लोक ॥ यः कर्त्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफलस्य च ॥ सं र्त्ता परिनिर्वाता. सह्यात्मा नान्यलक्षण. ॥ १ ॥ इस श्लोकसे जान ले । इसका भावार्थ कहते हे, कि जो मिथ्यात्वादिकों करकें कलुषित अर्थात् लो हो करके वेदनीयादिक कर्मोंका कर्त्ता, (करनेवाला) अरु तिन अपने करे हुये कर्मोंका जो फल सुख दुःखादिक तिनोंका भोगनेवाला, अरु नारकादि भावो विषे कर्म विपाकके उदय करके जो भ्रमण करनेवाला अरु सम्य दर्शनादि तीन रत्नोके उत्कृष्ट अभ्यास करके संपूर्ण कर्मांशको दूर करकें जो निर्वाण रूप होनेवाला, सोइ प्राणी है, सोइ जीव है, सोइ आत्मा है, यह नंदीसूत्रमे लिखा है. आत्माकी सिद्धि चार्वाकमतखंडनमे लि ख आये हे. जे कर आत्माकी सिद्धि विशेष करकें देखनी होवे, तदा शुद्धां भोनिधि, गधहस्ती महाभाष्य देख लेनी यह आत्मा सर्व व्यापीभी नही है, अौ एकांत नित्य, कूटस्थभी नही है. एकात अनित्य क्षणिकभी नही है, किंतु

शरीरमात्रव्यापी कथंचित् नित्यानित्य रूप है. इनका खंमन संमत द्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, अनेकांतजयपताका प्रमुख स्त्रोंसें देख लेनां. इस वास्ते मैनें नहीं लिखा है. जो ग्रंथ वडा जारी जावेगा, अरु पढनेवाले आलस कर जायेंगे.

तहां जे जीव है सो दो प्रकारके हैं. एक मुक्त रूप, दूसरा संसारी दोनोंही प्रकारके जीव अनादि अनंत है. अरु ज्ञान दर्शन इनका है, अरु जो मुक्त स्वरूप आत्मा है वो सर्व एक स्वभाव है जन्मादि करके वर्जित है अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य, औ अनंत दमय स्वस्वरूपमे स्थित है, निर्विकार निरंजन ज्योतिःस्वरूप है

अरु जो संसारी जीव है, सो दो प्रकारकें हैं. एक स्थावर, दूसरा त्रसमें स्थावरके पांच भेद है, १ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ त ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय. तथा त्रस जीवके चार भेद हैं. १ य. २ तीनइंद्रिय, ३ चारइंद्रिय, ४ पांचइंद्रिय. स्थावर जो है सो सर्व कही स्पर्शेंद्रिय वाले है. कृमी, गंमोला, जलोक, सुंमी, इत्यादि जीव एक र्शन अर्थात् शरीर इंद्रिय, दूसरा रसनेंद्रिय अर्थात् मुख, इन दो इं ले हैं. कीडी, जू, सुरसली, ढोरा, इत्यादि जीव, दो पूर्वोक्त अरु एक ना सिका, यह तीन इंद्रियवाले है. माखी, भ्रमर, सहेतकी माखी, मंछर, पत ङी, विछू, इत्यादि जीव, तीन पूर्वोक्त, अरु चउथा नेत्र, इन चार इंद्रिय वाले हैं. नारक, तीर्यंच, मनुष्य, अरु देवता, ये पंचेंद्रिय जीव है. यह सर्व स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान, इन पाच इंद्रिय वाले हैं. स्थावर जीवके दो तरेके है, एक सूक्ष्म नामकर्मके उदयवाले सूक्ष्म, दूसरा बादर नामकर्मके उदय वाले बादर, यह जो स्थावर अरु त्रस जीव है, सो समुच्चय छे पर्याप्ति वाले है. इन छे पर्याप्तिका नाम लिखते हैं. १ आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इंद्रियपर्याप्ति, ४ श्वासोछ्वासपर्याप्ति, ५ भाषापर्याप्ति, ६ मनःपर्याप्ति.

अथ पर्याप्तिका स्वरूप लिखते है. आहार (भोजन) तिसके ग्रहणकी जो शक्ति, तिसका नाम आहारपर्याप्ति कहते है. २ शरीर रचनेकी शक्ति, तिसका नाम शरीरपर्याप्ति कहते हैं ३ इंद्रिय रचनेकी शक्ति, सो इंद्रियपर्याप्ति है. ऐसेंही सर्वत्र जान लेना. जिस जीवके पूर्वोक्त छे शक्ति अधूरी हैं, उसकू अपर्याप्ति कहते है. स्थावर जीवोंमें आदिकी चार पर्या

हे अरु दोइंद्रिय, तीनइंद्रिय, चौरिंद्रिय, इन जीवोंमें एक मन विना पांच पर्याप्ति हैं. पंचेंद्रिय जीवोंमें छही पर्याप्ति है. १ पृथिवीकाय, २ जलकाय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, (पवन) इन चारोमें असंख्य जीव है. तथा वनस्पतिकायमें जो प्रत्येक वनस्पति है, उसमें तो असंख्यजीव है. अरु साधारण वनस्पतिमें अनंत जीव है. इन स्थावर अरु त्रसोंके जघन्य तो चौदह भेद है. मध्यम (५६३) भेद है अरु उत्कृष्ट अनंत भेद है. इनमें मध्यम चौदह भेद नरक वासीयोंके हैं. अडतालीश भेद तिर्यच गतिवालोंके है, औ तीनसो तीन भेद मनुष्यगति वालोंके है (१९८) भेद देवगति वालोंके हैं. यह सर्व मध्यम भेद (५६३) हैं. इनका विचार जो देखनां होवे, तदा प्रज्ञापन्न सिद्धात, तथा जीव समास प्रकरणादि शास्त्रोंसें देख लेनां.

प्रश्नः— हे जैन! दो इंद्रियादिक जीव तो जीव लक्षण संयुक्त होनेसें जीव सिद्ध हो जाते है, परंतु पृथिवीआदि पांच स्थावरोमें जीव कैसें हम मान लेवे? क्योंकि पृथिवी आदिकोमें जीवका कोइभी चिन्ह उपलब्ध नही होता है.

उत्तरः—यद्यपि पृथिवी आदिकमें प्रगट जीवके होनेका चिन्ह नहीं दीखता, तोभी अव्यक्तपणेमें जीवके चिन्हसें जीव सिद्ध होते है जैसें धत्तूरेके तथा मदिरापानादिकके नशे करकें मूर्छित हूये जीवोंके व्यक्त लिंगके होनेसेंभी जीवपणा है; तैसेंही पृथिवी आदिककोंभी सजीव माननां चाहिये.

प्रश्न.—मदिरेकी मूर्छामें उश्वासादिकोंके देखनेंसें अव्यक्तमेंभी चेतना लिंग है परतु पृथिवी आदिकोंमें तैसा चेतनताका लिंग कोइभी नहीं. तिनकों कैसें चैतन्य माना जावे?

उत्तरपक्ष.—जैसें तुमने कहा है, सो ऐसें है नहीं. क्योंकि पृथिवीकायमें प्रथम स्व स्व आकारमे रहे हूये लवण, विद्रुम, पाषाणादिकोंकों अर्श मास अंकुरकी तरें समान जातीय अंकुरउत्पत्ति पणा है. वनस्पतिकी तरें चैतन्यपणेका चिन्ह है, इस वास्ते अव्यक्त उपयोगादि लक्षणके होनेसें पृथिवी सचेतन है यह सिद्ध हुआ.

प्रश्न.—विद्रुम पाषाणादि पृथिवी कठिन रूप है, तो फेर कठिन रूप होनेसें कैसे पृथिवी सचेतन हो सक्ती है?

उत्तरः—जैसें शरीरमें अस्थि अर्थात् हाड अनुगत है, सो कठि तोभी सचेतन है,ऐसेंही जीवानुगत पृथिवीका शरीरभी सचेतन है. वा पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, इनके शरीर जीव सहित है छेद्य, उत्क्षेप्य, भोग्य. घ्रेय, रसनीय, स्पृश्य, द्रव्य होनेसें. सास्ना आदि संघातवत् पृथिवी आदिकोंकों छेद्यत्वादि जो दिखते हैं, तिनका इभी गोप नही सक्ता है. अरु यहभी मत कहनां कि पृथिवी आदि जीव शरीरत्व जो साधनां है, सो अनिष्ट है, क्योंकि सर्व पुद्गल हम द्रव्य शरीर मानते है, अरु जीव सहित तथा जीव रहित जो है सो ऐसें है शस्त्र करके अनुपहत जो पृथिवी आदिक हैं तो पगके संघातवत्. संघात न होनेसे कदाचित् सचेतन हैं, ऐसेंही क्य शस्त्रोपहत होनेसें हाथादिकोंकी तरे अचेतनभी है, सो अचेतनही है.

प्रश्नः—प्रश्रवणवत् अर्थात् मूत्रकी तरें जीवके लक्षण न होनेसें जीव नही है.

उत्तरः—हेतु असिद्ध होणेसें यहभी कहनां ठीक नहीं है तथाहि थीका शरीर कलल अवस्थामे (अधुना उत्पन्न होयेकों) द्रवपणा सचेतन पणा देखते है, ऐसेंही जलमेंभी जाननां. तथा अंडेमें रस मात्र है परंतु अवयव कोइ उत्पन्न हूआ नहीं. औ व्यक्त (हाथ पगादिक) भी नही. तोभी सचेतन है, इस उपमासें जलभी सचेतन है. यह प्रयोग है. शस्त्र करके अनुपहत हूआ द्रवरूप होनेसें हस्तिशरीरके पादानभूत कललवत् जल सचेतन है. इस हेतुमे विशेषणके उपादान अर्थात् ग्रहणेसे प्रश्रवण दूधादिकोंमें व्यभिचार नही. तथा अनुपहत द्र होनेसें अंडेमें रहे कललवत् सात्मक जल है. तथा हिमादि किसीक वस्थामें अप्काय होनेसें इतर उदकवत् सचेतन है तथा किसी भूमि खननसे स्वाभाविक संभव होनेसें मेंडकवत् सचेतन जल है, अथवा आकाशमें उत्पन्न हूआ जल बादलादि विकारके हुवा स्वत ही अर्थात् पही उत्पन्न हो करके पडनेंसे मत्स्यवत् सचेतन है तथा शीतकालमें अ त शीतके पडते हूये नदी आदीकोंमें अल्पके हूआं अल्प अरु बहुतके हुआं बहुत.उष्मा देखते हैं,सो उष्मा सजीव हेतुकही है. अल्पबहुत जित मनुष्योंके शरीरोंसें जैसे अल्प बहुत उष्म होता है. जलमे शीत

...ही हैं, ऐसें वैशेषिक कहते है, तथा शीतकालमें शीतके बहुत पडनेसें ...तःकालमें तलावादिकोंके पश्चिम दिशामें खडे हो कर जब तलावादि दे...यें, तदा तिस जलसेंती निकलता हूआ बाष्पका समूह दिखता है, सो ... जीवहेतुकही है, तिसका प्रयोग ऐसे हैं कि शीतकालमें जो वाष्प है, ...ो उष्ण स्पर्शवाली वस्तुसें होता है. वाष्प होनेसे शीत कालें शीत ज...ल करकें सींचे हूए मनुष्य शरीर वाष्पवत् अरु जो उकुडिका कूडे कचवरमें ... धूंआ बाष्प निकलता है, तहांभी हम पृथिवीकायके जीव मानते है. ...न हेतुओंसें जल सजीव सिद्ध होता है.

प्रश्नः—तेजस्कायमें जीव किस तरें सिद्ध होता है?

उत्तरः—जैसें रात्रिमें खद्योतका शरीर जीव शक्तिसें बना हूआ, प्रकाश ...वाला है, ऐसें अंगारादिकभी प्रकाशमान होनेसें सचेतन है. तथा जैसें ...ज्वरकी उष्मा जीवके प्रयोग विना नहीं होती, ऐसेंही अग्निमेंभी गरमी ...जीवोंके विना नही है. क्योंकि मृतकके शरीरमें ज्वर कदापि नहीं होता ...है. ऐसें अन्वय व्यतिरेक करकें अग्नि सचित्त जाननी. यहां यह प्रयोग है ...कि आत्माके संयोगसें प्रगट भया है अंगारादिकोंको प्रकाश परिणाम शरी...रस्थ होनेसें खद्योत देह परिणामवत्. तथा आत्मा संयोग पूर्वक शरीर...स्थ होनेसे ज्वरोष्मवत् अंगारादिकोंमे उष्णता है ऐसेंभी मत कहनां कि ...सूर्यके उष्मके साथ अनेकांतिक हेतु है, तो सूर्यादिकोमें जो उष्मा है, सो ...भी आत्मसंयोग पूर्वकही हम मानते हैं, तथा अग्नि सचेतन है, क्योंकि ...यथायोग्य आहारके करनेंसे. वृद्धिआदि विकारके उपलंभ होनेंसें पुरुषके ...शरीरवत् इत्यादि लक्षणो करकें अग्निकों सचेतनता है.

प्रश्न.—वायुकायमें (पवनमें) सचेतनताकी सिद्धि कैसें करोगे?

उत्तर.—जैसें देवताका शरीर शक्तिके प्रभाव करके, अरु मनुष्योंका शरीर अंजनादि विद्यामंत्रके प्रभाव करकें अदृश्य हो जानेंसें नेत्रोंसे नहीं दिखता, तोभी विद्यमान चेतना वाला है, ऐसें सूक्ष्म परिणाम होनेंसें परमाणुकी तरें वायुकाय जो नेत्रोंसें नहीं दीखता तोभी विद्यमान चेतना वाला है तथा अग्नि करके दग्ध पाषाण खंडगत अग्निवत् प्रयोग यह है कि चेतनावान् वायु है, विना दूसरायोके प्रेरणेसे, नियम करकें तिर्यग्ग

ति होनेसें, गवाश्वादिवत् तिर्यग्गतिके नियम करनेसें, परमाणुके विचार नही. ऐसें वायु शस्त्र करकें अनुपहत सचेतन है.

५ अरु बनस्पतिमें तो प्रत्यक्ष प्रमाणसें जीव सिद्धही है, इस यहां विस्तारसें नहीं लिखा. आगमभी सर्वज्ञका कथन करा हूआ जल, अग्नि, पवन अरु बनस्पतिमे जीवका होनां कहता है. यह कोइ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय अरु पंचेंद्रियमें जीव नही तो तिन मूढोंके न माननेसें कुछ हानी नही. यह संक्षेपसें जीवोंका प लिखा है जब विस्तारसें देखनां होवे, तब जैनमतके सिद्धांत ने ॥ इति प्रथम जीवतत्त्वं संपूर्ण ॥

अथ दूसरा अजीव तत्त्व लिखते हैं. अजीव उसकों कहते है, कि जीवके लक्षणोंसें विपरीत होवे, जो ज्ञानसें रहित होवे, औ जो गंध, अरु स्पर्शवाला होवे, नर अमरादि नवमें न जावे, अरु ज्ञान. दिक कर्मका कर्त्ता न होवे, अरु तिनोके फलका भोगने वाला न होवे उस्वरूप होवे, तिसकों अजीव कहते है, सो अजीव द्रव्य पांच है उसका नाम कहते है, १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आ शास्तिकाय, ४ पुद्गलास्तिकाय, ५ काल.

१ तिनमें जो धर्मास्तिकाय है, सो लोकव्यापी है, औ नित्य है, स्थित है, अरूपी है, असंख्य प्रदेशी है, जीव अरु पुद्गलकी गतिमे उप भक है, यद्यपि जीव अरु पुद्गल स्वशक्तिसे चलते है, तोभी चलनेमें धर्मास्ति काय अपेक्षा कारण है. जैसे मछी जलमें तरती तो अपनी शक्तिसें है, प रतु अपेक्षा कारण जल है. ऐसेही जीव पुद्गलको गति साहायक धर्मा स्तिकाया है जहां लगि यह धर्मास्तिकाया है, तहां लगि लोककी मर्यादा है. जे कर धर्मास्तिकाया न मानीयें, तो लोकालोककी मर्यादा न रहेगी. अ रु जहां लगि धर्मास्तिकाया है, तहां लगि जीव पुद्गल गति करते है. इस का पूरा स्वरूप जैनमतके ग्रंथ पढेविना नहीं जान सक्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

२ दूसरा अधर्मास्तिकाय द्रव्य है. इसका सर्व स्वरूप धर्मास्तिकायकी त जानना. परतु इतना विशेष है, कि यह द्रव्य, जीव पुद्गलको स्थिति साहा यक है. जैसे पथिक जन जब चलता चलता थक जाता है, तब किसी वृ क्षादिककी छायामें वैठता है, सो वैठता तो वो आपही है, परतु आश्रयविना

हीं वैठ सक्ता है ऐसेंही जीव पुज्ञल स्थित तो आपही होते है, परंतु
पेक्षा कारण अधर्मास्तिकाय है ॥ इति अधर्मास्तिकाय ॥

३ तीसरा आकाशास्तिकाय द्रव्य है, इसका स्वरूपभी धर्मास्तिकायवत्
ाननां, परंतु इतनां विशेष है कि यह द्रव्य लोकालोक सर्वव्यापी है,
रु अवगाह दान लक्षण है, जीवपुज्ञलके रहनेमे अवकाश दाता है,
ह तीनों द्रव्य आपसमें मिले हूये हैं. जहां लगि आकाशमें धर्मास्तिका
, अधर्मास्तिकाय है, तहां लगि लोक है, अरु जहां केवल एकला आकाशही
, और कोइ वस्तु नहीं, तिसका नाम अलोक है. इति आकाश द्रव्यं.
४ चवथा पुज्ञलास्तिकाय द्रव्य है, पुज्ञल नाम परमाणुओंकाभी है, अरु
ो परमाणुओंका घट पटादि कार्य है, उसकोंभी पुज्ञलही कहते हैं, ए
परमाणुमें एक वर्ण है, एक रस है, एक गंध है, दो स्पर्श है, औ का
ही जिनका लिंग है, वर्णसें वर्णांतर, रससें रसांतर, गंधसें गंधांतर, स्प
सें स्पर्शांतर हो जाते है. यह परमाणु द्रव्यरूप करकें अनादि अनंत
, पर्यायस्वरूप करकें सादि सांत है, इन परमाणुओंका जो कार्य है,
ो कोइक प्रवाहसें तो अनादि अनंत है, अरु कोइ सादि सांतभी है, जो
ह जड दीखता है, सो सर्व इन परमाणुओंका कार्य है. सूकी हुइ व
स्पति सर्व अरु अग्नि आदिक शस्त्रों करकें परिणामांतरकों प्राप्त हूये
थिव्यादिक सर्व पुज्ञल है, समुच्चय पुज्ञल द्रव्यमें पांच वर्ण, पांच रस, दो
ध, आठ स्पर्श. पांच संस्थान, उसमें काला, नीला, रक्त, पीत, शुक्ल, य
पांच तो वर्ण है. तीक्ष्ण, कडुआ, कषाय, खाटा, मीठा, यह पांच रस
. सुगंध, डुर्गंध, यह दो प्रकारकी गंध है खरखरा अर्थात् कठोर, सु
ोमल, हलका, भारी, शीत, उष्ण, चीकणा, रूखा, यह आठ स्पर्श है.
नसें अधिक जो वर्णादि है, सो सर्व इनहीके मिलनेसें हो जाते है. इन
ुज्ञलोमें अनंत शक्तिया अनंत स्वभाव है. १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल,
भाव, इत्यादि तिस तिस निमित्तोंके मिलनेसें विचित्र परिणाम हो जा
े है इति पुज्ञलद्रव्यं ॥ ४ ॥

५ पाचमा कालद्रव्य है, सो प्रसिद्ध है. यह पांच द्रव्य अजीव है, सो
ेमित्त जैन श्वेतांबराचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरकृत सम्मतितर्क ग्रंथमें
ाच लिखे है. सो कहते हैं, १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, ४ पूर्वकृत

कर्म, ५ पुरुषाकार. इन पांचोंमेंसूं एककों माने, तो वो मिथ्याज्ञान मिथ्यादृष्ट है, अरु इन पांचोंके समवायकों माने, तो सम्यक्ज्ञान म्यक्दृष्ट है, इन पांच निमित्तोमेंसूं १ काल, २ स्वनाव, ३ नियति, इ नों निमित्तोंका स्वरूप क्रियावादीके मतमें लिख आये हैं. अरु ५ पू कृत कर्म. उनका स्वरूप आगें कर्मोंके स्वरूपमे लिखेंगे. अरु पांचमा पु र, सो जीवके उद्यमका नाम है. इन पांचो निमित्तोंसें जगत्की निवृत्ति हो रही है, इन निमित्तोंहीसें नरकादि गतियोंमे जीव जाते रु सुख दुःखका फल नोगते है, इन निमित्तोंके विना फलका दाता शादिक कोइनी नहीं, जे कर कोइ वादी इन पांचो निमित्तोंके समव ईश्वर माने, तब तो हमनी ईश्वर कर्त्ता मान लेवेगें, क्योंकि जगन्न स्वगीतामें लिखा है, कि अनादि जो द्रव्यमें द्रव्यत्व शक्ति है, सो दार्थोंको उत्पन्न करती है,औ लयनी करती है, सो शक्ति चैतन्या दि अनंत स्वनाव वाली है, तिसकों कर्त्ता ईश्वर माननेसें जैनमतकी हानी नहीं है ॥ इति अजीवतत्त्व संपूर्ण ॥ २ ॥

३ अथ पुण्यतत्त्व लिखते है प्रथम तो पुण्य उपार्जन करनेका नव का हैं, "उक्तं च स्थानांगसूत्रे ॥ अन्नपुन्ने पाणपुन्ने वत्थपुन्ने लेणपुन्ने सयण मणपुन्ने वयपुन्ने कायपुन्ने नमोक्कारपुन्ने इति सूत्रं ॥" व्याख्या.—१ पा ताइं अन्नका दान करनेसे जो तीर्थंकर नामादि पुण्य प्रकृतिका बंध तिसका नाम अन्न पुण्य है. ऐसेंही २ पीनेकों जल देवे, ३ वस्त्र देवे, ४ नेकों स्थान देवे, ५ सोने बैठनेको आसन देवे, ६ गुणिजनको देख नमें तोष धरे, ७ वचन करके गुणिजनोंकी प्रशंसा करे, ८ काया पर्युपासन अर्थात् सेवा करे, ९ गुणिजनकों नमस्कार करे. यह बात ण्यकी जो कही, सो कुछ जैनीयोंकेही देनेसे नहीं, किंतु किसी मत को कोइ क्यों न हो, कोइनी अनुकंपा करके जिसकों दान देवेगा, वो उ उपार्जेगा, परंतु इतना विशेष है. कि पात्रकों जो दान देना है, तो अरु मोक्ष इन दोनोकाही हेतु है. अरु जो अनुकंपा करकें सर्वजनों देवेगा, तो केवल पुण्यही उपार्जेगा. जैनमतके किसी शास्त्रमें पुण्य का निषेध नहीं. क्योंकि जैनमतके ऋषनदेवादि चोवीश तीर्थंकर भये हैं, नोंनेंनी दीक्षा लेनेसे पहिला एक क्रोड, आठ लाख, सोनइये दिन दि

...कि एक वर्ष तांई दीये हैं. इसी कारणसें जैनमतमें प्रथम दानधर्म है. ...लाजा जैनमतके शास्त्रमें औरभी केई तरेंसें पुण्यका उपार्जन लिखा है. ...अथ पुण्यका फल बैतालीस प्रकार करके भोगनेमें आता है, सो बैंता ...लिस प्रकार लिखते हैं. १ जिसके उदयसें जीव शाता भोगता है, सो शा ...तावेदनीय, २ जिसके उदयसें जीव क्षत्रियादि उच्च कुलमे उत्पन्न होता है, ...सो उच्चगोत्र, ३ जिसके उदयसें जीव मनुष्य गतिमें उत्पन्न होता है, सो ...मनुष्यगति, ४ जिसके उदयसें जीव देवगतिमें उत्पन्न होता है, सो देवग ...ति, ५ जिसके उदयसें जीव अपांतराल गतिमें नियतदेश अनुश्रेणी गम ...न करता है, अरु नियत मर्यादापूर्वक अंगोका विन्यास, अर्थात् स्थाप ...न करनेवाली नामकर्मकी प्रकृतिकों आनुपूर्वी कहते हैं, उसमे जो मनु ...ष्य गतिमें आने वाली जीवके उदयमें है, सो मनुष्यानुपूर्वी, ऐसेही ६ ...देवानुपूर्वी, ७ जिसके उदयसे जीव पंचेंद्रिय पणा पाता है, सो पंचेंद्रि ...य जाति. अथ पांच शरीर कहते हैं. ८ जिसके उदयसें जीव औदारिक ...वर्गणाके पुजलोंकों ग्रहण करके औदारिक शरीरकी रचना करता है, अ ...र्थात् औदारिक शरीर पणे परिणाम करता है, सो औदारिक शरीर नाम ...कर्मकी प्रकृति है, ऐसेही ९ वैक्रियक, १० आहारिक, ११ तैजस, १२ ...कार्मण, इन पांचो शरीरोंकी प्रकृतियोंका अर्थ कर लेनां. तथा अंगोपाग ...नाम है, उसमें अंग सो शिर प्रमुख, उपांग सो अंगुली प्रमुख है, शेष ...अंगोपांग है, यथा १ शिर, २ छाती, ३ पेट, ४ पीठ, ६ दो बाहु, ...८ दो साथलां, यह आठ अंग हैं, तथा अंगुल्यादि उपांग है, शेष न ...खादि अंगोपाग है, जिसके उदयसे जीवकों आदिके तीन शरीरोंमें अं ...गोपांगकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम तिन शरीरके अंगोपांग है सो ...यह है, १३ औदारिक अंगोपाग, १४ वैक्रिय अंगोपाग, १५ आहारक अंगोपांग. १६ जिसके उदयसें जीव आदिका संहनन जिसका नाम वज्र ऋषभनाराच है, तहा वज्र नाम कीलिका है, अरु ऋषभ नाम परिवेष्टन पट्ट अर्थात् उपर लपेटनेका हाड, तथा नाराच सो म र्कटबंध इन तीनों रूपों करके जो उपलक्षित है, तिसको वज्रऋष भनाराच संहनन कहते है. हाडके संचय सामर्थ्यका नाम संहनन है, य ह संहनन औदारिक शरीर वालोमेंही होता है, १७ जिसके उदयसे जी

वकों आदिके समचतुरस्र संस्थानकी प्राप्ति होवें, तहां सम है चारों जिसके तुल्य शरीर लक्षण युक्त प्रमाण सहित, ऐसा आद्य ... राकार मनोहर होवे, सो समचतुरस्र संस्थान नाम कर्मकी प्रकृति नी. अब वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, यह चारों कहते है. तिनमें जिसके सें १७ वर्ण कृष्णादिक, १९ रस तिक्तादिक, २० गंध सुरन्यादिक, स्पर्श मृडुआदिक, यह चारों शुन होवे, सो वर्णादि चार प्रकृति ... २२ जिस कर्मप्रकृतिके उदयसें जीवका शरीर न तो भारी होवे, जीव उठा न सके, अरु नतो हलका होवे, जो पवन करके जावे, तिसका नाम अगुरु लघु है, तिसकी प्राप्ति होवे, सो अगुरु नामकर्म, २३ जिसके उदयसें प्राणी परकों हणे, अरु शरीरकी ऐसी होवे जिसके देखनेंसें दूसरोंकों अभिनव होवे, सो पराघात कर्म, २४ जिसके उदयसें उल्लासन लब्धि अर्थात् उल्लास लेनेकी आत्माकों होती है, सो उल्लास नामकर्म, २५ जिसके उदयसें जीव ... श अरु आतप शरीर पावे है, तिसका नाम आतप नामकर्म, ... जिसके उदयसें जीव, उष्ण प्रकाशरूप उद्योत वाला शरीर पाता है, ... उद्योत नामकर्म, २७ जिस कर्मके उदयसे जीव विहायनाम आकाश है, तिसमें जो गति सो विहायोगति, सो राजहंस सरखी गति होवे, ... सुविहायोगति नामकर्म, २८ जिसके उदयसे जीवके शरीरके अंगोपांग दिकोंकों नियतस्थानमें स्थापने वाला सूत्रधार (कारीगर) समान अर्थात् नसा. जाल, माथेकी खोपडीके हाड, आंख, कानके पडदे, केश, न... दि सर्व शरीरके अवयवोंको रचनेवाला निर्माण नामकर्मकी प्राप्ति हो... वे, सो निर्माण नामकर्म, २९ जिसके उदयसें जीवकों त्रस पणेकी प्रा... प्ति होवे, उष्णादि करकें तप्त हूआ विवक्षित स्थानसें छायादिकमें ... ना, औ दो इंद्रियादिक पर्यायका जो फल नोगनां पावे, सो त्रस ना... मकर्म, ३० जिसके उदयसे जीव वादर अर्थात् स्थूल शरीर वाला, हो... है, सो वादर नामकर्म. ३१ जिस कर्मके उदयसे जीव ७ पर्याप्ति पौ... है सो पूर्ण करता है, सो पर्याप्तनामकर्म, ३२ जिसके उदयसें प्रत्येक एक एक जीवके एक एक शरीर होता है. सो प्रत्येक नामकर्म, ३३ जिसके उदयसें जीवकों हाडादि अवयव स्थिर निश्चल होते हैं, सो स्थि...

नामकर्म, ३४ जिसके उदयसें जीवके शिर प्रमुख अवयव शुभ होते सो शुभनामकर्म, ३५ जिसके उदयसें जीव सौभाग्यवान् होता है, सुभगनामकर्म, ३६ जिसके उदयसें जीवका स्वर कोकिलावत् रम क होवे, सो सुस्वर नामकर्म, ३७ जिसके उदयसें जीवका उपादेय वन होवे, जो कुछ कहे, सो हो जावे, सो आदेय नामकर्म, ३८ जिस उदयसें जीवकी विशिष्ट कीर्त्ति (यश) जगत्में विस्तरे, सो यशोनाम र्म, ३९ जिसके उदयसें जीवकों चोशठ इंद्र पूजा करते हैं, अरु उपदे द्वारा धर्म तीर्थका कर्त्ता होवे, सो तीर्थंकर नामकर्म, ४० तिर्यंचोंका ायु, ४१ मनुष्यायु, ४२ देवायु. आयु उसकों कहते है कि जिसके उद सें तिर्यंचादि नवमें जीव जाता है,जिस्सें यह पूर्वोक्त तीन आयुकी जीव ें प्राप्ति होती है, ए.ो तीन आयुकी प्रकृति जाननी. यह बैतालीस प्रका करकें पुण्य फल नोगनेमें आता है ॥ इति पुण्यतत्त्वं संपूर्णं ॥ ३ ॥

॥ अथ चौथा पापतत्त्व लिखते है. पाप उसकों कहते हैं, कि जो ात्माका आनंद रस पीवे, यह पाप जो है, सो पुण्यसें विपरीत नरका ि फलका प्रवर्त्तक होनेसें अशुभ है, आत्माके साथ संबंध है, कर्मपुद्ग रूप है, यद्यपि बंधतत्त्वके अंतर्नूतही पुण्य पाप है, तोनी न्यारे जो हे है, सो पुण्य पाप विषे नानाविध परमतभेद निरासार्थ है, सो परम यह है, सो कहते है. कोइक मत वालोंका यह कहना है, कि एक पु यही है, परतु पाप नहीं. तथा कोइक मतवाले कहते हैं, कि एक पाप ी है, परंतु पुण्य नहीं. तथा कोइक कहते है कि पापपुण्य दोनों आपस अनुविद्ध स्वरूप है, मेचक मणि सरीखे, सो मिश्र सुख दुःख फलके तु है, इस वास्ते साधारण पुण्य पाप एक वस्तु है. कोइक ऐसें कहते हैं क मूलसेंही कर्मही नहीं है, सर्व जगत्में स्वनावसेंही विचित्रता सिद्ध है. ह सर्व पूर्वोक्त मत मिथ्या है, क्योंकि सुख दुःख दोनों न्यारे न्यारे अ नवमें आते है, तिस वास्ते तिनके कारणनूत पुण्य पापनी स्वतंत्रही ंगीकार करणे योग्य हैं, परंतु एकिला पाप वा एकिला पुण्य वा मिश्रित ानने ठीक नहीं.

अथ कर्मानावबादी नास्तिक अरु वैदांतिक कहते है.कि पुण्य पाप जो

हैं. सो आकाशके फूल सदृश असत् जानने; परंतु सत् नहीं, तो पुण्य पापके फल भोगनेके स्थान नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे?

उत्तरः—पुण्य पापके अभावसें सुख दुःख निर्हेतुक होनेसें उत्पन्न चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध है, सोइ दिखाते हैं, मनुष्यपणा सदृश भी कोइ स्वामी है, कोइ दास है, कोइ अपणाही उदर भर सके है, अपणाभी उदर नही भर सके है, कोइ देवताकी तरें निरंतर सुख विलास करते हैं, कितनेक नारकीकी तरें दुःख भोग रहे हैं, इस अनुभूयमान सुख दुःखांके निबंधनभूत पुण्य पाप जरूर मानने चाहियें व पुण्य पाप माने, तब तिनोंके उत्कृष्ट फल भोगनेके स्थान जो न... गी है, सोभी माने गये, जे कर न मानोगे, तब अर्द्ध जरतीय न्याय संग होवेगा, आधा शरीर बूढा, आधा जुवान. इसमें यह प्रयोग अप... नुमानभी है, सुख दुःख कारण पूर्वक हैं, अंकुरवत् कार्य होनेसें ... जे सुख दुःखके कारण हैं, सो मानने चाहियें. जैसें अंकुरका बीज.

पूर्वपक्ष.—नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं, जैसें वे नीलादिक स्व... अमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, ऐसेंही अन्न, फूल माला, चंदन, ... मूर्त्त दृश्यमानही सुख अमूर्त्तोंके कारण होवेगे. सर्प विष, ... सुखोंके कारण है, तो फेर काहेकों अदृष्ट पुण्य पापोंकी कल्पना करते

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि इस कहनेमें व्य... र है, तथाहि ॥ दो पुरुषोंके पास तुल्य साधनभी है, तोभी फलमें भेद दिखता है, तुल्य अन्नादिके भोगनेमेंभी किसीकों आल्हाद हर्ष दिखता है अरु दूसरेकों रोगोत्पत्ति देखते है,यह फलभेद अवश्य कारण है, नहीं तो नित्य सत् नित्य असत् होना चाहियें, क्योंकि व... स्तु कार्य कदे होवे, कदे न होवे, सो कारणके विना नहीं होता है. ... वा कारणानुमानसे कार्य पुण्य पाप जाने जाते हैं, तदा कारणानुमान ... ह है, कि दानादि शुभक्रियाका अरु हिंसादि अशुभक्रियाका ... कार्य कारण होनेसे है.कृष्यादि क्रियावत्.जो इन क्रियायोंका फ... है, सो पुण्य पाप जानने. जैसें खेती करनेवालेकी क्रियाका ... यव. गेहु, आदिक है.

पूर्वपक्ष—जैसें कृष्यादि क्रियाका दृष्ट फल, ...

क पशु हिंसादिक क्रियाकाभी श्लाघा मांसभक्षी निर्दय आदि दृष्ट फ
ही है, तो फेर काहेकों अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करना? क्योंकि
ोक जो है सो बाहुल्यता करकें दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होते हैं, खेती ब
ाज्यादि हिंसादिक क्रियामें बहुत लोक प्रवृत्त होते हैं, अरु अदृष्ट दान
ालादि क्रियामें थोडे लोक प्रवृत्त होते हैं इस वास्ते कृषि हिंसादि अ
ुभ क्रियायोंका अदृष्टफल पापरूप हम नही मानते.

उत्तरपक्षः—जे कर तुमारा कहनां ठीक होवे, तब तो परभवमें फलके
अभावसें मरणके अनंतरही सर्व जीव विना यत्नके मोक्ष हो जावेंगे, त
ब तो प्राय. संसार, शून्य हो जावेगा, तब संसारमें दुःखी कोइभी न होवे
ा, दानादि शुभक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुभ फल भोगने वाले
ही रहने चाहियें, परंतु संसारमें दुःखी बहुत दीखते हैं, अरु सुखी थोडे
ीखते है, तिस करकें जाना जाता है कि जे कृषी,वाणिज्य, हिंसादिक्रि
ा निबधन अदृष्टपाप रूप फल, यह दुःखित जीवोकों है, अरु सुखी
ीवोंको दानादि अदृष्ट धर्मका फल है.

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिंसादि क्रियासें है, अरु जो दुः
खी है, वो धर्म दानादिकके फलसें है. ऐसें क्यों न हो जावे?

उत्तरः—ऐसें नहीं होता है, क्योंकि अशुभक्रिया हिंसादिकके करने
वालेही बहुत हैं, अरु शुभक्रिया दानादिकके करने वाले थोडे है, यह
कारणानुमान है. अथ कार्यानुमान कहते है कि जीवोंकों आत्मत्वके अ
विशेषभी हूआ नर पश्वादिकोंकी देहोंमे कार्य होनेसें विचित्रताका कारण
है, जैसे घटका दंम, चक्र, चीवरादि सामग्री संयुक्त कुंभकार. तथा ऐसे
भी मत कहनां कि दीखते जो है माता, पिता, सोइ इस देहके कारण है.
तु पुण्य पाप, ऐसेंभी मत कहनां क्योंकि माता, पिता, एक सरीखेभी
है, तोभी पुत्रोंके देहमे विचित्रता देखते है, सो विचित्रता अदृष्ट (शुभा
शुभ कर्मके) विना नहीं हो सक्ती है, इस वास्ते जो शुभ देह है, सो पु
ण्यका कार्य है, अरु जो अशुभ देह है, सो पापका कार्य है, यह कार्या
नुमान है. सर्वज्ञके वचन प्रमाणसें पुण्य पापकी सत्ता सिद्धहो है, विशे
षार्थि पुरुषने विशेषावश्यककी टीका देख लेनी.

पाप अगरह प्रकारसे बंधाता है, सो ब्यासी प्रकारसें भोगनेमें आता

है, सो नेद यह है, कि पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, नव मोहनीकी छवीश प्रकृति, नामकर्मकी चउत्तीस प्रकृति, एक दनी, एक नरकायु, एक नीचगोत्र, यह सब मिल कर ब्यासी नेद नका विवरा लिखते हैं.

अथ ज्ञानावरण कर्मकी पांच प्रकृति. प्रथम ज्ञान पांच प्रकारका है समें मतिज्ञान, औ श्रुतज्ञान, ए दो अनिलाप छावितार्थ ग्रहणरूप ज्ञान तथा तीसरा इंड्रियोंकी अपेक्षा विना आत्माकों साक्षात् अर्थके ग्रहणे ज्ञान, सो अवधिज्ञान, चउथा मनमें चिंतित अर्थका साक्षात् ज्ञान, सो मनःपर्यवज्ञान, पांचमा केवल संपूर्ण निःकलंक जो सो केवल ज्ञान. इन पांचों ज्ञानोंका जो आवरण सो ज्ञानावरण है मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ४ ज्ञानावरण, ५ केवलज्ञानावरण. उसमें १ जिसके उदयसें जीव निःप्रतिना होता है, सो मतिज्ञानावरण, २ जिसके उदयसें पठन जीवकों कुछनी न आवे, सो श्रुतज्ञानावरण, ३ जिसके उदयसें अवधि ज्ञान न होवे, सो अवधिज्ञानावरण, ४ जिसके उदयसें मनःपर्यवज्ञान न होवे, सो मनःपर्यवज्ञानावरण, ५ जिसके उदयसें केवलज्ञान न हो वे, सो केवल ज्ञानावरण यह पाच प्रकृति पापरूप है.

अथ अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति कहते हैं. १ जिसके उदयसे देनेक ली वस्तुनी है, गुणवान् पात्रनी है, दानका फलनी जाना है, परंतु दान नहीं दे सक्ता है,सो दानांतराय,२ जिसके उदयसे देने योग्य वस्तुनी है, अरु दातानी बहुत प्रसिद्ध है, तथा मागने वालानी मांगनेमें वडा कुशल है,तोनी मांगने वालेकों कुछनी न मिले,सो लानांतराय,३ जिसके उदयसें एक वार नोगने योग्य वस्तु जो आहारादिक, सो विद्यमाननी है, तोनी नोग नहीं सका, सो नोगांतराय, ४ जिसके उदयसें वारवार नोगने योग्य वस्तु जो शयन अंगनादि, सो विद्यमाननी है, तोनी नोग नहीं सका, सो उपनोगांतराय, ५ जिसके उदयसें अनुपहत पुष्टागवालानी शक्ति विकल हो जाता है, सो वीर्यांतराय यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृति लिखते है इहां जो सामान्य बोध है,तिसका नाम दर्शन है,अरु जो विशेष बोध है,सो ज्ञान है.तहां ज्ञानका

ो आवरण, सो ज्ञानावरण, सो तो पूर्वे लिख आये हैं. अरु जो दर्शन ा आवरण है, सो दर्शनावरण इनके नव भेद है, तिनमें जो आदिके ार भेद है, सो मूलसेंही दर्शन लब्धियोंके आवरक होनेसें आवरण शब्द रकें कहे जाते है. जैसें १ चक्षुदर्शनावरण, २ अचक्षुदर्शनावरण, ३ ावधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण. अरु निद्रादि जे पांच है, सो द ंनावरण क्षयोपशम करकें लब्ध आत्मलाभका दर्शन लब्धियोंका आ ारक है, इसका भावार्थ यह है कि चक्षु करकें सामान्यग्राही जो बोध, सो ाक्षुदर्शन, सो जिसके उदय करके तिसकी लब्धिका विघात करे, सो ाक्षुदर्शनावरण. ऐसेंही अचक्षु करके चक्षु वर्जके शेष चार इंद्रिय तथा ांचमा मन, इन करके जो दर्शन, सो अचक्षुदर्शन, तिसका जो आवर ाण, सो अचक्षुदर्शनावरण, तथा रूपी पदार्थोका जो मर्यादापूर्वक देख ां, सामान्यार्थका ग्रहण करनां. सो अवधिदर्शन, तिसका जो आव ाण, सो अवधिदर्शनावरण. तथा वर, प्रधान, क्षायक होनेसें केवल अ नंत ज्ञेयके होनेसे जो अनंत दर्शन, सो केवलदर्शन, तिनका जो आवर ण,सो केवलदर्शनावरण. अरु जो चैतन्यकों सर्व उरसें अतिकुत्सित पणा ारे, सो निद्रा. दर्शन उपयोग सामान्य ग्रहण रूप, तिसका विघ्न कर े वाली, सो निद्रा जाननी. तिस निद्राके पांच भेद हैं. १ निद्रा, २ निद्रा नेद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानर्द्धि. तहां १ निद्रा उसकों कहते है, कि जो चपटी बजानेसें जाग उठे,सो सुखप्रतिबोधनिद्रा, जिसके उदयसे ऐसी निद्रा आवे तिसका नाम निद्रा है. तथा २ अतिशय करकें जो निद्रा होवे, उसका नाम निद्रानिद्रा है, जैसेंकि बहुत हलानेंसें दुःखें जागे, कपडे खेंचनेसे जागे, जिसके उदयसे ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मप्र कृतिका नाम निद्रानिद्रा है. तथा ३ जो बैठेकों खडेकों जो निद्रा आवे,तिस का नाम प्रचला है, जिस कर्मके उदयसें ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मका नाम प्रचला है, तथा ४ जो चलतेकों निद्रा आवें, तिसका नाम प्र चलाप्रचला है, जिस कर्मके उदयसें ऐसी निद्रा आवे, तिस क र्मकी प्रकृतिका नामभी प्रचलाप्रचला है, तथा ५ स्त्याना नाम है पिं डीभूतका सो पिंडीभूत है ऋद्धि आत्माकी शक्ति जिस निद्रामे सो स्त्या नर्द्धि, तिस निद्रमें वासुदेवके बलसें आधा बल होता है, जिस कर्म

के उदयसें ऐसी निंद आवे, तिसका नाम स्त्यानर्द्धिकर्म है, इस में कितनेक कार्यभी कर लेता है, परंतु उसकों कुछ खबर नहीं रहती है.

अथ मोहकर्मकी प्रकृति लिखतेहै. मोहे तत्त्वार्थ श्रद्धानकों रे, सो मोहनीय है. उसमें १ मिथ्यात्वही जो मोह, सो मिथ्यात्व नीय कहीयें, मोह कर्मकी उत्तरप्रकृति मिथ्यात्व है, यद्यपि यह मि १ अभिग्रहिक, २ अनभिग्रहिक, ३ सांशयिक, ४ अभिनिवेशिक, ५ नाभोगादि अनेक प्रकारसें है, तोभी यथावस्थित वस्तुतत्त्वके अ सर्वभेदोंका एकही मिथ्यात्वरूप गिना जाता है. यह प्रथम [illegible] ह कर्मकी प्रकृति है, अरु सोला भेद, कषाय मोहनीयके है क्योंकि क्रोधादिकभी तत्त्वश्रद्धानसें भ्रष्ट कर देते है, सो सोला भेद ऐसें है, नंतानुबंधी क्रोध, २ अनंतानुबंधी मान, ३ अनंतानुबंधी माया, ४ तानुबंधी लोभ. ऐसेंही अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ, सेंही प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ. ऐसेंही संज्वलन, क्रोध, माया, लोभ. यह सर्व सोलह भेद कषायमोहनीयके हैं.

जे क्रोधादिक अनंत संसारके मूल कारण है, अरु नंतभवा जिनका शील है, उसमें जिसका स्वभाव ऐसा है, कि जैसी प रेखा, जिसके साथ क्लेश हो जावे, फेर जहां लगि जीवे, तहां लगि न छोडे, सो अनंतानु बंधि क्रोध है, तथा मान, पथ्थरके स्थंभ सरिखा, दापि नमे नहीं, तथा माया, वांसकी जड समान, कदापि सरल न तथा लोभ, कृमीके रंग समान, कदापि दूर न होवे, ऐसें क्रोध, मान, या, अरु लोभ करकें संयुक्त जो परिणाम है. तिसका नाम अनं क्रोधादिक कर्म प्रकृति है. तथा अप्रत्याख्यान यहां नञ् अल्पार्थ वाला है, सो थोडाभी प्रत्याख्यान जिसके उदय होनेसें नहीं होता है, उसको अप्रत्याख्यान कहते है. इसका स्वरूप कहते हैं क्रोध, पृथिवीकी रेखा समान, मान, हाडके स्थंभ समान, माया, मेषके सींग समान, लोभ, क र्दमके दाग समान, एक वर्ष तांइ रहता है. तथा जिसके उदयसें सर्व वि रतिपणा जीवको न आवे, सो प्रत्याख्यानावरण कषाय है उसमें क्रोध रेणुकी रेखा समान, मान, काष्ठके स्थंभ समान, माया, गौके मूतने स मान, लोभ, खजनके रंग समान. चार मास जिसकी रहनेकी स्थिति है. त

संज्वलनका चार कषाय कहते है, क्रोध, पाणीकी लकीर समान, मा तिनिशलताका स्थंज समान, माया, बांसकी छिलक समान, लोन, हरि के रग समान, यह चारों एक पक्षकी स्थिति वाले है, यह सोला कषा का स्वरूप लिखा अथ नवनो कषाय कहते है.

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, नय, जुप्सा. यह नव नोकषाय मोहनीयकी प्रकृति है. नोशब्द सहकारी अर्थ है. कषायोंके सहचारि जो होवे, उनकों नोकषाय कहते है. अब इन न प्रकृतिका स्वरूप लिखते हैं. १ जिसके उदयसें स्त्री, पुरुषकी अनिला करती है, जैसें पित्तके उदयसें मीठी वस्तुकी अनिलापा होती है, फुंफ अग्नि समान स्त्रीवेदक उदय है, जैसें फुंफक अग्नि फोलनेसें वृद्धिमा होती है, ऐसेंही स्त्रीके स्तन कक्षादिके स्पर्शनेसें स्त्रीवेदका प्रबल उ य होता है, तथा जिसके उदयसें पुरुष, स्त्रीकी अनिलापा करता है, सो पुरुषवेद जाननां. जैसें कफकें उदयसें खाटी वस्तुकी अनिलापा होती है, यह पुरुषवेदका विकार ऐसा है कि जैसी तृणकी अग्नि क्योंकि तृणकी अग्नि एक वारही प्रज्वलित होती है, अरु तत्काल शांतजी हो जाती है, ऐसें पुरुषवेदजी एक वारही तत्काल उदय हो जाता है, फेर शांतजी तत्काल हो जाता है. तथा जिसके उदयसें स्त्री, अरु पुरुष इनदोनोकी अनिलापा उत्पन्न होवे, सो नपुंसक वेद है, जैसें पित्त अरु कफके उदयसें खट मीठी वस्तुकी अनिलापा होती है. यह नपुंसक वेदका उदय ऐसा है कि जैसा मोटे नगरके दाहकी अग्नि, यह तीन वेद है. तथा जिसके उदयसें सनिमित्त निर्निमित्त हसनां आवे. सो हास्यनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसे रमणिक वस्तुओमें रमे, खुशी माने, सो रतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है. तथा इस्सें जो विपरीत होवे, सो अरतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है तथा जिसके उदय करकें प्रियवि यंयोगादिमे विकल मन, शोचन, क्रंदन, परिदेवनादि करता है, सो शोकना मा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसें सनिमित्त अथवा विना निमित्तके नयजीत होवे, सो नयनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा गं धादि मलिन वस्तुके देखनेसें जो नाक चढानां है, तिसका जो हेतु है,

सो जुगुप्सानामा मोहकर्मकी प्रकृति है. यह नव नोकषाय मोह प्रकृति हैं, यह सर्व पैंतालीस भेद हुये.

अथ नामकर्मकी चउत्तिस प्रकृति पापरूप हैं, उसका नाम १ नरक गति, २ तिर्यंचगति, ३ नरकानुपूर्वी, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ एकें. जाति, ६ द्वीन्द्रियजाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रियजाति, १३ हनन, १८ पांच संस्थान, १९ अप्रशस्त वर्ण, २० अप्रशस्तगंध, २१ प्रशस्त रस, २२ अप्रशस्त स्पर्श, २३ उपघात, २४ कुविहायोगति. स्थावर, २६ सूक्ष्म, २७ अपर्याप्त, २८ साधारण, २९ अथिर, ३० ३१ असुभग, ३२ दुःस्वर, ३३ अनादेय, ३४ अयशःकीर्ति.

इनका स्वरूप ऐसे हैं. १ नरकगति उसकों कहते है कि जिसके सें नारकी नाम पडे, अरु नरकगतिमें ले जावे, २ ऐसेही जान लेनी, तथा ३ जिसके उदयसें नरकगतिमें जाते हूये जीवकों दो मयादि विग्रहगति करकें अनुश्रेणीमें नियत गमन परिणति होवे. सो एकगतिके सहचारी होनेसें नरकानुपूर्वी कहियें. ४ ऐसेंही भी जान लेनी. तथा ५ जिसके उदयसें एकेंद्रिय जो पृथिवी, जल, अग्नि पवन, बनस्पति इनमें जीव उत्पन्न होता है, सो एकेंद्रिय जाति. ६ द्वींद्रिय जाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रिय जाति.

तथाआद्य संहनन वर्जके शेष, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलिका सेवार्त्त, यह पांचो, संहननोंके नाम है. इनका स्वरूप ऐसा है कि परिवेष्टनपट्टः नाराच उभयतोमर्कटबंध" दोनो हाडोंकों दोनों पासें धन बांधके पट्टेकी आकृति समान हाडकी पट्टी उपर वेष्टन जिसके है सो दूसरा ऋषभनाराच संहनन है. तथा वज्र ऋषभ करके हीन दोनों पासें सें मर्कटबंध युक्त, तीसरा नाराच नामक सहनन है, तथा एक पासें मर्कट बंध अरु दूसरे पासें कीलि करकें वीध्या हूआ हाड, यह चउथा अर्धनाराचनामा सहनन है, तथा ऋषभ अरु नाराच, इन करकें वर्जित मात्र कीलि करके वींधे हूये दोनों हाड, ऐसा जो हाडका संचय, सो पाचमा किलिका नामा संहनन है, तथा दोनो हाडका स्पर्श पर्यंत लक्षण है जिसमें, अरु मूठी चांपी करानेमें आर्त्त (पीडित) सो सेवार्त्त नामा संहनन है.

तथा १८ आद्य संस्थान वर्जके १ न्यग्रोध परिमंडल, २ सादि, ३ वामन,

कुब्ज, ५ हुंमक, यह पांच संस्थान इनका स्वरूप लिखते है. तहां १ ग्रोधवत् वडवृक्षकी तरें परिमंमल, न्यग्रोधपरिमंमल. जैसें वडवृक्ष उप संपूर्ण अवयववाला होता है, अरु हेठें तैसें नही होता है, तैसेंही सस्थान नाभिके उपरि तो विस्तार बाहुल्य संपूर्ण लक्षणवाला है, नाभिके हेठे संपूर्ण लक्षण नही, सो न्यग्रोधपरिमंमल संस्थान दूस है. २ तथा सादि आदि इहा उंचपणा नाभिसें हेठला देहका विभाग, लक्षणों करकें पूर्ण, अरु नाभिसें उपरि लक्षण विसंवादी होवे, तिसका म सादिसंस्थानहे तथा ३ हाथ, पग, शिर, ग्रीवा, यथोक्त लक्षणादि यु अरु शेष उदरादिरूप कोष्ठ शरीरमध्य, लक्षणादि रहित, सो वामननामा स्थान है ४ तथा उर उदरादि, लक्षण युक्त होवे, अरु हाथ पगादि लक्ष रहित होवे, सोकुब्जसंस्थान हैं, ५ तथा जिसके शरीरका एक अवय भी सुंदर न होवे, सो हुंमसंस्थान जान लेनां यहपांचसंस्थान.

२१ जिसके उदयसें वर्णादि चार अप्रशस्त होवे, सो कहते हैं. कि जो ति बीभत्स दर्शन, कृष्णादि वर्ण वाला प्राणी होता है, सो अप्रशस्त वर्णनाम. सो वर्ण, कृष्णादि भेदों करके पांच प्रकारका है, तिनों करकें जो जीव युक्त होवे, सो अप्रशस्त वर्णनाम. ऐसेंही जिसके उदयसे कुथि मृतमूशकादिवत् दुर्गंधता प्राणीयोंके शरीरमें होवे, सो अप्रशस्तगंधनाम. तथा जिसके उदयसें प्राणीयोंकी देहमें रसनेंद्रियकों दुःखदायी स्वभाववाला कौडीतोरीकी तरें तिक्त कडुवादि ऐसा असार रस होवे, सो अप्रशस्तरस नाम. तथा जिसके वशसे स्पर्शेंद्रियकों उपतापका हेतु ऐसा कर्कशादि स्प र्शविशेष, जीवोंके देहमें होवे, सो अप्रशस्तस्पर्शनाम यहवर्णादिचार.

२२ तथा जिसके उदयसें अपणेही शरीरके अवयवो करकें प्रतिजिह्वा, गल, वृंद, लंवक, चोर दांतादिक शरीरके अंदर वर्द्धमान हो करकें शरीर हीको पीडा देते हैं, तिसका नाम उपघातनाम. तथा २४ जिसके उदय से जीवोको खर उंटादिककी तरे चलनां, अप्रशस्त होवे, सो कुविहायोगति नाम तथा २५ जिसके उदयसे पृथिवी आदिक एकेंद्रिय स्थावरकायमे प्राणी उत्पन्न होता हे, अरु स्थावरनामसें कहे जाते है, सो स्थावरनाम. २६ जिसके प्रभावसें लोकव्यापि सूक्ष्म, पृथिवी आदि जीवोमें जीव उत्पन्न होता है, सो सूक्ष्मनाम. २७ जिसके उदयसे आहार पर्याप्ति आ

दिक पूर्वोक्त पर्याप्ति पूरी न होवे, सो अपर्याप्तनाम. २८ जिसके यसें अनंत जीवोंका साधारण एक शरीर होवे, सो साधारण नाम जिसके उदयसें जिह्वादि अवयव, शरीरमें अस्थिर होवे, सो अ म. ३० जिसके उदयसें नाभिके हेठले अवयव अशुभ होवे, सो नाम. क्योंकि किसीकों हाथ लग जावे, तो रोष नही करता, लगनेसें क्रोध करता है, इस वास्ते अशुभनाम है. ३१ जिसके जीवकों जो जो देखे, तिस तिसकों वो जीव अनिष्ट लगे, उद्वेगकारी वे, सो असुभगनाम ३२ जिसके उदयसें कठोर, भिन्न, हीन, दीन, वाला जीव होवे, सो दुःस्वरनाम. ३३ जिसके उदयसें चाहो युक्ति बोले, तोभी तिसका कहनां कोइ न माने, सो अनादेय नाम. ३४ के उदयसें जीव. ज्ञान विज्ञान दानादिक गुण युक्तभी है, तोभी उसकी यश (कीर्त्ति) नही होती बलके उलटी निंदा जगतमें है, सो अयशःकीर्त्तिनाम ॥ इति नामकर्मकी चउत्तीस पापप्रकृति

जिसके उदयसें जात्यादि करकें विकल जीव होता है, सो जाननां. नीचगोत्र उसकों कहते है, कि जो अधम कैवर्त्त,चांमालादि. लं गूयते संशब्यतेऽनेन हीनोयमजातिरित्यादि शब्देरिति गोत्रं कुल मिति विशेषणाऽन्यथानुपपत्त्या नीचैर्गोत्रमित्यर्थः."

प्रश्नः– यह जो तुम नीच गोत्रके उदयसें नीच कुल कहते हो, के साथ खान, पान, नही करते हो, तिनोंकी छूत मानते हो, निंदा जुगुप्साभी करते हो, यह तुमारी बडी अज्ञानता है, क्योंकि त्व धर्म करके सर्व सरीखे है, एक सरीखे हाथ पगादि अवयव है, फेर एककों उच मानना, तथा एककों नीच मानना, यह केवल ब्राह्मण और जैनीयोंने बुरी रसम,भारतवर्षमें जारी कर रक्खी है,इस बातमें क्या युक्तिका अंग है? क्योंकि भारत वर्षीयोंकों वर्जके और सर्व द्वीप द्वीपांतरमें तथा भारतवर्षमेंभी सर्व विलायतादिकमे कोइभी उच नीच नहीं गिनते है सर्व निवाले प्यालेमें एक है, यह भि केवल तुमारी मूढता अर्थात् अंध रंपरा है, वास्तवमें उंच नीच कोइभी नही.

उत्तरः–यह तुमारा कहना बहुत बे समझका है, क्योंकि तुम हमारे कहेका अभिप्राय नही जानते, हमारा अभिप्राय तो यह है, कि जो हम

...तमें होता है, सो निमित्तके विना नही होता है, यह जो निम्न, को... धांगड, धाणक, गधीले, चमाल, थोरी, वाघरी, सांसी, कंजर प्रमुख अ...न्य जातिके लोक है, सो जंगलोंमें गामोंके वाहिर रहते हैं, अनेक प्रका... क्लेप सहते है, काले, दुर्गंधवाले, रूपमे बुरे शरीर पाते है, सुंदर खा...नों नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है ? अथवा निमित्त नहीं ? जे... कहोगेकि बिनाही निमित्तके होते हैं, तब तो तुम नास्तिक मती हो, ... नास्तिकमतीका खंमन हम पूर्व लिख आये है,जे कर कहोगेकि सनि...मित्तक है तब तो ऐसे असन्य जातिके कुलमें उत्पन्न होनेका कारणनी जरुर चाहिये जिसके उदयसें ऐसे कुलमें उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रनावसें औरनी बहुत पाप प्रकृतियों...। उदय है, जिस्सें वे दुःखादि क्लेश पाते है. बुद्धिहीन, लालमस्वनाव, ...र्दयता, कुत्सित आहार, पशुओंकी तरें जंगलोंमें वास, धर्मकर्मसें परा...ङ्मुख, सत्संग रहित, गम्यागम्यके विवेक रहित, नक्ष्यानक्ष्य पेयापेया...चार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नीचगोत्र है, जैसेंही धनवान् और निर्धन ए दोनें एक सरीखे सर्वथा नही हो सक्के है, तैसे नीचगोत्र ...ले उंचगोत्र वालोंके सदृश नही हो सक्के है.

जे कर कहोगे कि विलायतमे सर्व एक सरीखे है, तो इस वातमें क्या आश्चर्य है ? जहां उच नीच पणा नही, तहा सर्व जीवोने एक सरीखा गोत्रकर्मका बंध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये है, परंतु जहा उ...च नीचपणा माना जायगा, तहा अवश्यमेव उंच नीच गोत्रका व्यवहा...र जरुर होवेगा, अरु जो हीन जातियोंकों बुरे जानते है, सो बुद्धिमान् नही, क्योंकि बुराइ तो खोटे कर्मोके करनेसे होती है, जे कर ब्राह्मण. क्षत्रिय, वैश्य, हो कर खोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, पर...निंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मांसनक्षण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुकर्म करेगा, हम उनकों जरुर बुरा मानेगे, अरु नीच जातिवाला है, सोनी जे कर सुकर्म करेगा, दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसको अछा कहेगे, तो फेर हमारी समझ किसी रीति से बुरी है. अरु जो उसके साथ खाते नही है, यह कुलरूढी है, अरु जो नीच जातिवालोकी निंदा (जुगुप्सा) करते है, वे अज्ञानी है, निंदा जु...

गुप्सा तो किसीकीनी करनी न चाहियें. अरु जो तिनकी छूत मानते वोनी कुलारूढी है, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करकें सरीखे है, तोनी जैसे माता, बहिन, बेटी, नार्या, यह सब स्त्रीत्व स्वरूप करकें समान हैं, तोनी इनमें अगम्य गम्यका विनाग है, तैसेंही उंच नीचकानी विनाग है, यह व्यवहार ब्राह्मण, अरु जैनोने नही बनाया है, किंतु अछे बुरे कर्मोंके प्रनावसें है, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार . . इस वास्ते उंच नीच गोत्रके प्रनावसेंही उच नीच जाति होती है.

तथा आयुः कर्ममेसूं नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती है, नरकशब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है, "नरान् प्रकृष्टपापफलनोगाय गुरुपापकारिणः प्राणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कायंति शब्दयंतीति नरकाः ... प्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुनवकारणं प्राणधारणं ... तद्विपाकवेद्यकर्म्मप्रकृतिरपि नरकायुष्कमिति ॥"

तथा वेदनीकर्मकी अशातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती है, सो अशाता नाम दुःखका है, जिसके उदयसें जीव दुःख नोगता है, तिसका नाम अशातावेदनी है.

यह ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी नव, मोहनी नामकर्मकी चौत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अशातावेदनी सब मिल कर व्यासी नेदें पाप फल नोगनेमे आता है ॥ इति पाप तत्त्वम्.

अथ आश्रवतत्त्व लिखते हैं. मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु है. १ असत् देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनों विषे सत् देव, सत् गुरु, अरु सत् धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व है तथा हिंसादिकसें जो न निवृत्तनां, तिसका नाम अविरति है, तथा प्रमाद मद्यादि, तथा कषाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका व्यापार, ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अरु योग, यह पाच पुनर्बंधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंके बंधके हेतु है, इसकों जैन मतमे आश्रव कहते हैं. आश्रवे कर्म जिनोसेंती सो आश्रव. तब तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन, वचन, कायाका व्यापारही शुनाशुन कर्मबंधका हेतु होनेसे आश्रव होय. यह तात्पर्य है.

प्रश्न.—बंधके अनाव होये कैसे आश्रवकी उत्पत्ति है? जे कर कहांगे कि आश्रवसे पहिला बंध है, तबतो वो बंधनी आश्रवहेतु विना नहीं

सक्ता है, क्योंकि जो जिसका हेतु है, सो तिसके अनाव हूया नहीं सक्ता है, जे कर होवेगा, तब अतिप्रसंग दूषण होवेगा.

उत्तरः-यह कहनां असत् है, क्योंकि आश्रवकों पूर्वबंध अपेक्षया का पणा है, अरु उत्तरबंधापेक्षया कारणत्व है, ऐसेही बंधकोंनी पूर्वोत्तर श्रवकी अपेक्षा करके कार्यत्व कारणत्व जाननां, बीजांकुरकी तरें. बंधा दोनोंका परस्पर, कार्य कारण नावका नियम है, यहां इतरेतर दूषण ी है, प्रवाहापेक्षा करके अनादि होनेसें.

यह आश्रव पुण्य पापका बंधहेतु होने करकें दो प्रकारें हैं, यह दो नेदोंके मिथ्यात्वादि उत्तर नेदोंके उत्कर्षापकर्ष, अर्थात् अधिक न्यून नेसें अनेक प्रकार हैं इस शुनाशुन मन वचन कायके व्यापार रूप श्रवकी सिद्धि अपणी आत्मामें स्वसंवेदनादि प्रत्यक्षसें है, अरु दूस में वचन काय व्यापारकी प्रत्यक्षसें सिद्धि है, औ शेषकी तिसके कार्य नव अनुमानसें जाननी तथा आप्तप्रणीत आगमसें जाननी.

अथ आश्रवके उत्तर नेद बेतालीस है, सो लिखते है पांच इंद्रि चार कषाय, पांच अव्रत, पच्चीश क्रिया, तीन योग, यह बेतालीस नेद है.

जीवरूप तलावमें कर्मरूप पाणी जिस करकें आवे, सो आश्रव है, तहां द्रिय पांच है, तिनका स्वरूप कहते हैं, १ स्पर्शीये स्वविषय स्पर्श लक्ष , जिस करके सो स्पर्शनेंद्रिय, २ "रस्यते आस्वाद्यते रसोऽनयेति" आ ादियें रस लीजीयें जिस करकें सो रसना (जिव्हा) इंद्रिय, ३ सूंघीये ध जिस करकें सो घ्राणेंद्रिय. (नासिकेंद्रिय,) ४ चक्षु (लोचन,) ५सु णीये शब्द जिस करके सो श्रोत्रेंद्रिय. यह पांच इंद्रिय मूलनेदकी अपेक्षा पांच कारण आश्रवके है.

"क्रुध्यति कुप्यति" सचेतन अचेतन वस्तुमें क्रोध जो करे, सनिमित्त, नि र्निमित्त येन जिस करकें प्राणी, सो क्रोधवेदनीय कर्म है, तिसका उदय ी उपचारसें क्रोध है. ऐसेही मान, माया, अरु लोनमेंनी कह देनां. इसमें ान आठ प्रकारका है, तिसका नाम कहते है १ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ ज्ञानमद, ६ लानमद, ७ तपोमद, ८ ऐश्वर्यम . १ जातिमद, उसकों कहते है जो अपणी माताके पक्षका अनिमान रेकि मेरी माता ऐसे वडे घरकी वेटी है, इस तरें आपकों उंचा माने,

अरु दूसरोंकों निंदे, इसका नाम जातिमद है, २ कुलमद सो है, अपने पिताके पक्षका अभिमान करे, जैसेंकि मेरे पिताका वडा कुल है, इस तरे आपकों वडा माने, औरोंकों निंदे, तिसका नाम ... ३ जो अपणे बलका अभिमान करे, अरु दूसरोंके बलकों निंदे, ... मद, ४ जो अपने रूपका अभिमान करे, दूसरोंके रूपकूं निंदे, सो ...द, ५ जो अपने आपकों वडा ज्ञानी जाने, अरु दूसरोंकों तुच्छमति सो ज्ञानमद, ६ जो अपणे आपकों वडा नसीबे वाला समझे, अरु ...रोंकों हीण पुण्यी समझे, सो लाभमद, ७ जो तप करकें अभिमा... मेरे समान तपस्वी कोइ नही, सो तपोमद, ८ जो अपणी ऐश्व... अभिमान करे, दूसरोंकों घासनू समझे, सो ऐश्वर्यमद. इस प्रकारसें ... के आठ भेद है तथा तीसरी माया, सो "मयति गच्छति" अर्थात् तिस तिस विकारोंकों परवचनेके अर्थे जीव, उसकों माया (कपट) है. तथा जिस करकें परधनमें गृद्धी होवे, तिसकों लोभ कहते हैं ... चारोंकों कषाय कहते है. यह चार कषाय हैं.

अथ पाच अव्रत कहते है, तहा पाच इंद्रिय, ६ मनोबल, ७ ...नबल, ८ कायबल, ९ उच्छ्वासनिःश्वास, १० आयु, यह दस प्राण हैं ...न दश प्राणोंके योगसें जीवकोंभी प्राण कहियें है तिन प्राणोंका ...ध (हननं) अर्थात् मारना सो प्रथम प्राणवध अव्रत जानना. तथा ...कूठ बोलनेका नाम मृषावाद है तथा ३ दूसरोकी वस्तु चुराय लेनी, इ...सका नाम अदत्तादान है, तथा ४ स्त्री पुरुषका जो जोडा, तिसका नाम मिथुन है, इन दोनोके मिलनेसे जो कर्म, सो मैथुन. (अब्रह्म सेवनं) त...था ५ "परिगृह्यते" सर्व ओरसे अंगीकार करिये, चार गतिके निबंधन कर्म जिस करके, सो परिग्रह, इन पाचोके चार चार भेद है, सो कहते हैं

१ एक द्रव्यसे हिंसा है, परंतु भावें नही, २ एक द्रव्ये हिंसा नहीं, परंतु भावें है, ३ एक द्रव्यभी हिंसा है, अरु भावेभी हिंसा है, ४ एक द्रव्यमें हिंसा नही, अरु भावेंभी हिंसा नही, यह प्रथम अव्रतके चार भेद कहे. तिसमें प्रथम भंगका स्वरूप ऐसे है कि साधुकी समाचारी प्रतिलेखना क...रनेसें, मार्गमें विहार करनेसे, नदी आदिकके लंघनेसे, नावमे बेठ कर नदी उतरनेसे, नदीमें साध्वी आदिकके काढनेसें, वर्षा वर्षतामे शोच जानेसें,

ःनि रोगीकी लघुशंकाकों मेघ वर्षतामें गेरनेसें, गुरुके शरीरमें वाय
ा थकेवा दूर करके मूठी चांपी करनेसें, जो हिंसा होती है, सो सर्व
यहिंसा है, तथा श्रावककों जिनमंदिर बनानेसें, जिनपूजा करनेसें,
र्म्मिवत्सल करनेसें, तीर्थयात्रा जानेसें, रथोत्सव, अठाइ उत्सव, प्र
ष्ठा अरु अंजनशलाका करनेसें, तथा भगवान्के सन्मुख जानेसें, गुरुके
मुख जानेसें, इत्यादि कर्त्तव्यसें जो हिंसा होवे. सो सर्व द्रव्यहिंसा
; परंतु भावहिंसा नही. इसका फल अल्प पाप, अरु बहुत निर्जरा है.
ह भगवती सूत्रमें लिखा है, यह हिंसा साधु आदि करते है परतु उन
; परिणाम उस अवसरमें खोटे नही है, इस वास्ते द्रव्यहिंसा है.

प्रश्नः—यज्ञादिमें जो गोमेध प्रमुख जीव मारे जाते हैं, यहभी द्रव्यहिं
ा क्यों नही? इसका उत्तर, मीमांसक मत खंमनमें लिख आये है, सो
ख लेनां यह प्रथम भंग.

दूसरे भंगमें द्रव्यहिंसा नहीं परंतु भाव हिंसा है, तिसका स्वरूप कह
है, कि जो पुरुष उपरसें तो शांतिरूप बना हूआ है परतु परिणाम अं
ःकरण जिसका खोटा है, वो ऐसा चाहता है कि मेरे शत्रुके घरमें आ
लग जावे, मरी पड जावे, नदीमें डूब जावे, चोरी हो जावे, बंदीखाने
ं पडे, तथा वेष बदलके भला मानस बनके ठग वाजी करे, तथा अग
ेका बुरा करनेके वास्ते अनेक प्रकारसे उसको विश्वास करावें, तथा फ
ीरीका वेष करके लोकोसें धन एकठा करे, इत्यादि तथा साधुके गुण तो
ससमे नही है, परंतु लोकोमे अपने आपको गुण प्रकट करे, इत्यादिक का
में द्रव्य हिसा तो नही करता, परतु भावसें तो वो पुरुष, हिंसक है, इसका
फल संसारमे भ्रमण करने सीवाय और कोइ फल नही. यह दूसरा भंग.

तीसरे भंगमे प्रकट इंद्रियोकी विषयमें गृद्ध हो कर जीवहिंसा कसाइ,
(खटिक) वाघुरी अहेडी, (शिकार मारनां) विश्वासघात, इत्यादि करके
ीवहिंसा करनी, अरु मनमे आनंद मानना, इसका फल दुर्गति है, यह
द्रव्येंभी हिंसा है, अरु भावेंभी हिसा है, यह तीसरा भग.

चौथा भंगमें द्रव्येंभी हिंसा नही, अरु भावेंभी हिंसा नही, उसकों
हिंसा कहना. यह भंग शून्य है, इस भंग वाला कोइभी जीव नहीं ॥इति॥

ऐसेंही झूठकेभी चार भेद हैं तिसका स्वरूप कहते है. १
स्तेमें चला जाता है, तिसके आगें हो कर एक जंगली गौआंका
गादि जानवरोंका टोला निकल जावे, तिसके पीछें शिकारी बंदूक
शस्त्र लीयां चला आता है, उनके मारने वास्ते वो शिकारी साधुको
तुमने अमुक जीव जाते देखे हैं? तब साधु मौन कर जावे, जे
करेभी पीछा न छोडे, साधुकों मारे, तब साधु कह देवे, मै नहीं
यद्यपि यह द्रव्ये झूठ है, परंतु भावे झूठ नहीं, क्योंकि जो कोइ
विषय वास्ते तथा अपने लोभ वास्ते झूठ बोले, तब भावतः झूठ
तु यह तो जीवोंकी दया वास्ते झूठ बोले है. वास्तवमें यह झूठ
इसी तरे और जगेंभी समझ लेनां. यह प्रथम भंग.

तथा दूसरा भंगमे कोइ पुरुष मुखसें तो कुछ नहीं बोलता, परंतु
के ठगने वास्ते मनमें अनेक विकल्प करता है, यह दूसरा भंग तथा
रे भंगमें तो द्रव्येभी झूठ बोलता है, अरु भावेभी झूठ बोलता है,
का अभिप्रायभी महा छल कपट करनेका है, क्योंकि मुखसेंभी झूठ
है, अरु चित्तमेंभी दुष्टता संयुक्त है, यह तीसरा भंग. तथा चौथा भंग
पूर्ववत् शून्य है इति झूठ स्वरूप.

अथ चोरीका यही चार भंग कहते हैं. तहां प्रथम भंगमें जैसें
स्त्री शीलवान् है, औ कोइ दुष्ट राजा उसका शीलभंग करा चाहाता है
ब कोइ धर्मज्ञादि पुरुष रात्रिमें अथवा दिनमे उस स्त्रीके शीलकी रक्षा
स्ते उस राजसें बाहिर ले जावे, तो व्यवहारमें उस राजाकी उसने
भंगरूप चोरी करी है, परंतु वास्तवमें वो चोर नही. इसी तरें और जगा
मेंभी जान लेनां यह प्रथम भंग. दूसरे भंगमें चोरी तो नहीं करता, परंतु
चोरी करनेका मन उसका है, तथा जो भगवान् वीतराग सर्वज्ञकी आ
ज्ञा भंग करने वाला है, सोभी भावचोर है. यह दूसरा भंग. तथा तीसरे
भंगमें चोरीभी करता है, अरु मनमेंभी चोरी करनेका भाव है, यह तीस
रा भंगहै. अरु चउथा भंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति अदत्तादान भंग.

ऐसेंही मैथुनके चार भंग कहते है. जो साधु, जलमे डूबती साध्व
वीको देख कर काढनेके वास्ते पकडे, तथा धर्मी गृहस्थ छतसें गिरती
अपनी बहिन बेटीकों पकडे, तथा बावरी होइ दौडतीकों पकडे, यह इ

मैथुन है, परंतु भावें नहि. यह प्रथम भंग. तथा द्रव्यें तो मैथुन नहीं
ता है, परंतु मैथुन सेवनेकी बडी अभिलाषा करता है,सो भावें मैथुन
यह दूसरा भंग. तथा तीसरे भंगमें तो द्रव्यें अरु भावें मैथुन सेवता
अरु चौथा भंग पूर्ववत् शून्य है ॥ इति मैथुन स्वरूपं ॥

ऐसेंही परिग्रहका चार भंग कहते है, १ जैसें कोइ मुनि कायोत्सर्ग
रहा है, उसके गलेमें कोइ हारादिक आभूषण गेर देवे, वो द्रव्ये तो
ग्रह दीखता है, परतु भावें परिग्रह नहीं है, यह प्रथम भंग. तथा दू
ा द्रव्यें तो उसके पास कौडी एकभी नहीं है, परतु मनमें धनकी बडी
भिलाषा रखता है, सो भावपरिग्रह है. तथा तीसरेमें धनभी पास है,

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह संयुक्त चित्तसें जो स्त्री आ
शरीरका स्पर्श करनां, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्वं अंगीकार करे हुए
पोपादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो
त्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थः १४ "समंतात्" सर्व ओरसें
पात" आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें
दिकमें, सो समंतोपनिपात, तहां जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो सामंत
तिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी
जावसें अनुमोदना करे, सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपणे ... करके
जैसें कोइ पुरुष वडे अभिमान करकें क्रोधित चित्त हूआ थका जो काम
के नौकर कर सक्ते हैं, उस कामकों अपने हाथसें करे, सो स्वाहस्तिकी
१७ जगवत् अर्हतकी आज्ञा उल्लंघन करकें अपणी बुद्धिसें जीवाजी
पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८
के अण होये खोटे आचरणका प्रकाश करणां, उनकी पूजाका नाश
तिस करनेसें जो उत्पन्न होवे, सो वैदारणिका क्रिया, १९ आजोग नाम
उपयोगका, तिस्सें जो विपरीत होवे, सो अनाजोग है, तिस करकें
त जो क्रिया, सो अनाजोग क्रिया. बिना देखे, बिना पूंजे देश अर्थात
जूम्यादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां, सो अनाजोग क्रिया, २०
अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अवकांक्षा है, इस्से जो वि
रीत तिसका नाम. अनवकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अनवकां
प्रत्यय क्रिया. तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्त्तव्य विधियोमें किसी विधि
में जो अपनेकों अरु और जीवोंको हितकारी है, तिन विधियोमें प्र
दके वश हो कर आदर न करना, सो अनवकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया,
"प्रयोग" दौडना चलनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर
व बोलनादि बचनव्यापार, पराजिद्रोह, ईर्ष्या अजिमानादि मनोव्यापा
इन तीनोंका जो करणां, सो प्रयोगक्रिया, २२ जिस करकें विषय ग्रह
करिये, सो समादान इंद्रिय हैं, तिसकी जो क्रिया देश सर्व उपघात
व्यापार, सो समुदान क्रिया, २३ प्रेम नाम है माया अरु लोजका, ति
करके जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २४ द्वेष नाम है क्रोध अरु

का, तिन करकें जो होवे, सो द्वेषप्रत्ययिकी क्रिया, २५ चलनेसें जो क्रिया होवे, सो ईर्यापथक्रिया. यह क्रिया वीतरागकों होती है.

अथ इन पच्चीश क्रियाका व्याख्यान करते हैं १ प्रथम कायिकी क्रिया दो प्रकारकी है, एक अनुपरता कायिकी क्रिया, दूसरी अनुपयुक्त कायिकी क्रिया, उसमें प्रदुष्ट मिथ्यादृष्टि जीवके मन वचनकी अपेक्षा रहित पर जीवोंके पीडाकारी ऐसा जो कायाका उद्यम, सो प्रथम भेद है, तथा प्रमत्त संयतके विना उपयोग अनेक कर्त्तव्यरूप कायाका व्यापार, सो दूसरा भेद, यह कायिकी क्रियाका स्वरूप कह्या. २ दूसरी अधिकरणकी क्रिया दो प्रकारे है. एक संयोजना, दूसरी निवर्त्तना, उसमें विष, गरल, फांसी, धनु, यंत्र, तलवार, आदि शस्त्रोंकों जीवोंके मारणे वास्ते जो इनका "संयोजन" अर्थात् मिलाप करणां, जैसें धनुष अरु तीरका मिलाप करनां, ऐसी तरें सर्व जाननां. यह प्रथम भेद तथा तरवार, तोमर, शक्ति, तोप, बंदुक. इनका जो नवे सिरसें बनानां, यह दूसरा भेद यह दूसरी क्रियाका स्वरूप कह्या. ३ जिन निमित्तोंसें क्रोध उत्पन्न होवे, सो निमित्त जीव अजीव हैं, उसमें जीव तो प्राणी, अरु अजीव खूंटा, कांटा, पत्थर, कंकरादि, इनके उपर द्वेष करे, यह तीसरी प्रद्वेषक्रिया, ४ तथा अपणे हाथों करके अरु परके हाथों करकें, जीवको ताडनां (पीडा देनी) सो परितापना, इस परितापनाके दो भेद है, एक तो "स्व" (अपणे आपकों) पीडा देनी, जैसें पुत्र कलत्रादिके वियोगसें दुःखी हो कर अपणे हाथों करी छाती शिरका कूटनां, यह प्रथम भेद. तथा पुत्र शिष्यादिकोकों ताडनां (पीटनां) यह दूसरा भेद, यह चौथी पारितापनिकी क्रिया. तथा ५ पाचमी प्राणातिपातकी क्रियाके दो भेद है, एक तो अपणे आपकी घात करणी, जैसेकि जान बूज कर पर्वतसें गिरके मर जाना, भर्त्ताके साथ सती होनेके वास्ते अग्निमें जल मरनां, पाणीमें डूबके मरना, विष खा के मरनां, शस्त्रसे मरना, इत्यादि स्वप्राणातिपात यह महापाप रूप क्रिया, यह प्रथम भेद तथा दूसरी मोह, लोभ, क्रोधके वश हो कर पर जीवकों स्व अथवा परहाथ करकें मारणा. यह पाचमी क्रिया, ६ जीव, अजीवका आरंभ करणां, सो आरंभकी क्रिया, ७ जीव अजीवका परिग्रह करणां, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ माया करणी, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ मि

परीत वस्तुका श्रद्धान सोइ है, निमित्त जिसका सो मिथ्यात्व दर्शनत्ययकी क्रिया, १० जीवके हननेका तथा अजीव मद्य मांसादि पीनेका जिसके त्याग नही, ऐसा जो असंयती जीव, तिसकों ..नकी क्रिया, ११ घोडा, रथ,प्रमुख जीव तथा अजीवोंके देखने वास्ते नां, सो दृष्टिकीक्रिया,१२ जीव, अजीव, स्त्री, पूतली, आदिकका राग स्पर्श करनां, सो स्पृष्टिका क्रिया, १३ जीव, अजीवकी अपेक्षा जो बंध होवे, सो प्रातीत्यकी क्रिया, १४ जीव सो पुत्र, भाइ, शिष्यादिक रु अजीव सो भूषण, घर, हाटादि. इनकों लोक सर्व दिशोंसें देखने देखके प्रशंसा करे, तब तिन वस्तुओंका स्वामी हर्षित होवे, सो सामपनिपातिका क्रिया, १५ जीव मनुष्यादि अरु अजीव ईंटका टुकडा फेंके सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथों करी जीवको तथा को (प्रतिमादिको) ताडे, बांधे, सो स्वहस्तकी क्रिया,१७ जीव.. मिथ्या प्ररूपणा करणी, तथा जीव अजीवको मंत्रसे मगावा लेना, आज्ञापनिका क्रिया. १८ जीव अजीवको विदारणा,सो वैदारणिका क्रिया १९ विना उपयोगकुं जो वस्तु लेवे, तथा भूमिकादि उपर छोडे, सो अनाभोगक्रिया, २० इस लोकमे औ परलोकमें जो विरुद्ध ऐसा जो चोरी परदारागमनादिक है, उनको सेवे, मनमें डरे नही, सो अनवकाङ्क्षा प्रत्यय क्रिया, २१ मन, वचन, कायाका जो सावद्य (सपाप) व्यापार, सो प्रयोग क्रिया, २२ अष्टविध कर्म परमाणुओंका जो ग्रहणा, सो समुदान क्रिया, २३ राग जनक वीणादिकका जो शब्दादि सो प्रेम प्रत्यय क्रिया. २४ अपणे उपर तथा पर उपर द्वेष करनां, सो द्वेषप्रत्ययिकीक्रिया, २५ केवल योगोसें जो क्रिया. सो केवलीकों ईर्यापथ क्रिया. यह पच्चीस क्रियाका स्वरूप संक्षेप मात्र लिखा है यद्यपि इन क्रियाओंमे कितनीक क्रिया आपसमे एक सरखी दीखती है, तोभी एक सरखी नहीं है, इनका अधिकतर स्वरूप देखनां होवे, तो गंधहस्तीभाष्य देख लेना.

अथ योग तीन है, सो लिखते है. १ मनका व्यापार, सो मनोयोग, २ वचनका व्यापार, सो वचनयोग, ३ कायाका व्यापार, सो काययोग. यह सर्व मिल कर बेतालीस भेद आश्रव तत्त्वके हूये हैं. इन बेतालीस भेदोंसे जीवको शुभाशुभ कर्मकी आमदनी होती है. इति आश्रवतत्त्व संपूर्ण॥

अथ संवरतत्त्व लिखेते है. पूर्वोक्त आश्रवका जो रोकने वाला सो
वर है, तिस संवरके सत्तावन भेद है, सो कहते है पांच समिति,
न गुप्ति, दश प्रकारका यतिधर्म, बारह भावना, बावीश परीसह, पां
चारित्र. यह सब मिल कर सत्तावन भेद हूये इनमेंसूं पांच समिति,
न गुप्ति, दशविध यतिधर्म, बारह भावना, इनका स्वरूप गुरु तत्त्वमें लि
आये है. तहांसें जान लेनां. इहा नही लिखते.

अथ बावीश परीषहका स्वरूप लिखते है. १ क्षुधापरीषह, सो क्षुधा
म भूखका है, शेष वेदनासें अधिक भूखकी वेदना है, सो जब क्षुधा
गे, तब अपनी प्रतिज्ञासे न चले, अरु आर्त्तध्यानभी न करे. सम्यक्
रिणामोंसें क्षुधा सहे, सो क्षुत्परीषह, २ ऐसेंही पिपासा जो तृषा तिस
परीषहभी जान लेना, ३ शीतपरीषह, सो बडा भारी जब शीत पडे,
बभी अकल्पनिक वस्त्रकी वांछा न करे, जैसें जीर्ण वस्त्र होवे, उनोंहीसें
त सहे, अरु अग्निसेंभी न तापे, इसी रीतीसें सम्यक् शीत परीषह सहै.
ऐसेंही उष्णपरीषहभी सहै, ५ दंशमशकपरीषह, सो दंश मशक जब
टे, तब उस स्थानसें चले जानेकी इछा न करे, तथा दंश मशकके दू
करने वास्ते धूमादि यत्नभी न करे, तथा तिनके दूर निवारण वास्ते पं
भी न करे, ऐसा पुरुष, दंश मशक परीषह सहे, ६ अचेलपरीषह, जो
र्वथा वस्त्रोंका अभाव, तिसका नाम अचेल परीषह नही, किंतु आगम
जो वस्त्रादिक रखनेका प्रमाण कह्या है, तिस प्रमाण रखनां सो परिग्र
नहीं है, परिग्रह तो उसकों कहते है कि जो मूर्छा करकें रखे॥ उक्तं च ॥
पि वत्थं च पायं च, कंबलं पाय पुछणं ॥ सोपि संजम लज्जठा, धारिति
रिहरति य ॥ १ ॥ न सो परिग्गहो वुत्तो, नाइ पुत्तेण ताइणा ॥ मुछापरि
हो वुत्तो, इइ वुत्त महेसणत्ति ॥२॥ चेल नाम वस्त्रका है, सो शीर्ण अर्थात्
टे हूये अरु जीर्णभी होवे, तोभी अकल्पनिक न लेवे, सो अचेलपरीषह,
अरतिपरीषह, सयम पालनेको जो अरति संयममे उत्पन्न होवे, तिसकों
है, इसके सहनेका उपाय दशवैकालिककी प्रथम चूडामे अठारह वस्तुके
तनरूप करनेसे अरतिदूर हो जाती है. ८ स्त्रीपरीषह, सो स्त्रीयोंके
ग प्रत्यग सस्थान स्मृति, हसना, मनोहर पणां, विभ्रमादि चेष्टायोंकों
नमे चितवना न करे, मोक्ष मार्गमें अर्गलसमान स्त्रीयोको जान करकें

तिनोमें कामकी बुद्धि करके, नेत्रोंसें देखे नहीं. ए चर्या नाम है का चलनां घर रहित ग्राम नगरादिमें अनियतवास ममत्व ... स कल्पादि करणां, सो चर्यापरीषह है, १० निषद्यापरीषह, ... षद्या यह रहनेके स्थानका नाम है, सो स्थान, स्त्री, पंडक विव... वे, तिस स्थानमें रहतेकों इष्टानिष्ट जो उपसर्ग होवे, तोभी अपणे ... चलायमान न होवे, सो निषद्यापरीषह, ११ 'शेरते' शयन करियें ... पे सा शय्या, संस्तारक, वसति. तहां संस्तारक सो सोनेंका आ... मल, कठिन, ऊंचा, नीचा, धूल, कूडा, कंकर वाली जगामें होवे, वो स्थान, शीत गर्मी वाला होवे, तोभी मनमें उद्वेग न करे. ... करे, सो शय्यापरीषह, १२ आक्रोश परीषह, सो अनिष्ट वचन कोइ तव ऐसें विचारे,जे कर यह पुरुष सच्ची बातके वास्ते अनिष्ट वचन है, तो मुझको कोप करनां ठीक नहीं, क्योंकि यह पुरुष मुझे ... है, फेर ऐसा काम न करुंगा, जे कर इस पुरुषका मेरे पर झूठ तोभी मुझकों कोप करनां युक्त नहीं, ऐसें चिंतन ... सहे, १३ वध नाम है हाथादि करकें ताडनां, (मारना,) तिसका सो इसी रीतीसें कि यह जो मेरा शरीर है, सो अवश्य विध्वंस ... इस शरीरके संबंधसें जो मेरेको दुःख होता है, सो मेरे करे हूये का फल है. इस बुद्धसें वधपरीषह सहे. १४ याचना नाम मांगनेका है सर्वही वस्त्र अन्नादिक साधुकों मागनेसेंही मिलता है, इस बुद्धिसें याचना परीषह सहे, १५ साधुको किसी वस्तुकी इछा है, अरु वो वस्तु गृहस्थ के घरमेभी बहुत है, साधु मांगनेकों गया, परंतु गृहस्थ देता नहीं, तब साधु मनमें विषाद न करे, अरु देने वालेका बुराभी नहीं चिंतवे, दुर्व चनभी न बोले, समता करे, आज नहीं मिला, तो कलकों मिल जाव गा, इस तरे अलाभपरीषह सहे, १६ रोग (ज्वर अतिसारादि) जब हो जावे, तब गछके बाहिर जो साधु होवे, सो तो कोइभी औषधि न खावे, अरु जो गछवासी साधु होवे, सो गुरु लाघवता विचार करकें रोग परीषह सहे, अरु जो रीति शास्त्रमे औषध करनेकी कही है, तिस रीतिसें करे, सो रोगपरीषह सहे, १७ तृणस्पर्श परीषह, सो दर्भादिक कठोर तृणका स्पर्श सहे, १८ मलपरीषह, सो साधुके शरीरमे पसीना आनेसें रजका ...

शरीरमें लगनेसें कठिन मैल लग जाता है, अरु उष्ण कालकी तप्तसें
ट हूआ है दुर्गंध तिस करकें उत्पन्न हूआ है उद्वेग, तोभी स्नाना
शरीरकी विभूषा साधु न करे, यह मलपरीषह है, १९ सत्कारपरीष
सो भक्त लोकोंने वस्त्रान्न पानादिक करकें साधुकों बहुत सत्कारभी
या, तोभी मनमें अभिमान न करणां, तथा और और साधुओंकी भक्त लोक
जा भक्ति करते है, अरु जैनमतके साधुकी कोइ बातभी नही पूछता,
भी मनमें विषाद न करे, यह सत्कारपरीषह है, २० प्रज्ञापरीषह, सो
हुत बुद्धि पा कर अभिमान न करे तथा अल्पबुद्धि होवे तदा "मैं म
मूर्ख हूं, सर्वके पराभवका स्थान हूं," ऐसी ताप दीनता मनमें नही
वे, सो प्रज्ञापरीषह, २१ अज्ञानपरीषह, सो ज्ञान चौदहपूर्व पाठी,
कादशांगपाठी, तथा उपांग, छेद, प्रकर्ण, शास्त्रोंका पाठी. ज्ञानका स
द मैं हूं ऐसा गर्व न करे. अथवा मे आगम ज्ञान रहित हूं, धिक् है,
फे निरक्षर कुक्षिंभरकों? ऐसी दीनताभी न करे, ऐसें विचारे कि नि.के
ल ज्ञानावरणका क्षयोपशमके उदयसें मेरा यह स्वरूप है, स्वकृतकर्म
फल है, जांतों भोगनेसें दूर होवेगा, वा तपोनुष्ठानसें दूर होवेगा?
सें विचारि अज्ञान परीषह सहे, २२ शास्त्रोंमें देवता अरु इंद्र सुनते है,
रंतु सांनिध्य कोइभी नही करता, इस वास्ते क्या जाने देवता इंद्र है?
नही? तथा मतांतरकी ऋद्धि वृद्धि देख कर जिनोक्त तत्त्वमें संमोह
रनां, ऐसी विकलता जो मनमें न लावे, सो दर्शनपरीषह. यह बावी
परीषह जो साधु जीते, सो संवरी कहा जाता है, इन परीषहोंका वि
तार देखनां होवे, तो श्रीशांतिसूरिकृत उत्तराध्ययन सूत्रकी बृहद्वृत्ति, त
तत्त्वार्थ सूत्रकी वृत्ति देख लेनी.

अथ पांच प्रकारका चारित्र लिखते है १ सामायिक चारित्र, २ छेदोप
यापनिका चारित्र, ३ परिहारविशुद्धि चारित्र, ४ सूक्ष्मसंपराय चारित्र,
यथाख्यात चारित्र, यह पांच प्रकारका चारित्र है. इन पांचोंके धारक
ाधु भी जैनमतमे पांच प्रकारके है, इस कालमे प्रथम दो चारित्रके धार
साधु है, अरु तीन चारित्र व्यवछेद गये है, इन पांचोंका विस्तार पूर्वक
खनां होवे तदा देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी टीका, तथा भ

गवती अरु पन्नवणासूत्रकी वृत्ति देख लेनी. यह सर्व मिल सत्तावन नेद आश्रवके रोकने वाले हैं. इति सवरतत्त्व संपूर्ण ॥

अथ निर्जरातत्त्व लिखते हैं. निर्जरा उसकों कहते है, जो बांधे कर्मोंकों खेरु करे, जिस करके निर्जरा होती है, तिसका नाम... सो तप बारह प्रकारका है, उसका स्वरूप गुरुतत्त्वमे संक्षेप करके आये है, तहांसें जान लेनां. अरु जे कर विस्तार देखनां होवे, तदा तत्त्वप्रकरणवृत्ति तथा श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर शास्त्र, श्रीरत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप, तथा नगवतीसूत्र, अरु उववाई सूत्र देख लेनां ॥ इति निर्जरातत्त्व संपूर्ण ॥

अथ बंधतत्त्व लिखते है, बंध चार प्रकारका होता है, १ प्रकृ... २ स्थितिबंध, ३ अनुनागबंध, ४ प्रदेशबंध बंध कहते हैं जीवके अरु कर्मपुजल,ये दोनों दूध अरु पाणीकी तरें परस्पर मिल जावे, बंध कहते है. अथवा बंध नाम बंदीवानका है, जैसें बंधुआ कैदमें ...त्र नही रहता, ऐसें आत्मानी ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके वश हो... स्वतत्र नही रहता है, इस कर्मके बंधमें ४ विकल्प है, सो कहते हैं.

१ कोइक वादी कहता हैं, कि निर्मलजीव पुण्य पापके बंध रहित पीछेसें पुण्य पापका बंध हूआ है, यह प्रथम विकल्प, यह विकल्प मि... है, क्योंकि निर्मल जीव कर्मका बंध नही कर सक्ता है, अरु कर्मके बि... संसारमें उत्पन्ननी नहीं हो सक्ता है, जे कर निर्मल जीव कर्मका ... करे, तब तो मोक्षस्थ जीवनी कर्मका बंध कर लेवेगा, जब मोक्षस्थ ...वकों कर्मबंध हूआ,तब मोक्षका अनाव हो जावेगा, जब मोक्ष नहीं, तो मोक्षोपायके शास्त्र अरु शास्त्रोंके बनाने वाले मिथ्यावादी हो जा... तब तो नास्तिकमती बन जायंगे,अरु निर्मल आत्मा ससारमें शरीरके नावसें कर्मनी काहेसें करेगा? इस वास्ते यह प्रथमविकल्प मिथ्या...

२ दूसरा विकल्प कर्म पहेले थे,अरु जीव पीछेसें बना है, यहनी मिथ्या... क्योंकि जीवोंके बिना वो कर्म किसनें करे थे, कारणकि कर्त्ताके बिन... ...मे हो नही सके है, अरु प्रथम कर्मोंका फल इस जीवको नहीं होवे... क्योंकि वो कर्म जीवके करे हूए नही है, जे कर कर्मके करे बिनानी ...र्मका फल होवे, तब तो अतिप्रसंग दूषण होवेगा, अरु बिना कर्मके

ईश्वरन्नी कर्मफल भोगने वास्ते नरककुंडमें जा गिरेगा, अरु जीव पी
में काहेसें बनेगा ? जीवका उपादान कारण कोइ नही. जे कर कहोगे
ईश्वर जीवका उपादान कारण है, तब तो कारणके समान कार्यन्नी
नां चाहियें. जेसा ईश्वर निर्मल, निःपाप, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, तैसाही
व होवे, परंतु तैसा है नही. अरु जो ईश्वर जीवोंका उपादान कारण
वे, तब तो ईश्वरही जीव बन कर नाना क्लेश जन्म मरण गर्नावासादि
खोंका भोगने वाला हूआ, तब ईश्वरने यह अपने पगमें आप कुहाडा
यों मारा ? जो पूर्णानंद पद छोड कर संसारकी विटंबनामें फसा ? फेर
पने आपकों निःपाप करने वास्ते वेदादि शास्त्र द्वारा केइ तरेंका तप
पादिक क्लेश करनां बताया ? इस वास्ते यह सर्व कहनां महा मूर्खोंका
, इस वास्ते यह दूसरा विकल्पन्नी मिथ्या है.

३ तीसरा विकल्प, जीव और कर्म यह दोनों एक साथ उत्पन्न हूये, यहन्नी
थ्या है, क्योंकि जो वस्तु समकालमें उत्पन्न होती है, सो आपसमें
रण कार्य रूप नहीं होती है, जब कर्म, जीवके करे सिद्ध न हूये, तब
र्मफलन्नी जीव नहीं भोगेगा, यह प्रत्यक्ष विरोध है, क्योंकि जीव तो
र्म भोक्ते दीखते है, अरु कर्म तथा जीवका उपादान कारण कोइ नहीं.
स वास्ते यह तिसरा विकल्पन्नी मिथ्या है.

४ चौथा विकल्प, जीव तो है परंतु जीवके कर्म नही यहन्नी मिथ्या है,
योंकि जब जीवके कर्म नहीं, तो जीव दुःख सुख क्यों भोक्ता है ? कर्म
विना संसारकी विचित्रता कदापि न होवेगी ? इस वास्ते यह चौथा
िकल्पन्नी मिथ्या है.

५ पांचमा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनोंही नही, यहन्नी मिथ्या
है. क्योंकि जब जीवही नही, तब यह कौन कहता है, जो जीव अरु कर्म
हीं है, अैसा कहने वाला जीव है ? कि दूसरा कोइ है ? इस वास्ते यह
वचनविरोध है, तो यह पाचमा विकल्पन्नी मिथ्या है. यह पांच विकल्प
मिथ्यात्वरूप है, अरु सत्य विकल्प छठा है, सो यह है.

६ छठा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनों अनादि अपश्चानुपूर्वी है.

प्रश्नः—जब जीव अरु कर्म यह दोनों अनादि है, तब तो जीवकी त
कर्मका नाश कदापि न होना चाहियें ?

उत्तरः–कर्म जो अनादि कहे हैं, सो प्रवाह अनादि हैं, इस सका क्षय हो जाता है.

प्रश्नः–यह जो तुम बंध कहते हो, सो निर्हेतुक है? अथवा है? जे कर कहोगे कि निर्हेतुक है, तब तो "नित्य सत्त्वं" होवेगा "नित्य असत्त्वं" होवे गा, क्योंकि जिस वस्तुका हेतु नहीं, वो शवत् नित्य सत्त्व होती है, अथवा खरशृंगवत् नित्य असत् निर्हेतुक होनेसें मोक्षका अभाव हो जावेगा. जे कर कहोगेकि है, तो हमकों कहो कि इस बंधके क्या हेतु है?

उत्तरपक्षः–इस बंधके मूल हेतु चार हैं, अरु उत्तर हेतु यहां प्रथम चार प्रकारका बंध कहते है, तिसमें प्रथम तो सो प्रकृति कौनसी है? अरु उसका बंध क्या है? तहां मूल प्रकृति ८ हैं, उसमें १ मत्यादि ज्ञानका जो आवरण आछादन, सो २ सामान्य बोध चक्षु आदिका जो आवरण सो दर्शनावरण, ३ ख वेदीयें (जोगीयें) सो वेदनीय, ४ मोहे जीवकों विचित्रताकों करे, सो मोह,५ सर्वथा जो कर्म चला जावे "एति याति चेत्यायु" उदयसें जीव जीता है सो आयु, ६ नमावे जो शुभाशुभ गत्यादि करकें आत्माकों, सो नामकर्म, ७ गोत्र शब्दकी व्युत्पत्ति असें है "गां त्रायतइति गोत्रं" जिसके उदयसें जीव उंच नीच कुलका कहाता सो गोत्र, ८ अंतर कहियें विचाले लाभादिके जो हो जावे, एतावता न लाभादिक जीवमें होतांकों न होने देवे, सो अंतराय, यह आठ स्वरूप कर्म जो जीवके साथ क्षीर नीरकी तरें मिथ्यात्वादि हेतुओंसें ध जावे, तिसका नाम प्रकृतिबंध है. २ इनही आठ प्रकृतियोंकी अर्थात् काल मर्यादा, जैसी कि यह प्रकृति इतना काल तक आत्माके साथ रहेगी, पीछेसें न रहेगी, जिस करके असी स्थिति होवे, सो स्थिति बंध. ३ इनही आठ प्रकृतियोंमें तीव्र, मंद, रसका जो करनां, सो अनुभागबंध, ४ कर्मप्रदेशका जो प्रमाण यथा इतने परमाणु इस प्रकृतिमें है उन परमाणुओंका जो आत्माके साथ बंध सो प्रदेशबंध.

इसका बंध इस तरें चार प्रकारें है. सो भव्य जीवोंके सुबोधके वास्ते चार प्रकारके बंधमें लड्डुका दृष्टांत लिखते हैं, जैसे एक लड्डु है, तिसका

नाव वात हरणेका वा पित्त हरणेका वा कफ हरणेका इत्यादि होता ऐसेंही प्रकृति स्वनाव कर्मोंका, किसी प्रकृतिका ज्ञानावरण करनेका नाव, कोसी प्रकृतिका दर्शन आवरण करनेका स्वनाव होता है,सो प्रकृ बंध, २ कोइ लड्डु एक दिन रहके बिगड जाता है,कोइ दो, तिन, चार, च, ठ, सात, आठ, नव, दश, इग्यारह, बारह, तेरह, चौदह दिन, कोइ , मासादि रहता है, पीछें बिगड जाता है. ऐसेंही कर्मस्थितिनी कोइ डी, पहर, दिन, पक्ष, मास,यावत् सीत्तेर कोटाकोटी सागरोपम लग रह र फल दे कर, चली जाती है, यह दूसरा स्थितिबंध. ३ जैसें लड्डुमें रस किसीमें कडुवा, किसीमें कषायेला,किसीमें मीठा, ऐसेंही कर्मोंमें रस है सीमें दुःख रूप, किसीमें सुख रूप, जो जो अवस्था जीवकी संसारमें होती है, सो सर्व कर्मके अनुजागसें होती है, यह तीसरा अनुनाग बंध. था ४ जैसें लड्डुका तोल, मान,कोइ तोला,कोइ ठ टांकादि होता है, ऐसे ही कर्मप्रदेशोंकी गिणती किसी कर्ममें थोडी, किसीमें अधिक, होती है, यह चोथा प्रदेश बंध यह दृष्टांत कर्मग्रंथमें है.

अथ बंधके हेतु लिखते हैं. एक तो मिथ्यात्व सो तत्त्वार्थ श्रद्धान रहित होनां, दुसरा पापोसें निवर्त्त होनेके परिणाम रहित होनां, सो अविरतिपणां, तीसरा कष नाम संसारका है, तथा कर्मका है, तिसका जो आय नाम लान सो कषाय, क्रोध, मान, माया, लोन रूप. चौथा योग सो मन, वचन, कायाका व्यापार, यह चारों, बंधके मूलहेतु हैं.

अब उत्तर हेतु सत्तावन लिखते है. उसमें प्रथम तो मिथ्यात्व पांच प्रकारका है १ अनिग्रह मिथ्यात्व, २ अननिग्रह मिथ्यात्व, ३ अनिनिवेश मिथ्यात्व, ४ संशयमिथ्यात्व, ५ अनानोग मिथ्यात्व.

१ प्रथम अनिग्रह मिथ्यात्व है, सो जो जीव ऐसा जानता है. कि जो कुछ मैने समजा है, सो सत्य है. औरोंकी समज ठीक नही है, सच्च जूठकी परीक्षा करनेका मननी नही है, सच्च जूठका विचारनी नहीं करता है, यह मिथ्यात्व दीक्षित शाक्यादि अन्यमत ममत्व धारीयोंकों होतो है, वो अपने मनमें ऐसे जानते हैं, कि जो मत, हमने अंगीकार कीया है, वो सत्य है, और मत सर्व जूठ है, ऐसें जिसके परिणाम होवे. सो अनिग्रह मिथ्यात्व.

२ दूसरा अनभिग्रह मिथ्यात्व, सो सर्व मतोंकों अच्छा माने मोक्ष है, इस वास्ते किसीकों बुरा न कहनां, सर्वकों नमस्कार मिथ्यात्व, जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा, ऐसें जो गोपाल तिनकों है, क्योंकि यह अमृत अरु विषकों एक सरिखे जानने ॥

३ तीसरा अभिनिवेश मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जान करकें झू प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको भूल गया, पीछें जब कोइ वि है कि तुम इस बातमें भूलते हो, तब झूठे मतका कदाग्रह ग्रहण जात्यादि अभिमानसें कहनां न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित बना करके अपने मनमाने मतकों सिद्ध करे, वादमें हार जावे, न माने, ऐसा जीव अतिपापी, अरु बहुल संसारी होता है. ऐसी थ्यात्व, प्रायः जो जैनी (जैनमतकों) विपरीत कथन करता है, उसमें ती है, जैसें गोष्टमाहिलादिक हूये है, इस बातांकों भाष्यकार अ. देवसूरि नवांगीवृत्तिकारक नवतत्त्वप्रकरणकी भाष्यमें कहता है, था च भाष्यकारः ॥ गोठामाहिलमाई णं, जं अभिनिविसि तु तयं ॥" दि शब्दसें बोटिक शिवभूतिकों अभिनिवेशिक मिथ्यात्व जाननां.

४ चौथा संशय मिथ्यात्व, सो जिनोक्त तत्त्वमे शंका करणी, क्या य जीव असंख्य प्रदेशी है? वा नहीं है? इस तरें सर्व पदार्थोंमें शंका णी, तिससेंति जो उत्पन्न होवे, सो सांशयिक मिथ्यात्व. " तदाह भा कृत् ॥ सांशयिकं मिथ्यात्वं तदशेषया शंका संदेहो जिनोक्ततत्त्वेष्विति ॥ संशय मिथ्यात्वके होनेके कारण श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण ध्यानशतकमें लिखते है, कि एक तो जैनमत स्याद्वादरूप अनंतनयात्मक है, इस वास्ते झनां कठिन है, तथा सप्तभंगीके सकलादेशी, विकलादेशी भंगोंका अष्टपक्ष, सात सौ नय, चार निक्षेप, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तथा १ उ त्सर्ग, २ अपवाद, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ उत्सर्गोत्सर्ग, ६ अपवादापवाद, यह षड्भंगी तथा १ विधिवाद, २ चारित्रानुवाद, ३ वि धिवाद, ४ यथास्थितवाद, इत्यादि अनंतनयापेक्षा जैनमतके शास्त्र कथन कीये हूये हैं, जब तांइ जिस अपेक्षा शास्त्रोमे कथन है वो अपेक्षा न समझे, तब तांइ जैनशास्त्रका यथार्थ अर्थ समझनां कठिन है. इनके स मझनेके वास्ते बडी निर्मल बुद्धि चाहिये. सो थोडे जीवोंकों है, तथा

त्रके अर्थ बताने वाला गुरु पूरा चाहियें, सो नही है. इत्यादि निमि
त्तें संशयमिथ्यात्व होता है.
५ पांचमा अनाजोग मिथ्यात्व, सो जिन जीवोंकों उपयोग नहीं कि
, अधर्म, क्या वस्तु है ? ऐसा जो विकलेंद्रियादि जीव, तिनकों अना
गमिथ्यात्व होता है. यह मिथ्यात्वके पांच जेद हैं. यह पांच मिथ्या
में औरजी मिथ्यात्वके अनेक जेद हैं सोजी इन पांचोंके अंतर्जूत हैं,
जेद इस प्रकारसें हैं.
१ प्रथम प्ररूपणा मिथ्यात्व, सो जिनवाणी रूप जो सूत्र, निर्युक्ति,
ष्य, चूर्णी, टीका, इनसें विपरीत प्ररूपणा करे.
२ दूसरी प्रवर्त्तना मिथ्यात्व, सो जो काम,मिथ्यादृष्टि जीवों धर्म जान
कें करते हैं,उनकी देखा देखीसें उनकी करणी करें,३ तीसरी परिणाम
थ्यात्व, सो मनमें परिणाम विपरीत कदाग्रह रहे,शुद्ध शास्त्रार्थ माने नही.
४ चौथा प्रदेशमिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वके पुजल जो सत्तामें है, उन
नाम प्रदेश मिथ्यात्व है. इन चारों जेदोंकें अनेक जेद है, उसमेसूं
तनेक लिखते है.
१ धर्म जो वीतराग सर्वज्ञने कहा है, तिसको अधर्म माने, २ अरु जो
सा प्रवृत्ति प्रमुख आश्रवमयी अशुद्ध अधर्म है, उसकों धर्म माने, ३
सत्यमार्ग है, उसकों मिथ्यात्व कहे, ४ जो विपर्यायोंका मार्ग है, उ
कों सत् मार्ग कहे, ५ जो साधु सत्तावीश गुणों करी बिराजमान है, उ
कों असाधु कहे, ६ जो आरंज परिग्रह विषय कषाय करकें जरा हूआ
, अरु उपदेश ऐसा देता है, कि जिसके सुननेसें लोकोंकों कुवासना,
प्रपणा, कुबुद्धि उत्पन्न होवे, ऐसा गुरु पत्नरकी नौका समान ऐसे जो
न्यलिंगी कुलिंगी तिनकों साधु कहे, ७ षट्कायोंके जीवोंकों अजीव माने, ८
ाष, सोना, जो अजीव है, उनकों जीव माने, ९ मूर्त्ति पदार्थोंको अमू
माने, १० अमूर्त्ति पदार्थोंकों मूर्त्ति माने, यह दश जेद मिथ्यात्वके है.
तथा दूसरे ६ जेद मिथ्यात्वके हैं, सो कहते हैं. १ लौकिक देव, २ लौकिक
रु, ३ लौकिक पर्व, ४ लोकोत्तर देव. ५ लोकोत्तर गुरु, ६ लोको त्तर पर्व.
१ प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व जो है, सो जो देव, राग द्वेष करकें
रा हूआ है, एक उपर महेरवान होता है, एकका विनाश करता है, स्त्री

के भोगविलासमें मग्न है, अरु अनेक प्रकारके शस्त्र जिसके हाथमें अपनी ठकुराइमें अभिमानी है, हाथमें माला जपता है, सावध चेंद्रियका वध चाहाता है, ऐसे देवकों जो पुरुप परमेश्वर माने, परमेश्वरका अंश अवतार माने, और पूजे, तिसके कहे हूये शास्त्रसें कारी यज्ञादि करे, अनेक तरेंके पाप, धर्मके नामसें प्रवृत्त करे, क देवके अनेक भेद हैं. सो मिथ्यात्व सित्तरी प्रमुख ग्रंथोंसें प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व है.

२ दूसरा लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, सो जो अठारह पाप सेवे प्रकारका परिग्रह राखे, गृहस्थाश्रम सेवे, स्त्री, पुत्र, पुत्रीके परिवार होवे, तथा कुलिंगी मनःकल्पित नवा नवा वेष बना कर स्वकपो चलावे, अरु आडंबरी होवे, बाह्य परिग्रह तो त्याग दीया है, परंतु तर ग्रंथि छोडी नहीं, गुरु नाम धरावे, मंडलीसें विचरे, जिसकी भूल मिटी नही, औ जिसकों शुद्ध साध्यकी पीछाण नहीं, तिसकों माने, तिसका बहुमान करे, तिस्सें मोक्ष जाणी दान देवे, उसकों पात्र जाणे, सो लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व है.

३ तीसरा लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, सो १ अजापडवा, २ ३ गुरुतीज, ४ गणेशचौथ, ५ नागपंचमी, ६ झीलणाछठ, ७ तम, ८ बुधाष्टमी, ९ नोलीनवमी, १० विजयदशमी, ११ १२ वत्सद्वादशी, १३ धनतेरस, १४ अनंतचौदश, १५ अमावास्या, सोमवतीअमावास्या, १७ रक्षाबंध, १८ होली, १९ आहोइ, २० २१ सोमप्रदोष, २२ लोडी, २३ आदित्यवार, २४ उत्तरायण, २५ २६ ग्रहण, २७ नवरात्र, २८ श्राद्ध, २९ पीपलकों पाणी देना, ३० कों माताका घोडा मानके पूजणा, ३१ गोत्राटी, ३२ अन्नकूट, ३३ क समशान, कबरोंका मेला. इत्यादि यह लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व है.

४ चौथा लोकोत्तर देवगतमिथ्यात्व, सो देव श्रीअरिहंत, धर्मका आद्य विश्वोपकार सागर, परमपूज्य, परमेश्वर, सकल दोष रहित, शुद्ध, निरंजन तिनकी स्थापनारूप जो प्रतिमा, तिसके आगें इस लोकके पौद्गलिक सुखकी आशासे मनमे कल्पना करे, जे कर मेरा यह काम हो जावेगा, तो मैं बडी भारी पूजा करुंगा, छत्र चढाउंगा, दीपमालाकी रोशनी करुंगा, रात्रि जा

र करुंगा, असें नावोंसें वीतरागकों माने, इस वास्ते यह मिथ्यात्व है,
पुरुष चिंतामणिका दातासेंती काचका टुकडा मागे, वो युक्त नही. जि
ों अपणे कर्मोदयका स्वरूप मालुम नहि, वोही जीव असा होता है,
लोकोत्तरदेवगत मिथ्यात्व है.

५ पांचमा लोकोत्तरगुरुगत मिथ्यात्व, सो जो साधुका वेष रखे, अ
प्राप निर्गुणी होवे, जिनवाणीका उत्थापक होवे, अपणे मनःकल्पितका
देश देवे, सूत्रका सच्चा अर्थ तोडे, असा लिंगी उत्सूत्रका प्ररूपक ति
ों गुरु जान कर मान, सन्मान करे. तथा जो साधु गुणी, तपस्वी, आ
। बहुक्रियावंत, तिसकी इस लोक इच्छा करकें सेवा करे, बहुमान करे,
में असें जाणे कि इनकी बहुत सेवा करुंगा, तब इनकी मेहरबानगीसें ध
ऋद्धि, स्त्री, पुत्रादि मुझकों मिलेंगे, यह लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है.

६ छठा लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व, सो प्रभुके पांच कल्याणिककी तिथि
ं दूसरे पर्वके दिन, तिन दिनोमें धनादिके वास्ते जप, तप, धर्मकरणी
, सो लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व है. इत्यादि मिथ्यात्वके अनेक वि
र हैं, परंतु वो सब पूर्वोक्त अनिग्रहादि मिथ्यात्वमेंही अंतर्भूत है.
पांच प्रकारका मिथ्यात्व कह्या, यह प्रथमबंध हेतु कह्या.

अब बारह प्रकारकी अविरति कहते हैं. पांच इंद्रिय, छठा मन, अरु
ाय, यह बारह प्रकार हैं. तिसका स्वरूप इस तरेसें है, पांच इंद्रियोंकों
णे अपणे विषयमें प्रवृत्तावें, सो पांच अव्रत, अरु छठा किसी पापकी
ासें मनका निरोध न करना सो अव्रत है, तथा षड्विध जीवनिकायकी
ामें प्रवृत्त होवे,यह बारह प्रकारें अविरति है,यह दूसरा बंधहेतु कह्या.

तीसरा कषायबंध हेतु है, उनके सोलां कषाय, अरु नव नोकषाय,
। कर पच्चीस नेद हैं. अनंतानुबंधि क्रोध, मान, माया, अरु लोन, अैं
। अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, तथा प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, अरु सं
लन क्रोधादि चार, एवं सोलह कषाय, इनके सहचारी नव नोकषाय है,
का नाम कहते हैं. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ नय, ६
प्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ९ नपुंसकवेद इन सर्वका व्याख्यान पीछें
य आये है, इनसें कर्मका बंध होता है, यही संसार स्थितिका मूल
ण है. यह तीसरा बंध हेतु कह्या.

चौथा योगनामा बंधहेतु हैं. सो योग, मन, वचन, अरु काया, यह तीन प्रकारका है. इन तीनोंके पंदरा भेद हैं. तहां प्रथम मनोयोग चार प्रकारका है, और वचन योग चार प्रकारका है, अरु काययोग सात प्रकारका है, ये सब मिलकर पंदरा भेद हैं.

मन नाम अंतःकरणका है, सो चार प्रकारें है. १ सत्यमनोयोग, २ असत्यमनोयोग, ३ मिश्रमनोयोग, ४ व्यवहारमनोयोग मन क्या वस्तु है? कायाके व्यापारसें पुद्गल ग्रहण करके उन पुद्गलोंकों जब मनोयोग करके काढता है, तिसका नाम द्रव्यमन कहते हैं, अरु उन पुद्गलोंके संयोगसें जो ज्ञान उत्पन्न हो ता है, तिसका नाम भावमन है. उस ज्ञान करकें जो व्यवहार सिद्ध होता है, तिस व्यवहार करके मनभी सत्यादि व्यपदेशकों प्राप्त होता है, अरु उपचार करकें द्रव्यमनभी ज्ञायक है, मनमें जो सत्य व्यवहारका धारण करता, सो सत्यमन, सो व्यवहार यह है कि पापसें निवृत्तनां वचनके उच्चारण विना जो चिंतवन करनां कि मुनि है, जीवादि पदार्थ सत् है, इत्यादि मन शब्द करकें इहां मनोयोग नोइंद्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसें उत्पन्न हुआ जो मनोज्ञान, उस करके परिणत आत्माकों बलाधान करने वाला मनोवर्गणाके संबंधसें उत्पन्न हूआ वीर्यविशेष, सो इहां मन जाननां. इसी मनके चार भेद है. ऐसेंही वचनयोग, सो वचनकी वर्गणा अर्थात् परमाणुका समूह, उस वचन वर्गणा करकें उत्पन्न भइ सामर्थ्यविशेष, आत्माकी परिणति, सो वचनयोग जाननां.

मनके चार भेदमेंसूं सत्यमनोयोगका स्वरूप उपर लिख आये हैं सो प्रथम भेद. अरु दूसरा मृषामन, सो धर्म नही, पाप नही, नरक, स्वर्ग, कुछ नहीं. इत्यादिक जो वचन निरपेक्ष चितवना करनी, सो जाननां. तीसरा मिश्रमन, सो सच्च, अरु जूठ, इन दोनोंका चिंतन, जैसें गोवर्गकों देख कर मनमें चिंतन करना कि यह सर्व गौवां हैं, यह मिश्र इस वास्ते है कि उस गोवर्गमें बलदभी है, इत्यादि मिश्रवचन. चोथा "हे ग्रामं गच्छ" इत्यादि चिंतन करनां, सो व्यवहारमन, इसी तरें जब वचन योगसें पूर्वोक्त चारोका उच्चारण करे, तब वचन योगभी चार प्रकारका जान लेनां. यह चार मनके अरु चार वचनके एवं आठ भेद हूवे.

अब सत्यवचन दश प्रकारका है, १ जनपद सत्य, सो जिस देशमें जि

उस वस्तुका जो नाम बोलते है, उस देशमें वो नाम सत्य है, जैसें कोंकण देशमें पाणीकों पिछ कहते है, कोइ देशमें वडा पुरुषकों बेटा कहते है, वा बेटेको काका कहते है, किसी देशमें पिताकों भाइ, सासुकों आइ,इत्यादि कहते हैं, सो जनपदसत्य. २ दूसरा सम्मतसत्य, सो जैसें पंकसें उत्पन्न हूआ मेंमक, सिवाल, कमल, तोभी पंकज शब्द करकें कमलही पूर्व विद्वानोंने सम्मत कीया है,परंतु मेंमक, सिवाल नही. ३ तीसरा स्थापनासत्य, सो जिसीकी प्रतिमा होवे, तिसकों उसके नामसें कहना,जैसें महावीर, पार्श्वनाथजी अर्हंतकी प्रतिमा होवे, उस प्रतिमाकों महावीर, पार्श्वनाथ कहे, तो सत्य है, परंतु उसकों पत्थर कहे, सो मृषावादी है, जैसें स्याही और कागजका नाम, स्थापना करनेसें रुग्, यजु, साम, अथर्व, कहे जाते हैं, आचारागादि अग कहे जाते है, तथा काष्ठके आकार विशेषकों किवाड कहे जाते है, ईंट, पत्थर, चूनेकों स्थंन कहना, पुस्तकमें त्रिकोणादि चित्र लिखकें उसकों आर्यावर्त्त, भारतवर्ष, जंबूद्वीपादि कहनां. तथा ककार, खकार, स्याहीकी स्थापनाकों कहनां. इस स्थापनासें पुरुषको कछुक सिद्धि जरुर होती है, नही तो नाना प्रकारकी स्थापना, पुरुष, किस वास्ते करते है ? इस वास्ते श्रीमहावीर तथा श्रीपार्श्वनाथजीकी स्थापनारूप प्रतिमाकों श्रीमहावीर पार्श्वनाथजी कहनां,यह स्थापना सत्य है इसमें इतना विशेष है,कि जो देव शुद्ध है, उसकी स्थापनाभी शुद्ध है, अरु जो देव शुद्ध नही, उसकी स्थापनाभी शुद्ध नहीं, परंतु उस स्थापनाकों उनका देव कहना, यह वात सत्य है. ४ चौथा नामसत्य, सो किसीने अपने पुत्रका नाम कुलवर्द्धन रक्खा है, अरु जिस दिनसें वो पुत्र जन्मा है, उस दिनसें उस कुलका नाश होता चला जाता है, तोभी उस पुत्रकों कुलवर्द्धन नामसें पुकारें, तो सत्य है ५ पांचमा रूपसत्य,सो चाहे गुणोसें भ्रष्टभी है, तोभी साधुके वेषवालेकों साधु कहे, तो सत्य है, ६ छठा प्रतीतसत्य, अर्थात् अपेक्षासत्य, सो जैसे मध्यमाकी अपेक्षा अनामिकाकों छोटी कहना. ७ सातमा व्यवहारसत्य, सो जैसे पर्वत जलता है, रस्ता चलता है. ८ आठमा भावसत्य,सो जैसे तोतेमें पांच रग है, तोभी तोता हरे रगका कहना. ९ नवमा योगसत्य, सो जैसे दंमके योगसें दंमी कहनां. १० दशमा उपमासत्य, सो जैसें मुख,चन्द्रवत् कहनां यह दश प्रकारका सत्य है.

अब दश प्रकारके कूठ कहते हैं. १ क्रोधनिश्रित सो क्रोधके वश आ कर जो वचन बोले, सो असत्य, २ ऐसेंही मानके उदयसें बोले, सो असत्य, ३ ऐसें मायाके उदयसें बोले, सो असत्य, ४ लोनके, ५ रागके, ६ द्वेषके उदयसें बोले, सो असत्य, ७ हास्यके वश बोले, ८ जयके वश बोले, ९ विकथा करे, सो असत्य. १० जिस बोलनेमें जीवकी हिंसा होवे, सो असत्य. यह दश प्रकारका असत्य वचन है.

अब दश प्रकारका मिश्रवचन कहते है १ उत्पन्न मिश्रित, सो विना खबर कह देनां कि इस नगरमें आज दश बालक जन्मे है, इत्यादि. २ विगत मिश्रित, सो जैसें विना खबरके कहनां कि इस नगरमें आज दश मनुष्य मरे है. ३ उत्पन्नविगतमिश्रित, सो जैसें विना खबरके कहनां कि इस नगरमें आज दश जन्मे हैं, अरु दशही मरे है ४ जीवमिश्रित, सो जीवाजीवकी राशिकों कहनां कि यह जीव है. ५ अजीवमिश्रित, सो अन्नकी राशिको कहनां कि यह अजीव है ६ जीवाजीवमिश्रित, सो जीवाजीव दोनोंकी मिश्रनापा बोले. ७ अनंतमिश्रित, सो मूली आदिकोंके अवयवोंमें किसी जगे अनंत जीव हैं, किसी जगे प्रत्येक जीव है, उनकों प्रत्येक काय कहै. ८ प्रत्येकमिश्रित, सो प्रत्येक जीवोंकों अनंतकाय कहे. ९ अद्धामिश्रित, सो दो घडीके तडकेमें कहे कि दिन उग्या है. १० अदद्धामिश्रित, सो घडी एक रात्रि गया, दिनका उदय कहै. यह दश प्रकारका मिश्रवचन है.

अब व्यवहार वचनके बारह जेद कहते है. १ आमंत्रण करनां, कि हे जगवन्! २ आज्ञापना, सो यह काम कर, तथा यह वस्तु लाव ३ याचना, सो यह वस्तु हमकों दीजीये. ४ पृछना, सो अमुक गामका मार्ग कौन सा है? ५ प्रज्ञापना, सो धर्म ऐसें होता है. ६ प्रत्याख्यानी, सो यह काम हम नहीं करेंगे. ७ इछानुलोम, सो यथासुख ८ अनजिगृहीता, सो मुऊसें खबर नहीं ९ अजिगृहीता, सो मुऊे खबर है. १० सशय, सो क्यों कर खबर नहीं है? ११ प्रगट अर्थ कहे. १२ अप्रगट अर्थ कहे. यह बारह प्रकारका व्यवहारवचन है.

औ काययोगके सात जेद है. प्रथम काययोग उसकों कहते हैं, कि आत्माके निवासजूत पुजलद्रव्य घटित बूढेकों डर्बलको अवष्टजनत जैसे लाठी आदि है, तिसकी तरें विषम काममें जिसके योगसें

जीवके वीर्यका परिणाम सामर्थ्य, सो काययोग है, जैसें अग्निके संयोग सें घटकी रक्तता होती है, तैसेंही आत्माकों कायके करण संबंधसें वीर्य परिणाम है. इस काययोगके सात भेद हैं. १ औदारिककाययोग, २ औदारिकमिश्रकाययोग, ३ वैक्रियकाययोग, ४ वैक्रियमिश्रकाययोग, ५ आहारककाययोग, ६ आहारकमिश्रकाययोग, ७ कार्मणकाययोग. इसमेंसूं प्रथमके दो काययोग तो मनुष्य, अरु तिर्यंचमें होते है, अगले दो स्वर्ग वासी देवताओमें होते हैं, अरु अगले दो चौदह पूर्वपाठी साधुमे होते है, अरु जीव जब काल करकें परभवमें जाता है, तब रस्तेमें कार्मण शरीर होता है, तथा समुद्घात अवस्थामें केवलीमें होता है, अरु जो तैजस शरीर, आहार पाचन करनेमें समर्थ युक्त है, सो कार्मण योगके अंतर भूत होनेसें पृथग् ग्रहण नही कीया है यह सप्तविध काययोग हैं. यह सब मिल कर बंधतत्त्वके उत्तर भेद सत्तावन्न हूये है ॥ इति बंधतत्त्व संपूर्ण.

अथ मोक्षतत्त्व लिखते है." तहां प्रथम मोक्ष किसकों कहते है ? ॥ यदुक्त ॥ जीवस्य कृत्स्नकर्मक्षयेण यत्स्वरूपावस्थानं तन्मोक्ष उच्यते ॥ भावार्थ.— जीवके संपूर्ण ज्ञानावरणादि कर्मोके क्षय होने करकें जो स्वरूपमें रहनां है, सो मोक्ष कहते है वो जो मोक्ष है, सो जीवका धर्म है. अरु धर्म धर्मीका कथंचित् अभेद होनेसें धर्मी जो सिद्ध, तिनकी जो प्ररूपणा, सो भी मोक्ष प्ररूपणा है, क्योंकि मोक्ष जो है, सो जीवपर्याय है, सो जीव पर्याय कथंचित् सिद्ध जीवसें अभिन्न है, सर्वथा जीवकी पर्याय जीवसें भिन्न नहीं हो सक्ती है ॥ तडुक्तं ॥ श्लोक ॥ द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्यायाद्रव्यवर्जिताः ॥ क्व कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन वेति ॥ १ ॥ भावार्थ.— द्रव्य पर्यायों करके रहित अरु पर्यायों द्रव्य वर्जित अर्थात् रहित, किसी जगे, किसी अवसरमे, किसी प्रमाणसें, किसीने कोइ रूप देखा है ?

अब सिद्धोंका स्वरूप नव द्वारोंसें सूत्रकार अरु भाष्यकार कहते हैं. १ सत्पद प्ररूपणा, २ द्रव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अंतर, ७ भाग, ८ भाव, ९ अल्पबहुत्व. इन नव द्वारो करकें सिद्धोंका स्वरूप लिखते हैं. १ प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार, सो जो सत्ता विद्यमानता, तिसका कहने वाला पद, सो सत्पद सिद्ध है, वा नहीं सिद्ध है ? सो गति आदि चौद पदोमे कहना. यथा "पंचविधा" १ पाच प्रकार गति है,

१ नरकगति, २ तिर्यग्गति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति, ५ सिद्धगति. तहां सिद्धगति वर्जके शेष चार गतिमे सिद्ध नहीं. यद्यपि १ कर्मसिद्ध, २ शिल्पसिद्ध, ३ विद्यासिद्ध, ४ मंत्रसिद्ध, ५ योगसिद्ध, ६ आगमसिद्ध, ७ अर्थसिद्ध, ८ यात्रासिद्ध, ९ अभिप्रायसिद्ध, १० तपःसिद्ध, ११ कर्मक्षयसिद्ध. ऐसें अनेक तरेके सिद्ध आवश्यककी निर्युक्तिकारने कहे हैं तोभी इहां जो कर्मक्षय करके सिद्ध हूआ है, तिसका अधिकार है, उनहीकों मोक्षपर्याय है, औरोंकों नहीं. २ इंद्रिय स्पर्शनादि पांच है, एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पांच इंद्रिय. इन पांचों प्रकारोमें सिद्ध पणां नही, क्योंकि सर्वथा शरीरके परित्यागनेसें सिद्ध होता है, जहां शरीर नहीं, तहां इंद्रियभी कोइ नही इसी वास्ते सिद्ध अतींद्रिय है. ३—१ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजःकाय, ४ पवनकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ त्रसकाय. इन छही कायोंके जीवोंमें सिद्धपणां नही. क्योंकि सिद्ध जो है, सो अकाय (काय रहित है) ४ काय, वचन, अरु मन भेद करकें योग तीन है. उसमे केवल काययोग वाले एकेंद्रिय जीव हें, अरु काय वचन योग वाले द्वींद्रियादि असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्यंत जीव है, अरु काय, वचन, मन योग वाले संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त जीव हैं, इन तीनों योगोमें सिद्धपणेकी सत्ता नहीं, क्योंकि सिद्ध अयोगी है, अरु अयोगी पणां तो काय वचन अरु मनके अभावसे होता है. ५ स्त्री, पुरुष, नपुंसक, इन तीनों वेदोमें सिद्ध पदकी सत्ताका अभाव है, क्योंकि सिद्ध जो है, सो पूर्वोक्त हेतुसें अवेदी हैं. ६ क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायोंमे सिद्ध पणां नही है, क्योकि सिद्ध अकषायी है, सो अकषायिपणा कर्मके अभावसे होता है, ७ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यायज्ञान, केवल ज्ञान. यह पांच प्रकारका ज्ञान है. अरु मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान, यह तीन अज्ञान है. उसमें आदिके चारों ज्ञानोंमें अरु तीनों अज्ञानोमें सिद्धपणा नही है, एक केवलज्ञानमें सिद्धपणा है, सो केवलज्ञान, इहां सिद्धावस्थाका जानना, परतु सयोगी अवस्थाका नहीं. ८ सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय, अरु यथाख्यात. यह पाच चारित्र, तथा इनके विपक्षी देश सयम, अरु असंयम. तहां पांचविध चारित्रमे तथा दोनो विपक्षोमें सिद्धपणा मोक्ष

ा नही, क्योंकि यह सर्व शरीरादिकके हूयें होते है, सो शरीरादिक सि
ोंकों है नही. ए चक्षु, अचक्षु, अवधि, अरु केवल, इन चारों दर्शनमें
ु आदिके तीनो दर्शनमें सिद्धपणां नही, परतु केवलदर्शनमे केवल ज्ञा
वत् जान लेनां. १० कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, अरु शुक्ल, यह
 प्रकारकी लेश्यायोमें सिद्धपणां नही, क्योंकि लेश्या जो है, सो नव
स्थ जीवकी पर्याय है, सिद्ध तो अलेशी हैं ११ नव्य, अनव्य, इन दो
ोमें सिद्धपणां नही, क्योंकि नव्यजीव उसकों कहते है, कि जिसकों सि
द्धपदकी प्राप्ति होवेगी, अरु सिद्धोनें तो नवीन कोइ सिद्ध पदवी पाव
नी नहीं है, इस वास्ते नव्य पणा सिद्धोमें नही. अरु अनव्यजीव उस
ों कहते हैं, कि जिसमें सिद्ध होनेकी योग्यता किसी कालमेंनी न होवे,
ऐसा सिद्धका जीव नही है, क्योंकि उसमें अतीतकालमें सिद्ध होनेकी
योग्यता थी, इस वास्ते सिद्ध अनव्यनी नहीं. सिद्ध जो है, सो नोनव्य
नोअनव्य है, यह आप्त वचननी है १२ क्षायिक, क्षायोपशम, उपशम,
सास्वादन, अरु वेदक यह सम्यक्त्व पांच प्रकारका है. इनका विपक्षी ए
क मिथ्यात्व, दूसरा सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सो मिश्र है, तिनमेंसूं क्षायिक व
र्जित चार सम्यक्त्व अरु मिथ्यात्व, तथा मिश्र, इनमें सिद्धपद नहीं, क्यों
कि यह सर्व क्षायोपशमिकादि नाव वर्ती है, अरु क्षायिक सम्यक्त्वमें सि
द्ध पद है, क्षायिक सम्यक्त्वनी दो तरेंकी है एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध,
तहां शुद्ध अपाय, सत् ड्व्य रहित नवस्थ केवलीयोके है, अरु सिद्धोके
शुद्ध जीव स्वनावरूप सम्यक् दृष्टि है, सादि अपर्यवसान है, अरु अशु
द्ध अपाय सहचारिणी श्रेणिकादिकोंकी तरे सम्यक् दृष्टि होना, यह क्षा
यिक सादि सपर्यवसाना है तहा अशुद्ध क्षायिकमें सिद्ध पद नही. क्यो
कि उसके अपाय सहचारी है, अरु शुद्ध क्षायिकमें तो सिद्ध सत्ताका वि
रोध नही, क्योकि सिद्ध अवस्थामे शुद्ध क्षायिक जाती नहीं रहती है.
अपाय, मतिज्ञानांशका नाम है अरु सत् ड्व्य शुद्ध सम्यक्त्वके दलियों
का नाम है, इन दोनोका अनाव होनेसें क्षायिक सम्यक्त्व होता है. १३
संज्ञा यद्यपि तीन प्रकारकी है. १ हेतुवादोपदेशिनी, २ दृष्टिवादोपदेशि
नी, ३ दीर्घकालिकी. तोनी दीर्घकालिकी संज्ञा करके जो संज्ञी है, सोही
व्यवहारमें प्राय. ग्रहण कीये जाते है, संज्ञा होवे जिनके सो संज्ञी

जैसेंकि यह करा है, यह करुंगा, यह में कर रहा हों, ऐसा जो त्रिकाल विषय मनोविज्ञानवाले जीव हैं, तिनकों संज्ञी कहते हैं. इनसें जो विपरीत होवे, सो असंज्ञी जानने यह संज्ञी तथा असंज्ञी, इन दोनोंहीमें सिद्ध पद नहीं. क्योंकि सिद्ध तो नोसंज्ञी नोअसंज्ञी है, १४ ओज आहार, लोम आहार, प्रक्षेप आहार, ए आहार, तीन प्रकारका है. इन तीनों आहारोमें सिद्ध नहीं. यह प्रथम सत्पद प्ररूपण द्वार कहा.

दूसरा द्रव्य प्रमाण द्वार लिखते हैं गिणती करियें तो सिद्धोंके जीव अनंत हैं. तीसरा क्षेत्रद्वार, सो आकाशके एक देशमें सर्व सिद्ध रहते है, वो आकाशका देश कितना बडा है? सो कहते है, कि धर्मास्तिकायादिक पांच द्रव्य, जहां तक है, तहां तक लोक है, ऐसा जो लोक संबंधि आकाश, तिसके असंख्यमे भागमें सिद्ध रहेते है. चौथा स्पर्शनाद्वार, सो जितने आकाशमें सिद्ध रहते है, स्पर्शना उससें किंचित् अधिक है. पांचमा कालद्वार, सो एक सिद्धके आश्री सादि अनंतकाल है, अरु सर्व सिद्धाश्रित अनादि अनंतकाल जानना. छठा अंतरद्वार, सो सिद्धोंके विचाले अंतर नहीं, सर्व सिद्ध मिलके एकही रूपवत् रहते हैं. सातमा भाग द्वार, सो सिद्ध जे है ते सर्व जीवोंके अनंतमे भागमें है आठमा भाव द्वार, सो सिद्धोंकों क्षायिक पारिणामिक भाव है, शेष भाव नहीं. नवमा अल्प बहुत्वद्वार, सो सर्वसें थोडे अनंतर सिद्ध है, अनंतर सिद्ध उनकों कहते है कि जिनकों सिद्ध हुआ, एक समय हुआ है, तिनसें परंपर सिद्ध अनंत गुणे हुए है, छै मास सिद्ध होनेमे उत्कृष्ट अंतर होता है. यह अल्प बहुत्व द्वार कहा. यह मोक्षतत्त्वका स्वरूप संक्षेपमात्र लिखा है, जे कर विशेष करके सिद्धोंका स्वरूप देखना होवे, तदा नंदीसूत्र, प्रज्ञापन्नसूत्र, सिद्धप्राभृतसूत्र, सिद्धपंचाशिका, देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी वृत्ति देख लेनी. तथा आगे चतुर्दश गुणस्थानमेंभी सिद्धोंका कतुक स्वरूप लिखेंगे ॥ इतिश्री तपगछीयमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आनंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे नवतत्त्व स्वरूपनिर्णयनामा पंचम. परिछेद. संपूर्ण. ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठ परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह षष्ठ परिच्छेदमें चौदह गुणस्थानका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते है. ह जैन मतमे भव्य जीवोंकों सिद्धिसौधके चढने वास्ते गुणोंकी जो श्रे ी है, सोही निसरणी है, तिस गुण निसरणीमें पगथरणरूप गुणोसें णांतरकी प्राप्तिरूप जो स्थान, अर्थात् भूमिका है, सो चौदह हैं, तिन ; नाम कहते है. १ मिथ्यात्व गुणस्थानक, २ सास्वादन गुणस्थानक, ३ मिश्र गुणस्थानक, ४ अविरतिसम्यक्दृष्टि गुणस्थानक, ५ देशविरति गुण थानक, ६ प्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ७ अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ८ पूर्वकरण गुणस्थानक, ९ अनिवृत्तबादर गुणस्थानक, १० सूक्ष्मसपरा गुणस्थानक, ११ उपशांतमोह गुणस्थानक, १२ क्षीणमोह गुणस्थान , १३ सयोगीकेवली गुणस्थानक, १४ अयोगीकेवली गुणस्थानक. य चौदह गुणस्थानक अर्थात् गुणरूप भूमिकाके नाम हैं.

तहां प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं, उसमेंभी प्र म व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्यात्वका स्वरूप कहते हैं जो स्पष्टचैतन्यसंज्ञी चेंद्रिय जीवोंकी अदेव, अगुरु औ अधर्म, इन तीनोंमें क्रम करकें देव, रु, औ धर्मकी बुद्धि होवे, सो व्यक्तमिथ्यात्व है. अरु उपलक्षणसें जी ादि नव पदार्थोंमें जिसकी श्रद्धा नही,अरु जिनोक्त तत्त्वसें जो विपरीत रूपणा करणी, तथा जिनोक्त तत्त्वमें संशय करणा, तथा जिनोक्त तत्त्व े दूषणोंका आरोप करणा, इत्यादि. तथा आभिग्राहिकादि जो पांच मि यात्व है, तिनमें एक अनाभोगिकमिथ्यात्व तो अव्यक्त मिथ्यात्व है, शे र चार भेद, व्यक्त मिथ्यात्वके हैं तथा "अधम्मे धम्मसन्ना इत्यादि" श प्रकारकी जो मिथ्यात्व है, सो सर्व व्यक्त मिथ्यात्व है. अरु अपर जो अनादि कालसें मोहनीय प्रकृतिरूप मिथ्यात्व सत् दर्शनरूप आत्माके गुणका आच्छादक जीवके साथ सदा अविनाभावि है, सो अव्यक्तमिथ्यात्व है.

अथ मिथ्यात्वकों गुण स्थानक किसी रीतीसें कहते है? सो लिखते हैं. अनादि अव्यक्त मिथ्यात्व अव्यवहार राशिवर्त्ती जीवमे सदा होती है, रंतु व्यक्त मिथ्यात्वकी जो बुद्धि है, तिस बुद्धिकी जो प्राप्ति है, सोइ मि यात्व गुणस्थानक है.

प्रश्न – मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व जीवोके स्थान मिलते हैं, यह जैनशास्त्रका कथन है, तो फेर कैसे व्यक्त मिथ्यात्वकी बुद्धिको गुणस्थान रूपता कहते हो ?

उत्तर –सर्वभाव सर्व जीवोने पूर्व अनंत वार पाया है, इस वचनके प्रमाणसें जो प्राप्तव्यक्त मिथ्यात्वबुद्धिवाले जीव, व्यवहार राशिवर्त्ती हैं, सोही प्रथम गुणस्थानवाले जीव कहे जाते है, नतु अव्यवहार राशिवर्त्ती जीव ? क्योंकि वो अव्यक्तमिथ्यात्व वाले है, इस वास्ते दोष नही.

अथ मिथ्यात्व रूप दूषणका स्वरूप कहते है जैसें जीव मनुष्यादिक प्राणी मदिरेके उन्मादसें हित, वा अहित, यह कुछनी नष्टचेतन होनेसें नही जानता है, तैसेंही मिथ्यात्व करकें मोहित जीव धर्माधर्म सम्यक् नही जानता है ॥यदाह ॥श्लोक॥ मिथ्यात्वेनालीढचित्ता नितांतं, तत्त्वातत्त्वं जानते नैव जीवा ॥ किं जात्यंधा कुत्रचिद्वस्तुजाते, रम्यारम्य व्यक्तमासादयेयुः ॥ १ ॥ इति ॥ अथ मिथ्यात्वकी स्थिति कहते हैं, अभव्य जीवोकी अपेक्षा मिथ्यात्व जो है, अरु सामान्य प्रकारें अव्यक्त मिथ्यात्व, इनकी अनादि अनंत स्थिति है, सोइ स्थिति भव्य जीवोकी अपेक्षा अनादि सांत है, यह स्थिति सामान्यप्रकार करकें मिथ्यात्वकी अपेक्षा दिखलाइ है, जे कर मिथ्यात्व गुणस्थानककी स्थिति विचारिये, तदा भव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है तथा सादि सांतभी हैं, अरु अभव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है, जब मिथ्यात्व गुणस्थानकमें जीव वर्त्तता है तब एक सौ वीश बंध प्रायोग्य कर्मप्रकृतियोंमेसूं १ तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति, २ आहारकशरीर, ३ आहारकोपांग, यह तीन प्रकृति नही बांधता है शेष एक सौ सत्तरा प्रकृतिका बंध करता है, तथा एक सौ बावीश कर्म प्रकृति जो उदय प्रायोग्य है, तिनमेसू १ मिश्रमोहनीय, २ सम्यक्त्वमोहनीय, ३ आहारक, ४ आहारकोपांग, ५ तीर्थंकर नाम, यह पांच कर्मप्रकृति वर्जके शेष एक सौ सत्तरा प्रकृतिका उदय है, अरु एक सौ अडतालीस कर्म प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति ॥१॥

अथ दूसरा सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप कहते है उसमें प्रथम तो यह गुणस्थानकका कारणभूत उपशम सम्यक्त्व है, तिसका स्वरूप कहते है, जीवमे अनादिकालसंभूत (उत्पन्न) मिथ्याकर्मकी उपशां

तसें अनादिकाल उद्भव मिथ्याकर्मके उपशम होनेसें, ग्रंथिनेद करण
ालसें पीछे औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह सामान्य स्वरूप है, अ
विशेषस्वरूप ऐसें है कि औपशमिक सम्यक्त्व दो प्रकारका है, एक
ो अंतरकरणौपशमिक सम्यक्त्व, अरु दूसरा स्वश्रेणिगत, अर्थात्
उपशमश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व है. तहां अपूर्व करण करकेंही क
ा है, ग्रंथिनेद जिसने, अरु मिथ्यात्व कर्म पुजल राशिके तीन पुज करे
जिसने, सो तीन पुंज यह हैं, १ अशुद्ध, २ अर्द्धशुद्ध, ३ शुद्ध. इसमें
अशुद्ध पुंज जो है, सो मिथ्यात्वमोहनीय है, अरु अर्द्ध शुद्ध जो है, सो
मिश्रमोहनीय है, तथा शुद्धपुंज जो है, सो सम्यक्त्व मोहनीय है. इ
नका स्वरूप पीछें लिख आये हैं, यह तीन पुंज जिसने नहीं करे हैं,
अरु उदय आया मिथ्यात्व क्षय कीया है, तथा जो मिथ्यात्व उदय नही
आया, तिसकों उपशमाया है, अंतर करणमें अंतर्मुहूर्त्तकाल लगें सर्वथा
मिथ्यात्वके अवेदककों, अंतर करणमें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह
एक नेद. तथा औपशम श्रेणिप्रतिपन्नकों मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके उपश
म हूआ स्वश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व होता है,सो दूसरा नेद. ये दोनो
प्रकारकी जो उपशम सम्यक्त्व है, सो सास्वादन उत्पत्तिमें मूल कारण है.

अथ सास्वादनस्वरूप लिखते है. औपशमिक सम्यक्त्ववाला जीव शां
त हूये अनंतानुबंधी चारों कषायोमें एकनी क्रोधादिकके उदय हूयां थका
औपशमिकरूप गिरिशिखर तुल्यसें " परिच्युतो भ्रष्टो " अर्थात् गिरा सो
जहां लगि मिथ्यात्वरूप नूतलकों नही प्राप्त हूआ, तहां लगि एक सम
यसे ले कर षट्आवलिकाप्रमाण सास्वादन गुणस्थानकवर्त्ती होता है,

प्रश्नः—व्यक्तबुद्धिप्राप्तिरूप प्रथम अरु मिश्रादि गुणस्थानोकों उत्तरो
त्तर चढण रूपोंकों तो गुणस्थानपणा युक्त है, परतु सम्यक्त्वसें पडने
वाले सास्वादनकों गुणस्थानपणा कैसें संनवे ?

उत्तरः—मिथ्यात्व गुणस्थानककी अपेक्षा सास्वादननी ऊर्ध्व आरोह
णरूप होनेसे गुणस्थान है, क्योंकि मिथ्यात्व गुण अनव्य जीवों
कोंनी होता है, अरु सास्वादन तो नव्य जीवोंहीकों हो सक्ता है, नव्य
जीवोंमेंनी जिसका अर्द्ध पुजलपरावर्त्त शेष संसार है. तिनहीको होता
है. इस वास्ते सास्वादनकोंनी मिथ्यात्व गुणस्थानसें आरोहरूप गुणस्था

नत्व हो सक्ता है. तथा सास्वादन गुणमें वर्त्तता हुआ जीव, १ मिथ्यात्व, ४ नरकत्रिक ८ एकेंद्रियादि जाति चार, ९ आतपनाम, १० स्थावरनाम, ११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तनाम, १३ साधारणनाम, १४ हुंडकसंस्थान, १५ सेवार्त्तसंहनन, १६ नपुंसकवेद, यह सर्व सोलां प्रकृतिका बंध व्यवछेद करता है, शेप अेक सौ अेक प्रकृतिका बंध करता है, तथा ३ सूक्ष्मत्रिक, ४ आतप, ५मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी,यह छै प्रकृतिका उदय व्यवछेद होनेसें १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थकरनामकी सत्ता विना १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप ॥२॥

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. दर्शनमोहनीय प्रकृतिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसें जीवविषये जो समकाल समरूप करके सम्यक्त्व मिथ्यात्वके मिलनेसें मिश्रितनाव अंतरमुहूर्त्त यावत् मिश्र गुणस्थान कहते है, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र मिलनेसें मिश्रनावमें वर्त्ते है. सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि मिश्रपणा जो है, सो दोनोंके मिलनेसें एक रूप जात्यंतर है. अथ दोनां नावों के एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टांत लिखते है. कि जैसें घोडी और गधा इन दोनोके संयोगसें जात्यंतर खच्चर उत्पन्न होता है, अथवा जैसें गुड और दहींके मिलनेसे जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है, तैसें ही जिस जीवकों सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोंमें समबुद्धिसें एक सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर नेदात्मक होनेसें मिश्रगुणस्थानक होता है. जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब परनवका आयु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्त्तता हूआ जीव, मरतानी नहीं है, जातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टिगुणस्थानकमें आरोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकमें पीछा आ कर मरता है, परन्तु मिश्रगुणस्थानमें वर्त्तमान नहीं मरता है. यह मिश्रकी तरें बारहवा क्षीणमोह, अरु तेरहवा सयोगी. इन दोनो गुणस्थानोमेंनी जीव नहीं मरता है, शेप इग्यारह गुणस्थानोमें काल कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति सम्यक्दृष्टि, यह तीन गुणस्थानक जीवके साथ परनवमें जाते है. शेप इग्यारह गुणस्थानक नहीं जाते हैं. तथा जिन जीवोने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोमें पू

ने आयु बांधा है, अरु पीछें उनकों मिश्रगुण स्थानक हूआ है,वो जब मरे गा, तब जीस गुणस्थानकमें आयु बाधा है, तिसी गुणस्थानमें जा कर मरता है, औ गतिभी उसकी उसी मरण वाले गुणस्थानकके अनुसारे होती है, तथा मिश्रगुणस्थानक वाला जीव, १ नरकगति, २ नरकायु, ३ नरकानुपूर्वी, ६ स्त्यानर्द्धित्रिक, ७ दुर्भग, ८ दुःस्वर, ९ अनादेय, १३ अनतानुबंधी चार. १७ मध्यके चार संस्थान, २१ मध्यके चार संहनन, २२ नीचगोत्र, २३ उद्योतनाम, २४ अप्रशस्तविहायोगति, २५ स्त्रीवेद. यह पच्चीश प्रकृतिका बंधव्यवछेद करता है तथा मनुष्यायु, देवायु, यह दोनो नही बांधता है, यह सत्तावीश प्रकृति बिना शेष चोह तर प्रकृतिका बंध करता है ४ तथा अनंतानुबंधी चार, ५ स्थावरनाम, ६ एकेंद्रिय, ९ विकलत्रिक, इनके उदयके व्यवछेद होनेसे अरु मनुष्यानुपूर्वी, तथा तिर्यगानुपूर्वी, इन दोनोके उदय न होनेसें एक सौ प्रकृतिका उदय वेदता है, अरु पूर्वोक्त १४७ प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति मिश्रगुणस्थानकं॥३॥

अथ चौथा अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप लिखते है. तहां प्रथम सम्यक्त्व प्राप्तिका स्वरूप कहते है, कि भव्य संज्ञी पंचेंद्रिय जीव कों यथोक्ततत्त्व यथावत् सर्ववित् प्रणीत तत्त्वोंमे जीवादि पदार्थोंमें नि सर्गसें अर्थात् पूर्वभव अभ्यासविशेष करके उत्पन्न भइ अत्यंतनिर्मल गु णात्मक रूप स्वभाव,इन स्वभावसे अथवा गुरुके उपदेश श्रवण करणेसें रु चि भावना प्रगट उत्पन्न होती है, सो सम्यक्त्व, सम्यक्श्रद्धान लक्षण कहते है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु, सम्यक् श्रद्धानमु च्यते ॥ जायते तन्निसर्गेण, गुरोरधिगमेन वा ॥ १ ॥ अथ अविरति सम्य ग्दृष्टिपणा जैसें होता है, तैसें कहते है. दुसरी कषाय अप्रत्याख्यान, जिस का नाम है, ऐसें जे क्रोध, मान, माया, लोभ, तिनके उदय करकें, वर्जित हुआ विरतिपणा इसी वास्ते केवल सम्यक्त्व मात्र जहां होवे, सो चौथे गुणस्थान वालोंकों अविरति सम्यग्दृष्टिनामक गुणस्थानक होता है. इस का तात्पर्य यह है,कि जैसे कोइ पुरुष, न्यायोपपन्न धन भोग विलास सौह र्यशालिकुलमे उत्पन्नभी हूआ है, परंतु दुरंत जूआ आदि व्यसन सेवन करने लगा, इत्यादि अनेक अन्याय करे है, सो अपराध करनेसें उसकों राजदंड मिला है, सो खंभित्त करा है जिनोने अभिमान, थैसें जो दंम

पाशिक कोटवाल तिनों करकें विडंब्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हूआ अपणे कुलके सुंदर सुख संपदाकी अभिलाषा करताभी है, परंतु कोटवालोंसें छूटके सुखका उल्लासभी नहीं ले सक्ता है, तैसेंही यह जीवभी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अभिलाषाभी करता है, परंतु कोटवाल समान दूसरी कषायके पाशों छूटनेका उत्साहभी नहीं कर सक्ता है, सो अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुभव करता है.

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कछुक अधिक है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीयोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है, तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार रहता है, तब जीवकों आता है, दूसरोंकों नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसें क्रोध उत्पन्नभी हो गया है, तोभी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, तिसका नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढने वास्ते सोपानसमान सम्यग् ज्ञानादि साधनोमे उत्साह लक्षण मोक्षाभिलाष, तिसका नाम संवेग है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीखानेसें निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जाना है, तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त भावोंकी अस्तित्वका चिंतन तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमे होवें, वो भव्यजीव सम्यग् दर्शन करकें अलंकृत होता है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्त्ती जीवोंकी कौनसी गति है? सो कहते हैं. इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों करण कहते है, सो करण तीन प्रकारका होता है, १ यथाप्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनिवृत्तिकरण. तहां पर्वतकी नदीके जल करकें आलोड्यमान पाषाणकी तरें घंचना (घोलना) न्याय करकें जीव आयु, [illegible] कर्मोंकी स्थिति किंचित् ऊनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण [illegible] हूआ जिन अध्यवसाय विशेष करकें [illegible] आता है

हते है, २ तथा जिन अप्राप्त पूर्वं अध्यवसाय विशेश करकें तिस ग्रंथिकों ग्रंथि घन निबिड राग द्वेष परिणतिरूपकों कहते हैं.तिस ग्रंथिके नेदनेका जो आरंन, तिसकों अपूर्वकरण कहते हैं,३ तथा जिन अध्यवसायविशेश करके अनिवृत्त, ग्रंथिनेद करके अति परम आनंद जनक सम्यक्त्व पाता है, तिसका नाम अनिवृत्ति करण है, यह तीनों करणका स्वरूप श्रीजिन न द्रगणिक्षमाश्रमण आचार्य, आवश्यककी शुद्धांजोनिधि गंधहस्ती महा नाष्यमें लिखते हैं. तीन पथिकके दृष्टांतसें तीनों करणका स्वरूप दिखाते है. जैसें तीन पथिक उजाडके रस्ते चले जाते थे, तहां चलते चलते वि काल वेला हो गइ, औ सूर्य अस्त हो गया, वे पंथी, मनमे बहुत मरने लगे, इतनेमें उस वखत तहां तत्काल दो चोर आ पहुंचे, तिन चोरोंकों देख कर तिनमेंसूं एक पथिक तो मरता हूआ पीछेकों दौड गया, अरु ए क पथिककों चोरोने पकड लीया, अरु एक पथिक तिन चोरोसें लड निड मार पीट करकें अगले नगरमें पहुंच गया, यह तो दृष्टांत है. इसका दा ष्टांत असें है, कि उजाड जो है, सो मनुष्य नव है, तिसमें कर्मोंकी जो स्थिति है, सो दीर्घ रस्ता है, औ जो गांठ है,सो नयका स्थानक है,अरु राग द्वेष यह दोनो चोर है अब जो पुरुष पीछेको दौडा है, तिसको तो स्थिति संसारमें रहणेकी अधिक हो जाती है,अरु जो पुरुष,पकडा गया, वो गावके पास जा कर खडा हो गया, सो रागद्वेष, चोरोनें पकड ली या, वोनी डुःखी है, अरु जिसने सम्यक्त्व पा लिया, सो गाममें पहुंच गया, तातें सुखी नया. यह दृष्टांत तीनो करणके साथ जोड लेना.

अथ कीडीयोंके दृष्टांत करके तीनों करणोंका स्वरूप लिखते है, जैसें कीडीयों बिलमेंसूं निकलके एक खूटेके तले नमण करती है, एकैके की डीयां उस खूंटेके उपरि चढती हैं,अरु कितनिक खूंटेके उपर चड कर पं ख लग जानेसें उम्द गइ है. यह तीनों करणनी इसी तरें जान लेने. तब तो जीव यथाप्रवृत्ति करण करकें ग्रंथिदेशकों प्राप्त होता है, अरु अपूर्व क रण करकें ग्रंथिका नेद करता है, ग्रंथिनेद करके कोइक जीव मिथ्यात्व के पुजल राशिको विनज्य (वांट) करकें १ मिथ्यात्व मोह, २ मिश्रमो ह, ३ सम्यक्त्व मोह रूप तीन पुंज करता है, जब अनिवृत्तिकरण कर कें विशुद्ध मानके उदय हूये अरु मिथ्यात्वके क्षय हूये ? उदय नहीं हूये

के उपशांत हूये, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकों प्राप्ति होता है जब जीवों कों क्षायोपशमिक सम्यग् दर्शन उत्पन्न होता है, तब जीवोंके मनुष्य ति देवगतिकी संपत् होती है. तथा अपूर्व करण करकेंही कृत तीन पुंज वाले जीवकों चौथे गुणस्थानसेंही क्षपकपणेको जब आरंन करता है, तब अनंतानुबंधी चार, मिथ्यामोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोहरूप तीनों पुंजोंके क्षय हूये,क्षायिक सम्यक्त्व होता है, तब वो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जे कर अबद्धायु है, तब तो तिसी जवमें मोक्ष रूप होवेगा. अरु जे कर आयु बांध कर पीछें क्षायिकसम्यक्त्ववान् हूआ है, तब तो तीसरे जवमे मोक्ष होता है. अरु जे कर असंख्यात वर्ष जीवने वाले मनुष्य, तिर्यंचका आयु बांध कर पीछेसें क्षायिकसम्यक्त्व पावे, तब चौथे जवमे मोक्ष होता है.

अथ अविरति गुणस्थानकवर्त्ती जीवका कृत्य लिखते है. व्रत नियम तो उसके कोइजी नहीं होता है, परंतु देवमें अर्थात् जगवान् श्रीवीतराग में, अरु उक्तलक्षण गुरुमे, तथा श्रीसंघमे, क्रम करके जक्ति, पूजा, नमस्कार, वात्सल्यादि कृत्य करता है. तथा प्रजावक श्रावक होनेसे शासनकी उन्नति,शासनकी प्रजावना करता है. तथा अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक वाला जीव, १ तीर्थंकर नामकर्म, २ मनुष्यायु, ३ देवायु. यह तीन प्रकृति तीसरे गुणस्थानसे अधिक बांधता है. इस वास्ते सत्तत्तर प्रकृतिका बंध करता है, तथा मिश्र मोहके व्यवछेद होनेसे अरु आनुपूर्वी चार, अरु सम्यक्त्वमोहके उदय होनेसें एक सौ चार कर्म प्रकृतिकों वेदता है. अरु क्षायिक सम्यक्त्व वालेकों १३७ प्रकृतिकी सत्ता होती है ,अरु उपशम सम्यक्त्व वालेकों चौथे गुणस्थानकसे ले कर ग्यारहमे गुणस्थानक पर्यंत १४७ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है. अरु क्षायिकसम्यक्त्व वालेकों जिस जिस गुण स्थानमे जितनी जितनी कर्मप्रकृतिकी सत्ता है, सो आगें चल कर लिख देवेंगे ॥ इति अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप ॥ ४ ॥

अथ पचम गुणस्थानकका स्वरूप लिखते है. जीवको सम्यग् तत्त्वावबोध करकें उत्पन्न हूआ वैराग्य, तिस वैराग्यसें सर्वविरतिकी वांछा करता जी है, तोजी सर्वविरतिघातक प्रत्याख्यान नाम कषायके उदयमें सर्व विरति अंगीकार करणेकों सामर्थ्य नहीं, किंतु जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट

देशविरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुट्टि स्थूलहिंसादि त्याग. मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्टि नमस्कारका स्मरण करणा॥य दाह ॥श्लोक॥ आउट्टि थूल हिंसाइ, मद्य मंसाइचायउ॥ जहन्नो सावउ होइ. जो नमुक्कार धारउ ॥ १॥ तथा मध्यम देशविरति "अक्षुद्रादि न्याय संपन्न विनव इत्यादि" धर्म योग्यता गुणों करि आकीर्ण गृहस्थ उचित षट्कर्म धर्ममें तत्पर , द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान्, ऐसा होवे, तो मध्यम श्रावक जाननां तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित्त आहारका वर्जक, प्रतिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इछावाला होवे, गृहस्थका धंदा जिसने त्यागा है, ऐसा जो होवे, सो उत्कृष्ट देशविरति. यह तीन प्रकारकी विरति जिसकों होवे. उसकों श्राद्ध, अर्थात् श्रावक कहते है. देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है

अथ देशविरति गुणस्थानकमें ध्यानका संभव कहते है. यह गुणस्थान में १ अनिष्टयोगार्त्त, २ इष्टवियोगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त. यह चार पाद रूप आर्त्तध्यान. तथा १ हिंसानंदरौद्र, २ मृषानंदरौद्र, ३ चौर्यानंद रौद्र, ४ सरक्षणानंदरौद्र. यह चार पादवाला रौद्र ध्यान है वे देशविरतिके आर्त्तध्यान मंद होता है, जैसें जैसें देशविरति अधिक अधिकतर होती है, तैसें तैसें आर्त्त रौद्र ध्यान, मंद मंदतर होता जाता है,अरु धर्म ध्यान तो जैसें जैसें देशविरति अधिक होती है, तैसें तैसें अधिक अधिक होता है, मध्यमरूपही रहता है, परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नही होता है जेकर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तब सर्व विरति हो जायगा, वो पांचमे गुणस्थान संबंधी धर्मध्यान कैसा है? जिसमें षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, अरु श्रावक व्रत पालनेका संभव है.

उक्त षट् कर्मका नाम कहते हैं. १ तीर्थंकर अर्हंत भगवंत वीतराग सर्वज्ञकी प्रतिमा द्वारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय, ४ संयम, ५ तप,६ दान, यह षट्कर्म हैं ॥यडुक्तं॥ देवपूजा गुरूपास्तिः,स्वाध्याय· संयमस्तपः ॥ दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

प्रतिमा जो है,सो अभिग्रहविशेषकों कहते है,सो नाममात्र यह है॥गाथा॥ दंसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अबंभ सचित्ते॥आरंभ पेस उद्दिठ,वज्जए समणभूए य ॥१॥ इनका विस्तार देखनां होवे, तदा पंचाशकनामा शास्त्रके

प्रतिमा पंचाशकमें देख लेनां. अरु श्रावकके व्रत बारह हैं, सो आगे कर लिखेंगे. यह षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, बारह व्रत. इनके पालने ध्यम धर्म ध्यान होता है,तथा देशविरति गुणस्थानस्थ जीव, अप्रत्या न चार कषाय, नरकगति, नरकायु, नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक संहनन तथा औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, यह औदारिक द्वि यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका बंध, व्यवच्छेद होनेसें सतसठ कृतिका बंध करता है. तथा अप्रत्याख्यान चार, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्य पूर्वी,नरकत्रिक,देवत्रिक,वैक्रियद्विक,दुर्भग,अनादेय.अयशःकीर्ति.यह कर्मप्रकृतिका उदय व्यवच्छेद करनेसें सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल भोगा अरु एक सौ अडत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति देशविरतिगुणस्थानं ॥५॥

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान है,तिनमेंसूं तेरहवा गु स्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति है.

अथ छठा प्रमत्तसंयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. सर्व वि ति साधु, यह छठे प्रमत्त गुणस्थानकमें होता है, वो साधु कैसा है? अहिंसादि पांच महाव्रतका धारक है, वो साधु किस करकें प्रमत्त होता है कि प्रमादके होनेसें प्रमत्त होता है, सो प्रमाद पांच प्रकारका है॥

॥यदाह॥ गाथा॥ मज्जं विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमी भ णिया॥ ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसारे॥१॥ भावार्थ—मद्य, विषय, कषाय, निद्रा, अरु विकथा, यह पांच प्रमाद हैं, सो जीवको सं सारमें गेरते है, जो साधु, इन पांचो प्रमादों करकें संयुक्त होवे, अरु सं ज्वलनकी चौथी कषायका उदय होवे, तब महामुनि महाव्रती साधु अ वश्य अंतर मुहूर्त्त काल लगि सप्रमाद होनेसे प्रमादी होता है. जे कर अंतरमुहूर्त्तसें उपरांतभी सप्रमादी होवे, तदा प्रमत्त गुणस्थानसेंभी नीचे गिर पडता है. अरु जे कर अंतर मुहूर्त्तसे उपरांतभी प्रमाद रहित होवे तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता (आरोहता) है.

अथ प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यानका संभव कहते हैं यह गुण स्थानमें मुख्य तो आर्त्तध्यान, उपलक्षणसें रौद्रध्यानकाभी संभव है. क्यों कि नोकषाय, हास्यादि षट्कके होनेसे. तथा आज्ञादि आलंबन युक्त मेंध्यानकी गौणता है, १ आज्ञा, २ अपाय, ३ विपाक, ४ संस्थान. ए

रोंके चिंतनलक्षण आलंबनों करकें संयुक्त धर्मध्यान होता है. इहां
र्मध्यानके चार पाद हैं॥ उक्तं च ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य वि
तनात् ॥ इत्थं वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यानं चतुर्विधं ॥ १ ॥ आज्ञा उस
कहते हैं, कि जो कुछ सर्वज्ञ अर्हंत भगवंतने कहा है, सो सर्व सत्य
अरु जो बात, मेरी समझमें नहीं आती है, वो मेरी बुद्धिकी मंदता
तथा दुषम कालके प्रभावसें, संशय मिटाने वाले गुरुके अभावसें, इ
ादि निमित्तोसें मेरी समझमें नही आता है, परंतु अर्हंत भगवंतके कहे
ए वाक्य सत्य है, क्योंकि उनकें मृषा बोलनेका कोइभी निमित्त नही
ऐसा जो चिंतन करनां, सो आज्ञा विचयनामा प्रथम भेद है. तथा राग,
ष, कषायादिकों करके जो अपाय (कष्ट) उत्पन्न होते है, तिनका जो चिं
न करना, सो अपायविचयनामा दूसरा भेद है. तथा क्षण क्षण प्र
जो कर्मफलोदय विचित्ररूप उत्पन्न होता है, सो विपाकविचयनामा
ीसरा भेद है, तथा यह लोक अनादि अनंत है, अरु उत्पाद,व्यय,ध्रुव
प सर्व पदार्थ है, तथा पुरुषाकार लोकका संस्थान है, ऐसा जो चितन
रनां,सो संस्थानविचयनामा चौथा भेद है. इत्यादि आलंवना युक्त धर्मध्या
की गौणता, प्रमत्त गुणस्थानमें है, परंतु सप्रमाद होनेसें मुख्यता नहीं.

अथ जे कर कोइ प्रमत्त गुणस्थानमें निरालंबन धर्मध्यान कहे, तिसका
षेध करते है. जिनभास्कर (जिनसूर्य) ऐसें कह गये है, कि जो
ाधु जहां लगि प्रमाद संयुक्त होवे, तहां लगि तिस साधुकों निरालंबन
ान नहीं होता है, क्योंकि इहां प्रमत्त गुणस्थानमे मध्यमधर्मध्यानकी
ी गौणताही कही है, परतु मुख्यता नही. तिस वास्ते प्रमत्तगुणस्था
में उत्कृष्ट निरालंव धर्मध्यानका संभव नही.

अथ जो यह अर्थ न माने, तिसकों कहते हैं, जो साधु, प्रमाद युक्तभी
ावश्यक सामायिकादि षडावश्यकसाधक अनुष्ठानका परिहार करकें नि
ल निरालंबन ध्यानाश्रित होवे, वो साधु. मिथ्यात्वमोहित मिथ्याभाव
रके मूढ हुआ थका जैनागम श्रीसर्वज्ञप्रणीत शास्त्र नहीं जानता, क्यों
ि वो साधु व्यवहार तो छोड बैठा है, अरु निश्चयकों प्राप्त नहीं हुआ
. अरु जो जिनागमके जानने वाले है, सो तो व्यवहारपूर्वक निश्चय
ों साधते है ॥ यदाह ॥ जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा विवहार निछए मु

यह ॥ विवहारनउ वेए, तिबुवेउं जउ नणिओ ॥ १ ॥ अर्थः-जो तुम जिनमतकों अंगीकार करते हो, औ जैनमतमें साधु होते हो, तो व्यवहार निश्चयका त्याग मत करो, क्यों कि व्यवहार नयके उच्छेद होनेसें तीर्थका उच्छेद हो जायगा, इस बात उपर यह दृष्टांत है, कि जैसे कोइक पुरुष अपने घरमें सदा बाजरेकी रोटी खाता है, किसीने उसकों निमंत्रण करके अपूर्व मिष्टान्नाहार कराया, तब तो वो उस स्वादका लोलुपी होके अपणे घरकी बाजरेकी रोटी निःस्वाद जान कर खाता नहीं, वस इस आश मिष्टान्नकी अभिलाषा करता है, तब तो वो अपणे घरका कदन्न भी खाता नही, अरु मिष्टान्नभी मिलता नही, तब वो उनयभ्रष्ट होता है. तैसें यह जीवभी कदाग्रहरूप भूतके लगनेसें प्रमत्तगुणस्थान वर्त्तिको ध्यस्थूलमात्र पुण्यपुष्टिका कारण षडावश्यकादि कष्टक्रिया नहीं करता, अरु कदाचित् प्रमत्तगुणस्थानमें जिसका लाभ है, ऐसा जो निर्विकल्प मनोजनित समाधिरूप निरालंबन, ध्यानांशरूप, अमृत आहारतुल्य प्राप्त है. तब तो तिस करिकें उत्पन्न हूआ जो परमानंद सुखस्वाद, तिस कारण प्रमत्त गुणस्थानगत षडावश्यकादि कष्टक्रिया कर्म, कदन्न समान कर सम्यक् आराधन न करे, अरु मिष्टान्न तुल्य निरालंबन ध्यानांश सो तो प्रथम संहननके अभावसें प्राप्त नहीं होता है, तब तो षडावश्यकके न करनेसें उनयभ्रष्ट हो जाता है, क्योकि निरालंबन ध्यानका मनोरथही पंचम कालके महामुनि आचार्योने करा है ॥ तथाच पूर्वमहर्षयः ॥ चेतोवृत्तिनिरोधनेन करण, ग्रामं विधायो द्धतं ॥ तत्संहृत्य गतागतं च मरुतो. धैर्यं समाश्रित्य च ॥ पर्यंकेन मया शिवाय विधिवत् स्थित्वैकभूभृद्दरीमध्यस्थेन कदाचिदर्पितदृशा, स्थातव्यमंतर्मुखं ॥१॥ चित्ते निश्चलतां गते प्रशमिते, रागादिनिद्रामदे ॥ विद्राणे ऽक्षकदंबके विघटिते, ध्वांते भ्रमारंभके ॥ आनंदे प्रविजृंभिते पुरपते, ज्ञानें समुन्मीलते ॥ मा द्रक्ष्यति कदा वनस्थमभितो. दुष्टाशया श्वापदा. ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रनाचार्याः ॥ चित्तावदातैर्भवदागमानां, वा नैपर्जरागरुर्नि वर्त्स्यं ॥ मया कदा प्रौढसमाधिलक्ष्मी इत्यादि " तथाश्री हेमचंद्र सूरयः ॥ वनपद्मासनासीनं, क्रोडस्थितमृगार्भकं ॥ कदा घ्रास्यंति वक्रे मां, जरंतो मृगयूथपाः ॥ १ ॥ शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे, सुवर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ॥ मोक्षे भवे भविष्यामि, निर्विशेषमतिः कदा ॥२॥ इन श्लोकोंका थोडासा अर्थभी

ख देते हैं, चित्तकी वृत्ति निरोध करकें, इंद्रिय समूह औ इंद्रियोंके विषयोंकों दूर करकें, तिस पीछें पवनकी अर्थात् श्वासोच्छ्वासकी गतागति कों रोक करके, अरु धैर्यकों अवलंबकें, पद्मासनसें बैठ करकें,शिवके वा स्ते विधि संयुक्त किसी पर्वतकी गुफामें बैठ करकें,एक वस्तु उपरि दृष्टि र ख कर, मुझकों अंतर्मुख रहनां योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूयां छतां राग, द्वेष, कषाय, निद्रा, मदके शांति हूयां,अरु इंद्रिय समूहके दूर हूयां, अरु भ्रमारंभक अंधकारके दूर होयां, अरु आनंदके प्रगट बुद्धिमान भये,ज्ञानके प्रकाश भये, ऐसी जीवकों अवस्थामें मेरेकों वनमें रहेकों शु द्धाशयवाले सिंह कब रक्षा करेंगे? ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रभाचार्यजी कहते हैं, कि हे भगवन्! तुमारा आगमरूप भेषज करकें, राग रूप रोग नि वर्त्त करके,निर्मल चित्त करकें कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन मैं समाधि रूपी लक्ष्मीकूं देखुंगा? इत्यादि. तथा श्रीहेमचंद्रसूरिजी कहते है. कि वनमें पद्मासन बैठे हुवे मेरी गोदमें मृगका बच्चा बैठे, अरु हिरणोंका स्वामी वडा ह रण मेरे मूखकों सूंघे, अरु में अपणी समाधिमें स्थित रहूं ॥१॥ तथा शत्रुमें मित्रमें, तृण अरु स्त्रीमें, सुवर्ण अरु पाषाणमें, मणि अरु मट्टिमे, मोक्ष अरु संसारमें, निर्विशेषमति, मैं कब होवूंगा? ॥ ४ ॥ ऐसेंही मंत्री वस्तु पालने तथा परमतमें भर्तृहरिनेभी मनोरथही करा है. ऐसें स्वसमय परस मयमें प्रसिद्ध जो पुरुष हूये हैं, तिनोंने परमात्मतत्त्वसंवित्तिमें मनोर थही करा है, अरु मनोरथ जो लोकमें करते हैं, सो दुःप्राप्य वस्तुकाही करते हैं, परंतु जो वस्तु, सुखेन मिल जावे, तिसका मनोरथ कोइभी नहीं करता है, जो सदा मिष्टान्न खाता है, अरु वडा भारी राज्य भोगता है, वो कभी मिष्टान्न खानेका अरु राज्य भोगनेका मनोरथ नही करता है, तिस वास्ते सर्व प्रकारसे प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोनें परम संवेग आरूढ अप्रमत्त गुणस्थानकका स्पर्श कराभी है, तोभी परम शुद्ध परमा त्मतत्त्वसंवित्तिका मनोरथ करणां, परंतु षट्कर्म षडावश्यकादि व्यवहा र क्रिया जो है, उसका परिहार न करनां. अरु जो मूढ, योगग्रह कर कें ग्रस्त है, अरु सदाचार व्यवहारसे पराङ्मुख है, तिनका योगभी कि सी कामका नहीं है,अरु उनका यह लोकभी नहीं अरु परलोकभी नहीं. क्योंकि वो जीव जडात्मा है ॥ यतः ॥ योगिनः सम्मतामेतां,

प्राप्य कल्पलतामिव ॥ सदाचारमयीमस्या, वृत्तिमातत्त्वतां वहि. ॥ ये तु योगग्रहग्रस्ताः, सदाचारपराङ्मुखाः ॥ एप तेपां च योगोपि. न कोपि जडात्मनां ॥ २ ॥ तिस वास्ते साधुकों जो दूषण दिन लगता है, तिसके छेदने वास्ते अवश्यमेव षडावश्यकादि क्रिया जहां लगि उपरिले गुणस्थानों करि साध्य जो निरालंबन ध्यान तिसकों न प्राप्ति होवे, तहां लगि करे. तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवछेद होनेसें त्रेशठ प्रकृतिका बंध करता है तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान चार यह आठ प्रकृतिके उदय उछेद होनेसें अरु आहारक तथा आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसें एकासी प्रकृति वेदता है, अरु एक सौ अडत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानकं पष्ठं ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. पांच महाव्रत धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अप्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु संज्वलनकी चारों कषायोंका उदय मंद होवे, तथा नोकषायोंकाभी उदय मंद होवे. तात्पर्य यह है कि संज्वलन कषाय तथा नोकषायोंका जैसा जैसा मंदोदय होता है, तैसें तैसें साधु अप्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ यथा यथा न रोचंते, विषया सुलभाअपि ॥ तथा तथा समायाति, संविचौतत्त्वमुत्तमं ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, संवित्तौतत्त्वमुत्तमं ॥ तथा तथा न रोचंते, विषयाः सुलभाअपि ॥२॥ अर्थ—जैसें जैसें अप्रमत्तगुणस्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणेमें तथा क्षय करणेमें निपुण होता है,तथा जैसें सध्यानका आरंभ करता है,सोइ सरुप कहते हैं.

दूर करे हैं, सर्व प्रमाद जिसने ऐसा जो जीव, तथा पांच महाव्रतका धारक, अरु अष्टादश सहस्र जो शीलांगलक्षण, तिनों करके संयुक्त, सदागमका अभ्यासी, ज्ञानवान्,ध्यान एकाग्रता रूप,ऐसा ज्ञान ध्यानरूप जिसके पास धन है,इसी वास्ते "मौनी" मौनवान् है. क्योंकि मौनवानही ध्यान रूप धनवान् हो सक्ता है, तिस पीछे ज्ञान ध्यान मौनवान्, उपशम करणेके अर्थ अथवा क्षय करणेके अर्थ सन्मुख हूआ थका ऐसा पवित्र हुनि सत्तावीस मोहकों पूर्वोक्त सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अरु अनतानुबंधी चार. यह सात प्रकृतिके विना शेप इक्कीस प्रकृतिरूप मो

नीय कर्मके उपशम करणेके सन्मुख तथा क्षय करणेके सन्मुख जब होता ,तब सालंबन ध्यान त्यागके निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंभ करता . यह निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करने वाले योगी, तीन तरेंके होते है. १ थाप्रारंभकाः, २ तन्निष्ठाः, ३ निष्पन्नयोगाः ॥ यदाह ॥श्लोक॥ सम्यग् नैसर्गि ो वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सांसर्गिकीं वा ॥ क्वाप्येकांते निविष्टाः, कपि च लचल, न्मानसस्तंभनाय ॥ शश्वन्नासाग्रपाली, घनघटितदृशो, धीरवीरासन षो ॥ ये निःपापाः समाधे, र्विदधति विधिना, रंभमारंभकास्ते ॥१॥ कुर्वाणो रुतासनेंद्रियमनः, क्षुत्तर्पनिद्राजयं ॥ योंतं जल्पति रूपणानिरसकृ, त्तत्त्वं मन्यस्यति ॥ सत्त्वानामुपरि प्रमोदकरुणा, मैत्रिर्भृशं मन्यते ॥ ध्यानाविष्ठि चेष्टयाऽभ्युदयते, तस्येह तन्निष्ठता ॥ २ ॥ उपरतबहिरंतर्जल्पकल्लोलमा ं, लसदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततममृतमंत र्मानसे यस्य हंसः, वति निरुपलेपः सोऽत्र निष्पन्नयोगी ॥ ३ ॥

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमें ध्यानका संभव कहते है. सर्वज्ञका कह्या आ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक भेदरूप है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मैत्र्यादि भश्चतुर्भेदं, य दाज्ञादि चतुर्विधं॥ रूपस्थादि चतुर्धा वा, धर्मध्यानं प्रकीर्त्ति म् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्म यानमुपस्कर्तुं, तद्धि तस्य रसायनं ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकाना, संस्थानस्य चिंतनात् ॥ इत्थं वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यानं प्रकीर्त्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पिं डस्थध्यान अपणे अंग अंगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्थध्यान, ३ संकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कल्पनासे रहित रूपातीत ध्या न, ऐसा जो जिनेश्वरका कह्या हूआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थान में मुख्यवृत्ति करके प्रधानपणे होता है तथा रूपातीतपणे करके शुक्लध्या भी अंशमात्र करके गौणपणे है. इहां अप्रमत्त गुणस्थानमें आवश्य क क्रियाका जो अभाव है, तोभी शुद्ध है, यह वार्त्ता कहते है

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकमें सामायिकादि षट् आवश्यक, सोभी नहीं है. "कोर्थः" सामायिकादि छै आवश्यक व्यवहार क्रियारूप, इस गुण स्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सर्व कुछ है; क्योंकि सामायिकादि सर्व आत्माके गुण है, " आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे " अ

र्थात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, यह आगमके वचनसें है.

प्रश्नः– किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार क्रियारूप षट् आवश्यक नहीं?

उत्तरः– अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसें निरंतर ध्यान नदीमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाभाविकी सहज नित्य संकल्प विकल्प मालाके अभावसें एक स्वभावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्त्तमान जो जीव है, वो भावतीर्थ स्नान करकें परम शुद्धिकों प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तण्हाइ, छेयणं मलप्पवाहणं चेव ॥ तिहिं अत्थेहिं निउत्त, तम्हा तं दव्वउ तिछ ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिए, दाहस्सो वसणं हवइ तिछं ॥ लोहंमि उ निग्गहिए, तण्हाइ छेयणं जाण ॥ २ ॥ अठविहं कम्मरयं, बहुएहिं भवेहिं संचियं जम्हा ॥ तव संयमेण धोयइ, तम्हा तं भावउ तिछं ॥ ३ ॥ अर्थः–दाह उपशांत करे, तृषाका छेद करे, शरीरके मलकों दूर करे, इन पूर्वोक्त तीनो अर्थों करकें जो नियुक्त होवे, ऐसे जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते द्रव्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा क्रोधके निग्रह करणेसें दाह उपशम होती है, अरु लोभके निग्रह करणेसें तृषा छेद होती है, ऐसें जानना. अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत भवों करकें जो संची है, सो तप संयम करके जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों भावतीर्थ कहते है ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमिते, संवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगते, तर्विकल्पेंद्रजाले ॥ भिन्ने मोहांधकारे, प्रसरति महसि, क्वापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानावलंबी, कलयति परमानंदसिंधौ प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थः– प्राण, श्वासोश्वास का प्रचार आना जाना जिसने रोका है, औ जिसने शरीरकों वश कीया है, औ जिसने नेत्रका टपकारना बंद कीया है, औ पांच इंद्रियकों अपणे अपणे विषयमें रोका है, तथा अंतर विकल्परूप इंद्रजालके लय हूये, मोहरूप अंधकारके नष्ट हूयां, अरु त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, प्रगट हूये धन्य वो ध्यानावलंबी पुरुष है, सो परमानंदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है.

यह अप्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुभ, ६ अयश, ७ अशातावेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका बंध

अवछेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिका बंध करता है. इस वास्ते ऊणसठ प्रकृतिका बंध करता है. अरु जे कर देवायु न बांधे, तब अठावन प्रकृतिका बंध करता है, तथा स्त्यानर्द्धित्रिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवछेद करे, तव छिहत्तर प्रकृतिका फल वेदता है, अरु १३० प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति अप्रमत्त गुणस्थानकं सप्तमं॥७॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिबादर, दसवा सूक्ष्मसंपराय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्थानों का नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं.

जो अप्रमत्तसंयत सातमे गुणस्थान वर्त्ती दिखलाया है, सोइ संज्वलन कषाय चार, नो कषाय है, इनके मंद उदय हूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यंत परमाल्हादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है; इसका नाम अपूर्वकरण इस वास्ते कहते है कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्मगुण की प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, औ अनुभव्या, जो भोग, तिनकी कांक्षारूप संकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप भावों की निवृत्ति नही, इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं. अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिबादर कहते हैं, सो इहां अप्रत्याख्यानादि जो द्वादश बादर कषाय है, तिनका, अरु नव नोकषायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिबादर कहते हैं. यह नवमा गुणस्थान है.

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वभावनाबल करकें सत्तावीश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंडीभूत लोभकी अस्तित्व जहां है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कषायका है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कह्या.

तथा उपशामकही उपशम मूर्त्तिरूप सहजस्वभाव बल करकें सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है.

तथा क्षपककोही क्षपकश्रेणि मार्ग करकें दशमे गुणस्थानसेंही निःकषाय शुद्धात्मभावना बल करकें सकल मोहके क्षय करणेसे क्षीणमोह

नामक बारह्वा गुणस्थान होता है. यह पांचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कहा.

अथ अपूर्वकरणादि अंशसेंही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं. अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमे अपूर्वकरणके प्रथम अंशसेंही उपशमक, उपशमश्रेणिमें चढता है, अरु क्षपक, क्षपकश्रेणिमें चढता है.

अथ प्रथम उपशमश्रेणिके चढनेकी योग्यता कहते हैं. इहां उपशमक मुनि, शुक्लध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप लिखेंगे उसको ध्याता हूआ उपशमश्रेणिकों अंगीकार करता है. कैसा वो मुनि है? पूर्वगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान्, आदिके तीन संहनन युक्त, असा मुनि उपशमश्रेणि करता है.

उपशमश्रेणिवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल करके "अहमिंद्र" अर्थात् पांच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, परंतु जिसके प्रथम संहनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अपर संहनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवार्त संहननवाला चौथे महेंद्र स्वर्ग तक जा सक्ता है, अरु कीलिकादि चार संहनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम संहनन वाला तो मोक्ष तक जाता है, अरु जिसकी आयु जे कर सात लव अधिक होती, तो मोक्ष जाता, सोइ सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न होता है. ॥ यदाह ॥ गाथा॥ सत्त लवा जइ आउं, पहुप्पमाणं तउ हु सिज्झंता ॥ तित्तियमित्तं न हुयं, तत्तो लव सत्तमा जाया ॥१॥ सव्वठ सिद्धनामे, उक्कोसठिइ विजयमाईसु ॥ एगावसेस गब्भा, हवंति लव सत्तमा देवा ॥ २ ॥

प्रश्न—उपशमश्रेणिवाला मोक्षके योग्य कैसें हो सक्ता है ?

उत्तरः—सात जो लव है, सो एक मुहूर्त्तका इग्यारवा हिस्सा है, तब तो लवसत्तमावशेष आयुवालाही खंडित उपशमश्रेणि करने वाला पराङ्मुख सातमे गुणस्थानमें आ करकें फेर क्षपकश्रेणिमें चढ कर सात लवके विचहीमे क्षीणमोह गुणस्थानमें हो कर अंत कृत केवली हो कर मोक्ष हो जाता है, इस वास्ते दूषण नहीं. तथा जो पुष्टायु उपशमश्रेणि करता है, सो असंडित श्रेणि करकें, चारित्र मोहनीयका उपशम करके इग्यारवें गुणस्थानमें पहुंच कर उपशमश्रेणि समाप्ति करके गिर पडता है.

अथ औपशमकही अपूर्वादि गुणस्थानोमें जो करता है, सो कह हैं. संज्वलनका लोभ वर्जके शेष वीश प्रकृति मोहनीय कर्मकी. अपूर्वकरण, अरु अनिवृत्तिबादर. इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशम करता है. तिसके पीछें क्रम करकें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानमें संज्वलनके लोभकों सूक्ष्म करता है. तिस पीछें क्रम करकें उपशांतमोह गुणस्थानमें तिस सूक्ष्म लोभका सर्वथा उपशम करता है, तथा इहां उपशांतमोह गुणस्थानमें जीव, एक प्रकृति, शातावेदनीय रूप बांधता है. अरु उणसठ प्रकृति वेदता है, तथा १४८ प्रकृतिकी उत्कृष्टी सत्ता है.

अथ उपशांतमोह गुणस्थानकमें, जैसा सम्यक्त्व चारित्र भाव लक्षण तीन है, सो कहते है. यह गुणस्थानमें उपशम सम्यक्त्व अरु उपशम चारित्र होता है, अरु इहां भावभी उपशमही होता है, परतु क्षायिक भाव तथा क्षायोपशमिक भाव नही होता है.

अथ उपशातमोह गुणस्थानसें जैसें पड जाता है, तैसें कहते है. उपशमी मुनि तीव्र मोहोदय अर्थात् चारित्र मोहनीयका उदय पा करकें उपशांतमोह गुणस्थानसें पड जाता है, फेर मोहजनित प्रमादसें पतित होता है. जैसें पानीमें मल हेठ बैठ जाते है, तिस करकें उपरसें निर्मल हो जाता है, फेर कोइ निमित्त पा कर मलीन हो जाता है ॥ यदाह ॥ सुय केवलि आहारग, उजुमइ उवसंतगावि हु पमाय ॥ हिंमंति भवमणं तं, तं अणंतरमेव चउ गइया ॥ १ ॥ अर्थः—१ श्रुतकेवली, २ आहारक शरीरी, ३ ऋजुमति, ४ उपशांतमोह वाला. यह सर्व प्रमादके वशसें अनंत भव करते है, प्रमादके वशसें चार गतिमें वास करते है.

अथ उपशमक जीवोंकों गुणस्थानोमें चढना, अरु पडना जिस तरे होता है, सो कहते है. अपूर्वकरण गुणस्थानसें अनिवृत्तिबादर गुणस्थानमें जाता है, अरु अनिवृत्तिबादरगुणस्थानसें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानमें जाता है, अरु सूक्ष्मसंपराय वाला उपशांतमोह गुणस्थानमें जाता है. तथा अपूर्वकरणादि चारो गुणस्थानसे उपशम श्रेणिवाला पडा हुआ, प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमे आ जाता है, अरु जे कर चरमशरीरी होवे,तब सातमे गुणस्थान तक आ करकें फेर सातमे गुणस्थानसे क्षपकश्रेणि मांडता है, परतु एक वार जिसने उपशमश्रेणि करी होवे, सो क्षपक

श्रेणि कर सक्ता है,अरु जिसने एक नवमें दो वार उपशमश्रेणि करी सो क्षपकश्रेणि तिस नवमें नहीं कर सक्ता है ॥यदाह॥ गाथा ॥ जीवो इक्क जम्मंमि,इक्कसिं उवसामगो ॥ खयंति कुज्जा नो कुज्जा,दोवारे उवसामगो ॥

अथ उपशमश्रेणि वालेके नवोंकी संख्या कहते है. इस संसारमें अनंत नवोंमें चार वार उपशमश्रेणि होती है, अरु एक नवमें दो वार होती है ॥ यदाह ॥ उवसमसेणि चउक्कं, जायइ जीवस्स आनवं नूणं ॥ ता पुण दो एगनवे. खवगे स्सेणी पुणो एगा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्थापना इस अगले यंत्रसें जान लेनी. इस यंत्रकी संवादक यह गाथा है ॥ गाथा ॥ अणदंसण पुंसित्थी, वेयठक्कं च पुरिसवेय च ॥ दो दो एगंतरिए सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥१॥ अर्थः—प्रथम अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया अरु लोन. इन चारोंकों उपशम करता है, पीछें मिथ्यात्व मोह, मिश्रमोह अरु सम्यक्त्व मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीछें नपुंसकवेद, पीछें स्त्रीवेद, फेर हास्य, रति, अरति, नय, शोक, जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका उपशम करता है. फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याख्यानी क्रोध अरु प्रत्याख्यानी क्रोध, फेर संज्वलनका क्रोध, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी मान, फेर संज्वलनका मान. फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी माया, फेर संज्वलनकी माया, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी लोन, फेर संज्वलनका लोन, उपशांत करता है ॥इति उपशमश्रेणि स्वरूप ॥

अथ क्षपकश्रेणिका स्वरूप लिखते हैं. जिस क्षपकश्रेणिमें चढ कर योगी (क्षपक मुनि) कर्म क्षय करणेमें प्रवृत्त होता है. अथ अष्टम गुणस्थानकसें पहिलें जो कर्मप्रकृति क्षपक मुनि क्षय करता है, सो लिखते हैं. चरमशरीरी, अबद्धायु, अल्पकर्मी, क्षपकके चौथे गुणस्थानमें नरकायु क्षय हो जाता है, नरक योग्य आयुका बंध नहीं करता है. तथा पांचमे गुणस्थानमें तिर्यगायु क्षय होता है, अरु सातमे [illegible] नमें देवायु क्षय हो जाता है, तथा इहां सातमे [illegible] नमें दर्शन [illegible] क्षय हो जाता है, तिस पीछें क्षपक सा[illegible] अष्ट[illegible] रहती है, तब आठमे गुणस्थान[illegible] ध्यान रूपातीत लक्षण विषे [illegible] न करना उसकों [illegible]

ती हैं ॥ यदाह ॥ अभ्यासेन जिताहारो, ऽभ्यासेनैव जितासनः ॥ अभ्यासेन जितश्वासोऽ भ्यासेनैवानितत्रुटिः ॥ १ ॥ अभ्यासेन स्थिरं चित्त, मभ्यासेन जितेंद्रिय. ॥ अभ्यासेन परानंदोऽभ्यासेनैवात्मदर्शनं ॥ २ ॥ अभ्यासवर्ज्जितैर्ध्यानैः, शास्त्रस्थैः फलमस्ति न ॥ भवेन्नहि फलैस्तृप्तिः, पानीयप्रतिबिंबितैः ॥३॥ तिस वास्ते अभ्याससेंही विशुद्ध (निर्मल) तत्त्वानुयायि बुद्धि होती है.

अथ अष्टम गुणस्थानमें शुक्लध्यानका आरंभ कहते है. क्षपक साधु यह आठमे गुणस्थानमें "शुक्लसध्यान" शुक्ल नामक प्रधान ध्यानका प्रथम पाद पृथक्त्व वितर्क सप्रविचार नाम है, तिसका स्वरूप आगें लिखेंगे. ऐसा ध्यान ध्याता है, सो कैसा साधु है? "आद्यसंहननसमन्वित" वज्रऋषभनाराचनामा प्रथम संहननयुक्त है.

अथ ध्यान करने वालेका स्वरूप लिखते है. योगींद्र क्षपक मुनींद्र, व्यवहारापेक्षय, ध्यान करने योग्य होता है,क्या करके? निविड दृढ पर्यकासन करकें, कथंभूत? निश्चल आसन करकें, क्योंकि आसनजयही ध्यानका प्रथम प्राण है ॥ यदाह ॥ आहारासणनिद्दा, जयं च काऊण जिणवरमएण ॥ झाइज्ज नियं अप्पा,उवइठं जिणवरिंदेण ॥१॥ तत्र पर्यंकासन, जंघाके अधोभागमें पग उपर करनेसें होता है, तथा केईक सिंहासन कहते है, तिसका स्वरूप ऐसा है कि ॥श्लोक॥ योनिं वामपदाऽपरेण निविडं, संपीड्य शिश्नं दृढं ॥ न्यस्योरस्यचलेंद्रियः स्थिरमना, लोलां च तात्वांतरे ॥ वंशस्थैर्यतया सुनिश्चलतया, पश्यन् भ्रुवोरंतर ॥ योगी योगविधिप्रसाधनकृते, सिंहासनं साधयेत् ॥ १ ॥ अथवा आसनका कोइ नियम नहीं, चाहो कोइ आसन होवे, जिस आसनमें चित्त स्थिर हो जावे, सोइ आसन ठीक है, सो कैसा योगींद्र है कि नासिकाके अग्रमें दीनी है सत् नेत्रकी दृष्टि, ऐसे प्रसन्न नेत्र है जिसके, क्योंकि नासाग्रन्यस्तलोचनवालाही ध्यानका साधक होता है ॥ यदाह ॥ ध्यानदंडकस्तुतौ ॥ नासावंशाग्रभाग, स्थितनयनयुगो, मुक्तताराप्रचारः ॥ शेषाक्षक्षीणवृत्ति, स्त्रिभुवनविवरां, भ्रांतयोगैकचक्रु.॥ पर्यंकातंकशून्यः, परिगलितघनोच्छ्वासनिःश्वासवातः ॥ सद्ध्यानारंभमूर्त्ते, श्चिरमवतु जिनो, जन्मसंभूतिभीतेः ॥ १ ॥ फेर कैसा है योगींद्र? किंचित् उन्मीलित अर्द्धविकसित है नेत्र जिसके, क्योंकि योगीयोंके समाधिसमयमें अर्द्धविकसित नेत्र होते है ॥यदाह॥ गंभीरस्तंभमूर्त्ति, र्व्यपगतक

रणं, व्याप्ततिमिदममंदं ॥ प्राणायामोजलाट,स्थलनिहितमना, स्वस्थ दृष्टिः ॥ नाऽत्युन्मीलन्निमील, न्नयनमतितरां, बद्धपर्यंकबंधो ॥ ध्यायं ध्याय शुक्लं, सकलविदभवद्यः स पायाज्जिनो वः ॥ १ ॥ फेर केसा योगी है? " मानस " (मन) चित्त अंतःकरण विकल्परूप वावरके बंधनमें करा है, क्योंकि विकल्पही दृढ कर्मबंधनका हेतु है ॥ यदाह ॥ शुभा वा शुभा वापि, विकल्पा यस्य चेतसि ॥ स स्वं बध्नात्ययः स्वर्ण, बंधना तेन कर्मणा ॥ १ ॥ वरं निद्रा वरं मूर्छा, वरं विकलतापि वा, नत्वार्त्तरौद्रदुर्लेश्या विकल्पाकुलितं मनः ॥ २ ॥ फेर केसा है योगी? संसारके उछेद करनेके रस्ते उद्यम है जिसके क्योंकि नवछेदक ध्यानार्थे उत्साह वालोंकेही कार्य सिद्धि होती है ॥ यदाह ॥ उत्साहान्निश्चयाद्धैर्यात्, संतोषात्तत्त्वदर्शनात् ॥ मुनेर्जनपदत्यागात्, षड्भिर्योगः प्रसिद्ध्येदिति ॥ १ ॥ तथा मुनि योगींद्र निज (पवनकों) ऊर्ध्व प्रचाराप्ति दशम द्वार गोचरकों प्राप्त करता है, क्या करके प्राप्त करता है? कि अपान द्वार मार्ग करकें गुदाके रस्ते पवन अपनी इछासें निकलतेकों निरुध्य (संकोच) करकें,मूलबंध युक्ति करकें करता है, सो मूलबंध यह है, कि ॥ श्लोक ॥ पार्ष्णिभागेन संपीड्य, योनिमाकुंचयेद्गुदं ॥ अपानमूर्ध्वमाकृष्य, मूलबंधो निगद्यते ॥ १ ॥ यह आकुंचनकर्मही प्राणायामका मूल है ॥ यदुक्तं ॥ ध्यानदंडस्तुतौ ॥ संकोच्यापानरंध्रं, हुतवहसदृशं, तंतुवत्सूक्ष्मरूपं ॥ धृत्वा हृत्पद्मकोशे, तदनु च गलके, तालुनि प्राणशक्तिं ॥ नीत्वा शून्यातिशून्यां, पुनरपि खगतिं, दीप्यमानं समंताल्लोकालोकावलोकां, कलयति स कलां, यस्य तुष्टो जिनेशः ॥ १ ॥

अथ पूरक प्राणायाम कहते है. योगी पूरक ध्यानके योगसें अतिप्रयत्न करकें (कोष्ठ) सकल देहगत नाडीसमूहकों पवन करकें पूरता है, क्या करकें? द्वादशांगुल पर्यंत पवनकों आकर्षण करकें, बारां आंगुल प्रमाण बाहिरसें सर्व ओरसें खेंच करकें पूरता है. इहां यह तात्पर्यार्थ है कि पवन आकाश तत्त्वके वहते हूये नासिकाके अंदरही पवन होता है, अरु अग्नितत्त्वके वहते हूये चार अंगुल प्रमाण बाहिर ऊर्ध्वगति स्फुरत होता है, अरु वायु तत्त्वके वहते हूये छे अंगुल प्रमाण बाहिर तिर्यग् फिरता है, अरु पृथिवी तत्त्वके वहते हूये आठ अंगुल प्रमाण बाहिर मध्यम भागमें रहता है, अरु जल तत्त्वके वहते हूये बारह अंगुल प्रमाण नीचेकों वहता

तब द्वादश अंगुल पर्यंत वारुणमंडल प्रचार अमृतमय पवन आक
ण करकें इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते है.

अथ रेचक प्राणायाम कहते है. तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी
योगसामर्थ्यसें अरु प्राणायाम अभ्यासके बलसें रेचकनामा पवन नाभिकम
लोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है,तिसका नाम रेचकध्यान कहते हैं
यदाह॥ वज्रासनः स्थिरवपुः स्थिरधीःसचित्त,मारोप्य रेचक समीरणजन्म
चक्रे॥ स्वांतेन रेचयति नाडिगतं समीरं,तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति ॥१॥

अथ कुंभकध्यान कहते है. योगी कुंभकनामा पवन नाभिपंकजकुंभक
ध्यान अर्थात् कुंभककर्म प्रयोग करकें कुंभवत् (घटाकार) करकें अतिशय क
रके स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंभकचक्रं,नाडिकासु निबि
डीकृतवातः ॥ कुंभवच्चरति यज्जलमध्ये, तद्वदंति किल कुंभककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसें मन जीत्या जाता है, यह बात कहते है. क्यों
कि जहां मन है, तहां पवन है,अरु जहां पवन है, तहां मन वर्त्तता है॥
यदाह ॥ दुग्धांबुवत्संमिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ याव
न्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, र्यावन्मरुत्तत्र मन प्रवृत्तिः ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्य
नाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः ॥ विध्वस्तयोरेंद्रियवर्गशुद्धि, स्तद्ध्वंसनान्मोक्षप
दस्य सिद्धिः ॥२॥ इस प्रकार करकें पूरक, रेचक, कुंभकके क्रम करकें प
वनोंका आकुंचन निर्गमन, साध्य करके वायुका संग्रह, अरु चित्तका एका
ग्रपणां चिंतन करके समाधिविषे निश्चलपणेकों धारण करता है, क्योंकि
पवनके जीतनेसेंही मन निश्चल होता है ॥ यदाह॥ प्रचलति यदि, क्षोणी
चक्रं, चलंत्यचला अपि ॥ प्रलयपवन, प्रेंखालोला, श्चलंति पयोधय. ॥ प
वनजयिनः, स्वावष्टंभ, प्रकाशितशक्तयः ॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना,
च्चलंति न योगिनः ॥ १ ॥

अथ भावकीही प्रधानता कहते है. इहां क्षपकश्रेणि आरोहविषे जो
प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अभ्यासक्रम कह्या है, सो प्रागल्भता अ
र्थात् रूढि करकें जो प्रसिद्ध है, सो दिखलाया है, परंतु जो प्राणायाम
ही करे, तो क्षपकश्रेणि चढे,ऐसा कुछ नियम नहीं, क्योंकि क्षपकका भा
वही केवल क्षपकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आडंबर नहीं.
सर्पदिनापि ॥ नासाकंदं नाडीवृंदं, वायोश्चारः प्रत्याहारः ॥ प्राणायामो वी

जयामो, ध्यानाभ्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं भ्रूमध्यस्थं, नासा
स्थं श्वासांतःस्थं ॥ तेजः शुद्धं ध्यानं बुद्धः, ॐकाराख्यं सूर्यप्रभाख्यं ॥
ब्रह्माकाशं शून्याभ्यासं, मिथ्याजल्पं चिंताकल्पं ॥ कायाक्रांतं चित्तभ्रांतं,
क्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥ ३ ॥ गुर्वादिष्टं चिंत तमिष्टं ॥ देहातीतं भावो
त्यक्त्वा द्वंद्वं नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्व जानीहि त्वं ॥४॥ अन्यच्च ॥ ॐकारा
नं विचित्रकरणैः, प्राणस्य वायोर्क्रया, तेजश्चिंतनमात्मकायकमले, शू
रालंबनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं, चितामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्यत
ल्पकल्पनकला, तीतं स्वभावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्व रूढि करकें क्रपक
के आडंबर है,परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् भावही प्रधान है.

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन. वचन, अरु कायाके यो
वाले मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है,सो कैसा है ? कि वितर्क
कें सहित जो वर्त्ते, सो सवितर्क. अरु सहविचार करकें जो प्रवर्त्ते, सो सवि
र. तथा सह पृथक्त्वेन वर्त्तते इति सपृथक्त्व. इन तीनो विशेषणों करकें
क्त होनेसें सपृथक्त्व,सवितर्क,सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते है, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्या
त्रयात्मक क्रमोत्क्रम करके गृहीत विशेष तीन रूप है,तहां श्रुतचिंता
वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करना है, सो विचा
है, अरु द्रव्य गुण पर्यायादि करकें जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते है, तिनमें प्रथम वितर्क
स्वरूप कहते है, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप हो
सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभव
अंतरंगभावगत आगमके अवलंबनसें. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते है. जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचारण
अर्थमें अर्थांतरमें संक्रम होवे, शब्दसें शब्दांतरमें संक्रम होवे, योगसें
योगांतरमें संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि
चार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपभी शुद्धात्मकी तरें द्रव्यमें द्रव्यां
रमें जाता है, अथवा गुणोंसें गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंसें पर्या
यांतरमें जाता है, तहां जो सहजात है, सो गुण है,जैसें सुवर्णमें स्निग्ध

जानता है. अरु जो क्रमनूत है, सो पर्याय है, जैसें सुवर्णमें मुद्रा कुंडलादिक. तिन द्रव्य गुण पर्यायांतरोमें जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते हैं. योगी समाधिवान् ऐसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्रथम शुक्लध्यान है, उसका ध्याता हूआ परम प्रकृष्ट शुद्धिकों प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता है? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है.

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपाति (पतनशील) उत्पन्न होता है,तोजी अतिविशुद्ध होनेसें औ अति निर्मल होनेसें अगले गुणस्थानमें चढनां चाहता है, एतावता अगले गुणस्थानकों दौडता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निद्राद्विक, देवद्विक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय,आहारक, तैजस, कार्मण, वैक्रियोपांग, आहारकोपांग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थंकरनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास. यह बत्तीस कर्म प्रकृतिका व्यवछेद होनेसे छवीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अंतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह,इन चारके उदय व्यवछेद होनेसे बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है. अरु १३८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ क्षपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता हूआ जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसें क्षय करता है. सो कहते हैं. पूर्वोक्त आठमे गुणस्थानसें अनंतर क्षपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव नाग करता है, तिहा प्रथम नागमें सोलां कर्म प्रकृति क्षय करता है,सो यह है. १ नरकगति, २ नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यंग्गति, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम, ६ उद्योतनाम, ७ सूक्ष्म, ८ द्वींद्रिय जाति, ९ त्रींद्रिय जाति, १० चतुरिंद्रिय जाति.११ एकेंद्रियजाति,१४ आतप नाम,१५ स्त्यानर्द्धि त्रिक, अर्थात् निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, यह त्रिक. १६ स्थावर नाम. यह सोलां कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानकके प्रथम नागमें क्षय करता है,

जयामो, ध्यानाभ्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं भ्रूमध्यस्थं, नासा स्थं श्वासांतःस्थं ॥ तेजः शुद्धं ध्यानं बुद्धः, ॐकाराख्यं सूर्यप्रनाख्यं ब्रह्माकाशं शून्याभ्यासं, मिथ्याजल्पं चिंताकल्पं ॥ कायाक्रांत चित्तभावं क्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥ ३ ॥ गुर्वादिष्टं चित तमिष्टं ॥ देहातीतं नावोत्थं त्यक्त्वा द्वंद्व नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्व जानीहि त्वं ॥४॥ अन्यत्र ॥ ॐकारा नं विचित्रकरणैः, प्राणस्य वायोर्जया, तेजश्चिंतनमात्मकायकमले शू शलंबनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं, चिंतामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्य ल्पकल्पनकला, तीतं स्वनावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्व रूढि करकें रूपक के आमंवर है,परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् नावही प्रधान है.

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन, वचन, अरु कायाके वाले मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है,सो कैसा है? कि वितर्क कें सहित जो वर्त्ते, सो सवितर्क. अरु सहविचार करकें जो प्रवर्त्ते, सो सवि र. तथा सह पृथक्त्वेन वर्त्तते इति सपृथक्त्व. इन तीनो विशेषणों करके क होनेसें सपृथक्त्व,सवितर्क,सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते है, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान त्रयात्मक क्रमोत्क्रम करके गृहीत विशेष तीन रूप हैं,तहां श्रुतचिंता सो वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करनां है, सो विचा है, अरु द्रव्य गुण पर्यायादि करकें जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते है, उसमें प्रथम वितर्क स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होवे, सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुनवमय अंतरगनावगत आगमके अवलंबनसें. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते है. जिस ध्यानमे सपूर्वोक्त वितर्क विचारण अर्थसें अर्थांतरमें संक्रम होवे, शब्दसें शब्दांतरमें संक्रम होवे, योगसें योगांतरमे संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि चार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपजो शुद्धात्मकी तरें द्रव्यसें द्रव्यां रमें जाता है, अथवा गुणोंसें गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंमें पर्या यांतरमें जाता है, तहा जो सहजात है, सो गुण है,जैसे सुवर्णमें स्निग्ध

पातता है. अरु जो क्रमभूत है, सो पर्याय है, जैसें सुवर्णमें मुद्रा कुंडलादिक. तिन द्रव्य गुण पर्यायांतरोमें जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते हैं. योगी क्षमावान् ऐसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्रथम शुक्लध्यान है. उसका ध्याता हूआ परम प्रकृष्ट शुद्धिकों प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता है? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है.

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपाति (पतनशील) उत्पन्न होता है, तोभी अतिविशुद्ध होनेसें औ अति निर्मल होनेसें अगले गुणस्थानमें चढनां चाहता है. एतावता अगले गुणस्थानकों दौडता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निद्राद्विक, देवद्विक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण, वैक्रियोपांग, आहारकोपाग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थकरनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास. यह बत्तीस कर्म प्रकृतिका व्यवछेद होनेसें छवीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अंतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह, इन चारके उदय व्यवछेद होनेसे बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है. अरु १३८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ क्षपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता हूआ जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसें क्षय करता है. सो कहते है. पूर्वोक्त आठमे गुणस्थानसें अनंतर क्षपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव भाग करता है, तिहां प्रथम भागमे सोलां कर्म प्रकृति क्षय करता है, सो यह है. १ नरकगति, २ नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम. ६ उद्योतनाम, ७ सूक्ष्म, ८ द्वीन्द्रिय जाति, ९ त्रीन्द्रिय जाति, १० चतुरिंद्रिय जाति. ११ एकेंद्रियजाति, १२ आतप नाम, १५ स्त्यानर्द्धि त्रिक, अर्थात् निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला. स्त्यानर्द्धि, यह त्रिक. १६ स्थावर नाम. यह सोलां कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानकके प्रथम भागमें क्षय करता है,

तथा अप्रत्याख्यानकी चौकडी, अरु प्रत्याख्यानकी चौकडी, यह आठ म
ध्यकी कषायकों दूसरे भागमें क्षय करता है, तीसरे भागमें नपुंसकवेद, अ
रु चौथे भागमें स्त्रीवेद क्षय करता है, तथा पांचमे भागमें हास्य, रति, अ
रति, भय, शोक, अरु जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका क्षय करता है. शेष चौथे
भागसें ले कर नवमे भाग तांइ चारों भागमें क्रमसें शुद्ध हूवा थका ध्यान
की अति निर्मलतासें क्रम करकें छठे भागमें पुरुषवेद, सातमे भागमें संज्व
लनका क्रोध, आठमे भागमें संज्वलन मान, नवमे भागमें संज्वलनकी मा
याकों क्षय करता है, तथा यह गुणस्थानमें वर्त्तता हुआ मुनि, हास्य,
रति, भय, जुगुप्सा. इन चारोंके व्यवछेद होनेसें बावीस प्रकृतिका बंध क
रता है. अरु हास्य षट्कके उदय व्यवछेद होनेसें छासठ प्रकृतिकों वेदता
है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके क्षय करणेसें पेंतीस प्रकृति
के व्यवछेद होनेसें एक सौ तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकके नवमे
गुणस्थानकका स्वरूप.

अथ क्षपकके दशमे गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. पूर्वोक्त नवमे गु
णस्थानकसें अनंतर क्षपकमुनि सूक्ष्मसंपरायनामक दशमे गुणस्थान
में चढता है. क्या करता हुआ चढता है? कि क्षणमात्रसें संज्वलनके ल
भ लोभकों सूक्ष्म करता हुआ चढता है, तथा सूक्ष्म संपराय गुणस्था
नस्थ जीव, पुरुषवेद तथा संज्वलन चतुष्कके बंध व्यवछेद होनेसें सतरां
प्रकृतिका बंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन संज्वलन कषायके उदय
व्यवछेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवछेद होनेसें एक
सौ दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकस्य दशमं गुणस्थानं ॥

अथ क्षपककों इग्यारहवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुण
स्थानसें क्षपक, सूक्ष्मलोभांशोंकों सूक्ष्मकृत लोभखंडोंकों क्षय करता हूआ
बारहमे क्षीणमोह गुणस्थानमें जाता है. इहां क्षपकश्रेणि समाप्त करता है.
उसका क्रम यह है, कि प्रथम अनंतानुबंधी चार क्षय करता है, फेर मिथ्या
त्व मोहनीय, फेर मिश्रमोहनीय, फेर सम्यक्त्व मोहनीय, फेर अप्रत्याख्यान
चार कषाय, तथा प्रत्याख्यान चार कषाय. एव आठ क्षय करता है. फेर
नपुंसकवेद, फेर हास्यषट्क, फेर पुरुष वेद, फेर संज्वलन क्रोध, फेर
संज्वलन मान, फेर संज्वलन माया, फेर सज्वलन लोभ क्षय करता है.

अथ तहां बारहमे गुणस्थानमें शुक्लध्यानके दूसरे अंशकों आश्रित करता है, यह बात कहते है. अथानंतर सो क्षपकक्षीणमोहरूप हो करकें क्षीणमोह गुणस्थानकके मार्गमें परिणतिमान् हो करकें, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करकें दूसरे शुक्लध्यानकों आश्रित होता है, कथंभूत क्षपक ? वीतरागः विशेष करकें "इतो (गतो) रागो यस्मात् स वीतराग." फेर कैसा है क्षपकमुनि ? महायति, यथाख्यातचारित्री. फेर कैसा है मुनि? कि शुद्धतर भाव करकें संयुक्त ऐसा क्षपक, दूसरे शुक्ल ध्यानको आश्रित होता है.

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते है, सो क्षपक क्षीणमोह गुणस्थानवर्त्ती, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करके ध्याता है ॥ यदाह ॥ शुक्लं त्रियोगभाजा, माद्यं स्यादपरमेकयोगवतां ॥ तनुयोगिनां तृतीयं, निर्योगानां चतुर्थं हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है ? कि " अपृथक्त्वं पृथक्त्व वर्जितं अविचारं विचार रहितं सवितर्कगुणान्वितं वितर्क मात्र गुण संयुक्त" दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है.

अथ अपृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अपृथक्त्वज्ञानकों धारण करता है,सो एकत्वपणा क्या है ? जो निजात्मद्रव्य एक केवल अपणा द्रव्य विशुद्ध परमात्मद्रव्य है,अथवा तिसही परमात्मद्रव्यका एक केवल पर्याय,अथवा एक केवल गुण,इस प्रकारसें एक द्रव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहां ध्यावे, सो एकत्व है.

अथ अविचारपणा कहते है. इस कालमें सद्ध्यानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जाननहारा है. सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्राम्नायविशेषसे है, परंतु शुक्ल ध्यानका अनुभवी इस कालमे कोइ नहीं ॥यदाहु॥ श्रीहेमचंद्र सूरिपादाः ॥ श्लोक ॥ अनवच्छित्त्याम्नायः, समागतोऽस्येति कीर्त्यतेऽस्माभिः ॥ दुष्करमप्याधुनिकैः, शुक्लध्यानं यथाशास्त्रं ॥ १ ॥ जिनसद्ध्यानकोविदोने शास्त्राम्नायसे शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है, तिनोनें अविचार विशेषण संयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कह्या है, सो क्या है? जो पूर्वोक्त स्वरूपोमें व्यंजन अर्थयोगोमें एतावता शब्दार्थ योग रूपोमे परावर्त्त विवर्जित शब्दसे शब्दांतर, इत्यादि क्रमसें रहित चिंतन श्रुतानुसारेंही करिये है, सो अविचार है.

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्ल किससेंति होता है? तहां कहे हैं, कि जावश्रुतके आलंबनसें होता सूक्ष्म अंतर्जल्परूप जावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है.

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी जाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्र करकें एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्या कह्या, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्त्तता हुआ ध्यानी समरसी जावकों धा करता है, सो यह समरसी जाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारण आत्मा जो अपृथक्त्व करकें परमात्मामें लीन करीयें, सोइ समरस जाव धारण करणां है, समरस किससेंति करे? कि आत्माके अनुजवसें क

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके ठेहडे क्या करता है? सो कहते हैं. पूर्वोक्त ध्यानकें योगसें औ दूसरे शुक्लध्यानकें योगसे प्लुष्यत कर्मे रकर दह्यमान है, कर्मरूप इंधनका समूह, ऐसा योगीइ अंतके प्रथम मय अर्थात् बारहवे गुणस्थानकके दूसरे चरम समयमें निद्रा अरु प्र ला, इन दो प्रकृतिका क्षय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गु स्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, केवलदर्शन. यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा चविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका क्षय करकें क्षीणमोहांश हो क केवल स्वरूप होता है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतु अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र, यशनाम. यह सोलां प्रकृतिका व्यवछेद होनेसे एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलन लोज, २ ऋषजनाराचसंघयण, इनकें उदय विछेद होनेसें सत्तावन प्रक वेदता है. तथा संज्वलनके लोजकी सत्ता दूर होनेसें एक सो एक प्रक की सत्ता है. इति क्षपकस्य द्वादश गुणस्थानकस्वरूपं ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं. चौथे गुणस्थानसें कर क्षय होती हुइ त्रेसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण जइ है, सो कह हैं एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें क्षय हुइ, एक पांचमें, आठ तमें, उत्तीस नवमे, सत्तरे बारहमें. यह सर्व त्रेसठ गइ. तथा शेष पचा

प्रकृति पुराणे वस्त्रकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तेरहवे सयो
गी केवली गुणस्थानमें रहती है.

अथ सयोगी केवलीके जो भाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारि
त्र होता है, सो कहते हैं. तिस केवल आत्मा भगवतको इहां सयो
गी गुणस्थानमें भाव तो क्षायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, औ स
म्यक्त्व परम प्रकृष्ट क्षायिक होता है, तथा चारित्र क्षायिक यथाख्या
तनामक होता है, इसका तात्पर्य्य यह है, कि उपशम अरु क्षायोपश
मिक यह दो भाव नही होते हैं.

अथ तिस केवलात्मकों केवल कहते है. तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश
करकें चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् (हस्त तलेमें ग्रहण करा आम
लेकी तरें) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करके भासन करते है. इहां प्रकाशमान
सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसेंति
कही है,कारण कि निश्चय करकें तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बडा अंतर है.

अथ जिसने तीर्थंकरनाम उपार्ज्या है, तिसका विशेष कहते हैं. विशे
ष करकें अर्हत् भक्ति प्रमुख वीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन कर
ता है, सो तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करता है. सो वीश स्थानक यह है॥
गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवयण, गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु ॥ वच्छलयाइ
एसु, अभिरकणं णो वउग्गेय ॥ १ ॥ दंसण विणए आव, स्सए सीलव्वए
निरइयारे ॥ खणलवत्तियाए, वेयावच्चे समाहीयं ॥ २ ॥ अपुव्व नाण ग्गह
ण, सुयभत्ती पवयण पभावणया ॥ एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जी
वो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगें लिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्था
नमें तीर्थंकर कर्मोदयसें वो केवली (त्रिजगत्पति) त्रिभुवनपति जिनेंद्र
होता है जिन, सामान्य केवलीयोंकों कहते है, तिनमें जो इंद्रकी तरें हो
वे, सो जिनेंद्र जानना.

अथ तीर्थंकरकी महिमा कहते है, सो भगवान् तीर्थंकर पूर्वोक्त च
उत्तीस अतिशय करकें संयुक्त होता है, औ सर्व देवता जिसको नमस्का
र करते है, तथा सकल देव मानवोनें जिसकों नमस्कार करा है, सो स
र्वोत्तम, औ सकल शासनोमें प्रधान, ऐसा तीर्थप्रवर्त्तन प्रगट करता हु
आ उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है.

अथ सो तीर्थंकर नामकर्म जैसें वेदनेमें आता है, तैसें कहते तिस तीर्थंकरनें सो तीर्थंकर नामकर्म जोगीयें है, क्या करनेसें? सो कहे है. पृथ्वीमंमलमे भव्यजीवोंके प्रतिबोधनेसें, देशविरति औ सर्व करनेसें, तीर्थंकर नामकर्म वेदनेमें आता है. जे कर तीर्थंकर नाम का उदय न होवे, तब कृतकृत्य होनेसें भगवान्‌कों उपदेश देनेका प्रयोजन है? इस वास्ते जे वादी भगवान्‌कों निःशरीरी नैरुपाधिक रहित सर्वव्यापी मानते हैं, सो देहादिकके अभावसें धर्मका उपदेश ही हो सक्ता है, जे कर उपाधि रहित सर्वव्यापी परमेश्वरभी ... होवे, तब तो अब इस कालमें अस्मदादिकोंकों क्यों नहीं उपदेश है? क्योंकि पूर्वकालमें अग्नि आदिक ऋषियोंकों उसने प्रेरा, तथा ब्र दि द्वारा चार वेदका उपदेश करा, तथा मूसा, ईसा द्वारा जगत्‌कों उ देश करा, तो फेर अब क्यों नहीं उपदेश करता? परोपकारीके क्या है? जे कर कहोगेकि इस कालमें सर्व जीव उपदेश मानने योग्य नहीं इस वास्ते उपदेश नहीं देता, तब तो पूर्वकालमेंभी सर्व जीवोने परमेश्व का उपदेश नही माना है. प्रथम तो कालासुर प्रमुख अनेक जीवोंने ही माना, दूसरा अजाजीलने नहीं माना, औ यहूदानें, तथा कितने इसराइलियोने नही माना, इस वास्ते पूर्वकालमेंभी परमेश्वरकों उपदे देनां योग्य नही था. जे कर कहोगेकि उसकी ओही जाने क्यों कर उ देश दीया अरु अब किस वास्ते उपदेश नहीं देता. तो फेर तुम क्यों क कहते हो कि परमेश्वरके मुख नही? इस वास्ते यही सत्य है, कि तीर्थंकर नामकर्मके वेदने वास्ते भगवान् उपदेश करते है, अरु जि वखत उपदेश करते है उस वखत देहधारी होते है. इत्यलं प्रसंगेन॥ वली केवलज्ञानवान् पृथ्वीमंमलमें उत्कृष्ट आठ वर्ष ऊणा पूर्वकोटि माण विचरता है, औ देवताओंके करे हूए कंचनकमलोंके उपरि पग ख कर चलता है, अरु आठ प्रत्याहार करके संयुक्त अनेक सुरासुर कों संसेवित विचरता है. यह स्थिति सामान्य प्रकारे केवलीयोंकी कही है अरु जिनेंद्र तो मध्यस्थिति वाला होता है.

अथ केवलि समुद्घातकरण कहते है. "असौ" वो केवली जब वे नीय कर्मसेती आयु कर्मकी स्थिति थोडी जानता है, तब तिसके तु

रने वास्ते केवली, समुद्घात करता है, तिस समुद्घातका स्वरूप कहते है, तहां प्रथम समुद्घात पदका अर्थ कहते है. यथास्वभावस्थित आत्मप्रदेशोंकों वेदनादि सात कारणों करकें समंतात् उद्घातनं स्वभावसें अन्यभावपणे परिणमन करनां, तिसका नाम समुद्घात है. सो समुद्घात सात प्रकारें है. १ वेदनास०, २ कषायस०, ३ मरणस०, ४ वैक्रियस०, ५ तेजःस०, ६ आहारकस०, ७ केवलिस०, इन सातों समुद्घातोंमेसूं केवलिसमुद्घात इहां ग्रहण करणी. तिस केवलिसमुद्घातके अर्थ केवली भगवान् आयु अरु वेदनी कर्मके सम करने वास्ते प्रथम समयमें आत्मप्रदेशों करकें ऊर्ध्वलोकांत लगि दंडरूप (दंडाकार) लावे आत्मप्रदेश करता है. दूसरे समयमें पूर्व, पश्चिम, दिशामें आत्मप्रदेशों करकें कपाटाकार करता है, तीसरे समयमें उत्तर, दक्षिण, आत्मप्रदेशोंका मंथानाकार करता है, चौथे समयमें अंतर पूर्ण करनेसें सर्व लोकव्यापी होता है. इस तरें केवली, चौथे समय विश्वव्यापी होता है.

अथ इहांसें निवृत्ति कहते हैं. इस प्रकार करके केवली आत्मप्रदेशोंकों विस्तार करनेके प्रयोगसें कर्मलेशकों सम करता है. सम करकें पीछें तिस समुद्घातसें उलटा निवर्त्तता है, सो ऐसें है, कि केवली चार समयमे जगत् पूर्ण करकें पांचमे समय पूर्णसें निवर्त्तता है. छठे समयमे मथानपणा दूर करता है, सातमे समयमें कपाट दूर करता है, आठमे समयमें दंडरूप उपसंहार करता हूआ स्वभावस्थ होता है ॥ यदाहुर्वाचकमुख्या. ॥ दंडं प्रथमे समये, कपाटमथ चोत्तरे तथा समये ॥ मंथानमथ तृतीये, लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥ संहरति पंचमे त्व, तराणि मथानमथ पुनः षष्ठे ॥ सप्तमके तु कपाटं, संहरति तथाऽष्टमे दंडं॥२॥

अथ केवली समुद्घात करता हूआ जैसा योगवान्, अरु अनाहारक होता है, सो कहते है. केवली समुद्घात करता हूआ प्रथम अरु अंत समयमें औदारिककाय योगवाला होता है, दूसरे, अरु छठे समयमें मिश्रौदारिककाय योगी होता है, मिश्रपणा इहां कार्मण करकें औदारिकका है, तथा तीसरे, चौथे, अरु पांचमे समयोंमें केवल कार्मणकाय योगवाला होता है, जिन समयोंमें केवली केवल कार्मण काययोग वाला होता है, तिनही समयोंमें अनाहारक होता है.

अथ जौनसा केवली समुद्घात करता है, अरु जौनसा नहीं क
है, सो कहते है. जिसकी छै महिनेसें अधिक आयु शेष है, जे
उसकों केवल ज्ञान होवे,वोतो निश्चय समुद्घात करे, अरु जिसकी छै
हीनेके भीतर आयु होवे, उसकों जो केवल ज्ञान होवे, तो भजना है.
केवल समुद्घात करेभी, अरु नहींभी करे॥ यदाह ॥ छम्मासाक सेसा,
प्पन्नं जेसिं केवलं नाणं॥ ते नियमा समुग्घाइय,सेसा समुग्घाय भइयव्व

अथ समुद्घातसें निवृत्त हो करकें जो कुछ करता है, सो कहते
वो मन, वचन, अरु काययोगवान् केवली, केवल समुद्घातसें निवृ
कर योग निरोधनके वास्ते शुक्लध्यानका तीसरा पाद ध्याता है. सोइ त
रा शुक्लध्यान कहते हैं. तिस अवसरमें तिस केवलीकों तीसरा सूक्ष्म
निवृत्तिक नाम शुक्लध्यान होता है. सो कंपनरूप जो क्रिया है, तिस
सूक्ष्म करता है.

अथ मन, वचन, कायाके योगोंकों जैसें सूक्ष्म करता है, सो क
हैं. सो केवली, सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिनामक तीसरा शुक्लध्यान ध्याता, अ
त्मवीर्यकी शक्ति करकें बादरकाययोग स्वभावमें स्थित करकें बादर व
योग, बादर मनोयोग, यह युगलकों सूक्ष्म करता है,तिस पीछे बादरक
योगकों सूक्ष्म करता है, फेर सूक्ष्मकाययोगमें क्षण मात्र रह करकें त
न सूक्ष्म वचन, मनोयोग, यह युगलका अपचय करता है. तिस पीछे
क्ष्म काययोगमें क्षण मात्र रह कर प्रगट सो केवली निजात्मानुभव सू
क्रिया चिद्रूपकों स्वयमेवही अपणे स्वरूपका अनुभव करता है,(जानता है

अथ जो सूक्ष्मक्रियावाले शरीरकी स्थिति है, सोइ केवलीयोंका ध्य
होता है, ऐसी बात कहते हैं. जिस प्रकार करकें छद्मस्थ योगीयोंके
नके स्थिरताकों ध्यान कहते है, तैसेंही शरीरकी निश्चलताकों के
लीयोंके ध्यान होता है. अथ शैलेशीकरणका आरंभ करने वाला सू
काययोगी जो कुछ करता है, सो कहते हैं. केवलीके ह्रस्वाक्षर पांचके
च्चारण करण मात्र काल जितना आयु शेष रहता है, तब शैलवत् नि
लकायकों चौथा ध्यानाऽपरिपातरूप शैलेशीकरण होता है. तिस पीछे
केवली शैलेशीकरणारंभी सूक्ष्मरूप काय योगमें रहता हुआ शीघ्र
अयोगी गुणस्थानमें जाणेकी इच्छा करता है.

अथ सो भगवान केवली सयोगी गुणस्थानके अंत्य समयमें औदारिकद्विक, अस्थिरद्विक, विहायोगतिद्विक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान षट्क, अगुरुलघुचतुष्क, वर्णादिचतुष्क, निर्माण, तैजस, कार्मण, प्रथम संहनन, स्वरद्विक, एकतर वेदनीय. यह तीस प्रकृतिका उदय विछेद होता है. तब तो इहां अंगोपांगके उदय व्यवछेद होनेसें अंत्यांग संस्थानावगाहनासें तीसरे भाग ऊणी अवगाहना करता है, किस कारणसें ? अपने प्रदेशोंकों घनरूप करनेसें चरम शरीरके अंगोपांगमें जो नासिकादि छिद्र हैं, तिनकों पूर्ण करता है, तब स्वात्मप्रदेशोंका घनरूप हो जाता है, तिस वास्ते स्वप्रदेशोंका घनरूप होनेसें तीसरा भाग ऊना होता है. सयोगी गुणस्थानस्थ जीव, एकविध बंधक उपान्त्य समय तांइ अरु ज्ञानांतराय, दर्शन चतुष्कोदय व्यवछेद होनेसें बैंतालीस प्रकृति वेदता है, तथा १ निद्रा, २ प्रचला, १२ ज्ञानांतराय दशक, १६ दर्शनचतुष्क रूप सोलां प्रकृतियोंकी सत्ता व्यवछेद होनेसें पंचासी प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति सयोगी गुणस्थानं ॥ १३ ॥

अथ अयोगी गुणस्थानककी स्थिति कहते है. तेरहवे गुणस्थानके अनंतर चौदहवे अयोगी गुणस्थानमें रहते हूए जिनेंद्रकी लघु पंचाक्षर उच्चारणमात्र "अ इ उ ऋ लृ" ये पांच वर्ण उच्चारण करतां जितना काल लगता है, तितनी स्थिति है. यह अयोगी गुणस्थानमें ध्यानका संभव कहते है. इहां अनिवृत्ति नामक चौथा ध्यान होता है, इस चौथे ध्यानका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें सूक्ष्मकाययोग रूप क्रियाभी "समुछिन्ना" सर्वथा निवृत्त हूइ है, सो समुछिन्नक्रियं नाम "चतुर्थ" चौथा ध्यान कहते है, कैसा वो ध्यान है ? कि मुक्ति महिलका द्वार (दरवाजे) समान है.

अथ शिष्यके करे दो प्रश्न कहते है, शिष्य पूछता है कि हे प्रभु ! देहके होतें हूआं अयोगी क्यों कर हो सक्ता है ? यह प्रथम प्रश्न, तथा जेकर सर्वथा काय योगका अभाव हो गया है, तब देहके अभावसें ध्यान क्यों कर घटेगा ? यह दूसरा प्रश्न है.

अथ आचार्य इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर देते है, आचार्य कहता है, कि भो शिष्य ! अत्र अयोगी गुणस्थानमे सूक्ष्म काययोगके होतेंभी अयोगी कहते है, किस वास्ते ? कि १ काययोगके अति सूक्ष्म होनेसे सूक्ष्मक्रिया रूप होनेसें अरु वो काययोग शीघ्रही क्षय होनेवाला है, तथा कायके

कार्य करणेमें असमर्थ होनेसें कायके होतेभी अयोगी है, तथा शरीर
य होनेसें ध्यानभी है, इस वास्ते विरोध नही. किसके? कि अयोगीगु
स्थानवर्त्ती भगवत् परमेष्ठिके. कैसे परमेष्ठी भगवत्के? कि निज शुद्ध
चिद्रूप तन्मयपणे उत्पन्न, निर्भर, परमानंद विराजमानके. विरोध न

अथ ध्यानका निश्चय व्यवहारपणा कहते है. तत्त्वसें निश्चय न
मतसें आत्माही ध्याता, आत्माही करणरूप है, आत्माही कर्मरूप
भकों ध्याता है, तिससेंती अन्य जो कुछ उपचाररूप अष्टांग योग
त्तिलक्षण, सो सर्वही व्यवहार नयके मतसें जानना.

अथ अयोगी गुणस्थान वर्त्तीका उपांत्य समयका कृत्य कहते है.
वल चिद्रूपमय आत्मस्वरूपका धारक योगी, अयोगी, गुणस्थानवर्त
स्फुट प्रगट उपांत्य समयमें शीघ्र युगपत् समकाल बहत्तरि कर्मप्र
क्षय करता है, सो यह है, कि देह पांच, अर्थात् शरीर पांच, बंधन प
संघात पांच, अंगोपांग तीन, संस्थान छे, वर्णपंचक, रसपंचक, संह
षट्क, अथिर षट्क, स्पर्शाष्टक, गंध दो, नीचगोत्र, अगुरुलघुचतु
देवगति, देवानुपूर्वी, खगतिद्विक, प्रत्येकत्रिक, सुस्वर, अपर्याप्तन
निर्माणनाम, दोनोमेंसें कोइभी एक वेदनी. यह सर्व बहत्तर कर्म प्रक
मुक्तिपुरीके द्वारमें अर्गलभूत है, सो उपांत्यसमय द्विचरम सम
क्षय करता है.

अथ अयोगी अंत समयमें जितनी प्रकृति क्षय करकें जो कुछ क
है, सो कहते है. सो अयोगी अंत समयमें एकतर वेदनी, आदेयत्व
र्याप्तत्व, त्रसत्व, बादरत्व, मनुष्यायु, यशनाम, मनुष्यगति, मनुष्यानु
सौभाग्य, उच्चगोत्र, पंचेंद्रियत्व. तीर्थंकरनाम. यह तेरां प्रकृति क्षय क
उसी समयमें सिद्धपर्यायकों प्राप्त होता है. सो सिद्ध परमेष्ठी, सना
भगवान् शाश्वत लोकांतके पर्यंतकों जाता है. तथा अयोगी गुणस्
स्थ जीव अबंधक है, तथा एकतर वेदनी, आदेय, यश, सुभग, त्र
क, पंचेंद्रियत्व, मनुष्यगति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, तीर्थंकरनाम, यह
ह प्रकृति वेदता है. अंतके दो समयसें पहिलां पंचासीकी सत्ता र
है, उपान्त्य समयमें तेरह प्रकृतिकी सत्ता रहती है, अरु अंत सम
सत्ता रहित होता है॥ इति अयोगी चतुर्दश गुणस्थान स्वरूपं ॥१४॥

आशंकाः–" नि.कर्म " (कर्म रहित) आत्मा, तिस समयमें लोकांत में कैसे जाता है ? इत्याशंक्याह.

समाधानः–सिद्ध, कर्म रहितकी ऊर्ध्वगति होती है, "कस्मात् " किस हेतुसें होती है ? तत्राह ॥ पूर्व प्रयोगसें अचिंत्य आत्मवीर्य करके उपाय दो समयमें पंचासी कर्म प्रकृतिके क्षय करने वास्ते पूर्वे जो व्यापार आरंभ कीया था, तिससेंतो ऊर्ध्वगति होती है, यह प्रथम हेतु है. तथा कर्मकी संगति रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह दूसरा हेतु है. तथा गाढतर बंधनों करकें रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह तीसरा हेतु है. तथा कर्म रहित जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, यह चौथा हेतु है. यह चार हेतु, चार दृष्टांत करके सहित कहते हैं १ जैसें कुंभकारका चक्र पूर्व प्रयोगसे फिरता है, तैसें आत्माकी पूर्वप्रयोगसें ऊर्ध्वगति होती है, २ तथा जैसे माटीके लेपसें रहित होने करके तूंबेकी जलमें ऊर्ध्वगति होती है, तैसेंही अष्टकर्मरूप लेपकी संगतिसे रहित धर्मास्तिकाय रूप जल करके आत्माकी ऊर्ध्वगति होती है, ३ तथा जैसे एरंडफल बीजादि बंधनोंसें छुटा हूआ ऊर्ध्वगतिगामी होता है, तैसेंही कर्मबंधके विछेद होनेसे सिद्धकीभी ऊर्ध्वगति होती है ४ तथा जैसें अग्निका ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव है. तैसेंही आत्माकाभी ऊर्ध्वगमन स्वभाव है.

अथ अधो अरु तिर्यग्गति कर्म रहितकों नही होती है, यह बात कहते है सिद्धकी आत्मा, कर्म गौरवके अभावसे नीचेकों नही जाती, तथा प्रेरक कर्मके अभावसें आत्मा, तिर्यग्भी नही जाती है, तथा कर्म रहित सिद्ध, लोकके उपरभी धर्मास्तिकायके न होनेसे नही जाता, क्योंकि ? लोकमेंभी जीव, पुद्गलके चलनेमे धर्मास्तिकाय गतिका हेतु है. मत्स्यादिकोंको जैसे जल है. सो धर्मास्तिकाय अलोकमे नही इस वास्ते अलोकमे सिद्ध नही जाते.

॥ अथ सिद्धोंकी स्थिति ॥ यथा सिद्ध शिलासें उपरि लोकांतमें सिद्ध रहते है, सो कहते है. ईषत् प्राग्भारानामा सिद्धशिला चौद रज्जुलोकके मस्तकके उपरि व्यवस्थित है, उसको सिद्धोके निकट होने करके सिद्ध शिला कहते है, परंतु सिद्ध कुछ उस शिलाके उपर बैठे हूए नहीं हैं, सिद्ध तो उस शिलासे उचे लोकांतमे विराजमान है. वो शिला कैसी है ? कि मनोज्ञा मनोहारिणी है, फेर वो शिला कैसी है ? सुरभि कर्पूरसेंभी अ

धिक सुगंधिवाली है, अरु कोमल है, सूक्ष्मम है अवयव जिसके, वो शिला कैसी है? पुण्या, पवित्र, परमनासुरा, प्रकृष्ट तेजवाली मनुष्यक्षेत्र प्रमाण लंबी चौडी है. श्वेत छत्रके आकार है, उत्तान छत्राकार है, उसका बडा शुन रूप है, वो ईषत् प्राग्जारा नामा पृथ्वी सर्वार्थसिद्ध विमानसें बारा योजन उपरि है, अरु वो पृथ्वी, मध्य नागमें आठ योजनकी मोटी है, तथा प्रांतमें घटती घटती मक्षीके पांखसेंनी पतली है तिस शिलाके उपरि एक योजन लोकांत है, उस योजनका जो चौथा कोस है, उस कोसके छठे नागमें सिद्धोंकी अवगाहना है, सोइ दो हजार धनुष प्रमाण कोशके छठे नागमें तीन सौ तेत्तीस धनुष अरु बत्तीस अंगुल होता है, उतनी सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना है

अथ सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहनाका आकार लिखते है. जैसें कुठाली (मूषा) तिसमें मोम नरकें गालियें, तिसके गलनेंसे जो आकाशका आकार है, तैसा सिद्धोंका आकार है.

अथ सिद्धोंके ज्ञान दर्शनका विषय लिखते हैं त्रैलोक्योदरवर्ती चउदह रज्ज्वात्मक लोकमे जो गुणपर्याय करके संयुक्त वस्तु है, तिन जीव अजीव पदार्थोंकों सिद्धमुक्त जानते हैं, सामान्य रूप करके देखते हैं, विशेष रूप करकें जानते हैं, क्योंकि वस्तु जो है,सो सर्व सामान्य विशेषात्मक है

अथ सिद्धोंके आठ गुण कहते है. १ जिस हेतुसें सिद्धोंके ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसे केवलज्ञान प्रगट हुआ है. तथा २ सिद्धोंकों दर्शनावरण कर्मके क्षय होनेसे दर्शन अनंता हूआ है, तथा ३ सिद्धोंको शुद्ध, सम्यक्त्व चारित्र क्षायिकरूप हूये हैं, किस हेतुसें हूये है? कि दर्शन मोहनीय औ चारित्र मोहनीयके क्षय होनेसे हूये हैं, तथा ४ सिद्धोंकों अनंत अक्षयसुख अरु ५ अनंत वीर्य शक्ति हूये है किस हेतुसें हूये हैं? कि वेदनी कर्मक्षय होनेसे अनंत सुख हूये है, अंतराय कर्मके क्षय होनेसें अनंत वीर्य प्रगट हुआ है. तथा ६ सिद्धोंकी अक्षयगति हुइ है, किस हेतुसें? कि आयु-कर्मके क्षय होनेसें हुइ है,तथा ७ नामकर्मके क्षय होनेसे अमूर्त्तपणा सिद्धको प्रगट नया है, तथा ८ गोत्रकर्मके क्षय होनेसे सिद्धोंकी अनंतावगाहना है.

अथ सिद्धोंका सुख कहते है, जो सुख, चक्रवर्तीकी पदवीका, अरु

...त्व, इंद्रादि पदवीका है, तिनसेंजी सिद्धोंका सुख अनंत गुणा है, कैसा ...है सुख है? कि क्लेश रहित है "अविद्यास्मिता" राग, द्वेष, अनिनिवे..., ए क्लेश है, सो जिनमें नहीं है, फेर कैसा है सुख? "अव्ययं न व्येति ...स्वनावसेंती इति अव्ययं."

...अथ तिन सिद्ध नगवंतोंने जो पाया है, तिसका सार कहते है सिद्ध ...गवंतोंने परम पद पाया है, सो कैसा परम पद पाया है? जो आराधकों ...कों आराध्य है, सो पद पाया है, तथा जो पद, साधकोंने सम्यग् दर्शनज्ञान ...चारित्रादि करके साधीये है, तथा जो पद, ध्यायकोंकों ध्येय है, तथा जो ...पद, सदाही नानाविध ध्यानोपाय करकें ध्याइये है, तथा जो पद, अनव्य जीवोंकों सदा डुर्लन्न है, अरु कितनेक नव्य जीवोंकोंनी डुर्लन्न है, अरु डु...नव्योंकों कष्टसे प्राप्त होता है, ऐसा डुर्लन्न पद, तिन सिद्ध नगवतोंने पायाहै. ...सो पद कैसा है? कि तत्परम पद है, चिदानंदमय चिद्रूप परमानंद रूप है.

अथ मुक्तिका स्वरूप कहते है. कोइक वादी अत्यंताऽन्नावरूप मोक्ष मानते हैं, सो बौद्धोंकी मोक्ष है. अरु कोइ वादी जडमयी, ज्ञान अन्नावमयी मोक्ष मानते है, सो नैयायिक वैशेषिक मत वाले हैं. अरु कोइक वादी मोक्ष हो कर फेर ससारमे अवतार लेनां, फेर मोक्षरूप हो जानां, ऐसी मोक्ष मानते ह, सो आजीवका मतवाले है? अरु कोइ तो क्लिष्ट कर्म करके विषय सुखमय मोक्ष मानते हैं. वे कहते है, कि मोक्षमें नोग करने वास्ते वहुत अप्सरा मिलती हैं, औ खाने पीनेको वहुत वस्तु मिलती है, तथा पान करनेकों वहुत अच्छी मदिरा मिलती है, औ रहनेको सुंदर वाग मिलता है, इत्यादि. तथा कोइक वादी कहते है कि मोक्ष, जीवकी कदापि नही होती है, यह जैमिनी मुनिका मत है. तथा कोइ खरड ज्ञानी ऐसें कहते है कि जो वेदोक्त अनुष्ठान करता है, वो सर्वथा उपाधि रहित तो नही होता. परतु शुन्न पुण्यफलसें सुंदर देह पा कर ईश्वर के साथ मिल कर कितनेक कल्पों लगि सुख नोग करता है. जहा इच्छा होवे, तहां चड कर चला जाता है फेर संसारमें जन्म लेता है, फेर पूर्ववत् सुखनोग करता है, इसी तरें अनादि अनंतकाल लगि करता रहेगा, परंतु एक जगे स्थित न रहेगा, ऐसी मोक्ष कहता है. अरु सर्वज्ञ अर्हंत परमेश्वरनें तो सत्रूप, ज्ञानदर्शनरूप, तथा असारनूत जो यह संसार

है, तिस्सें सारनूत, निस्सीम आत्यंतिक सुखरूप, अनंत, अतींद्रियानंदम
नवस्थान,अप्रतिपाति स्वस्वरूपावस्थानरूप, मोक्ष कही है ॥ यह बृहद
श्रीवज्रसेनसूरिके शिष्य श्रीहेमतिलकसूरिपट्टप्रतिष्ठित श्रीरत्नशेखरसू
चौदह गुणस्थानकका स्वरूप लिखा है, तिसके अनुसारे नाषामय लि
गुणस्थानकस्वरूप, मैने लिखा है.

प्रश्नः—हे जैन! तुमने सर्ववादीयोकी कही हुइ मोक्षकों तो अनुपादे
मफी, अरु अर्हंतकी कही हुइ मोक्ष, उपादेय समफी, इनमें क्या हेतु है

उत्तरः—हे नव्य! इन सर्व वादीयोंकी मोक्ष, पीछें षट् दर्शनके निरूपण
लिख आये है, सो जान लेनी. क्यों कि इन वादीयोंकी कही मोक्ष
नही, कारण कि जब अत्यंताऽनावरूप मोक्ष होवे, तब तो आत्माही
अनाव हो गया, तो फेर मोक्षफल किसको होवेगा? ऐसा कोन है
आत्माके अत्यंतानाव होनेमें यत्न करे? तथा जो ज्ञानानावकों मो
मानते हैं, सोनी ठीक नही क्यों कि जब ज्ञानही न रहा,तब तो पाष
नी मोक्षरूप हो गया, तो ऐसा कौन प्रेक्षावान् है, जो अपणी आ
को जड पाषाण तुल्य बनाना चाहे? तथा जो सर्व व्यापी आत्माकों मो
मानते है, अर्थात् जब आत्माकी मोक्ष होती है, तब आत्मा सर्व व्या
मोक्षरूप होती है, यह नी कहना प्रमाणानभिज्ञ पुरुषोंका है, क्यों
आत्मा किसी प्रमाणसेंनी सर्वलोकव्यापी सिद्ध नही हो सकी है,
की विशेष चर्चा देखनी होवे, तदा स्याद्वादरत्नाकरावतारिका देख ले
तथा जो मोक्ष हो कर फेर संसारमें जन्म लेना, फेर मोक्ष होना, यह
मोक्षनी काहेकी? यह तो नांमोका साग हूआ, इस वास्ते यहनी ठी
नही. अरु जो मोक्षमे स्त्रीयोके नोग मानते है, सो विषयके लोलुपी
तथा जो खरडज्ञानीने मोक्ष कही है, सो अप्रामाणिक है.किसी प्रमाण
सिद्ध नही है. इस वास्ते जो अर्हंत सर्वज्ञने मोक्ष कही है, सो निर
है. इति संक्षेपसें ज्ञानस्वरूप कहा ॥ इति श्रीतपगच्छीये मुनिश्री द ग
मणिविजय तच्छिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम आन
विजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे धर्मतत्त्वनिरूपणाधिकारे चतुर्दश गुणस्थ
ज्ञाननिर्णयनामा षष्ट परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तम परिछेद प्रारंभः ॥

यह परिछेदमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप लिखते है. इन सम्यग् दर्शनका स्वरूप कछुक उपर लिखनी आये है, तोभी भव्य जीवोंके जानने वास्ते कछुक सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं यह सम्यक्त्वके दो भेद है. एक व्यवहारसम्यक्त्व, अरु दूसरा निश्चयसम्यक्त्व, जो यथार्थतत्त्वरूप विज्ञानपूर्वक रुचि है, तिसका नाम सम्यक्त्व कहते है. सो सम्यक्त्व, तीन तत्त्वकी यथार्थ रुचि होनेसें होता है, सो तीन तत्त्व यह है, कि एक देवतत्त्व, दूसरा गुरुतत्त्व, तीसरा धर्मतत्त्व. इनकेविषे श्रद्धा (प्रतीति) जो पुरुष करे, सो सम्यक्त्ववान् होता है तिस श्रद्धाके दो भेद है. एक व्यवहार, दूसरा निश्चय. इन दोनों श्रद्धायोंमें प्रथम व्यवहार श्रद्धाका स्वरूप लिखते हैं.

व्यवहारश्रद्धामें देव तो श्री अरिहंत जिसका स्वरूप, प्रथम परिछेदमें लिख आये है, सो सर्व इहां जान लेनां तथा तिस अरिहंतके चार निक्षेप अर्थात् स्वरूप है, सो कहते है. १ नामनिक्षेप, २ स्थापनानिक्षेप, ३ द्रव्यनिक्षेप, ४ भावनिक्षेप इन चारोंका स्वरूप विस्तार पूर्वक देखनां होवे. तदा विशेषावश्यक देख लेना तिनमें प्रथम, नाम अर्हत, सो "नमो अरिहंताणं" असा कहनां, इस पदका जाप करके अनेक जीव संसार समुद्रको तर गये हैं तथा दूसरा स्थापनानिक्षेप, सो अरिहंतकी प्रतिमा समस्त दोषके चिन्होंसें रहित, सहज, सुभग, समचतुरस्रसंस्थानवाली, पद्मासन, तथा कायोत्सर्गमुद्रारूप जो जिनबिंब, तिसकों देख कर, तिसकी सेवा, पूजा करके अनंत जीव मोक्षकों प्राप्त हूये हैं.

प्रश्न —अरिहंतकी प्रतिमाकों पूजणी, तथा उसकों नमस्कार करणी, औ स्थापना, निक्षेप, मान कर मुक्तिकी दाता समझणी, यह नि.केवल मूर्खताइके चिन्ह है, क्यो कि प्रतिमा जडरूप क्या दे सक्ती है?

उत्तर.—हे भव्य ? तूं किसी शास्त्रको परमेश्वरका रचा हूआ मानता है, या नहीं ? जे कर तू शास्त्रकों परमेश्वरका वचन मानता है, अरु उस शास्त्रको सच्चा संसार समुद्रसें पार उतारने वाला मानता है, तब जिनप्रतिमाके माननेमे क्यो लज्जा करता है ? क्योंकि जैसा शास्त्र जडरूप है, उसमे स्याही अरु कागज रूप वर्जके और कुछभी नहीं है, तैसी जि

नप्रतिमानी है, जे कर कहोगे कि कागजों उपर स्याहीके अक्षर मं
नसंयुक्त लिखे जाते हैं, उनके वांचनेंसें परमेश्वरका कहनां मालुम
जाता है, तब इसी तरे परमेश्वरकी मूर्त्ति देखनेसेंनी परमेश्व
स्वरूप मालुम होता है.

प्रश्न—प्रतिमाके देखनेंसें अर्हंत स्वरूप तो स्मरण होता है, प
प्रतिमाकी नक्ति करनेसें क्या लान है?

उत्तर—शास्त्रके श्रवण करनेसें परमेश्वरके वचन तो मालुम हो गये,
नी नक्त जन जैसें शास्त्रकों उच्चस्थानमें रखते हैं, कोइ शिर ऊपर ले
फिरते हैं, कितनेक गलेमें लटका रखते है, औ कितनेक मंजी उपर, त्रि
चौकी आदि उपर शास्त्रोंकों सुंदर सुंदर रुमालोमें लपेटके रखते हैं,
नमस्कारादि करते हैं, ऐसेंही जिनप्रतिमाकी नक्ति, पूजानी लान है

प्रश्न.—जैसें पत्थरकी गायसें दूधकी गरज पूरी नहीं होती है, ऐसें
तिमासेंनी कोइ गरज पूरी नहीं होती, तो फेर प्रतिमाकों क
कों माननां चाहियें?

उत्तर—जैसें कोइ पुरुष मुखसे गौ, गौ, सच्ची गौ कहता है, उस क
सें उसका बरतन क्यां दूधसे नर जाता है? अर्थात् नहीं नरता है.
परमेश्वरके नाम लेनें और जाप करनेसेंनी कुछ नहीं मिलता. इस वा
परमेश्वरका नामनी न लेनां चाहियें.

प्रश्न.—परमेश्वरका नाम लेनेसे तो हमारा अंतःकरण शुद्ध होता
उत्तर—ऐसेंही श्रीजिनप्रतिमाके देखनेसेंनी परमेश्वरके स्वरूपका
ध होता है, तातें अंतःकरणकी शुद्धि इहांनी तुल्यही है

प्रश्न—परमेश्वरके नाम लेनेसें पुण्य है, तो फेर प्रतिमा काहेकों पूज

उत्तर—नामसें ऐसे शुद्धपरिणाम नहीं होते, जैसे स्थापना देख
होते है. क्यों कि? जैसें किसी सुंदर यौवनवंती स्त्रीका नाम लेनेसें राग
गता है, अरु जब उस सुंदर यौवनवती स्त्रीकी मूर्त्ति प्रगट सर्वाकार
ली सन्मुख देखीयें, तब अधिकतर विषयराग उत्पन्न होता है, इसी
स्ते श्रीदशवैकालिकसूत्रमें लिखा है "चित्तनित्ती न निज्झए नारी वासु
यं" अर्थात् स्त्रीके चित्रामकी नींत देखेसेंनी विकार उत्पन्न होवेगा.
बात तो प्रगट (प्रसिद्ध) है, कि रागीकी मूर्त्ति देखनेसें राग उत्पन्न

र्थों है, तथा कोक शास्त्रोक्त स्त्री पुरुषके विषय सेवनके चोरासी चिन्ह दे खनेंसें तत्काल विकार उत्पन्न होता है, असेंही निर्विकार स्थापनारूप शांतमुद्रा, श्रीवीतरागकी देखनेसें निर्विकार शांतिभाव उत्पन्न होता है, औ र नाम लेनेंसें नही होता है

प्रश्नः—जैसें किसी स्त्रीके नर्त्तारका नाम देवदत्त है. सो जब देवदत्त मर गया, तब तिसकी स्त्रीने अपने भरतार देवदत्तकी मूर्त्ति बनाइ है, उस मूर्त्तिसें उस स्त्रीका सुहाग तथा संतानोत्पत्ति तथा काम इछा नहीं होती है, इसी तरें भगवान्की मूर्त्तिसेंभी कुछ लाभ नही है.

उत्तरः—देवदत्तकी स्त्री देवदत्तके मरे पीछें आसन बिछाय कर देवदत्त के नामकी माला फेरे, तब उस स्त्रीका सुहाग नही रहता, तथा भरतार का नाम लेनेंसें संतानोत्पत्तिभी नही होती? तथा कामेछाभी पूरी नही होती? इसी तरें जो कहेंगे तब तो भगवान्के नाम लेनेसेंभी कुछ सिद्धि नहीं होगी. इस दृष्टांतसें तो भगवान्का नामभी न लेनां चाहिये.

प्रश्नः—प्रतिमा तो कारीगर बनाता है, उस कारीगरकोंभी पूजना चाहियें?

उत्तरः—वेदादि शास्त्रकोंभी लिखारी लिखते है, उनकोभी पूजनां चाहियें? तथा साधुके मात पिताकोंभी साधुसें अधिक पूजनां चाहियें.

प्रश्नः—स्थापना कोइभी इस कालमे बुद्धिमान् नहीं मानता है.

उत्तरः—बुद्धिमान् तो सर्व मानते है, परंतु मूर्ख नहीं मानते है

प्रश्नः—कौनसें बुद्धिमान् स्थापना मानते है? तिनोंका नाम लेना चाहियें.

उत्तरः—प्रथम तो सांसारिक विद्यावाले सर्व बुद्धिमान्, भूगोल, खगोल, द्वीप, अर्थात् युरोपखंडमें विलायत प्रमुखका चित्र सर्व, स्थापनारूप मानते हैं, और बनाते है, तथा जो ककार आदि अक्षर है, वे सर्व पुरुषके (ईश्वरके) शब्दकी स्थापना करते है, तथा जैनीयोंके मतमे एक सौ आठ मणिये, मालामें रखते है, परंतु अधिक न्यून नही रखते है, इसका हेतु यह है, कि जैन, बारह गुण तो अरिहंत पदके मानते है, अरु आठ गुण, सिद्ध पदके मानते है, तथा छत्तीस गुण, आचार्यपदके मानते है, तथा पच्चीस गुण, उपाध्याय पदके मानते है, तथा सत्ताइस गुण, मुनि साधु पदके मानते है. यह सर्व मिल कर एक सौ आठ गुण होते है. इस वास्ते जैनीयोंके मतमें मालामें जो मणिये हैं, सो एकेक मणिया एकै

क गुणकी स्थापना है. यह मालाजी स्थापना है, इसी तरें दूसरे मतोंमेंजी जो माला तसबी है, सो सर्व किसीनकिसी वस्तुकी स्थापना है. नही तो एक सौ आठ तथा एक सौ एकका नियम न चाहिये तथा पादरी लोकोंकीजी गपी हूइ पुस्तकोंके उपर ईशामसीहकी मूर्ति उस वखतकी गपी हूइ है, जिस अवसरमें मसीहकों शूली उपर देनेकों ले जाते थे,उस मूर्त्तिके देखनेंसें ईशामसीहकी अवस्था सर्व मालुम होती है. बस, स्थापनाका यही तो प्रयोजन है, कि जो उसके देखनेसें असली वस्तु का स्वरूप याद (स्मरण) हो जाता है आश्चर्य तो यह है कि अब (इस कालमें) कितनेक तुञ्जबुद्धिवाले अपनी बनाई पुस्तकमे यज्ञशाला तथा यज्ञोपकरणकी स्थापना अपणे हाथोंमें करके अपणे शिष्योंको जनाते है, जो यज्ञोपकरण इस आकृतिके चाहिये. फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नही मानते है अब विचार करनां चाहियें कि इनसेंजी कोइ अधिक मूर्ख जगत्में है? जो आप तो स्थापना करते है अरु फेर कहते ह कि हम स्थापनाकों नही मानते हें, इस वास्ते जो पुरुष अपने शास्त्रके उपदेशककों देहधारी मानेगा. वो अवश्य उसकी मूर्त्तिकूंजी मानेगा, अरु जो अपणे शास्त्रके उपदेष्टाको देह रहित मानते हें, वेजी थोडी बुद्धि वाले है. क्योंकि जिसके देह नही, वो शास्त्रका उपदेष्टा कदापि नहीं हो सकता है, कारण कि देह रहित होनां अरु शास्त्रका उपदेश देने वालाजी होनां, इस बातमें कोइजी प्रमाण नही है. अरु निराकार सर्वव्यापी परमेश्वरका ध्यानजी कोइ नहीं कर सक्ता है. जैसे आकाशका ध्यान नही हो सक्ता है इस वास्ते अठारह दूषणसे रहित जो परमेश्वर है, तिसकी मूर्त्ति अवश्य माननी पूजनी चाहिये सो ऐसा देव तो अर्हतही है, इस वास्ते अर्हतकी प्रतिमा माननी चाहियें. परंतु किसी कुबुद्धिके कुहेतुओंसें गेडनी न चाहियें ॥ इति स्थापना निक्षेप दूसरा

अब तीसरा द्रव्यनिक्षेप, सो जिस जीवने तीर्थंकर नामकर्मका निकाचित बंध कीना है, तिस जीवमें जावि गुणोंका आरोप अर्थात् ऐसा आगेको तीर्थंकर जगवान् होवेगा? ऐसा वर्त्तमानमे आरोप करके वंदन (नमस्कार) पूजन करकें, अनेक जीव, मोक्षको प्राप्ति हूये है.

चौथा जावनिक्षेप, सो जो वर्त्तमान कालमें सीमंधर प्रमुख तीर्थंकर

वलज्ञानसंयुक्त समवसरणमें विराजमान नव्यजीवोंके प्रतिबोधक चतु र्विध संघके स्थापक. सो नाव अर्हंत इनके चरण कमलकी सेवा करकें अ नेक जीव मोक्ष होते है, यह नावनिक्षेप है. यह चार निक्षेप करकें संयुक्त, औसा जो अरिहंत देवाधिदेव, महा गोप, महा माहण, महा निर्यामक, महा सार्थवाह, महा वैद्य, महा परोपकारी, करुणासमुद्र, इत्यादि अनेक उपमा लायक सो नव्य जीवोंके अज्ञानांधकार दूर करणेंकों सूर्य समान, प्रमाण करकें अविरोधि जिसके वचन है, औ मुनिमनमोहन, योगीश्वर, चिदानंद घनरूप, औसें अरिहंतकों मे देव, अर्थात् परमेश्वर करिके मानता हूं, तिसकी सेवा करुं, तिसकी आज्ञा शिर धरुं, औसा जो माने, सो प्रथम व्यवहारशुद्ध देवतत्त्व है.

दूसरा निश्चयशुद्ध देवतत्त्व कहते है. जो शुद्धात्मस्वरूपकों अनुनव करनां. सो शुद्धात्मस्वरूपही निश्चयदेवतत्त्व है, कैसा है वो आत्मस्वरूप? कि पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, शब्द, क्रिया, इनोंसें रहित, तथा योगसें रहित, अतीन्द्रिय, अविनाशी, अनुपाधि, अबंधी, अक्लेशी, अमूर्त्ति, शुद्धचैतन्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनंत गुणोंका नाजन, सच्चिदानंदस्वरूपी औसी मेरी आत्मा है, सोइ निश्चयदेव है.

अथ दूसरा गुरुतत्त्व कहते है तिसकेनी दो नेद है, एक शुद्धव्यवहारगुरु, दूसरा शुद्ध निश्चयगुरु उसमे शुद्धव्यवहारगुरुका स्वरूप तो गुरुतत्त्वनिरूपण परिछेदमें लिख आये है. तहासें जान लेनां, औसें साधुकों गुरु करके माने औसें गुरुकी आज्ञासे प्रवर्त्ते, औसें मुनिकों पात्र बुद्धि करकें शुद्ध अन्नादिक देवे. इति व्यवहार शुद्धगुरुतत्त्व। तथा निश्चय गुरुतत्त्व तो शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक है, जो हेयोपादेय उपयोगयुक्त परिहार प्रवृत्तिज्ञान, सो निश्चयगुरुतत्त्व है.

अथ तीसरा धर्मतत्त्व कहते है धर्मतत्त्वकेनी दो नेद हैं, एक व्यवहारधर्मतत्त्व, दूसरा निश्चयधर्मतत्त्व. तिनमे जो व्यवहाररूप धर्म है, सो दयामुख्य है क्यों कि जो सत्यादि व्रत है, सो सर्व दयाकी रक्षा वास्ते हैं, इस वास्ते दयाका स्वरूप लिखते है. यह दयाके आठ नेद है, सो कहते है. १ द्रव्यदया, २ नावदया, ३ स्वदया, ४ परदया, ५ स्वरूपदया, ६ अनुबंधदया, ७ व्यवहारदया, ८ निश्चयदया.

१ तहां द्रव्यदया उसकों कहते है, कि जो यत्न पूर्वक सर्व काम णां, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म है, सर्व जैन लोक, पाण नके पीते हैं, औ अन्न शोधके खाते है; जे कर कोइ जैनी ठग्ग (ठ करता है, झूठ बोलता है, औ विश्वासघात करता है, वो पापी जी सो जैनमतकों कलंकित करता है, वो सर्व उस जीवकाही दोष है, उसमें जैनधर्मका कुछ दोष नही है, जैनधर्म तो असा पवित्र है, कि समे कोइनी अनुचित उपदेश नही है, यह बात सर्व सुज्ञ जनोंकों त है, इस वास्ते जो काम करणां, सो यत्नपूर्वक जीवरक्षा करके णां, सो द्रव्यदया है

२ दूसरी नावदया है, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा ति पडतेकों रक्षण वास्ते, अंतःकरणमे अनुकंपा बुद्धि संयुक्त जो प्र वकों हितोपदेश करनां, सो नावदया है

३ तीसरी स्वदया है, सो अपणी आत्मा अनादि कालसे मिथ्यात शुद्ध उपयोग, अशुद्ध श्रद्धानपूर्वक अशुद्ध प्रवृत्ति, कषायादि नाव करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप नावप्राण हिंसा होती है, असें जिनवचन सुननेसें पूर्वोक्त नाव शत्रोंका त्याग के स्वसत्तामें प्रवृत्ति करके शुद्धोपयोग धारके विषय कषायोंसें दूर र अरु शुन, अशुन कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनो, अर्थात् सुखा में हर्ष विषाद न करणा, प्रतिक्षण अशुन कर्मके निदान दूर कर जो चिंता, तिसका नाम स्वदया है इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव पनी परिणति शुद्ध करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्र शुन प्रवृत्ति करे, जिन गुण गावे, बहुमान करके, असत् प्रवृत्तिसें चि हटा करके तत्त्वालंबी करे, पुजनावजवीपणा हटावे, इस शुनाश्रवमें यपि देखनेमें कितनेक जीवोंकी हिंसा दीख पडती है, तोनी आत्म अशुद्ध परिणति मिटनेसें आत्मा गुणग्राही हो जाती है, जब गुणग्र नए, तब ज्ञानवान् हो गए, इस वास्ते सर्व साधक जीवोंकों यह स्व परम साधन है, इस स्वदयाके वास्ते साधुनी नवकल्पी विहार करते औ उपदेश देते है, चर्चा करते हैं, तथा पूजन, प्रतिलेखन करते है, यद्यपि दी नाले उतरने पडते है, तहां योगोंकी चपलतामें आश्रव होता है, तोनी

स्वरूपानुयायी रहता है, जिनाज्ञा पालता है, औ कषायस्थान मंद करता है, स्वछंदता दूर करता है, तथा धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि करता है, यह स्वदयाके वाते शुनाश्रव साधुनी अपणे कल्प प्रमाणे आचरण करता है, परंतु यह आश्रव साधकदशामें बाधक नही है ॥ इति स्वदया ॥

४ चोथी परदया, सो जो छे कायके जीवोंकी रक्षा करणी, जहां स्वदया है, तहां परदया तो नियम करकें है, अरु जहां परदया है, तहां स्वदयाकी नजना है, अर्थात् होवेनी, नहीनी होवे.

५ पांचमी स्वरूपदया, सो जो इहलोक परलोकके विषयसुख वास्ते तथा लोकोंकी देखा देखी करकें जीवरक्षा करे, यह स्वरूप दया है. इस दयासे विषय सुख तो मिल जाते है, परतु मैंडुक चर्णवत् संसारकी वृद्धि हो जाती है, यह देखनेमें तो दया है, परंतु नावें हिंसाही है.

६ छठी अनुबंधदया, सो श्रावक बडे आडंबरसें मुनिकों वंदना करनेकों जावे, तथा उपकार बुद्धिसें दूसरे जीवोंकों सन्मार्गमें लाने वास्ते आक्रोश (ताडनादि) करे, कोइकों शिक्षा देवे. यहां देखनेमे तो हिंसा है, परतु अंतमें स्वपरकों लानका कारण है, इस वास्ते ये दया है. जैसें साधु, आचार्य, अपणे शिष्य शिष्यणीयोंकों शिक्षा देता है, किसीकों नूल याद कराता है, तथा किसीकों अनुचित कामसें मना करता है, किसीकों एक वार कहता है, अरु किसीकों वारंवार शिक्षा देता है, किसी उपर क्रोध नी करता है, शासनके प्रत्यनीककों अपणी लब्धिसें दंड देता है, इत्यादि कामोमें यद्यपि हिंसा दीखती है, तोनी फल दयाका है. इति अनुबंधदया.

७ सातमी व्यवहारदया, सो विधिमार्गानुयायी जीवदया पाले, सर्व क्रिया कलाप उपयोग पूर्वक करे, सो व्यवहार दया है.

८ आठमी निश्चयदया, सो शुद्ध साध्य उपयोगमे एकत्व नाव, अन्नेदोपयोग साध्यनावमे एकताज्ञान, सो नावदया. इस दयासेंती उपरिले गुणस्थानोमें जीव चढता है, तिस वास्ते उत्कृष्ट है इत्यादि अनेक प्रकारसें दयाके स्वरूप, विज्ञानपूर्वक सूत्र, निर्युक्ति, नाष्य, चूर्णी, वृत्ति, इस पंचांगीसम्मत प्रत्यक्षादि प्रमाणपूर्वक नैगमादिनय, नामादि निक्षेप, सप्तनंगी, ज्ञाननय, क्रियानय, तथा निश्चयव्यवहारनय, तथा द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इत्यादि उनय नावमे यथावसरें अर्पित, अनर्पित नयनिपु

एतासें मुख्य गौण भावें अन्ययनयसम्मत, शुद्धस्याद्वादशैली विज्ञा वैक, श्रीसिद्धांतोक्त दान, शील, तप, भावनारूप शुभ प्रवृत्ति, तिसका नाम शुद्ध व्यवहारधर्म कहियें हैं.

तथा दूसरा निश्चयधर्म, सो अपणी आत्माकी आत्मताकों जाणे, और वस्तुके स्वभावकों जाणे कि जो मेरी आत्मा है, सो शुद्ध चैतन्यरूप, असंख्यातप्रदेशी, अमूर्त्त, स्वदेहमात्रव्यापी, सर्व पुद्गलोंसें भिन्न, असंग, अलिप्त, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, अव्याबाध, सत्‌चिदानंदादि अनंत गुणमयी, अविनाशी, अनुपाधि, अविकारी, ऐसी मेरी आत्मा है, सो इ उपादेय है. इससें विलक्षण जो परपुद्गलादिक सो मेरे नहीं, तिस पुद्गलके पांच विकार है, १ शब्द, २ रूप, ३ रस, ४ गंध, ५ स्पर्श, इन पांचोंके उत्तर भेद अनेक है इस लोकाकाशमें जो उद्योत, तथा अंधकार, तथा जो शब्द है, तथा सर्व रूपी वस्तुकी जो छाया, रत्नकी कांति, शीत, धूप, नानाप्रकारके रूप, रंग, संस्थान, औ नाना प्रकारके सुगंध, दुर्गंध, नाना प्रकारके रस, तथा सर्व संसारी जीवोकी देह, भाषा, औ मनके विकल्प, दश प्राण, छै पर्याप्ति, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, औ खुशी, उदासी, कदाग्रह, हठ, लडाइ, क्रोधादि चार कषाय, तथा शाता, अशाता, ऊंच, नीच, निद्रा, विकथा, तथा सर्व पुण्यप्रकृति, सर्व पापप्रकृति, तथा रीझ, मोज, खीजना, खेद, तथा छै लेश्या, लाभालाभ, यश, अपयश, मूर्ख, चतुरता, स्त्री, पुरुष, नपुसक वेद, कामचेष्टा, गति, जाति, कुल इत्यादि आठ कर्मका विपाक फल, यह सर्व बातां जीवके अनुभवसें सिद्ध है, अरु सूक्ष्मपुद्गल, इंद्रिय अगोचर है, सो परमाणु आदि लेकें अनेक तरेंका है, इस पूर्वोक्त पुद्गलके संयोगसें जीव चारों गतिमें भटकता है यह पुद्गल, मेरी जाति नहीं, इस पुद्गलका मेरे साथ कोइ तात्त्विक संबंध नहीं, औ यह पुद्गल सर्व त्यागने योग्य है, जो इस पुद्गलका संसर्ग है, सोइ संसार है, तथा इस पुद्गलकी संगतिसें ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण बिगड जाते हैं, जो यह पुद्गल. द्रव्यकी रचना है, सो मेरी आत्माका स्वभाव नहीं, तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, यह चारों द्रव्य ज्ञेय रूप हैं, इनसेंभी मेरा स्वरूप अन्य है. अरु और जो संसारी जीव है, सो सर्व अपणी अपणी स्वभाव सत्ताके स्वामी

, सो मेरे ज्ञानमें ज्ञेय रूप है. परंतु मै इन सर्वसें अन्य हूं, ये मेरे न हैं, मैं इनका नही, मैं इनका साथीनी नही, औ मै अपणे स्वरूपका स्वामी हू, मेरा स्वनाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप है, वर्णरहित, गंध रहित, रस रहित, चेतन्य गुण, अनंत, अव्याबाध, अनंत दान, ला, नोग, उपनोग वीर्यादिक अनंत गुण स्वरूप है. तिनकी श्रद्धा नासन विवेक गुणस्वादिक रूप चिदानंद घन मेरा स्वनाव है, ऐसा जो मेरा पूर्णानंद स्वनाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र है, परंतु मुख्य तो मेरा स्वनाव जो है, तिसहीमें जो रमणता करणी, सोइ शुद्ध साधन है. सोइ धर्म है,यह निश्चय धर्म स्वरूप जाननां॥इति धर्मतत्त्व तीसरा॥

इन तीनो तत्त्वोंकी जो श्रद्धा, निश्चल परिणतिरूप, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं. अरु जिस जीवकों इतना बोध न होवे, वो जीव जे कर ऐसें मनमे धारे, पक्षपात न करे, "तं सच्चं निस्संकं, जं जिणेहिं पवेइयं इत्यादि" जो जिनेश्वर देवोने कह्या है अर्थ, सो सर्व निःशंकित सत्य है, ऐसी तत्त्वार्थ श्रद्धाकोंनी सम्यक्दर्शन सम्यक्त्व कहते हैं, इस्सें जो विपरीत होवे, तिसकों मिथ्यात्व कहते हैं, इन मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमें लिख आये है, तहासें जान लेनां, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसकों सम्यक्त्व कहते है इति व्यवहारसम्यक्त्व स्वरूपं संपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते है. जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु, और धर्मका स्वरूप कह्या है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है. चार अनंतानुबंधी, सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उपशम करे, तथा क्षयोपशम करे, तथा क्षय करे, तिस जीवको निश्चय सम्यक्त्व होती है परतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं. केवली जान सक्ता है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट नये जीव नरक अरु तिर्यंच इन दोनों गतिका आयु नही बाधता है॥ इति निश्चय सम्यक्त्वं संपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते है, नित्य योगवाइके मिले, अरु शरीरमें कोइ विघ्न न होवे, तव जिनप्रतिमाका दर्शन करिके पीछेसें नोजन करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करकें वर्तमान तीर्थंकरोंका चैत्यवदन करे, अरु जे कर रोगादि कोइ विघ्नसे दर्शन

न होवे, तो जिसका आगार है, उनका नियम नहीं टूटता है, अर
वान्के मंदिरमे मोटी दश आशातना न करे, यह दश आशातना
कहते हैं १ तंबोल पान, फल, प्रमुख सर्व खानेकी वस्तु भगवान्के
रमें न खावे. २ पाणी, दूध, छास, अर्क प्रमुख पीवे नहीं, ३ जिनमं
बैठके भोजन न करे, ४ जूती प्रमुख मंदिरके अंदर न ल्यावे, ५ मैथुन
सेवे नहीं, ६ जिनमदिरमें शयन न करे, ७ जिनमंदिरमे थूके नहीं, ८
जिनमंदिरमें लघुशंका न करे, ९ जिनमंदिरमें दिशा न जावे, १० जिनमं
दिरमें जूआ, चोपट, सतरंज प्रमुख न खेले, ये दश आशातना टाले, त
था उत्कृष्टी चौरासी आशातना वर्जे, तथा एक मासमें इतना फल नैवेद्य च
ढं, अेक मासमें इतना आदि घृत देऊ, (चढाऊ) एक वर्षमें इतना अ
चढाउं, वर्षमे इतना केशर, इतना चदन, इतना भीमसेनी बरास, कपूर
मुख भगवान्की पूजा वास्ते खरच करुं, अपने धनके अनुसारें वर्ष
धूप अगरबत्ती, कर्पूर, चढाऊं. वर्षमे अष्ट प्रकारी सत्तरे प्रकारी इतनी पू
जा कराऊं तथा करु, औ वर्षमें इतना रूपैया साधारण द्रव्यमें खरचुं,
वर्षप्रति पूजावास्ते इतना द्रव्य खरचूं, दिन दिन प्रति एक नव
रवाली, अर्थात् माला, पंच परमेष्ठिमत्रकी मोक्षनिमित्त जाप करुं,
कर कोइ दिन न जपणा हो जावे, तो अगले दिन दूणा जाप करुं,
परतु रोगादि कारणे आगार है, दिन प्रति समर्थ होते नमस्कार
हित, अर्थात् दो घडी दिन चढे तक चार आहारका प्रत्याख्यान करुं,
रात्रिमें दुविहार प्रत्याख्यान करुं, औ रस्ते चलते रोगादि कारणमें न
होवे, तो आगार. वर्ष प्रति इतना साधर्मिवात्सल्य करुं, (साध
जिमाउं) इन रीतीसें सम्यक्त्व पालुं, अरु सम्यक्त्वके पांच अतिचा
र टालुं, सो पांच अतिचार कहते हैं

१ प्रथम शंका अतिचार, सो जिनवचनमें शंका करणी, क्यों कि जिन
वचन बहुत गंभीर हैं, अरु तिनका यथार्थ अर्थ कहने वाला इस कालमें
कोइ गुरु नहीं, अरु शास्त्र जो है, सो अनंतनयात्मक है, तिनकी निरुक्ति
तथा सज्ञा, विचित्र तरेकी है, कहीक जगें तो कोडी शब्द कोडका वाचक
है, अरु किसी जगें रूढी वस्तुका वाचक है, क्योंकि श्रीजिनभद्रगणि क्ष
माश्रमण सर्वसंघका सम्मत आचार्य, संघयण नामा पुस्तकमें तथा ति

णवती ग्रंथमें लिखते है, कि कोइक आचार्य कोडी शब्दकों एक क्रोडका वाचक नही मानते है, किंतु संज्ञांतर मानते है, क्यों कि अब वर्त्तमान कालमेंभी वीशकों कोडी कहते है, तथा सौराष्ट्र देश अर्थात् सोरठ देशमें अब वर्त्तमान कालमेंभी पाच आनेकों एक कोडी कहते है, यह जैसें कोडी शब्दमें मतांतर है, ऐसेंही शत सहस्र शब्दभी किसी सञ्ज्ञाका वाचक होवे तो कुछ दोष नहीं तथा शत्रुंजय तीर्थमें जहा मुनि मोक्ष गये है, तहांभी पांच कोडी आदि शब्दोंकी कोइ संज्ञा विशेष है ऐसेंही छप्पन कुल कोडी यादव कहते है, तीहांभी यादवोंके छप्पन कुलोंकी कोडी कोइ संज्ञा विशेष है, इसी तरें सर्व जगें शास्त्रोमें चक्रवर्त्तीकी सेना तथा कोणिक चेटक राजाओंकी सेनामें जो कोडी, अरु शत सहस्र शब्द है, सो संज्ञाविशेषके वाचक संभव होते है, इस वास्ते सर्व शब्दोंका सर्व जगे एक सरीखा अर्थ मानना युक्त नहीं, इस कथनमें पूज्यश्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण पूरे साक्षी देने वाले है

तथा कितनेक भव्य जीवोंने सामान्य प्रकारे ऐसा सुण रक्खा है, जो पांचमे आरेमे उत्कृष्ट एक सौ वीश वर्षका आयु है, जब वो जीव कीसी अंग्रेजके मुखसें सुनते है, तथा और किसीके मुखसें सुनते है, कि डेढ सौ तथा दो सौ, तथा अढाइ सौ वर्षकी आयुवालेभी भोटानादि किसी देशमें मनुष्य होते हैं, तब दृढ श्रद्धावाले भोले जीव तो कदापि किसीका कहना नही मानते हैं, चाहो बडी आयु वाला मनुष्य उनके सन्मुखभी खडा कर दो, तोभी वे झूठही मानेंगे, क्योंकि वे जानते है, कि जो हमारे जिनेंद्रदेवका कथन है, सो कदापि झूठा नहीं है, परंतु जिनकों जैनमतकी दृढ श्रद्धा नही है, वे कुछ सांसारिक विद्यामें निपुन है, चाहो जैनमत वालेही है, उनके मनमें अवश्य शंका पड जायगी, क्यों कि उनोनेभी सर्व जैनमतके शास्त्र सुने नही है, शास्त्रमें जो कथन है, सो सापेक्षिक है, बाहुल्यता करकें कहा हूआ है, सो कथंचित् जो अन्यथा होवे, तो आश्चर्य नहीं. क्यों कि बहुत शास्त्रोमें लिखा है, कि ज्योतिषचक्र, अर्थात् तारामण्डल है, सो सर्व तारे मेरु पर्वतको प्रदक्षिणा देते हैं, ये बात सर्व जैनी मानते है, परतु ध्रुवका तारा कहांभी नहीं जाता है, अरु ध्रुवके पास जो तारे सप्त ऋषि रूढिमें प्रसिद्ध है, जिनको बालक मंजी पहरेदार

कुत्ता, और चोर कहते हे, तथा औरभी,कितनेक तारे ध्रुवके पार्श्ववर्ती
वे सर्व ध्रुवकी प्रदक्षिणा देते है, परंतु मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा नही
हे, यह बात हमने आंखोंसें देखी है, अरु औरोंको दिखा सकते है
फेर प्रथम जो शास्त्रकारने कहा था कि सर्व तारे मेरुकी प्रदक्षिणा
ते है यह कहना जैनी, क्यों कर सत्य मानते है?

इसका समाधान ऐसा है, कि प्रथम जो कथन है, सो
अपेक्षा है, क्योंकि बहुत तारा मंडल ऐसा है, जो मेरु पर्वतकी प्र
देता है, अरु कितनेक ऐसे है जो ध्रुवकेही आस पास चक्र देते है.
समाधान, पूज्यश्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजीनें संघयण, तथा
णवती ग्रंथमे लिखा है, कि मेरु पर्वतके चारो ओर चार ध्रुव है, अरु
न चारों ध्रुवोंके पास ऐसे ऐसे तारे है, जो सदा उन चारों ध्रुव
आस पास चक्र देते है. इस्से यह सिद्ध हूआकि जो शास्त्रका कहना है
बाहुल्यतासें अरु किसी अपेक्षा करकें सयुक्त है, अरु किसी जगे स्थू
व्यवहार नयके मतसें कथन है, परतु सूक्ष्म, अधिक न्यूनताकी गि
नहीं करी है, इसी तरे सौ वर्षसें अधिक आयु जो पंचम कालमें
ही है. सो बाहुल्यताकी अपेक्षा तथा आर्यखंड अर्थात् मध्यखंडकी
पेक्षा है, जे कर किसी पुरुषकी १५०, २००, २५०, इत्यादि वर्षो
आयु हो जावे. तो मनमें जिनवचनकी शका न करणी कि क्या ज
जिनवचन सत्य है कि जूठ हैं? ऐसा विकल्प मनमें नहीं करना, क्य
कि शास्त्रका आशय अतिगंभीर है, अरु ऐसा गीतार्थ कोइ गुरु न
है, जो यथार्थ बतला देवे.

इस आयुके कहनेका यह समाधान है,कि भगवान् श्रीमहावीरके निर्वा
पीछें (५८५) वर्षके लग भग जैनमतका आचार्य श्रीआर्यरक्षित सू
साढे नव पूर्वका पाठक जिनोके पास शक्रइंद्र, निगोद जीवोंका स्व
रूप सुनने आया था, तब शक्रइंद्रने प्रथम वृद्धब्राह्मणका रूप क
श्रीआर्यरक्षित सूरिको पूछा, कि हे भगवन्! में वृद्ध हो गया हों, जे
र मेरी आयु थोडी होवे, तो मुझे बता दीजीये, जो मैं अनशन करुं, त
श्रीआर्यरक्षित सूरिजीने दशमे पूर्वके यवका अध्ययनमें उपयोग दे क
देखा, तो तिसकी आयु सौ वर्षसें अधिक जानी, फेर उपयोग दे क

खा, तो दोसें वर्षसें अधिक आयु जानी, फेर उपयोग दीया, तो तीन वर्षसें अधिक आयु जानी, तब आचार्य श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने विचार कीया, जो यह भारत वर्षका मनुष्य नहीं है. ये कथानक, आवश्यकसूत्रकी सामायिकअध्ययनकी उपोद्घात निर्युक्तिमें है, इस कथानकसें असा निकलता है, जो भारत वर्षके मनुष्यकी आयु तीन सौ वर्षकी होवे, तो आश्चर्य नहीं, क्यों कि श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने जो तीन सौ वर्षसें जब अधिक आयु देखी, तब कह्या,ये भारत वर्षका मनुष्य नहीं. इसी कहनेसें कथंचित् तीन सौ वर्षकी आयु भारत वर्षकी होवे, तो क्या आश्चर्य है ?

तथा कितनेक जीवोंके मनमें असीभी शंका होवे, तो उसका क्या समाधान है ? भरत खंम जैनमतवाले कहां तक मानते है? जो कुछ इस कालमें लोकोंके देखने वा सुननेमें आता है, कि अमेरिकादि देश वे सर्व जैनलोक भारत वर्ष मानते हैं, रूस, वा चीनादि देश इन सर्वकों भारत वर्ष कहते है. अरु अमेरिकादि विलायतादि सर्व मुलकोंके बीचमें जो समुद्र पडा है, सो रुषभ देव अरु भरत चक्रवर्त्तीके समयमें नहीं था, किंतु जगती बाहिर जो महासमुद्र है, सोइ था, इस कारणसें अर्थात् समुद्रके अंदर आ जानेसें असली भरत क्षेत्रका स्वरूप विगड गया, कहीं समुद्र हो गया, और कहीं द्वीपें बन गये.

इस विषे जैनमतका शत्रुंजय महात्म्यनामा जो ग्रंथ है, तिसमें लिखा है कि दूसरा सगरनामा चक्रवर्त्ती हूआ है,वो इस समुद्रकों भारतवर्षमें जंबूद्वीपके दक्षिणदिशिके विजयंत नामक दरवाजेके रस्तेसे ल्याया है, तिसके आनेसें वर्वरादि अनेक हजारो देश तो जलमें डूब कर समुद्रकी भूमिका बन गये, अरु जो उच्चस्थल थे,वे द्वीप और विलायतादि देशो बन गये,पीछेसें असली देशोका नाम नष्ट होनेसें बहुत देशोंके नाम कल्पित रखे गये, अरु भरतखंम कुछ औरका और बन गया, कितनेक देशोंके चारों ओर समुद्र फिर गया, अरु कितनेक देशोंके उत्तर खंमोमें बर्फके पड जानेसें,और समयके बदलनेसें, सर्वथा पानी जम गया, अरु समुद्रके साथ मिल गया, तब तो चारों ओर समुद्रही दीखने लगा है, तिस लिये आना जाना बंद हो गया, अरु हमारे शास्त्रकार तो प्रथम आरेमें तथा रुषभ देव अरु भरतचक्रवर्त्तीके समयमें जो इस भारत वर्षका हाल था, सोइ सदासें लि

खते चले आये, परंतु भरत क्षेत्रके विगड तिगडके औरका और बन नेसें किसीने विस्तार पूर्वक वृत्तांत ठीक ठीक नही लिखा; अरु जे कर खानी होवेगा, तोभी जैनमतके उपर बडी बडी विपत्तीयों पडीयों नसें लाखों क्या, बलकि क्रोडों ग्रंथ नष्ट हो गये है, इस वास्ते हम ठीक सर्व वृत्तांत बता नहीं सक्ते है, परंतु जितनेक जैन मतके ग्रंथ मे... नेमें आये हैं, उनमेसू जो मुझे ठीक पडी है, सो मै इस ग्रंथमें ...

इस वास्ते सर्वक्षेत्र अदल बदल हो गये हैं, गंगा सिंधु ... वहनेमे रह गइ, क्योंकि अगला प्रवाह तो, समुद्रने रोक लीया. अर सें पाणी आनां बंद हो गया, फेर जिस पर्वतसे अधिक नदीकी प्रवृत्ति इ, वो नदी, उसी पर्वतसें निकलती लोकोनें मान लीनी, इस वास्ते अरु सिंधुमें क्षुल्लक हेमवत पर्वतसें जल आना बंद हो गया, नाममात्र गंगा सिंधु रह गइ, औ नगरीयोंमें वनिता नगरीकी कल्पना पर अयोध्या बनाइ गइ, अरु काबलके परे तक्षिला अर्थात् बाहुबलकी नगरीकी कल्प ना करी गइ, इस समयमें वो तक्षिलाभी नहीं रही. उसका नाम गजनी प्रसिद्ध है. क्योंकि जैनीयोंकी श्रद्धा अनुसारे प्रथम आरेको ऋष... देव तथा भरत राजाके समयके व्यतीत होनेमें असंख्य वर्ष व्यतीत हो गये है, तो फेर नदी, पर्वत, देश, नगरोंके उलट पलट हो जावे क्या आश्चर्य है ?

औ समुद्रका देशों उपर फिर जानां, तो तौरेत ग्रंथसेंभी ठीक ठीक सिद्ध होता है, अरु पुराणादि ग्रंथोमेंभी लिखा है, जो कोइ ऐसा सम यभी था कि समुद्रमें पाणी नही था, पीछेसें आया है, इस वास्ते शत्रुंज य माहात्म्यमें जो लिखा है कि भरत क्षेत्रमें समुद्रका पाणी सगर चक्रवर्ती ल्याया है, सो कहनां ठीक है.

तथा विजयसेन सूरि श्रीतपगच्छका आचार्य, अपने प्रश्नोत्तरोंमें लिख ते है, कि मागध, वरदाम, अरु प्रभासक नामक तीन जो तीर्थ है, सो ज गतीके बाहिरले समुद्रमें है, इस्सेंभी यही सिद्ध होता है, कि भरतचक्र वर्ती जब षट् खंड साधने, अरु मागधादि तीर्थोंको साधनेकों गये थे, तब यह समुद्रका पानी रस्तेमें नही था, अरु शास्त्रकारोने तो सर्व शास्त्रोंमें

जो श्रीऋषभदेवके कथानुसार रक्खी है, इस वास्ते चक्रवर्त्यादिकोंका क थन भरतचक्रवर्त्तीके सरीखा कह दीया है,

तथा इस कालमें कितनेक विद्वानोने भूगोलके हिसाबसें जो कुतब ब नाये हैं, अरु उनके अनुसारें शरद् तथा गरम देशोंका विभाग कीया है, यद्यपि उनके देखने सुनने मूजब तथा उनके अनुमानके अनुसारें वर्त्तमान समयमें असाही होवेगा, परंतु सदा असाही था, यह कहनां ठीक नहीं· क्योंकि भूगोलहस्तामलक पुस्तकमें लिखा है, कि रूपदेशकी उत्तर के पासें जहां बरफके सिवाय और कुछभी नहीं है, तहां गरमीके दिनोमें बर्फके गलनेसें तथा किसी जगे बर्फके करार गिर पडनेसें उसके हेठसें एक किसमके हाथी निकलते है, सोभी सैंकडो हजारों निकलते है, जिनका नाम उस देशवाले मैंमाथ कहते है, अब बडा आश्चर्य तो इन मैंमाथोंके देखनेसें ये आता है, कि ये जानवर गरम मुलकोंके रहनेवाले है, अरु यह शरद मुलकमें कहांसें आये? अरु इनके खाने वास्तेभी कुछ नहीं, इस कालमें जो एकभी हाथी उस मुलकमें जा कर बांधीये, तो थोडेसे कालमें मर जायगा, नही तो ये लाखो मैंमाथ इस मुलकमें क्यों कर जाते होयंगे? और क्या खाते होयंगे? इसमें यही कहनां पडेगा कि किसी समयमें ये मुलक गरम होवेगा, पीछें पवनकी तासीर बदलनेसे शरद मुलक हो गया, इस वृत्तांतसें यह सिद्ध होता है, कि जो शरद मुलक है, वे गरम हो सक्ते हैं, अरु जो गरम मुलक है, वे किसी कालमें शरद हो जाते है, इस वास्ते भूगोलके अनुसारें जो शरदी गरमीकी व्यवस्था कल्पना करनी है, वे हमेशांके वास्ते डुरस्त नही, क्या जाने देशोंकी क्या क्या व्यवस्था बदल चूकी है? और क्या क्या बदलेगी? इसका पूरा स्वरूप तो सर्वज्ञ जान सक्ता है.

तथा इस पृथ्वीकों भूगोल कहते है. अरु यहभी कहते है कि सूर्य नहीं फिरता, किंतु पृथ्वी, सूर्यके इर्द गिर्द घूमती है, यह बात कुछ इंग्रेजोहीने नही निकाली है, किंतु इंग्रेजोसे पहिलेंभी इस बातके माननेवाले भारत वर्षमें थे, क्यों कि जैनमतका शीलंगाचार्य जो विक्रमके ९०० वर्षमें हूआ है, वे आचार्य आचारांगसूत्रकी वृत्तिमें लिखते है, कि कितनेक असाभी मानते है, जो भूगोल फिरता है, अरु सू

यें स्थिर रहता है, परंतु यह मत जैनीयोंका नहीं है, उनके शा
जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती
औ सूर्यके भ्रमण करनेंके एक सौ चौरासी मंडल आकाशमें हैं,
मंडलोंमें प्रवेश करना, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटनां, वधनां,
मौसमोंका वदलनां, ग्रहणका लगनां, सूर्यके अस्त उदय होनेके
रोंका विवाद, इत्यादि वात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति शा
पढनेसें अच्छी तरेसें मालुम पड जाती है.

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके जहाजकी ध्वजा प्रथम दी
है, इत्यादि कहते है, सो कहनेवालोंकी समजमें असी आती होवेगी,
रंतु हमारी समजमें तो नहीं आती है, हम तो असे समजते हैं, कि
मारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्से वस्तु गोलादि दीख पड
है, क्योंकि जब हम सूधी सडक पर खडे होते है, तब हमारे पगोंके
गे सडक चौडी मालुम पडती है, अरु जब दूर नजरसे देखते है, तब
ही सडक संकुचित मालुम पडती है, अरु आकाशमें पक्षीकों जब कि
उपर उडता देखते है, तब हमकों उंचा दूर दीख पडता है, अरु
उसी जानवरकों थोडीसी दूर जातेकों देखते है तब धरतीसें वहुत नि
ट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाइ नहीं हो सकी है, तथ
आकाशकों जब देखते है तब तंबूसा दिखलाइ देता है, इसमें जो को
यह वात कहे कि धरतीकी गोलाइके सववसें आकाशभी गोल दीखत
है, यह कहनां ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नहीं
हो सकि है, इस वास्ते नेत्रोंमें जिस वस्तुके जाननेकी जैसी योग्यता है
वैसी वस्तु दीखती है, यह कहनां ठीक मालुम होता है.

तथा यह पृथ्वी, भरतखंडादिककी वहुत जगें उंची नीची, मालुम हो
ती है, क्योंकि श्रीहेमचंद्रसूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रभचरित्रादि ग्रंथों
लिखते है, कि लंकासेंति इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तब आ
योजन नीचें पातालजंका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवे, तब तो क्या
जाने अमेरिकाही पतालजंका होवे? अरु नीची जगा होनेसें बुद्धिमा
को पृथ्वी गोल मालुम पडती होवेगी, इसी पाताललंकाकी तरें औ
जगा धरती उंची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि पश्चिम मह

हकी धरती एक हजार योजन उंची लिखी है, इसी तरें और जगेंभी ची नीची धरतीके सबबसें कुछ औरका और दीख पडे, तो जैनमती कों श्रीअर्हत भगवंतके कहनेमें शंका न करनी चाहिये.

तथा कितनेक पुस्तकोमे लिखा देखा और सुनाभी है, जो अमेरिका आदि मुलकोमें ऐसी विद्या निकाली है, कि जिस करकें वो दो हजारादि व र्ष पहिलें जो मनुष्य मर गये थे, उनकों बुलाते हैं, अरु उनसें उस व ख्तका सर्व हाल पूछते हैं, अरु वे सर्व अपणी व्यवस्था बतलाते है, प रंतु परोक्ष शब्द उनका सुणाइ देता है, वे प्रत्यक्ष नही दीखते हैं, तथा अनेक तरेंके तमासे दीखाते है, कि जिनके देखनेसें अल्पबुद्धियोंकी बुद्धि अस्त व्यस्त हो जाती है, तब उनके मनमें अनेक शंका कंखा उत्पन्न हो जाती है. जिसके सबबसें अर्हतकथित धर्ममें अनादर हो जाता है, क्योंकि उन जीवोनें नतो पूरे जैनमतके शास्त्र पढे है, औ न सुने है, इस वास्ते उनके मनकों जलद अधीरज हो जाती है, परंतु अपणे घरकी सर्व पुस्तकों विना वांचे, विना सुने, तुछ बातके वास्ते एक बारगी जिनधर्ममें शंका न लानी चाहियें, क्योंकि यह पूर्वोक्त सर्ववृत्तांत इंद्रजालकी पूर्णविद्या जिसकों आती होवे, वो दिखा सक्ता है, मैने किसी ग्रंथमे ऐसा लिखा देखा है, जो कुमारपाल राजाके समयमें एक बोधिदेव नामक ब्राह्मण था, उसने राजा कुमारपालकी श्रद्धा जैन मतसें हटानेके वास्ते कुमारपालसें जो प्रथम उनके वंशके मूलरा ज आदि सात राजाओ हो गये थे, उसकों नरककुंडमें पडे हूए, विलाप करते हूए, अरु ऐसें कहते हूए, दिखपडे, कि हे पुत्र ! जिस दिनसें तूनें जैनधर्म अंगीकार कीया है, उस दिनसें हम तेरे सात पुरुषों नरक कुंडमें जा पडे है, जे कर तू हमारा भला चाहे, तो जैनधर्म छोड दे, ऐसी वात देख कर राजा कुमारपाल चित्तमें घबराया, तब जा कर अपने गुरु श्रीहेम चंद्राचार्यकों पूछा, कि महाराज ! यह क्या वृत्तांत है ? तब श्रीहेमचंद्र आचा र्यजीने कहा कि हे राजेंद्र ! ये सर्व इंद्रजालकी विद्या है, आउ मैभी तुमकों कुछ तमासा दिखाउं ? तब राजा कुमारपालकों मकानके अंदर ले मकानमे ले जा कर चउवीस तीर्थंकर समवसरणमें जूदे जूदे बैठे है, अरु कुमारपा लके वेही सात पुरुषों तीर्थंकरोंकी सेवा करते है, अरु राजा कुमारपा

लकों कहते है, कि हे पुत्र! तूं वडा पुण्यात्मा है, कि जिसने जैनधर्म
गीकार कीया है, जिस दिनसें तूने जैनधर्म अंगीकार कीया है, उस
सें हम नरककुंभसें निकल कर स्वर्गवासी हूए हैं, इस वास्ते तूं धर्म
ढ रहियो. तद पीछे श्री हेमचंद्रसूरि,राजा कुमारपालकों बाहिर लाये,
राजाने पूछी कि महाराज! यह क्या तमासा आश्चर्यकारी है? तब श्री
चंद्रसूरि कहते नये कि हे राजा! ये इंद्रजालकी विद्या जिसकों आती
वो कर सक्ता है, क्योंकि इंद्रजाल विद्याके सत्ताईस पीठ, है, जिनमेंसे
रे पीठ संसारमें प्रचलित है, परंतु सत्ताईस पीठ में जानता हूं, और
भी भारत वर्षमें नहीं जानता है, अरु जिन गुरुओने हमकों ये
नी थी, उनोने ऐसी आज्ञाभी करी है, कि आगेकों तुमनें किसीकों
विद्या न देनी, क्यों कि इस विद्यासे वडे अनर्थ उत्पन्न हो जायगे. क्यों
इस कालमें जीव तुच्छबुद्धिवाले है, इस लिये उनकों ये विद्या देने
नहीं, इसी वास्ते हमारे आचार्योनें योनिप्राभृत शास्त्र विछेद कर दीया है
उसी योनिप्राभृतके अनुसार यह इंद्रजाल रचा हूआ है, इस योनिप्रा
भृतका कथन व्यवहारभाष्यचूर्णीमे लिखा है, कि उस योनिप्रा
तमें तंत्रविद्या है, जिस्सें सर्प, घोडे, हाथी, वगैरे जिंदे जानवर
वोंके मिलानेंसे बन जाते है, तथा सुवर्ण, मणि, रत्नप्रमुख
जाते है, उन मसालोंमें ऐसी मिलन शक्ति है, कि चाहे सो बना लो
इस वास्ते कोइ आज नवी वस्तु देख कर जैनधर्मसे चलायमान
होनां चाहियें. तत्त्वार्थकी महाभाष्यमें सामंतभद्र आचार्यजी लिख
है, कि इंद्रजालिया तीर्थंकरकें समान बाह्य सिद्धि सर्व बना सक्ता है.
स वास्ते कोइ बातका चमत्कार देखकें जिन वचनोमें शंका कदापि न करनी

तथा कितनेक जैनमत वालोंको यहभी आश्चर्य है, कि जदा आर्या
र्त्तमें दो प्रहर दिन होता है, तदा अमेरीकामें अर्द्धरात्रि होती है अरु
दा अमेरीकामें दो प्रहर दिन होता है, तदा आर्यावर्त्तमें अर्द्धरात्रि होती
है, कितनेक लोकोंने घडीयोंके हिसाबसें तथा तारकी खबरोंमें इस बा
का निश्चय अच्छी तरेसें करा बतलाते है, इस बातका उत्तर में यथा
नहीं दे सक्ता हूं, मेरी श्रद्धा ऐसी नहीं है कि पूर्व आचार्योंके अनुमा
विना समाधान कर सकूं? क्योंकि मेरी कल्पनासें कुछ जैनमत सत्य नही

सक्ता है, जेनमत तो अपणे स्वरूपसेंही सत्य बनेगा, जे कर मेरी कल्पनाही सत्यका कारण होवे, तब तो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहे, तब तो जिसके मनमें जो अर्थ अछा लगे, सो अर्थ कर लेवेगा. जैसें वर्तमानमें किसी पाखंडी मस्करीने ऋग्वेदादि वेदों उपर स्वकपोलकल्पित अर्थ बनाये है, सो हमने वांचभी लीये है. उनोनें वेद मंत्रादिकोंके उपर भी भाष्य बनाया है, उसमें मंत्रोंके अर्थोंमें ऐसा लिखा है कि "अग्निबोट" अर्थात् धूयेकी कलसें चलनेवाले जहाज तथा रेलगाडीके चलनेकी विधि, तथा पृथ्वी गोल है, अरु सूर्यके चारों ओर घूमती है, अरु सूर्य स्थिर है, इत्यादि जो अंग्रेजोने अपनी बुद्धिके बलसें विद्या उत्पन्न करी है, इन सर्व विद्यायोंका वेदोमेंभी कथन है, अपने शिष्योंकों वेदका महत्त्व जनानेके वास्ते स्वकपोलकल्पित अर्थ बना लीये हैं. अरु पूर्वे जो महीधरादि पंडितोने वेदोंके उपर दीपिका तथा भाष्य रचे हैं, उनकी निंदा अर्थात् मूर्खता प्रगट करी है, वे मूर्ख थे, उनकों वेदका अर्थ नहीं आता था.

प्रश्नः-पिछले अर्थ छोड कर जो नवीन अर्थ बनायें गये, इनका क्या कारण है?

उत्तर:-प्रथम तो वेदोंके प्राचीन भाष्य और दीपिका माननेसें वेदोंकी सत्यता, अरु ईश्वरोक्तता, तथा प्राचीनता सिद्ध नहीं होती. इसी वास्ते ईशावास्य उपनिषद् वर्जके सर्व उपनिषदों, और सर्व ब्राह्मण भाग, तथा सर्व स्मृति, पुराणादि शास्त्र, भाष्य, दीपिकादि, मानने छोड दीये, उनोने यह विचार कीया है कि इन सर्व पूर्वोक्त ग्रंथोंके माननेसें हमारा मत दूसरे मतवाले खंडित कर देवेंगे, क्योंकि ये पूर्वोक्त सर्व ग्रंथ युक्ति प्रमाणसें विकल है, अरु प्राचीनोनें जो अर्थ करे है, उनमें बहुत अर्थ ऐसें है, कि जिनोंके सुननेसें श्रोता जनोंकोंभी लज्जा उत्पन्न होती है, क्योंकि महीधरकृत दीपिका जो वेदकी टीका है उसमें मंत्रादिकोंके जो अर्थ लिखे है, उनमें लिखा है कि यज्ञपत्नी घोडेका लिंग पकडके अपनी योनिमे प्रक्षेप करे इत्यादि अर्थ है, सो मैं आगें लिखुंगा इत्यादि अर्थोंके छोडने वास्ते अरु वेदोके खंडन न होने वास्ते स्वकपोलकल्पित भाष्य बना कर मानु अंग्रेजोके चाल चलन, और इंजिलके मतानुसार अर्थ बना

ये गये हैं. परंतु उसकों बुद्धिमान् तो कोइनी मानता नहीं है, अ
मानते है, वो कुछ जानते नहीं है, क्योंकि जब पूर्वले ऋषि, मुनि,
झूठे हैं, अरु उनके बनाये हूये अर्थ असत्य है, तो अबके बनाये
दापि सत्य नहीं हो सकेंगे ? जो जडमेंही झूठ है, वे नवीन रचना
दापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य मा
अरु प्राचीन उन वेदोंके मानने वालोंका संप्रदाय अर्थकों झूठा मा
इससें अधिक निर्विवेकी और अन्यायशिरोमणि कौन है ? क्योंकि जा
चीनोंके बनाये अर्थ झूठे ठहरेंगे, तब तिनके बनाये नये वेदनी झू
ठहरेंगे. इस वास्ते जो मतधारी है, यातो उनको अपणे प्राचीनोंके
न करे हूये अर्थ मानने चाहियें, नहीं तो उस मतको अरु उस म
शास्त्रोंको छोड देनां चाहियें. इसी वास्ते मेरी अैसी श्रद्धा है, कि जो
मतमें प्रामाणिक अरु पंचांगीकारक आचार्य लिख गये हैं, उनके अ
रही हमको कथन करनां चाहिये, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं. जे
कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा, वो जैनमती कदापि नहीं बन सकेगा,
रु उसकी कल्पनाभी सर्वथा सत्य नहीं होवेगी ? क्योंकि जब सर्व म
के पूर्वाचार्य झूठे ठहरेंगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर स
बन वेठेंगे ? इस वास्ते पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पंचांगीके प्रमाणसे नहीं दे
सका हूं, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विछेद हो गये हैं, तथा २ आर्यरक्षित
के समयमे चारों अनुयोग तोडके पृथक्त्वानुयोग रचा गया है, तथा
स्कंदिल आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पडा था, उसमें शास्त्र
उसें भूल गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मथुरामें समाज करके
स जिस आचार्य, साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो स्थल, कंठ रह
था, सो सो स्थल एकत्र करकें लिखा गया, ४ पीछे देवर्द्धि गणि क्षमा
ण प्रभृति आचार्योंने पत्रोंके उपरि एक क्रोड ग्रंथ लिखा, शेष छोड
ये, ५ प्रभावक चरित्रमें लिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका लिखी थी,
सर्व विछेद हो गइ. ६ तथा पीछेसें ब्राह्मणोने तथा बौद्धोने ग्रंथोंका ना
किया, ७ तथा मुसलमानोने तो सर्वमतोंके शास्त्र भट्टीमें मिलाय दी
तिनमेंसें जो रह गये, वे भंडारोंमें गुप्त रहनेमें गल गये, तथा जो
भंडारोंमें है, वे सर्व हमने वांचे नहीं हैं, तो फेर इतने उपद्रव जन

र्गोमें बीतनेंसें हम क्योंकर सर्व शंकायोंका समाधान कर सके ? इस वा स्ते जिनमतमें शंका न करनी चाहियें. हमनें सर्वमतोंके शास्त्र देखे है, परंतु जैनमत समान अति उत्तम मत कोइ नहीं देखा है, इस वास्ते इस मतमें दृढ रहनां चाहियें, १ शंका अतिचार उसकों कहते है, कि जो जिनवचनोंमें शंका करे, जैसेंकि ए वार्त्ता जिनेश्वर देवकी कही सत्य है, वा नहीं ? यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा आकंक्षा अतिचार, सो अन्यमत वालोंका अज्ञान कष्ट देख कर तथा किसी पाखंमीके पास किसी विद्यामंत्रका चमत्कार देख कर तथा पूर्व जन्मके अज्ञान कष्टके फल करकें अन्यमत वालोंकों सुखी अरु धनवान् देख कर मनमें विचारें जो अन्यमत वालोंका धर्म अरु ज्ञान अछा है, जिसके प्रजावसें वे धनी, अरु पुत्र आदि परिवार वाले होते है, इस वास्ते मेंजी इनहीका धर्म करुं, कि जिस कर के मैंजी धनी, अरु पुत्रादि परिवार वाला हो जाउंगा, यह आकांक्षा अतिचार, उन जीवोंको होता है, कि जिनको जिनधर्मका अछी तरेसें बोध नहीं है, क्योंकि जैनधर्मवालेजी सर्व दरिद्री अरु पुत्रादि परिवारसें रहित नहीं है, तैसें ही अन्यमत वालेजी सर्व धनी अरु परिवारवाले नहीं है, इस वास्ते सर्व अपने अपने पूर्व जन्म जन्मांतरके करे हूए पुण्य पापके फल हैं, क्योंकि जे जीव, मनुष्य जन्ममें सात कुव्यसनी है, अरु कसाइ, वागुरी (बुचड) प्रमुख कितनेक धनी (धनवाले) अरु पुत्रादि परिवारवाले है, अरु कितनेक इस अवस्थासें विपरीत हैं, इस वास्ते यही सत्य है कि पूर्व जन्ममें करे हूए सुकृत डुकृतका फल है, प्राय· इस जन्मके कृत्यों का फल नहीं है, सर्व मतोंवाले राजा हो चुके हैं, अरु रंकजी बहुत हैं, इस वास्ते अन्यमतकी आकाङ्क्षा न करे, जे कर करे, तो डुसरा अतिचार.

३ तीसरा वितिगिछा नामक अतिचार है, सो कोइ जीव अपणे पूर्व जन्मके करे हुये पापोंके उदयसें डुःख पाता है, तब ऐसा विचार करे, जो मैं धर्म करता हूं, तिसका फल मुजे कब मिलेगा ? अर्थात् मिलेगा कि नहीं ? अरु जो धर्म नहीं करते है, वो सुखी है, अरु हम तो धर्म करते हैं, तोजी डुःखी है,इस वास्ते कौन जाने धर्मका फल होवेगा कि नहीं होवेगा ? तथा साधुके मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखत देख कर मनमें

जायंगे कि जिनोके किसी बातका नियम नही, हाथी, घोडे, रेल प्रमुखकी असवारी करनी, तथा जो फल हैं, सो सर्व भक्षण करने, धन रखणां, मकान बांधणे, खेती करणी, गौ, भैस, हाथी, घोडे, रथ, शस्त्र रखणे, इन वलसें लोकों पासों धन ले लेनां, स्त्रीयोंसें विषय सेवन करनां, त्रा खानां, मांसभक्षण करनां, मदिरा पीनां, भांगके रगडे, चरसकी जमें उडानां, पगोंकों तथा शरीरकों वेश्याकी तरें मांजनां, चित्तमें वडा अभिमान रखना, दंभ पेले, गस्त करने जानां, इत्यादि अनेक साधुओंके अनुचित काम करने, फेर श्रीश्री स्वामीजी महाराज बन वैठनां, हम महंत है, हम गद्दीधर हैं, हम भट्टारक हैं, हम श्रीपूज्य हैं, हम जगत्का उद्धार करते हैं, हम वडे अद्वैत ब्रह्मके वेत्ता है, हम शुद्ध ईश्वरकी उपासना बताते है, मूर्त्तिपूजन पाखंडका नाश करते है.

अब भव्य जीवोंकों विचार करनां चहियें कि यह पूर्वोक्त कुगुरु क्या जलके स्नान करनेसें संसारसमुद्रसें तर जायंगे ? अरु जो जीवहिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री, अरु परीग्रह, इन पाचोंके त्यागी, शरीरमें ममत्व रहित, प्रतिबंध रहित, काम क्रोधके त्यागी, महातपस्वी, मधुकर वृत्तिसें भिक्षा लेने वाले इत्यादि अनेक गुण सुशोभित है, वे क्या जलमें स्नान न करनेसें पातकी हो जावेंगे ? कदापि न होवेंगे. इस वास्ते साधुकों देख कें जुगुप्सा न करनी, जे कर करे, तो तीसरा अतिचार लागे ॥

चौथा मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसारूप अतिचार है, मिथ्यादृष्टि उसकों कहते है, जो जिनप्रणीत आज्ञासें बाहिर है, क्यों कि सर्वज्ञके कहे हूए वचनकों तो वो मानता नही, अरु असर्वज्ञोके कहे हूए शास्त्रोंकों सच्चा मानता है, उन शास्त्रोंमें जो अयोग्य बातें कही हैं, उनके छिपाने वास्ते स्वकपोलकल्पित भाष्य, टीका, अर्थ, बना करकें मूर्खलोकोंकों वहकाते गल्ल बजाते फिरते हैं, औ जिनके नियमधर्म कोइ नही, कृपण पशुयोंकों मार जानते है, धूर्त्तपणेंते सच्चा बन कर मूर्खोंकों मिथ्यात्व जालमें फसाते है, ऐसे मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनकी प्रशंसा करनी, तथा जो अज्ञानी जिनाज्ञासें बाहिर है, उनकों कहनां कि ये वडे तपस्वी हैं ? महापुरुष है ? वडे पंडित हैं ? इनके बराबर कोन है ? इनोने धर्मकी वृद्धि वास्ते अवतार लीया है ? तथा मिथ्यादृष्टि कोइ व्रत यज्ञादि करे, तब ति

सकी प्रशंसा करे कि तुम बडा अच्छा काम करते हो, तुमारा जन्म स है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मि दृष्टिके साथ बहुत मेल (मिलाप) रखे, एक जगें भोजन संवास क इत्यादि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसें मिथ्याद वासना लग जानेसें धर्मसें भ्रष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्याद बहुत परिचय करनां ठीक नहीं यह पांचमा अतिचार है.

अब जब गृहस्थको सम्यक्त्व देते है, तब उसकों गुरु ६ आगार जाते है. जे कर ये ६ कारणोसे तुमकों कोइ अनुचित कामभी करन डे, तो तुमकों ये ६ आगार रखाये जाते हैं, जिनसें तुमारा सम्यक्त्व लंकित न होवेगा, सो ६ आगार कहते हैं.

१ प्रथम "रायाभिओगेणं" सो राजा उस नगरका स्वामी जे क राजा कोइ अनुचित काम जोरावरीसें करावे, तो सम्यक्त्वमें दूषण

२ दूसरा "गणाभिओगेणं" गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, वे कहे, यह काम तुम जरुर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमकों बहा देवेंगी, उस वखत जे कर वो काम करना पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचार

३ तीसरा "बलाभिओगेणं" सो बलवत चोर म्लेछादि तिनोंके व नेंतें वो कोइ अपनी जोरावरीसें अनुचित काम करवावे, तोभी दूषण

४ चवथा "देवाभिओगेणं" सो कोइ दुष्ट देवता क्षेत्रपालादि व्यंत रीरमें आवेश करकें अनुचित काम करावे, तो भंग नहीं. तथा को तो मरणांत दुःख देवे. तब मनमें धैर्य न रहे, तब मरणांत कष्ट ज कोइ विरुद्ध काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचारभंग नहीं.

५ पांचमा "गुरुनिग्गहेणं" गुरु सो माता, पितादि उनके आग्रह व अनुचित करणां पडे, तथा गुरु कहियें, धर्माचार्यादि, तथा जिनम सो कोइ अनार्य गुरुकों संकट देता होवे, तथा जिनमंदिरकों तोड व, जिनप्रतिमाकों खंडन करता होवे, सो गुरु निग्रह है. तिनोंकी वास्ते कोइ अनुचित काम करणां पडे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

६ छठा "वित्तिकंतारेण" वृत्ति जे दुष्कालादि आपदा-आ प आजीविकाके वास्ते किसी मिथ्यादृष्टिके अनुसार चलनां पडे, तथा

विकाके वास्ते कोइ विरुद्ध आचरण करनां पडे, तो दूषण नहीं. एक यह छै वस्तुके आगारोंकों छै भंगी कहते हैं तथा चार आगार और है, सो कहते हैं.

१ "अन्नत्थणाभोगेण" अस्यार्थः कोइ कार्य अजाण पणे उपयोग दीयां विना औरका और हो जावे, अरु जब याद आ जावे, तब वो का फेर न करे, यह प्रथम आगार.

२ "सहस्सागारेणं" सो अकस्मात् कोइ काम करे, अपणे मनमें जा नता है, यह काम मैंनें नही करणां, परंतु योगोंकी चपलतासें तथा नि बहुत अभ्याससेंती जानता हूआभी विरुद्ध कार्य हो जावे, तो सम्यक्त्वमें भंग नही यह दूसरा आगार.

३ "महत्तरागारेणं" सो कोइ मोटा लाभ होता है, परंतु सम्यक्त्वमें दू षण लगता है. तथा कोइ मोटा ज्ञानीकी आज्ञासें कमवेशी करनां पडे, तो यहभी आगार है यह तीसरा आगार

४ चौथा "सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं" सो सर्व समाधिव्यत्ययसें कोइ बडा सन्निपातादि रोगोंके विकृयसेंती बावरा हो जावे, तथा अतिवृद्ध हो जानेंसें स्मृतिभंग हो जावे, तथा रोगादिक आयें मनमें आर्त्तध्यान हो जा नेंसें, तथा सर्पादिके डंक मारणेसें, इत्यादि असमाधिमें यह आगार है. इससें सम्यक्त्व तथा व्रत भंग नही होता है, परंतु किसी मूर्खके कहे सुनें से आर्त्तध्यानमें प्राण त्यागने योग्य नही, कितनेक जिनमतके अनभिज्ञों का यह भी कहनां है, कि चाहो कुछ हो जावे, तोभी जो नियम लीया है, उसकों कभी तोडनां न चाहिये, परतु यह कहना सर्वथा ठीक नहीं. क्यों कि जब पहिलांहि आगार रखे गये, तो फेर व्रतभंग क्यों कर हू आ? अरु जो आर्त्तध्यानमें मरजाते हैं, अरु आगार नही रखते हैं, वे जिनमार्गकी शैलीके अजान है, इस वास्ते छै भंगी, अरु चार आगार, स र्वे बारोही व्रतोमें जाननें, अरु साधुके सर्वप्रत्याख्यानोंमें अनशन पर्यंत य ही चार आगार जानने ॥ इतिश्री तपगच्छीये गणिश्रीमणिविजय तच्छिष्य मु निश्री बुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम अनंदविजयविरचिते जैनत त्वादर्शे सम्यग्दर्शननिर्णयनामा सप्तमपरिच्छेद. संपूर्ण ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम परिछेद प्रारंभः ॥

इस परिछेदमें चारित्रका स्वरूप लिखते हैं. चारित्र धर्मके दो भे एक सर्वचारित्र, एक देशचारित्र, उसमें सर्वचारित्र धर्म तो सा होता है, तिसका स्वरूप गुरुतत्त्व परिछेदमें लिख आये हैं. तहांसें ज लेनां अरु देश चारित्रके बारह भेद हैं, सो गृहस्थका धर्म है, सो ह व्रतोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं. तिनमें प्रथम स्थूलप्राणाति व्रतका स्वरूप लिखते हैं.

१ प्रथम प्राणातिपातविरमणव्रतके दो भेद है. एक द्रव्यप्राणाति दूसरा भावप्राणातिपात व्रत, तिनमें द्रव्य पाणातिपात व्रत ऐसें है, कि जीवोंकों अपणी आत्मा समान जान करके तिनके दश द्रव्यप्राणोंकी र करे, सो द्रव्यप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें. ये व्यवहार दयारूप है.त दूसरा भावप्राणातिपात. सो अपणा जीव कर्मके वश पडा हूआ दुःख पा है, अपणे जे भाव.प्राण, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक, तिनका मिथ्यात्व क यादिक अशुद्ध प्रवर्त्तनसें प्रतिक्षण घात हो रही है, सो अपणे जीवकों र्मशत्रुसें छुडाने वास्ते उपाय करणा, सो उपाय यह है, क आत्मरम ता करे, परभाव रमणता त्यागे, शुद्धोपयोगमें प्रवर्त्ते, कर्मके उदयमें व्यापक रहे, एक स्वभावमग्नता, यही समस्त कर्मशत्रुके उछेद करने अमोघ शस्त्र है. एतावता सकल परभाव इष्टता दूर करी, स्वरूप सन्मु उपयोग रखे, तिसका नाम भावप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें, इसी नाम भाव दयाहै. इहां स्थूल नाम मोटा दृष्टिगोचर हाले. चाले, ऐसा त्रस जीव तिसको संकल्प करके न हणूंगा.

इहां हिंसा चार प्रकारकी है एक आकुट्टी, सो निषेध वस्तुकों उत्स हसें करे, जैसें सपूर्ण फलका भक्षण करना, श्रावककों निषेध है, क्यों जितने जितने फल खानेमें रखे हैं, उन फलोंमेंसूंभी किसी फलका भ या नहीं करनां, अरु जो मनमें उत्साह धरके भक्षण करे, तो आकुट्ट हिंसा होवेः दूसरी दर्पहिंसा. सो जिनके उछरंगसे (उन्मत्तपणेसें) मन गमे धमके दौड करे. जैसे गाडी घोडा प्रमुख दौडते हैं. यह आकुट्टी व

हिंसा है. तीसरी प्रमादहिंसा, सो आकुट्टी अर्थात् जानके काम जोगमें तीव्र अभिलाषासें कामका जोस चढाने वास्ते त्रस जीवकी हिंसा करे, ऐसी जीवकों मारके गोली माजुम प्रमुख बना करकें खावे, सो आकुट्टी प्रमादहिंसा है चौथी कल्पहिंसा, सो अपणा घरका काम काज, रंधण, पीसणादि करते त्रस जीवकी हिंसा हो जावें, सो प्रमादहिंसा है. इन चारो हिंसायोमें प्रथम हिंसा तो बिलकुल नहीं करणी, तिस वास्ते यहां संकल्प करकें आकुट्टी, तथा दर्प करकें त्रस जीव हणनेका त्याग करे, जैसें यह कीडी जाती है, इसकों मै मारुं? ऐसे संकल्प करके हणे,हणावे, तिसकों आकुट्टीसंकल्प कहते है. ऐसें संकल्प कर कें निरपराधी जीवोंकों विना कारणके न हणुं न हणाउं, अरु सांसारिक आरंभ रंधनादि करते, तथा पुत्रादिकके शरीरमें कीडे आदिक जीव उत्पन्न होवे, तदा औषधादि करते यत्नसें करे. तथा घोडा, बलद, प्रमुखको चाबकादि मारणां पडे उसका आगार रखे, तथा पेटमें कृमी, गंडोला, तथा पगमें नहरवा, अर्थात् वाला, तथा हरस. चम. जू, प्रमुख अपणे शरीरमें उपजे, तथा मित्रादिक स्वजनादिकके शरीरमें उपजे, तिसके उपचार करणेकी जयणा रखे, क्योंकि साधुकों तो त्रस, अरु स्थावर, सूक्ष्म, अरु बादर, सर्व जीवोंकी हिंसा नवकोटी विशुद्ध प्रमादके योगोंसें सर्व हिंसाका त्याग है, इस वास्ते साधुकों तो वीस विश्वा दया है, अरु गृहस्थसें तो सवा विश्वा दया पल सक्ती है, तिसका स्वरूप लिखते है.

॥ गाथा छंद ॥ जीवा सुहुमा थूला, संकप्पा आरंभा भवे डविहा ॥ सवराह निरवराहा, साविरका चेव निरविरका ॥ १ ॥ अर्थः—जगत्मे जीव दो प्रकारके है. एक थावर, दूसरा त्रस, तिनमे थावरोके दो भेद है. एक सूक्ष्म, दूसरा बादर, तिनोमें सूक्ष्मजीवोंकी तो हिंसा होतीही नहीं है, क्यों की अति सूक्ष्म जीवोके शरीरकों बाह्य शस्त्रका घाव नही लगता है, परंतु इहां तो सूक्ष्म शब्द, थावर जीव, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, पवन, वनस्पतिरूप जो बादर पाच थावर है, तिनका वाचक है, अरु स्थूलजीव सो द्वींद्रिय तींद्रिय, चतुरिंद्रिय. पंचिंद्रिय, जानना, इन दोनो भेदोंमे सर्व जीव आ गये, तिन सर्वकी त्रिकरणशुद्धसे साधु, रक्षा करता है, तिस वास्ते साधुके वीस विश्वा दया है, अरु श्रावकसें तो पाच थावरकी दया पलती

नहीं है, सचित्त आहारादि करणसें अवश्य हिंसा होती है. इस
दश विश्वा दया दूर हो गई, शेष दश विश्वा रह गइ, एतावता त्रस
जीवकी दया रहे, उस त्रस जीवकेभी दो भेद हैं, एक संकल्पसें दूसरा
दूसरा आरंभसें हननां, तिनमें आरंभ हिंसाका श्रावककों त्याग नहीं है,
किंतु संकल्प हिंसाका त्याग है, अरु आरंभ हिंसामें तो यत्न है,
त्याग नहीं है, क्योंकी आरंभ हिंसा तो श्रावकसें होती है. इस
दश विश्वामेंसूं पांच विश्वा फेर जाता रह्या. एतावता संकल्प करके
जीवकी हिंसाका त्याग है, फेर इसकेभी दो भेद हैं, एक सापराधी है,
सरा निरपराधी है, तिनमें जो निरपराधी जीव है, उसकों नहीं हनना,
रु सापराधी जीवकूं हननेकी जयणा है, जिस वास्ते सापराधी
दया सदा सर्वथा श्रावकसें नहीं पलती है, क्योंकि घरमेंसें चोर चोरी
रकें वस्तु लीये जाता है, सो विना मारे कूटे छोडता नहिं, तथा
की स्त्रीसें कोइ अन्य पुरुष अनाचार सेवता देखनेमें आवे, तिसको
णां पडे, तथा कोइ श्रावक, राजा है, तथा राजाका आदेशसेंती युद्ध
नेकों जावे, तब प्रथम तो श्रावक शस्त्र चलावे नहीं, परंतु जब शत्रु
चलावे मारणेकों आवे, तब तिसकों मारणां पडे, तथा सिंहादि
खानेकों आवे, तब उसकों मारणां पडे, तब संकल्पसेंभी हिंसा
नहीं. इस वास्ते पांच विश्वामेंसूंभी अर्द्ध जाते रहे, पीछे अढाइ विश्वा
रह गइ, मात्र निरपराधी त्रस जीव दृष्टिगोचर आवे, तिसकों न मारुं?
नियम रहा, इसकेभी दो भेद हैं. एक सापेक्ष, दूसरा निरपेक्ष, इनमेंभी
पेक्ष निरपराधी जीवकी श्रावकसें दया नहीं पलती है, क्योंकि श्रावक
आप घोडा, घोडी, बैल, रथ, गाडी प्रमुखकी अस्वारी करके घोडादि
कों हांकता है, तब घोडे आदिककों चाबकादि मारता है, यहां घोडे तथा
बैलादिकोंने कुछ इसका अपराध नहीं करा है, उसकी पीठ ऊपर तो
रहा है, अरु यह जानता नहीं कि इस विचारे जीवकी चलनेकी शक्ति है, कि
नहीं है? जब वे जीव हलवे चलते हैं, तथा नहीं चलते हैं, तब अज्ञान
उदयसें उनकों गालीयां देता है, मारताभी है, यह निरपराधीयोंभी
देता है, तथा अपणे शरीरमें, तथा आपणा पुत्र, पुत्री, न्याती, गोती
स्तकमें तथा कर्णादि अवयवमें तथा अपणे मुखके दांतमें कीडा पडे,

ओंके दूर करणे वास्ते कीडायोंकी जगामें औषधि लगानी पडती है, अरु इन जीवोने श्रावकका कुछ अपराधभी नही करा है, क्योंकि वो बिचारे अपने कर्मोंके वशसें ऐसी योनिमें उत्पन्न हूये है, कुछ श्रावकका बूरा करनेकी भावनासें उत्पन्न नही हूवे है, तो उनकी हिंसाभी श्रावकसें त्यागी नही जाती है, इस वास्ते फेर अर्द्ध जाता रहा. शेष सवा विश्वाकी दया रह गइ, यह सवा विश्वा दयाभी शुद्ध श्रावक होवे, सो पाल सक्ता है, एतावता संकल्पसें निरपराध त्रस जीवोंकों कारण विना हणुं नही, यह प्रतिज्ञा जहां लगि अपणी शक्ति रहे, तहां लगि पाले, निर्ध्वंसपणा न करे, सदा मनमें यह भावना रक्खे, कि मत मेरेसें कोई जीव मर जाय ?

तथा घरमे आरंभ करतेभी यत्न करे, तथा लकडी जलाने वास्ते लेवे, तब सडी हूई न लेवे, परंतु आगेंकों जिसमें जीव न पडे, ऐसी पक्की, सूकी लकडी लेवे, और रसोईकी वखत लकडीकों झटका कर जीव रहित करके जलावे, तथा घी, तेल, मीठ प्रमुख रस भरी वस्तुके वासणका मुख बांध कर यत्नसें राखे, उघाडा न रक्खे, तथा चूलेके उपर अरु पाणीके स्थान उपर चंद्वा अर्थात् छत, उपर कपडा ताणे, तथा खानेकों जो अन्न ल्यावे, सो भीजा हूआ न ल्यावे, शुद्ध नवा अन्न खानेकों ल्यावे, कदापि एक वर्षके उपरांतका अन्न ल्यावे, तो जिसमें जीव न पडे होवे, सो ल्यावे, तथा पाणीके छानने वास्ते बहुत गाढा दृढ वस्त्र रक्खे, एक प्रहर पीछें पाणीकों फेर छान लेवे, जो जीव निकले, सो जीव जिस कूवेका पाणी होवे, उसीमें माल देवे, तथा वर्षा ऋतुमें बहुत जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, तिस वास्ते गाडी, रथकी असवारी न करे, क्योंकि जहा चक्र फिरता है, तहा असंख्य जीवोंका विध्वस होता है, हरिकाय. बहुबीजा फल, त्रस संयुक्त फल, न खावे, तथा खाटमें माकड प्रमुख जीव पड जाते है, इस वास्ते धूपमे न रक्खे, दूसरी खाट बदल लेवे, तथा सड्या हूवा अन्न धूपमें न रक्खे, जूठ पाणी, अन्नके संसर्गवाला मोरीमे न गेरे, क्योंकि मोरीमें बहुत जीव उत्पन्न हो जाते है, अरु मोरीके सड जानेसें घरमे बिमारी हो जाती है, तथा चैत्रवदि एकमसे ले कर पत्तोंवाला शाक, आठ मास तक न खावे, क्योंकि पत्रशाकमे बहूत त्रस जीव उत्पन्न हो जाते है, एक तो त्रस जीवोंकी हिंसा होती है, अरु दूसरा उन त्रस जी

वोंके खानेसें अनेक रोग (बिमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां हैं; श्र काल्में एक मास तथा उष्णकालमें वीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पं दिनके उपरांतकी बनी हुइ मिठाई (पक्वान्न) न खावे, क्योंकि उनमें स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं, अरु खानेवालेकों रोगोत्पत्तिजी हो है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमे जीवो होती है. अरु रोगजी हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें वरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रखे, जिस्सें जीव न म तथा स्नान, बहुत जलसें न करे, अरु रेतली जूमिकामें स्नान करे, त मोटी परातमे बैठके स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोडा करकें गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पु थोडे पापवाला व्यापार मिले. तहां लग महापापकारी व्यापार ना आदिक न करे. तथा किसीका हक्क तोडे नहीं, घरमें जूठे अन्नका दो घडी उपरात न रखे, क्योंकि उसमे जीव उत्पन्न हो जाते हैं, जो वस्तु उठावे, तथा रखे, तब पहिलां उस जगाकों नेत्रोंसें देख पूंज लेवे. पीछेसे वस्तु रखे, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा वत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसें जीवरक्षा करे, तथा जिस पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूठा न मधोवे, क्योंकि मुखकी ल लगनेसें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतोंकी जूठ खाने पीनेसे बुद्धि कमण हो जाती है, अरु केइक रोग ऐसे है कि जिस रोगीका जूठा ख पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेकों लग जाता है, सो रोग है कि कुष्ट, क्षय, रेजस, शीतला वगरे. इस वास्ते वस्तु जूठी न क अरु बहुतोंके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसे पाणी काढते दंमीदार काठका चट्टू रखे. इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवर्ते, तो आव दया,सवा विश्वा होवे. इसी रीतीसें प्रथम व्रत श्रावकके शुद्ध है, इ तके पांच अतिचार है, अर्थात् पांच कलंक हैं,तिनकों वर्जे,तो निर्मल

१ प्रथम वधअतिचार सो क्रोधके उदयसें, अरु वजके अनिमल निर्दय हो कर गाय,घोडा,प्रमुखकों कूटे,मारके चलावे,सो प्रथम अति

२ दूसरा बंधअतिचार. सो गाय, बलद, बकरा प्रमुख जीवोंको न उवरा बंधनसें बांधे, वो जीव कठिन बंधनसें अति दुःख पावे

रु कदापि अग्निका जय हूआ तो जलदि छूट नहीं सकते हैं, तब मर भी जाते है, इस वास्ते कठिन बंधनभी अतिचार है, इस हेतुसें जनावरकों ढीले बंधनसें बांधनां चाहियें. अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उसकोंभी निर्दय हो कर गाढा बंध न बांधनां चाहियें, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा छविछेद अतिचार है. सो बैल प्रमुखका कान, नाक, छिदावे, नथ गेरे, खस्सी करे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चउथा अतिभारारोपण अतिचार है, सो बैल प्रमुखके उपर जितना भार लादनेकी रीती है, तिस्सें अधिक भार लादे, तब अतिभारारोपण अतिचार होता है, श्रावककों तो सदा जिस बैल, रासभ, गाडी प्रमुखमें भार लादते होवे, उस्सेंभी पांच सेर, दश सेर. भार कम लादनां चाहियें, तो व्रत शुद्ध रहे. तिसमेंभी जे कर कोइ जानवरकी चलनेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे, सो तिस भारकोंभी थोडा कर देवे, अरु जानवर डुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, परंतु मनमें ऐसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना भार लादते है, तिनके बराबर मैंभी लादता हूं, यह तो व्यवहार शुद्ध है. ऐसा न विचारे, अधिक बोझ होवे, तो और भाडा कर लेवे, श्रावकोंका यह व्यवहार है.

५ पांचमा अतिचार भात पाणीका व्यवछेद करनां, सो जो बलद घोडेके खाने योग्य होवे, सो बंद कर देवे, अथवा उसमेंसूं कछुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लंघा कर पीछें खानेकों देवे, तो अतिचार लगे. तथा किसीकी आजीविका नौकरी बंद करे, वोभी इसी अतिचारमे है. श्रावक तो दासी, दास, कुटुंब, चौपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले कें पीछे आप भोजन करे अरु उपलक्षणसें हिंसाकारी मंत्र, तंत्रादि किसीकों करे, वेभी अतिचार जानने. यह पांच अतिचार, श्रावक जान तो लेवे, परंतु करे नही. यहा बारह व्रतोंके सर्व अतिचार भंग होनेके संभवासंभवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेंद्रसूरिकृत है, सो देख लेनी, इहां तो नि.केवल अतिचारही मै लिखूंगा ॥ इति श्रावक प्रथम व्रत संपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृषावाद विरमणव्रतका स्वरूप लिखते है. स्थूल नाम है, मोटेका उस मोटे झूठका विरमण (त्याग) करनां, क्योंकि झूठ

वोंके खानेसें अनेक रोग (बिमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां है, अरु कालमें एक मास तथा उष्णकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंद्र दिनके उपरांतकी बनी हुइ मिठाई (पक्वान्न) न खावे, क्योंकि उसमें त्र स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं, अरु खानेवालेकों रोगोत्पत्तिभी हो जा है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमे जीवोत्प होती है अरु रोगभी हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें वरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रखे, जिस्सें जीव न म तथा स्नान, बहुत जलसें न करे, अरु रेतली भूमिकामें स्नान करे, त मोटी परातमें बैठकें स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थो थोडा करकें गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पर्य थोडे पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नो आदिक न करे. तथा किसीका हक्क तोडे नही, घरमें भूठे अन्नका पा दो घडी उपरात न रखे, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, त जो वस्तु उठावे, तथा रखे, तब पहिलां उस जगाकों नेत्रोंसें देख के पूंज लेवे, पीछेसें वस्तु रखे, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा दी बत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसें जीवरक्षा करें, तथा जिस पात्र पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें भूठा न मवोवे, क्योंकि मुखकी ला लगनेंसें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतोंकी भूठ खाने पीनेसें बुद्धि क्रमण हो जाती है, अरु केइक रोग ऐसें है कि जिस रोगीका भूठा खा पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेकों लग जाता है, सो रोग य है कि कुष्ट, क्षय, रेजस. शीतला वगरे. इस वास्ते वस्तु भूठी न करन अरु बहुतोके साथ एकठा खावे नही, अरु मटकेसें पाणी काढने वा दंडीदार काठका चहू रखे. इत्यादि शुद्ध व्यवहारमे प्रवर्ते, तो श्रावक दया,सवा विश्वा होवे. इसी रीतीसें प्रथम व्रत श्रावकके शुद्ध है, इस तके पाच अतिचार हैं, अर्थात् पाच कलंक है,तिनकों वर्जे,सो लिखते

१ प्रथम वधअतिचार. सो क्रोधके उदयसें, अरु बलके अभिमान निर्दय हो कर गाय,घोडा,प्रमुखकों कूटे,मारके चलावे,सो प्रथम अतिचा

२ दूसरा बंधअतिचार. सो गाय, बलद, बछडा प्रमुख जीवोंकों न जबरा बंधनसें बाधे, वो जीव कठिन बंधनसें अति दुःख पाते

रु कदापि अग्निका नय हूआ तो जलदि छूट नही सकते हैं, तब मर भी जाते है, इस वास्ते कठिन बंधनजी अतिचार है, इस हेतुसें जनावर कों ढीले बंधनसें बांधनां चाहियें. अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोंजी निर्दय हो कर गाढा बंध न बांधनां चाहिये, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा छविछेद अतिचार है. सो बैल प्रमुखका कान, नाक, छिदा वे, नथ गेरे, खस्सी करे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चउथा अतिनारारोपण अतिचार है, सो बैल प्रमुखके उपर जितना नार लादनेकी रीती है, तिस्सें अधिक नार लादे, तब अतिनारा रोपण अतिचार होता है, श्रावककों तो सदा जिस बैल, रासन, गाडी प्रमुखमें नार लादते होवे, उस्सेंजी पांच सेर, दश सेर. नार कम लादनां चाहियें, तो व्रत शुद्ध रहे. तिसमेंजी जे कर कोइ जानवरकी चल नेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे, सो तिस नारकोंजी थोडा कर देवे, अरु जानवर दुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, परंतु मनमें ऐसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना नार लादते हैं, तिन के बराबर मैंजी लादता हूं, यह तो व्यवहार शुद्ध है. ऐसा न विचारे, अधिक बोज होवे, तो और जाडा कर लेवे, श्रावकोंका यह व्यवहार है.

५ पांचमा अतिचार नात पाणीका व्यवछेद करनां, सो जो बलद घोडेके खाने योग्य होवे, सो बंद कर देवे, अथवा उसमेंसूं कछुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लंघा कर पीछें खानेकों देवे, तो अतिचार लगे. तथा किसीकी आजीविका नोकरी बंद करे, वोजी इसी अतिचारमें है. श्रावक तो दासी, दास, कुटुंब, चौपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले कें पीछे आप नोजन करे अरु उपलक्षणसें हिंसाकारी मन्त्र, तंत्रादि किसीकों करे, वेजी अतिचार जानने यह पांच अतिचार, श्रावक जान तो लेवे, परतु करे नही. यहा बारह व्रतोंके सर्व अतिचार नंग होने के सनवासंनवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेंद्रसूरिकृत है, सो देख लेनी, इहां तो नि.केवल अतिचारही मै लिखूं गा ॥ इति श्रावक प्रथम व्रत संपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृषावाद विरमणव्रतका स्वरूप लिखते है. स्थूल नाम है, मोटेका उस मोटे कूठका विरमण (त्याग) करना, क्योंकि कूठ

बोलनेसें जगत्में उसकी अप्रतीति हो जाती हैं, अपयश होता है, धर्मकी निंदा होती है, तथा अपणे मतलब वास्ते जो कम वेश करना, इसका जो त्याग, सो मृषावादविरमणव्रत कहते हैं. तिस मृषावादके दो जेद हैं, एक द्रव्यमृषावाद, दूसरा जावमृषावाद, तिनमें जो जान करके तथा अजान पणेसें फूठ बोले, सो द्रव्यमृषावाद है, तथा सर्व परजाव वस्तुकों अर्थात् पुजलादि जड वस्तुकों आत्मत्व बुद्धि करके अपणा कहे, तथा राग, द्वेष, कृष्णादि लेश्यासें आगमविरुद्ध बोले, शास्त्रका सत्य अर्थ कुयुक्तिसें नष्ट करे, उत्सूत्र बोले, उसकों जावमृषावाद कहते हैं.

यह व्रत सर्वव्रतोमें मोटा है, इसके पालनेमें बहुत शुद्धउपयोग अरु हुस्यारी चाहियें, क्यों कि प्रथमव्रतमें तो जीव मात्रके जाननेसें दया पल सक्ती है. अरु दूसरोंकी वस्तुकों बिना दीये न लेनेसें अदत्तविरमण तीसरा व्रत पल जाता है, तथा स्त्री मात्रका संग त्यागनेसें चौथा व्रत पलता है, तथा नवविध परिग्रहके त्यागनेसें परिग्रहव्रतजी पलजाता है, इसी तरें एकेक द्रव्यके जाननेसे यह चारो व्रत पाले जाते है, अरु मृषावाद विरमणव्रत तो जहां लगि षट्द्रव्यकी गुणपर्यायसें तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, जावकी अञ्ची तरेसें पिछाण न होवे. सम्मति प्रमुख द्रव्यानुयोगके शास्त्र न पढे, बहुत निपुन ज्ञानवान् न होवे, तहां तलक पालना कठिन है, क्योंकि एक पर्यायमात्रजी विरुद्ध जाषण करनेसें यह व्रत जंग हो जाता है, इसी वास्तेही साधुओंकों बहुत बोलणा शास्त्रमें निषेध करा है, अरु जे पूर्वोक्त चारों महाव्रतोमेंसूं एक महाव्रत जेकर जंग हो जावे तब तो चारित्र जंग होवे, अरु नहीजी जंग होवे, क्योंकि जे कर एकवेर कुशील सेवे, तो सर्वथा चारित्र जंग होवे,शेष व्रतो खंमनसें देशजंग होवे परतु सर्वथा जंग नहीं होवे, यह व्यवहार जाष्यमें कहा है परंतु उसका ज्ञान, दर्शन, जंग नहीं होवे, अरु जब मृषावादविरमणव्रत जंग होवे, तब तो ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह तीनोही जडामूलसें जाते रहते हैं. अरु मर करकें डुर्गतिमें जाता है, अनत संसारी डुर्लजबोधी हो जाता है, इस वास्ते जे कर यह व्रत पालनां होवे, तो षट्द्रव्यके गुण पर्याय जाननेमें अति उद्यम करे, जे कर बुद्धिकी मंदता होवे तब गीतार्थके कहने प्रमाण श्रद्धा प्ररूपणा करे, क्योंकि द्रव्यमृषावाद

त्यागी जीव तो षट् दर्शनमेंन्नी हो सक्ते है, परंतु नावमृषावादका त्यागी तो एक श्रीजिनेंद्रदेवके मतमेंही मिलेगा, जो जीव श्रद्धारुचि धारेगा, सोइ होवेगा. अब इस मृषावादके पांच मोटे नेद हैं, सो श्रावककों अवश्य वर्जने चाहियें, सो कहते है.

१ प्रथम कन्यालीककूठ, सो अपणे मिलापीकी कन्या है, उसकी सगाइ होने लगी होवे, तब कन्याके लेने वाले पूछे कि यह कन्या कैसी है? तब वो मिलापीकी प्रीतिसें उस कन्यामें जो दूषण होवे, सो छिपावें, गुण न होवे, तोन्नी अधिक गुणवाली कह देवे, कि यह कन्या निर्दोष है, अैसी कुलवान्, लक्षणवान्, साक्षात् देवांगना समान तुमको मिलनी मुशकिल है, अैसा कह देवे, अरु जे कर मिलापीके साथ द्वेष होवे, तदा वो कन्या जो निर्दोष लक्षणवती होवे, तोन्नी कहे कि इस कन्यामें अछे लक्षण नहीं है, बिडालनेत्री है, इसके साथ जो संबंध करेगा, वो पश्चात्ताप करेगा, अैसे अणहोये दूषण बोल देवे, यह कन्यालीक कूठ है प्रथम तो व्रतधारी श्रावक किसीकी सगाइ जगडेमें पडे नही, अरु जे कर आपणा संबंधी मित्रादिक होवे वो पूछे, तब यथार्थ कहे, कि न्नाइ! तुम अपणा निश्चय कर लो, क्योकि जन्मपर्यंतका संबंध है, अैसे कहे, परतु कूठ न बोले. यह कन्यालीकमें उपलक्षणसेंती सर्व दो पगवालेका कूठ न बोले.

२ दूसरा गवालीक कूठ. सो सर्व चौपद जो हाथी, घोडा, बलद, गाय, नैस, प्रमुख संबंधी कूठ न बोले.

३ तीसरा नूम्यालीक कूठ. सो दूसरेकी धरतीको अपनी कहे, तथा औरकी नूमिकों औरकी कहे, तथा घर, हवेली, वाडी, बाग, (बगीचा) वृक्षादिक, संबंधी तथा सर्व परीग्रह संबंधीन्नी कूठ न बोले.

४ चौथा थापणमोसाका कूठ है. कोइ पुरुष श्रावकको प्रतीत वाला जान कर, उसके पास विना साक्षी तथा लिखत करे विना कोइ वस्तु रख गया है, फिर वो मांगनें आवे, तब नामुकर जावे, कहे कि मैं तुम कों जानताही नही, तुम कौन हो? अैसा कूठ बोलके उसकी वस्तु रख लेवे, यहन्नी श्रावकनें नहीं करनां

५ पांचमा कूठी साक्षी नरनी. सो दो जणे आपसमे जगडते हैं, तिस में कूठे पासों धन ले कर अथवा उसके मुहलाह जैसं कूठी गवाही देनी,

यहनी काम श्रावकने नहीं करनां, इस व्रतके पांच अतिचार श्राव[illegible]

१ प्रथम सहसाभ्याख्यान अतिचार. सो विना विचारे किसीकों [illegible] देनां कि तूं व्यभिचारी है, जूग है, चोर है, इत्यादि कहनां, जे कर [illegible] क तो किसीका प्रगट कोइ अवगुण देखे, तोनी अपणे मुखसें न [illegible] तो फेर कलंक देणां, वो तो महापाप है, सो कैसें करे ?

२ दूसरा रहसाभ्याख्यान अतिचार है. सो केइ पुरुष एकांत कुछ मता करते है, उनकों देखकें कहे, कि तुम राजविरुद्ध मता हो, ऐसें कह कर उनकी नंमी करे, राजदंम दिलावे, ए द्

३ तीसरा स्वदार मंत्रनेद अतिचार है, सो अपणी स्त्रीने कोइ बात अपणे पतिसें कही है,वो बात लोकोमें प्रगट करे, उपलक्षणसे प्रमुखकी कही बात प्रगट करे, क्योकि लज्जनीय बातके प्रगट होनेसें, आदिक कूपा दिकमें मूब मरती है.

४ चौथा मृषाउपदेश अतिचार है. सो दूसरलयोकों जूठी वस्तुके करने[illegible] उपदेश करे, तथा विषय सेवनेंके चौरासी आसन सिखावे, तथा दूस[illegible] योंको दुःखमें पडनेका उपदेश करे, तथा वीर्यपुष्ट होनेकी औषधि [illegible] लावे, जिस्सें वो बहुत विषय सेवे, जिस्में विषय कषाय उत्पन्न होवे,[illegible] उपदेश करे. यह सर्व मृषाउपदेशनामा चौथा अतिचार है.

५ पांचमा कूटलेखकरण अतिचार है. सो किसीके नामका जूग [illegible] वही बना लेनां, अगले अंकको तोडके और बना देनां, तथा अक्षर खुरच गेरना, जूठी मोहर गप बना लेनी, इत्यादिक कूट लेख अतिचार है, यह पांच अतिचार अरु पांच प्रकारका पूर्वोक्त जूठ, सो नरकादि गति के कारण जान कर श्रावक वर्जे ॥ इति दूसरा व्रत.

३ अथ तीसरा स्थूल अदत्तादानविरमणव्रत लिखते है प्रथम मोटी चोरी नींत फोडी कुंनल देकर अथवा एकलेकों, रस्तेमें ठल बल करकें ठग लेनां, जबर दस्तिसें किसीकी वस्तु खोस लेनी, नजर बचाके किसीकी वस्तु उठा लेनी, अरु कोइ वस्तु धर गया है, जब वो मांगने आवे तब नामुकर जावे, तथा हीरा, मोती, पन्ना प्रमुख जूठे सच्चेका अदल बदल कर देवे, इत्यादि अदत्तादान अर्थात् चोरीका स्वरूप है. इसके करनेमें परलोकमें खोटी नरकादि गति प्राप्त होती है. अरु इस लोकमंनी प्रगट

जावें, तो राजदंम, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते श्रावक अद दानका त्याग करे. इस अदत्तादान व्रतके दो नेद है सो कहते है.

प्रथम ड्व्य अदत्तादानविरमण व्रत. सो पूर्वोक्त प्रकारसें दूसरांयोंकी स्तु पडी विसरी लेवे नही, सो ड्व्य अदत्तादान विरमणव्रत जानना

दूसरा नावअदत्तादानविरमण व्रत. सो पर जो पुजल ड्व्य, तिसकी ी रचना. वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि रूप, तेवीस विषय, तथा आठ कर्म ी वर्गणा, यह सर्व पराइ वस्तु है,सो वस्तु तत्त्वज्ञानमें जीवकों अग्राह्य है, तिसकी जो उदय नाव करके वांछा करणी, सो नाव चोरी है. तिस कों जिनागमके सुननेसें त्यागनां, पुजलानंदी पणा मिटानां, सो नाव अ त्तादानविरमणव्रत कहीये जो जो कर्मप्रकृतिका बंध मिटा है, सो नाव अदत्तविरमणव्रत कहियें. सामान्य प्रकारसें अदत्तके चार नेद है.

प्रथम किसीकी वस्तु, विना दीये ले लेनी, इसका नाम स्वामीअदत्त है. दूसरा सचित्त वस्तु अर्थात् जीववाली वस्तु फूल, फल, वीज, गुछा, पत्र, कंद, मूलादिक, तथा बकरा, गाय, सुअरादिक, इनकों तोडे, छेदे, नेदे, काटे, सो जीवअदत्त कहियें. क्योंकि फूलादि जीवोने अपणे शरीरके छेदने नेदनेकी आज्ञा नहिं दीनी है, जो तुम हमकों छेदो, नेदो, इस वास्ते इसका नाम जीव अदत्त है. तीसरा जो वस्तु, तीर्थंकर अर्हतनें निषेध करी है, तिसका जो ग्रहण करणां, जैसे साधुकों अशुद्ध आहार लेनेका निषेध है, अरु श्रावककों अनक्ष्य वस्तु ग्रहण करणेका निषेध है, सो इन पूर्वोक्तकों ग्रहण करे, तो इसका नाम तीर्थंकर अदत्त है. चौथा गुरु अदत्त. सो जैसें कोइ साधु शास्त्रोक्त निर्दोष आहार व्यवहार शुद्ध ल्यावे, पीछें उस आहारकों जो गुरुकी आज्ञा विना खावे, सो गुरु अदत्त है.

यह चारो अदत्त, संपूर्ण तो जैनका यतिही त्याग सक्ता है, गृहस्थसे तो एक स्वामी अदत्तही त्यागा जाता है, इस वास्ते इसीकी यहां मुख्यता है, तिस वास्ते पराइ वस्तु पूर्वोक्त प्रकारसे लेनी नही, जे कर ले लेवे, तो चोर नाम पडे, राजदंम होवे, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते न लेनी चाहिये. अरु जिस वस्तुकी वहुत मनाइ नही है, लेनेसें चोर नाम नहीं पडता है, तिसकी जयणा करे, अरु किसीकी गिरी पडी वस्तु मिल जावे, पीछें जे कर जान जावे कि यह वस्तु अमुककी है, तव तो उसकों

दे देवे, जे कर उस वस्तुके स्वामीकों न जाने, अरु अपणा मन दृढ होवे तो लेवे नहीं, अरु कदाचित् बहुमोली वस्तु होवे, अरु मनदृढ न रहे, तो उस वस्तुकों ले कर अपने पास कितनेक दिन रक्खे, जे कर उसका मालक कोइ जान पडे, तो उसको दे देवे, जे कर उसका स्वामी मालूम न पडे, तो धर्मखातेमें उस धनकों लगा देवे, जेकर लोभ अधिक होवे तो अर्द्ध धर्ममें लगा देवे. तथा अपणी जमीनकूं खोदतां तिसमेंसूं धन निकल आवे, तो रखनेका आगार है, परंतु इसमेंभी अर्द्ध भाग अथवा चौथा हिस्सा धर्ममें लगावे, तथा दूसरेकी जगा मोलसे लीनी होवे, उसमेसूं खोदतां जे कर धन निकल आवे, जे कर मनमें संतोष होवे, तब तो उस मकान वालेको वो धन दे देवे, जे कर लोभ होवे, तब आधा धर्ममें लगावे, अरु आधा अपने पास रक्खे, तथा कोइ पुरुष अपने पास धन रख कर, पीछेसें मर गया होवे, अरु उसका कोइ वारस न होवे, तब श्रावक उस धनको भले पंचके आगें जाहर करे, जो कुछ पंच कहे, सो करे, कदापि देश कालकी विषमतासें उस धनकों जाहेर करते कोइ राजसंबंधी क्लेश उठता मालुम पडे, कोइ दुष्ट राजा लोभके वशसें कहे, कि तेरे घरमें औरभी ऐसा धन है. इत्यादि होवे, तब तो मौन करके उस धनकों धर्मस्थानमें लगा देवे.

तथा घरकी चोरी तो यह है कि:— घरकी सर्व वस्तुओंका मालक माता पिता है, तिनके पूछे विना धन वस्त्रादि लेनेकी जयणा रक्खे, अथवा जिस के साथ प्रेम होवे, तथा जो संबंधी होवे, जिसके घरमें जाने आनेका अरु खाने पीनेका व्यवहार होवे, उसके विना पूछे कोइ फलादि वस्तु खानेमें आवे, उसका आगार रक्खे, परंतु जे कर उस वस्तुके खानेसे मालककों मन दुःखे, तो न लेवे. इसी रीतीसें तीसरा अदत्तव्रत पाले. यह व्यवहार शुद्ध अदत्तादान विरमणव्रत है.

अरु निश्चयसेती तो जितना अबंधपरिणाम हुआ है, गुणस्थान की वृद्धि होनेसें बंध व्यवछेद हुआ, सो निश्चय अदत्तविरमणव्रत कहिये है. इस व्रतके पांच अतिचार हैं, उसकों वर्जे सो कहते हैं.

१ प्रथम तेनाहृड अतिचार है, सो चोरकी चोराइ वस्तु तिसको तेनाहृत कहते है. सो वस्तु न लेवे, एतावता चोरीकी वस्तु जाण कर के न लेवे,

ों कि जो चोरीकी वस्तु जानके लेता है, वो लेने वालाभी चोर है, जे
। जैनमतके शास्त्रोमें सात प्रकारके चोर लिखे है ॥ यदाह ॥ चौरश्चौ
पको मंत्री, भेदज्ञः काणकक्रयी ॥ अन्नदः स्थानदश्चैव, चौरः सप्तविधः
मृत ॥ १ ॥ यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा प्रयोगअतिचार. सो चोरी करने वलोंको प्रेरणा करणी कि'—
रे! तुम चुप चाप निर्व्यापार आज कल क्यों बेठ रहे हो ? जे कर तुमा
पास खरची नही होवे, तो मै देता हूं, अरु तुमारी ल्याइ हुइ वस्तु मैं
च देऊगा, तुम चोरी करणे वास्ते जाउ. इत्यादि वचनों करके चोरोंको
रणा करणी, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार. सो सरस वस्तुमें नीरस
वस्तु मिला करकें वेचे, जैसें केशरमें कशुंनादिमिला करकें वेचे, घीमें ग
आदि, हिंगमें गुंदादि, खोटी कस्तूरी खरी करके वेचे, अफयूनमें खोट मि
लाने, पुराणा वस्त्र रंगा कर नवेके भाव वेचे, रूइको पाणीसें भिंजो कर
वेचे, दूधमे पाणी मिलायकें वेचे, इत्यादि करे, तो तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा राजविरुद्धगमन अतिचार है. सो अपणे गामके वा देशके
राजाने आज्ञा दीनी है, जो फलाणे गाममें जाणां नही. इत्यादि जो
राजाकी आज्ञा है, उसका उल्लंघन करना, वैरी राजाके देशमें अपने रा
जाके हुकुम विना जानां, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा खोटा तोला, मापा, करणेका अतिचार है. सो कूट तोलां,
मापा, करणा, कमती तोलसें तो देणां, अरु अधिक तोलसे ले लेणा,
यह पांचमा अतिचार है यह पाचो अतिचारको वर्जे ॥इति तृतीयव्रत संपूर्ण॥

४ चौथा मैथुनसेवनेका त्याग करनां. तिसका नाम मैथुनत्याग व्रत
कहते है. तिस मैथुनके दो भेद है, एक द्रव्यमैथुनत्याग,दूसरा भाव मैथु
नत्याग, उसमें द्रव्यमैथुन तो परस्त्री तथा परपुरुषके साथ संगम करनां.
सो पुरुष स्त्रीका त्याग करे. अरु स्त्री पुरुषका त्याग करे, रतिक्रीडा काम
सेवनका त्याग करे तिसकों द्रव्यब्रह्मचारी तथा व्यवहारब्रह्मचारी कहियें.

दूसरा भाव मैथुन है. सो एक चेतन पुरुषके विषयविलास परपरिण
तिरूप, तथा तृष्णा ममता रूप, इत्यादि कुवासना, सो निश्चय परस्त्रीका
मिलनां तिसके साथ लाल पाल कामविलास करना, सो भावमैथुन जान

नां तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हितशिक्षासें ज्ञान हुआ, तब जातिहीन जान करकें अनागत कालमें महा दुःखदायी जान करी पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनंत जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम भक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक है, अरु विभाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविभूति हर लीनी है, तो अब सद्गुरुकी सहायसेंभी ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हुई थी, तिसका थोडा थोडा निग्रह करुं, त्यागनेका भाव आदरुं, जिस्सें ... व घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, ऐसी ... मक्ष पा करकें परपरिणतिमें मग्नता त्यागे, औ कर्मके उदयमें ... होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो भाव मैथुनका त्यागी कहीयें. द्रव्यमैथुनके त्यागी तो षट् दर्शनमें मिल सक्ते है, परतु भावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसे भेदज्ञान जब घटमे प्रगट होता है तब भवपरिणतिसें सहज उदासीन रूप भाव मैथुनका त्यागी जैनमत मेंही होता है इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत. सो परस्त्रीका त्याग करनां, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रक्खी हूइ स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, ऐसा जो प्रत्याख्यान करनां, सो परदारगमन विरमणव्रत है. अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें संतोष करु, ऐसा जो व्रत धारण करे, तिसकों स्वदारसंतोष व्रत कहिये.

देवागना तथा तिर्यंचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्त्तमान स्त्री वर्जके और स्त्रीसे विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीसेंभी संभोग न करे, क्योंकि दिनसंभोगसें जो संतान उत्पन्न होता है, सो निर्बल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीभी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीभी पर पुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें श्रावक व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्जे, सो लिखते है

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार. सो विना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनको अपरिगृहीता कहते है, क्योंकि इनका कोइ भर्तार नहीं है, जे कर कोइ अल्पमति विषयाभिलाषी मनमें विचारे, कि मैंने तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीभी स्त्रीयां नहीं है, इनके

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा? ऐसा विचार करकें कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ भोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीभी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंडे पुरुषसें व्यभिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंभी अतिचार लगे.

२ दूसरा इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार है. तिसका स्वरूप कहते है. इत्वर नाम थोडे कालका है, सो थोडेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच कें वेश्यादिकोंको अपनी करकें रक्खी है, इहां कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिककों तो मैने अपणी स्त्री बना करकें थोडेसे काल वास्ते रक्खी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभंग नही होवेगा? ऐसे अज्ञानके विचारसें उसके साथ संगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे. अरु स्त्रीकोंभी जब अपणी सौकणकी वारीकें दिनमें अपने भर्त्तारसें विषय सेवे, वो अपणे मनमें ऐसा विचार करे, कि अपणे पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा, क्यों कि मैंनें तो परपुरुषका त्याग करा है? यह दूसरा अतिचार. इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावककों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतभंग होवे, परतु अतिचार नही.

३ तीसरा अनंगक्रीडा अतिचार है. सो अनंग नाम कामका है, तिस काम कंदर्पको जागृत करनां, आलिंगन, चुंबन प्रमुख करना, नेत्रोंका हाव, भाव, कटाक्ष, हास्य, उक्त, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसे करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंने तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनंगक्रीडा तो नही त्यागी है, परतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने माहापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मतसें उसका व्रतभंगभी हो गया, तथा अपणी स्त्रीसे चौरासी आसनोंसें भोग करे, तथा पंदरा तिथिके हिसावसें स्त्रीके अंगमर्दनादि कर कें काम जगावे, तथा परम कामाभिलाषी होनेसें जब अपनी स्त्रीका भोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीभी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु सचार करकें हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंभी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावककों ज

सें तैसें करकें कामेछा घटानी चाहियें. क्यों कि विषयके घटानेंसें अरु
र्यके रखनेसें बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु
धिक काम सेवनेसें मन मलिन, पापवृद्धि,राजयक्ष्मा, (क्षय) भ्रम, मूर्छा,
म, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय
होनां न चाहियें. केवल जिस्सें वेदविकार शांत हो जावें, तितनांही मैथुन
करनां चाहियें. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री संबंधि काम सेवन
की जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसें जरी हुई विचारे, मलीन वस्तु है,
खमें दुर्गंध जरी है, नाकमें सिंघाणकी दुर्गंध है, कानोंमे मैल है, पेटमें वि
ष्टा, मूत्र, जरा है, नसायोंमें खाये पीयेका रस, रुधिर, हाड, चाम, चर्बी,
वाय, पित्त, कफ. जरा है, महा अशुचिका पूतला है, जिस अंगमें वाय
लेवेगा, वहां महा दुर्गंध उछलती है, अनित्य अशाश्वत है, सडन, पतन,
विध्वंसन हो जाना, यह इसका स्वजाव है, तो फेर हे मूढ जीव! स्त्रीको
देखकर क्यों कामाकुल होता है ? ऐसें विचारसे कामको शांत करे,
तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परविवाह करण अतिचार है. सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यश
के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाह करावे, सो चौथा अतिचार

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है. सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अभि
लाष धरे, पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके दर्श
विना क्षणमात्र रहि न सके, चलता, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथ
वा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, जांग, हरताल, पारा प्र
मुख खावे, तीव्रकामसें प्रीति करे, तब पाचमा अतिचार लगे, अथवा
स्त्रीजी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव जाव वि
षय लालसा करे, तब पाचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक
जाने, परतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न
प्रकरणकी टीकासें जानना ॥ इति चतुर्थव्रत समाप्तं ॥

५ अथ पाचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते है. परिग्रहके दो
जेद है. एक तो बाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो द्रव्यपरिग्रह नव प्रका
रका है. दूसरा जाव परिग्रह, सो चौदह अभ्यंतर ग्रंथिरूप जो परजावका
ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सकपाई पणे बंध, सो जावपरिग्रह है, अरु

ास्त्रमें मूर्छाकों मुख्य वृत्ति करकें भावपरिग्रह कह्या है, तिनमेंसूं चौद
प्रकारका जो अभ्यंतर परिग्रह है, सो लिखते है. १ हास्य, २ रति,
३ अरति, ४ भय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ क्रोध, ८ मान, ९ माया, १० लो
भ, ११ स्त्रीवेद, १२ पुरुषवेद, १३ नपुंसकवेद, १४ मिथ्यात्व. यह चौदह
प्रकारकी अभ्यंतर ग्रंथि है, इहां संसारमें इस जीवकों केवल अविरतिके
बलसें इछा, आकाश समान अनंती है. कदापि भरणेमें आती नहीं, अ
विरतिके उदयसें इछा अरु इछासेंती कर्मबंधनमें पडा हूआ चार गतिमें भ्र
मण करता है. सो कोई पुण्यके उदयसें मनुष्य भवादि सकल सामग्रीका
योग पा कर, सद्गुरुकी संगतिसें श्रीजिनवाणी सुणी, तब चेतना जागृत
भई, तब विचार करा कि अहो में समस्त परभावसें अन्य हूं! अबंधि, अ
छेद्य, अभेद्य, अदह्यधर्मी हूं! परंतु इछाके वश हो कर समस्त छेदन, भे
दन परिभ्रमणादि दुःखोंकों भोगने वाला परधर्मी बन रह्या हूं! ईस वास्ते
समस्त परभावका मूल जो इछा है. तिसकों दूर करे. तब समस्त परभाव
त्यागरूप चारित्र आदरे, साधुवृत्ति अंगी कार करे. अरु जिस जीवके इछा
प्रबल होनेसें एक साथ सर्व परिग्रह त्यागनेका सामर्थ्य न होवे, अरु दो
षसें डरे, तब गृहस्थ, धर्मइछा परिमाण रूप व्रत आदरे, सो इछा परिमा
णव्रत नव प्रकारका है, सो कहते हैः—

१ प्रथम धन इछा परिमाण व्रत है. सो धन चार प्रकारका है. प्रथम
गणिम धन, सो नालिकेर प्रमुख, जो गिणतीसें वेचनेमें आवे. दूसरा धरि
म धन, सो गुड प्रमुख जो तोलके वेचनेमें आवे. तीसरा परिछेद्य धन, सो
सोना, रूपा, जवाहिर प्रमुख जो परिक्षासें वेचनेमें आवे. चोथा मेयधन, सो
घृधादि वस्तु जो मापके वेचनेमें आवे, यह चार प्रकारका धन है. इसका
जो परिमाण करे, सो धनपरिमाण व्रत है

२ दूसरा धान्य परिमाण व्रत सो धान्य चौवीस प्रकारका है १ शालि,
२ गेहूं, ३ जुवार, ४ बाजरी, ५ जव, ६ मूंग, ७ मुठ, ८ उडद, ९ लूंट, १०
चोळा, ११ मटर, १२ तूअर, १३ किसारी, १४ कोद्रवा, १५ कंगणी,
१६ चणा, १७ वाल, १८ मेथी, १९ कुलथ, २० मसूर. २१ तिल. २२
रंमवा, २३ कूरी, २४ वरटी. यह खाने वास्ते तथा व्यवहार वास्ते उपयो
गी है. तथा १ धनीया, २ जींमी, ३ सोवा, ४ अजवयन, ५ जीरा. यह

नी धान्यकी जातिमें है, परंतु ये औषध्यादिकमें काम आते हैं. तथा सामक, २ मणकी, ३ चुरट, ४ चेकरीया, ये मारवाड देशमें प्रसिद्ध औरभी जो अडक धान्य, विना बोयां ऊगता है, जिसकों लोक काललमें खाते है, यह सर्व जातिका अन्न, तिसका परिमाण करे.

३ तीसरा क्षेत्रपरिग्रह व्रत है. सो बोनेका खेत, तथा बाग (बगीचक) जाननां, इस क्षेत्रके तीन भेद है, उसमें एक क्षेत्र तो ऐसा कि जो वर्षाके पाणीसें होता है, दूसरा कूपादिकके जल सींचनेसे होता तीसरा तो यह पूर्वोक्त दोनो प्रकारमें होता है, इनका परिमाण करे.

४ चौथा वास्तुक परिमाण व्रत है. सो घर, हाट, हवेली प्रमुख केभी तीन भेद है. एक तो नूंहरा प्रमुख, दूसरा उछ्रित सो उची हवेली क मजली, दो मजली, तीन मजली, यावत् सातभूमि तक, तीसरी नूंहरा प्रमुख, उपर एक दो आदि मजल, तिसका परिमाण करे.

५ पांचमारूप्यपरिग्रहपरिमाण व्रत है. सो सिक्के विनाका काचा तिसका तोलका परिमाण करे.

६ छठा सुवर्णपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो विना सिक्केका सोना, सके तोलका परिमाण करे.

७ सातमा कूपद परिग्रह परिमाण व्रत है. सो त्रांबा, पीतल, रांग, कांसीसा, भरत, लोहाप्रमुख सर्व धातुके बर्त्तनोंके तोलका परिमाण करे.

८ आठमा डुपद परिग्रहपरिमाण व्रत है. सो दासी, दास, अथ पगारदार गुमास्ता प्रमुख रखणां, तिनकी गणतीका परिमाण करे.

९ नवमा चौपदपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो गाय, महीषी, घोडा, लद, बकरी, भेम प्रमुख, तिनकी गिणतीका परिमाण करे.

अथ अपनी इछा परिमाणसें परिग्रह किस तरें रखे? सो कहते रूपा घडा हूआ अरु अनघडा तथा नगद रूपक इतना रखुं, तथा सोना घडा अनघडा असर्फी तथा जवाहीर इतना रखुं, इस रीतिसें परिमा करे, उपरात पुण्योदयसे धन वधे, तो धर्मस्थानमें लगावे. तथा वर्ष दि मे इतने इस भातके वस्त्र पहिरूं, तथा एक वर्षमें इतना अन्न मैं घरख च वास्ते रखुं, अरु इतना वणिज वास्ते रखुं, तिसका स्वरूप सातमे तमे लिखेंगे. तथा क्षेत्रपरिमाणमे क्षेत्र, वाडी, बगीचा प्रमुख सर्व मिल

इतने विगघे धरती रखुंगा, तथा घर, खिडकी बंध, अरु खुल्ली डुकान, बेला, वखारी, तथा परदेश संबंधी डुकानकी जयणा, तथा इतना नाडे णे वास्ते घरकी रखनेकी जयणा. तथा नाडे लीये हूये घरकों समराव की जयणा, तथा कुटुंब संबंधि घर बनानेमें उपदेशकी जयणा, तथा पणा संबंधी अरु गुमास्ता परदेश गया होवे, पीछेसें तिसके घर प्रमुख मरावणेकी जयणा, तथा आजीविकाके वास्ते किसीकी चाकरी करनी प , तब उसके घर प्रमुखके समरावणेकी जयणा, तथा कुपदपरिमाणमें ांबा, पीतल, राग, लोहखंम, कांसी, नरत, सर्व मिलीके धातुके वर्त्तन, त ा और घाट, तथा बूटा, इतने मण रखणेकी जयणा, तथा डुपद परिमा णमें श्रावकने दासी, दासकों मोल दे कर नहीं लेनां, परतु पगारवाले नौकर) गिणतीमें इतने रखने चाहियें, तथा गुमास्ता रखनेकी जयणा, था चौपद परिमाणमें गाय, नैस, बकरी प्रमुख रखनेका परिमाण करे. अब यह इछा परिमाण व्रतके पांच अतिचार है, सो लिखते है.

१ प्रथम तो धनपरिमाण अतिक्रम अतिचार. इस रीतिसें होता है.सो जब इछा परिमाणसें धन अधिक हो जावे, तब लोनसंज्ञासें दिलमें ऐ सा मनसुबा करे कि जो मेरा पुत्र बडा हो गया है, तिसकोंनी धन चा हियें है, अरु मैंनेनी पुत्रकों धन देनाही है? ऐसा कुविकल्प करकें पुत्रके नामके पांच हजारादि रूपक जूदे रखे, तथा अन्न प्रमुख अपणे नियम परिमाण घरमें पडा है, तब अधिक रखनेकी इछासें दूसरायोके घरमें रख छोडे, जब चाहियें तब ले आवे, अरु अज्ञानसे ऐसा विचारे कि मैने जो इछा परिमाणसें अधिक अपने घरमें रखनेका नियम करा है, अरु य ह तो दूसरोंके घरमें रखा है, इस वास्ते मेरे नियममें दूषण नहीं, तथा व्रत लेनेके वखतमें कचे मणके हिसावसें अन्न रखा है, अरु जब परदे शांतरमें गया, तब पक्के मणका उंहा तोल जान कर अन्ननी पक्के मणकें हिसावसे रखे, ऐसे विचार वालेकों प्रथम अतिचार लगता है

२ दूसरा क्षेत्रपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो जब इछा परिमाणसेंती अधिक घर हाटादिक हो जावे, तव विचली नित तोडके दो तिनादि घरा दिकोंका एक घरादि वनावे, तथा दो तीनादि खेंतोकी विचली मोली तोडकें एक बना लेवे, अरु मनमे यह विचारे कि मैने तो गिणती रखी है,सो तो

मेरा नियम अखंडित है, बडा कर लेनेमें क्या दूषण है? ऐसें तो दूसरा अतिचार लगे.

३ तीसरा रूप्यसुवर्णप्रमाणअतिक्रम अतिचार है सो जब माणसेंती अधिक होवे, तब अपणी स्त्रीकें पेणे नारी तोलके तथा अपणे आभरण तोलमें भारी बनवावे, यह तीसरा अतिचार

४ चौथा कुपदपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो त्रांबा, कांसी प्रमुखके वर्त्तन राठ वगैरें जो गिणतीमें रखे है, सो जब पदा होवे, तब गिणतीमे तो उतनेही रखे, परंतु तोलमें वजनदार तिगुणे बनवावे, अरु मनमें ऐसा विचारे जो मेरा व्रत तो अखंडित क्योंकि वर्त्तनोकी गिणती तो मेरे तितनीही है? तथा कचे तोल रखे थे, फेर पक्के तोल परिमाण रख लेवे,सो चौथा अतिचार है

५ पाचमा द्विपदचतुष्पद प्रमाणातिक्रम अतिचार है. सो दास, घोडा, गाय, बलद प्रमुख अपणे परिमाणसें जब अधिक हो जावे, वेच गेरे, अथवा गर्भ ग्रहण अवेरी करावे, जितने गिणतीमें हैं, प्रथम वेचके फेर गर्भ ग्रहण करावे, अथवा भाइ पुत्रके नामके कर तो पांचमा अतिचार लगता है. इति पंचमव्रत संपूर्ण ॥

६-७-८ अथ छठा, सातमा, अरु आठमा, इन तीनो व्रतोंकों कहते है. तिनमे छठे व्रतमें दिशांका विचार है, इस वास्ते इसका दिक्परिमाण व्रत कहते हैं. तिसका स्वरूप लिखते है.

पूर्वे जो पांच अणुव्रत कहे है. तिनकों इन तीनो व्रतों करकें गुण वृद्धि होती है, इस वास्ते इनका नाम गुणव्रत है, क्योंकि जब दिशि रिमाणव्रत कीया, तब तिस क्षेत्रसें बाहिरले सर्व जीवोंकों अभयदान दीया, यह पहिले प्राणातिपात व्रतकों गुण पुष्टि भइ, तथा बाहिर जीवोंके साथ कूठ बोलना मिट गया, यह मृषावाद व्रतको पुष्टि भइ तथा बाहिरले क्षेत्रकी वस्तुकी चोरीका त्याग हूआ, यह तीसरे व्रतकों पुष्टि भइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी स्त्रीयोंके साथ मैथुन सेवनेका त्याग हुआ यह चौथे व्रतकी पुष्टि भइ, तथा नियम बाहिरके क्षेत्रमे क्रय विक्रय निषेध भया, यह पांचमे व्रतकी पुष्टि भइ, इस वास्ते पाचो अणुव्रतोंकों यह तीन व्रत गुणकारी है.

तहां दिशिप्रमाण व्रत. सो चारों दिशि, तथा चारों विदिशि, तथा र्ध्व, अरु अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो भेद हैं. क व्यवहारसें, सो अपणी कायासें दशों दिशिमें जानेका, तथा मनुष्य जनेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे, उसकों व्यवहार दिशि रिमाण व्रत कहियें.

दूसरा निश्चयसें. सो जो कुछ नरकादि गतिमें गमन है, सो सर्व कर्मका र्म है. जिसके वश पडकें यह जीव चारों गतिमें भटकता है, परानुया यी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परभावानुसारी गतिभ्रमण करता है, परंतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वभाव, तथा निश्चल स्वभाव है, सा श्री जिनवाणीके उपदेशसें समझके चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तब अपणा अगति स्वभाव जानिके सर्व क्षेत्रसें उदास रहे, समस्त क्षेत्रसें अप्रतिबंधक भावसें वर्त्ते, सो निश्चयसे दिक्परिमाण व्रत कहियें. यह दशों दिशिका परिमाण करें, तिसके दो भेद है.

प्रथम जलमार्ग. सो झहाज नावों करकें इतने योजन अमुक दिशिमें अ मुक बंदर, तथा अमुक द्वीप तक जाऊं, जे कर पवन, तथा वर्षातके शसें और दूर किसी बंदरमें ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतभंग न होवे, अथवा अजाण पणे कर कें भूल चूकसें किसी बंदरमे चला जाऊं, उसकाभी आगार है.

दूसरा स्थलका मार्ग. सो जिस जिस दिशिमें जितने जितने योजन तक ानेका परिमाण करा है, तहां तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, म्लेछ, कडके नियम क्षेत्रसें बाहिर ले जावे, तिसका आगार है, तथा ऊर्ध्व दि शिमें बारा कोश तक जाणेकी जयणा रक्के, तथा अधोदिशिमें आठ कोश क जाणेकी जयणा, परंतु जो उंचा चढके फेर नीचा उतरें, वो अधोदि मे नहीं, तथा जितनें क्षेत्रका परिमाण करा है, तिस्सें बाहिरका कोइ गाए वाले पुरुषका पत्र आवे. सो वाच कर उसका उत्तर लिखनां पडे, सका आगार है, परंतु मै अपणी तरफसे विना कारण पत्र ुख नही लिखुंगा, तथा परदेशकी विकथा सुननेका आगार, इस व्रतके ंच अतिचार है सो कहते है.

१ प्रथम ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है. सो अ वा बे सुरतिसें अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार.

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार. पूर्ववत्.

३ तीसरा तिर्छादिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार ऊपर वत्. जेम भंगके भयसें गुमास्ता भेजे, तोभी अतिचार लगे.

४ चौथा एक दिशिमें सौ योजन रखे हैं, अरु एक दिशिमें योजन रखे हैं, पीछें जब एकही दिशिमें डेढसौ योजन जाना पडे, दूसरी तरफके पचास योजनभी उसी तरफ जोड लेवे, अरु ऐसा विचारे कि मेरे नियमकेही पचास योजन हैं, इस मेरे व्रतका भंग नहीं.

५ पांचमा स्मृतिअंतर्धान अतिचार. सो अपणे नियमके भूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सौ योजन रखे हैं? कि पचास रखे है? इत्यादि ऐसा संशयके हूए फेर पचास योजनसें अधिक तो पांचमा अतिचार लग जावे, यह पांच अतिचार वर्जे॥

७ अथ सातमा भोगोपभोग व्रतका स्वरूप लिखते है. यह दूसरा व्रत है. इस व्रतके अंगीकार करणेसें सचित वस्तु खानेका त्याग करे, थवा परिमाण करे, तथा जिसमे बहुत हिंसा होवे, ऐसा व्यापार करे, तथा जिस काममें अवश्य हिंसा बहुत करनी पडे, तिसका करे, अनभक्ष्य त्यागे, अरु चौदह नियमभी इस व्रतमें गिणे जाते हैं. वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पांचही अणुव्रतोंको गुणकारी है, इस दो भेद है, सो कहते हैं.

१ प्रथम व्यवहार सो भक्ष्याभक्ष्यका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा आश्रव संवरका ज्ञान कर के खान पानादिक जो इंद्रिय सुखका कारण है, उसमें अपणी शक्ति प्रमाण बहुत आरंभ छोडकें अल्पारंभी होना, सो व्यवहार भोगोपभोगविरमण व्रत है.

२ दूसरा निश्चयसें, तो श्रीजिनवाणी सुण कर, वस्तु तत्त्वस्वरूप जान कर विचारे कि जो जगतमें परवस्तु है, सो सर्व हेय है, इस वास्ते तत्त्ववेत्ता पुरुष परवस्तुकों न खावे, न अपणे पास रखे, तब शुद्ध चेतन भाव धार के परम शांतिरूप हो कर जो वस्तु सडे, पडे, गिरे, जाती है

व परवस्तु जान कर ऐसा विचार करे कि यह पुद्गलकी पर्याय है, वि जगत्की जूठ है, ऐसी वस्तुका नोगोपनोग करणां, सो तत्त्ववेत्ताकों चित नहीं, ऐसे ज्ञानसें परनावकों त्यागे, स्वगुणकी वृद्धि करे, ऐसा ान पा कर आत्माकों स्वस्वरूपानंदी करे, चिद्विलासका अनुनवी होवे, ो निश्चय नोगोपनोगविरमण व्रत कहिये.

अथ नोगोपनोग शब्दका अर्थ कहते हैं जो आहार, पुष्प. विलेप ादि, एक वार नोगनेमें आवे, सो नोग कहियें. अरु जो नुवन, वस्त्र, ्त्रीयादि वार वार नोगनेमें आवे, सो उपनोग कहियें. अरु कर्माश्रयी इस ्रतके अनेक नेद है, सो आगें लिखुंगा.

तथा श्रावककों उत्सर्ग मार्गमें तो निरवद्य आहार लेनां लिखा है, जे कर शक्ति न होवे, तव सचित्तका त्यागी होवे, जेकर यहनी न कर सके, तो वाईस अनक्ष्य अरु वत्तीस अनंतकाय इनका तो जरूर त्याग करे, तिनमें प्रथम वाईस अनक्ष्य वस्तुका नाम लिखते हे.

१ वडके फल, २ पीपलके फल, ३ पिलखणके फल, ४ कठंवरके फल, ५ गूलरके फल, यह पांचतो फल अनक्ष्य है, क्योंकि इन पांचो फलोंमे बहूत सूक्ष्म कीडे त्रस जीव नरे हूये होते हैं, जिनोंकी गिणती नहीं हो सकी है, इस वास्ते धर्मात्मा जीव, इन पांचों फलोंकों न खावे, जे कर दौर्निक्षमें अन्न न मिले, तोनी विवेकी पूर्वोक्त पांच फल नक्षण न करे.

६ मदिरा, ७ मास, ८ मधु, ९ माखण, इन चारोंमे तद्वर्ण असंख्य जीव उत्पन्न होते हे, अरु यह चारों विगय, महाविगय हे. सो महाविकारकी करनेवाली है, तिनमें प्रथम मदिरा त्यागने योग्य है, क्योंकि मदिराके पीनेमे जो दूषण है, सो हेमचंद्रसूरिकृत योगशास्त्रके दश श्लोकोंके अर्थसें लिखते हे.

१ मदिरा पीनेसें चतुर पुरुषकी बुद्धि नष्ट हो जाती है,जैसे दुर्नागी पुरुषको सुंदर स्त्री ठोड जाती है, तैसें इस पुरुषकों बुद्धी ठोड जाती हे, २ मदिरापानी पुरुष, अपणी माता, वहिन, वेटीकों अपणी नार्याकी तरे समक के जोरा जोरीसे विषयनी सेवन कर लेता है, अरु अपणी नार्याकों अपणी माता समकता है, मदिरा पीनेवाला ऐसा निर्लज्ज ओर महापापके करने वाला होता है, ३ मदिरापानी, अपनेको अरु परकोनी नहीं

जानता, ४ मदिरापानी, अपणे स्वामीकों अपणा किंकर अरु अपणेकों स्वामी जानता है, एसी निर्लज्ज बुद्धिवाला होता मदिरा पीने वाले पुरुषकों चौंकमे लेटा हूआ देख कर मुदरि जान कुत्ते उसके मुहमें मूत जाते है, ६ मदिराके रसमें मग्न पुरुष मादर जात, निर्लज्ज हो कर, सो जाता है. ७ मदिरा पीने अगम्य गम्य, चोरी, यारी, खून प्रमुख कुकर्म करे है. वो सर्व ल. गे प्रकाश देता है. ८ मदिरा पीनेसें शरीरका तेज, कीर्त्ति,यश,त.. बुद्धि, यह सब नष्ट हो जाते है. ९ मदिरापानी भूत लगेकी तरें है, १० मदिरा पीने वाला कीचड और गंदकीमें लोटता है, ११ नेसें अंग शिथिल हो जाते है, १२ मदिरा पीनेसें इंद्रियोंकी तेजी है, १३ मदिरा पीनेसें बडी मूर्छा आजाती है,१४ मदिरा पीनेवालेका नष्ट हो जाता है, १५ संयम नष्ट हो जाता है,१६ ज्ञान नष्ट हो १७सत्य नष्ट हो जाता है, १८ शौच नष्ट हो जाता है,१९ दया नष्ट जाती है,२० क्षमा नष्ट हो जाती है,जैसें अग्निसे तृण भस्म हो जाते तैसें पूर्वोक्त गुणभी उसका नष्ट हो जाते है, २१ मदिरा है, सो रु परस्त्रीगमनादिकोंका कारण है, क्योंकि मदिरा पीनेवाला कर्म नही कर सक्ता है ? २२ मदिरा, आपदा तथा वध, बंधना कारण है, २३ मदिरेके रसमें बहुत जीव उत्पन्न होते है. इस वास्ते धर्मिकों मदिरा न पीनी चाहिये. २४ मद्य पीने वाला ० कहता है, २५ लीयेकों नहीं लीया कहता है, २६ करेकों न करा है, २७ मद्यपी, घरमे तथा बाहिर, पराये धनकों निर्भय हो कर लूट है, २८ मदिरेके उन्मादसें बालिका, यौवनवती, वृद्धा, ब्राह्मणी, चांडालि नी प्रमुख स्त्रीयोसे भोग कर लेता है, २९ मद्यप अरराट शब्द करता है ३० गीत गाता है, ३१ लोटता है, ३२ दौडता है, ३३ क्रोध करता है ३४ रोता है, ३५ हस्ता है, ३६ स्तंभवत् हो जाता है, ३७ नमस्कार क रता है, ३८ भ्रमता है, ३९ खडा रहता है, ४० नटकी तरें अनेक नाटक करता है, ४१ अैसी वो कौनसी दुर्दशा है, जो मदिरा पीने वालेकों नहीं होती है ? शास्त्रोमें सुणते हैं कि सांब कुमारने मदिरा पी कर द्वैपायन ऋ षिकों संताया, तब द्वैपायननें द्वारकाकों दग्ध कीया, ४२ मदिरा पीना

वे पापोंका मूल है, ४३ मदिरा पीने वाला निश्चय नरक गतिमें जावेगा, ४४ मदिरा सर्व आपदाका स्थान है ४५ मदिरा अकीर्त्तिका कारण है,४६ मदिरा नीच म्लेछ लोक पीते है, ४७ गुणीजन लोक जो है,सो मदिरा पीनेवालेकी निंदा करते हैं, ४८ मदिरा पचेमें लग जानेसें तत्काल मरजाता है,४९ मदिरा पीने वालेके मुखसें महादुर्गंध आती है, ५० मदिरा सर्व शास्त्रोंमें निंदित है, ५१ मदिरा पीनेवाला ईश्वरका नक्त नहीं. इत्यादि मदिरा पीनेमें अनेक दोष है, इस वास्ते श्रावक मदिरा न पीवे, यह उठा अनक्ष्य

सातमा अनक्ष्य मांस है. यह मांस नक्षण करनेमें जो दूषण है, सो लिखते है. जो पुरुष मांस खानेकी इछा करता है, वो पुरुष, दयाधर्मरूपी वृक्षकी जड काटता है, क्योंकि जीवके मारे विना मांस कदापि नहि हो सक्ता है, जे कर कोइ कहेगा कि हम मांसनी खा लेवेंगा, अरु प्राणीयोंकि दयानी करेंगा,असे कहने वालेकों हम उत्तर देते हैं,कि सदा सर्वदा जो मांसके खानेवाले हैं, अरु वो अपने मनमें दयाधर्मी बना चाहता है, वो पुरुष अग्निमें कमल लगानां चाहता है, क्योंकि जब उसने मांस खाया, तब प्राणीयोंकी दया उसके मनमें कदापि नहीं हो सकी है, जैसें अबका खानेवाला आम्रफल देखता है, तब उसकी मनसा आंब खाने हीकों दोडती है, तैसें मांसाहारी किसी गौ, नेडी, बकरी, प्रमुखकों देखता है, तब उन जीवोंका मांस खानेकी तर्फ उसकी सुरती दौडती है, असे पुरुषकों दयाधर्म, क्यों कर संनवे ? जे कर कोइ कहेगा कि जीवके मारने वाला सौकरिक अर्थात् कसाइ है, तिस पासों बना बनाया मांस ल्या कर खावे, तो क्या दोष है ? असे मूढमतिकों उत्तर देते है, कि जो मांस खानेवाला है, वोनी जीवका हिंसक है, क्यों कि नगवंतने शास्त्रोंमें सात जनोंकों घातक (हिंसक) अर्थात् कसाइही कहा है, उसका नाम कहते हैं. एक जीवके मारने वाला, दूसरा मांस बेचने वाला, तीसरा मांस रांधने वाला, चौथा मांस नक्षण करने वाला, पांचमा मांस खरीदने वाला, उठा मांसकी अनुमोदना करने वाला, सातमा पितरोंके, देवताओं कों, अतिथिकों, मांस देने वाला, यह सात साक्षात् परपरा करकें घातक अर्थात् जीववधके करने वाले है, मनुजीनी मनुस्मृतिमें कहते है ॥श्लोक॥ अनुमता विशसिता, निहंता क्रयविक्रयी ॥ संस्कर्ता चोपहर्त्ता च, खादकश्चेति

घातकाः ॥ १ ॥ अस्यार्थः– १ अनुमोदक केतां अनुमोदन करने विशसिता केतां मारे हुये जीवके अंगका विनाग करने वाला. ३ केतां मारने वाला, ४ मांसका वेचनेवाला, ५ मांसका रांधने मांसका परोसने वाला, ७ मांसका खाने वाला. यह सातों घातकी र्थात् जीवके वध करने वाले है, दूसरा श्लोकनी मनुस्मृतिका ॥श्लोक॥ अकृत्वा प्राणिनां हिंसां,मांसंनोत्पद्यते क्वचित् ॥ नच स्वर्ग, स्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ २ ॥ अस्यार्थः– जितना चिर न मारे, तहां तक मांस नही होता है, अरु जीववधसें स्वर्ग नहीं नरक गति होती है, इस वास्ते मांस खानां वर्जे ॥ २ ॥

अब मांस खाने वालेकोंही वधकपणा है. यह वात कहते है जीवोंका मांस जो अपने मांसकी पुष्टाइके वास्ते खाते हैं, वास्तवमें कसाइ हैं, क्यों कि जे कर खानेवाले न होवे, तो काहेकों कोइ जी मारे ? जो पर प्राणीयोंकों मार करके अपणेकों सप्राण करते हैं, वे थोडीसी जिंदगीके वास्ते अपणा नाश करते है, एक अपणे वास्ते क्रोडों जीवोंकों जो दुःख देता है, तो वो क्या सदा काल रहेगा ? जिस शरीरमें सुंदर मिष्टान्न, विष्टा हो जाता है, अरु दूध अमृत वस्तुओ मूत्र हो जातीयां है, तिस शरीरके वास्ते कौन बु न जीववध अरु मांस नक्षण करे ?

जे केइ महामूढ, निर्विवेकी, लिख गये है, कि मांसनक्षण दूषण नही वेनी म्लेछ थे, क्यो कि वे लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ न क्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा नूताना, निवृत्तिस्तु ॥ १ ॥ इस श्लोकके कहने वालोंने व्याध, गृध्र, नेडीये, श्वान, व्याघ्र, गीदड, काग प्रमुख हिंसक जीवोंकों अपना धर्मोपदेश गुरु माने है, क्योंकि जे कर ये पूर्वोक्त गुरु न होते तो इनकों मांस खाने कौन सिखाता ? विना गुरुके उपदेशके पूज्यजन उपदेश नहीं देते हैं श्लोक वनाने वालोंकी अज्ञानता देखियें, वे कहते हैं कि मांस खानेमें मदिरा पीनेमें, अरु मैथुन सेवनेमे पाप नहीं, परंतु निवृत्तिस्तुमहाफला इनमें जो निवृत्ति करे तो महाफल है. यह स्ववचन विरोध है, क्योंकि जिसके करनेमें पाप नहीं,उसके त्यागनेमें धर्मफल कदापि नहीं हो सका है

अथ निरुक्त वल करकेंनी मांस त्यागने योग्य है, सो कहते है
श्लोक ॥ मांसनक्षयितामुत्र, यस्य मांसमिहाद्म्यहं ॥ एतन्मांसस्य
ांसत्वे, निरुक्तं मनुरब्रवीत् ॥ १ ॥ अस्यार्थः– जिसका मांस में खाता
, वो जीव मुजकों परनवमें नक्षण करेगा, यह निरुक्तसें मनुजी मांस
ा अर्थ कहते है, मांसनक्षण वालेकों महा पाप लगता है, जो पुरुष
ांस नक्षणमें लंपट है, वो पुरुष जिस जिस जीवकों जलचर मत्स्यादि
कों, स्थलचर मृग, सूअर प्रमुखकों, खेचर तित्तर लाल वटेरे प्रमुखकों
खता है, तिस तिसकों मारकें खानेकी बुद्धि करता है, माकनकी तरें
र्वकों खाया चाहता है, मास खानेवाला उत्तम पदार्थोंका परिहार क
के नीच पदार्थके लेनेमें उद्यत होता है, जैसें काग, पंचामृत गेड कर
वेष्टेमें चांच देता है, तिसी तरे जान लेनां. इसका नाम तो निर्विवेकता है,
श्लोक ॥ ये नक्षयंति पिशितं, दिव्यनोज्येषु सत्स्वपि ॥ सुधारसं परि
यज्य, नुंजते ते हलाहलं ॥ १ ॥ अर्थः– सकल धातुओंके वृद्धि करने
ाला दिव्य नोजन विद्यमान हूआं, सर्व इंद्रियोंके आल्हादजनक दूध,
ीर, किलाट, कूर्चिका, रसाल, दधि आदिक, मोदक, मंदक, मंमिका, खा
, पापड, घेवर, ईम्हरिका, खंमवडे, पूरणवडे, गुडपापडी, इक्षुरस, गुड,
मिसरी, द्राक्ष, आंब, केले, अनार, नालियर, नारगी, संतरे, खजूर, अक्षो
, राजादनखिरणी, फनस, अलूचे, वदाम, पिस्तां. इत्यादि अनेक दिव्य
ोजनोंकों गेड के मूढमति, विस्त्रगंधि, सूगवाला, वमनका करनेवाला,
ता बिनत्स्य मासकों नक्षण करता है, वो जीव, जीवितव्यकी वृद्धि
ास्ते अमृत रस गेड कर जीवितांतकारी, हालाहल विष नक्षण करता
, बालक जे होता है, सोनी पत्नरकों गेड कर सुवर्णको ग्रहण करता
, अरु जे मांसाहारी पुरुष है, वो जे माससेंनी अधिक पुष्टताके करने
ाला ऐसे दिव्य नोजन है, तिनकों गेड के मांस खाता है, तो वो बाल
कसेंनी अज्ञानी है.

और तरेसें मासनक्षणमें दूषण लिखते है. जे निर्दय पुरुष है, उसकों
र्म नहीं, क्योंकि धर्मका मूल दया है, ये बात सर्व संत जन मानते है,
अरु मासाहारीकों दया तो है नहीं, मास खाने वालेकों पूर्वे कसाइ कह्या
, इस वास्ते मासाहारीके धर्म नहीं.

प्रश्नः—मांसाहारी आपने आपकों अधर्मी क्यों बनाता है?

उत्तरः— मांसके स्वादमें लुब्ध हूआ वो धर्म,दया,कुछ नहीं जें कर कदाचित् जानजी जाता है, तोजी आप मांसलुब्ध है, इसें त्याग करनेकूं समर्थ नहीं, इस वास्ते वो मनमें विचार करता है, कि समानही सर्व हो जावे, अैसा जान कर औरोंकोंजी मांसजक्षण न नेका उपदेश नहीं करता है.

अब मांस जक्षण करनेवाले महामूढ हैं, यह बात कहते हैं. क मूढमति आप तो मांस नहीं खाते है, परंतु देवता, पितर, इनकों मांस चढा देते है, क्यों कि उनके शास्त्रकारक कहते है॥ क्रीत्वा स्वयं वा उत्पाद्य, परोपहृतमेव वा॥ देवान् पितॄन् समन्यर्च्य, मांसं न डुष्यति ॥ १ ॥ यह श्लोक मृगपक्षीयोंके विषयमें है, इसका कहते है. कसाईकी डुकान विना व्याध, शकुनिकादिकोंसे अर्थात् और जानवरोंके मारने वालोंसें मांस मोलसें ले कर देवता, अतिथि तरोंकों देनां चाहियें. क्यों कि वे लिखते हैं कि कसाईकी देवता पितरोंकी पूजा नहीं होती है, तातें आप मांस उत्पन्न करकें आदिकोंकूं देवे तो पितृआदि प्रसन्न होते है, सो इस प्रकारसूं मांस न करे, कि ब्राह्मण तो मांग कर मांस ल्यावे, औ क्षत्रिय शिकार रके मांस ल्यावे, अथवा किसीने मांस जेट करा होवे, उस मांससे दे पितरोंकी पूजा करकें फेर मांस खावे, तो दूषण नहीं, यह सर्व और मिथ्यादृष्टियोंका कहनां है, क्योंकि दयाधर्मी आस्तिकमत वाले कों तो मांस दृष्टिसेंजी देखनां योग्य नहीं, तो फेर देवता पितरोंकी पूजा मांससे करनी, यह तो धर्मीकों स्वप्नेमेंजी न होवेगी, इस वास्ते देवताओं कों मांस चढानां यह बुद्धिमानोका काम नहीं, कारण के देवता तो बडे पुण्यवान् है, कवल आहार करते नहीं है, तो फेर जुगुप्सनीय मांस क्यों कर खावे? जो कहते है कि देवता मांस खाते हैं, वे महा अज्ञानी है, अरु पितर जो हैं, वेतो अपणे अपणे पुण्य पापके प्रजावसें अन्य री गतिकों प्राप्त हो गये है, अपणे करे हूये कर्मोका फल जोगते है, न्नके करे हुए कर्मका उनकों कुछजी फल नहीं लगता है, तब मांस रूप पापका तो क्या कहना है? पुत्रादिकोंका सुकृत कराजी तिनकों नहीं

लता है, क्योंकि छांवके सींचनेसें केलेमें फल नहीं फलता है, अरु तिथिकी नक्ति वास्ते जो मांस देना है, सोतो नरकपातका हेतु अरु म अधर्मका कारण है, यहां कोई ऐसें कहे कि जो वात श्रुति स्मृतिमें , वो माननी चाहियें.

उत्तर-यह कहनां ठीक नहीं है, जो वात श्रुतिमें अप्रामाणिक है, वो द्धिमान् कदापि नहीं मानेंगे, क्योंकि श्रुतिमें हम ऐसे सुनते हैं, " व ांसि नूयांसि यथा पापघ्नो गोस्पर्शः द्रुमाणां च पूजागादीनांच पूजागा ीनां च वधः स्वर्ग्यः ब्राह्मणजोजनं पितृप्रीणनं मायावीन्यधिदेवतानि व हौ हुतं देवप्रीतिप्रदं" ऐसा कथन जो श्रुतियोंमें है, तिसकों युक्ति कुश त पुरुष कदापि नहीं मानेंगे, तिस वास्ते यही महा अज्ञान है, कि जो ांस करकें देवताओंकी पूजा करणी. कितनेक कहते हैं कि जैसें मंत्रों क रकें संस्कृत अग्नि, दाह नही करती है, तैसेंही मंत्रों करकें मासनी संस्कार करा हूआ दोपके वास्ते नही होता है, यह कथन मनुजीका है ॥श्लोक॥ असंस्कृतान् पशून्मंत्रै, नौद्याद्विप्र कथंचन ॥ मंत्रैश्चसंस्कृतानद्या, शाश्वत विधिना स्थितः ॥ १ ॥ अर्थः-मंत्रों करकें असंस्कृत पशुओंका मासकों ब्राह्मण न खावे, अरु जो मंत्रों करकें संस्कृत पशु है, तिनका मांस खावे, तो शाश्वतोनित्यो वैदिक जाननां.

उत्तरः- मंत्र करकें जो मांस पवित्र कीया है, वो मांसकों धर्मी पुरुष कदापि नक्षण न करे, क्योंकि मंत्र जैसें अग्निका दाह शक्तिकों रोकता है, तैसें नरकादि प्रापण शक्ति जो मांसकी है, उसको नहीं दूर कर सके, जेकर दूर कर देवे तब तो सर्व पाप करकें पीछें पापका हनने वाला मंत्रके स्मरण मात्रसेंही सर्व पाप दूर हो जाने चाहियें, तब तो जो वेदोमें पाप का निषेध करा है, सो सर्व निरर्थक हूआ, क्यों कि सर्व पापोंका मंत्रके स्मरणसेंही नाश हो गया, इस वास्ते यहनी अज्ञोंहीका कहनां है,

तथा कोइ कहते है कि जैसें थोडासा मद्य पीनेसे नशा नहीं चढता है, तैसें थोडासा मांस खानेमेंनी पाप नहीं लगता है

उत्तरः- बुद्धिमान् यवमात्रनी मास न खावे, क्यों कि थोडानी विष दुःखदायी होता है, तैसे थोडानी मास खाना सोनी दोपके तांइ है.

अब मांस खानेमें अनुत्तर दूषण कहते हैं, तत्काल इस मांसमें संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते है, अरु अनंत निगोद रूप जीव तिनका संतान वारं वार होनां तिस करकें दूषित हैं, यदाहु आमासु अपकासु, अविपच्चमाणासु मंसपेसीसु ॥ सयय चिय उववाउ, भणिउ निगोय जीवाणं ॥ १ ॥ अर्थः—कच्ची तथा अपक्क अैसी जो मांसकी पेसी बोटी रंधती है, तिसमें निरंतर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खानां जो है, सो नरकमे जाने वालोंकों पूरी खरची है,इस कारण के लीये बुद्धिमान् पुरुष जो है सो मांस कदापि न खावे.

अथ यह मास खाना किन्होने कथन करा है,तिनोका नाम लिखते हैं. १ मास खानेके लोभीयोने, २ मर्यादा रहितोंने. ३ नास्तिको ने, ४ थोडी बुध्दि वालोंने, ५ खोटे शास्त्रोके बनाने वालोंने, ६ वैरीयोने, मास खाना कहा है. तथा मासाहारीसे अधिक कोइ निर्दयी नहीं. तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ नरककी अग्निका इंधन नहीं. गंदगी खा कर जो सूअर अपणे शरीरको पुष्ट करता है, सो अच्छा है, परंतु जीवकों मारके जो निर्दयी हो कर मांस खाता है, सो अच्छा नही है.

प्रश्नः— सर्व जीवोंका मास खानां तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दीया है, परंतु मनुष्यका मास खानां तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है, इसका क्या हेतु होगा ?

उत्तरः—अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खाना नहीं लिखा, क्यों कि वे कुशास्त्रोंके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मास खाना लिखेंगे,तो मनुष्य कबी हमकोंही न खा लेवे ? इस शंकासे नहीं लिखा. जो पुरुषमांसमें अरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता है,तिस समान कोइ धर्मी नही,अरु तिसमें जो भिन्न मानके मांस खाते है इस समान कोइ पापीभी नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसेंही उत्पत्ति होती है, अरु विष्ठाके रससें वृध्दि होती है, तथा लहु जिसमें भरा रहता है, अरु कृमि जिसमें उत्पन्न होते है,अैसे मांसकों कौन बुध्दिमान् खाता है ? आश्चर्य तो यह है कि ब्राह्मण लोक शुचिमूल तो धर्म कहते हैं,अरु सप्त धातुसे जो मांस हाड बनते हैं, तिस मांस हाडकों मुखमें दांतोंसें चबाते हैं, अब उनको कुत्तों के समान समजीयें कि शुचिधर्मवाले मानीये ? यह आश्चर्य है, जिन

की ऐसी समझ है, कि अन्न और मांस यह दोनो एक सरीखे है, ति
। बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विषभी तुल्यही हैं,
अरु जो जडबुद्धि ऐसा अनुमान करते हैं,कि मांस खाने योग्य है,इति
णीका अंग होनेसें यह हेतु उंदनादिवत् यह दृष्टांतसें यह मांसभी प्राणी
अंग है, इस वास्ते मांसभी खाने योग्य है,तब तो गौका मूत तथा माता,
ता, भार्या, बेटी, इनका मूत पुरिषभी क्यों नही पीते खाते है? क्योंकि
भी प्राणीका अंग है, तथा अपनी भार्याकी तरें अपनी माता, बहिन,
ीकों क्यों नहीं गमन करते है? स्त्रीत्व अरु प्राणी अंगत्व सर्व जगे ब
बर है, तथा जैसें गौका दूध पीते है, तैसें गौका रुधिर तथा माता पिता
कोंका रुधिरभी क्यों नही पीते है? क्योंकि प्राणी अंग हेतु तो सर्व जगे
ल्य है, इस वास्ते जो अन्न और मांस इन दोनोकों तुल्य जानते हैं, वेभी
हा पापीयोंके सिरदार है,

तथा शंखकों शुचि मानते हैं, परंतु पशुके हाडकों कोइ शुचि नहीं मा
नता, इस वास्ते अन्न और मांस यद्यपि प्राणी अंग हैं. तोभी अन्न भक्ष्य
है, अरु मांस अभक्ष्य है, एक पंचेंद्रिय जीवका वध करकें जो मांस खाता
है, जैसी तिसकों नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेकों
नही होती है, क्योंकि अन्न मांस नहीं हो सक्ता है, मांसकी तसीरोंसे अ
न्नकी तसीरें और तरेकी है, मांस महाविकारका करने वाला है, तैसा अ
न्न नहीं. इत्यादि विलक्षण स्वभाव है, इस वास्ते मांस खाने वालोंकी न
रकगति जान कर संत पुरुष अन्नके भोजनसें तृप्ति मानते है,अरु सरस प
दकों प्राप्त होते है, यह तो मांसके दूषण श्रीहेमचंद्र सूरिकृत योगशास्त्रके
अनुसार लिखे है. अरु इस कालमेंभी युरूपियन लोक जो बुद्धिमान् है,
उनोनेभी मांस खानेमें चौवीस दूषण प्रगट करे है,अरु मदिरा पीनेसें जो
खराबीयां होती है, तिनको तो गिणतीभी नहीं है,इस वास्ते मदिरा अरु
मांस यह दोनों अभक्ष्यको श्रावक त्यागे यह सातवा अभक्ष्य कह्या.

८ आठमा अभक्ष्य माखण है, क्योंकि जैन मतके शास्त्रानुसारे छाछसे
बाहिर काढे माखणकों जब अंतर मुहूर्त्त अर्थात् दो घडीके लगभग काल
व्यतीत हो जाता है, तब उस माखणमें सूक्ष्म जीव तद्वर्णके उत्पन्न हो
जाते है, इस वास्ते माखण खाना वर्जित है. जैन लोकोंको छाछसें बाहिर

माखण निकालके तत्काल अग्निके संयोगसें घी बनाके छानके देखके पीछे खाना चाहियें, क्यों कि एक तो इस रीतिसे शास्त्रोक्त जीव उत्पन्न नहीं होते है, तिनकी हिंसाजी नही होती है, अरु मकडी, कंसारी, मछरादि, जानवरों के अवयव टांग प्रमुखजी घी छाणणेसें निकल जाते हैं, अरु माखण काम कीजी वृद्धि करता है, तब मनमें खोटे विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस वास्तेजी श्रावककों माखण न खानां चाहिये, तथा एक जीवके वध करनेसेंजी जब पाप होता है, तब तो पुर्वोक्त रीतीसें माखन तो जीवोंकाही पिंम हो जाता है, तब माखनके खानेमें पापकी क्या गिनती है ?

प्रश्नः–माखनमे तो दो घडी पीछें कोईजी जीव उत्पन्न हूआ हम नहीं देखते है, तो फेर माखनमें दो घडी पीछें हम क्योंकर जीव मान लेवें ?

उत्तरः–जो जैनमतके शास्त्रोंकों सत्य मानेगा वो तो शास्त्रकारका कथन सत्यही मानेगा, अरु जो जैनके शास्त्रोंकों सत्य नहीं मानता, वो चाहो सत्य माने, चाहो न माने परंतु हम आगम प्रमाणके विना इस वातमें और प्रमाण नही दे सकते है. क्योंकि वस्तु दो तरेंकी होती है, एक हेतुगम्य, दूसरी आगमगम्य, तो माखनदिदलादिमे जो जीव उत्पन्न होते है, वे हेतुगम्य नही किंतु आगम गम्य हैं, इस वास्ते जो आगम सर्वज्ञ जिन अर्हंत वीतरागका कहा हूआ है, उसीका कहा माननां चाहिये, जे कर कोई पुरुष किसीजी शास्त्रको न मानेगा, आंखोसे देखी वस्तुही मानेगा, तब तो नरक स्वर्गादि जो अदृष्ट है, उनकोंजी न माननां चाहियें, तथा परमेश्वर चौदवे तथा सातवे असमान उपरि रहता है, तथा स्वर्ग अरु नरकमें पुण्य पाप करनेसें जीव जाता है, यहजी न माननां पडेगा, इस वास्ते आगम प्रमाणजी मानना चाहियें. क्योंकि सर्ववस्तु हमारी दृष्टिमे नहीं आती है.

९ नवमा अजक्ष्य मधु, अर्थात् सहत है, उसका स्वरूप लिखते हैं. यह सहत जो है, सो अनेक जीवोंकी घात होनेसे उत्पन्न होता है, यह तो परलोक विरोध दोष है, अरु मधु (सहत) जुगुप्सनीय (निंदने योग्य) है, मुखकी लालवत् यह इहलोक विरुद्ध दोष है, इस वास्ते श्रावकधर्मीकों मधु न खाना चाहिये.

अब मधु अर्थात् सहत खानेवालेकों पापी पणा दिखाते हैं, ॥श्लोक॥ जक्षयन्माक्षिकं क्षुद्रं, जंतुलक्षक्षयोद्भव ॥ स्तोकजंतु निहंतृभ्यः, सौनिकेभ्यो

लिप्यते ॥१॥ अर्थः—क्षुद्रजंतु जो छोटे जीव अथवा हाड रहित जीव, तिनोंके लाखोंका नाश उपलक्षणसें बहुत जीवोका जब विनाश होता है, तब मधु उत्पन्न होता है,जब मधु भक्षण करता है,तब थोडे पशु मारने वाले कसाइसेंभी उसकों अधिक पाप लगता है,क्यों कि जो भक्षक है, सो भी घातक है,यह बात उपर लिख आये हैं. तथा लोकमें यह व्यवहार है, जो जूठा भोजन नहीं खानां, अरु यह जो मधु है, सो तो महा जूठ है, क्योंकि एकेक फूलसें रस (मकरंद) पी करके मक्षीयोंजो वमन करतीयों है. सो सहत है मधु है इस वास्ते धर्मी पुरुषकों जूठ न खानी चाहियें. यह लौकिक व्यवहारमें प्रसिद्ध है.

कोइ कहेगा कि मधु तो त्रिदोषका दूर करने वाला है, इस लिये रोग दूर करने वास्ते औषधिमें भक्षण करे तो क्या दोष है? इत्याद्

उत्तरः—अप्यौषधकृतेजग्धं,मधुश्वभ्रनिबंधनं ॥ भक्षितप्राणनाशाय, काल कूटोकणोऽपि हि ॥ १ ॥ अर्थः—जो कोइ रसकी लंपटतासें मधु खावे, उस की बात तो दूर रही, परंतु जो औषधिके वास्तेभी मधु खावे,सो यद्यपि रोगादि अपहारक है, तोभी नरकका कारण है, हि यस्मात् प्रमादके उदय सें जीवनेका अर्थी हो कर कें जो कोइ कालकूट विषका एक कणभी खायगा, सो जरूर प्राण नाशके तांइ होवेगा.

प्रश्नः—मधु तो खजूर इक्षादि रसकी तरें मीठा है,सर्व इंद्रियोंकों सुख कारी है, तो फेर इसकों त्यागने योग्य क्यों कहते हो?

उत्तरः— सत्य है. जो मधु मीठा है, यह व्यवहारसें हैं,परंतु परमार्थसें तो नरककी वेदनाका हेतु होनेंसें अत्यंत कडूआ है,

अब जो मधुकों पवित्र मान कर मंदबुधि जीवों मधुकों देवस्नानमें उपयोगी समजते हैं, तिनका उपहास्य शास्त्रकार करते है ।।श्लोक॥ मक्षिकामुखनिष्टयूत, जंतुघातोद्भवं मधुः ॥ अहो पवित्रं मन्वाना, देवस्नाने प्रयुंजते ॥१॥ अर्थः—माखीयोंके मुखकी जूठ,अरु जीवघातमे अर्थात् हजारो बच्चे अरु अंडोंके मारनेसें, उत्पन्न होता है वो बच्चे, अंडे जब मरते हैं,तब तिनके शरीरका लहु पाणीभी मधु (सहत) के बिच मिल जाते हैं.तब तो मधु महा अशुचिरूप है, अहो यह शब्द उपस्यार्थमें है, क्यों कि जैसे वे देवता है, तैसो तिनकों पवित्र वस्तुभी चढाइ जाती है. यह उपहास्य है,

सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा वास्ते अरु अशुद्ध व्यवहार दूर करने वास्ते रात्रि कों नहीं खाते है यद्यपि दीवेके चादणेसें कीडी प्रमुख दीख जाती है तोनी मूलगुणकी विराधना टालने वास्ते रात्रि नोजन अनाचीर्ण है

अब लौकीक मतवालोंकि सम्मति देकर रात्रिनोजनका निषेध करते है श्लोक ॥ धर्मविन्नैवनुंजीत्त, कदाचनदिनात्यये ॥ बाह्याअपि निशी नोज्यं, यदनोज्यंप्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ अर्थः— श्रुतधर्मका जानने वाला कदाचित् रात्रिनोजन न करे क्योंकि जो जिनशासनसें बाहिरले मतवाले है वेनी रात्रिनोजनको अनक्ष्य कहते हैं तिनका शास्त्रही लिखते हैं श्लोक ॥ त्रयीतेजोमयोनानु, रितिवेदविदोविडुः ॥ तत्करैःपूतमखिलं, शुनंकर्मसमाचरेत् ॥ १ ॥ अर्थः— ऋग यजुः साम लक्षण तीनो वेद तिनका जो तेज है सो सूर्य है आदित्यः त्रयीतनुः ऐसा सूर्यका नाम है ऐसावेदोंके जानने वाले जानते हैं तिस सूर्यकी किरणाकरके पिः— पूतं (पवित्र) संपूर्ण शुनकर्म अंगीकार करे जब सूर्योदय न होवे तब शुनकर्म न करे तिन शुनकर्मोका नाम लिखते हैं श्लोक ॥ नैवाहुतिर्नचस्नानं, नश्राद्धंदेवतार्चनं ॥ दानंवाविहितंरात्रौ, नोजनंच विशेषतः ॥ २ ॥ अर्थः—आहुति सो अग्निमें घृतादि प्रक्षेप करना स्नानसो अंग प्रत्यंग प्रक्षाल करना श्राद्ध पितृकर्म देवपूजा दानदेना नोजन तो विशेष करकेही नज करना इतना काम रात्रिमें न करने.

तथा परमतके यहनी दो श्लोक हैं ॥ देवैस्तुभुक्तंपूर्वान्हे, मध्यानेऋषिनीस्तथा ॥ अपरान्हेतुपितृनि,ः सायान्हेदैत्यदानवैः ॥ १ ॥ सध्यायां यक्षरक्षोनिः, सदानुंक्तकुलोद्वहः ॥ सर्ववेला व्यतिक्रम्य; रात्रौभुक्तमनोजनं ॥ २ ॥ अर्थः— सवेरेतो देवता नोजन करते है मध्यान्ह अर्थात् दो पहर दिन चढें ऋषि नोजन करते है अपरान्ह अर्थात् दिनके पीछले नागमें पितर नोजन करते है अरु सायान्हे विकाल वेलामें दैत्य दानव नोजन करते हैं संध्यामें रातदिनकी संधिमें यक्ष गुह्यक राक्षस खाते है ॥ कुलोद्वहे तियुधिष्टरस्यामंत्रण ॥ सर्वदेवताओंका वखत उलंघके रात्रिकों जो खाना है सो अनक्ष है यह पुराणोंके श्लोकों करके रात्रि नोजनके निषेधका संवाद कहा

अब वैद्यक शास्त्रकानी रात्रिनोजनके निषेधका संवाद कहते हैं श्लो

॥ आयुर्वेदेपु ॥ हृन्नाभि पद्मसंकोच, श्चंमरो चिरपायतः ॥ अतोनक्तंन भोक्तव्यं, सूक्ष्मजीवादनादपि ॥ १ ॥ अर्थः— इस शरीमेंर दो पद्म अर्थात् कमल हैं एकतो रुदय पद्म सो अधोमुख है दूसरा नाभिपद्मसो उर्द्धमुख है यह दोनो कमल सो सूर्यके अस्त होनेसें रात्रिमें संकोंच हो जाते हैं किस कारणसें संकोच होजाते है? सूर्यके अस्त होजानेसें संकोच हो जाते है इस वास्ते रात्रिकों न खाना चाहिये तथा रात्रिकों सूक्ष्म जीव खाये जाते हैं इस्सें अनेक रोगोत्पन्न होते है यह पर पक्षका संवाद कहा.

अब फेर स्वमतसे रात्रिभोजनकानिषेध कहते है श्लोक ॥ संसक्तजीवसंघात. भुंजानानिशिभोजनं, राक्षसेभ्योविशिष्यंते, मूढात्मानः कथंनुते ॥ १ ॥ अर्थ —जब रात्रिमें खाता है तब जीवोंका समूह भोजनमें पड जाता है असे अंधरूप रात्रिके भोजनके खानेवालोंको राक्षसोसेंभी क्योंकर विशेष नही कहना? जब पुरुष जिनधर्मसें रहित होकर विरति नही करता है तब श्रृंग पुछसें रहित पशु रूपही है यडुक्तं ॥ वासरेचरजन्यांच, यः खादन्नेवतिष्ठति ॥ श्रृंगपुछपरिभ्रष्टः ॥ सस्पष्टंपशुरेवहि ॥ १ ॥

अब रात्रिभोजन निवृत्तिके वास्ते पुण्यवंतोंकों अभ्यास विशेष दिखाते है श्लोक ॥ अन्होमुखेवसानेच, योद्वेद्वेघटिकेत्यजेत् ॥ निशाभोजनदोषज्ञो, ऽश्नात्यसौपुण्यभाजनं ॥१॥ अर्थः—दिन उदयमे अरु अस्त समयमें दो दो घडी वर्जनी चाहिये क्योंकि रात्रि निकट होनेंसें वर्जनी चाहिये इसी वास्ते आगममें सर्व जघन्य प्रत्याख्यान मुहूर्त्त प्रमाण नमस्कार सहित कहते हैं रात्रिभोजनके दूषणोंका जानकार श्रावक दो घटी जब शेष दिन रहे तब भोजन करे जेकर दो घडीसें थोडादिन रहे भोजन करे तो रात्रि भोजनके प्रत्याख्यानका उसकों फल नही होता है जेकर कोइ रात्रिकों नभी खावे परतु जो उसने रात्रिभोजनका प्रत्याख्यान न करा है तो उसकोंभी कुछ फल नहीं मिलता है क्योंकि उसने प्रतिज्ञा नहीं करी है जैसे रूपइये जमा करावे अरु व्याजका करार न करे उसको व्याज नही मिलता है इस वास्ते नियम जरुर करना चाहिये

अब रात्रिभोजन खानेका फल परलोकमें कहते है श्लोक ॥ उलूककाकमार्जार, गृध्रशंबरशूकरा ॥ अहिवृश्चिक गोधाश्च, जायंतेरात्रिभोजनात् ॥ १ ॥ अर्थः—उलू, काग, बिल्ली, गृध्रचील, बारांसगा. सूअर, सर्प,

बिच्छु, गोह, इत्यादि तिर्यंच योनीमें रात्रिभोजन खानेवाले मरके अरु जो रात्रिभोजन न करे उनकों एक वर्षमें ६ महीनेका तपका होता है ॥ इतिरात्रिभोजन अभक्ष्य संपूर्ण॥ १४ ॥

१५ बहुबीजा फलभी अभक्ष्य है जिसमें गिर थोडा अरु बीज बहुत होवे सो बइंगण, पटोल, खसखस, पंपोटा प्रमुख फल, जिसमें बीज है उसमें उतने पर्याप्त जीव है जेकर खानेमे तो थोडा आता है अरु जीवघात बहुत होती है तथा बहुबीजा फल खानेसें पित्त प्रमुख रोग का हेतु होता है अरु जिनाज्ञा विरुद्ध है इति बहु बीजा अभक्ष्य ॥१५॥

१६ सधान अथाणा (आचार) तीन दिनसे उपरातका अभक्ष्य है सो अथाणा (आचार) अंबका, निबुका, पत्रका, कर्मदाका, आदेका, जिमीकंद का, गिरमिरका इत्यादिक अनेक वस्तुका अथाणा (आचार) बनता है चाहो घीका होवे वा तेलका होवे वा पाणीका होवे सर्व तीन दिन उपरांत अभक्ष है परंतु इतना विशेष है कि:— जो फल आप खट्टे हैं अथवा दूसरी वस्तुमें खट्टा अंबादिकजो मेल देवे वेतो तीन दिन उपरांत अभक्ष्य है अरु जिस वस्तुमे खट्टाई नहीं है उसका अथाणा (आचार) एक रात्रिसें उपरात अभक्ष्य है क्यो कि— इस आचार (अथाणामें) त्रस जीव उत्पन्न होते है अरु बिल्व प्रमुखतो प्रथमही अभक्ष्य है तो फेर उनके अथाणे (आचारका) तो क्याही कहना है? आचारमें चौथे दिन निश्चय दोइंद्रीयजीव उत्पन्न होते है तथा जूठा हाथ लग जावेतो पंचेंद्री, जीव उत्पन्न हो जाते है दूसरे मतवालोंके शास्त्रोंमेंभी अथाणा (आचार) नरकका हेतु लिखा है. इति अथाणा अभक्ष्य समाप्त. ॥१६॥

१७ द्विदल जिसकी दो दाल होजावे अरु घाणीमे पीले जिसमेंसें तेल न निकले ऐसे सर्व अन्नको द्विदल कहते है तिस द्विदलके साथ जो गोरस अग्नि उपर नहीं चढा है ऐसा कच्चा दही कच्चा दूध छाछ इनके साथ नहीं जीमणा अरु जेकर दही दूध छाछ गरम करी होवे फेर पीछे चाहो ठंढा हो जावे उसमें जो द्विदल मिलाकर खावे तो दोष नहीं है

१८ सर्व जातके बैंगण एकतो बहु बीजे है इस वास्ते अभक्ष्य है तिनके बीटमे सूक्ष्म त्रस जीव रहते है तथा बैंगण कामकी वृद्धि करते है नींद अधिक करते हैं कुछक बुद्धिकोंभी ढीठ करते है इनका नामभी बुरा है इस

को आकारनी अत्रा नहीं है तथा कफ रोगके करता हैं इनके अधिक खा नेसें चोथइयातप खइ रोगादि होजाते हैं और सब जातका फलतो सूकेभी खानेमें आता है परंतु यहतो सूकेभी खाने योग्य नही हैं क्योंकि सूके पीछे असे हो जाते है कि मानों चूहोंकी खलडी है ताते यह इव्य अशुध्द है इस वास्ते अनक्ष्य है. इति वेंगण अनक्ष्य ॥१८॥

१९ तुच्छ फल जो ढींमु पीलुं पेंचु तथा अत्यंत कोमल फल सोभी अनक्ष्य है क्योंकि असी वस्तु बहुतभी खावे तोभी तृप्ति नहीं होती है अरु खानेमें थोडा आता है और गेरना बहुत पडता है तथा फल खायां पीछें तिनकी गुठली जो मुखमें चबोलके गेरते है उसमें असंख्य पंचेंद्रीय संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं तथा जो पुरुष बहुत तुछफल खाता है तिसकों तत्काल रोग होजाता है. इति तुच्छफल अनक्ष्य ॥१९॥

२० अजाणा फल सो जिसका नाम कोइ न जानता होवे तथा न किसीने खाया होवे सो फलभी अनक्ष्य है क्योंकि क्या जाने कभी जहर फल खाया जावे तो मरण हो जावे तथा बावला होजावे ॥ २० ॥

२१ चलित रस सो जिस वस्तुका काल पूरा होगया होवे अरु स्वाद बदल गया होवे सो जब स्वाद बदल जाताहै तब तिसका कालभी पूरा होजाता है जिसमेंसें दुर्गंध आने लगे, तार पड जावें, सो चलितरस वस्तु है यहभी अनक्ष्य है रोटी, तरकारी, खीचडी, वडा, नरमपूरी, सीरा, हलवा इत्यादि रसोइकी अनेक वस्तु जिनमें पाणीकी सरसाइ है असी वस्तु एक रात उपरांत अनक्ष है तथा विदल (दाल,) वडे, गुलगले, घु जीयें जिनमें पाणीकी सरसाइ है वे चार पहर उपरात अनक्ष है जुग लोकी राब (घेंस) जो विना विदलके और उदन गातमें राधा है सो आठ पहर उपरांत अनक्ष्य है तथा वर्षाकालमे अठीरोतोसें जो मिठाइ बनी होवे तो पंदर दिन उपरांत अनक्ष है जेकर पंदर दिनसें पहिले बिगड जावे तो पहिलाही अनक्ष्य है असी तरे सर्वत्र जान लेना तथा उष्णकालमें मिठाइकी स्थिति वीस दिनकी है अरु शीतकालमे मिठाइ की स्थिति एक मासकी है उपरात अनक्ष्य है तथा दही शोला पहर उपरात अनक्ष्य है छाछभी दहीवत् जानलेनी इस चलित रसमें बे इंद्रिय जीव उत्पन्न होवे है इस वास्ते यह अनक्ष्य है ॥ २१ ॥

२२ बत्तीस अनंत काय सर्व अनक्ष्य है क्योंकि सूईकेअग्रनाग जित
जितना टुकडा अनंतकायका आता है उस टुकडेमेंनी अनंत जीव हैं
वास्ते अनक्ष्य है. तिनका नाम लिखते हैं. १ नूमिके अंदर जितने
कंद उत्पन्न होता है, सो सर्व अनंतकाय है, २ सूरणकंद, ३ वज्रकंद,
४ हरिहलदी, ५ अद्रक, ६ हरिया कचूर, ७ सौंफकी जडा,
कानाम विराली कंद है, ८ सतावरवेल औषधि, ९ कुंआर, १० थोहर
द. ११ गलो, १२ लसण, १३ वांसका करेला, १४ गाजर, १५ लाणा
जिसकी सज्जी बनती है, १६ लोढी पद्मनी सो लोढ़ाकद, १७ गिरमि,
(गिरिकरनी) कछ देशमें प्रसिद्ध है, १८ किसलयपत्र (कोमल पत्र) जो नवा
अंकूर उगता है, सर्व वनस्पतिका उगती वखतके अंकूर, सो सर्व प्रथम
अनंतकाय होते है, पीछें जब बढते है, तब प्रत्येकनी हो जाते हैं, अरु
अनंतकायनी रहते है, १९ खरसूयाकंद. (कसेरु) अनंतकाय, २०
थेग कंद विशेष है तथा थेग नामक नाजी, २१ हरे मोथ, २२
लवण वृक्षकी छाल, २३ खिलोडी, २४ अमृतवेल, २५ मूली, २६
नूमिरुहा सो नूमिफोडा छत्राकार, जिनको बालक पदवदेडे कहते
हैं, तथा खुंबी कहते है, २७ वथुवेकी प्रथम उगतेकी नाजी, २८ कक
ढार, २९ सूयरवल्ली जो जंगलमें बडी वेलडी हो जाती है, ३० पल
ककी नाजी, ३१ कोमल आंवली, जहांतक उसमें बीज नहीं पडा है,
तहांतक अनंतकाय है, ३२ आलुख, रतालु, पिमालु, यह बत्तीस अनंत
कायका नाम सामान्य प्रकारसें कहा है, अरु विशेष नाम तो अनेक है,
क्योंकि कोईक वनस्पति तो पंचांग अनंतकाय है, कोईका मूल अनंतका
य है, कोईका पत्र, कोईका फूल, कोईकी छाल, कोईका काष्ठ, ऐसें को
ईके एकअंग, कोईके दोअंग, कोईके तीन अंग, कोईके चार अंग, कोईके
पांच अंग, अनंत काय है. यह बत्रीश अनंतकाय अनक्ष्य है ॥ २२ ॥

अब यह अनंतकायके जानने वास्ते लक्षण लिखते हैं. जिसके पत्र,
फूल, फल प्रमुखकी नसां गूढ होवें, दीखे नहीं, तथा जिसकी संधि,
होवे, जो तोडनेंसें बराबर टूटे, अरु जो जडसें काटी हुई
हो जावे. जिसके पत्ते मोटे दलदार चीकणे होवें, जिसके पत्ते
बहुत कोमल होवें, ये सर्व अनंतकाय जाननी.

इन अनक्षोंमें-अफीम भांग प्रमुखका जिसकों पहिला अमल लगा होवे, तब तिसके रखनेकी जयणा करे, तथा रात्रिनोजनमें चउविहार, तिविहार, डुविहार एक मासमें इतने करुं ऐसा नियम करे, तथा रोगादिकके कारण किसी औषधिमें कोइ अजक्ष खाना पडे, तिसकी जयणा रखे, तथा बत्तीस अनंतकाय तो सर्वथा निषेध हैं, तोजी रोगादि कारणसें औषधिमें खानी पडे, तिसकी जयणा रखे, तथा अजाण पणें किसी वस्तुमें मिली हुइ खानेमें आ जावे, तो तिसकी जयणा इति बावीश अजक्ष्य स्वरूपं.

अथ चौदह नियमका विवरण लिखते है. गाथा ॥ सचित्तदव्वविगइ, वाणेह तंवोल वत्थ कुसुमेसु ॥ वाहण सयण विलेवण, वंजदिसि न्हाण जत्तेसु ॥१॥ अस्यार्थः—श्रावकके जावजीव पांचअणुव्रतमें इछा परिमाण सो कोइ आगेंकी अनेक तरेंकी कर्म परिणतिका संजव करकें अपणे निर्वाह सामर्थ्यका उदय अतिडुस्तर विचारके इछा परिमाणमें बहुत वस्तु खुल्ली रक्खी है, तिनमेंसें फेर नित्यका आश्रव निवारनेके वास्ते संक्षेप करणार्थे चौदह नियमका धारण दिन प्रत्यें रखनां चाहियें, तिसका स्वरूप कहते है.

१ प्रथम सचित्त परिमाण. सो मुख्यवृत्ती करके तो श्रावककों सचित्तकों त्याग करणां चाहियें, क्योंकि अचित्त वस्तुके खानेमें चार गुण हैं, प्रथम तो अप्राशुक जलादिकका पीना वर्जनेंसें, सर्व सचित्त वस्तुका त्याग हो जाता है, जहां तक अचित्त वस्तु न होवे, तहां तक मुखमें प्रक्षेप न करे, दूसरा जीव्हा इंडिय जींती जाती है, क्योंकि कितनीक वस्तु विना राधे स्वादवाली होती है, तिनका त्याग हूआ तीसरा अचित्त जलादि पीनेंसें काम चेष्टा मंद हो जाती है, अरु चित्तमें ऐसा खटका हरहमेश रहता है, कि मेरेकूं मतकनी सचित्त वस्तु खानेमें आ जावे? चौथा जलादिक इव्य अचेतन करनेमें जीवहिसा हूइ है, सोतो कर्मबंधनका कारण बन चूकी, परतु जो क्षण क्षणमें असंख्य (अनंत) जीवोंकी उत्पत्ति होती थी, सो मिट गइ तिनकी हिसा न होवेगी, अरु जो कोइ मूढमति अपनी मन कल्पनासे ऐसा विचार करे कि अचित्त करनेमें षट् कायके जीवोंकी हिसा होती हैं. अरु सचित्त जलादिक पीनेमें तो एक जलादिककी हिसा है, इस वास्ते सचित्तका त्याग न करनां चाहियें ऐसा विचारके सचित्त त्यागे नहीं, सो मूर्ख जिनमतके रहस्यकों नहीं

२२ बत्तीस अनंत काय सर्व अनदय है क्योंकि सूईकेअग्रनाग आवे जितना टुकडा अनंतकायका आता है उस टुकडेमेंनी अनंत जीव हैं वास्ते अनदय है. तिसका नाम लिखते हैं. १ नूमिके अंदर जितना कंद उत्पन्न होता है, सो सर्व अनंतकाय है, २ सूरणकंद, ३ वज्रकंद, ४ हरिहलदी, ५ अद्रक, ६ हरिया कचूर, ७ सोफकी जडा, ... कानाम विराली कंद है, ८ सतावरवेल ओषधि, ९ कुंआर, १० थोहरकंद, ११ गलो, १२ लसण, १३ वांसका करेला, १४ गाजर, १५ लाणा, जिसकी सज्जी बनती है, १६ लोढी पद्मनी सो लोढाकंद, १७ गिरमिर, (गिरिकरनी) कछ देशमें प्रसिद्ध है, १८ किसलयपत्र (कोमल पत्र) जो नवा अंकूर उगता है, सर्व वनस्पतिका उगती वखतके अंकूर, सो सर्व प्रथम अनंतकाय होते है, पीछें जब बढते है, तब प्रत्येकनी हो जाते है, अरु अनंतकायनी रहते हैं, १९ खरसूयाकंद. (कसेरु) अनंतकाय, २० थेग कंद विशेष हैं तथा थेग नामक नाजी, २१ हरे मोथ, २२ लवण वृक्षकी छाल, २३ खिलोडी, २४ अमृतवेल, २५ मूली, २६ नूमिरुहा सो नूमिफोडा छत्राकार, जिनकों बालक पदबहेडे कहते है, तथा खुंबां कहते हैं, २७ वथुवेकी प्रथम उगतेकी नाजी, २८ करहार, २९ सूयरवल्ली जो जंगलमें बडी वेलडी हो जाती है, ३० पलककी नाजी, ३१ कोमल आंबली, जहांतक उसमें बीज नहीं पडा है, तहांतक अनंतकाय है, ३२ आलुख, रतालु, पिंडालु, यह बत्तीस अनंत कायका नाम सामान्य प्रकारसें कह्या है, अरु विशेष नाम तो अनेक हैं, क्योंकि कोईक वनस्पति तो पंचांग अनंतकाय है, कोईका मूल अनंतकाय है, कोईका पत्र, कोईका फूल, कोईकी छाल, कोईका काष्ठ, ऐसें कोईके एकअंग, कोईके दोअंग, कोईके तीन अंग, कोईके चार अग, कोईके पांच अंग, अनंत काय है. यह बत्रीश अनंतकाय अनदय है ॥ २२ ॥

अब यह अनंतकायके जानने वास्ते लक्षण लिखते हैं. जिसके पत्ते, फूल, फल प्रमुखकी नसां गूढ होवें, दीखे नहीं, तथा जिसकी संधि गुप्त होवे, जो तोडनेसें बराबर टूटे, अरु जो जडसें काटी हुइ फेर हरि हो जावे, जिसके पत्ते मोटे दलदार चीकणें होवें, जिसके पत्ते अरु फल बहुत कोमल होवें, यें सर्व अनंतकाय जाननी.

इन अनक्ष्योंमें अफीम नांग प्रमुखका जिसकों पहिला अमल लगा होवे. तव तिसके रखनेकी जयणा करे, तथा रात्रिनोजनमें चउविहार, तिविहार, डुविहार एक मासमें इतने करुं ऐसा नियम करे, तथा रोगादिकके कारण किसी औषधिमें कोइ अनक्ष्य खाना पडे,तिसकी जयणा रक्खे,तथा बत्तीस अनंतकाय तो सर्वथा निषेध हैं, तोनी रोगादि कारणसें औषधिमें खानी पडे, तिसकी जयणा रक्खे, तथा अजाण पणें किसी वस्तुमें मिली हुइ खानेमें आ जावे, तो तिसकी जयणा इति बावीश अनक्ष्य स्वरूपं.

अथ चौदह नियमका विवरण लिखते है. गाथा ॥ सचित्तदव्वविगइ, वाणेह तंबोल वह्न कुसुमेसु ॥ वाहण सयण विलेवण, बंनदिसि न्हाण नत्तेसु ॥१॥ अस्यार्थः—श्रावकके जावजीव पांचअणुव्रतमें इछा परिमाण सो कोइ आगेंकी अनेक तरेंकी कर्म परिणतिका संनव करकें अपणे निर्वाह सामर्थ्यका उदय अतिडुस्तर विचारके इछा परिमाणमें बहुत वस्तु खुल्ली रक्खी है, तिनमेंसें फेर नित्यका आश्रव निवारनेके वास्ते संक्षेप करणार्थे चौदह नियमका धारण दिन प्रत्यें रखनां चाहियें, तिसका स्वरूप कहते है.

१ प्रथम सचित्त परिमाण. सो मुख्यवृत्ती करकें तो श्रावककों सचित्तकों त्याग करणां चाहियें, क्योंकि अचित्त वस्तुके खानेमें चार गुण है, प्रथम तो अप्राशुक जलादिकका पीना वर्जनेंसें,सर्व सचित्त वस्तुका त्याग हो जाता है, जहां तक अचित्त वस्तु न होवे, तहां तक मुखमें प्रक्षेप न करे, दूसरा जीव्हा इंड्रिय जीती जाती है, क्योंकि कितनीक वस्तु विना रांधे स्वादवाली होती है, तिनका त्याग हूआ तीसरा अचित्त जलादि पीनेंसें काम चेष्टा मंद हो जाती है, अरु चित्तमें ऐसा खटका हरहमेश रहता है, कि मेरेकूं मतकनी सचित्त वस्तु खानेमें आ जावे? चौथा जलादिक इव्य अचेतन करनेमें जीवहिंसा हूइ है, सोतो कर्मबंधनका कारण बन चूकी, परतु जो क्षण क्षणमें असंख्य (अनंत) जीवोंकी उत्पत्ति होती थी, सो मिट गइ तिनकी हिंसा न होवेगी, अरु जो कोइ मूढमति अपनी मन कल्पनासें ऐसा विचार करे कि अचित्त करनेमें षट्कायके जीवोंकी हिंसा होती है. अरु सचित्त जलादिक पीनेंमे तो एक जलादिककी हिसा है, इस वास्ते सचित्तका त्याग न करनां चाहियें. ऐसा विचारके सचित्त त्यागे नहीं, सो मूर्ख जिनमतके रहस्यकों नहीं

जानता, क्योंकि सचित्तके त्यागनेसें आत्मदमनता, औत्सुक्य निवारणता, विषय कषायकी मंदता होती है, अरु जिसमें स्वदयागुण बहुत है, सोभी वो नहीं जानते इस वास्ते सचित्त त्यागनेमें बहुत लाभ है.

२ दूसरा द्रव्य नियम. सो धातुका वा शिला, काष्ठ, मट्टीका पात्र प्रमुख तथा अपणी अंगुली प्रमुख विना जो मुखमें खावे सो द्रव्य कहते हैं, "परिणामांतरापन्नं द्रव्यमुच्यते" तिनमें खीचडी तो मोदक, पापड, वडा, प्रमुख बहुत द्रव्यसें बनते हैं, तोभी परिणामांतरसें ? एकही द्रव्य है, तथा एकही गेहूंकी बनी रोटी, पोली, घूगरी, बाटी प्रमुख है, तोभी यह सर्व भिन्न द्रव्य है, क्योंकि नामांतर स्वादांतर रूपांतर परिणामांतरसें द्रव्यांतर हो जाते है, तथा कोइक आचार्य और तरेभी द्रव्यका स्वरूप कहते है, परंतु जो उपर लिखा है, सो बहुत वृद्ध आचार्योंको यही सम्मत है. इस वास्ते द्रव्योंका परिमाण करे कि आजमें इतने द्रव्य खाऊंगा ?

३ तीसरा विगय नियम सो विगय दश प्रकारका है, तिनमें १ मधु, २ मांस, ३ माखन, ४ मदिरा, यह चार तो महाविगय है, इन चारोंका त्याग तो बावीश अभक्ष्यमें लिख आये है, शेष छै विगय रही, तिसका नाम कहते हैं. १ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ तेल, ५ गुल. ६ सर्वजातका पकवान्न, इस छै विगयमेंसें नित्य एक, दो, तीनादि विगयका त्याग करे, अरु एकेक विगयके पांच पांच निवीताभी विगयके साथ त्यागनां चाहियें, जेकर निवीता त्यागनेकी मनमें न होवे, तब प्रत्याख्यान करनेके अवसर में मनमें धारे कि मेरे विगयका त्याग है, परंतु निवीताका त्याग नहीं.

४ चौथा उपानह. सो जूता पहिरनेका नियम करे, पगरखी, खडावा. मोजा, बूट, प्रमुख सर्वका नियम करे, क्योंकि यह सर्व जीवहिंसाके अधिकरण हैं, तिनमें श्रावकने जिनपूजादि कारण विना खडावा तो कदापि नही पहरनी, क्योंकि इनके हेठ जो जीव आ जाता है, वो जीता नहीं रहता है, अरु गृहस्थ लोकोंकों जूते विना सरता नहीं इस वास्ते मर्यादा कर लेवे, फेर दूसरेके जूतेमें पग न देवे भूल चूक हो जावेतो आगार.

५ पांचमा तबोल. सो चौथा स्वादिम नामा आहार है, उसका नियम करे, उसमें पान, सोपारी, लवग, एलायची, तज. दारचीनी. जातिफल, जावंत्री, पीपलामूल, पीपर, प्रमुख करियाणेकी चीज, जिस्से मुख शुद्ध हो

आवे, परंतु उदर जरण न होवे, तिसकों तंबोल कहते हैं. तिसका परिमाण करे.

६ बठावस्त्र नियम है. सो पुरुषके पांचो अंगोके वस्त्रोंका वेष पहरने का तिसकी संख्या करे, कि आजके दिनमें मेरेकों इतने ? वेष रखने है, तथा इतने खुल्ले वस्त्र उढने है, तथा रात्रिकों पहेरनेका वस्त्र तथा स्नान समय पहरनेका वस्त्रकी वेषमे गिणती नहीं तथा समुच्चय वस्त्रकी संख्या रख लेवें, अजाण पणे जेल संजेल हो जावे तो आगार.

७ सातमा फूलोंके जोगका नियम करे, सो मस्तकमें रखनेवाले, अरु गलेमें पहरने वाले, तथा फूलोंकी शय्या, फूलोका तकीया, फूलोंका पंखा, फूलोका चंदवा, जाली प्रमुख जो जो वस्तु जोगमें आवे, फूलकी बडी सेहरा, कलंगी, अरु फूल जो सूंघनेमें आवे, तिनका तोल परिमाण रखनां

८ आठमा वाहन नियम करे, सो रथ, गाडी, घोडा, पालखी, उंट, बलद, नाव, प्रमुख जिसके उपर बैठके जहां जाना होवें, तहां जावे, सो वाहन सर्व तीन तरेका है, १ तरता, २ फिरता, ३ उडता, तिनकी सख्याका नियम करे कि इसतरेंकी अस्वारीमें आज चढनां.

ए नवमां शयन शय्याका नियम करे. सो खाट, चौंकी, पाट, तखत, कुरसी, पालकी, सुखासन प्रमुख जितनें रखने होवे सो मनमें धार लेवे.

१० दशमां विलेपनका नियम करे. सो जोगके अर्थे केसर, चदन, चोवा, अतर, फूलेल, गुलाबादिक जो वस्तु अंगके लगानी होवे, तिसका नाम मनमें धार लेवे, तथा अंगलूहणाजी इसीमे रख लेना इसमें इतना विशेष है कि देवपूजा, देवदर्शन, इत्यादि धर्म करणी करतां हाथमे धूप, अगरवत्ती लेनी पडे, तथा अपणें मस्तकमें तिलक करना पडे, तथा जगवानकी प्रतिमाकों तिलक करना पडे, तिसका श्रावककों नियम नहीं है.

११ इग्यारवां ब्रह्मचर्यका नियम करे, सो दिनमे अरु रात्रिमें इतनी वार स्वस्त्रीसें मैथुन सेवनां, उपरात स्वस्त्रीसेंजी नहीं सेवनां, अरु हास्य विनोद आलिंगन चुंबनादिक करनेका जांगा राखे.

१२ बारहवां दिशिका नियम करे, सो अमुक दिशिमे आज मैंने इतने कोस उपरांत नहीं जानां, इसमे आदेश, उपदेश, माणस जेजना, चिट्ठी लिखनी, ये सर्व नियम आ गये, जैसे पाल सके, तैसे नियम करे.

१३ तेरहवां स्नानका नियम करे, सो आजके दिनमें तैलमर्दनपूर्वक तथा

विनमर्दनपूर्वक कितनी वखत स्नान करनां, सो धार लेवे, इसमें देव जाके वास्ते नियमसें अधिक स्नान करनां पडे, तो व्रतभंग नही.

१४ चौदहवां भात पाणीका नियम सो चार आहारमेंसुं स्वादिमका तो तबोलके नियममें परिमाण रख्या है, शेष तीन आहार है, तिनमें प्रथम अशन, सो भात,रोटी,कचौरी,सीरा प्रमुख, तिसका परिमाण करे, कि आजके दिनमें इतना सेर मैरेकों खाना है उपरांत त्याग है यहां घरमें बहुत परिवार होवे तिसके वास्ते बहुत अशनादि कराने पडे, तिसकी जयणा रखे, तथा औरोंके घरमें पंचायत जीमें तहां जाना पडे, उहां बहुत आदमीउंकी रसोई बना रखी है, उसका दूषण नियम धारीको नही, क्योंकि नियम धारीने तो अपणेही खानेकी मर्यादा करी है,परंतु न्यातिके खानेकी मर्यादा नहीं करी है,इस वास्ते अपणे खानेका परिमाण करे कि इतने से उपरात मैं आज नहीं खाउंगा,तथा दूसरा पाणीतिसके पीनेका परिमाणकरे कि इतने कलसो उपरांत पाणी मैंने आज नही पीना, तथा तीसरा स्वादिम, सो मिठाई अथवा मिष्टान्न मोदकादिक तिनका परिमाण करे, यह चौदह नियम हैं, इहां अधिक भाव वाला श्रावक होवे, सो सचित्तादि परिमाणमें द्रव्यका परिमाण जूदा जूदा नाम ले कर रखे, तो बहुत निर्जरा होवे ॥ इति चौदह नियमका स्वरूप संपूर्ण ॥

अथ पंदरा कर्मादानका स्वरूप लिखते है यह पंदरह व्यापार श्रावकको निषेध है, सो करणां नही, क्यों कि इनके करणेसें बहुत पाप लगता है जे कर श्रावककी आजीविका न चलती होवे तो परिमाण कर लेवे से पंदराकर्मादानका नाम कहते है.

१ प्रथम इंगालकर्म, सो कोयले बना कर वेचने ईंट बनाकर वेचने भाडे खिलोने बनापका करकें वेचे, लोहारका कर्म, सोनारका कर्म, वंगडकार, सीलकार, कलाल, भठीयारा, भडभूंजा, हलवाइ, धातुगालक.इत्यादि जो व्यापार अग्नि करके होवे, सो सर्व इंगालकर्म है. इसमें पाप बहुत लगता है, अरु लाभ थोडा होता है, इस वास्ते यहकर्म श्रावक न करे

२ दूसरा वनकर्म. सो छेद्या अनछेद्या वन वेचे, बगीचेके फल पत्र वेचे फल, फूल, कंदमूल, तृण, काष्ठ, लकडी, वंशादिक वेचे, तथा जो हरि वनस्पति वेचे, यह सर्व वनकर्म है.

३ तीसरा साडीकर्म सो गाडी,वहिल तथा अस्वारीका रथ,नावाँ,जहाज,
था हल, दंताल, चरखा, घाणीका अंग, तथा धूंसरा, चक्की, उखली,
ूशल, प्रमुख बना करकें वेचे, यह सर्व शकटकर्म हैं.

४ चौथा नाडीकर्म. सो गाडा, वलद, उंट, जैंस, गद्धा, खच्चर, घोंडा,
ाव, रथ प्रमुखसें दूसरोंका वोज वहे नाडे करी आजीविका करे.

५ पांचमा फोडीकर्म. सो आजीविका वास्ते कूप, वावडी, तलाव,
ोदावे, हल चलावे, पत्थर फोडावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक
र्म है. इन पांचो कर्मोमें वहूत जीवोंकी हिंसा होती है. इस वास्ते इन
ांचोंको कुकर्म कहते हे. अव पांच कुवाणिज्य लिखते हैं.

१ प्रथम दंतकुवाणिज्य, सो हाथीका दांत, उल्लूके नख, जीन, कलें
ा, पक्षीयोंका रोम, तथा गायका चमर, हरणके सींग, वारासिंगेके
ींग, कृम जिस्सें रेसम रंगते हे, इत्यादिक जो त्रस जीवका अंगोपां
ा वेचना है, सो सर्व दंतकुवाणिज्य है. जव इन वस्तुओंके लेने वास्ते
ागरमें जावे, तव जिल्लादिक लोक तत्काल हाथी, गैंमा, प्रमुख जी
ोंकी हिंसामें प्रवर्त्त होते हे, महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेंसें अ
ाणा परिणामभी मलिन हो जाते हे, कदाचित् लोजपीडित हो कर
ील्ल व्याधोंकों कहना पडेकि, हमकों मोटा जारी दांत चाहीता है,
ाव वो लोक तत्काल हाथीकों मारकें वैसा दांत ल्यावेगे, इस वास्ते जे
र वस्तु लेनी पडे, तव व्यापारीके पाससें लेवे, परंतु आगरमें जाकर
ा लेवे, क्योंकि आगरमें जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इस
ास्ते विचार करकें वाणिज्य करे. यह प्रथम दंत कुवाणिज्य है.

२ दूसरा लाखकुवाणिज्य. सो लोहा, धावडी, नील, सज्जीखार, सा
न, मनसिल, सोहागा, इत्यादि. तथा लाख, ये सर्व लाख कुवाणिज्य
ै, प्रथम तो त्रस जीवोंका समूहहीसे लाख वनती है, अरु पीछे जव
ा काढते हैं, तव तिसकों अन्नसें सडाते है, तव त्रस जीवकी उत्पत्ति
ोती हे, अरु महा दुर्गंध रुधिर सरीखा वर्ण दीखता हे, तथा धावडीमें
स जीव उपजते हे, कुंथुयेभी वहुत होते हैं, अरु यह मदिरेके अंग
ै, तथा नीलकों जव प्रथम सडाते है, तव त्रस जीव उत्पन्न होते है,
ीछेभी नीलके कुंममें त्रसजीव वहुत उत्पन्न होते है, अरु नीला वस्त्र पहि

रनेसें उसमें जू लीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल मनसिलकों पीसती वखत जो यत्न न करे, तो मक्खी प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.

३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मदिरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, दहीं, घृत, तेल, गुड, खांड प्रमुख जो ढीली वस्तु है, इसका जो व्यापार करनां सो रसकुवाणिज्य है. इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है. वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है. सो द्विपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख, खरीद, कर वेचनें; तथा चौपद जो गाय, घोडा, भैंस प्रमुख खरीदके वेचनें तथा पंखीयोंमें तीत्तर, मोर, तोता, मैनां, बटेरा प्रमुख वेचे, इस वाणिज्यमें पाप बहुत है. इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

५ पांचमा विष कुवाणिज्य. सो शंखीया (सोमल) वच्छनाग, अफीम, मनसिल, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, कटारी, छुरी, बरछी, फरसी, कुहाडी, कुशी, कुदाल, पेसकबज, बंदूक, ढाल, गोली, दारु, बक्कर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख जिन करकें संग्राम करते है, तथा हल, मूशल, उखल, दंताली, कवेत, दात्री, गोला, हवाइ, पटाका, कुहक, शतघ्नी प्रमुख सर्व हिंसाहीका अधिकरण है इनका जो व्यापार करनां, सो सब विषवाणिज्य है. इसमें बहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं. अब पांच सामान्य कर्म कहते है.

१ प्रथम यंत्रपीलन कर्म. सो तिल सरसों, इक्षुआदि पीलाय करकें वेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यंत्रपीलन कर्म हैं.

२ दूसरा निर्लांछन कर्म. सो बैल घोडाकों खस्सी करणां, घोडे, बलद, ऊंट प्रमुखकों दाग देनां, कोतवालकी नौकरी, जेलखानेका दरोगा ठेका लेनां, मसूल इजारे लेनां, चोरोंके गाममे वास करनां, इत्यादि जो निर्दयपणेका काम है, सो सर्व निर्लांछन कर्म है.

३ तीसरा दावाग्निदान कर्म सो कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके बनमे आग लगा देते है, वो अपने मनमे जानते है कि नवा घास उत्पन्न होवेगा तब गौ चरेगी, भिल्लादिक लोक सुखसे रहेंगे, अन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणेसें धर्म जाणके करे, आग लगानेंसें लाखो जीव मरजाते है, इस वास्ते आग न लगानी चाहियें.

४ चौथा शोषणकर्म. सो वावडी, तलाव, सरोवर, इनका जल अप णे खेतमें देवे, जब पाणीकों बहार काढे, तब लाखों जीव जल रहित त रफडके मर जाते हैं,इस वास्ते सर्वपाणी शोषण न करना.

५ पांचमा असतीपोषण कर्म. सो कुतूहलके वास्ते कुत्ते, बिल्ले, हिंसक जीवोंकों पोषे, तथा दुष्ट भार्या, अरु दुराचारी पुत्रकों मोहसें पोषण करे, साचा कूडा जाणे नहीं, जो मनमें आवे सो करे, तिनकों राजी रक्खे, तथा वेचणे वास्ते दुराचारी दास दासीकों पोषे, सो असती कर्म कहिये. तथा माछी, कसाई, वागुरी, चमार प्रमुख बहु आरंभी जीवोंके साथ व्या पार करे, तिनकों द्रव्य तथा खरची प्रमुख देवे, यहभी दुष्ट जीवोंका पोषण है, जे कर अनुकंपा करकें श्वान (कुत्ते) प्रमुख किसी जीवकों पुण्य जान कर देवे, तो उसका निषेध नही, तथा अपणे महेल्लमें जो जीव होय तिनकी खबर लेनी पडे, तथा अपणे कुटुंबका पोषण करना पडे, इसमें पूर्वोक्त दोष नहीं. क्योंकी यह लोकनीति राजनीतिका रस्ता है, यह पांच सामान्य कर्म कहा. इति पंदरा कर्मादान संपूर्ण.

अब यह सातमें भोगोपभोग व्रतका पांच अतिचार लिखते हैं.

१ प्रथम सचित्त आहार अतिचार, सो मूलभांगेमें तो श्रावक सर्व स चित्तका त्याग करे, जेकर नही करे, तो परिमाण कर लेवे, तहां सर्व स चित्तके त्यागी तथा सचित्तके परिमाणवाले जो अनाभोगादिकसें सचि त्त आहार करे, तथा जल, तीन उकाली आजानेंसें शुद्ध प्राशुक होता है, तिनमें एक उकाला, दो उकालाका पाणीतो मिश्र उदक कहा जाता है, तिस पाणीकों अचित्त जाणके पीवे तथा सचित्त वस्तु अचित्त होनेमें देर है, उस वस्तुकों अचित्त जान कर खावे, तो प्रथम अतिचार लागे.

२ दूसरा सचित्त प्रतिबद्धाहार अतिचार. सो जिसके सचित्त वस्तुका नियम है, सो तत्काल खैरकी गांदसें गूंद उखेडके खावे, गूंद तो अचित्त है परंतु सचित्तके साथ मिला हूआ था सो दूषण लगता है, तथा पक्का हूआ अंब खिरणी वेर प्रमुखकों मुखसें खावे,अरु मनमें जानता है कि मै तो अचित्त खाता हूं, सचित्त गुठलीकों तो गेर देवुंगा, इसमें क्या दोष है? ऐसा विचार करकें खावे. तब दूसरा अतिचार लागे.

३ तीसरा अपक्वौषधि भक्षण अतिचार. सो विना छाण्या आटा, अ

ग्रिका संस्कार जिसकों करा नहीं, ऐसा कच्चा आटा खावे, क्योंकि श्री सिद्धांतमें आटा पीस्यां पीछे विना गाएयां कितनेही दिन मिश्र रहता है सो कहते हैं. श्रावण, नाड्व मासमें अनगान्या आटा पीस्या पीछें पांच दिन मिश्र रहता है, आश्विन और कार्त्तिक मासमें चारदिन मिश्र रहता है, मगसिर और पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, माघ अरु फागुण मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, चैत्र अरु वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, ज्येष्ठ अरु आषाढ मासमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, पीछें अचित्त हो जाता है, सो मिश्र खावे, तो तीसरा अतिचार लागे।

४ चौथा डुपक्कौषधि नक्षण अतिचार. सो कछुक कच्चा, कछुक पक्का जैसें सर्व जातके पोंक अर्थात् सिट्टे जो मक्की, जवार, बाजरे, गेहूं प्रमुखके बीजोंसें नरे हूए होते है, इनकों अग्निका संस्कार कर्या, कछुक कच्चे पक्के हो जावे तिनकों अचित्त जान कर खावे, तो चौथा अतिचार लागे.

५ पांचमा तुच्छौषधि नक्षण अतिचार. सो तुच्छ नाम इहां असारका है, जिसके खानेसें तृप्ति न होवे, तिसके खानेमें पाप बहुत है, जैसें चणाका फूल खावे, तथा बेरकी गुठलीमेंसें गिर निकालके खावे, तथा वाल, समा, मूंग, चवलाकी फली खावे, इसके खानेसें प्रसंग दूषणजी लग जाते हैं, क्योंकि कोइ वनस्पति अतिकोमल अवस्थामें अनंतकाय जी होती है, तिसके खानेंसें अनंतकायका व्रतनंग हो जाता है, यह पांचमा अतिचार कह्या ॥ इति सप्तम नोगोपनोग व्रत संपूर्ण ॥ ७ ॥

अथ आठमा अनर्थदंम विरमणव्रतका स्वरूप लिखते है. प्रथम अर्थ दंम उसकों कहते है, कि जो अपणे प्रयोजनके वास्ते करे, सो धन, धान्य, क्षेत्रादि नवविध परिग्रहमें हानी वृद्धि होवे, तब करे, क्योंकि धनवृद्धिके निमित्त संसारी जीवकों बहुत पापके कारन सेवने पडते हैं, तव सत्य जूठ बोले विना रह्या नहीं जाता है, पापके उपकरणनी मेलने पडते हैं, जब कोई मनसूवा करना पडता है, तब अनेक विकल्प रूप आर्त्तध्यान करना पडता है, क्योंकि धनादिक परिग्रह आजीविकाके अर्थे है, तिस वास्ते धनकी वृद्धि वास्ते जो जो पाप करता है, सो सो सर्व अर्थ दंम है. दूसरा जब धनकी हानि होती है, तब धनहानि दूर करणे वास्ते अनेक विकल्प रूप पाप करता है, सोनी अर्थ दंम है, क्योंकि संसारके सुखका कारण

य धन व्यवहार है, तिस व्यवहारके वास्ते जो पाप करनां पडे, सो र्थदंम है. तीसरा अपणा स्वजन कुटुंब परिवारादिकके वास्ते अवश्य जो पाप सेवनां पडे, सो सो सब अर्थ दंम है. चौथा पांच प्रकारकी इं द्रयोंके नोग वास्ते जो पाप करे, सोनी अर्थ दंम है, इन पूर्वोक्त चारों योजनो बिना जो पाप करे,सो अनर्थदंम जाननां. तिसके चार नेद हैं, सो कहते हैं. प्रथम अपध्यान अनर्थदंम, दूसरा पापोपदेश अनर्थदंम, तीसरा हिंसप्रदान अनर्थदंम, चौथा प्रमादाचरित अनर्थदंम है. इनमेंसूं प्रथम जो अपध्यान अनर्थदंम है, उसके फेर दो नेद है, एक आर्त्तध्यान दूसरा रौद्रध्यान,तिनमें फेर आर्त्तध्यानके चार नेद है, सो पृथक् पृथक् कहते हैं १ प्रथम अनिष्टार्थ संयोगार्त्तध्यान. सो इंद्रिय सुखका विघ्नकारी ऐसे अनिष्ट शब्दादिकके संयोग होनेकी चिंता करे कि मत मेरेकों अनिष्ट शब्द मिले. २ दूसरा इष्टवियोगार्त्तध्यान. सो हमकों नवविध परिग्रह अरु परिवार जो मिला है, इसका वियोग मत होवे, ऐसी चिंता करे, अथवा इष्ट जो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र प्रमुख हैं, इनके विदेश गमनसें तथा मरण होनेसें बहुत चिंता करे, खाए पीए नहीं, वियोगके दुःखसें आत्मघात करनेका विचार करे, अथवा सर्वदिन क्रोधहीमें रहे, तथा घरमें यह कुपूत है, यह नाई बेदिल है, मेरे पिताका मेरे उपर मोह नहीं है, यह स्त्री मुझकों बहुत खराब मिली है, सो मेरे उपर दिल नहीं देती है, इसका कोई उपाय होवे तो अच्छा है, अरु स्त्री मनमें विचारे कि मुझे शोकन खराब करती है, मेरे पतिकों नूलाती है, क्या जाने किसी दिन पतिसें मुझे दूर करेगी? इस वास्ते इस रांमका कुछ उपाय करनां चाहियें, तथा, सेवक ऐसा विचार करे किः—मेरे स्वामीके आगे फलाना मेरा दुश्मन गया है,सो जरूर मेरी खोटी कहेगा, मेरी रीत नांतकों अदल बदल कर देवेगा, मेरे स्वामीकों जूठ साच कह कर मेरी नौकरी छुडा देवेगा, तब मै क्या करूं गा? इसका कुछ उपाय करनां चाहिये, तिसके निग्रह वास्ते यंत्र, मंत्र, स्तंभन, मोहन, वशीकरण करे,तिसकों जूठा कलंक देवे, बलिदान देने वास्ते त्रस जीवकों मारे, यह सब अपने शत्रुके निग्रह वास्ते करे तथा मूठ चलाके मारा चाहे, परंतु वो मूर्ख यह नहीं विचारता किः—जे कर तुं अपने दिलसे सच्चा है, तो तुझे क्या फिकर है? अरु जहां तक अगलेका पु

श्योदय है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसें उसका कुछ बुरा नहीं कर सकता ये सर्व संसारी जीवकी मूर्खता है, यह सर्व अनर्थदंम है. तथा प्रथम पणी आतुरतासेंति मनमें कुविकल्प करे,कि मेरे वैरीके कुलमें अमुक जबरदस्त उत्पन्न हूआ है,सो मेरेकों दुःख देवेगा,इसकी राजदरबारमें जावे, अरु दंम होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई छिद्र मिले तो सरकारमें कह कर इसकों गामसें निकलवाय देवं तो ठीक है, ऐसा विचार मूढ अज्ञानी करता है, तथा यहां चोर बहुत पडते है, सो पकडे जाय, फांसी दीये जॉय, तो बडा अच्छा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे अपर हो कर चलता है, इस हरामजादेका कुछ बंदोबस्त करनां चाहियें, जो फेर कदापि शिर न उगावे, इत्यादि खोटे विकल्प करके अनर्थदंम करे, क्योंकि किसिकी चितवणासें दूसरोंका बिगाड नहीं होता है, जे कुछ होना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तूं काहेकों विकलवत् मनोरथ करता है ? क्यों किः— यह विना प्रयोजनके पाप लगता है, सो अनर्थदंम है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका भेद कह्या.

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान. सो मेरे शरीरमें किसी वखत रोग होता है, वो न होवे तो अछा है, लोकोंकों पूछे कि अमुक रोग क्यो कर न आवे ? तब कोइ कहेकि अमुक अमुक अनक्ष्य वस्तु खानेसें नहीं होता है,तब अनक्ष्नी खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत हाय हाय शब्द करे, बहुत आरंन करे, घडी घडीमें ज्योतिषीकों पूछे, कि मेरा रोग कब जायगा ? तथा वैद्यकों वार वार पूछे, तथा मेरे उपर किसीने जादु करा है ? ऐसी शंका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुल विरुद्ध, धर्मविरुद्ध करे, तथा अनक्ष खानेमे तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधि, जडी, बूटी, मंत्र, यंत्र, तंत्र, सीखे तथा सीखे हूए किसी वखत मेरेकाम आवेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामाआर्त्तध्यानका तीसरा भेद है.

४ चौथा अग्रशोचनामा आर्त्तध्यान. सो अनागत कालकी चिंता करे,कि आवता वर्षमें यह विवाह करुंगा, तथा ऐसी हाट, हवेली बनवाऊंगा, जिसकों देख कर सर्व लोक आश्चर्य करे, तथा अमुक [illegible] लगाना है, जिसके आगें सर्व बाग निकम्मे होजावे सर्व [illegible] जले, तथा अमुक वस्तुका मैनें सौदा करा है,सो वस्तु आगे

जावे तो ठीक है मुझे बहूत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प शेखशीलीकी तरें चिंते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है. इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौद्रध्यानका स्वरूप कहते हैं? प्रथम हिंसानंद रौद्र. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करके मनमें आनंद माने, तथा बहूत पाप करकें सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसकों देखकें जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैनें कैसी हिकमतसें बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंभी नही है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले माले, भक्ष वस्तुकों अभक्ष सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसें ऐसी जमणवार (ज्योंनार) करे, कि जिसकों सर्व लोक सराहें, तथा राजाओंकी लडाइ सुन कर खुसी माने, एक राजा का पक्षी बन कर महिमा करें, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेनें एक तरवारसें सिंहादिक मारा है, वाह रे सुभट ! ऐसी प्रशंसा करे, तथा अपणे दुश्मनकों मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूंछ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसें कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसें मर गया, ऐसी ऐसी खोटी चिंतवणा करकें कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचारे कि.— दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नही है, उसकी आयु पूरी हो गइ इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरे तूंभी मर जायगा. फूवा अभिमान करना ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिंसानंद रौद्रध्यान कहियें.

२ दूसरा मृषानंद रौद्रध्यान. सो झूठ बोलके खुशी होवे अरु मनमे ऐसा चिंते कि मैने कैसीकबात बनाके करी किसीकोंभी खबर न पडी, मैं बडा अकलवंत हूं? मेरे समान कौन हे? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेकूं समर्थ है? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीकों आता है, इस अवसरमें जेकर मै ना होता, तो देखते क्या होता? ऐसा मनमें फूले और अपने दुश्मनकों संकटमें गेरकें मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैनें कैसी हिकमत करी? राज दरबारमें लोकोंकी चुगली करकें स्थानभ्रष्ट करे, मनमें खुसी माने. इत्यादि मृषानंद रौद्र है.

३ तीसरा चौर्यानंद रौद्र. सो भद्रक जीवोंसे कूड कपटकी वातां बनाकरकें बहु मूली वस्तु थोडे दाममें ले लेवे. तथा पराया धन, लेखेसें अधि

एयोदय है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसें उसका कुछ बुरा नहीं कर सकता, ये सर्व संसारी जीवकी मूर्खता है, यह सर्व अनर्थदंड है. तथा प्रथम पणी आतुरतासेंति मनमें कुविकल्प करे, कि मेरे वैरीके कुलमें अमुक जबरदस्त उत्पन्न हूआ है, सो मेरेकों दुःख देवेगा, इसकी राजदरबारमें जावे, अरु दंड होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई छिद्र मिले तो सरकारमें कह कर इसकों गामसें निकलवाय देउं तो ठीक है, ऐसा विचार मूढ अज्ञानी करता है. तथा यहा चोर बहुत पडते है, सो पकडे जाँय, फांसी दीये जाँय, तो बडा अच्छा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे बराबर हो कर चलता है, इस हरामजादेका कुछ बंदोबस्त करना चाहियें, जु फेर कदापि शिर न उठावे, इत्यादि खोटे विकल्प करके अनर्थदंड करे, क्योंकि किसिकी चितवणासें दूसरोंका बिगाड नहीं होता है, जे कुछ होना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तूं काहेकों बिलोवत मनोरथ करता है ? क्यों कि— यह विना प्रयोजनके पाप लगता है, सो अनर्थदंड है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका भेद कह्या.

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान. सो मेरे शरीरमें किसी वखत रोग होता है, वो न होवे तो अच्छा है, लोकोंको पूछे कि अमुक रोग क्यो कर न होवे ? तब कोइ कहेकि अमुक अमुक अनक्ष्य वस्तु खानेसे नहीं होता है, तब अनक्ष्यभी खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत हाय हाय शब्द करे, बहुत आरंभ करे, घडी घडीमें ज्योतिषीकों पूछे, कि मेरा रोग कब जायगा ? तथा वैद्यकों वार वार पूछे, तथा मेरे उपर किसीने जादु करा है ? ऐसी शंका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुल विरुद्ध, धर्मविरुद्ध करे, तथा अनक्ष खानेमें तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधि, जडी, बूटी, मंत्र, यंत्र, तंत्र, सीखे तथा सीखे हूए किसी वखत मेरेकाम आवेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामाआर्त्तध्यानका तीसरा भेद है.

४ चौथा अग्रशोचनामा आर्त्तध्यान. सो अनागत कालकी चिंता करे, कि आवता वर्षमें यह विवाह करुंगा, तथा ऐसी हाट, हवेली बनाऊंगा, कि जिसकों देख कर सर्व लोक आश्चर्य करे, तथा अमुक क्षेत्रमें बगीचा लगाना है, जिसके आगे सर्व बाग निकम्मे होजावें सर्व दुश्मनकी छाती जले, तथा अमुक वस्तुका मैंने सौदा करा है, सो वस्तु आगेकों महगी हो

वे तो ठीक है मुझे बहूत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प शेखशील्लीकी तरें चिंते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है. इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौद्रध्यानका स्वरूप कहते हैं? प्रथम हिंसानंद रौद्र. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करकें मनमें आनंद माने, तथा बहूत पाप करकें सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसकों देखकें जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैनें कैसी हिकमतसें बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंजी नही है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले माले, नक्ष्य वस्तुकों अनक्ष्य सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसें ऐसी जमणवार (ज्योंनार) करे, कि जिसकों सर्व लोक सराहे, तथा राजाओंकी लडाइ सुन कर खुसी माने, एक राजाका पक्षी बन कर महिमा करे, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेनें एक तरवारसें सिंहादिक मारा है, वाह रे सुनट! ऐसी प्रशंसा करे, तथा अपणे डुश्मनकों मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूंछ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसें कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसें मर गया, ऐसी ऐसी खोटी चिंतवणा करकें कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचारेकिः— दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नहीं है, उसकी आयु पूरी हो गइ इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरे तूंजी मर जायगा. फूठा अन्निमान करनां ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिंसानंद रौद्रध्यान कहियें.

२ दूसरा मृषानंद रौद्रध्यान. सो फूठ बोलके खुशी होवे अरु मनमे ऐसा चिंते कि मैंने कैसीकवात बनाके करी किसीकोंजी खबर न पडी, मैं बडा अकलवत हूं? मेरे समान कौन है? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेकूं समर्थ है? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीकों आता है, इस अवसरमें जेकर मै ना होता, तो देखते क्या होता? ऐसा मनमें फूले और अपने डुश्मनकों संकटमे गेरकें मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैने कैसी हिकमत करी? राज दरबारमे लोकोंकी चुगली करकें स्थानच्रष्ट करे, मनमें खुसी माने. इत्यादि मृषानंद रौद्र है.

३ तीसरा चौर्यानंद रौद्र. सो नद्रक जीवोंसे कूड कपटकी वातां बनाकरकें बहु मूली वस्तु थोडे दाममें ले लेवे. तथा पराया धन, लेखेसें अधि

क लेवे, तथा चोरी करकें किसीकी वहीमें अधिका ठगा जिस
आप पैसा खाय जावे, अनेक कपटकी कलासें शेठकों राजी कर
पीछें विचारे कि मै कैसा चतुर हूं, कि पैसाजी खाया, अरु सेठके
सच्चाजी बन गया? तथा व्यापार करे, तब खोटी झूठी सौगंद खावे,
झीठ बोल कर दूसरोंकों विश्वास उपजा कर न्यून अधिक देवे, लेवे,
अरु मनमें राजी होके कहेकि मेरे समान कमाऊ कौन है? तथा
करकें मनमें आनंद मानें कि मैने कैसी चोरी करी, कि जिसकी
खबरजी नही पडी? तथा झूठे खत पत्र बनाकर सरकारसें फत्ते
तब मनमें बडा आनंदित होवे, जो में बडा चलाक हूं, मैनें
धोखा दीया, इत्यादि चौर्यानंद, सो रौद्र ध्यानका तीसरा भेद है.

४ चौथा संरक्षणानंद रौद्र. सो परिग्रह, धन, धान्य, बहुत बढावे, पीछे
औरजी इच्छा करे, पाप कुटुंबके पोषणे वास्ते परिग्रहकी वृद्धि करे, बहुत
कुबुद्धि करे, जैसे तैसे कामकों अंगीकार करे, लोक विरुद्ध, राजविरुद्ध,
कुलविरुद्ध, धर्मविरुद्धादिक कामकी उपेक्षा न करे; ऐसे करता पूर्व पु
ण्योदयसें पाप परिग्रह पावे, धन बहुत हो जावे, तब मनमें बहुत खुशी
माने कि इतना धन मैने एकिलाने पैदा कीया है,ऐसा और कौन हुस्यार
है, जो पैदा कर सके? ऐसा अहंकार करे, अहंकारमें मग्न रहे, रातदिन
मनमें चिंता रहे, कि मत कजी मेरा धन नष्ट हो जावे. रातकों पूरा सो
वेजी नहीं, हाट हवेलीके ताले टटोलता रहे, सगे पुत्रकाजी विश्वास न
करे, लोकोंकों कुबुद्धि सिखावे,इत्यादि संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान है,ये आर्त
अरु रौद्र मिलकर प्रथम अपध्यानार्थदंडके भेद हैं, सो न करना चाहियें.

२ अब दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड कहते हैं.सो हरेक अवसरमें पर
संबंधि तथा दाक्षिण्यता वर्जीके पापोपदेश करे, जैसे तुमारे घरमें वछडे
बडे हो गये हे, इनकों वद्धीया करके समारो, नाकमें नथ गेरो, घोडेकों
चाबक अस्वारकों देवो, वो ईसकों फेरके सिखावे, तथा तुमारे क्षेत्रमें घू
ड बहुत हो रहा है, उसको काटना तथा जलाना चाहियें, इत्यादि जो
पापकारी काम है, तिसका विना प्रयोजन अज्ञानपणेसें उपदेश करे, यह
दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड है.

३ तीसरा हिंस्रप्रदान अनर्थदंड, सो हिंसाकारी वस्तु गाडी,हल, शस्त्र

खारादि, अग्नि, मूशल, जखल, धनुष, तरकस, चक्कु, छुरी, दात्र प्र मुख दूसरोंकों दाक्षिण्यता विना, मागे विना, देवे सो हिंसप्रदान.

४ चौथा प्रमादाचरण अनर्थदंम. सो कुतूहलसें गीत,नाटक, तमाशा, खेला प्रमुख सुनने देखने जानां, इंद्रियोंकी विषय पोषणी, इहां कुतूहल कह नेसें जिनयात्रा, संघ, अष्टाह्मिकमहोत्सव, रथयात्रा. तीर्थयात्रा, इनके देखने वास्ते जावे, तो प्रमादाचरण नही, किंतु यह तो सम्यक्त्व पुष्टिके कारण है, तथा कामशास्त्र वात्स्यायनादिकोंके कर्मे तिनमें अत्यंत गृद्धि वार वार उसका अन्यास करनां तथा जूआ खेलनां, मद्य पीनां, शिकार मारने जानां; तथा जलक्रीडा (तलाव प्रमुखमें कूदनां) जल उछालनां, तथा वृक्षशाखाके साथ रस्सा बांधकर फूलना (हिचनां) हिंमोले (फुलानां) हिंचनां, तथा लाल, तीतर, वटेरे, कूकडे, मिढे, जैसें; हाथी, बुलबुल, इनको आपसमें लडानां तथा अपणे शत्रुके बेटे पोतेसें वेर रखना, वैर लेनां, तथा नक्तकथा सो "मांस, कुलमाष, मोदक,उंदनादि बहूत अच्छा जोजन है, जो खाते है,उ नकों वडा स्वाद आता है,अरु हमजी यह खायंगें" इत्यादि कहनां,तथा स्त्री कथा, सो स्त्रीयोंके पहननेकी तथा अंगप्रत्यंग हावनावादि कथन रूप, तथा "कर्णाटी सुरतोपचारकुशला, लाटी विदग्धा प्रिये" इत्यादि. तथा स्त्री के रूपोत्पादन, कुच कठन करणां, योनिसंकोच,इत्यादि स्त्री कथा करणी ति था देशकथा सो जैसें दक्षिण देशमें अन्न, पाणी, अरु स्त्रीयोंसें संनोग करनां बहूत अच्छा है इत्यादि. तथा पूर्वदेशमें विचित्र वस्तु गुड, खंम, शालि, मद्यादि प्रधान चीजे होती हैं, तथा उत्तरदेशके लोक सूरमे है, घोडे वडे शीघ्र चलने वाले अरु दृढ होते है, तथा गेहूं प्रमुख धान्य बहु त होता है, तथा केशर, मीठी डाक्ष, दाडिम, कौगादि जहां सुलज हैं. इत्यादि तथा पश्चिम देशमें इंद्रियकों सुखकारी सुख स्पर्शवाले वस्त्र हैं, इत्यादि. तथा राजकथा सो जैसें हमारा राज वडा सूरमा है, वडा धनवा न है, अश्वपति तुरक इत्यादि है. यह जैसें चार अनुकूल कथा कही, ऐसें ही चारो प्रतिकूल कथाजी जान लेनी, तथा ज्वरादिरोग अरु मार्गका थ केवा, यह दोनों वर्जके संपूर्ण रात्रिकों सो रहनां (निद्रा लेनी) यह स र्वे पूर्वोक्त प्रमादाचरणको श्रावक वर्जे, तथा देशविशेषमेंजी प्रमाद न क रनां, तथा जिनमंदिरमें कामचेष्टा, हांसी, लडाइ, हसना, थूकनां, निद

लेनां, चोर परदारिकादिकी खोटी कथा करनी, चार प्रकारका आहार खानां, यह चौथा अनर्थदंम है. इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कंदर्पचेष्टा. सो मुखविकार, भ्रूविकार, नेत्रविकार, हाथकी संज्ञा बतावे, पगकों विकारकी चेष्टा करके औरोकों हसावे, किसीकों क्रोध उत्पन्न हो जावे, कुछका कुछ हो जावे, अपणी लघुता होवे, धर्मकी निंदा होवे, असी कुचेष्टा करे, सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है

२ दूसरा मुखसेंती मुखरता करे, असंबंध वचन बोले, जिस्सें दूसरेका मर्म प्रगट होवे, कष्टमें गेरे, अपणी लघुता करे, वैर वधे, ढीठ, जबाड, चुगल खोरु, इत्यादि नाम धरावे, लोकोमें लज्जनीय होवे, इसी तरेंत वाचालपणा करणां, सो दूसरा मुखारिवचन अतिचार.

३ तीसरा भोगोपभोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां स्नान, पान, भोजन, चंदन, कुंकुम, कस्तूरी, वस्त्र, आभरणादिक अपणे शरीरके भोगसें अधिक करणे, सो अनर्थदंम है. इहां वृद्ध आचार्योंकी यह संप्रदाय है, कि तेल, आमले, दही प्रमुख, जे कर स्नानके वास्ते अधिक ले जावे, तो तद लोल्यता करकें स्नान वास्ते बहुत लोक तलाव आदिकमें जायगे, तहां पाणीके पूरे, तथा अप्कायके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी, इस वास्ते श्रावककों असे स्नान न करनां चाहिये. क्योंकि श्रावकके स्नानका यह विधि है कि.— श्रावकने प्रथम तो घरमेंही स्नान करनां चाहियें. तिसके अभावसें तेल, आमले, आकदिसें घरमेंही शिर घस करकें मैल गेर करकें तलावके कांठे उपरि बैठके अंजलिसें पाणी शिरमे माल करकें स्नान करनां, तथा जिस फूलादिकमें जीवोंकी संसक्ति जाने, तिनकों परिहरे, असे सर्व जगे जान लेनां. यह तीसरा भोगाधिक आरंभ अतिचार है.

४ चौथा कौकुच्य अतिचार. सो जिसके बोलने करनेसें अपणी तथा औरोंकी चेतना, कामक्रोधरूप हो जावे, तथा विरहकी वात संयुक्त कथा, दोहा, साखी, बेत, फूलना, कवित, छंद, परजराग, श्लोक, शृंगाररसकी भरी हूइ कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचमा संयुक्ताधिकरण अतिचार. सो उखलके साथ मूसल, साथ फाला, गाडीसें युग, धनुषसें तीर. इत्यादि. इहां श्रावकने अधिकरण नही रखनां, क्योंकि संयुक्त रखनेसें कोइ ले लेवे, तो फेर भा

हीं करी जाती है, अरु जब अलग अलग होवे, तब उसकों सुखसें उ
तर दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रत संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते हैं इन पूर्वोक्त आगें व्र
तोंकों तथा आत्मगुणोंकों पुष्टिकारक अविरति कषायमें तादात्म्यनावसें
मिली अनादि अशुद्धता रूप विनाव परिणति, तिसके अन्यासकों मिटाने
वास्ते अरु आत्मअनुनव करने वास्ते तथा सहजानंद स्वरूपरस प्रगट कर
ने वास्ते यह नवमा शिक्षाव्रत है, अर्थात् शुद्ध अन्यासरूप नवमा सामायिक
व्रत लिखते हैं. दो घडी काल प्रमाण समतामें रहना, राग द्वेषरूप हेतुओंमें
मध्यस्थ रहणां, तिसकों पंमित सामायिक व्रत कहते हैं, (सम) नाम है राग
द्वेषरहित परिणाम होनेसें जो ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्ष मार्ग, तिसका
"आय" नाम लान होवे प्रशमसुख रूप इनका जो इक केतां नाव सो
सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्त्तध्यान तथा
रौद्रध्यान त्यागके अरु सावद्य मन, वचन, काया, पाप चिंतन, पापोपदे
श, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे. इहां आवश्यक शास्त्रमें
लिखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो
जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें देवस्नात्र, पूजादिक, न करे,
क्यों कि नावस्तवके वास्ते इव्यस्तव करनां है, सो नावस्तव सामायिकमें
प्राप्त हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें इव्यस्तव रूप जिनपूजा
न करे, सामायिक करने वाला मनुष्य बत्तीस दूषण वर्जके सामायिक करे,
सो बत्तीस दूषणमें प्रथम कायाके बार दूषण कहते हैं.

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करकें उंचा आसन (पालवी) ल
गाकर बैठे, सो प्रथम दूषण है, कारण कि गुरुविनयकी हानि कारक होने
तें यह अनिमानका आसन है, इस वास्ते जिस बैठनेंसें विनयगुण रहे, औ
द्धता मालुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, असे आसन उपर बैठे.

२ दूसरा चलासन दोष. सो आसन स्थिर न रक्खे, वारं वार आगें पीछें
हलावे, चपलाइ करे, मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही
आसन उपर सामायिक पूरा करे, अमिग पणेसें रहे, कदापि रोग निर्बल
तादि कारण करकें एक आसन उपर टिका न जाय, फिरनां पडे, तो उ

लेना, चोर परदारिकादिकी खोटी कथा करनी. चार प्रकारका आ खानो, यह चौथा अनर्थदंम है. इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कंदर्पचेष्टा. सो मुखविकार, चूविकार, नेत्रविकार, हाथक संज्ञा बतावे. पगकों विकारकी चेष्टा करके औरोकों हसावे, किसीकों का उत्पन्न हो जावे, कुलका कुछ हो जावे, अपणी लघुता होवे, धर्मकी निं होवे, अैसी कुचेष्टा करे, सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है.

२ दूसरा मुखसेंती मुखरता करे, असंबंध वचन बोले, जिसें दूस का मर्म प्रगट होवे, कष्टमे गेरे, अपणी लघुता करे, वैर वधे, ढीठ, ल ड, चुगल खोरु, इत्यादि नाम धरावे, लोकोमें लज्जनीय होवे, इसी तरें त वाचालपणा करणा, सो दूसरा मुखारिवचन अतिचार.

३ तीसरा जोगोपजोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां स्नान, पान, जोजन चंदन, कुंकुम, कस्तूरी, वस्त्र, आजरणादिक अपणे शरीरके जोगसें अधि क करणे, सो अनर्थदंम है. इहां वृद्ध आचार्योंकी यह संप्रदाय है, कि तेल, आमले, दही प्रमुख, जे कर स्नानके वास्ते अधिक ले जावे, तो ल लोल्यता करकें स्नान वास्ते बहुत लोक तलाव आदिकमें जायगे, तब पाणीके पूरे, तथा अपकायके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी, इस वा स्ते श्रावकों अैसे स्नान न करनां चाहियें. क्योंकि श्रावकके स्नानका यह विधि है कि.— श्रावकने प्रथम तो घरमेंही स्नान करनां चाहियें. तिसके अजावसें तेल, आमले, आकदिसे घरमेंही शिर घस करकें मैल गेर करके तलावके कांठे उपरि बैठके अंजलिसे पाणी शिरमें माल करकें स्नान करनां तथा जिस फूलादिकमें जीवोंकी संसक्ति जाने, तिनकों परिहरे, अैसे सर्व जगे जान लेनां. यह तीसरा जोगाधिक आरंज अतिचार है.

४ चौथा कौकुच्य अतिचार. सो जिसके बोलने करनेसें अपणी तथ औरोंकी चेतना, कामक्रोधरूप हो जावे, तथा विरहकी बात संयुक्त कथा, दोहा, साखी, बेत, फूलना, कवित, छंद, परजराग, श्लोक, शृंगाररसकी न री हूइ कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचमा संयुक्ताधिकरण अतिचार. सो उखलके साथ मूसल, हलके साथ फाला, गाडीसें जुग, धनुषसें तीर. इत्यादि. इहां श्रावकने संयुक्त अधिकरण नहीं रखना, क्योंकि संयुक्त रखनेसे कोइ ले लेवे, तो फेर ना

हीं करी जाती है, अरु जब अलग अलग होवे, तब उसकों सुखसें उ
ग दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रतं संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते हैं. इन पूर्वोक्त आगें व्र
तोंकों तथा आत्मगुणोंकों पुष्टिकारक अविरति कषायमें तादात्म्यनावसें
मिली अनादि अशुद्धता रूप विनाव परिणति, तिसके अन्यासकों मिटाने
वास्ते अरु आत्मअनुनव करने वास्ते तथा सहजानंद स्वरूपरस प्रगट कर
ने वास्ते यह नवमा शिक्षाव्रत है, अर्थात् शुद्ध अन्यासरूप नवमा सामायिक
व्रत लिखते हैं. दो घडी काल प्रमाण समतामें रहना, राग द्वेषरूप हेतुओंमें
मध्यस्थ रहणां, तिसकों पंमित सामायिक व्रत कहते है, (सम) नाम है राग
द्वेषरहित परिणाम होनेसें जो ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्ष मार्ग, तिसका
'आय" नाम लान होवे प्रशमसुख रूप इनका जो इक केतां नाव सो
सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्तध्यान तथा
रौद्रध्यान त्यागके अरु सावद्य मन, वचन, काया, पाप चिंतन, पापोपदे
श, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे. इहां आवश्यक शास्त्रमें
लिखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो
जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें देवस्नात्र, पूजादिक, न करे,
क्यों कि नावस्तवके वास्ते इव्यस्तव करनां है, सो नावस्तव सामायिकमें
प्राप्त हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें इव्यस्तव रूप जिनपूजा
न करे, सामायिक करने वाला मनुष्य बत्तीस दूषण वर्जके सामायिक करे,
सो बत्तीस दूषणमें प्रथम कायाके बार दूषण कहते है.

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करके ऊंचा आसन (पालठी) ल
गाकर बैठे, सो प्रथम दूषण है, कारण कि गुरुविनयकी हानि कारक होने
सें यह अनिमानका आसन है, इस वास्ते जिस बैठनेंसें विनयगुण रहे, औ
शुद्धता मालुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, ऐसे आसन उपर बैठे.

२ दूसरा चलासन दोष. सो आसन स्थिर न रक्खे, वारं वार आगें पीछें
हलावे, चपलाइ करे, मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही
आसन उपर सामायिक पूरा करे, अमिग पणेसे रहे, कदापि रोग निर्बल
तादि कारण करकें एक आसन उपर टिका न जाय, फिरनां पडे, तो इ

पयोग संयुक्त जयणा पूर्वक चरवलासें जहां तहां पूंजना प्रमार्जना करके आसन फिरावे, यह पूर्वोक्त विधि न करे, तो दूसरा दूषण लगे.

३ तीसरा चलदृष्टि दोष है. सो सामायिक करे, पीछे नासिका उपर दृष्टि राखे, अरु मनमें शुद्ध उपयोग राखे, मौन पणेसें ध्यान करे, अरु सामायिकमें शास्त्राभ्यास करनां होवे, तो यत्नपूर्वक मुख आगें मुखवस्त्रिका दे कर, दृष्टि पुस्तक उपर रख के पढे, अरु सुणे. तथा जब कायोत्सर्ग करे, तब चार अंगुल पीछें पग चौडा राखे, ऐसी योग मुद्रासें खडा हो कर दोनो बाहु प्रलंबित करे. दृष्टि नासिका उपर रखे, अथवा सज्जे (दहिने) पगके अंगूठे उपर रखे. यह शुद्ध सामायिक करनेकी विधि है, इस विधिकों छोडके चपल पणेसें चकितमृगकी तरें चारोंदिशि आंखें फिरावे, तो तीसरा दोष है.

४ चौथा सावद्यक्रियादोष. सो क्रिया तो करे, परंतु तिसमें कछुक सावद्य क्रिया करे, अथवा सावद्य क्रियाकी संज्ञा करे, सो चौथा दोष.

५ पांचमा आलंबन दोष. सो सामायिकमें भींतादिकका आलंबन, अर्थात् पीठ लगा कर बैठे, यह बिना पूंजी भींतमें अनेक जीव बैठे हूए होते हैं, सो मर जाते है. तथा आलंबनसें नींदभी आ जाती है.

६ छठा आकुंचन प्रसारण दोष. सो सामायिक करकें बिना प्रयोजन हाथ, पग, संकोचे, लांबा करे, सामायिकमें तो महोटे कारण बिना हलनां नहीं, जरूरी काममें चरवलासें पूंजन प्रमार्जन करकें हलावे.

७ सातमा आलस दोष. सो सामायिकमें अंगमें आलस मोडे, अंगुलीयोंके कडाके काढे, कमर वांकी करे, ऐसी प्रमादकी बाहुल्यतासें व्रतमें अनादर होता है, कायामें अरति उत्पन्न हो जाती है, जब उठे, तब आलस मोड कर अतिअशोभनिक उठे. यह सातमा आलस दोष.

८ आठमा मोटन दोष. सो सामायिकमे अंगुली प्रमुख टेढे करी कडाका काढे. ए पण प्रमादकी प्रबलतासे होता है.

९ नवमा मल दोष. सो सामायिक ले करकें खाज करे, मुख्यवृत्ति तो सामायिकमें खाज नही करणी, परंतु जब लाचार होवे, तब चरवला प्रमुखसें पूंजन प्रमार्जन करके हलवे हलवे खाज करे यह शैली है.

१० दशमा विमासण दोष. सो सामायिकमे गलेमें हाथ दे कर बैठे

११ इग्यारवा निद्रा दोष. सो सामायिकमें नींद लेवे.

१२ बारमा शीत प्रमुखकी प्रबलतासें अपणे समस्त अंगोपांग वस्त्र करकें ढांके, यह बारां दोष कायासें उत्पन्न होते है, इनकों सामायिकमें वर्जे. अब वचनके दश दोष है सो लिखते हैं.

१ प्रथम कुबोल दोष. सो सामायिकमें कुवचन बोले.

२ दूसरा सहसात्कार दोष. सो सामायिक ले करकें विना विचारे बोले.

३ तीसरा असदारोपण दोष. सो सामायिकमें दूसरोंकों खोटी मति देवे.

४ चौथा निरपेक्ष वाक्य दोष सो सामायिकमें शास्त्रकी अपेक्षाविना बोले.

५ पांचमा संक्षेप दोष. सो सामायिकमें सूत्र, पाठ, संक्षेप करे, अक्षर पाठ हीना कहे. यथार्थ कहे नहीं, सो पांचमा दोष है.

६ छठा कलह दोष. सो सामायिकमें साधर्मीयोंसें क्लेश करे, सामायिकमें तो कोइ मिथ्यात्वी गालीयां देवे, उपसर्ग करे, कुवचन बोले, तोभी तिसके साथ लडाइ नही, करनी चाहियें, तो फेर अपने साधर्मीके साथ तो विशेष करके लडाइ करणीहीं नही, जेकर करे, तो छठा दोष लगे.

७ सातमा विकथा दोष. सो सामायिकमें बैठके देशकथादि चार विकथा करे, सामायिकमे तो स्वाध्याय अरु ध्यानही करना चाहिये.

८ आठमा हास्य दोष. सो सामायिकमे दूसरोंकी हांसी करे, मस्करी करे.

९ नवमा अशुद्धपाठ दोष सो सामायिकमें सामायिकका सूत्रपाठ शुद्ध न उच्चारे, हीनाधिक उच्चारे, यद्वा तद्वा सूत्र पढे.

१० दशमा मुणमुण दोष. सो सामायिकमें प्रगट स्पष्ट अक्षर न उच्चारे, दूसरोंकों तो जैसा मछर नणनणाट करता होवे, ऐसा पाठ मालुम पडे, पद अरु गाथाका कुछ ठिकाना मालुम न पडे गडबड करकें उतावलसें पाठ पूरा करे. यह दश दोष वचनके है. अब मनके दश दोष लिखते है.

१ प्रथम अविवेक दोष. सो सामायिक करकें सर्वक्रिया करे, परंतु मनमें विवेक नही निर्विवेकतासें करे, मनमें ऐसा विचारे कि सामायिक करनेसें कौन तरा है? इसमे क्या फल है? इत्यादि विकल्प करे.

२ दूसरा यशोवांछा दोष. सो सामायिक करकें यशःकीर्त्तिकी इच्छा करे.

३ तीसरा धनवांछा दोष. सो सामायिक करनेसे मुजे धन मिलेगा.

४ चौथा गर्वदोष. सो सामायिक करकें मनमे गर्व करे कि मुझे

लोक धर्मी कहेंगे, मै कैसें सामायिक करता हूं; मूर्ख लोक क्या समझें॥

५ पांचमा भय दोष. सो लोकोंकी निंदासें मरता हूआ सामयिक क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न हूया है, बडा कहनेमें आता है,परंतु धर्म कर्मका नामभी नहीं जानता,धर्म तो दूर रहा परंतु हररोज सामायिकभी नही करता, ऐसी निंदासें मरता हूआ करे.

६ छठा निदान दोष. सो सामायिक करके निदान करे कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, भोग, इंद्र, चक्रवर्त्तिका पद मिले.

७ सातमा संशय दोष. सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा कि नहीं होवेगा? जिसको तत्त्वकी प्रतीत न होवे, सो यह विकल्प करे.

८ आठमा कषाय दोष. सो सामायिकमें कषाय करे,अथवा क्रोध करके तुरत सामायिक करके बैठ जाय. सामायिकमें तो कषाय त्याग नां चाहियें.

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे.

१० दशमा अबहुमान दोष. सो सामायिक बहुमान भक्तिभाव उत्साह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे. अरु पूर्वोक्त बारह कायाके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पांच अतिचार कहते है.

१ प्रथम कायदुःप्रणिधान अतिचार. सो शरीरके अवयव हाथ, पग प्रमुख. बिना पूंजे प्रमार्जे हलावे, भींतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोदुःप्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुव्यापार चिंतन क्रोध, लोभ, द्रोह, अभिमान, ईर्ष्या, व्यासंग, संभ्रमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन दुःप्रणिधान अतिचार. सो सामायिकमें सावद्य वचन बोले, सूत्राक्षर हीन पढे. सूत्रका स्पष्ट उच्चार न करे.

४ चौथा अनवस्था दोषरूप अतिचार. सो सामायिक वखत सिर न करे,जेकर करेभी तोभी वे मर्यादासें आदर बिना उतावलसें करे.

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार. सो सामायिक करी, कि नहीं ? सामायिक पारीकि नहीं ? ऐसी भूल करे. इति नवम सामायिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशावकाशिक व्रत लिखते है. छठे व्रतमें जो दिशोंका परिमाण करा है,सो जावज्जीवे तहां तक है,उसमे तो क्षेत्र बहुत छुट रक्खा है, तिसका तो रोज काम पडता नहिं, इस वास्ते दिन दिन प्रत्ये संक्षेप

करें, जेसें आजके दिन दश कोश वा पंदरां कोश वा पांच कोश, अथवा नगरके दरवाजे तक, वा कोश, अर्द्धकोश, बाग बगीचे तक, घरका हद्द तक जाना आनां है, उपरांत नियम करनां, सो दिशावकाशिकव्रत है ए छठे व्रत का संक्षेपरूप है, उपलक्षणसें पांच अणुव्रतादिकका संक्षेप थोडे कालका सोनी इसी व्रतमें जान लेनां, यह व्रत चार मास, एक मास, वीश दिन, पांच दिन अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्त्तमात्रनी हो सक्ता है, इसका नियम औसें करे कि मै अमुक ग्रामादिकमें काया करकें जाउगा, उपरांत जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदेशका जिनके व्यापार होवे, सो औसें कहे कि मुझकों काय करकें इतने क्षेत्र उपरांत जानां नाहि, परतु दूर देशका कागज प्रमुख लिखा हूआ आवे, तो वांचुं अथवा कोइ मनुष्य नेजना पडे, उसका आगार है. परदेशकी बात सुननेका आगार है, अरु जिसका दूरका व्यापार नहि होवे, सो चीठी खत, पत्रनी न वांचे, अरु आदमीनी न नेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसें जेकर संकल्प विकल्प न होवे, तो परदेशकी बातनी न सुने. जेकर नहिं रहा जावे, तो आगार रखे, परंतु जान करके दोष न लगावे. यह देशावकाशिक व्रत सदा सवेरके वखत चौदह नियमकी यादगिरीमें उपयोगसें रखे, अरु रात्रिकों जूदा रखे, यह व्रत जैसें गुरुमुखसें धारे, तैसें करे (पाले) अरु इस व्रतके पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार. सो नियमकी नूमिकासें बाहिरकी कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पडे, तब विचारे की मेरे तो नियमकी नूमिकासें बाहिर जानेका नियम है, तब कोइ जाता होवे, तदा तिसकों कह करके वो वस्तु मंगवा लेवे, अरु मनमे यह विचारेकी मेरा व्रतनी नंग नहिं हूआ, अरु वस्तुनी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार. सो दूसरे आदमीके हाथ नियमसें बाहिरली नूमिकामें कोइ वस्तु नेजे, सो दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा सद्दाणुवाय अतिचार. सो नियमकी नूमिकासें बाहिर, कोइ आदमी जाता है, तिस्से कोइ काम है, तब तिसकों खुंखारादि शब्द करकें बोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तब तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार. सो कोइक पुरुष उसके नियमकी नूमि

लोक धर्मी कहेंगे; मैं कैसें सामायिक करता हूं, मूर्ख लोक क्या समझे?

५ पांचमा जय दोष. सो लोकोंकी निंदासें मरता हूआ सामयिक करे, क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न हूआ है, बडा पुरुष कहनेमें आता है,परंतु धर्म कर्मका नामजी नहीं जानता,धर्म तो दूर रहा, परंतु हररोज सामायिकजी नहीं करता, असी निंदासें मरता हूआ करे.

६ छठा निदान दोष. सो सामायिक करकें निदान करे, कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इंद्र, चक्रवर्त्तिका पद मिले.

७ सातमा संशय दोष. सो क्या जाने सामायिकका फल कि नहीं होवेगा ? जिसको तत्त्वकी प्रतीत न होवे, सो यह विकल्प करे.

८ आठमा कषाय दोष. सो सामायिकमें कषाय करे,अथवा ...। तुरत सामायिक करकें बैठ जाय. सामायिकमें तो कषाय त्याग ना चाहिये.

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे.

१० दशमा अबहुमान दोष. सो सामायिक बहुमान जक्तिजाव उत्साह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे. अरु पूर्वोक्त बारह कायाके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पांच अतिचार कहते है.

१ प्रथम कायदुःप्रणिधान अतिचार. सो शरीरके अवयव हाथ, पग, प्रमुख, बिना पूंजे प्रमार्जे हलावे, जींतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोदुःप्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुव्यापार चिंतन क्रोध, लोज, द्रोह, अजिमान, ईर्ष्या, व्यासंग, संभ्रमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन दुःप्रणिधान अतिचार सो सामायिकमें सावद्य वचन बोले; सूत्राक्षर हीन पढे. सूत्रका स्पष्ट उच्चार न करे.

४ चौथा अनवस्था दोषरूप अतिचार. सो सामायिक वखत सिर न करे,जेकर करेजी तोजी वे मर्यादासें आदर विना उतावलसें करे.

५ पाचमा स्मृतिविहीन अतिचार. सो सामायिक करी, कि नहीं ? सामायिक पारीकि नहीं ? असी जूल करे. इति नवम सामायिक व्रतं संपूर्ण ॥

अथ दशमा देशावकाशिक व्रत लिखते है. छठे व्रतमें जो दिशोंका परिमाण करा है,सो जावज्जीवे तहां तक है,उसमें तो क्षेत्र बहुत छुट रक्खा है, तिसका तो रोज काम पडता नाहिं, इस वास्ते दिन दिन प्रत्ये संक्षेप

करे, जैसें आजके दिन दश कोश वा पंदरां कोश वा पांच कोश, अथवा नगरके दरवाजे तक, वा कोश, अर्द्धकोश,बाग बगीचे तक, घरका हद्द तक जाना आनां है,उपरांत नियम करनां,सो दिशावकाशिकव्रत है ए छठे व्रत का संक्षेपरूप है, उपलक्षणसें पांच अणुव्रतादिकका संक्षेप थोडे कालका सोभी इसी व्रतमें जान लेनां, यह व्रत चार मास,एक मास, वीश दिन,पांच दिन अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्त्तमात्रभी हो सका है, इसका नियम ऐसें करे कि मै अमुक ग्रामादिकमें काया करके जाउंगा, उपरांत जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदेशका जिनके व्यापार होवे, सो ऐसें कहे कि मुझकों काय करकें इतने क्षेत्र उपरांत जानां नाहि, परंतु दूर देशका कागज प्रमुख लिखा हूआ आवे, तो वांचुं अथवा कोइ मनुष्य भेजनां पडे, उसका आगार है. परदेशकी बात सुननेका आगार है,अरु जिसका दूरका व्यापार नहि होवे, सो चीठी खत, पत्रभी न वांचे, अरु आदमीभी न भेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसें जे कर संकल्प विकल्प न होवे,तो परदेशकी बातभी न सुने. जेकर नहिं रहा जावे,तो आगार रक्खे, परंतु जान करकें दोष न लगावे. यह देशावकाशिक व्रत सदा सवेरके वखत चौदह नियमकी यादगिरीमें उपयोगसें रक्खे, अरु रात्रिकों जूदा रक्खे, यह व्रत जैसें गुरुमुखसें धारे, तैसें करे (पाले) अरु इस व्रतके पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार. सो नियमकी भूमिकासें बाहिरकी कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पडे,तब बिचारे की मेरे तो नियमकी भूमिकासें बाहिर जानेका नियम है, तब कोइ जाता होवे, तदा तिसकों कह करकें वो वस्तु मंगवा लेवे, अरु मनमे यह विचारेकी मेरा व्रतभी भंग नहिं हूआ, अरु वस्तुभी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार. सो दूसरे आदमीके हाथ नियमसें बाहिरली भूमिकामें कोइ वस्तु भेजे,सो दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा सद्दाणुवाय अतिचार. सो नियमकी भूमिकासें बाहिर, कोइ आदमी जाता है, तिस्सें कोइ काम है, तब तिसकों खुंखारादि शब्द करकें बोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तब तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार. सो कोइक पुरुष उसके नियमकी भूमि

कासें बाहिर जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब हाट हवेली र चढकें उसको अपणा रूप दिखावे, तब वो आदमी उसके पास आवे पीछें आपणे मतलबकी उस्सें बातां करे. तब चौथा अतिचार लगे.

५ पांचमा पुद्गलाक्षेप अतिचार. सो नियमकी भूमिकासें बाहिर कोइ पुरुष जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब तिसकों कंकरा मारे, जब वो देखे, तब तिसके पास आवे, तब उसके साथ बात चीत करे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति दशम देशावकाशिकं व्रतं संपूर्णं ॥

अथ इग्यारहवा पोषधोपवास नामा व्रत लिखते है. यह पौषधव्रतके चार भेद हैं, उसमें प्रथम आहार पोषध है, तिसकेभी दो भेद हैं. एक देशतः दूसरा सर्वत. तहां देशसें तो त्रिविहार उपवास करकें पोषध करे. अथवा आचाम्ल करकें पोषध करे, अथवा त्रिविहार एकाशनां करकें पोषध करे, यह तीन प्रकारसें देश पोषध होता है, तिसकी विधि लिखते हैं.

पोषध करनेसें पहिले अपने घरमें कह रखे कि मै आज पोषध करुंगा, इस वास्ते आचाम्ल अथवा एकाशना करा है, भोजनके अवसरमें आहार करनेकों आउंगा, अथवा तुमने पोषधशालामें ले आनां, पीछेसें पोषध करने को जावे, तहां पोषध करकें देववदन करके, पीछे चरवला, मुखवस्त्रिका, पूंछणा, ये तीन उपकरण साथ ले करकें चादर ओढ करकें साधुकी तरें उपयोग संयुक्त मार्गमें यत्नसे चल कर भोजनके स्थानकमें जा करकें, इरियावहिया पडिक्कमे, गमनागमनकी आलोचना करे, पीछे पूंछणा उपर बैठके आहार करनेका भाजन प्रतिलेखके पीछें अपने लेने योग्य आहार लेवे, साधुकी तरें रसगृद्धिसें रहित आहार करे, मुखसें आहारकों अच्छा बूरा न कहे, आहारका जूठ गेरे नही, आहार करे पीछे उष्ण जलसें आहारका बरतन धो कर पी जावे, बरतन शुद्ध करके सूका करकें उपयोग सयुक्त पोषधशालामें आवे, पूर्वस्थानमें जा कर बैठे, परतु मार्गमें जाते आते किसीके साथ बात न करे, इस रीतसें स्वस्थानकमें आवे. इरियावही पडिक्कमकें चैत्यवदन करके धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते,तथा आहार अपना कोइ संबंधी अथवा सेवक ले आवे,तोभी पूर्वोक्त रीतिसें आहार करकें बरतन पीछें दे देवे,पीछे धर्मक्रियामे प्रवर्त्ते,तिसकों देससे पोषध कहते हे. तथा जो चउविहार करके पौषध करे, सो सर्वसें पोषध कहियें, यह प्रथम भेद.

२ दूसरा शरीरसत्कार पोषध. सो सर्वथा शरीरका सत्कार, स्नान, धोवन, धावन, तैलमर्दन, वस्त्राजरणादि शृंगार प्रमुख कोइन्नी शुश्रूषा न करे, साधुकी तरें अपरिकर्मित शरीर रहे, तिसको सर्वथा शरीर सत्कार पोषध कहते हैं तथा पोषधमें हाथ, पग प्रमुखकी शुश्रूषा करनी, तिसका आगार रखे, उसकों देशसत्कार पोषध कहते है.

३ तीसरा अब्रह्मपोषध. सो त्रिकरण शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पाले, वो सर्वथा ब्रह्मचर्य पोषध है. अरु मन, वचन. दृष्टि प्रमुखका आगार रखे, अथवा परिमाण रखे, सो देशसें ब्रह्मचर्य पोषध है.

४ चौथा सर्वथा सावद्य व्यापारका त्याग. सो सर्वसें अव्यापार पोषध है. अरु जे एकादि व्यापारका आगार रखे, सो देशसें अव्यापार पोषध जानना.

एवं चार प्रकारके पोषधके दो दो नेद है,सो प्रथम जब आगम व्यवहारी गुरु होते थे, अरु श्रावकन्नी शुद्ध उपयोग वाले होते थे, तब जो जो प्रतिज्ञा लेते थे, सो सो प्रतिज्ञा अखंडित तैसीही पालते थे, परंतु नूलते नही थे, अरु न्यूनाधिकन्नी नही करते थे, और गुरुन्नी अतिशय ज्ञानके प्रनावसे योग्यता जान कर देश,सर्व, पोषधका आदेश देते थे, तथा श्रावक कदाचित् नूलन्नी जाते थे, तो न्नी तत्काल प्रायश्चित्त ले लेते थे, अरु इस कालमें तो ऐसे उपयोगी जीव है नही, दुखमकालके प्रनावसे जडबुद्धि जीव बहुत है, इस वास्ते पूर्वाचार्योंने उपकारके अर्थ आहार पोषध तो दोनो करने, अरु शेष तीन पोषध जीतव्यवहारके अनुसारें निषेध कर दीये है यही प्रवृत्ति वर्त्तमान संघमें प्रचलित है,पोषध तो श्रावककों जरुर करना चाहिये. कारणकि कर्मरूप नावरोगकी यह औषधि है, ताते जब पर्वदिन आवे, तब जरूर पोषध करे. इसका पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिद्यासथारक अतिचार. सो जिस स्थानमे पोषध संस्थारक करा है,तिस नूमिकी तथा संथाराकी पडिलेहणा न करे, एतावता संथारेकी जगा अछी तरें निगाह करिके नेत्रोंसे देखे नहीं अरु कदापि देखे,तोन्नी प्रमादके उदयसें कुछ देखी कुछ न देखी ऐसे करे.

२ दूसरा अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिद्यासथारक अतिचार. सो संथाराको रजोहरणादिक करकें पूजे नहीं, कदापि पूंजे, तोन्नी यथार्थ न पूंजे, गडबड कर देवे, जीवरक्षा न करे, तो दूसरा अतिचार लागे.

३ तीसरा अप्पडिलेहिय डुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमि अतिचार, सो लघुशंका, वडीशंका, परिठवणेकी भूमिका, नेत्रोंसें अवलोकन न करे, अरु अवलोकन करे, तोभी अलसु पलसु करकें काम चलावे. जो यत्न विना करे, परिठवे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा अप्पमज्जियडुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि अतिचार. सो जहां मूत्र, विष्ठा करे, उस भूमिकाकों उच्चारप्रस्रवण करनेसें पहिलां पूंजे नहीं, जे कर पूंजे, तोभी यद्वा तद्वा पूंजे, परंतु यत्नसें न पूंजे.

५ पांचमा पोसहविहिविवरीए अतिचार. सो पोषधमें क्षुधा लगे तब पारणेकी चिंता करे, जैसेंकि प्रभातमें अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तुका आहार करुंगा, तथा अमुक कार्य करणा है, तहां जाना पडेगा, अमुक उपर तगादा करुंगा, तथा प्रभातमें पोषध पारकें अच्छी तरें तेलम र्दन कराऊंगा, अच्छे गरम पानीसें स्नान करुंगा, तथा अमुक पोसाक करुं गा, स्त्रीके साथ भोग करुंगा, इत्यादि सावद्य चिंतवणा करे, तथा सध्या समयें पोषधके मंमल शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोषधके अठारह दूषण हैं, सो वर्जे नही, सो अठारह दूषण लिखते हैं.

१ बिना पोषेवालेका ल्याया हूआ जल पीवें, २ पोषध वास्ते सर स आहार करे, ३ पोषधके अगले दिन विविध प्रकारका संयोग मिलाय कें आहार करे, ४ पोषध निमित्त अथवा पोषधके अगले दिनमें विभू -षा करे, ५ पोषध वास्ते वस्त्र धोवावे, ६ पोषध वास्ते आभरण घडाकें पहिरे, स्त्रीभी नथ, कंकणादि सोहागके चिन्ह वर्जकें दूसरा नवा गहेना घडाकें पहिरे, ७ पोषध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोषधमें शरीर की मैल उतारे, ९ पोषधमे विना काल निद्रा करे, १० पोषधमे स्त्रीक था करे, स्त्रीकों भली बूरी कहे, ११ पोषधमें आहार कथा करे, भोज नकों अच्छा बूरा कहे, १२ पोषधमे राजकथा करे, युद्धकी वात सुने, कहे, १३ पोषधमें देश कथा करे, अच्छा बूरा देश कहे, १४ पोषधमें लघुशंका अरु वडीशंका सो भूमिका पंज्या विना करे, १५ पोषधमें दूस रोकी निंदा करे, १६ पोषधमे स[illegible] माता, पुत्र, भाइ प्रमुखसें [illegible] स्त्रीके अं

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अढारह दूषण पोषधमें वर्जे, तो शुद्ध पोषध जाननां. अन्यथा पांचमा अतिचार लागे. इति एकादश व्रतं॥

अथ बारहवा अतिथिसंविभागव्रत लिखते हैं. अतिथि उसकों कहते है, कि जिसने लौकिक पर्वोत्सवादि तिथियोंकों त्याग दीया है, सो अतिथि है, जैसें प्राहुणा विनातिथि आता है, एतावता तिथि देखकें नही आता है, ऐसेंही जो साधु अण चिंत्याही आ जावे है, सो अतिथि जाननां. ऐसे मधुकर वृत्तिवालेसें जो विनाग करे, एतावता शुद्ध व्यवहार न्यायोपार्जित धन करकें अपणा उदर पूरणे योग्य जो रसोइ करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोष रहित ऐसा शुद्ध निर्दोष आहार नक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिथिसंविनाग व्रत है. तहां प्रथम दान देनेवालेमें पांच गुण होवे, तो वो दातार शुद्ध होता है, सो पांच गुण लिखते है.

१ प्रथम जैनमार्गी दातारकूं, शुद्ध पात्रकी प्राप्ति पा करकें अपणे घरमें मुनिका दर्शन मात्र होनेसें अंतरंगमें बहुत दिनकी चाहनाके उल्लाससें आनंदके आंसु आवे, जैसें अपणा प्यारा अति हितकारी वल्लन विछडके परदेशमें गया है, उसकों मनसें कन्नी विसरता नहीं, मिलाही चाहाता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसें आनंद आंसु आवे, तैसें मुनिकों घरमें आया देखकें आनंद आंसु ट्यावे, अरु मनमें विचारे कि मेरा वडा नाग्य है, जो ऐसा मुनि मेरे घरमें आया है? अरु [illegible] हुं? [illegible]दिका नूल्या, द्रव्य सबल रहित, दरिद्रपीडित,

३ तीसरा अप्पडिलेहिय डुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमि अतिचार. सो लघुशंका, वडीशंका, परिठवणेकी भूमिका, नेत्रोंसें अवलोकन न करे, अरु अवलोकन करे, तोभी अलसु पलसु करकें काम चलावे. जयत्न विना करे, परिठवे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा अप्पमज्जियडुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि अतिचार. सो जहां मूत्र, विष्ठा करे, उस भूमिकाकों उच्चारप्रस्रवण करनेसें पहिलां पूंजे नहीं, जे कर पूंजे, तोभी यद्वा तद्वा पूंजे, परंतु यत्नसें न पूंजे.

५ पांचमा पोसहविहिविवरीए अतिचार. सो पोषधमें क्षुधा लगे तव पारणेकी चिंता करे, जैसेंकि प्रभातमें अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तुका आहार करुंगा, तथा अमुक कार्य करणा है, तहा जाना पडेगा, अमुक उपर तगादा करुंगा, तथा प्रभातमें पोषध पारकें अछी तरें तेलमर्दन कराउंगा, अछे गरम पानीसें स्नान करुंगा, तथा अमुक पोसाक करुंगा, स्त्रीके साथ भोग करुंगा, इत्यादि सावद्य चिंतवणा करे, तथा संध्या समयें पोषधके मंमल शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोषधके अठारह दूषण हैं, सो वर्जे नही, सो अठारह दूषण लिखते हैं.

१ विना पोषेवालेका ल्याया हूआ जल पीवें, २ पोषध वास्ते सरस आहार करे, ३ पोषधके अगले दिन विविध प्रकारका संयोग मिलायकें आहार करे, ४ पोषध निमित्त अथवा पोषधके अगले दिनमें विभूषा करे, ५ पोषध वास्ते वस्त्र धोवावे, ६ पोषध वास्ते आभरण घडाकें पहिरे, स्त्रीभी नथ, कंकणादि सोहागके चिन्ह वर्जके दूसरा नवा गहेना घडाकें पहिरे, ७ पोषध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोषधमें शरीरकी मैल उतारे, ९ पोषधमें विना काल निद्रा करे, १० पोषधमें स्त्रीकथा करे, स्त्रीकों भली बूरी कहे, ११ पोषधमें आहार कथा करे, भोजनकों अछा बूरा कहे, १२ पोषधमें राजकथा करे, युद्धकी वात सुने, कहे, १३ पोषधमे देश कथा करे, अछा बूरा देश कहे, १४ पोषधमें लघुशंका अरु वडीशंका सो भूमिका पूंज्या विना करे, १५ पोषधमें दूसरोंकी निंदा करे, १६ पोषधमें स्त्री, पिता, माता, पुत्र, भाइ प्रमुखसें वार्त्तालाप करे, १७ पोषधमें चोरकी कथा करे, १८ पोषधमे स्त्रीके अं

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अठारह दूषण पोषधमें वर्जे, तो शुद्ध पोषध जाननां. अन्यथा पांचमा अतिचार लागे. इति एकादश व्रतं॥

अथ बारहवा अतिथिसंविभागव्रत लिखते है. अतिथि उसकों कहते है, कि जिसने लौकिक पर्वोत्सवादि तिथियोंकों त्याग दीया है, सो अतिथि है, जैसें प्राहुणा विनातिथि आता है, एतावता तिथि देखकें नही आता है, ऐसेंही जो साधु अण चिंत्याही आ जावे है, सो अतिथि जाननां. ऐसे मधुकर वृत्तिवालेसें जो विभाग करें, एतावता शुद्ध व्यवहार न्यायोपार्जित धन करकें अपणा उदर पूरणे योग्य जो रसोइ करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोप रहित ऐसा शुद्ध निर्दोष आहार भक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिथिसंविभाग व्रत है. तहां प्रथम दान देनेवालेमें पांच गुण होवे, तो वो दातार शुद्ध होता है, सो पांच गुण लिखते हैं.

१ प्रथम जैनमार्गी दातारकूं, शुद्ध पात्रकी प्राप्ति पा करकें अपणे घरमें मुनिका दर्शन मात्र होनेसें अंतरंगमें बहुत दिनकी चाहनाके उल्लाससें आनंदके आंसु आवे, जैसें अपणा प्यारा अति हितकारी वल्लभ विछडके परदेशमें गया है, उसकों मनसें कभी विसरता नहीं, मिलाही चाहाता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसें आनंद आंसु आवे, तैसें मुनिकों घरमें आया देखकें आनंद आंसु ल्यावे, अरु मनमें विचारे कि मेरा बडा भाग्य है, जो ऐसा मुनि मेरे घरमें आया है? अरु मै कैसा हुं? अनादिका भूल्या, द्रव्य संबल रहित, दरिद्रपीडित, ज्ञानलोचनरहित, अंधभाव करि पीडित, अपार संसारचक्रमें भटकता हूआ, बहुत अकथनीय दुःख संयुक्त देख कर मेरे पर परमदया दृष्टि करकें प्रथम मेरेकों ज्ञानांजन शलाकासें ज्ञानरूप देखने वाला नेत्र खोल दीना, अरु तीन तत्त्व सेवा रूप व्यापार सिखलाया, तथा मुझकों रत्नत्रयीरूप पूंजी (रास) दे कर मेरा अनादि दरिद्र दूर करा, मुझे भले आदमीयोंकी गिणतीमें करा, ऐसे गुरु मुनिराज विना गरजके परोपकारी मेरे घरांगणमें आया, ऐसी पुष्ट भावना प्रशस्त राग भावकें उल्लाससें आनंदके आंसु आवे, यह दातारका प्रथम गुण है,

२ दूसरा जैसें संसारमें जीवकों अत्यंत इष्ट वस्तुके संयोगसें रोमावली

खडी होती है, तैसें बडी भक्तिके प्रभावसें मुनिकों देखकें रोमावल विकस्वर होवे, हृदयमें हर्ष समावें नहीं, यह दूसरा गुण है.

३ तीसरा मुनिकों देखकें बहुमान करे, जैसें किसी गरीबके घरमें रा जा आप चल कर आवे, तब वो गरीब गृहस्थ जैसा राजेका आदर क रे, अरु मनमें विचारे कि महाराजा मेरे घरमें आया है, तो मैं अछी व स्तु इनकों भेट करुं तो ठीक है, क्योंकि राजाका आवनां वारंवार मेरे घ रमें कहा है? अैसा विचारके जैसे वस्तु भेट करे, तैसें श्रावकभी साधु कों घरमें आया देखकें बहुत मान करे, अरु मनमें अैसा विचारेकि यह अैसा निःस्पृहीयोमें शिरोमणि, जगद्वंधु, जगत् हितकारी, जग वत्सल, निष्का मी, आत्मानंदी, करुणासागर, संसारजलधि उद्धरण, परोपकार करणेमें चतुर, क्रोधादि कषाय निवारक, आप तरे परतारक, अैसा मुनिराज, मेरे घरमें चल कर आया, इस्से मेरा अहो भाग्य है? अैसा जान कर संभ्रम संयुक्त सन्मुख जावे. त्रिकरण शुद्ध परिणामसें कहे कि हे स्वामी! दीनद याल! पधारो, मेरे गृह अंगण पवित्र करो, अैसा बहुमान दे कर घरमें प धरावे, मनमें विचारे कि मेरे बडा पुण्योदय है, जो साधु आहार पाणीका अनुग्रह करते हैं, क्योंकी साधुके आहार लेनेमें बडी विधि है, साधु शु द्ध भात पाणी जाणे, तो लेवे, इस वास्ते मत मेरेसें कोइ दोष उपजे? अैसा विचार के त्रिकरण शुद्ध बहुमान पूर्वक उपयोग संयुक्त विधिपूर्व क आहार ल्यावे, अरु मधुरस्वरसे विनति करे, कि हे स्वामी! यह शुद्ध आहार है, इस वास्ते सेवक उपर परम कृपा नजर करकें पात्र पसारकें मेरा निस्तार करो. अैसे वचन बोलता हूआ आहार देवे, मुनिभी उस आहारकों योग्य जाण कर ले लेवे, अरु श्रावकभी जितनी दान देने यो ग्य वस्तु है, उसके सर्वकी निमंत्रणा करे, इस विधिसें दान दे कर हा थ जोडकें पृथिवी उपर मस्तक लगा कर नमस्कार करे. पीछें मीठे वचनोंसें विनति करे की हे कृपानिधान! सेवक उपर बडी कृपा करी, आज मेरा घर प वित्र हूआ, क्योंकि पुण्योदयविना मुनिका योग कहां होता है? फेरभी हे स्वा मी! कृपा करकें अशन, पान, खादिम, स्वादिम, औषध, वस्त्र, पात्र, शय्या, संस्तारकादिसे प्रयोजन होवे, तब अवश्य सेवक उपर अनुग्रह करके पधारनां, तुम तो मुनिराज गुणवान् बे परवाह हो, तुमकों किसी बात

ो कमी नहिं, किसीके साथ प्रतिबंध नाहिं, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, ोनी मेरे उपर जरूर कृपा करणी, ऐसे मुखसें कहता हूआ अपणे रकी सीमा तक पहुंचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तहांसें वंदना करकें पीछें आ कर जोजन करे, परंतु मनमें आनंद समावे नही, विचारे कि मेरा बडा जाग्योदय हूआ, आज कोइ नली वात होवेगी क्योंकि आज मुनि, निःस्पृही, सहजउदासी, स्वसुख वेलासीकों मै विनति करी आहार दीया, अरु आहार देतां विचमें कोइ वेघ्न न हूआ, इस वास्ते मेरा बडा जाग्य है,फेरजी कदे ऐसे मुनिका योग मेलेगा ? ऐसी अनुमोदना वारंवार करे, यह चौथा गुण है.

५ पांचमा जैसें कोइ मंदजाग्यवान् व्यापार करतां थोडा थोडा क माता है, तिसकों किसी दिन कोइ सौदेमें लाख रूपैयेकी प्राप्ति होवे, तब वो कैसा आनंदित होवे है. अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है, तिस्सेंजी अधिक साधुकों दान देनेकी चाहना श्रावक रक्खे, यह पांचमा गुण है यह पांच गुणयुक्त शुद्ध दान देवे. तो अतिथि सविजाग व्रत होवे इस व्रतके पांच अतिचार वर्जे, सो लिखते है.

१ प्रथम सचित्तनिक्षेप अतिचार. सो सचित्त सजीव पृथ्वी, जल, कुंज, चुह्ला, इंधनादिकोंके उपर न देनेकी बुद्धिसे आहारकों रख छोडे. अरु मनमे ऐसा विचारेकि ए आहार साधु तो नहीं लेवेगा, परंतु निमंत्रणा करनेसें मेरा अतिथि संविजागव्रत पल जावेगा, यह प्रथमातिचार.

२ दूसरा सचित्त पीहण अतिचार. सो सचित्त करके ढक छोडे, सूरण, कंद, पत्र. पुष्प, फलादि करके न देनेकी बुद्धिसे ढक छोडे.

३ तीसरा कालातिक्रम अतिचार. सो साधुओंके जिक्षाका काल लंघ करके अथवा जिक्षाके कालसें पहिलां अथवा साधु आहार कर चूके तब आहारकी निमंत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार. सो जब साधु मागे तब क्रोध करे. तथा वस्तु पासमे है, तोजी माग्या न देवे,अथवा इस कंगालने ऐसा दान दीया, तो मै क्या इस्से हीन हू, जो न देऊं ? इस जावनासें देवे.

५ पांचमा गुड, खंम्ड प्रमुख अपणी वस्तु है, सो न देनेकी बुद्धिसें औरोंकी कहे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति श्रीअतिथिसंविजागव्रतं संपूर्ण॥

यह सम्यक्त्वपूर्वक बारह व्रतरूप गृहस्थधर्मका स्वरूप धर्मरत्न प्रकरण तथा योगशास्त्रादि ग्रंथोसें संक्षेप लिखा है. जे कर विशेष देखनां होवे, तो धर्मरत्नशास्त्रवृत्ति तथा योगशास्त्र देख लेनां.

इति तपोगच्छीये गणि श्रीमणिविजय तच्छिष्य श्रीमुनि बुद्धिविजय तच्छिष्य मुनिआत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रावकव्रतनिरूपणं नामा अष्टम परिच्छेदः संपूर्ण ॥ ८ ॥

॥ अथ नवम परिछेद प्रारंभः ॥



यह परिछेदमें श्रावकोंका जो दिनकृत्य, रात्रिकृत्य, पर्वकृत्य, चातुर्मासिककृत्य, संवत्सरकृत्य, जन्मकृत्य, यह छै प्रकारका कृत्य हैं. तिनमेंसूं प्रथम दिनकृत्यविधि, श्राद्धविधि ग्रंथ तथा श्रावक कौमुदी शास्त्रके अनुसार लिखते हैं.

प्रथम तो श्रावककों निद्रा थोडी लेनी चाहियें, जब एक प्रहर रात्रि शेष रहे, तब निद्रा छोडकें उठनां चाहिये, जेकर किसीकों बहु नींद आती होवे, तब जघन्य चौदमे ब्राह्म मुहूर्त्तमें जरूर उठना चाहिये, क्योंकि सवेरे उठनेंसें इस लोक अरु परलोकके अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, उस अवसरमें बुद्धि टीकी हुइ अरु निर्मल होती है, पूर्वापर अच्छी तरेसें विचार कर सक्ता है, अरु ग्रंथकार ऐसेंभी कहते है कि जिसके नित्य सूतेके सूर्य उग जावे, तिसकी आयु अल्प होती है, इस वास्ते ब्राह्म मुहूर्त्तमें अवश्य सूता उठनां चाहिये, जब सूता उठे, तब मनमें विचारे कि मै श्रावक हूं, अपने घरमें तथा पर घरमें इन दोनोमेंसूं कहां सूता था? तथा हेठले मकानमें सूता था कि चोवारे प्रमुखमें सूता था? दिनमें सूता था कि रात्रिकों सूता था? इत्यादि विचार करतेभी जेकर निद्राका वेग न मिटे तदा नाक अरु मुखका उश्वास रोके, उस करकें निद्रा तत्काल दूर हो जाती है, पीछें दरवाजा अच्छी तरेसें देखके लघुशंकादि करे. तथा रात्रिमें किसीकों कुछ कहनां पडे, तब मंद स्वरसें कहे, परंतु उंचे स्वरसें न कहे, क्योंकि रात्रिमें उंचा शब्द करनेंसें छपकली प्रमुख हिंसक जीव जाग

जाते हैं, फेर वो मछीयों आदिक जीवोंकी हिंसा करते हैं, तथा कसाइ जाग जावे तो गौ, बकरी, भेडी प्रमुखकों मारने वास्ते चला जावे, तथा माछी, जाल ले कर मछली मारनेकों चला जावे,तथा बावरी,अहेडी, खून करनेवाला, मदिरा बनाने वाला, परस्त्री गमन करने वाला, तस्कर,लूंटेरा, धाडी, धोबी, कुंभार, अरु जूआरी प्रमुख, अनेक हिंसक जीव जाग कर अनेक तरेंके पाप करनेमें प्रवृत्त हो जाते है, यह रात्रिमें उंचे शब्दसें बोलने वालोंकों सर्व पाप लगे वास्ते रात्रिमें उंचे शब्दसें न बोलनां चाहिये.

जब सवेरकी वखत निद्रा छेद होवे, तब तत्त्वोंके जानने वाले श्रावककों तत्त्वविचार करनां चाहिये. सो तत्त्व पांच है, तिसका नाम कहते है. १ पृथ्वी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, उसमें निद्रा छेद समयमें जेकर पृथ्वी तत्त्व अरु जल तत्त्व वहे. तब तो शुभ है, अरु जेकर अग्नि, वायु, तथा आकाश तत्त्व वहे, तो दुःखदायक है. शुक्ल पक्ष की पडिवाके दिन जेकर वामी नासिकाका स्वर चले, तो पंदरा दिन तक आनंद आरोग्य रहे, अरु कृष्ण पक्षकी एकमके दिन जेकर दक्षिण नासिकाका स्वर वहे, तो पंदरा दिन तक सुख आनंद रहे. इस्सें विपर्यय होवे, तो विपर्यय फल होवे.

तथा शुक्ल पक्षके प्रथम तीन दिन वामी नासिका सवेरे उठते वहे, तो शुभ है. आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो शुभ है, फेर आगले तीन दिन वाम स्वर चले तो शुभ है, ऐसेही क्रमसे पंदरा दिन तक जान लेने. अरु कृष्ण पक्षकी पडिवाके दिनसे लेकर जेकर तीन दिन तक दक्षिण स्वर चले तो शुभ है, आगले चौथे दिनसें लेकर तीन दिन तक वाम स्वर चले तो शुभ है, फेर आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो शुभ है, ऐसे पंदरा दिन तक जान लेनां. तथा चंद्रस्वरमें सूर्य उगे अरु सूर्यस्वरमें सूर्य अस्त होवे तो शुभ है तथा सूर्यनाडीमे सूर्य उदय होवे अरु चंद्रनाडीमे अस्त होवे, तोभी शुभ है, किसी शास्त्रके मतमें रवि, मंगल, गुरु, अरु शनि, इन चार वारोंमे दक्षिण स्वरमें सूर्यनाडी दिन उगता चले, तो शुभ है, अरु सोम, बुध तथा शुक्र, इन तीनो वारोंके दिन सूतां, उठता, चंद्रस्वर वामस्वर चले, तो शुभ है विपर्यय चले, तो अशुभ है.

तथा किसीके मतमें संक्रांतिके क्रमसें सूर्य चंद्र नाडी वहे तो शुभ है,

जैसें मेष संक्रांतिके दिन सूर्यस्वर चले, अरु वृषसंक्रांति दिन चंद्र नाडी चले, तो शुभ जाननी इत्यादि. तथा किसीके मतमें चंद्रमा राशि पलटे तिस क्रम करकें अढाइ घडी तक एक नाडी वहती है इत्यादि. परंतु जैनाचार्य श्री हेमचंद्रादिकोंका तो प्रथम जो लिखा है, सो मत है. छत्तीस गुरु अक्षरोंके उच्चारणेमे जितना काल लगता है. तितना काल वायु नाडीकों दूसरी नाडीमें संचार करते लगता है.

अब पाच तत्त्वोंकी पहिचान इसी तरें है, सो कहते हैं. नासिकाकी पवन जेकर ऊंची जावे, तब तो अग्नि तत्त्व है, जेकर नीची जावे, तो जल तत्त्व है, तिर्छी जावे, तो वायुतत्त्व, जेकर नासिकासे निकलके सूधी तिर्छी जावे, तो पृथ्वीतत्त्व, जेकर नासिकाके दोनो पुटोंके अंदर वहे, बाहिर नही निकले. तो आकाश तत्त्व जाननां.

पहिलां पवन तत्त्व वहता है. पीछें अग्नि तत्त्व वहता है, पीछें जल तत्त्व वहता है, पीछें पृथ्वीतत्त्व वहता है, पीछें आकाश तत्त्व वहता है. क्रम इनका सदा यही है दोनोही नाडीयोंमें पांचो तत्त्व वहते हैं, उसमें पृथ्वी तत्त्व पंचाश पल प्रमाण वहता है, जल तत्त्व चालीश पल प्रमाण वहता है, अग्नितत्त्व तीस पल प्रमाण वहता है, वायुतत्त्व वीस पल प्रमाण वहता है, आकाश तत्त्व दश पल प्रमाण वहता है.

पृथ्वी अरु जल तत्त्वमे शांतिकार्य करणां, अरु अग्नि, वायु, तथा आकाश इन तीन तत्त्वमें दीप्तिमान् अरु स्थिरकार्य करणा, तो फलोन्नति शुभ होवे है, तथा जीवणेका प्रश्न पूछनां. जयप्रश्न, लाभप्रश्न, धन उत्पन्न करणेका प्रश्न, मेघ वर्षनेका प्रश्न, पुत्र होनेका प्रश्न, युद्धका प्रश्न. जाने आनेका प्रश्न, इतने प्रश्न जेकर पृथ्वी अरु जलतत्त्वमें करे, तो शुभ होवे. जेकर अग्नितत्त्व अरु वायु तत्त्वके वहता ये प्रश्न करे. तो शुभ नहीं, पृथ्वी तत्त्वमें प्रश्न करेतो कार्यकी सिद्धि स्थिरपणेहोवेअरुजलतत्त्वमें शीघ्रकार्य होवे.

जब पहल पहिला जिनपूजा करे, तथा धन कमावनेंके वास्ते जावे, पाणिग्रहणकी (विवाहकी) वेला, गढ लेनेकी वेला, नदी उतरनेकी वेला. गया है सो आवेगाकि नहीं? ऐसे प्रश्न करते वेला जीवनेके प्रश्नमे तथा घर क्षेत्रादि लेती वेला, क्रियाणां लेता, वेचता, वर्षके प्रश्नमें, नौकरी करणेकी वेला,

ती करनेके वखत, शत्रुके जीतनेमें, विद्यारंभमें, राज्याभिषेकमें. इत्यादि
नकार्यमें चद्रनाडी वहे, तो कल्याणकारी है.

प्रश्नके समय कार्यके आरंभमें पूर्ण वामी नाडी प्रवेश करती होवे. तदा
नेश्चय कार्यकी सिद्धि जाननी. इसमें संदेह नही, तथा कैदसें कद छूटे
गा ? रोगी कब अछा होवेगा ? अरु जो अपने स्थानसें भ्रष्ट हूआ है, तिस
का प्रश्नमें तथा युद्ध करनेके प्रश्नमें, वैरीकों मिलती वखत, अकस्मात्
भय हूआं, स्नान करण लगें, भोजन, पाणी पीने लगें, सोने लगें, गइ
वस्तुके खोज करनेमें, मैथुन करने लगे, विवाद करणमें, कष्टमें, इतने
कार्यमें सूर्य नाडी शुभ है. कोइक आचार्य ऐसेंभी कहते है कि विद्या
रंभमें, दीक्षामें, शास्त्राभ्यासमें, विवादमें, राजाके देखनेमें, मंत्र यंत्रके
साधनेमें, सूर्यनाडी शुभ है. अथवा जो चंद्रादि स्वर चलता होवे, निरतर
तिस पासेंका पग उठाके प्रथम चले तो कार्य सिद्धि होवे.

पापी जीवोंके शत्रुओंके चार प्रमुख जे क्लेशके करने वाले है, ति
नके सन्मुख जो नासिका बंध होवे, सो पासा, इनके सामने करे, जो सु
ख लाभ जयार्थी है, उसमें प्रवेश करता हूआ पूरा स्वर, वामा पग शुक्ल
पक्षमें, अरु जीमणा पग कृष्ण पक्षमें, शय्यासें उठता हूया धरती ऊपर रख
ता. इसविधिसें श्रावक निद त्यागे.

* अरु श्रावक अत्यंत बहुमान पूर्वक मंगलके वास्ते पंचपरमेष्टि नम
स्कार स्मरण करे, शय्यामे बैठा हूआ मनमे पंचपरमेष्टि नमस्कारमत्र स्म
रण करे, परतु वचनसें उच्चारण न करे, जेकर मुखसें उच्चार करे, तो शय्या
छोड कर धरती ऊपर बैठ कर नमस्कार मंत्र पढे, ऐसे नमस्कार मंत्र
हृदयमें स्मरण करता हूआ. शय्यासे उठे, पवित्र भूमिका ऊपर बैठे,
तथा पूर्व अथवा उत्तरदिशि सन्मुख मुख करके खडा रह कर चित्त
की एकाग्रताके वास्ते कमलबंध कर जपादि करकें नमस्कार मत्र पढे
तहा अष्ट पांखडीका कमल चिंते, उसकी कर्णिकामें अरिहंत पदक
स्थापन करे, पूर्व पांखडीमे सिद्ध, दक्षिण पांखडीमें आचार्य, पश्चि
पांखडीमें उपाध्याय, उत्तर पांखडीमे साधु स्थापन करे, अरु बाकी चूलि
काके चार पद जो हैं, सो अनुक्रमें अग्न्यादि चारों कूणोमें स्थापन क
[illegible] योगशास्त्रे ॥ श्रीहेमचद्रसूरिभि. ॥ अष्टपत्रे सितांभोजे

कर्णिकायां करस्थितिः ॥ आद्यं सप्ताक्षरं मंत्रं, पवित्रं चिंतयेत्ततः ॥ १ ॥ सिद्धादिकचतुष्कं च, दिक्पत्रेषु यथाक्रमं ॥ चूलापादचतुष्कं च, विदिक्पत्रे चिंतयेत् ॥ २ ॥ त्रिशुद्ध्यं चिंतयन्नस्य, शतमष्टोत्तरं मुनिः ॥ भुंजानोपि लभे त्येव, चतुर्थतपसः फलम् ॥ ३ ॥

हाथके आवर्त्त करकें जो पंच मंगल मंत्र स्मरण नित्य करे, उसको पिशाचादिक नहीं छलते है, बंधनादि कष्टमें विपरीत शंखावर्तकादि अक्षरों करकें अथवा विपरीत पदों करकें पंचमंगल मंत्र लक्षादि जाप करे, तो शीघ्र क्लेशादिकोंका नाश होवे, जे कर हाथ उपर जाप न कर सके तो सूतकी, रत्नकी, रुद्राक्षादिककी, माला उपर जाप करे, माला वाला हाथ, हृदयके सामने रक्खे, शरीरसें तथा शरीरके वस्त्रों तथा भूमिकासें माला न लगने देनी, अंगूठेके उपर माला रखके तर्जनी अंगुलीसें नख, बिना लगाया मणका फेरे, मेरु उल्लंघन न करे, शास्त्रकार लिखते हैं कि जो अंगुलीके अग्रसें जाप करे, अरु जो मेरु उल्लंघके जाप करे, तथा जो विखरे हूए चित्तसें जाप करे, यह तीन जाप थोडा फल देते है, जाप करने वाला बहुतोंसें एकला अच्छा शांत करकें जाप करनेसें मौन करकें करे, सो अच्छा है, जेकर जप करतां थक जावे, तो ध्यान करे, ध्यान करनेसें थक जावे, तो जप करे, दोनों थक जावे, तो स्तोत्र पढे.

श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है, कि जाप तीन तरेंका है, एक मानस, दूसरा उपांशु, तीसरा भाष्य, इन तीनमें मानस उसकों कहते है कि जो मनकी विचारणासे होवे, स्वसंवेद्य होवे, अरु उपांशु उसकों कहते है कि जो दूसरा तो न सुणे, परंतु अतर्जल्प रूप होवे, तथा जो दूसरोंकों सुनाइ देवे, सो भाष्य यह तीनों क्रम करके उत्तम, मध्यम, अरु अधम जान लेने. उसमें मानससें शांति होती है, एतावता शांतिके वास्ते मानस जाप करणां अरु पुष्टिके वास्ते उपांशु जाप करणां. तथा आकर्षणादिकमे भाष्यजाप करणां.

नमस्कार मंत्रके पांच पद, नवपद, अथवा अनानुपूर्वी, चित्तकी एकाग्रताके वास्ते गुणे, तथा जो नवकार मंत्रका एक अक्षर एक पदभी जपे, सोभी जाप हो सक्ता है ॥ यदुक्तं योगशास्त्रे अष्टमप्रकाशे ॥ पंचपरमे-

मंत्रके "अरिहंत सिद्ध आयरिय उवझाय साहू" इन सोलां अक्षरका जाप करे, तथा "अरिहंतसिद्ध" इन षड् वर्ण (छै अक्षर) का जाप करे, तथा "अरिहंत" इन चार अक्षरका जाप करे, तथा आकार जो वर्ण है, सोनी मंत्र है इनके जापसें स्वर्ग मोक्षका फल होता है, अरु व्यवहार फल ऐसा जाननां, कि:—षड्वर्णका जाप तीन सौ वार करे, तथा चार वर्णका जाप चार सौ वार करे, अरु सोलां अक्षरका जाप दो सौ वार करे, तो एक उपवासका फल होता है, तथा नाभिकमलमे स्थित तो अ कार ध्यावे. अरु सि वर्ण, मस्तक कमलमें स्थित ध्यावे, तथा आकार मुख कमलमें स्थित ध्यावे, उकार हृदय कमलमें स्थित ध्यावे, तथा सा कार कंठ पिंजरमें स्थित ध्यावे, सर्व कल्याणकारी यह जाप है, असिआ उसा यह पांच बीज है, इन पांचों बीजोंका ॐकार बनता है.

तथा और बीज मंत्रोंकाभी जाप करे, जैसें "नमः सिद्धेभ्य" ऐसा मंत्र तो जे कर इस लोकके फलकी इछा होवे, तब तो ॐकार पूर्वक पढनां चाहियें, अरु मोक्ष वास्ते जपे, तो ॐकाररहित पढना चाहियें, यह जपादि करनेसें बहुत फल होता है ॥ यत॰ ॥ पूजाकोटिसमं स्तोत्रं, स्तोत्रकोटिसमोजपः ॥ जपकोटिसमं ध्यानं, ध्यानकोटिसमो लयः ॥ १ ॥ ध्यान की सिद्धि वास्ते श्रीजिनजन्मदीक्षादि कल्याणक भूमिरूप तीर्थमें जावे, अथवा और कोइ विविक्त स्थान होवे, तहां ध्यान करे, ध्यानका स्वरूप देखना होवे, तव आवश्यक सूत्रांतर्गत ध्यानशतक देख लेनां. नमस्कार मंत्रका जो जाप है, सो इस लोक परलोकमें बहुत गुणकारी है, ॥ उक्तंहि महानिशीथे ॥ नासेइ चोर सावय, विसहर जल जलण बधण भयाइं ॥ चिंतिज्जतो रस्कस, रण राय भयाइं भावेण ॥ १ ॥ अर्थ.— चोर, सिंह, सर्प, पाणी, अग्नि, बंधन, संग्राम, राजभय, इतने भय पंचपरमेष्ठि मंत्रके स्मरणसें नष्ट हो जाते है. एकाग्रता भावसें जपे, तो यह फल होता है, पंच परमेष्ठि मंत्र सर्व जगे पढनां चाहियें, नमस्कार मंत्रका एक अक्षर जपे, तो सात सागरोपमका करा हूआ पाप नष्ट होता है. जे कर संपूर्ण पंच परमेष्ठिमंत्र जपे, तो पांच सो सागरका करा हूआ पाप नष्ट हो जाता है, तथा जो पुरुष एक लक्ष वार पंच परमेष्ठि मंत्रका जाप करे, अरु यह नमस्कार नामक मंत्र जो है, तिसकी विधिसे पूजा

करे, तो तीर्थंकर नाम कर्मगोत्रका बंध करे. इस बातमें संदेह नही, तथा आठ कोडी, अठ लाख, आठ हजार, आठ सौ, आठ वार, जो पंच परमेष्ठिमंत्रका जाप करे, वो जीव, तीसरे भवमें सिद्ध हो जाता है. इस वास्ते सूते, उठते, प्रथम नमस्कार स्मरण करणां तिसके पीछे धर्मजागरणा करणी, सो इसी तरेंकिः—

यथा में कौन हूं? क्या मेरी जाति है? क्या मेरा कुल है? कौन मेरा इष्ट देव है? कौन मेरा गुरु है? क्या मेरा धर्म है? क्या मेरे अभिग्रह है? क्या मेरी अवस्था है? क्या मैने सुकृतादि करा है? क्या मैंने दुष्कृतादि नहो करा है? क्या मै करने समर्थ हूं? क्या मै नहीं कर सक्ता हूं? मुझकों कोइ देखता है कि नही? अपनी भूलकों आत्मा जानता है फेर क्यों नहीं छोडता? तथा आज कौनसी तिथि है? क्या अर्हतका कल्याणिक दिन है? आज मेरा क्या कृत्य है? मैं किस देशमें तथा किस कालमे हूं? सवेरे उठके असे स्मरण करणेसें जीव सावधान हो जाता है जो विरुद्ध कृत्य है, उसका परिहार करता है अपणे नियमका निर्वाह अरु नवीन गुणकी प्राप्ति होती है, येही धर्मजागरणा, आणंद कामदेवादि श्रावकोंने करकें प्रतिमादि विशेष धर्मकरणी करी है.

तस पीछें जो श्रावक प्रतिक्रमण करनेवाला होवे, सो प्रतिक्रमण करे, अरु जो प्रतिक्रमण न करे, सोभी रागादिमय कुस्वप्न प्रद्वेषादिमय अनिष्ट फलका सूचक तिसके दूर करणे वास्ते तथा स्वप्नमे स्त्रीसें प्रसंगादि करनेका खोटा स्वप्न उत्पन्न हूआ होवे, तव एक सौ आठ उच्छ्वास प्रमण कायोत्सर्ग करे, अन्यथा सौ उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे चार लोगस्सका काउस्सग्ग करे. यह कथन व्यवहार भाष्यमें है, तथा विवेक विलासादि ग्रंथोमें असा लिखा है, कि स्वप्न देख्यां पीछे फेर नही सोवणां, अरु स्वप्न, दिनमें सद्गुरुके आगें कहना, जे क्रूर खोटा स्वप्न आवे तो फेर सोवनां ठीक है, किसीके आगें कहनां न चाहियें, तथा समधातुवाला, प्रशांतचित्तवाला, धर्मी और नीरोगी, जितेंद्रिय, इनकों जो शुभाशुभ स्वप्न आवे, सो सत्यही होता है, स्वप्न जो आता है, सो नव कारणोसे आता है, सो नव कारण कहते है.

एक तो अनुनव करी हुइ वस्तुका स्वप्न आता है, दूसरा सुणी हुइ बातका, तीसरा देखा हुआ, चौथा प्रकृति वात, पित्त, अरु कफके विकारसे, पांचमा चिंतित वस्तुका. छठा सहज स्वनावसें, सातवा देवताके उपदेशसें, आठमा पुण्यके प्रनावसें, नवमा पापके प्रनावसें, इसमें आदिके छे कारणोसें, जो स्वप्न आवे, सो निरर्थक है, अरु अगले तीन कारणोंसें जो स्वप्न आवे तो सत्य होवे.

रात्रिके पहिले प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक वर्षमें फल देवे, अरु दूसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो छे महीनेमें फल देवे, तीसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो तीसरे महीनेमें फल देवे, चौथे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक मासमें फल देवे, सवेरे दो घडी रात्रिमें स्वप्न आवे, तो दश दिनमें फल देवे, सूर्योदयमें स्वप्न आवे, तो तत्काल फल देवे.

एक जो स्वप्नमे बहुत आल जंजाल देखे, तथा दूसरा जो रोगोदयसें स्वप्न आवे, तथा तीसरा जो मलमूत्रकी बाधासें स्वप्न आवे, यह तीनो स्वप्न निरर्थक है. जे कर पहिला अशुन स्वप्न आवे, अरु पीछेसें शुन स्वप्न आवे. तो शुन फल देवे, तथा पहिला शुन स्वप्न आवे, पीछे अशुन आवे, तो अशुन फल देवे, जेकर खोटा स्वप्न आवे, तो शांति अर्थात् देवपूजा दानादिक करणां, तथा स्वप्नचिंतामणि नामक ग्रंथमेंनी लिखा है, कि अनिष्ट स्वप्न देख कर सो जावे, अरु किसीकों कहे नहीं, तो फेर वो स्वप्न, फल नही देता है, सूता उठके जिनेश्वरदेवकी प्रतिमा कों नमस्कार करकें जिनेश्वरका ध्यान करे, स्तुति करे, स्मरण करे, पंच परमेष्ठिमंत्र पढे, तो खोटा स्वप्न वितथ हो जाता है. अरु जो पुरुष देव गुरुकी पूजा करते हैं, तथा निजशक्त्यनुसार तप करते हैं, निरंतर धर्मके रागी है, तिनोंकों खोटा स्वप्ननी अछा फल देता है. तथा जो पुरुष, देवगुरुका स्मरण करके अरु शत्रुंजय समेतशिखर प्रमुख शुन तीर्थोंका नाम, तथा गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी प्रमुख आचार्योंका नाम स्मरण करकें सोवे, उसकों कदापि खोटा स्वप्न नहीं होता है.

थूकनां होवे, तो राखमें थूकनां चाहियें, शरीरकों दृढ करने वास्ते हाथों करकें वज्रीकरण करे, अग्नितत्त्व, अरु पवनतत्त्व, जब वहता होवे, तब धाप करकें आकंठ तांइ दूध पीवे, केइ आचार्य कहते हैं कि

आव पसली पाणीकी पीवे, इसका नाम वल्लीकरण कहते हैं. तथा स वेरे उठके माता, पिता, पितामह, बडा जाइ प्रमुखकों नमस्कार करें, तो तीर्थयात्रा समान फल है. इस वास्ते दिन दिन प्रत्यें करणी चाहियें. तथा जिसने वृद्धोंकी सेवा नहीं करी है, उसकों धर्मकी प्राप्ति नहीं होती है, वृद्ध उसकों कहते हैं कि जो शीलमें, संतोषमें, तथा ज्ञान, ध्यानादिकमें बडे होवे, तिनकी सेवा अवश्य करनी चाहियें. तथा जिसने राजाकी सेवा नहीं करी है, अरु जिसने उत्पन्न होते हुए अपने शत्रुकों बंद नहीं करा, तिस पुरुपसें धर्म, अर्थ, अरु सुख दूर है

श्रावककों सवेरे उठ करके चौदह नियम धारण करणे चाहियें, तिनका स्वरूप उपर लिख आये है. तथा विवेकी पुरुष प्रथम सम्यक्त्व पूर्वक द्वादश व्रत, विधि पूर्वक गुरुके मुखसें धारण करे, अरु विरति जो पलती है, सो अन्याससें पलती है, इस वास्ते धर्मका अन्यास करना चाहियें. विना अन्यासके कोइ क्रियाजी अन्नी तरे नहीं करी जाती है, ध्यान मौनादि सर्व अन्यास करनेसें दुःसाध्य नहीं. जो जीव, इस जन्ममें अच्छा वा बूरा जैसा अन्यास करता है, सोइ प्रायः अगले जन्ममें पाता है, तथा पंचमी, अष्टमी, चतुर्दश्यादिकीके दिनमें तपादि नियम जो जो धर्मी पुरुषने अंगीकार किया है, उसमें जो तिथ्यंतरकी भ्रांत्यादि करकें सचित्त जलादि पान, तबोल नक्षण, कितनाक जोजनजी कर लीया है, पीर्वेसें ज्ञान हूआ कि आज तो तपका दिन था? तब जो कुछ मुखमें होवे, उनकों राखादिकमें गेर देवे, प्राशुक पाणीसें मुखशुद्धि कर तप करेकी तरें रहे, तो नियम जंग नहीं होता है, अरु जे कर संपूर्ण जोजन करा पीछें जान पडे कि आज तपका दिन है, तब अगले दिन दंडके निमित्त सो तप करे. समाप्ति हूआं उसके उपर पोरिसी एकाशनादि तप अधिक करे, अरु जे कर तपका दिन जान कर एक दाणाजी खावे, तो व्रतजंग हो जाता है, अरु जो व्रतका जंग जान करकें करना है, सो नरकादिकका हेतु है, तथा जे कर तप करे पीछें गाढा मांदा हो जावे, अथवा जूतादि दोपसें परवश हो जावे, अथवा सर्पादिक काटे, ऐसी असमाधिमें तप करने समर्थ न होवे, तोजी चार आगार उच्चारण करनेसें व्रतजंग नहीं होता है, ऐसे सर्व नियमोमें जान लेना ॥ उक्तं च ॥ वयजंगे गुरुदो

नो, थोवस्सवि पालणा गुणकारि ॥ गुरु लाघवं च नेयं, धम्ममिश्च उ आगारा ॥ १ ॥ अस्यार्थः– व्रतनंग करनेसें महा दूषण होता है, अरु जो पालन करे, तो थोडा व्रतनी गुणकारी है, इस वास्ते गुरु लघु जानके धर्ममें आगार नगवान्नें कहे है.

तथा नियम औसें ग्रहण करणां, सो कहते हैं प्रथम तो मिथ्यात्व त्यागणे योग्य हे, तिस पीछें नित्य यथाशक्ति एक, दो, तीन वार जिन पूजा, जिनदर्शन, संपूर्ण देववदन, चैत्यवंदन करे, औसेही गुरुका योग मिले दीर्घ, लघु वंदन करे, जेकर गुरु हाजर न होवे, तब धर्माचार्यका नाम लेके वंदना करे, तथा नित्य वर्षा रुतुमें (चौमासेमें) पांच पर्वके दिन अष्ट प्रकारी पूजा करे, जहां लग जीवे, तहां लग नवा अन्न, नवा फल, पकान्नादिक देवकों चढाये विना खावे नहीं, नित्य नैवेद्य, सो पारी, बदामादि देवके आगें चढावे, तथा तीन चौमासें संवत्सरी दीवाली प्रमुखमें चावलोंके अष्ट मंगल नरके ढोवे. नित्य अथवा पर्वके दिन तथा वर्षमें खादिम, स्वादिम, सर्व वस्तु देव गुरुकों दे कर नोजन करे, प्रतिमास, प्रतिवर्ष, महाध्वजादि उत्सव आरंबर करके चढावे, स्नात्र महोत्सव, अष्टोत्तरी पूजा, रात्रिजागरण करे, नित्य चौमासे आदिकमें कितनीक वार जिनमंदिर, धर्मशाला, प्रमार्जन करे, देहरा समरावे, पौषधशाला लीपे, प्रतिवर्ष प्रतिमास जिनमंदिरमे अंगलूहनां तथा दीपकके वास्ते पूणी देवे, दीवे वास्ते तेल देवे, चंदन खंमादि मंदिरमें देवे, पोषधशालामें मुखवस्त्रिका, जपमाला पूंछणा, चरवला, कितनेक वस्त्र, सूत, कंबली, कनादि देवे, वर्षमें श्रावकोके बैठने वास्ते कितनेक पाट, चौकी प्रमुख देवे, जेकर निर्धन होवे, तो नी वर्ष दिन पीछें सूत मोरा अट्टी प्रमुख दे कर संघ पूजा करे, कितनेक साधर्मीयोंकों शक्ति अनुसार नोजन देकें, साधर्मीवात्सल्यादि करे, दररोज कितनेक कायोत्सर्ग करे, स्वाध्याय करे. नित्य जघन्य नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे, रात्रिमें दिवस चरम प्रत्याख्यान करे, दोनों वखत प्रतिक्रमण करे, यह करणी प्रथम कर लेवे, तो पीछेंसे बारा व्रत स्वीकार करे. तिन व्रतोंमें सातमे व्रतमें सचित्त, अचित्त, अरु मिश्र वस्तुका स्वरुप अछी तरें जाननां चाहियें.

जेसें प्रायः सर्व धान्य, अन्न, अरु धनीया, जीरा, अजवयन, सौंफ,

सोआ, राइ, खसखस प्रमुख सर्व कण, सर्व पत्र, सर्व हरे फल, तथा लूण, खारी, खारक, अर्थात् छुहारे, रक्त (लाल) रंगका सिंधालूण, खाणका सौंचल लूण, खारा, मट्टी, खरी, हिरमची, हरे दांतण. इत्यादि. ये सर्व व्यवहारसें सचित्त सजीव है. तथा पाणीमें निंजोये चणे, गेहूं, आदि अन्न, तथा चणे, मूंग, उडद. तूअर प्रमुखकी दाल, जिसमें नक्कू रह गया होवे, ये सर्व मिश्र है, तथा पहिला लूण लगा करकें अग्निकी वाष्पादि दीया विना तप्त वालु (रेतके) बिना गेरें चणे, गेहू, जूवारादि भूंजे, तथा खारादि दीयां विन मसले हूये तिल, होलां, कंबियां, सिट्टे, पहूंक. इत्त, सेकी फली. मिरच, राइ, हिंग प्रमुख करके चिभंटादि फल, वघारे, तथा जिसके अंदर बीज सचित्त है, ऐसे पक्के हूये सर्व फल, यह सब मिश्र है. तथा तिलवट, तिलकूट, जिस दिन करे उस दिन मिश्र है, अरु जेकर तिलोंमें अन्न रोटी प्रमुख गेरकें कूटे, तो एक मुहूर्त्त पीछें अचित्त होवे, तथा दक्षिण मालवादि देशोंमें बहुत गुड प्रक्षेप करनेसें उसी दिन अचित्त हो जाते है, तथा वृक्षसें तत्कालका उखड्या गूंद, लाख, छिलक, तत्कालका फोड्या नालियर, तथा निंबू, दाडिम, अनार, आब, नींब, इख. इनका तत्कालका काढ्या रस, तथा तत्कालका काढ्या तिलादिका तेल, तत्कालका नांग्या हूया बीज, तथा काटे हूये नलेर, सिंघाडे, सोपारी आदि, तथा बीज रहित कीया पक फल खरबूजादि, गाढा मर्दन करके कण काढ्या जीरादि. ये सर्व अंतर्मुहूर्त्त लग मिश्र हैं, पीछे प्राशुकका व्यवहार है, तथा औरभी प्रबल अग्निके योगविना प्राशुक करे हूये अंतर्मुहूर्त तांइ मिश्र है, पीछें प्राशुकका व्यवहार है, तथा अप्राशुक पाणी, कच्चा फल, कच्चा अन्नकों जेकर बहुत मर्दनभी करे है, तोभी लवण अग्न्यादिक प्रबल शस्त्र विना प्राशुक नही होते है क्योंकि श्रीपंचमांग भगवतीसूत्रके उन्नीसमे शतकके तीसरे उद्देशेमे लिखा है, कि—वज्रमयी शिला, वज्रमयी लोटा, आमले प्रमाण पृथ्वीकाय लेके एकवीश वार पीसे, तब कितनेक पृथ्वीके जीवोको लोटेका स्पर्शभी नही हूआ है, ऐसी उनजीवोंकी सूक्ष्म काया है, तथा सौ योजनसे उपरात आये हूये हरडा, खारक, किसमिस, लाल द्राक्षा, मेवा, खर्जूर, काली मिरची, पीपर, जायफल, बदाम, अखोड, नेउजा, जरगोजा, पिस्ता, सीतल. चीनी, स्फटिक समान उज्ज्वल सिंधा

लूण, सज्जी नहीमें पकाया लूण, बनावटका खार, कुंनारकी कमाइ हूइ मट्टी, एलायची, लवंग, जावंत्री, सूकी मोथ, कोकणदेश प्रमुखके केले, कदलीफल, उवाले हूये संगाडे, सोपारी, इन सर्वका प्राशुक व्यवहार है, साधुनी कारण पडे ले लेवे. यह बात कल्पनाष्यमेंनी लिखी है. "जोयण सयं तु गंतु, अणाहारे नंम संकंति" इत्यादि. इनमेंसूं हरड, पीपल प्रमुख तो आचीर्ण है, इस वास्ते लेते हैं, अरु खजूर, डाक्षा प्रमुख अनाचीर्ण है, तथा उत्पलकमल, पद्म कमल, धूपमें रखे, एक प्रहरके अन्तरही अचित्त हो जाते है. तथा मोगरेके फूल, जुहिके फूल, यह धूपमें बहुत चिरनी पडे रहे, तोनी अचित्त नहीं होते है. तथा मगदंतिना अर्थात् मोगरेके फूल पाणीमें गेरे रहें तो एक प्रहरके अंदरही अचित्त होजाते है, तथा उत्पल, नीलकमल अरु पद्मकमल, ये दोनो पाणीमें गेर रखनेसें बहुत कालमेंनी अचित्त नहीं होते हैं, "शीतयोनिकत्वात्" तथा पत्रोंका फूलोंका जिनफलोमें अनीतक गुठली बंध नहीं हुइ. तिनका तथा वथुआ प्रमुख हरित वनस्पतिका, इन सबनका वृंत, (रूंमी) कुमलाय जावे, तब जीव रहित हूये जानने. यह कथनश्रीकल्पनाष्य वृत्तिमें लिखा है.

तथा श्रीपंचमांगके छठे शतकके पाचमे उद्देशेमे सचित्ताचित्त वस्तुका स्वरूप ऐसा लिखा है, शालि, व्रिहि, गेहूं, जव, जवजव, ये पांच धान्य की जाति कठोरमें तथा ठेके पालेमें तथा मंचा. माला, कोठारविशेषोमें मुख ढांकके रखे, लीप्या होवे, तथा चारो तर्फसें लीप्या होवे, उपर कोइ और ढकणा दीया होवे, मुडित लांछित करके रखे. तो कितने काल तांइ जीवयोनि रहे ? ऐसा प्रश्न पूछनेसें नगवान् कहते हैं कि हे गौतम ! जघन्य तो अंतर्मुहूर्त्त रहे, अरु उत्कृष्ट तो तीन वर्ष रहे, फेर अचित्त हो जावे. तथा मटर, मसूर, तिल, मूंग, उडद, वाल, कुलथी, चवला, तूयर, गोल चणे, इत्यादि धान्य सर्व उपर वत् जानना. नवर, उत्कृष्टसें पांच वर्ष उपरात अचित्त होते ह, तथा अलसी, कुसुंनेकी करड, कोडु, कंगुनी, वरटी, राल, कोडुसक, सण, सरसों, मूलीके बीज, इत्यादि धान्यनी उपरवत् नवर, उत्कृष्टसें सात वर्ष उपरात अचित्त हो जाते है. तथा कपासके बिनौले, उत्कृष्ट तीन वर्षसे उपरांत अचित्त जीव रहित हो जाते हे. यहनी कल्पनाष्यवृत्तिमें है. तथा बिना छाण्या आटा (चून) श्रावण, ना

ध्वाके महिनेमें पांच दिन तक मिश्र रहता है, पीछे अचित्त होता है, आसोज, कार्त्तिक मासमें चार दिन तक मिश्र रहता है, पीछे अचित्त हो जाता है. तथा मगसिर, पौष मासमे तीन दिन मिश्र रहता है, पीछे अचित्त होता है, तथा माघ, फागुन मासमें पाच प्रहर मिश्र रहता है. तथा चैत्र, वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है. तथा ज्येष्ठ आषाढमे तीन प्रहर मिश्र रहता है, उपरांत अचित्त हो जावे, जे कर तत्काल छान लेवे, तब अंतर्मुहूर्त्त लग मिश्र रहे, पीछे अचित्त होवे.

शिष्य प्रश्न करता है, कि पीस्या हूआ आटा कितने दिनका अचित्त जोगी कों तथा श्रावककों खाना चाहिये ?

उत्तरः— सिद्धातमें हमने आटेकी मर्यादाका नियम नहीं देखा है. परंतु बुद्धिमान् नवा, जीर्ण अन्न, तथा सरस नीरस क्षेत्र, तथा वर्षा, शीत, उष्णादि ऋतु, तिनमें तिस आटेका पंदरा दिन मासादि कालमे वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि विगडा देखे. तथा सुरसली प्रमुख जीव पडा देखे, तब न खावे, जे, कर खावे, तो जीवहिंसा अरु रोगोत्पत्तिका कारण है.

तथा मिठाइकी मर्यादा, अरु विदलका निषेध, उपर सातमे व्रतमें लिख आये है, तहांसें जान लेना. तथा दहीमें सोला प्रहर उपरांत जीव उत्पन्न होते है, तथा विवेकी जीवकों वैगन, टींबरु, जामन, बिल्व, पीलूं, पक्क करमंदा, पक्का गूंदा, लसूडा पेंचु, मधुक. (महुवा) मोर, वालोल, वडे बोर, जाडीके बोर, कच्चा कौठफल, खसखस तिल, इत्यादि न खाने चाहिये, इनमें त्रस जीव होते हैं तथा जो फल रक्त (लालरंग) देखनेमें बूरा लगे, पक्क, गोल, कंकोडा, फणस, कटेल प्रमुखभी बुरी भावनाके हेतु होनेसें, न खाने चाहिये तथा जो फल जिस देशमें खानां विरुद्ध होवे, जैसें कडूवा तूंबा, कूष्मांड अर्थात् कोहला हलुवा (कडु) सोभी न खानां चाहिये, अरु अनक्ष्य, अनंतकाय, कदमूल, परघरके अचित्त करे, रांधे हूयेभी न खाने चाहिये. क्योंकि एक तो निःशूकता अरु दूसरी रस लंपटता तथा वृद्ध्यादि दोषका प्रसंग होता है. इसी वास्ते न खानां, तथा उकाला हूआ सेलरा, राध्या हूआ आदादि कंद, सूरण, वैगनादि, यद्यपि अचित्त है, तोभी श्रावक, प्रसंग दूषण त्यागने वास्ते न खावे, तथा मूली तो पंचांगही खाने योग्य नहीं. निषिद्धत्वात्, तथा

शुंत, हलद, नाम अरु स्वाद भेद होनेसें अनक्ष्य नहीं है. तथा उष्ण जल, तीन उवाले आ जावें, तब अचित्त होता है, यह कथन पिंमनिर्युक्तिमें है. चावलोंके धोवणका पाणी जब नितरके निर्मल हो जावे तब अचित्त होता है, तथा उष्णजलकी मर्यादा प्रवचनसारोध्धारादि ग्रंथोंमें असी लिखी है, सो कहते हैं. त्रिदंमोत्कृत उष्ण जल, उष्णकालके चारों मासमें पांच प्रहर अचित्त रहता है, यह चुल्हेसें उतारे पीछेकी मर्यादा है. तथा वर्षाके चारों मासमें तीन प्रहर अचित्त अरु शीत कालके चारों मासमें चार प्रहर अचित्त रहता है, पीछें सचित्त होता है, जे कर ग्लान, बाल, वृध्धादि साधुके वास्ते मर्यादा उपरांत रखनां होवे, तब क्षारादि वस्तुका प्रक्षेप करकें रखनां, फेर सचित्त नहीं होता है. प्रवचनसारोध्धारके(१३६)मे ध्धारमें यह कथन है तथा कोकडु मोठ, मूंग अरु हरडादिककी मीजी (गिटक) यह यद्यपि अचेतन है, तोभी योनि रखने वास्ते तथा निःशूकतादिके परिहार वास्ते दांतोंसें तोडना (नांगनां) न चाहिये. इत्यादि सचित्त वस्तुका स्वरूप जानके सातमा व्रत अंगीकार करनां चाहियें.

श्रावककों प्रथम तो निरवद्य (दूषण रहित) आहार खानां चाहियें. असें न कर सके तो सर्व सचित्त खानेका त्याग करे, असेभी न कर सके तब बावीश अनक्ष्य अरु बत्तीस अनंतकाय तो अवश्यमेव त्यागने चाहियें. तथा चौदह नियम धारने चाहिये असे सूता उठके यथाशक्ति नियम ग्रहण करे, पीछें यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे, नमस्कार सहित पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान जो है, सो जेकर सूर्य उगनेंसें पहिलां उच्चारण करियें, तो शुद्ध है, अन्यथा शुद्ध नहीं. अरु शेष प्रत्याख्यान सूर्योदयसें पीछेंभी हो सक्ते है, यह तथा नमस्कार सहित जेकर सूर्योदयसें पहिला उच्चार करा हूआ होवे, तब तिसके पूर्व हूआ तिसके बीचही पौरुषी साढ पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान हो सक्ता है, जे कर नमस्कार सहित सूर्योदयसें पहिलां उच्चारन न करिये, तब तो कोइभी काल प्रत्याख्यान करना शुद्ध नहीं, अरु जे कर प्रथम नमस्कारादि प्रत्याख्यान मुष्टि सहतादि करे, तब सर्वकाल प्रत्याख्यान करे, तो शुद्ध है.

तथा रात्रिम चौविहार करे अरु दिनमें एकासना करे, पीछें ग्रंथि स

हित प्रत्याख्यान करें, तब तिसकों प्रतिमास एगुन तीस उपवासका फल होता है, दो वार जोजन उक्त रीतिसें करे, तो अठावीस उपवासका फल होता है, क्योंकि दो घडीका काल जोजन करतां लगता है, शेष काल तपमें व्यतीत हूआ, यह कथन पद्मचरित्रमें है, प्रत्याख्यान उप योग पूर्वक पूरा हो जावे, तो पारे.

अरु चार प्रकारके आहारका विजाग ऐसें है, एक तो अन्न, पक्वान्न, मंमक, सत्तूआदि जो क्षुधा दूर करनेकूं समर्थ होवे. सो प्रथम अशन नामक आहार है, दूसरा ठाठका पाणी, तथा उष्ण जलादि, यह सर्व पानक नामक आहार है. तीसरा फल, फूल, इक्षुरस, पहुंक, सूखडी, आदि यह सर्व खादिम नामक आहार है. चौथा सूठ. हरडे, पिप्पली, काली मिर च, जीरा, अजमक, जायफल, जावंत्री, असेलक, कछा, खयरवडी, ज्येष्ठी मधु, तज, तमालपत्र, एलायची, कोठ, विडंग, विडलवण, अजमोद, कु लिजण, पिप्पलीमूल, चीणकबाव, कचूर, मुस्ता, कंटासेलिठ, कर्पूर, सं चल, हरड, बहेडा.कुंठनठ, बंबूल, धव, खदिर. खेजकी ठाल, पान, सोपारी, हिंगुलाष्टक, हिंगु, त्रेवीसठ, पंचकूल. पुष्करमूल, जवासामूल, बावची, तुलसी, कपूरिकंदादिक, जीरा. यह सर्व जाष्य अरु प्रवचनसारो क्षारादिक ग्रंथोंके लेखसें स्वादिम नामक आहार है, अरु कल्पवृत्तिमें उनकूं खादिम लिखा है. कोइक अजवयनकोंजी खादिम कहते है. यह मतांतर है, यह सर्व स्वादिम नामक आहार है, तथा एलायची कर्पूरादि वासित जल द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें पीनां कल्पता है, तथा वेशण, सौंफ, सोय, कोठवडी, आमलागांठ, आंबकी गुटली, निंबूके पत्र प्रमुख खादि म होनेसें द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते है. अरु त्रिविध आहार प्रत्याख्यानमें तो जलही पीनां कल्पता है, तिसमेंजी फूंकारा हूआ पाणी, साकर, कर्पूर, एलायची, कछा, खदिर, चूर्णक, सेलक, पाठ लादि वासित जल, जे कर नितार अरु ठानके लेवे तो कल्पे, अन्यथा नहीं.

तथा शास्त्रोमें मधु, गुड, साकर, खमादिजी स्वादिम कहे हैं. अरु डाक्षा, शर्करादि, जल, तक्र, ठाठादिकों पानक कहे हैं. तोजी द्विविध आ हार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते है ॥ उक्तं च नागपुरीय गछकी करी हूइ प्र त्याख्यानजाष्यमे ॥ दक्खा पाणाईयं, पाणं तह साइमं गुडाईयं ॥ पढियं

ष्वंमि तहवि हु, तित्तीजणगंति नायरिअं ॥ १ ॥ स्त्रीके साथ जोग करनें से चौविहार नंग नहीं होता है, परतु बालकके तथा स्त्रीके होठ मुखमें ले कर चर्वण करे, तो नंग होवे, अरु द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें यह नी करे तो नंग नहीं होता, प्रत्याख्यान जो है सो कवल आहारका है, प रंतु रोम आहारका नहीं है. इस वास्ते लेपादि करनेंसें नंग नहीं.

तथा इतनी वस्तु किसी आहारमेंनी नहीं है उसका नाम लिखते हैं. पंचांग नींब, गोमूत्र, गलोय, कडु, चिरायता, अतिविष, कुडेकी डाल, चीड, चंदन, राख, हरिद्रा, रोहणी, उपलोट, बज, त्रिफला, बांबूलकी बि क्क, धमासा, नाहि, आसंध, रीगणी, एलुवा, गुगल, हरडां, डाल, कपास की जड, जाड, बेरी, कंथेरी, करीर, इनकी जड, पुआड, वोहथोरी, आछि मंजीठ, बोल, बीवकाष्ठ, कूंआर, चित्रक, कुंदरु प्रमुख जो वस्तु खानेमें अनिष्ट लगे, वो सर्व अनाहार है, यह अनाहार वस्तु रोगादि कष्टमें चौ विहार प्रत्याख्यानमेंनी खा लेवे, तो नंग नहीं. इस तरे आहारके नेद जानके प्रत्याख्यान करे.

पीछें मलोत्सर्ग, दंतधावन, जिव्हालेखन, कुरला करनां. यह सर्व देश स्नान करकें पवित्र होवे, यह कहनां अनुवाद रूप है. क्योंकि यह पू र्वोक्त कर्म सवेरे उठके प्राय सर्व गृहस्थ करते है. इसमें शास्त्रोपदेशकी अपे क्षा नहीं. स्वत:ही सिद्ध है, परतु इनकी विधि शास्त्र कहता है, उसमें प्रथम मलोत्सर्ग विधि यह है, कि मलोत्सर्ग मौनसें करनां चाहिये, सो निर्दूषण योग्य स्थानमें करे ॥ यत उक्तं विवेकविलासग्रंथे ॥ मूत्रोत्सर्गं म लोत्सर्गं, मैथुनं स्नानजोजने ॥ संध्यादि कर्म पूजा च, कुर्याज्जपं च मौनवा न् ॥ १ ॥ अर्थ – मूतना, दिसा फिरनां, मैथुन करना, स्नान, जोजन, संध्या दि कर्म, पूजा, जाप, यह सर्व मौनपणे करने, तथा दोनो सध्या वस्त्र पहिरके करे, तथा दिनमे उत्तरके सन्मुख मुख करकें, अरु रात्रिकों दक्षिणदिशि सन्मुख मुख करकें लघु शंका वडीनीति करे, तथा सर्व नक्षत्रोका तेज सूर्य करकें जब भ्रष्ट हो जावे, जहां तक सूर्यका आधा मांडला उगे, तहां तक सवेरेको संध्या करणी, तथा सूर्य आधा अस्त होवे, तब पीछें दो तीन न क्षत्र जहां तक नजर न पडे, तहां तक सायंकाल कहते हैं, तथा राखका ढेर, गोबरका ढेर, गौके बैठनेंके स्थानमें, सर्पकी बंबी ऊपर तथा

जहां बहुत लोग पुरीषोत्सर्ग करते होवें, तथा उत्तम वृक्षके हेठ, रस्ते वृक्ष हेठ, तथा रस्तेमें, तथा सूर्यके सन्मुख, तथा पाणीकी जगामें, तथा मसाणोंमें, तथा नदीके कांठे उपर, तथा जिस जगोकों स्त्री पूजती होवे इत्यादि स्थानोमें मलोत्सर्ग न करे. परंतु जहां बैठनेसें कोइ मार पीट करे, पकडके न ले जावे, धर्मकी निंदा न होवे, तथा जहां बैठनेसें गिरे फिसले नहीं, पोली नूमि न होवे, मासादि न होवे, त्रस जीव बीज न होवे, इत्यादि उचितस्थानमें मलोत्सर्ग करे, गामके तथा किसी घरके समीप मलोत्सर्ग न करे, तथा जिस तर्फसें पवन आती है वे, तथा गामकी सूर्यकी पूर्वदिशिके तरफ पीठ करकें मलोत्सर्ग करे. दिसा अरु मूत्रका वेग रोकनां नही, क्योंकि मूत्रका वेग रोकनेसें नेत्रोंमें हानी होनी है, तथा दिसाका वेग रोकनेसें काल हो जाता है तथा वमन रोकनेंसें कुष्ट रोग हो जाता है, जेकर ये तीनो बात न रोकेगी तो रोग तो जरुर हो जावेगा, श्लेष्मादि करकें ऊपर धूलि गेर देवे क्योंकि श्रीप्रज्ञापनोपांगके प्रथम पदमें लिखा है, कि चौदह जगे संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते है, सो चौदह स्थानक कहते है, १ पुरीषमें, २ मूत्रमें ३ मुखके थूकमें, ४ नाकके मैलमें, ५ वमनमें, ६ पित्तोंमें, ७ वीर्यमें, ८ वीर्यरुधिर दोनोंमें, ए राधमें, १० वीर्यका पुजल अलग निकल पडे उसमें ११ जीव रहित कलेवरमें, १२ स्त्री पुरुषके संयोगमें, १३ नगरोकी मोरीमें, १४ सर्व अशुचि स्थानमे, कानकी मैल, आंखकी गीडमें, कांखकी मैल प्रमुखमे. यह सर्व चौदह बोल मनुष्यके संसर्गवाले ग्रहण करणे अरु जब शरीरसें अलग होवे, तब जीव उत्पन्न होते है.

तथा दातनकी निरवद्य स्थानमें करे, दातण अचित्त जाने हूए वृक्षकी कोमल करे, तथा दांतोंके दृढ करने वास्ते तर्जनी अंगुली करकें दांतोंकी पीड घसे, जो दातोंकी मेल पडे. उसके ऊपर धूलि गेर देवे, तथा दातणकी कैसी करे जो दातण सूधी होवे, वीचमें गांठ न होवे, कूर्च अच्छा होवे, आगेसे पतली होवे, चेंटी अंगुली समान मोटी होवे, सुन्नुमिकी उत्पन्न होइ होवे, ऐसी दातण कनिष्ठा अनामिकाके वीच ले कर करे, पहिलां दाहिनी दाढा घसे, फेर वामी घसे, उपयोगवंत स्वस्थ, दांत अरु पीढके मांसकों पीडा न देवे, उत्तर तथा पूर्व सन्मुख करकें निश्चलासन,

मौन युक्त दातण करे, डुर्गंध, पोली, सूकी, खट्टी, खारी, वस्तु दांतकों न घसे. तथा, व्यतीपात, रविवार, संक्रांति दिनें ग्रहण लगेमें, नवमी, अष्टमी, पडवा, चौदश, पूर्णमासी, अमावस, इन दिनोंमें दातण न करे. जेकर दातण न मिले, तब मुखशुद्धिके वास्ते बारां कुरले करे, अरु जिव्हा उल्लेखन तो सदा करे. दातणकी फांकसें जिव्हाका मैल हलवे हलवे सर्व उतारके शुचिस्थानमें दातण धो करके आपणे मुखके सामने गेरे. तथा खांसी, श्वास, तप, अजीर्ण, शोक, तृषावाला, मुख पकेवाला, मस्तक, नेत्र, हृदय, कान, इतने रोग वाला, दातण न करे.

मस्तकके केशोंकों सदा समारे, जिस्में जूआं न पडे, जे कर तिलक करके आरीसा देखे, उसमें मुख नहीं दीखे, सिर नहि दीखे, तो पांच दिनके अंदर उसका मरना जानना अरु जिसने उपवास पोरुष्यादिक प्रत्याख्यान करा होवे, वो दात धोया विनाजी शुद्ध है, क्योंकि तपका बडा फल है, लौकिक शास्त्रों मेंजी उपवासादि करे, तो दातण विनाही देवपूजा करते हैं, इस वास्ते लौकिक शास्त्रोंमेंजी उपवासादिमें दातण करनेका निषेध है ॥ यदुक्त विष्णुजक्तिचंद्रोदयग्रंथे ॥ प्रतिपदार्शषष्ठीषु, मध्यांते नवमीतिथौ ॥ संक्रांति दिवसे प्राप्ते, न कुर्याद्दतधावनं ॥ १ ॥ उपवासे तथा श्राद्धे, न कुर्यात् दंतधावनं ॥ दंतानां काष्ठसंयोगो, हंति सप्त कुलानि वै ॥ २ इत्यादि.

तथा जब स्नान करे, तब उत्तिंग पनक कुंथुआदि जीवोंसें रहित नूमिमें करे, सो नूमि ऊंची, नीची, पोली, न होवे, प्रथम तो उष्ण प्राशुक जलसें स्नान करे, जेकर उष्ण जल न मिले, तब वस्त्रसें छान करकें प्रमाण संयुक्त शीतल जलसें स्नान करे, तथा व्यवहार शास्त्रमें ऐसा लिखा है, कि.— नग्न हो कर तथा रोगी तथा परदेशसें आया हूआ नोजन करे पीछें आनूषण पहेरके किसीकों विदा करकें पीछें आ करकें मंगल कार्य करके स्नान न करे, तथा अनजाने पानीसे, डुष्प्रवेश जलमें, मैले जलमें, वृक्षों करके आछादित जलमे, शैवल करकें आछादित जलमें, स्नान न करे, तथा शीतल जलसें स्नान करकें उष्ण नोजन न खाना चाहिये. अरु उष्ण जलसे स्नान करकें शीतल नोजन न खाना चाहियें. तैलमर्दन सदाही करनां चाहियेतथा स्नान कस्या पीछें जिसकी कांति फीकी दीसे तथा जिसके दांत परस्पर घसे, अरु शरीरसे मृतक कैसी

गंध आवे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान कस्यां पीछे जिसके हृदयमें, तथा दोनो पगोंमें तत्काल पाणी शोष जावे, तब हे दिनोंके बीच उसका मरन जाननां. मैथुन सेवकें तथा वमन करकें इन दोनोंमें कछुक देर पीछें स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसे मस्तक मूंमवा करकें, छाने हूये शुद्ध जलसें स्नान करे, तथा तेलमर्दन करी स्नान कस्यां पीछें उज्ज्वल वस्त्र आजरण पहिरनां. पिछें प्रयाण करनेके दिनमें, संग्राममें जातां हूआ, विद्यामंत्र साधतां, रातकों, सांजको, पर्वदिनमें. नवमे दिनमें स्नान न करे, मस्तक मुंमनजी न करावे, तथा पक्षमे एक वार दाढी मस्तकके केश तथा नख दूर करावे, परंतु अपणे दांतों करी तथा अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेसें शरीर पवित्र चैतन्यसुख कर जाव शुद्धिका हेतु हो जाता है ॥ उक्तं च द्वितीये अष्टकप्रकरणे ॥ श्लोक ॥ जलेन देहदेशस्य, क्षणं यच्छुद्धिकारणं प्रायोऽन्यानुपराधेन, द्रव्यस्नानं तदुच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थ:— देहदेश त्वचामात्रहीकी क्षणमात्र शुद्धि है, परंतु प्रजूत काल नहीं, शुद्धि जो है, सोजी प्रायें है, कुछ एकांत नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालेकों क्षण मात्रजी शुद्धि नहीं हो सक्ती है, धोने योग्य मैलसें अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंतर्गत जो है, सोजी स्नानसें दूर नहीं होता है, अथवा पाणी विना और जीवोकी हिंसा न करनेसें जो स्नान है, सो बाह्य स्नान है, जो पुरुष स्नान करके जगवानकी तथा साधुकी पूजा करे. तिसका स्नानजी अच्छा है, क्योंकि जावशुद्धिका निमित्त है, स्नान करनेमें अप्कायके जीवोंकी विराधनाजी है, तोजी सम्यग्दर्शनकी शुद्धि रूप गुण है ॥ यदुक्तं ॥ पूआए कायवहो, पडिकुट्ठो सोउ किंतु जिणपूआ ॥ सम्मत्त सुद्धिहेउ, त्ति जावणीयाउ निरवज्जा ॥ १॥ अर्थ:— कोइ कहते हैं कि पूजा करनेसें जीववध होता है, अरु जीववध तो शास्त्रमें निषेध करा है; इस वास्ते पूजा न करणी चाहियें. इसका उत्तर कहतें हैं, कि पूजा जो जिनराजकी है, सो सम्यक्त्व निर्मल करने वाली है, इस वास्ते जिनपूजा निरवद्य है, ऐसें देवपूजाके वास्ते गृहस्थकों स्नान करना कहा है, तथा शरीरके चैतन्य सुखके वास्तेजी स्नान है, परतु जो स्नान करनेसें पुण्य मानते हैं, सो बात मिथ्या है. क्योंकि जो कोइ तीर्थमेंजी जान कर स्नान

करता है, तिसकोंनी शरीर शुद्धिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है, यह वात, अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंनी कही है ॥ उक्त च ॥ स्कंदपुराणे काशी खंडे षष्ठाध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोनारसहस्त्रेण, जलकुंनशतेन च ॥ न शु ध्यंते दुराचाराः, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायंते च म्रियंते च, जले ष्वेव जलौकस· ॥ नच गछंति ते स्वर्गं, मविशुद्धमनोमलाः ॥ २ ॥ चित्तं स माधिनिः शुद्ध, वदन सत्यनाषणैः ॥ ब्रह्मचर्यादिनिः कायः, शुद्धोगंगावि नाप्यसौ ॥ ३ चित्त रागादिनि· क्लिष्ट, मलीकवचनैर्मुखं ॥ जीवहिंसादिनिः कायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥ परदारापरद्रव्य, परद्रोहपराङ्मु ख· ॥ गंगाप्याह कदागत्य, मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥ जलसें स्नान क रनेसें असख्य जीवोंकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नही है, ज लमे जीवोका होनां मीमांसा शास्त्रसेंनी सिद्ध होता है. यडुक्त उत्तरमी मांसाया ॥ श्लोक ॥ लूतास्यतंतुगलिते, ये बिंदौ संति जंतव· ॥ सूक्ष्मा भ्र मराणास्ते, नैव यांति त्रिविष्टपं ॥ १ इत्यादि.

किसीके स्नान करेनी जे कर गुमडादिमेसे राधादि श्रवे, तदा तिसनें अंगपूजा फूलादिकसें आप नही करनी, दूसरोंसें करावे. अरु अग्रपूजा तथा नावपूजा आपनी करे, तो कुछ दोष नहि, थोडासानी अपवित्र होवे, तब देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान कखा पवित्र मृड, गंध, काषा यिकादि वस्त्र, अंगलूहणा, पोतीयां छोड करकें पवित्र वस्त्रातर पहिरनेकी युक्तिसे पाणीके नीजे पगोसें धरतीको अस्पर्शता हूआ पवित्र स्थानमें आ करकें उत्तर सन्मुख मुख करकें अछी तरे मनोहर नवा वस्त्र जो फाटा हूआ तथा सिवाया हूआ न होवे, अरु वर्णमें धवला होवे, ऐसा वस्त्र पहिरे, तथा जिस वस्त्रकों कटिमें पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसें दिसा गया होवे, तथा जिस वस्त्रसें मैथुन सेव्या होवे. तिस वस्त्रकों प हिरके पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिनके नोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कंचुकी विना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसें पुरुष को दो वस्त्र तथा स्त्रीको तीन वस्त्र विना पूजा करनी नही कल्पे है, देव पूजामे धोती अतिविशिष्ट धवली करनी चाहिये, निशीथचूर्णी तथा श्रा द्धदिनकृत्यादि शास्त्रोंमे ऐसाही लिखा है, तथा पूजा· षोडशमें ऐसानी लिखा है, कि रेशमी आदिक जो सुंदर वस्त्र लाल पीला होवे,

सोजी पूजामें पहिरे तो ठीक है, तथा " एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, इत्यादि आगमके प्रमाणसें उत्तरासंग अखंम वस्त्रका करे, दो टुकडे सीया वस्त्र न कल्पे, तथा रेशमी कपडेसें जोजनादि करे, अरु मनमें समझे कि यह तो सदा पवित्र है, तोजी तिस्सें पूजा न करे. तथा जिस वस्त्रकों पहिरकें पूजा करे, उसकोंजी वारंवार पहिननेंके अनुसार धोवावे, धूप दे कर पवित्र करे, धोती थोडाही काल तक पहननी चाहियें, उस धोतीसें पसीना श्लेष्मादि न दूर करनां चाहियें. क्योंकि उस्सें अपवित्रता हो जाती है, तथा पहिने हूए वस्त्रोंके साथ पूजाके वस्त्र छुहाने (अडाने) नहीं चाहियें, दूसरायोंकी पहनी हूइ धोती पहननी न चाहियें, तथा बाल, वृद्ध, स्त्रीके पहननेंमें आइ होवे, तो विशेष करकें न पहननी चाहियें, तथा जले स्थानसें ज्ञातगुण, सुमनुष्य पासों पवित्र जाजन आज्ञादनसंयुक्त रस्तेमें लानेकी विधिसंयुक्त पाणी अरु फूल. पूजा वास्ते मंगावने चाहियें. अरु फूलादि लाने वालेकों अछी तरें मोल दे कर प्रसन्न करनां चाहियें, ऐसे मुखकोश बांध के पवित्रस्थानादि युक्तिसें जिसमें कोइ जीव पडा न होवे, ऐसा शोध्या हुवा केशर कर्पूरादिकसे मिश्र, चंदन घसे, शोध्या हूआ सुंदर धूप, प्रदीप, अखंम चावलादि तूत रहित प्रशंसा करनें योग्य ऐसा नैवेद्य फलादि सामग्री मेलकें इस रीतें इव्यसें शुचि करके अरु जावसें शुचि तो राग, द्वेष, कषाय, ईर्ष्या रहित तथा इस लोक परलोकके सुखोंकी इछा रहित हो कर अरु कुतूहल चपलादि त्याग करकें एकाग्र चित्ततारूप जावशुद्धि करे ॥ उक्तं च ॥ श्लोक ॥ मनोवाक्कायवस्त्रोर्वी, पूजोपकरणस्थितेः ॥ शुद्धिः सप्तविधा कार्या, श्रीअर्हत्पूजनक्षणे ॥ १ ॥

ऐसें इव्य जाव करके शुद्ध हो कर जिनघर (देहरेमें) दक्षिणदिशें पुरुष, अरु वामा दिशें स्त्री, यत्न पूर्वक प्रवेश करे, प्रवेशके अवसरमें दक्षिण पग पहिला धरे, पीठें सुगंध वाले मीठे सरस इव्यों करके पराङ्मुख वामास्वर चलते मौनसें देवपूजा करे. इत्यादि तीन नैषेधिकी करण. तीन प्रदक्षिणा, इत्यादि विधिसें शुचि पाट उपर पद्मासनादि सुखासन पर बैठकें, चंदनका जाजनसें चंदन ले कर दूसरी कटोरीमें तथा हथेलीमें ले कर मस्तकमें तिलक करकें हस्तकंकण, श्रीचंदनचर्चित धूपित, हाथों करी जिन अर्हतकों पूजकें आगें लिखते हैं जो १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ जावपू-

जा, तिनोंसें पूजकें प्रत्याख्यान जो पूर्वे करा था, सो यथाशक्ति देवकी सा
क्षीसें उच्चारण करे, तद् पीछें विधिसें बडे पंचायती मंदिरमें जा कर पूजा
करे, सो इस विधिसें करे.

यदि राजादि महर्द्धिक होवे, सो तो सर्व ऋद्धि, सर्वदीप्ति, सर्वयुक्ति,
सर्वसैन्या, सब उद्यमसें जिनमतकी प्रभावना वास्ते महा आडंबर पूर्वक
जिनमंदिरमें पूजा करनेको जावे, जैसें दशार्णभद्र राजा श्रीमहावीर भग
वंतकों वंदना करने गया था तैसें जावे.

अरु जो सामान्य ऋद्धिवाला होवे, सो अभिमान रहित लोकोपहास्य
त्यागके यथायोग्य आडंबर भाइ, मित्र, पुत्रादिकोंसे परिवृत हो कर जावे,
असें जिनमंदिरमें जा कर १ पुष्प, तंबोल, सरस, डुर्वादि त्यागे, तथा २
छूरी, पावडी, मुकुट, हाथी प्रमुख सचित्ताचित्त वस्तु शरीरके भोगकी त्यागे,
तथा ३ मुकुट वर्जकें शेष आभरणादि अचित्त वस्तु न त्यागे, अरु एक
बडे वस्त्रका उत्तरासंग करे, ४ जिनेश्वरकी मूर्त्ति दीखे अंजलि बांधकें म
स्तक उपर चढाकें 'नमो जिणाणं' असा कहे, ५ मन एकाग्र करे, इस री
तिसें पांच अभिगम संभालकें (सांचके)नैषेधिकी पूर्वक प्रवेश करे.

जे कर राजा जिनमंदिरमें प्रवेश करे, तब तत्काल राजचिन्ह दूर करे,
१ तलवार, २ छत्र, ३ असवारी, ४ मुकुट, ५ चामर. ये पांचो चिन्ह रा
जाके त्यागे, अग्रद्वारमें प्रवेश करतां घर व्यापारका निषेध करने वास्ते
नैषेधिकी तीन करे, परंतु तीनो निस्सहीकी एक नैषेधिकी गणतीमें कर
णी, क्योंकि एकही घर व्यापार एककाही निषेध कीया है. तद् पीछें मूल
बिंबकों नमस्कार करके सर्व कृत्य, कल्याणवाछक पुरुषनें दक्षिणके पासें
करणा, इस वास्ते मूलबिंबकों दक्षिणके पासें करता हूआ ज्ञान, दर्शन,
अरु चारित्र, इन तीनोके आराधनार्थे प्रदक्षिणा तीन देवे, प्रदक्षिणा देता
हूआ समवसरणस्थ चाररूप संयुक्त जिनेश्वरजीकों ध्यावे, गंभारेमें पूठें
वामा दक्षिणा दिशिमें जो बिंब होवे, तिनको वंदे, इसी वास्ते सर्व मंदिर
में चारों तर्फ समवसरणके आकारें तीन तर्फ तीन बिंब स्थापे जाते हैं,
असे करनेसें जो अरिहंतकी पीछें वसणेमें दोष था, सो दूर हो गया, पीठ
किसी पासेभी न रही, तिस पीछें चैत्यप्रमार्जनादि जो आगें लिखेंगे, सो
करे, पीछें सर्व प्रकारकी पूजा सामग्री प्रत्यें तथा देहराके समारनेके कामके

निषेध करने वास्ते दूसरी मुखमंडपादिकमें नैषेधिकी करे, पीछें मूलबिंबको तीन प्रणाम करकें पूजा करे, भाष्यकारनेंभी ऐसा कहा है, कि निस्सही तीन करकें प्रवेश करी मंडपमें जिनेश्वरके आगे धरती उपर स्थापन करके, हाथ जोडे करे. विधिसें तीन वार प्रणाम करे, तिस पीछें हर्षसें उद्दास हो करकें मुखकोश बांध करकें जिनप्रतिमाका निर्माल्य, फूल प्रमुख मोर पीछी करकें दूर करे, जिनमंदिरका प्रमार्जन आप करे, अथवा औरोंसें करावे, पीछें जिनबिंबकी पूजा विधिसें करे, मुखकोश आठ पुडका करे,जिस्से नासिका अरु मुखका निःश्वास निरोध होवे,वर्षातमे निर्माल्यमें कुंथुआदि जीवभी होते हैं इस वास्ते निर्माल्य अरु स्नात्र जल न्यारा न्यारा पवित्र स्थानमें गेरे, गिरावे, ऐसें आशातनाभी नही होती है. पूजा, कलशजलसें करता हूआ ऐसी भावना ध्यावे, सो लिखते है.

हे स्वामिन् ! बालपणेमें मेरु शिखर पर सुवर्णकलशों करी इंद्र देवतानें स्नान कराया था. सो धन्य थे, जिनोनें तुमारा दर्शन करा था. इत्यादि चिंतवणा करकें पीछें सुयत्नसें वालाकूंचीसें जिनबिंबके अंग उपरसें चंदनादि उतारे, पीछें जलसें प्रक्षालन करकें दो अंगलूहणेसें जिनप्रतिमाकों निर्जल करे, पग, जानु, कर, मस्तकें पूजा यथाक्रमसे नव अंगमें श्रीचंदनादि करके चर्चे, (पूजे) कोई आचार्य कहते है, कि पहिला मस्तकमें तिलक करकें पीछें नवांग पूजा करणी, श्रीजिनप्रभसूरिकृत पूजाविधि ग्रंथमे ऐसा लिखा है- किः— सरस सुरभि चदन करी देवके. दाहिण जानु. दाहिण स्कंध, निलाड, वामा स्कंध, वामा जानु, इस क्रमसें पूजा करे. हृदय प्रमुखमें पूजा करे,तब नव अंगकी पूजा होती है. अंगोंमें पूजा करके पीछें सरस पांच वर्णके प्रत्यग्र फूलों करकें चदन सुगध वास करी पूजे, जे कर पहिलां किसीने बडे मंडाणसें पूजा करी होवे,अरु अपणे पास वैसी सामग्री पूजाकी न होवे, तब पहिली पूजा उतारे नही, क्योंकि विशिष्ट पूजा देखनेंमें भव्योंको जो पुण्यानुबंधी पुण्य होता था, तिसकी अंतराय हो जाती है,किंतु तिस वास्ते तिसी पूजाकों भोजनिक करे, यह कथन बृहद्भाष्यमें है.

तथा जो पूजा उपर पूजा करणी, सो निर्माल्यके लक्षण न होनेसें निर्माल्य नहीं, जो भोगविनष्ट द्रव्य है, सोइ निर्माल्य गीतार्थोंने कहा है,आभूषण वार वार पहराये जाते हैं,परंतु निर्माल्य नहीं होते हैं,नहीं तो गंध,

कषाय वस्त्र, करकें एक सौ आठ जिनप्रतिमाके अंग क्यों कर लूहे? इ
स वास्ते जिनबिंबारोपित जो वस्तु, शोना रहित सुगंध रहित दीख पडे,
अरु नव्य जीवोंकों प्रमोदका हेतु न होवे, तिसहीकों बहुश्रुत निर्माल्य
कहते है. यह कथन संघाचारवृत्तिमें लिखा है, चढे हूये चावलादि
निर्माल्य नही, कोइ आचार्य निर्माल्यनी कहते है, तत्व केवली
जाणे क्यों कर है?

चदन फूलादि पूजा तैसें करणी, जैसें नगवानके नेत्र मुखादि ढके न
जावे, अरु बहुत शोनानिक दीखे, जिस्सें देखने वालोंकों प्रमोद
पुण्यादिककी वृद्धि होवे.

तथा १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ नावपूजा, यह तीन प्रकारकी पूजा
है. तिनमें जो निर्माल्य दूर करनां, प्रमार्जना करनां. अंगप्रक्षालन करनां,
वालकूंचीका व्यापारण, पूजना, कुसुमांजलिमोचन, पंचामृतस्नात्र, शुद्धो
दकधारा देनी, धूपित स्वछ मृदुगंध कषायकादि वस्त्रसें अंगलूहण करना, क
पूर कुंकुमादि मिश्र गोशीर्ष चंदन विलेपन अंगी रचनी, तथा गोरोचन क
स्तूरीसें तिलक करणां, पत्र, वेल, फूल प्रमुखकी रचना करनी, बहु मोल
रत्न सुवर्ण मोती रूपें पुष्पादिकें आनरण (अलंकार) पहिरावे, जैसें श्री
वस्तुपालने अपने कराये हूये सवालक्ष बिंबोंके तथा श्रीशत्रुंजयजीमें सर्व
बिंबोंके रत्न सुवर्णके आनरण कराये थे, तथा दमयंतीने पिछले नवमें अ
ष्टापद पर्वतपर चौवीस अर्हतोंके तिलक कराये होते. क्योंकि प्रतिमाजी
की जितनी उत्कृष्ट सामग्री होवे, उतनेही अधिक नव्य जीवोंके शुन ना
वोंकी वृद्धि होती है तथा पहरावणी, चइनादि विचित्र डुकूलादि वस्त्र प
हिरावें, तथा १ ग्रंथिम, २ वेष्टिम, ३ पूरिम, ४ संघातिम रूप, चतुर्विध
प्रधान अम्लान विधिसे ल्याया हूआ शतपत्र, सहस्रपत्र, जाइ, केतकी,
चंपकादि विशेष फूलो करी माला, मुकुट, सेहरा, फूलघरादिककी रचना
करे. तथा जिनजीके हाथमें बिजोरा, नालियर, सोपारी, नागवल्ली, मोहो
र, रुपइया, लडु प्रमुख रखनां. अरु धूपक्षेप, सुगंध, वासप्रक्षेपादि, यह सर्व
अंगपूजाकी गिणतीमें है. महानाष्यमेंनी कहा है ॥ गाथा ॥ न्हवण वि
लेव आहरण, वत्थ फल गंध धूप पुप्फेहिं ॥ कीरइ जिणगपूया, तह विही
एस नायवो ॥ १ ॥ वत्थेण बंधिऊणना,स अहवा जहा समाहीए ॥ व

ज्ञेयवं तु तथा, देहमवि कंडुअणमाई ॥ २ ॥ अन्यत्रापि गाथा ॥ का कंडुअणं वज्जे, तह खेलविगिंचणं ॥ थुइ थुत्तनणणं चेव, कुणंतो जगबं णो ॥ १ ॥ देवपूजनके अवसरमें मुख्यवृत्ति तो मौनही करणी चाहियें, कर न कर सके तो नी पापहेतु वचन तो सर्वथाही त्यागे, नैषेधिकी क नेसें गृहादि व्यापारका निषेध करनेसें इस वास्ते पापकी संज्ञानी वर्जे, लबिंबकी विस्तार सहित पूजा करे, पीछें अनुक्रमसें सर्व और बिंबोंक पूजा करे, द्वारबिंब समवसरण बिंबोंकी पूजानी मूलबिंबकी पूजा कर पीछें, गंनारासें निकलती वखत करनी चाहियें, औसा संनव है, परंतु प्रवे श करतां तो मूलबिंबकीही पूजा करणी, उचित मालुम होती है, संघ चारमें औसेही लिखा है, इस वास्ते मूलनायककी पूजा, सर्व बिंबोसें पहि लां और सविशेष करनी चाहियें ॥ उक्तमपि ॥ उचिअत्त पूआए, विसे सकरणं तु मूलबिंबस्स ॥ जं पडइ तत्र पढमं, जणस्स दिट्ठी सहमणेणं॥१॥

शिष्य प्रश्न करता है कि:— चंदनादि करकें प्रथम एक मूलनायककों पूजीयें अरु दूसरे बिंबोंकी पीछें पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक नाव ठ हरा, सो तो लोकनाथ तीर्थंकरमें है नहीं, क्योंकि एकबिंबकी बहुत आद रसें पूजा करणी, अरु दूसरे बिंबोंकी थोडी पूजा करणी, यह बडी नारी आशातना मुजकों मालुम पडती है?

गुरु उत्तर कहते है — अर्हंत प्रतिमाओंमें नायक सेवककी बुद्धि ज्ञा नवंत पुरुषकों नहीं होती है, क्योंकि सर्व प्रतिमाजीके एक सरीखादी परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते है, यह व्यवहार मात्र है, जो बिंब पहिलांही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है, इस व्यवहारसें शेष प्रतिमाओंका नायक नाव दूर नहीं होता है.

एक प्रतिमाकों वंदन करनां, पूजा करनी, नैवेद्य चढानां, यह उचित प्रवृत्तिवाले पुरुषकों आशातना नहीं है, जैसें माटीकी प्रतिमाकी पूजा फूलादि रहित उचित है, अरु सुवर्णादिककी प्रतिमाकों स्नान विलेपना दि उचित है, तथा कल्याणक प्रमुखका महोत्सव एकही बिंबका विशेष करकें कीया जाता है,परंतु वो महोत्सव दूसरी प्रतिमाओंकी आशातनाका कारण नहीं होता है,जैसें धर्मी पुरुषकों पूजतां और लोकोंकी आशातना नहीं, इस प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करतां जैसें आशातना नहीं होती

है, तैसेंही मूलबिंबकी विशेष पूजा करतां आशातना नहीं होती है, जिनमंदिरमें जिनबिंबकी जो पूजा करते हैं, सो तीर्थंकरोंके वास्ते नहीं करते हैं, किंतु अपणे शुभ भावोंके निमित्त है, जिस निमित्तसें आत्माका उपादान समर जाता है, अरु दूसरोंकों बोधकी प्राप्ति होती है. कोइ जीव तो श्रीजिनमंदिरकों देखके प्रतिबोध हो जाता है, अरु कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशांतरूप देखकें प्रतिबोध हो जाता है, कोइ पूजाकी महिमा देखके, अरु कोइ गुरुके उपदेशसें प्रतिबोध हो जाता है. इस वास्ते चैत्य जिनबिंबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहियें. अरु अपणी शक्ति अनुसार मुख्यबिंबकी विशेष अद्भुत शोभा करनी चाहियें.

तथा घर देहरासर तो अबजो पीतल ताम्र रूपामय करावनेकूं समर्थ है, जदा पीतलादिकका बनानेका सामर्थ्य न होवें, तदा दांतादि मय पीतल सिगरफकी रंगावे, कोरणी विशिष्ट काष्ठादिमय करावे. घरचैत्य तथा चैत्य समुच्चयमें दिनप्रत्यें सर्व जगें प्रमार्जन तैलादिसें काष्ठ चोपडे, जिस्सें घुण न लगे, तथा खडियासें धवला करे, श्रीतीर्थंकरके पंचकल्याणकादिकका चित्राम करावे, समग्र पूजाके उपकरण समरावे, पडदा, कनात, चंदुवादि देवे, ऐसें करे कि, जैसें जिनमंदिरादिककी अधिक अधिक शोभा होवे. घर देहरेके उपर धोती प्रमुख न गेरे, घर देहरेकीभी चौरासी आशातना टाले, पीतल पाषाणादिमय जो प्रतिमा होवे, तिन सर्वकों एक अंगलूहणेसें सर्व बिंबोका पाणी लूहे, पीछें निरंतर दूसरे सुकोमल अंगलूहणेसें वारं वार सर्व अंगो उपर फेरकें पाणीकी भीनास बिलकुल रहने न देवे, ऐसें करनेसें प्रतिमा उज्ज्वल हो जाती है, जहां जहां प्रतिमाके अंगोपांग पर जल रहि जावे, तहां तहां प्रतिमाके श्यामता हो जाती है, इस वास्ते पाणीकी स्निग्धता सर्वथा प्रकारें टाले, केशर बहुत अरु चंदन थोडा, ऐसा विलेपन करनेसें प्रतिमा अधिक अधिक उज्ज्वल हो जाती है.

नव, पंचतीर्थी, चोवीसीका पट्टादिमें स्नात्रजलका जो प्रतिमाजीकों परस्पर स्पर्श होनेसें आशातना होती है? ऐसी आशंका न करणी चाहियें, अशक्य परिहार होनेसे. १ एक अर्हंतकी प्रतिमा होवे, तिसका नाम व्यक्त है. २ एकही पाषाणादिकमें भरत ऐरवत क्षेत्रकी चोवीसी बनवावे, तिनका नाम क्षेत्रप्रतिमा है. ३ ऐसेंही एक सौ सित्तेर प्रतिमा माहात्म्य

कहते हैं, ४ फूलकी वृष्टि करतां जो मालाधर देवता है, तिसका रूप पं चतीर्थीके ऊपर बनाते हैं, जिनप्रतिमाको न्हवण करतां पहिला मालाध रकों पाणी स्पर्शकें पीछें जिनबिंब ऊपर पडता है, सो दोष नहीं है, यह वृद्धोंकी आचरणा है, इसी तरे चौवीसी पट्ट आदिकमेंभी जान लेनां, ग्रं थोंमेंभी ऐसी रीति देखनेमें आती है ॥ बृहद्भाष्येप्युक्त ॥ भाष्यकारका कहनां यहा लिखते है? जिनराजकी ऋद्धि देखने वास्ते कोइ भक्तजन एक प्रतिमा बनवाता है, प्रगटपणे अष्ट प्रातिहार्य देवागमसुशोभित. १ दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी आराधना वास्ते कोइ तीन तीर्थी प्रतिमा बनवा ता है. २ कोइ भक्त पंचपरमेष्टिके आराधनार्थ उद्यापनमे पंचतीर्थी प्रति मा भराता है. ३ चौवीस तीर्थंकरोंके कल्याणक तप उजमने वास्ते भरत क्षेत्रमें जो ऋषभादि चौवीस तर्थंकर हूए है, तिनके बहुमान वास्ते कोई चौवीसी बनवाता है, कोइ भक्ति करकें मनुष्य लोकमे उत्कृष्टे एक काल मे एक सौ सित्तेर तीर्थंकर विहरमानकी एक सो सित्तेर प्रतिमा बनवाता है, तिस वास्ते तीन तीर्थी, पाचतीर्थी, चौवीसी आदिकका बनानां युक्ति युक्त है, यह पूर्वोक्त सर्व अंगपूजा है.

अथाग्रपूजा लिख्यते ॥ रूपेके, सुवर्णके. चावल धवला सरसव प्रमुख अक्षतों करकें अष्टमगल आलेखन करे, जैसें सेनिकराजा रोजकी रोज एक सौ आठ सोनेके यवा करी त्रिकाल भगवान्की प्रतिमा आगें साथीया करता था, अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी आराधनाके वास्ते. क्रमसें पट्टादिकमें चावलोंके तीन पूंज करणे, तथा एक भातप्रमुख अशन. दूसरा सकर गुडादि पान, तीसरा पकवान्न फलादि खादिम, चौथा तंबोलादि स्वा दिम, इनका चढानां, तथा गोशीर्ष चदनके रस करी पंचांगुली तलेसें मंडी ल आलेखनादि पुष्पप्रकर, आरती प्रमुख करणी, यह सर्व अग्रपूजाकी गिणतीमें है ॥ यद्भाष्यं ॥ गाथा ॥ गंधव नट्ट वाइय, लवण जलारत्तिआइ दीवाई ॥ ज किच्च सव्वंपितं, अरई अग्ग पूआए ॥१॥ नैवेद्यपूजा तो दिन दिन प्रत्यें करणी सुखाली है, अरु इसमें फलभी मोटा है. कोरा अन्न सालीत तथा रांधा हूआ चढावे. लौकिक शास्त्रोमेंभी लिखा है ॥ श्लोक ॥ धूपोदह ति पापानि, दीपोमृत्युविनाशकः ॥ नैवेद्य विपुलं राज्यं, सिद्धिदात्री प्रदक्षि णा ॥ २ ॥ नैवेद्यका चढानां, आरति करणी प्रमुख आगममेंभी लिखा

ग, "कीरइ बलि" ऐसा पाठ आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा निशीथचूर्णी मेंनी बलि चढानी लिखी है, तथा कल्पनाष्यमेंनी लिखा है, कि जो जिन प्रतिमाके आगें चढाने वास्ते नैवेद्य करा है, सो साधुकों न कल्पे, तथा प्रतिष्ठाप्राभृतसें रची श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठापद्धतिमेंनी लिखा है, कि आरति उतारणी, मंगलदीवा करकें पीछें चार स्त्री मिल कर नैवेद्य, गीतगान, विधिसें करे ॥ तथा च माहानिशीथे तृतीये अध्ययने ॥ अरिहंताणं नगवंताणं गंध मल्ल पइव समज्जणोवलेवण विचित्त बलि वत्थ धूवईएहिं पूआ सक्कारेहिं पइदिणमब्भणंपि कुवाणा तित्थुपणं करेमोत्ति ॥ इति अग्रपूजा ॥

नावपूजा जो है, सो इव्यपूजाका जो व्यापार है, तिसके निषेधने वास्ते तीसरी निस्सही तीन वार करे. श्रीजिनेश्वरजीके दक्षिणके पासे पुरुष अरु वामी दिशा स्त्री रह कर आशातना टालने वास्ते जघन्य मंदिरमें नूमिके संनव हूए नव हाथ प्रमाण अरु घर देहरेमें जघन्य एक हाथ प्रमाण अरु उत्कृष्टसें तो साठ हाथ प्रमाण अवग्रह है, तिस्से बाहिर वैठकें चैत्यवंदना, विशिष्ट काव्यों करकें करे, श्रीनिशीथमे तथा वसुदेवहिंममें तथा अन्यशास्त्रोंमें श्रावकोंनेनी कायोत्सर्ग थुइ आदि करी चैत्यवंदना करी है, सो चैत्यवंदनानी तीन तरेकी नाष्यमें कही है, सो कहते हैं एक तो जघन्य चैत्यवंदना, सो अंजलि बांध कर शिर नमा कर प्रणाम करणा, यथा 'नमो अरिहंताण' इति. अथवा एक श्लोकादि पढकें नमस्कार करणी, अथवा एक शक्रस्तव पढे, तो जघन्य चैत्यवंदना होवे. दूसरी मध्यम चैत्यवंदना, सो चैत्यस्तवदंमक युगल 'अरिहंत चेइयाण' इत्यादि कायोत्सर्गके पीछें एक स्तुति कहनी, यह मध्यम चैत्यवंदन है, अरु तीसरा उत्कृष्ट चैत्यवंदन सो पंचदंम, जो १ शक्रस्तव, २ चैत्यस्तव, ३ नामस्तव, ४ श्रुतस्तव, ५ सिद्धस्तव, प्रणिधान, जयवीयराय, इत्यादि यह सर्व उत्कृष्ट चैत्यवंदना है. तथा कोइ आचार्यका ऐसा मत है कि.— एक शक्रस्तव करी जघन्य चैत्यवंदना होती है, दो तीन शक्रस्तव करी मध्यम चैत्यवंदना होती है, तथा चार अथवा पांच शक्रस्तव करी उत्कृष्ट चैत्यवंदना होती है, इसकी विधि चैत्यवंदननाष्यसे जान लेनी. यह तीन प्रकारकी चैत्यवंदना कही.

अब यह चैत्यवंदना नित्यप्रत्यें सात वार करणी. महानिशीथमें साधुकों

कही है, तथा श्रावककोंभी उत्कृष्ट सात वार करणी कही है ॥ यतः ॥ एक प्रतिक्रमणेमे, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिलां करणी, चौथी दिवसचरिमं करतां, पांचमी देवसी पडिक्कमणेमें, छठी सोती वखत, सातमी सूता उठे उस वखत. यह सात वार चैत्यवंदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आगों प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्चयें सात वार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणेमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोतां वखत, चौथी ऊठतां वखत, तथा तीन काल पूजा करणां पीछे, तीन वार, एवं सात वार श्रावक चैत्यवंदन करे,तथा जो श्रावक एकही वार पडिक्कमणां करे, सो छ वार चैत्यवंदन करे, तथा जो पडिक्कमणां न करे, सो पांच वार चैत्यवंदन करे, तथा जो सूतां ऊठतांभी चैत्यवंदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तदा सातसे अधिकभी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, किः—जिसको गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसकों प्रथम ऐसा नियम देवे किः—सवेरेको वखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे विना पाणीभी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) अरु साधुओकों वंदना न करे, तहां तक भोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे विना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे.

तथा गीत, नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे हैं, सो भावपूजामेंभी बन सके है. सो गीत, नृत्य,मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक आप करे, जेसें निशीथचूर्णीमें उदायनराजाकी राणी प्रभावतीका कथन है. तथा पूजा करणेके अवसरमें श्रीअर्हंतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें स्नान करती वखत छद्मस्थ अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोभा करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यंकासन कायोत्सर्गासन देखकें सिद्धावस्थाकी कल्पना करे, इसमें छद्मस्थ अवस्था तीन तरेकी कल्पे, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणेकी अवस्था. तहां स्नानकी वखत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माला, फूल, आभरण, पहिरनेकी वखत, राज्यावस्था कल्पे, तथा दाढी, मूछ, शिरके वालोंके न होनेसें साधु अवस्था विचारे, इनमें साधु, केवली मोक्ष अवस्थाकों वंदना करे.

तहां पूजा पंचोपचार सहित,अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, त
दा सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसें पूजा
करे, सो पंचोपचार पूजा जाननी. तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नै
वेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी म
थने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आनूषणादिक, फल, दीप,
गीत, नाटक, आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है इति बृहद्भाष्ये॥

तथा पूजाके तीन नेद हैं. एक आपही कायासें पूजाकी सामग्री ल्यावे,
दूसरी वचनो करकें दूसरोंसें मंगवावे, तीसरी मन करके नला फूल फल
प्रमुख करी पूजा करे, ऐसें काया, वचन अरु मन, यह तीनो योगों कर
कें करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरेंसें पूजा है.

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी थुइ, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वी
तरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारे पूजा, यथा शक्तिसें करे. ल
लितविस्तरादिक ग्रंथोमें "पुष्पामिषस्तोत्र प्रतिपत्ति" अर्थात् फूल, नैवेद्य,
स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्याग
मोक्तं पूजानेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक इव्यपूजा, दूसरी नावपूजा, जो फूला
दिकसें जिनराजकी पूजा करणी, सो इव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी
आज्ञा पालनी, सो नावपूजा है. तथा पुष्पारोहणं गंधारोहणं इत्यादि स
त्तरह नेदसें तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश नेदें पूजा है, परंतु अंगपूजा,
अग्रपूजा अरु नावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अंतर्नाव है, ति
नमें सत्तरह नेद, पूजाके लिखते हैं.

एक १ स्नात्र करना, जिनप्रतिमाकों विलेपन करनां, २ चक्षुजोडा,
वास सुगंध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगे फूल च
ढाने, ६ वरास नीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढाना, ७ आनरण चढाने, ८
फूलोंका घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करनां, १० आरति, मं
गल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपक्षेप, १३ नैवेद्य, १४ शुनफल
ढोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणां, १७ वाजत्र. यह सत्तरह नेदों
करि पूजा है. अथ पूजाके एकवीश नेद लिखते है.

तहां प्रथम तो पूजा करणेकी विधि लिखते है, १ पूजा करने वाला पू

कही है, तथा श्रावककोंनी उत्कृष्ट सात वार करणी कही है ॥ यद्भाष्यं ॥ एक प्रतिक्रमणेमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिलां करणी, चौथी दिवसचरिमं करतां, पांचमी देवसी पडिक्कमणेमें, छठी सोती ब खत सातमी सूता उठे उस वखत. यह सात वार चैत्यवंदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आगें प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो नि श्चयें सात वार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणेमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोतां वखत, चौथी ऊठतां वखत, तथा तीन काल पूजा कर्यां पीछें, तीन वार, एवं सात वार श्रावक चैत्यवंदन करे,तथा जो श्रावक एकही वार पडि क्कमणा करे, सो छै वार चैत्यवदन करे, तथा जो पडिक्कमणां न करे, सो पांच वार चैत्यवदन करे, तथा जो सूतां ऊठतांभी चैत्यवंदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमदिर होवे, तदा सातसें अधिक भी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, किः—जिसकों गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसकों प्रथम ऐसा नियम देवे कि—सवेरेको वखत जिन प्र तिमाका दर्शन करे विना पाणीभी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) अरु साधुओंकों वंदना न करे, तहां तक भोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे विना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे.

तथा गीत, नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे हैं, सो भावपूजामेंभी बन सके हैं. सो गीत, नृत्य,मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक आप करे, जैसें निशीथचू र्णीमें उदायनराजाकी राणी प्रभावतीका कथन है. तथा पूजा करणेके अवसरमें श्रीअर्हंतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें स्नान करती वखत छद्मस्थ अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोभा करता केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यंकासन कायोत्सर्गासन दे खकें सिद्धावस्थाकी कल्पना करे, इसमें छद्मस्थ अवस्था तीन तरेकी कल्पे, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणेकी अवस्था. तहां स्नानकी वखत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माला, फूल, आभरण, पहिरा नेकी वखत, राज्यावस्था कल्पे, तथा दाढी, मूछ. शिरके वालोंके न होनेसें साधु अवस्था विचारे, इनमे साधु, केवली मोक्ष अवस्थाकों वंदना करे.

तहां पूजा पंचोपचार सहित,अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, तो सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसें पूजा करे, सो पंचोपचार पूजा जाननी. तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी मथने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आनूषणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक, आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है. इति वृहद्भाष्ये॥

तथा पूजाके तीन नेद है. एक आपही कायासें पूजाकी सामग्री ल्यावे, दूसरी वचनो करकें दूसरोंसें मंगवावे, तीसरी मन करके नला फूल फल प्रमुख करी पूजा करे, असें काया, वचन अरु मन, यह तीनो योगों करकें करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरेंसें पूजा है.

- तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी थुइ, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वीतरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारें पूजा, यथा शक्तिसें करे. ललितविस्तरादिक ग्रंथोमें "पुष्पामिषस्तोत्र प्रतिपत्ति" अर्थात् फूल, नैवेद्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्यागमोक्तं पूजाभेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक द्रव्यपूजा, दूसरी नावपूजा, जो फूलादिकसें जिनराजकी पूजा करणी, सो द्रव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पालनी, सो नावपूजा है. तथा पुष्पारोहण गंधारोहणं इत्यादि सतरह नेदसें तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश नेदें पूजा है, परतु अंगपूजा, अग्रपूजा अरु नावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अंतर्नाव हैं, तिनमें सत्तरह नेद, पूजाके लिखते है.

एक १ स्नात्र करनां, जिनप्रतिमाकों विलेपन करनां, २ चक्षुजोडा, वास सुगंध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगें फूल चढाने, ६ बरास नीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढानां, ७ आनरण चढाने, ८ फूलोंका घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करनां, १० आरति, मंगल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपक्षेप, १३ नैवेद्य, १४ शुनफल ढोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणां, १७ वाजत्र. यह सत्तरह नेदों करि पूजा है. अथ पूजाके एकवीश नेद लिखते हैं.

तहां प्रथम तो पूजा करणेकी विधि लिखते है, १ पूजा करने वाला पु

वैदिशकी तर्फ मुख करकें स्नान करे, २ पश्चिम दिशकों मुख करके दातण करे,३ उत्तरदिशाके सन्मुख श्वेत वस्त्र पहिरे,४ पूर्वोत्तर मुख करके पूजा करे, ५ घरमें प्रवेश करतां वामे पासें शल्य रहित नूमिमें देहरासर करावे, ६ मेढ हाथ नूमिकासे ऊंचा देहरासर करावे, जेकर देहरासर नीची नूमिकामें करावे, तब तिसका संतान दिन दिन नीचा होता जावेगा, ७ दक्षिणदिशि तथा विदिशिके सन्मुख मुख न करे, ८ घर देहरेमें पश्चिम सन्मुख मुख करकें, पूजा करे, तो चौथी पेढीमें संतानोच्छेद होवे, ९ दक्षिण दिशिकी तर्फ मुख करी करे, तो संतान हीन होवे, १० अग्निकूणे करे, तो धन हानी होवे, ११ वायुकूणे करे, तो संतान न होवे. १२ नैरुत्यकूणे कुलक्षय होवे, १३ ईशानकूणे करे, तो एक जगे रहणां न होवे, १४ दोनो पग, दोनो जानु, दोनो हाथ, दोनो स्कंध, मस्तक, ये नव अंगमें क्रमसें पूजा करे, १५ चंदन विना पूजा नही होती है, १६ मस्तकमें, कंठमें, हृदयमें, पेटमें, तिलक करे. १७ नव अंगमें, नव तिलक करकें निरंतर पूजा करे, १८ सवेरे पहिलां वास पूजा करे, १९ मध्यान्हमें फूलोंसे पूजे, २० संध्याकों धूप, दीप, करकें पूजा करे, २१ जो फूल, हाथसे धरतीमें गिर पडे, तथा पगोंकों लग जावे, तथा जो मस्तकसे ऊंचा चला जावे, तथा जो मैले वस्त्रसें रक्खा होवे, तथा जो नाभीसे नीचे रक्खा होवे, तथा जो दुष्ट जनोने स्पर्शा होवे, जो बहुत ठेकाणोंमे हत होवे, जो जीवोने खाया होवे, ऐसा फूल, फल, नक्त जनोनें जिनपूजामें नही रखनां, २२ एक फूलके दो टुकडे न करे, २३ कलीको छेदे नही, चपक, उत्पल, फूलके नागनेसें वडा दोष है, २४ गंध, धूप, अक्षत, फूलमाला, दीपक, नैवेद्य, पाणी, प्रधानफल, इनों करकें जिनराजकी पूजा करे, २५ शांतिककार्यमें श्वेत वस्त्र पहिरके पूजा करे, २६ द्रव्यलाभके वास्ते पीत वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २७ शत्रु जीतने वास्ते काले वस्त्र पहिरके पूजा करे, २८ मांगलिककार्य वास्ते लाल वस्त्र पहिरके पूजा करे, २९ मुक्तिके वास्ते पांच वर्णके वस्त्र पहिरकें पूजा करे, ३० शांति कार्यके वास्ते पंचामृतका होम, दीवा, घी, गुड, लवणका अग्निमे प्रक्षेप, शांति पुष्टिके वास्ते जाननां. ३१ फाटा हूआ,जोडा हूआ, छिद्र वाला, काटा हूआ, जिसका रक्तवर्ण नयानक, ऐसें वस्त्र पहिरकें दान, पूजा, तप, होम अरु सामायिक प्रमुख करे, तो

होवे. ३२ पद्मासन वैठकें,नासाग्र लोचन स्थापन करकें मौन धारी मुखकोश करके जिनराजकी पूजा करे.

अथ इक्कीस प्रकारकी पूजाका नाम लिखते हैं १ स्नात्रपूजा, २ विलेपन पूजा, ३ आनरण पूजा, ४ फूल, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर,१६ छत्र, १७ वाजिंत्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ नंमारवृद्धि यह एकवीश प्रकारकी पूजा है.जो वस्तु बहुत अछी होवे, सो जिनराजकी पूजामें चढानी चाहिये ॥ इति ॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमें प्रसिद्ध है.

तथा ईशानकूणमें देवघर बनानां, यह वात विवेकविलासमें है, तथा विषमासन वैठकें, पग उपर पग धरकें, उकडुआसन वैठकें, वामा पग उंचा करकें तथा वामे हाथसें. इतने करिकें पूजा न करे, सूके हूए फूलों सें पूजा न करें, तथा जो फूल धरतीमें गिरा होवे, तथा जिसकी पांखडी सड गइ होवे, नीच लोकोंका जिसकों स्पर्श हूआ होवे, जो शुन न होवे, जो विकसे हूए न होवे, जो कीडेने खाये हूए, सडे हूए, रातकों वासी रहे, मकडीके जाले वाले, जो देखनेमें अछे न लगे, डुर्गंधवाले, सुगंधरहित, खट्टी गंधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न हूये होवे, अपवित्र करे हूए, असें फूलोंसें जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी. तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, अरु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पाच कुसुमाजलि चढावे, पीछें नगवान्‌की पूजा करे, तहा यह विधि करे, सो कहते है.

प्रनात समय पहिला निर्माल्य उतारे, पीछें प्रक्षाल करे, संक्षेपसें पूजा करे, आरति मगल दीवा करे, पीछें स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी वार पूजाका प्रारंन करे, तव देवके आगे केसर जल संयुक्त कलश स्थापन करे, पीछें "मुक्तालंकार विका,र सार सौम्यत्वकातिकमनीय ॥ सहजनिज रूपनिर्जित, जगच्चयं पातु जिनविंवं ॥ १ ॥" यह आर्या कह कर अलंकार उतारे, पीछें " अवणयि कुसुमाहरणं, पयइ पइठिय मनोहर छाय ॥ जिणरूवं मज्जणपीठं, सतियं वो सिव दिसउ ॥ १ ॥ यह कह कर निर्माल्य उतारे, पीछें प्रागुक्त कलश ढालन पूजा करे, कलश धो कर, धूप दे कर,

चरणोंके आगें रख देनां, आरति वूजा देनेमें दोष नहीं, आरति अरु मंगल दीवा मुख्यवृत्तिसें घृत, गुड, कर्पूरादिकसें करे, विशेष फल होनेसें. यहां मुक्तालंकार इत्यादि जो गाथा है, सो श्रीहरिभद्रसूरिजीकी करी हूइ मा लुम होती है, क्योंकि श्रीहरिभद्रसूरिकृत समरादित्यचरित्र नामक ग्रंथकी आदिमे "उवणेउ मंगलेवो ॥ इति नमस्कारस्य दर्शनात्" अरु यह गाथा तपगछमें प्रसिद्ध है. इस वास्ते सर्व गाथा इहां नही लिखी.

स्नात्रादिकमें समाचारि विशेषसें विविध प्रकारकी विधि देखनेसें व्या मोह न करणा, क्योंकि सर्व आचार्योंकों अर्हद्भक्तिरूप फलकी सिद्धि वा स्तेही प्रवृत्त होनेसें गणधरादि समाचारीयोमेंभी बहुत भेद होता है, तिस वास्ते जो जो धर्मसें विरुद्ध न होवे, अरु अर्हत भक्तिका पोषक होवे, वो कार्य किसीकोंभी असम्मत नही, ऐसेंही सर्वधर्म कार्यमें जाण लेनां. यहां लवण, आरति प्रमुखका उतारणां, संप्रदायसें सर्व गछोंमें अरु परद र्शनोंमेंभी करते हुवे दीखते हैं, तथा श्रीजिनप्रभसूरिकृत पूजाविधिशास्त्रमें तो ऐसें लिखा है ॥ गाथा ॥ लवणाई उत्तारण,पालित्तय सूरिमाइ पुव्वपुरिसे हिं ॥ संहारेण अणुन्नयपि, सपयं सिद्धी एकारिज्जई ॥ १ ॥ अस्यार्थः— लवणादि उतारणां श्रीपादलिप्तसूरि प्रमुख पूर्व पुरुषोंनें एक वार करने की आज्ञा दीनी है, हम इसकालमे उनके अनुसारे कराते है. स्नात्रके करणेमें सर्व प्रकार विस्तार सहित पूजा प्रभावनादिकके करणेसे परलो कमें उत्कृष्ट मोक्ष प्राप्तिरूप फल होता है, जैसें चौसठ इंद्रोने जिनजन्म स्नात्र करा है, तिसहीके अनुसारें मनुष्य करते है, इस वास्ते इस लोक में पुण्य निर्जरा अरु परलोकमें मोक्ष फल होता है, यह कथन राजप्र श्नीय उपांगमें लिखा है ॥ इति स्नात्रविधिः समाप्तः ॥

अब प्रतिमाभी अनेक प्रकारकी है, तिनकी पूजाकी विधि सम्यक्त्व प्रकरणमें ऐसे कही है ॥ गाथा ॥ गुरु कारिआइ केइ, अन्नेसय कारिआई त विंति ॥ विहिकारिआइ अन्ने,पडिमाए पूअणविहाणं ॥ १ ॥ व्याख्याः— गुरु कहियें माता, पिता, दादा, पडदादा प्रमुख तिनकी कराइ हूइ प्रति मा पूजनी चाहियें कोइ ऐसें कहते है, तथा कोइ कहते हैं कि अपणी कराइ प्रतिष्ठी हूइ पूजनी चाहियें, कोइ कहते हैकि विधिसें कराइ प्रतिष्ठी प्रतिमा पूजनी चाहिये, इनमें यथार्थ पक्ष तो यह है, कि:— ममत्व रहि

सर्वप्रतिमाकों विशेष रहित पूजना चाहियें, क्योंकि सर्व जगे तीर्थंकर आकार देखनेसें तीर्थंकर बुद्धि उत्पन्न होती है, जे कर ऐसें न मानेंगे, तब जिनबिंबकी अवज्ञासें डुरंत संसारमें भ्रमण रूप उसकों निश्चही दंड होवेगा.

तथा ऐसाजी कुविकल्प न करणां किः— जो अविधिसें जिनमंदिर जिनप्रतिमा बनी है, उसके पूजनेसें अविधि मार्गकी अनुमोदनासें नगवतकी आज्ञाभंग रूप दूषण लगता है,तथाही श्रीकल्पभाष्ये ॥ गाथा ॥ निस्सकड मनिस्सकडे, चेइए सव्वहिं थुइतिन्नि ॥ वेलं च चेईआणिय, नाउं इक्कि किया वावि ॥ १ ॥ व्याख्याः— एक निश्राकृत उसकों कहते है, कि — जो गच्छके प्रतिबंधसें बनी है, जैसाकि यह हमारे गच्छका मंदिर है, दूसरा अनिश्राकृत; सो जिस उपर किसी गच्छका प्रतिबंध नहीं है, इन सर्व जिनमंदिरोंमें तीन थुइ पढनी, जे कर सर्वमंदिरोंमें तीन तीन थुइ देता बहुत काल लगता जाणे, तथा जिनमंदिर बहुत होवें, तदा एक एक जिनमंदिरोंमें एक एक थुइ पढे,इस वास्ते सर्व जैनमंदिरोंमें विशेष रहित भक्ति करे.

तथा जिनमंदिरमें मकडीका जाला लग जावे, तिसके उतारनेकी विधि, जिनके सपूर्द जिनमंदिर होवे, तिनकों साधु निर्भ्रछना करे, कि —जिनमंदिरकी नोकरी खाते हो, तो सार सभाल क्यों नही करते हो? मकडीका जालाभी तुम नहीं उतारते हो? तथा जिनकी कोइ सार सभाल न करे, तिनकों असंविग्न देवकुलिका कहते है, तिन मंदिरोंमें जो मकडीका जाला होवे, तिसके दूर करणे वास्ते सेवकोंकों प्रेरणा करे, कि तुम जिनमंदिरकों मखफलककी तरे चमक दमक वाला रखो, जेकर वे सेवक लोक न माने, तब निर्भ्रछना करे, पीछें साधु जयणासें आप दूर करे, क्योंकि जिनमदिर ज्ञानभंडारादिककी सर्वथा साधुभी उपेक्षा न करे, यह पूर्वोक्त चैत्यगमन पूजा स्नात्रादि विधि जो कही है, सो सब भगवान् श्रावककी अपेक्षा कही है, अरु जो श्रावक धनवान् न होवे, वो अपणे घरमे सामायिक करके किसीके साथ लेणे देणेका झगडा न होवे, तद्उपयोग संयुक्त साधुकी तरें ईर्या शोधता हूआ नैषेधिकी तीन करी जाव पूजानुयायि विसर्जावे, पूजादि सामग्रीके अभावसे द्रव्यपूजा करणे असमर्थ है, इस वास्ते सामायिक पारकें कायासें जो कुछ फूलगुंथनादिक कृत होवे सो करे.

प्रश्नः— सामायिक त्यागके द्रव्यपूजा करणी उचित नहीं?

उत्तरः— सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वखत कर लेवे, परंतु पूजाका योग उसकों मिलना दुर्लभ है, क्योंकि पूजाका मंमाण तो संघ समुदायके आधीन है, कदेइ होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष पुण्य है ॥ यदागमः ॥ "जीवाण बोहि लाभो, सम्मदिठीण होइ पिअकरणं ॥ आणाजिणिंदभत्ति, तित्थस्स पभावणा चेव ॥ १ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चैत्यकार्य करे, यह कथन दिनकृत्य सूत्रमें है, दश त्रिक, पांच अभिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वंदनकादि धर्मानुष्ठानका महाफल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसें करतां उपद्रवभी हो जाता है ॥ उक्तं च ॥ धर्मानुष्ठानवैतथ्या, त्प्रत्यवायो महान् भवेत् ॥ रौद्र दुःखौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिचौषधात् ॥ १ ॥ चैत्यवंदनादि अविधिसे करतां आगममें प्रायश्चित्त कहा है, महानिशीथके सातमे अध्ययनमें अविधिसें चैत्यवंदना करे, तो प्रायश्चित्त कहा है देवता, विद्या मन्त्रभी विधिसेंही सिद्ध होते है.

जो कोइ कहे कि विधि न होवे, तब न करणां श्रेष्ठ है? यह कहनां अयुक्त है ॥ यदुक्तं ॥ अविहिकया वरमकयं, असूया वयणं भणंति समयन्नू ॥ पायच्छित्तं अकए, गुरुअं वितहं कए लहुयं ॥ १ ॥ अस्यार्थः— अविधि करणेसे न करणां अच्छा है, ऐसें जो कहते है, सो असूया वचन है, यह कहने वाला जैन सिद्धांतकों जानता नही, क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता तो ऐसें कहते है, कि— जो न करे. उसकों गुरु प्रायश्चित्त आता है, अरु जो अविधिसें करे, उसकों लघु प्रायश्चित्त आता है, इस वास्ते धर्म जरूर करनां चाहियें. अरु विधिमार्गकी अन्वेषणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावंतका लक्षण है, सर्व कृत्य करके अविधि आशातना निमित्त, मिथ्यादुष्कृतं दातव्यं ॥

अंग अग्रादि तीनो पूजाके फल, शास्त्रमें ऐसें लिखे हैं, कि— विघ्न उपशांत करणेवाली अंग पूजा है, तथा मोटा अभ्युदय पुण्यकी साधने वाली अग्रपूजा है, तथा मोक्षकी दाता भावपूजा है, पूजा करने वाला संसार प्रधान भोग भोगके पीछें सिद्धपद पाता है, क्योंकि पूजा करणेसें

शांत होता है, अरु मन शांतसें उत्तम शुन ध्यान होता है, अरु शुनध्यानसें मोक्ष होता है, मोक्ष हूए अबाध सुख है.

तथा श्रीजिनराजकी नक्ति पांच प्रकारें है ॥ श्लोक ॥ पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्द्रव्यपरिरक्षणं ॥ उत्सवास्तीर्थयात्रा च, नक्तिः पंचविधा जिने ॥ १ ॥ द्रव्यपूजा आनोग अरु अनानोगसें दो प्रकारें है, तिसमें श्रीवीतराग देवके गुण जानके वीतरागकी नावना करकें आदर संयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आनोगद्रव्यपूजा है, इस्सें चारित्रका लान होता है, कर्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् असी पूजा अवश्य करे. तथा जो पूजाकी विधि जानता नही तथा श्रीजिनराजके गुणनी नहीं जानता सो दूसरी अनानोग पूजा है. यह शुनपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बोधिलानका हेतु है, पापक्षय करणेका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमे कालमें उसका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतरागके गुण नहींनी जानता, तोनी नक्ति प्रीतिका उल्लास उसके अंदर उठलता है, अरु जिस पुरुषकों अरिहंतबिंबमें द्वेष है, वो पुरुष नारीकर्मी तथा नवानिनंदी है, जैसें रोगीकों अपथ्यमे रुचि अरु पथ्यमे द्वेष होवे, तदा मरणका समय होता है, असेंही जिनबिंबमें जिसकों द्वेष है, तिसकानी दीर्घ संसार जाननां.

इहां सर्व जो नावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पालनां है, सो जिनाज्ञा दो प्रकारकी है, एक अंगीकार करणां, एक त्यागना, तहां सुकृतका अंगीकार करणां, अरु निषेधका त्याग करनां, परंतु स्वीकार पक्षसें परिहार पक्ष बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुकृत नी बहुत गुणदायक नहीं होता है, जेकर दोनों बातां होवे, तदा पूर्ण फल है, द्रव्यपूजाका फल अच्युत देवलोक है, अरु नाव पूजाका फल अंतर्मुहूर्त्तमें मोक्ष है.

द्रव्यपूजामें यद्यपि षट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोनी कूवेके दृष्टांत करकें गृहस्थकों करणे योग्य है, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोंको गिणती रहित पुण्यबंधनेका कारण होनेसें करने योग्य है.जैसें नवे गाममें स्नान पानादिके वास्ते लोक कूवा खोदते है, तिनकों प्यास, श्रम, अरु कीचडसें मलिनादि होते है, परंतु कूवेके जल निकलनेसें तिनकी तथा

औरोंकी तृषादि, पूराणा मैल, सर्व अगला पिछला दूर हो जाता है, अरु सर्वांगीण सुख हो जाता है, ऐसेंही द्रव्य पूजामें जान लेनां, यह कथन आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा और जगेभी लिखा है ॥ गाथा ॥ आरंभ पस त्ताणं, गिहीणछ जीव वह अविरयाणं ॥ भवअडवि निवडियाणं, दवछउं चेव आलवो ॥ १ ॥ श्लोक ॥ वृत्तं शार्दूलविक्रीडितं ॥ स्थेयोवायुचलेन निर्वृति कर निर्वाणनिर्घातिना, स्वायत्तं बहुनायकेन सुबहुस्वल्पेन सार पर ॥ निःसा रेण धनेन पुण्यममलंकृत्वा जिनाभ्यर्चनं, योगृह्णाति वणिक् स एव निपुणो वाणिज्यकर्मण्यलम् ॥ १ ॥ यास्याम्यायतनं जिनस्य लभते, ध्यायंश्चतुर्थं फलं, षष्ठं चोछितउद्यतोऽष्टममथो गंतुं प्रवृत्तोऽध्वनि ॥ श्रद्धालुर्दशम ब हिर्जिनगृहात्प्राप्तस्ततो द्वादशं, मध्ये पाक्षिकमीक्षते जिनपतौ, मासोपवासं फलम् ॥ २ ॥ पद्मचरित्रमे तो ऐसें लिखा है, कि १ जब जिनमंदिरमें जा नेका मन करे, तब एक उपवासका फल होता है, २ यदि उठे, तो बें लाका फल होता है, ३ चल पडनेका उद्यमीकों तेलेका फल होता है, ४ चल पडे. इनकूं चौलेका फल, ५ किंचित् गयेकूं पंचौलेका फल, ६ अर्द्ध मार्गमें गये एक पक्षके उपवासका फल होता है, ७ जिनराजके देखनेसें एक मासके तपका फल होता है, ८ जिनभुवनमें संप्राप्त हूए छमासी त पका फल होता है, ९ जिनमंदिरके दरवाजे पर स्थित हूआं एक वर्षके त पका फल होता है, १० जिनराजकों प्रदक्षिणा दीया सौ वर्षके तपका फल होता है, ११ पूजा करे हजार वर्षके तपका फल होता है, १२ स्तुति करे, अनंतगुणा फल होता है, १३ जिनमंदिर पूंजे, सौ गुणा पुण्य होता है, १ लींपे, तो हजार गुणा पुण्य होता है, १५ फूलमाला चढाये, लाख गुणा पुण्य होता है, १६ गीत वाजित्र पूजा करे, अनंतगुणा पुण्य होता है.

पूजा दिनप्रत्यें तीन संध्यामें करणी चाहियें ॥ यत ॥ जिनस्य पूजनं हंति प्रातः पापं निशाभव ॥ आजन्मविहित मध्ये, सप्तजन्मकृत निशि ॥ १ ॥ जलाहारोषधस्वाप, विद्योत्सर्गकृषिक्रिया. ॥ सत्फलाः स्वस्वकालेस्यु, रेवं पूजा जिनेश्वरे ॥ २ ॥ गाथा ॥ जिण पूआण तिसज, कुणमाणो सोहएव सम्मत्तं ॥ तिछयरनाम गोत्तं, पावई सेणीअ नरिंदुव ॥ १ ॥ जो पूएइ तिसंज, जिणंदराय सया विगय दोसं ॥ सो तईय भवे सिज्झई, अहवा सत्तठमे ज

॥ १ ॥ सव्वायरेण नयवं, पूईज्जंतोवि देवनाहेहिं ॥ नो होइ पूइउं खलु, त गुणो नयव ॥ ३ ॥ यह गाथा सुगम हैं.

तथा देव पूजादिकमें हृदयमें बहुमान अच्छी विधिसें नक्ति करे, तथा जिनमतमें चार प्रकारका अनुष्ठान कहा है, एक प्रीतिसहित, दूसरा नक्ति सहित, तीसरा वचन प्रधान, अरु चौथा असंग अनुष्ठान, तिनमें जिसके प्रीतिका रस वढे, अरु ऋजु नद्रक स्वनाव वाला होवे, जैसें बालकोंको रतनमें देखके प्रीति होती है. ऐसी जिसको प्रीति होवे, सो प्रीति अनुष्ठान है, तथा बहुमान सयुक्त शुद्ध विवेकवाला होवे, अरु वाकी शेष पहिले अनुष्ठानकी तरे करें, सो नक्ति अनुष्ठान है, यद्यपि स्त्रीका अरु माताका पालणां. पोषणा, सरीखा है, तोनी स्त्री उपर प्रीति राग है, अरु माता उपर नक्तिराग है, यह प्रीति अरु नक्तिका स्वरूप कह्या, तथा जो जिनगुणका जानकार, सूत्रोक्तविधि करकें जिनप्रतिमाको वंदना करे,सो वचनानुष्ठान है,यह अनुष्ठान चारित्रवंतकों निश्चय करके होता है, तथा जो अन्यासके रससें सूत्रालोचना विनाही फलमें निस्पृह हो कर करे, सो असंगानुष्ठान है. जैसें कुंनार चक्रकों पहिलां तो दंमसे फिराता है, पीछेसें दंम दूर करे, तोनी चाक फिरता है, यह दृष्टांत, वचनानुष्ठान अरु असंगानुष्ठानमें है.

इन चारोंमे प्रथम तो नावनाके लेशसें प्राय. बालक प्रमुखोंकों होता है, आगें अधिक अधिक जान लेनां. यह चारों प्रकारका अनुष्ठान बहुमान विधिसंयुक्त करे, तो रूपइयानी खरा अरु खरे सन समान, प्रथम नेद है. दूसरा जो पुरुप, नक्तिराग बहुमान संयुक्त होवे, अरु विधि जानता न होवे. तिसका कृत्य एकांत डुष्ट नहीं, अशठ पुरुपका अनुष्ठान अतिचार सहितनी शुद्धिका कारण है, क्योंकि जो रतन अंदरसे निर्मल है, उसका वाह्यमल सुखें दूर हो सकता है, यह रूपइया खरा,अरु सिक्का खोटा समान, दूसरा नेद है. तथा जो पुरुप, कपट जुगादि दोप संयुक्त है, अरु अपणी महिमा पूजाके वास्ते तथा लोकोंके ठगने वास्ते विधिपूर्वक नर्वानुष्ठान करता है, उसकों वडा अनर्थ फल होता है, यह रुपइया खोटा, अरु सन खरा समान, तीसरा नेद जानना. तथा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवका जो कृत्य है, सो तो रुपइयानी खोटा, अरु सननी खोटा समान, चौ

थाभेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु विधिपूर्वक करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गिर कर बिगड गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारकों निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोभा करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि चिंता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका सग्रह करे, विनाश न होवे, असी रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकी उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अछी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यके लाभ अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवद्रव्य देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नौकरकों भेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नही, तैसें करे,उघराणी वास्ते नौकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संभाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा स्वजनके बलसें, चिंता सुकर है अरु धन रहितको अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसें साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष तैसा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सहीसें पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. असेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादिककीभी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संभाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रावककों देवादि भक्ति सार संभालमें शिथिल नहोनां चाहियें, देव गुरु प्रमुखकी भक्ति, सेवा, सार संभाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी सम्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका भक्त है, उस्सें कदाचित् कोइ आशातनाभी हो जावे,तो भी अत्यंत दुखदायी नहीं, इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये कुंटुबे च,सर्व संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाभिलाषिणां॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि भेद करकें तीन प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, टीपणी, जपमालादिककों मुखको थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमे पठनादि, उपधान विना सूत्र पढनां, भ्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरना, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बैठना त्रि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीक पणा उपघात करे, उत्सूत्र भाषणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते है तहा जघन्य देवाशातना सो वास, बरास, केसर प्रमुखके रुव्वेकों वजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशा तना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूंकका लगाना, प्रतिमा कों भंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणा, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चोरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते है. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ भोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें भोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे. १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते है. १ मूतना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीना. ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन. सेवना ८ तंबोल खाना, ९ थूंकना, १० जूआखेलनां, ११ जूंआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ झगडा करे. १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विभूषा करे, २० शिर पर छत्र लगाना. २१ खड्ग रखे, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने, २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणा. २७

मुखकोश विना पूजा करणी, २० मैले शरीरसें मैले वस्त्रोंसें पूजा करणी. २ए पूजा करतां मन चपल करणां, ३० शरीरके जोगके सचित्त इव्यकों विना उतारे मंदिरमें जाना, ३१ अचित्तद्रव्य आनूपणादि उतारकें जावे, ३२ एकसाडीका उत्तरासग न करे, ३३ जगवान्कों देखकें हाथ न जोडे, ३४ शक्तिके हूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६ पूजा प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नहीं, ३० मंदिरके इव्यकी सार सजाल न करे, ३ए शक्तिके हूयेजी असवारी उपर चढ के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमे वडासें पहिलां चैत्यवंदन करे, जिनेंइजवनमें तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें आशातना टाले.

अब उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते है. १ जिनमंदिरमें खेल खंखार गेरे, २ जूए आदिककी क्रीडा करे, ३ कलह करे, ४ धनुष्यादि कला शिखे, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे. ७ तंबोलका उगाल गेरे, ० गाली देवे, ए दिसा मात्रा करे, १० हस्तादि अंग धोवे, ११ केश समारे, १२नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५ गुमडे आदिककी त्वचा गेरे, १६ औषधि खाकें पित्त गेरे, १७ वमन करे, १० दांत गेरे, १ए हाथ, पग, मसलावे, २० घोडादि बांधे, २१ दांतका मैल गेरे, २२ आखका मैल गेरे, २३ नखका मैल गेरे, २४ गालका मैल गेरे, २५ नाकका मैल गेरे, २६ माथाका मैल गेरे, २७ शरीरका मैल गेरे. २० कानका मैल गेरे, २ए जूतादिके खीलने वास्ते मंत्र साधे. अथवा राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाहादिक की पंचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम वाटके देवे, अथवा जाइ प्रमुखको धनका हिस्सा वाटके देवे, ३३ घरका जंमार मंदिरमें रक्खे, ३४ पगोपरि पग रखकें उत्कटासन करकें बैठे, ३५ मंदिरकी जींतसें गणा लगावे, गोबरका ढेर लगावे, ३६ वस्त्र सुकावे, ३७ दाल दले, ३० पापडवेली सुकावे, ३ए वडा बनावे, उपलक्षणसें कयर, चीनडां. शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, जाइ, लहणे वालेके जयसें नाठकें मूलगंजारेमे लुक जावे, ४१ पुत्रकलत्रादिके मरणोंसें मंदिरमे रोवे, ४२ स्त्रीकथा, जक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४३ बाण ईक्षुका गन्ना घडे, तथा धनुष्यादि शस्त्र घडे, ४४ गाय बैलादि मंदिरमें

रके, ४५ शीत दूर करणेकों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये रखे, ४८ विधिसें नैषेधिकी न करे. ४९ छत्र, ५० पगरखी, ५१ शस्त्र, ५२ चामर. यह चार, मंदिरके बाहिर न छोडे, ५३ मन एकाग्र न करे, ५४ तैलादिकका मर्दन करे, ५५ शरीरके जोगके सचित्त फूलादिकका त्याग न करे, ५६ हार, मुद्रा, कुंडलादि, तिनकों बाहिर छोड आवे, तो आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें अैसा कहनां हो जावे. कि अर्हतके भक्त सर्वे कंगाल भिक्षाचर हैं, अैसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ भगवान्कों देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासग न करे, ५९ मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मौलि शिरका लपेटना रखे, ६१ फूलका सेहरा रखे, ६२ नालियर आदिकका छोत गेरे, ६३ गेंदसें खेले, ६४ पिता प्रमुखकों जुहार करे, ६५ भाण्ड चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेकारा तुंकारा देवे, ६७ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६८ संग्राम करे, ६९ मस्तकके केश सुकावे, ७० पालठी मारी बैठे, ७१ काष्ठ पाडुकादि पगमे रखे, ७२ पग पसारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुडी देवावे. ७४ देहरमें शरीरका अवयव धोकें कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लगी हूइ धूल झाडे, ७६ मैथुन, (कामक्रीडा) करे, ७७ जूआ गेरे. ७८ भोजन जीमे, ७९ गुह्य चिन्ह ढकके न बैठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय रूप वाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाकें सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जलका मटका रखे, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी लेवे, ८४ स्नान करनेकी जगा बनावे, यह उत्कृष्ट चौरासी आशातना जिनमंदिरमें वर्जे.

अब गुरुकी तेत्तीस आशातना वर्जे, सो लिखते है. १ गुरुके आगें चले, तो आशातना है. जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशातना नही होती है, २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीछें अडके चले. यह जैसे चलनेकी तीन आशातना कही है, अैसेही बैठनेकीभी तीन आशातना जान लेनी. तथा खडा होनेकीभी तीन आशातना जान लेनी, यह सर्व नव आशातना हूइ १० भोजन करता गुरुसे पहिलां शिष्य चमु करे, ११ गमनागमन गुरुसे पहिला आलोचे. १२ रात्रिमें कौन जागता है, अैसें गुरुके कहेकों सुन कर जागता हूआभी शिष्य उत्तर न देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीकों कुछ कहनां होवे, तो गुरुसें

पहिलांही शिष्य कह देवे. १४ दूसरे साधुवोंके आगें पहिलां अशनादि आलोवे पीछें गुरु आगें आलोवे, १५ ऐसेही अशनादिक पहिलां दूसरे साधुवोंकों दिखाकें पीछें गुरुकों दिखावे, १६ अन्नादिककी पहिलां औरोंकों निमंत्रणा करके पीछें गुरुकों निमंत्रणा करे, १७ गुरुके बिना पूछे स्वेच्छासें औरोंको स्निग्ध मधुरादि आहार दे देवे, १८ गुरुकों य त्किंचित् अन्नादि दे कर पीछें यथेच्छासें स्निग्धादि आहार आप खावे, १९ गुरु बोलावें, तब बोले नही. २० गुरुकों बहुत कर्कश (कठोर)वचन बोले, २१ जब गुरु बोलावे, तब आसन उपर बैठाही उत्तर देवे, २२ गुरु बोलावे तब कहे, क्या कहते हो? २३ गुरुकों तुंकारा देवे, २४ गुरुने प्रेरणा करी तब गुरुकी प्रेरणाकों उत्तर करकें हणे, जैसें गुरु कहे कि.— हे शिष्य! तुमने ग्लानकी वैयावृत्य क्यों नही करी? तब शिष्य कहे कि तुम क्यो नही करते? २५ गुरुकथा कहते हूए मनमें प्रसन्न न होवे, किंतु विमन होवे, २६ सूत्रादि कहते गुरुकों कहे तुमकों अर्थ याद नही है? यह अर्थ ऐसें नही होवे है? २७ गुरु कथा कहता है, तिस कथाकों बीचमें छेद करे, अरु कहे, में कथा करुंगा? ऐसें कहे, २८ पर्षदाकों भांगे जैसें कहेकी अब तो भिक्षाका अवसर है, इत्यादि कहे, २९ पर्षदाके विना उठयां गुरुकी कही कथाकों अपणी चतुराइ दिखलाने वास्ते विशेष करके कहे, ३० गुरुकी शय्या संथारकादिकों पगोंसें संघट्टा करे, ३१ गुरुकी शय्यादि उपर बैठनादि करे, ३२ गुरुसें ऊंचे आसन उपरि बैठे, ३३ गुरुके बराबर आसन करे, यह तेत्तीस गुरुकी आशातना है.

ये गुरुकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है,एक पगादिसें संघट्टा करे,सो जघन्य आशातना,दूसरी श्लेष्म थूकादि गुरुके लवमात्र लगावे, तो मध्यम आशातना है, तीसरी गुरुका आदेश न करे, जेकर करे, तोभी उलटा करे, कठोर वचन बोले, गुरुका कह्या न सुणे, इत्यादि उत्कृष्ट आशातना है.

स्थापनाचार्यकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है, एक तो इधर उधर हलावें पगोंका स्पर्श करे, तो जघन्य आशातना,दूसरी भूमिमें गेरे,अवज्ञासें धरे, सो मध्यम आशातना, तीसरी स्थापनाचार्यको खोवे, तथा तोडे तो उत्कृष्ट आशातना है. ऐसेंही ज्ञानोपकरण, दर्शनोपकरण, तथा चारित्रोपकरण,रजोहरणादि,मुखवस्त्रिका. दंडक,दंडिका प्रमुखकीभी आशातना टाले.

श्रावककों सर्वधर्मोपकरण चरवला मुखवस्त्रिकादि विधि पूर्वक स्वस्था नमें स्थापना प्रमुख करणी चाहियें, अन्यथा धर्मकी अवज्ञादि प्रमुख दूषणोंकी आपत्ति होवे, शास्त्रमें लिखा हैकि जो उत्सूत्र भांखे, तथा अ र्हतकी अरु गुरुकी अवज्ञादि महा आशातना करे, तो सावद्याचार्य, मरी चे, जमाली, कुलवालिकादिककी तरें अनंत जन्म मरणकी वृद्धि होवे॥ यत॰ ॥ उस्सुत्त भासगाणं, बोहीनासो अणंत संसारो ॥ पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्तं ता न भासंति ॥ १ ॥ तिछयर पवयण सुयं, आयरियं गणहर म हड्ढियं ॥ आसायंतो बहुसो,अणंत संसारिउ होइ ॥ २ ॥ अस्यार्थः सुगमः ॥

ऐसेंही देव, ज्ञान. साधारण द्रव्यका तथा गुरुका द्रव्य, वस्त्र, पात्रादि कका विनाश तिनकी उपेक्षादिक जो करनी है, सोभी महा आशातना है. यदुक्तं ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्व विणासे,इ सिघाए पवयणस्स उड्डाहे ॥ संजई चउत्थभंगे, मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥ १ ॥ तथा श्रावकदिनकृत्य दर्शनशु द्धि आदि शास्त्रोंमेंभी लिखा है ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्वं साहा,रणं च जो दुहइ मोहिअमईउ ॥ धम्मं च सो न याणाइ, अहवा बद्धाउ उ नरए ॥ १ ॥ अर्थः– चैत्यद्रव्य तथा साधारण द्रव्य जो नाश करे, मोहितमति जातां वो धर्म नही जानता है, अथवा उसने नरकका आयु बांधा है, उसिके वास्तेही ऐसा अयोग्य काम करता है, तथा चैत्यद्रव्यका नाश, भक्षण, उपेक्षण कोइ करे, तिसकों जेकर साधु न हटावे, तो वो साधुभी अनंत संसारी हो जावे.

प्रश्न– मन, वचन अरु काया करके जिसने सावद्य त्यागा है, ऐसे यतिकों चैत्यद्रव्यकी रक्षामें क्या अधिकार है?

उत्तर.– जे कर राजा तथा वजीरकों याचना करकें तिनोके पाससें घर, हाट, गामादि लेकर विधिसें नवा पेदास उत्पन्न करे, तब तेरा विवक्षित दूषण होवेगा, परंतु यथा भद्रकादि करकें जो किसीने पहिलां दीया होवे. उसका नाश देखकें रक्षा करे, तब कोइ दूषण नहीं होता है. बल्किके जि नाज्ञाकी आराधना होनेसें धर्मकी पुष्टि होती है.

नवे जिनमंदिरके बनानेसे जो पूर्वे बना हूआ है उसके प्रतिपंथि अ र्थात् शत्रुकों जो साधु हटावे, तो वो साधुकों न प्रायश्चित्त है. तथा न वो साधुकी प्रतिज्ञा भंग होती है, आगमभी ऐसाही कहता है. इस वास्ते

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है.

॥ तथा ॥ आयणं जो भंजइ, पडिवन्नं धणं न देइ देवस्स ॥ नस्सं त स मुविरकइ, सोवि हु परिभमइ संसारे ॥ १ ॥ अस्यार्थः- जो पुरुष मंदिरकी आमदनी भागे, अरु जो मुखसे कह कर जिनद्रव्य न देवे,सोभी ससारमे भ्रमण करे ॥ तथा ॥ जिणवयण वुड्ढिकरं,पभावगं नाणदंसण गुणाण ॥ भकं तोजिणदव्वं, अणंत ससारीउ होइ ॥ १ ॥ अर्थः- जो जिनमतकी वृद्धि करे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणां, महापूजा सत्कारादि करके ज्ञान दर्शनकी प्रभावना करे, परतु जिनद्रव्यका नाश करे. तो अनंत संसारी होवे, अरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, देवद्रव्यकी वृद्धि करे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे. परतु पंदरा कर्मादान, खोटा वणिज्य व र्जके सद् व्यवहार करकें जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यत ॥ जिणवर आणा रहियं, वद्धारंतावि केवि जिणदव्वं ॥ वुड्डंति भवसमुद्दे, मूढा मोहेण अन्ना णी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है

कोइ कहते हैं किश्रावक विना औरोकों अधिक गहना रखकें कालांतरमें व्याजकी वृद्धि करे,सो उचित है, ऐसा कहनांभी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पच्चीसी आदिक ग्रंथोंमें सकाशकी कथामे तैसेंही लिखा है. चैत्यद्रव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते है, सागर श्रेष्ठीवत् यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी. ज्ञान द्रव्यभी देव द्रव्यकी तरें अकल्पनीय है, अर्थात् नाश करना, भक्षण करनां, विगडतेकी सार संभाल न करणी ऐसेंही सा धारण द्रव्यभी संघका दीया हूआही कल्पता है, विना दीया काममें लानां न कल्पे, संघकोंभी सात क्षेत्रमेंही साधारण द्रव्य लगानां चाहिये, मं गने वालोंको उसमेंसें देनां न चाहिये, ऐसीही ज्ञान संबंधी कागज पत्रादि साधुका दीया हूआ श्रावकनें अपणे कार्यमे नही लगाना, अपणी पोथीमेंभी न रखना, स्थापनाचार्य अरु जपमालादि ले, लेनेका व्यवहार तो दीखता है, तथा गुरुकी आज्ञा विना साधु साध्वीकों लिखारी पासें लि खाना अरु वस्त्र सूत्रादिकका लेनांभी नही कल्पता. इत्यादि विचार लेना, तिस वास्ते थोडासाभी ज्ञान अरु साधारण द्रव्यका भोग न करनां चाहियें.

जो देवके नामका बोले, सो द्रव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवद्रव्य जितना शीघ्र देवे, उतना अच्छा है, कदापि विलंब करे, तो पीछे क्या जाने धनहानि मरणादि होवे? तदा देवद्रव्यका ऋण रहजाये, और संसारीका देनाभी श्रावककों शीघ्र दे देनां चाहिये, तो फेर देवद्रव्यका क्या कहनां है? जिस वखत माला पहराइ तथा और कुछ द्रव्य देवके भंडारेमें देनां करा, उसी वखतसें वो देव द्रव्य हो चूका, उस द्रव्यसें जो लाभ होवे, सोभी देवद्रव्य है. उस द्रव्यकों श्रावकने भोगनां नही, इस वास्ते शीघ्र दे देनां चाहिये, जे कर मासादिक पीछे देनेका कौल करे, तदा करार उपर विना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघकें देवे, तो देवद्रव्य खायेका दूषण है. देवद्रव्यकी उगराहीभी श्रावक अपणी उगराहीकी तरें यत्नसें करे, जेकर देवद्रव्य लेनेमें ढील करे, अरु कदाचित् दुर्भिक्ष दरिद्रादि अवस्था आ जावे, तो फेर मिलना दुष्कर हो जावे, तथा देनेवालाभी उत्साह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे, नहीं तो देवद्रव्यभक्षणका दोष है.

तथा देव ज्ञान साधारण संबंधी हाट, खेत, वाडी, पाषाण, ईंट, काष्ठ, वांस, मिट्टी, खडीया, चदन, केसर, बरास, फूल, फूलचंगेरी, धूपपात्र, कलश, वासकूंपी, छत्रसहित सिंहासन, चमर, चंद्रोदय, झालर, भेरी, चानणी, तंबू, कनात, पडदे, कंबल, चौकी, तखत, पाटा, पाटी, घडा, वडा उरसा, कज्जल, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाला, प्रनालादिकका पाणी, ये सर्व पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममें न वर्त्तनी चाहियें, टूट फूट मलीनादि हो जावे, तो महापाप होवे, देव आगें दीवा बालकें उस दीवेके चानणेमें कोइ सांसारिक काम करे, तो मरके तिर्यंच होवे, उस वास्ते देवके दीवेसें खतपत्र भी न वाचनां चाहिये, रूपकभी न परखणा, घरका कामभी देवके दीवेमें न करणा, तथा देवके चदन. केसरसें तिलक न करे. देवके जलसे हाथ न धोवे. स्नात्रजलभी थोडासा लेनां चाहिये. तथा देवसंबंधी झल्लरी, मृदंग, भेरी प्रमुख गुरुके तथा संघके न वजावे. जे कर कोइ देवके उपकरण झल्लरी आदिकसें कोइ कार्य करना होवे तो बहुत निकराणा देव आगे रखके लेवे, कदाचित् कोइ उपकरण टूट जावे, तब अपणा धन खरचकें नवा बनवावे, देवका दीवा लालटैन (फानूस) प्रमुखमें जुदाही राखे,

तथा साधारण द्रव्यसें जो ऊखरी प्रमुख बनावे, तब तो सर्वधर्म कार्यमें वर्त्ते, तो दोष नही जैसें न्यावोंसें करे, सोई प्रमाण है.

देवका तथा ज्ञानका घरादिकभी श्रावककों निःशूकतादि दोष होनेसे भाडे लेनां न चाहियें.साधारण संबंधि घरादिक संघकी अनुमतिसें लोक व्यवहार का भाडा दे कर वरते,तो दोष नही,परंतु भाडा करारके दिनमें स्वयमेव दे देवे, उस मकानके समरानेमें जो धन लगे. तिसकों भाडेमें गिन लेवे, तो दोष नही. अरु जो साधर्मी संकट (निर्धनपणेसें दुःखी) होवे, वो संघकी आज्ञासें विना भाडे दीयांभी रहे, तो दोष नही तथा तीर्थादिकमें अरु देहरेमें जो बहुत काल रहनां पडे, वहां सोवे. तो तहांभी लेखे अनुसार अधिक भाडा दे देवे, थोडा देवे. तो दोष है. भाडा विना दीयां देव, ज्ञान, साधारण संबंधी वस्त्र नालियर सोने रूपेकी पाटी. कलश, फूल, पक्वान्न, सुखडी प्रमुख उजमणेमें, पुस्तक पूजामें, नंदी मांडनेमें,न मेलनी चाहियें, क्योंकि उजमणादि तो उसनें अपणे नामका करा है फेर देव. ज्ञान, अरु साधारण संबंधी पूर्वोक्त वस्तु भाडे विना वर्त्ते, तो स्पष्ट दोष है.

तथा घर देहरेमें अक्षत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके वेचनेसें जो धन होवे, तिसके लीये फूलादिककों घर देहरेमें न चढावे, तथा पंचायती बडे मंदिरमेंभी आप न चढावे, पूजारी आगें सर्व स्वरूप कहे कि यह मंदिरही का द्रव्य है, परंतु मेरा नही, पूजारी न होवे, तो संघ समक्ष कह देवे; अैसें न कहे, तो दूषण है घर देहरेका नैवेद्यादि मालीकों देवे, परंतु वो मालीकी नौकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलांही सामग्री नौकरीमें ठेणी कर लेवे, तो दोष नहीं मुख्यवृत्तिमे तो नौकरी चढावेसें अलग देनी चाहियें.

घर देहरेके चढे हूए चावलादि बडे मंदिरमे भेज देवे. अन्यथा घर देहरेके द्रव्यसें घर देहरेकी पूजा होवेगी, नतु स्वद्रव्य करकें होवेगी, तब अनादर अवज्ञादि दोष है, अैसा करणा युक्त नहीं, क्योंकि स्वद्रव्यसेंही पूजा करणी उचित है, तथा देहरेका नैवेद्य अक्षतादि अपणे धनकी तरें रखने चाहिये, पूरे मूलासें वेचकें देव द्रव्यकों वधारनां चाहिये, परंतु जैसें तैसें मोलसे न जाने देवे, नहीं तो देवद्रव्यके नाश करेका दूषण लग जावेगा

तथा सर्व तरें रक्षा करतांभी चौर, अग्नि. आदिकके उपद्रवसें देवद्रव्य नष्ट हो जावे, तो चिंता कारकको दोष नही.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रजावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसें लेवे, फेर खरचनेके अवसरमें जी गुरु संघादिकके आगें प्रगट कह देवे, कि यह धन मैने अमुकका दीया खरचा है, परंतु मेरा नही है.

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमे दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर किसीने धर्म खरचमें धन दीया होवे, तब तिसका प्रगट नाम ले कर सर्व समक्ष न्याराही खरच करनां चाहियें, यदा बहुते मिल कर यात्रा साधर्मिवात्सल्य संघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नही तो पुण्यफलकी चोरी लगे.

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करनां कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करनां माने, सो बहुत श्रावकादिकोंके आगें कहना चाहियें, जैसें मैं तुमारे नामसें इतने दिनोके बीचमें इतना धन खरचुंगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीछें, सो धन सर्व समक्ष अपणे नामसें नहीं, किंतु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देना चाहियें, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करकें तो साधारण द्रव्यहीका करनां चाहियें, क्योंकि जहा जहां काम पडे, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जोनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचकें तिसकों उपष्टंज देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोजी उसकों उसी धनसें उपष्टंज देवे, लोकेप्युक्तं ॥श्लोक॥ दरिद्रं भर राजेंद्र,मा समृद्धं कदाचन ॥ व्याधितस्यौषधं पथ्यं,नीरोगस्य किमौषधं ॥ १ ॥ इसी वास्ते प्रजावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लमुंजननादिकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनकों विशेष वस्तु देनी चाहिये, अन्यथा धर्मावज्ञादि दोष होवे. यह बात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनको अधिक वस्तु देनी चाहियें, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोको बराबर देवे.

अपणा खरच धर्मद्रव्यसें न करणा, यात्रादिकके निमित्त जो धन कादे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया. जे कर वो द्रव्य अपणे जोजनमें अथवा गाडी आदिकके जाडेमें लगावेगा, तब जरूर उसकों देवद्रव्य खा

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करकें चूकिकें वे समझीसें इत्यादि का रणोसें कोइ श्रावकादि देवादि द्रव्यका उपनोग कर लेवे, तो तिसके प्राय श्चित्तमें जितना द्रव्य खाया होवे, उतना द्रव्य देव साधारण संबंधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अनावसें धर्मस्थानमें थोडाही खरचे, परंतु देणा किसीका न रखे, देवादि द्रव्य तो विशेष करकें न रखे, इसी रीतिसें श्री जिनराजजीकी पूजा दृढनावोंसें करनी चाहियें॥ इति संक्षेपतो जिनेश्वर परमेश्वर पूजनविधिः संपूर्णः॥

अब गुरु वंदनाकी विधि लिखते है,जो ज्ञानादि पांच आचार करकें संयुक्त होवे, और शुद्ध प्ररूपक होवे, सो गुरु है, पांच आचारका स्वरूप देखनां होवे, तदा श्री रत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप ग्रंथ देख लेनां.

यह पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वे अपणे आप करा था, सो विशेष करकें विधि पूर्वक गुरु मुखसे उच्चरावे. क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरेंसें करा जाता है, एक आत्मसाक्षिक, दूसरा देवसाक्षिक, तीसरा गुरुसाक्षिक, तिसकी विधि यह है, कि—

मंदिरमें देववंदनार्थे, स्नात्रादि देखनेके अर्थे. धर्मोपदेश देनेके अर्थे, गुरु जिनमंदिरमें आया होवे, तथा वस्तिमें होवे. तहां मंदिरकी तरें तीन निस्सही पंचाजिगमनादि यथायोग्य विधिसें जा करकें गुरुके धर्मोपदेशसें पहिलां तथा पीछें, यथाविधिसें पंचवीश आवश्यक शुद्ध द्वादशावर्त्त वंदना देवे, वंदनाका बडा फल कहा है. कृष्णवासुदेववत्. तथा नाष्यमें वंदना तीन तरेंकी कही है, एक तो मस्तक नमावणादि सो फेटा वंदना, दूसरी संपूर्ण दो खमासमण पढनेसें स्तोनवंदना होती है, तीसरी द्वादशावर्त्त करनेसें द्वादशावर्त्त वंदना होती है. तिसमें प्रथम वंदना तो सर्व संघकों करणी दूसरी वंदना सर्व स्वदर्शनी साधुउंको करणी, अरु तीसरी वंदना जो है, सो पदवीधर आचार्यादिककों करनी.

जिसने सवेरेका पडिक्कमणां न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वंदना करणी, क्योंकि नाष्यमें असेही लिखा है १ नाष्योक्तविधि ईर्यापथप्रतिक्रमे २ पीछें कुस्वप्नका कायोत्सर्ग करे. सौ उच्छ्वास प्रमाण करे, जेकर स्वप्नमें स्त्रीसें संगम करा होवे. तदा अशुचिकी सर्व जगा धोके पीछें एक सौ आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, ३ पीछें चैत्यवंदन करे, ४ पीछें क्ष

माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे, ५ पीछें दो वंदना देवे, ६ पीछें दे वसिआदिक आलोवे, ७ फेर वंदना दो देवे, ८ पीछें अंभुठिउमि कहे, ९ पीछें दो वंदना करे, १० पीछें प्रत्याख्यान करे, ११ पीछें भगवन् अहं इत्यादि चार क्षमाश्रमण देवे, १२ पीछें स्वाध्याय संदिसावउं कहे, फेर क्षमाश्रमण पूर्वक सम्राय करूं, ऐसें कहे, पीछें स्वाध्याय करे, यह सवेरकी वंदनाविधि है.

तथा प्रथम १ ईर्यापथ पडिक्कमे, २ पीछें चैत्यवंदना करे, ३ पीछें क्षमाश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिकाका प्रतिलेखन करे, ४ पीछें दो वंदना करे, ५ पीछें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीछें दो वंदना करे, ७ पीछें देवसि आलोवं कहे, ८ पीछें दो वंदना करे, ९ पीछें अभुठिवं कहे, १० पीछें भगवन् इत्यादि चार स्तोभवंदना करे, ११ पीछें दैवसिक प्रायश्चित्तका कायोत्सर्ग करे, १२ पीछें पूर्ववत् दो क्षमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह संध्याकी वंदन विधि है.

जे कर किसी कार्य करणादिसें गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा संक्षेप मात्र वंदना करे, ऐसें वंदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञप्तिसूत्रमें लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणेके परिणाम दृढभी होवे, तोभी गुरुके पासों करावे, गुरु पासों प्रत्याख्यान करानेमें यह गुण है, सो लिखते है. १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करणां होता है, ३ कर्मका क्षय होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है.

ऐसेंही दैवसिक चातुर्मासिक नियमादिभी गुरुका संभव होवें, गुरु साक्षिकही करनां चाहियें, योगशास्त्रमें गुरुकी भक्ति ऐसें लिखी है ॥ श्लोक ॥ अभ्युत्थानं तदालोके. ऽभियानं च तदागमे ॥ शिरस्यञ्जलिसंश्लेषः, स्वयमासनढौकनं ॥१॥ आसनाभिग्रहो भक्त्या, वंदना पर्युपासनं ॥ तद्यानेऽनुगमश्चेति, प्रतिपत्तिरियं गुरौ ॥ २ ॥ अस्यार्थः— १ गुरुकों आता देखकें खडा हो जानां, २ सन्मुख लेने जानां, ३ मस्तक उपर अंजलि बांध कर प्रणाम करणां, ४ गुरुको आसन देनां, ५ जब गुरु आसन उपर बैठा जावेगा, तब मै आसन उपर बैठुंगा, ऐसा अभिग्रह लेवे, ६ भक्तिसें वंदना पर्युपासना करे, ७ जब गुरु जावे, तब पौहुंचाने जावे, ८ यह गुरुकी भक्ति है. तथा १ अडके गुरुके बराबर न बैठे, २ आगें न बैठे, ३ गुरुकी

तर्फ पीठ दे कर न बैठे, ४ पग उपर पग चढा करकें गुरुके पास न बैठे ५ पालठी मारकें न बैठे, ६ हाथोंसें जंघाकों लपेटके न बैठे, ७ पग पस रकें न बैठे, ८ विकथा न करे, ए बहुत हसे नहीं, १० नींद न लेवे, ११ मन वचन, काया गोप करकें हाथ जोडी नक्ति बहुमान पूर्वक उपयोग सहित सुणे क्योंकि गुरु पासों धर्म सुननेसें इस लोक परलोकमें बहुत गुण होता है.

तथा गुरुकों पूछे, किसी साधुकों रोगादि होवे, तदा वैद्यकों बोलाउं? औष धिका योग मिलाउं? इत्यादि गुरु गह्नकी सर्व तरेंसें खबर सार लेवे, नोजनके अ वसरमें उपाश्रयमें जा करकें साधुओंकों निमंत्रणा करे, तथा औषधि पथ्या दि जो जिसकों योग्य होवे, सो देवे, जब साधु, श्रावकके घरमे आवे, तब जो जो वस्तु साधुके योग्य होवे, सो सो सर्व वस्तुकों देने वास्ते निमंत्रणा करे, सर्व वस्तुओंका नाम लेवे, जेकर साधु नहींनी लेवे, तोनी दाताको जीर्णश्रेष्ठवत् पुण्य फल है. रोगी साधुकी प्रतिचर्या करणेंसें जीवानंद वैद्यवत् महापुण्य फल होता है. साधुओंके रहेनेकों स्थान देवे, तथा जिनशासनके प्रत्यनीककों सर्वशक्तिसें निवारण करे, तथा साधवीयोंकों दुष्ट, नास्तिक, कुशील ज नोंसें रक्षा करे, अपने घरके पास बंदोबस्त वाला गुप्त उपाश्रय रहनेकों देवे, उनोंकी अपणी स्त्री, वहू, बहिन, बेटी प्रमुखसें सेवा नक्ति करावे, अपणी बेटीयोंकों साधवीयोंसे विद्या शिखलावे, जेकर किसी बेटीकों वैरा ग्य चढे, तब साधवीयोंको दे देवे, जे कर कोइ साधवी धर्मकृत्य नूल जावे, तदा स्मरण करा देवे, जेकर कोइ साधवी अन्यायमें प्रवृत्त होवे, तो निवार ण करे, तथा आप रोज गुरुपासों नवीन नवीन शास्त्र पढे, जेकर बुद्धि थोडी होवे, तदा ऐसा विचारे कि सुरमेंदानीमेसे थोडा थोडा अंजन नि कलनेसे अंजन क्षय हो जाता है, तथा वर्मीका बधणा, ऐसे परिश्रम अन्या स करणेसें निःफल दिन न जाने देवे, थोडी बुद्धिनी होवे तोनी पढनेका अन्यास न गोडे, इत्यादि धर्मकृत्य करकें पीछें जेकर राजा श्रावक होवे, तदा राजसनामें जावे, प्रधान होवे, तो न्याय सनामें जावे, वणिया होवे, तदा हट्टीबजारमें जावे, इत्यादि उचित स्थानमें जा करके धर्मसे विरुद्ध न होवे, उसी रीतिसें धन उपार्जनेकी चिंता करे.

प्रथम राजा किस रीतिसें प्रवर्त्ते, सो लिखते है. १ जो राजा होवे, सो दरिद्री, मान्य, अमान्य, उत्तम, अधमादि सर्वलोकोंका पक्षपात रहित मध्य

हो कर न्याय करें, २ राजाके कारनारी (मंत्री) आदिक तिनका धर्मविरोध यह है, कि राजाका अरु प्रजाका नुकशान न होवे, तैसें प्र॰, क्योंकि जो मंत्री राजाका हित वांछता है, उस उपर प्रजा द्वेष करती है, अरु जो प्रजाका हितकारी है, उसकों राजा छोड देता है, इसी वास्ते राजमंत्री आदिकोंकों दोनोका हितकारी होनां चाहियें.

वणिक् व्यापारी लोकोंका धर्मविरोध यह है. जो व्यापारकी शुद्धि करे ॥ तथैव चाह ॥ विवहारसुद्धि देसा.इ विरुद्ध च्चाय उचिय चरणेहिं ॥ तो कुणइ अत्थचिंतं, निव्वाहिंतो नियं धम्मं ॥ १ ॥ अस्यार्थः— व्यापारकी शुद्धि, देशादि विरुद्धका त्याग, उचित आचरण, इन तीनो प्रकारें करकें धन उपार्जनेकी चिता करे, अरु अपणे धर्मकाभी निर्वाह करे, क्योंकि ऐसा कोइ कार्य नही है, कि:— जो धनसें सिद्ध न होवे? तिस वास्ते बुद्धिमान् धन उपार्जनेंमे यत्न करे ॥ यदाह ॥ नहि तद्विद्यते किंचि, यदर्थेन न सिद्ध्यति ॥ यत्नेन मतिमांस्तस्मा, दर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥ १ ॥ इहां जो अर्थ चिंता है. सो अनुवादरूप है, क्योंकि धन उपार्जनेकी चिंता लोकमे स्वत ही सिद्ध है. कुछ शास्त्रकारके उपदेशसें नहीं, 'अरु धर्म निर्वाहयन्' यह जो कहनां है, सो विधेय करने योग्य है, क्योंकि इसकी आगें प्राप्ति नही है, शास्त्रका जो उपदेश है, सो अप्राप्त अर्थकी प्राप्ति वास्ते है, शेष सर्व अनुवादादि रूप है. अब आजीविका चलानेके प्रकार कहते है.

आजीविका जो है, सो सात प्रकारसें है. १ व्यापार करनेसें, २ विद्यासें, ३ खेती करनेसें, ४ पशुओंके पालनेसें, ५ कारीगरी करनेसें, ६ नौकरी करनेसें, ७ भीख मांगनेसें, तिनमे वणिज्य करनेसें वणिक लोकोंकी आजीविका है, २ विद्यासें वैद्यादिकोंकी आजीविका है, ३ खेती करनेसें करसाटादिकोंकी है, ४ पशुपालनेसें गोपाल अजापालादिकोंकी है, ५ शिल्प करके चितारादिकोंकी है, ६ नौकरी करनेसें सिपाही लोकोंकी है, ७ भिक्षा करके मांग खानेवालोंकी आजीविका है. तिनमे १ वणिज्य सो धान्य, घृत, तेल, कप्पास, सूत्र, वस्त्र, धातु, मणि. मोती, रूपइया, सोनइया प्रमुख जितनी जातका किरियाणा है, सो सर्व व्यापार है. अरु जो व्याज देनां है, सोभी व्यापार है.

२ विद्याभी औषधि, रस, रसायन, चूर्ण, अंजनादि, वास्तुक शास्त्र, पंखी

का शकुन, भूत भविष्यतादि निमित्त, सामुद्रिक, चूडामणि, जवाहिर परखनेका शास्त्र, धर्म, अर्थ, काम, ज्योतिष तर्कादि भेदसें अनेक प्रकारकी है इस वैद्यविद्यामें अतारपणां, पंसारीपणां करनां ठीक नहीं, क्योंकि इसमें प्रायः दुर्ध्यान होनेसें बहुत गुण नहिं दिखता है, क्योंकि जिसकों जिससे लाभ होता है, वो उसी बातकों चाहता है ॥ तदुक्तं ॥ आर्या ॥ विग्रहमिछंति भटा, वैद्याश्च व्याधिपीडित लोकं। मृतकं बहुलं विप्राः, क्षेम सुभिक्षं च निर्ग्रंथाः ॥ १ ॥ अर्थः– सुभट संग्राम चाहते है, वैद्य रोगपीडित लोकोंकों चाहते है, अरु ब्राह्मण बहुत लोकोंकों मरणां चाहते है, तथा निरुपद्रव, सुकालकों साधु निर्ग्रंथ चाहते है परंतु जो वैद्य अत्यंत लोभी होवे, धन लेने वास्ते उलटा औषधि जानके देवे, जिसके मनमें दया न होवे, जो त्यागी साधुओंकी औषधि न करे, जो दरिद्री, अनाथादि लोकोंकों मरते जानकेभी धन खोस लेवे, मांस मद्यादि अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करनां बतावे, झूठी औषधि बनाके लोकोंकों ठगे, वो वैद्यविद्या नरककी देनेवाली है, सो न करनी चाहियें. अरु जो वैद्य सत् प्रकृति वाला होवे, लोभी न होवे, पूर्वोक्त दूषण रहित होवे, परोपकारी होवे, ऐसेकी वैद्यविद्या श्रीऋषभदेवजीके जीव जीवानद वैद्यकी तरें दोनों भवोंमें गुण देने वाली है, ऐसी वैद्यविद्यासें आजीविका करे, तो अच्छी है.

३–४ तीसरी खेती, चौथा पशुपालक, उसमें खेतीभी तीन तरेंसें होती है, एक मेघसें, दूसरी कूप नहरादिसें, तीसरी दोनोसें चौथा पशु पालकपणा, सो गौ, महिष, बकरी, ऊंट, बैल, घोडा, हाथी, इनकों बेच बेचके आजीविका करणी, ये खेती अरु पशुपाल्य, यह दोनो काम विवेकीओं करने उचित नही. जे कर इनके करे विना निर्वाह न होवे, तदा बीज बोनेका काल जाणे, भूमि सरस नीरस जाणे, अरु जो खेत पहिलां वाह्यां विना बोया न जावे, दूसरा रस्तेका क्षेत्र, यह दोनो, क्षत्रकों वर्जे, तो धनकी वृद्धि होवे, अरु जो पशुपाल्य पणां करे, तो पशुओ ऊपर निर्दय न होवे, पशुका कोइ अवयव न छेदे. इसी तरें पशुपालपणा करे

५ पाचमी शिल्प आजीविका है, सो शिल्प सौ तरेका है, मूल शिल्प तो पांच है, १ कुंभार, २ लोहार, ३ चितारा, ४ वणकर, अर्थात् बुननेवाला, ५ नाइ, इन पांचोके वीश वीश भेद है, यद्यपि इस कालमें न्यूनाधि

होवेंगें, परंतु श्रीऋषभदेवजीने प्रथम सौ तरेंहीका शिल्प पर्याकों
। था, इस वास्ते सौही लिखा है. जो सांसारिक विद्या है, सो स
शिल्पमें है, कोइ कर्ममें है, शिल्प, गुरु उपदेशसें आता है, सोही है,
अरु कर्म स्वयमेवही आ जाता है, यह कर्मनी सामान्यसें चार प्रकारें
है, १ उत्तम बुद्धिसें धन कमाता है, २ मध्यम हाथोंसें कमावे, ३ अधम
पगोंसें कमावे, ४ अधमाधम मस्तकसें बोजा ढो कर कमावे.

६ सेवा करकें आजीविका करे. सो सेवा राजाकी, मंत्रीकी, शेठकी,
सामान्य लोकोंकी, नोकरी यह चार प्रकारे है. प्रथम तो नौकरी किसी
कीनी न करनी चाहियें, क्योंकि नौकर परवश हो जाता है, जे कर नि
र्वाह न होवे, तदा नौकरीनी करे, परंतु जिसकी नौकरी करे, उसमें यह
कहे हूए गुण होवे, तो उसके वहां नौकर रहे, जो १ कानोंका डुर्बल न
होवे, २ सूरमा होवे, ३ कृतज्ञ होवे, ४ सात्विक, गंनीर, धीर, उदार,
शीलवान्, गुणोंका रागी होवे, उसकी नौकरी करे, अरु जो क्रूर प्रकृति
वाला होवे, कुव्यसनी होवे, लोनी होवे. चतुर न होवे, सदा रोगी रहे,
मूर्ख होवे, अन्यायी होवे, औसोंकी नौकरी न करे, क्योंकि कामंदकीय ना
मक नीति शास्त्रमें लिखा है, कि जिस राजाकी वृद्ध पुरुषोनें सेवा करी
होवे, सो राजा अबा है, स्वामीकोंनी चाहियें कि जैसा सेवक होवे, तैसा
उसका सन्मान करे, सेवकनी थके हूए, नूखे हूये, क्रोधमें हूये, व्याकुल
होये, तृषावत होये, शयन करने लगे, दूसरेके अर्ज करते हूये, इन अव
स्थायोंमें स्वामीकों विनति न करे, तथा राजाकी माता, राजाकी राणी,
राजकुमार, मुख्यमंत्री, अदालती, राजेका दरवाजेवान, इनके साथ रा
जाकी तरें वर्त्तना चाहियें. इस रीतीसें प्रवर्त्ते, तो धनकी प्राप्ति डुर्लन
नहीं ॥ यदूचे ॥ श्लोक ॥ इक्षुक्षेत्रं समुद्रश्च, योनिपोषणमेव च ॥ प्रसादो
नूभुजां चैव, सद्योघ्नंति दरिद्रता ॥ १ ॥ निंदंतु मानिनां सेवा, राजादीना सु
सेविण. ॥ स्वजना. स्वजनोद्धार, संहारो नविनातया ॥ २ ॥ मंत्री, श्रेष्ठी,
सेनानी इत्यादि व्यापारनी सर्व नृपसेवाके अंतर्नावही है, परंतु जेहलखा
नेका दरोगादि, नगरका कोटवाल पणा, सीमापाल, इत्यादि नौकरी न
करणी चाहिये, क्योकि यह नौकरीयो निर्दयी लोकोके करनेकी है, तिस
वास्ते श्रावकको नहीं करनी. जे कर कोइ श्रावक राजाधिकारी हो जावे,

तब वस्तु पालादिक मंत्रीयोकी तरें महाधर्म-कीर्त्तिका करनेवाला श्रावक मुख्यवृत्ति करकें तो सम्यग्दृष्टिकोही नौकरी करे.

७ सातमी नीख मांगनेसें आजीविका है, सो नीख मांगनेकेनी अनेक नेद है, तिनमें धर्मोपष्टंन मात्र आहार, वस्त्र, पात्रादिककी निक्षा लेवे, सो नी जिस साधुने सर्वसंसार और परिग्रहका संग त्यागा है, तिसकों मांगनी उचित है, क्योंकि उसकी नीख मांगनेसें और गति नही है, श्रीहरिनद्रसूरिजीने पांचमे अष्टकमें निक्षा तीन प्रकारकी लिखी है, प्रथम निक्षा सर्वसंपत्करी, दूसरी पौरुषघ्नी, तीसरी वृत्तिनिक्षा है, जो साधु परिग्रहका त्यागी, धर्मध्यान संयुक्त, जिनाज्ञासहित होनेसें षट्कायके आरंनसे रहित, तिसकी निक्षा सर्व संपत्करी है, तथा जो साधु तो बन गया है, परतु साधुके गुण उसमें नहि है, तथा जो गृहस्थावासमें लष्ट पुष्ट षट्कायका आरंनी पडिमावहे विनाका श्रावक, तथा और गृहस्थ जो मांगकें खावे, तिसकी पौरुषघ्नी निक्षा है, वो पुरुष धर्मकी लाघवताका करने वाला है, पूर्वजन्ममें जिनाज्ञा खंमने वाला है, आगें अनंत जन्म लग डुःखी रहेगा, तथा जो निर्धन, अंधा, पांगला, असमर्थ, और कोइ काम करने समर्थ नही, वो नीख मागकें खावे, तो तीसरी वृत्तिनिक्षा है, यह निक्षा डुष्ट नही. इस नीखके मांगनेसें लघुतादि धर्मके दूषण नहीं होते है, क्योंकी जो इनकों देता है, वो अनुकपा (दया) करके देता है, देनेवाला पुण्य उपार्जन करता है, इस वास्ते गृहस्थकों नीख न मांगनी चाहियें धर्मी श्रावककों तो विशेष करकें नीख न मांगनी चाहियें, निक्षा मागनेसें धर्मकी निंदा, अरु धर्मकी निंदासें डुर्लनबोधी होता है, नीख मांगनेसें उदर पूर्ण तो हो जाता है, परतु लक्ष्मी नही होती है ॥ यतः ॥ लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये, किंचिदस्ति च कर्षणे ॥ अस्ति नास्ति च सेवायां, निक्षाया न कदाचन ॥ १ ॥

मनुस्मृतिके चौथे अध्यायमेंनी लिखा है, कि जब वाणिज्य करे, तब कष्टमे सहायक, पूंजीका बल, स्वनाग्योदय, देश, काल, देखकें करे, वाणिज्य करणे लगे, तब पहिला थोडा करे, पीछे लान्न जाणे, तो यथायोग्य करे, कदाचित् निर्वाहके न हूये खरकर्मनी करे, तोनी अपणे आपकों निंदता हूआ करे, विना देखा बिना परीक्षाके सौदा न लेवे, जो सौदा संदेह वाला

होवे, वो बहुतोंके साथ मिल कर लेवे, जहां स्वचक्र परचक्रादिका उपद्रव न होवे, अरु धर्म सामग्री होवे. तिस क्षेत्रमें व्यापार करे.

कालसें अठाही तीन, पर्वतिथिके दिन व्यापार न करे, जो वस्तु वर्षा कालके साथ विरोधि होवे, सो त्यागे, नावसेंती जो क्षत्रिय जातिका व्यापारी राजा प्रमुख होवे, तिसके साथ व्यापार न करे, अपणे विरोधीकों उधारा न देवे, तथा नट विट वेश्या, जुआरी प्रमुखकों तो विशेष करकें उधारा नहींही देवे, हथीयारबंधके साथ तथा व्यापारी ब्राह्मणके साथ लेन देन न करे, मुख्य तो अधिक मोलका गहनां रखके व्याज देवे, क्योंकि उस्सें मांगनेका क्लेश, विरोध, धर्महानी, धरणादिक कष्ट नहीं होते है, जे कर ऐसे निर्वाह न होवे, तदा सत्यवादीको व्याज उधार देवे, व्याज नी एक, दो, तीन, चार, पांच प्रमुख सैकडे पीछें महीनेमें नले लोक जिसकों निंदे नही, ऐसा लेवे,

जेकर देनां होवे, तदा करार उपर बिन मांग्याही देनां चाहियें, कदाचित् निर्धनपणेसें एकवारमें दे न सके, तो किशत प्रमाणें जरुर दे देवे, क्योंकि देना किसीका न रखना चाहियें ॥ यडुक्तं ॥ धर्मारंने रुणछेदे, कन्यादाने धनागमे ॥ शत्रुघातेऽग्निरोगे च, कालक्षेपं न कारयेत् ॥१॥ जे कर देना न उतरे, तब उसका नौकर रहकर नी देनां उतार देवे, नहीं तो नवांतरोमें उसका कर्मकर (चाकर) महिष, बैल, उंट, खर, खच्चर, घोडा प्रमुख बन कर देनां पडेगा, लेने वालानी जब जान लेवे, कि यह देने समर्थ नहिं तब बिलकुल मांगनां छोड देवे, ऐसे कहे कि जब तूं देने समर्थ होवेगा, तब दे देनां, नहीं तो यह धन मैं अपणें धर्ममे लगाया, वहीमें लिख लेता हूं, तेरेसें मै कुछ नहीं लेवुंगा ?

श्रावककों मुख्यवृत्ति तो धर्मीजनोंसेंही व्यवहार करनां चाहियें, क्योंकि दोनो पासे धन रहेगा तो धर्ममें लगेगा, अरु किसी म्लेछ पास धन रहि जावे, तदा व्युत्सर्जन कर देवे, व्युत्सर्जन करां पीछें जेकर वो म्लेछ फेर धन दे देवे, तदा वो धन धर्ममे खरचणे वास्ते संघकों सौंप देवे, अरु व्युत्सर्जन करा है, ऐसानी कह देवे, ऐसेही जो कोइ वस्तु खोइ जावे, अरु ढुंढनेसें न मिले, तो तिस वस्तुकानी व्युत्सर्जन कर देवे, पीछें कदाचित् अपने पास

धनहानी हो जावे, धनकी अप्राप्ति हो जावे, तोभी खेद न करे, क्योंकी न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण है,

बहुत धन जाता रहे, तोभी धर्म करणेमें आलस न करे क्योंकि पदा अरु आपत् बडे आदमीकोंही होती है, सदा एक सरिखे दिन कि के नहीं जाते है, पूर्व जन्म जन्मांतरके पुण्यपापोदयसें संपदा, विप होती है, इस वास्ते धैर्यका अवलंबनां श्रेष्ठ है, यदा अनेक उपाय क नेसेंभी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी भाग्यवान्का आधार लेवे. अर्था सांजो बनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके संग लोहाभी तर जाता है.

जे कर बहुता धन हो जावे, तदा अभिमान न करे, क्योंकि लक्ष्मीके सा पांच वस्तु होती हैं, १ निर्दयत्व, २ अहंकार, ३ तृष्णा, ४ कठिन वच बोलनां, ५ वेश्या, नट, विट, नीच पात्र, वल्लभ होते है, इस वास्ते बहु धन हो जावे, तो इन पांचोको अवकाश न देवे, किसीके साथ लडाइ करे. जबरदस्तके साथ तो विशेष करकें लडाइ नहिं करे, तथा १ धनवत २ राजा, ३ पक्षवाला, ४ बलवान्, ५ दीर्घरोषी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ त पस्वी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहा तक नरमाइसें काम बने, तह तक कठिनाइ न करे, लेने देनेमें भ्रांति भूलादिकसें अन्यथा हो जावे, त विवाद न करे, किंतु न्यायसें झगडा मिटावे, न्याय करनेवालेकोंभी वि लोंभी पक्षपात रहित होना चाहियें, तथा जिस वस्तुके महंगे होनेंसे पर्यायकों पीडा होवे, ऐसी वस्तुके महिंगे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसें डर्भिक्षादिक हो जावे, तबभी सौदेमें डणे तिणे लाभ हो जावे, तदा अन्नमे अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रुपइये सैंकडेसे अधिक व्याज न लेवे, किसीका गिर पडा धन न लेवे, तथा का लांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिंदित लाभ होवे, सो लेवे, यह कथन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा है तथा खोटा तोल, खोटा मापा, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमे भेल संभेल न करे, व स्तुका अनुचित मोल, अनुचित व्याज, लंचा अर्थात् घूस, कोडवट्टी न लेवे, घसा हूआ तथा खोटा रूपकादि किसीको खरेमे न देवे, दूसरोंके व्या पारमें भंग न करे, ग्राहक न बकावे, वानकी और न दिखावे, अंधेरा करकें वस्तु न वेचे, जाली खत पत्रादि न बनावे, इत्यादि परवंचन प

काकों वर्जे, सर्वथा प्रकारें व्यवहार शुद्धि करे, क्योंकि व्यवहार शुद्धिही गृहस्थ धर्मका मूल है.

तथा स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासघात, बालद्रोह, वृद्धद्रोह, देवगुरुद्रोह न करे, थापणमोसा न करे, ये सर्व महापापके काम वर्जे, तथा कूडी साक्षी, रोष, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारों, कर्मचंमालपणां है, तिसकों वर्जे, फूठ जो है, सो सर्व पापोंसें बडा पाप है, इस वास्ते फूठ सर्वथा न बोले, न्यायसें धन उपार्जन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते है. वो अन्यायसें सुखी नहीं है, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसें सुखी हैं, क्योंकि कर्मफल चार तरेंका है ॥ यदाहुर्धर्मघोषसूरिपादा. ॥ एक पुण्यानुबंधी पुण्य है, दूसरा पापानुबंधी पुण्य है, तीसरा पुण्यानुबंधी पाप है, चौथा पापानुबंधी पाप है. यह चार प्रकार जो हैं, तिनकूं किंचित् विस्तार पूर्वक कहते हैं.

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु संपूर्ण आराधकें जो संसारमें नवांतरमें माहा सुखी धनाढ्य उत्पन्न होवे, नरत बाहुबलकी तरें, सो पुण्यानुबंधी पुण्य है.

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यनी होवे, परतु कोणिकराजाकी तरें पाप करणेमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व नवमें अज्ञान कष्ट करणेसें होता है, सो पापानुबंधी पुण्य है.

३ जो पुरुष पापके उदयसें दरिद्री अरु दुःखी होवे, परतु श्रीजिनधर्ममें बहा अनुरक्त होवे. धर्म करणेंमें तत्पर होवे, सो पुण्यानुबंधी पाप है, यह द्रुमकमहर्षिवत्. पूर्व नवमें लेश मात्र दयादि सुकृत करणेसें होता है.

४ पापी चंम कर्मका करनेवाला निर्धर्मी, निर्दय, पाप करके पश्चात्ताप रहित यह पुरुष दुःखीया है. तोनी पाप करणेमें तत्पर है, सो पापानुबंधी पाप है, काल सौकरिकादिवत्

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप ऋद्धि है, अरु अंतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप ऋद्धि है, सो पुण्यानुबंधी पुण्यसे होती है, ऐसे जेकर कोइ जीव पापानुबंधी पुण्यके प्रनावसें इस लोकमे सुखी दीखता है, तोनी आगले नवमें महा आपदा पावेगा, अरु जो महसूलकी चोरी है, सो स्वामिद्रोहमें है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमे अनर्थकी दाता

है. जिसमें दूसरोंकों पीडा होवे, अैसे व्यवहार न करे ॥ यतः ॥ इंद्रवज्रा वृत्तं । शाठ्येन मित्रं कपटेन धर्मं, परोपतापेन समृद्धिभावं ॥ सुखेन विद्यां परुषेण नारीं, वांछंति ये व्यक्तमपंडितास्ते ॥ १ ॥ तथा जिसतरें लोकोंको रागभाव होवे तैसें यत्न करे ॥ यतः ॥ वंशस्थ वृत्तं ॥ जितेंद्रियत्वं विनयस्य कारणं, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ॥ गुणप्रकर्षेण जनोनुरंज्यते, जनानुरागप्रभवाहि संपदः ॥ १ ॥ तथा धनहानिवृद्धि, संग्रहादि, गुह्य, दूसरोंके आगें प्रकाश न करे ॥ यतः ॥ अनुष्टुप्वृत्तं ॥ स्वकीयं दारमाहार, सुकृत द्रविण गुणं ॥ दुष्कर्म मर्म मंत्रं च, परेषां न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥ तथा कूडभी न बोले, जेकर राजा गुरु आदिक पूछे, तो सत्य कह देवे सत्य बोलना सोही पुरुषकी परमदशा है.

तथा यथार्थ कहनेसें मित्रका मन हरे, तथा बांधव जनोकों सन्मानसें वश करे, तथा स्त्रीकों प्रेमसें वश करे, तथा चाकरोंकों दान देनेसें वश करे, तथा दाक्षिण्यता करके इतर लोकोंका मन हरे, तथा किसी जगे अपणे कार्यकी सिद्धि करने वास्ते दुष्ट जनोंकोंभी अग्रुवे, (आगडी) करे, तथा जिस जगे प्रीति होवे, तहां लेने देनेका व्यापार न करे, यह कथन सोमनीतिमेंभी है.

तथा साक्षी विना मित्रके घरमेंभी धनादिक रखना न चाहियें, क्योंकि लोभ बडा दुर्दांत है, तथा जो धन रखनेवाला मर जावे तो वो धन उसके पुत्रादिककों दे देनां चाहियें, जे कर धन रखने वालेका कोइभी संबंधी न होवे, तब वो धन सर्वलोकोंके समक्ष धर्मस्थानमे लगा देवे, तथा श्रावक, देवगुरु, चैत्य, जिनमंदिरकी चाहे सची, चाहे जुठीभी शपथ अर्थात् सौगंद न खावे, तथा दूसरोंका साक्षीभी न बने, यत् कप्पीलिक ऋषि कहता है ॥ श्लोक ॥ अनीश्वरस्य द्वे भार्ये, पथि क्षेत्रं द्विधा कृषि. ॥ प्रातिभाव्यं च साक्ष्यं च, पंचानर्थाः स्वयं कृता ॥ १ ॥.

तथा श्रावक मुख्यवृत्तिसें तो जिस गाममें रहे, तहांही व्यापार करे. क्योंकि अैसे करनेसें कुटुंबका अवियोग तथा घरका कार्य अरु धर्मकार्यादिक सर्व बने रहते हैं, कदापि अपने गाममे निर्वाह न होवे, तदा निकट देशांतरमें व्यवहार करे, जहांसें कोइ योग्य काम पडे, तो शीघ्र घरमे आ जावे, अैसा कौन पामर है! कि:– जिसका स्वदेशमें निर्वाह होवे, तोभी परदे

ग्रामें जावे, उक्तमपि ॥ जीवंतोपि मृता· पंच, श्रूयंते किल जारते ॥ दरिद्री व्याधितो मूर्खः, प्रवासी नित्यसेवकः ॥ जे कर निर्वाह न होवे, तदा आप तथा पुत्रादिकोंकों परदेशमें न नेजे, किंतु सुपरीक्षित गुमास्तेकों नेजे, जे कर स्वयमेव देशांतरमें जावे, तदा नला मुहूर्त्त शकुन निमित्त देखकें अरु देव गुरुकों वंदना करके मंगलपूर्वक नाग्यवान् साथके बीचमें निद्रादि प्रमाद वर्जकें कितनेक अपने ज्ञातियोंकों साथ ले कर जावे, क्योंकि नाग्यवानके साथ जातां विघ्न टल जाता है, तथा लेनां, देनां, गडा हूवा धन, सर्व. पिता, नाइ, पुत्रादिकोंकों कह जावे, अपणे संबंधीयोंकों नली शिक्षा दे जावे, बहुमान पूर्वक सर्वकों वोलाकें जावे, परंतु जो जीवनेकी इछा होवे, तो देव गुरुका अपमान करकें, किसीकों निर्न्नछिके, स्त्रीयादिककों ताडना कूटना करकें, बालककों रुदन करवा करकें न जावे. कदापि कोइ पर्व महोत्सवादिकका दिन निकट होवे, तदा उत्सव करके जावे ॥ यत· ॥ उत्समशनं सर्वं, प्रगुण चोपेक्ष्य मंगलमशेषं ॥ असमापिते च सूतक,युगेंऽगनौं च नो यायात् ॥ १ ॥ तथा दूध पीकें, मैथुन करकें, स्नान करकें, अरणी स्त्रीकों हणके, वमन करकें, थूंककें, रुदन करकें, कठिन शब्द सुणकें, गालीयां सुणकें, प्रदेशको न जावे, तथा शिर मुंमन करवाकें, आसु गिराकें, खोटे शुकनके हूये ग्रामांतर न जावे.

तथा कार्यके वास्ते जब चले, तब जौनसा स्वर वहता होवे, उस पासेंका पग पहिला उठाकें धरे, जिस्से कार्यसिद्धि होवे, तथा रोगी, बूढा, ब्राह्मण, अंधा, गौ, पूजनिक, राजा, गर्नवती स्त्री,नार उठानेवाला, इनकों छोड दे कर ग्रामांतरमें जावे, तथा धान्य पक्का वा कच्चा पूजा योग्य मत्र मंमल, इनकों त्यागे नहीं,तथा स्नानका जल,रुधिर, मुरदा, थूंक, श्लेष्म, विष्टा, मूत्र, बलती अग्नि, साप, मनुष्य, शस्त्र, इनकों उल्लंघे नहीं, तथा नदीके कांठे, गौओंके गोकुलमें, वड वृक्षके हेठ,जलाश्रयमें, अरु कूपकांठे, इतने जगो पर विष्टा न करे, तथा रात्रिकों वृक्ष हेठ न रहे, उत्सव, सूतक, पूरा हूये परदेशको जावे, विना साथके न जावे. दासके साथ न जावे, ... तथा अर्द्धरात्रिमे मार्गमें न चले, तथा क्रूर प्रकृतिवाला मनु... कोटवाल, चुगल, दरजी, धोबी प्रमुख अरु कुमित्र, इतनोंके साथ ... न करे, इनोके साथ अकालमें चले नहीं, तथा महिष, गर्दन्न, अरु

गै; इनकी असवारी न करे, तथा हाथीसें हजार हाथ, गाडेसें पांच हाथ अरु घोडे तथा सिंग वाले जनावरोसेंभी पांच हाथ दूर रहे,
विना रस्तेमे न चले, बहुत सोवे नहिं, रस्तेमें किसीका विश्वास न करे, एकीला किसीके घरमें न जावे, जीर्ण नावां ऊपर चढे नहीं, एकला नदीमें न पैसे, कठिन जगामें उपाय विना न जावे, अगाध पाणीमें प्रवेश न करे, जहां बहुते क्रोधी होवे, अरु बहुते सुखोके इच्छक होवे, तथा जहां घणे सूम होवे ऐसे सथवाराके साथ कदापि परदेश न जावे, तथा बांधनेके, मारणेके, जूआ खेलनेके, पीडाके, खजानेके, अंतेउरके, स्थानमें न जावे, तथा बूरे स्थानमें, श्मशानमें, शून्यस्थानमें, चौकमें, शूके घासमें कूडेमें. ऊंची नीची जगामें, उकरूडीमें, वृक्षाग्रमें, पर्वताग्रमें, नदीके कांठेमें, कूपके कांठेमें, इतने स्थानोमें बैठे नहीं, तथा जो जो कृत्य जिस जिस कालमें करना है, सो करे, परंतु छोडे नहिं.

तथा पुरुषकों जो भला वस्त्रादि पहरनेका आडंबर चाहियें सो न छोडे, परदेशमें तो विशेष करकें आडंबर, नहीं छोडनां, क्योंकि आडंबरसें अनेक कार्य सिद्ध हो जाते है, तथा जो कार्य करणां सो पंच परमेष्टिस्मरण पूर्वक तथा गौतमादि गणधरोंका नामग्रहण पूर्वक करे, तथा देव गुरु की भक्ति वास्ते धनकी कल्पना करे, क्योंकि जब धन कमावनेका प्रारंभ करनां, तबही नफेमेंसूं इतना हिस्सा सात क्षेत्रमें लगावुंगा ? असी भावना जरुर करनी चाहियें.

जदा लाभ हो जावे, तदा चिंता अनुसारें मनोरथ सफल करे, क्योंकि व्यापारका फल यह है, किः–धन होना, अरु धन होनेका फल यह है, कि धर्ममें धन लगानां, नहीं तो व्यापार करनां सो नरक तिर्यचगति होनेका कारण है, जे कर धर्ममें खरचे, तो धर्मधन कहा जावे, जेकर नहीं खरचे तो पापधन कहा जावे क्योंकि ऋद्धि तीन प्रकारकी है, एक धर्मऋद्धि, दूसरी भोग ऋद्धि, तीसरी पापऋद्धि. उसमें जो धर्मकार्यमें लगावे, सो धर्म ऋद्धि तथा जो शरीरके भोगमें आवे सो भोगऋद्धि अरु धर्म तथा भोगसें जो रहित, सो पाप ऋद्धि जाननी, इस वास्ते नित्य प्रत्ये स्वधनको दानादि धर्ममें लगानां चाहिये, जेकर थोडा धन होय तो थोडा लगाने, क्योंकि किसीकों इच्छानुसारिणी शक्ति होती है. तथा धन उत्पन्न करनेका उपाय,

करनां चाहियें, परंतु अत्यंत लोन न करनां चाहियें, तथा धर्म, अर्थ, काम यथा अवसरमें सेवनां, परतु अत्यंत कामासक्त न होनां चाहिये, जो धन उत्पन्न करनां सोनी न्यायसें उत्पन्न करनां चाहिये, यहां न्यायार्जित धन सत्पात्रमें देनां, लगानां, तिसके चार नंग है, सो लिखते है.

१ न्यायोपार्जित सत्पात्रविनियोग रूप प्रथम नंग. पुण्यानुबंधी पुण्यका हेतु होनेंसें वैमानिक देवतापणा नोगनूमि मनुष्यपणा सम्यक्त्वादिककी प्राप्ति निकट मोक्ष फल है, धनसार्थवाह तथा शालिनद्रादिवत्.

२ न्यायोपार्जित असत्पात्रविनियोगरूप दूसरा नंग. पापानुबंधी पुण्यका हेतु होनेसें नोग मात्र फलनी है, तोनी छेकड विरस फल है, जैसे लक्ष्य नोज्यकरणे वाला ब्राह्मण बहुत नवोंमें किंचित्सुख नोगकें सेचनक नामा सर्वांग सुलक्षणो नद्र हस्ती हूआ.

३ अन्यायसें आया सत्पात्रपरिपोषरूप तीसरा नंग है, तिसका अच्छे खेतमें जैसें सामक बो देने वत् फल है, यह सुखानुबंधी होने करकें राजके नरनारीयोंके बहुत आरंनोपार्जित धनवत् है परंतु असा धननी धर्ममें लगावे, तो अच्छा है, जैसें आबूके पर्वतोपरि जिनमंदिर बनाने वाले विमलचंद्र अरु तेजपाल मंत्रीकी तरें अच्छा है, जेकर असा धननी धर्ममें न लगावे, तो दुर्गति अरु अपकीर्त्तिका फल है, मम्मन शेठवत्.

४ अन्यायार्जित कुपात्रपोष रूप चौथा नंग है, यह नंग सर्वथा प्रकारे त्यागने योग्य है, क्योंकि अन्यायार्जित जो धन कुपात्रको देना, सो असा है, कि:— जैसा गौकों मारकें उसके मांससें कागोंका पोषण करना, इस वास्ते गृहस्थकों न्यायसें धनार्जन करनां चाहिये.

श्राद्धदिनकृत्य सूत्रमें लिखा है, कि:— व्यवहारशुद्धि जो है, सोही धर्मका मूल है, जिसका व्यापार शुद्ध है, उसका धननी शुद्ध है, जिसका धन शुद्ध है, उसका आहार शुद्ध है, जिसका आहार शुद्ध है, उसकी देह शुद्ध है, जिसकी देहशुद्ध है, वो धर्मके योग्य है, असा पुरुष जो जो कृत्य करे, सो सर्व सफल होवे. अरु जो व्यवहार शुद्ध न करे, वो धर्मकी निंदा करानेसें स्वपरकों दुर्लनबोधी करे, इस वास्ते व्यवहार शुद्धि जरुर करनी चाहियें ॥ इति व्यवहारशुद्धिस्वरूपं समाप्तं ॥

तथा देशादि विरुद्ध त्यागे, सो देश, काल, राजविरुद्धादि परिहरे,

यह कथन हितोपदेशमालामें लिखा है, कि देश, काल, राज, अरु ल विरुद्ध जो त्यागे, सो पुरुष सम्यग्धर्मकों प्राप्त होता है.

तिनमें देशविरुद्ध तो जैसें कि.—सौवीरदेशमें खेती करणी,लाट देशमें मदिरा बनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरभी जो जिस देशमें शिष्टजनोंके अनाचीर्ण है, सो तिस देशमें विरुद्ध जाननां. जाति कुलादि अपेक्षा जो अनुचित होवे, सो देशविरुद्ध है, जैसें ब्राह्मण जातिको सुरापान करनां, तिल लूणादि वेचनां, सो कुलापेक्षा विरुद्ध है, तथा जैसें चोहाणाकों मद्यपान करनां, तथा और देशवालोंके आगें और देशवालोंकी निंदा करणी, यहभी देशविरुद्ध है.

तथा कालविरुद्ध, सो जैसें हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी काल तथा मरुदेशमे वर्षातमें अत्यंत पिच्छिल (पंक) संयुक्त दक्षिण समुद्रके पर्यंत भागोमे, तथा अति दुर्भिक्षमें, दो राजाओका परस्पर विरोध होनेसें, धाडने रस्ता रोका होवे, दुरुत्तार महाअटवीमें, सांजकी वेला भयमे, इतने स्थानकोंमें तैसा सामर्थ्य सहायादि दृढ वल विना जावे, तो प्राण धन नाशादि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीछें तिलोंका व्यापार, तिल पीलाने, तिल भक्षण करने वर्षाऋतु चउमासेमे पत्र शाकका ग्रहण करणां, तथा बहुजीवाकुल भूमिमें हल फेराना, यह महा दोषका कारण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेनां.

तथा राजविरुद्ध यह है कि.—राजाके दोष बोलनां, जिसकों राजा माने तिसकों न माननां,तथा राजाके वेरीयोंसें मेल करना, राजाके शत्रुके स्थानमें लोभसें जाना, राजाके शत्रुके पासो आयेके साथ व्यापार करनां, राजाके काममें अपणी इछासें विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है कि.— नगरनिवासियोंके साथ प्रतिकूल पणा करणां, तथा स्वामिद्रोह करणां, लोकोंकी निंदा करणी, गुणवान् अरु धनवान्की निंदा करणी, अपणी वडाइ करणी, सरलकी हासी करणी, गुणवान्में मत्सर रखनां, कृतघ्नत्व करणां, बहुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी संगति करणी, लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, भले आचारवालेकों कष्ट पडे, तव राजी होनां, अपनी शक्तिके हुयें साधर्मीके कष्टकों दूर न करनां, देशादि उचिताचार लंघन करना. थोडे धनके हूए गुं

लोंका वेप रखनां, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोकविरुद्ध है. यह सर्व इस लोकमे अपयशका कारण है ॥ यदुवाच वाचकमुख्यः ॥ लोकः खल्वाधारः, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ॥ तस्माल्लोकविरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यं ॥ १ ॥ अर्थः—उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते है, किः—सर्वधर्म करने वालोंके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों, त्यागने योग्य हैं,क्योंकि ऐसें करनेंसें धर्मका सुखें निर्वाह होता है, लोक विरुद्धके त्यागनेसें सर्व लोकोंको वल्लभ होता है, अरु जो लोकोंको वल्लभ होनां है, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज है.

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं. मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिककों निर्दय होके ताडना, बांधना, जूं, मांकडादिको निराधार गेरणे, धूपमे गेरणे, शिरमे कंघीसें लीख फोडनी, उष्ण कालमे तथा शेप कालमें चौडा, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी गलनके पीछें जीवोंकों युक्तिसें पाणीमें न गेरनां, तथा अन्न, इंधन, शाक, पान, तांबूल, अरु फलादिकोंकों विना शोधें खानां; तथा अक्षत, सोपारी, खारीक, वाल्ह, उलि,फली प्रमुख संपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिककों धारा बांध कर पीवे, तथा चलतेमें, बैठनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेतां, रांधतां, धान छडतां, पीसतां, औपधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजल, तबोलका उगाल गेरतां, उपयोगसें न करे, तथा धर्ममे अनादर करे, देव, गुरु, अरु साधर्मीसे द्वेष धरे, जिनमंदिरका धन खावे, अधर्मीकी संगति करे, धर्मीयोका उपहास करे, कषाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकर्म करनां, पापकी नौकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध है, यह पांच प्रकारका विरुद्ध श्रावककों त्यागना चाहिये.

अथ उचित आचरण कहते हैं. उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है. स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रंथसें लिखते हैं. एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा भाइयोंके साथ. चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, छठा स्वजनके साथ, सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवालोंके साथ, नवमा परतीर्थी अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणां.

हो जावे, अरु लोकोंमें निंदा होवे. ऐसेंही माता, पिता अरु नाइके स मान जो और जन हैं, तिनोंके साथनी यथोचित उचिताचरण विचार ह नां ॥ यतः ॥ जनकश्चोपकर्त्ता च, यस्तु विद्यां प्रयछति ॥ अन्नदः प्राण श्चैव, पंचैते पितरः स्मृता ॥ १ ॥ राजपत्नी गुरो पत्नी, पत्नीमाता तथैव च ॥ स्वमाता चोपमाता च, पंचैता मातरः स्मृताः ॥ २ ॥ सहोदरः सह ध्यायी, मित्रं वा रोगपालकः ॥ मार्गे वाक्यसखा यश्च, पंचैते भ्रातर स्मृता ॥ ३ ॥ अस्यार्थः सुगम ॥ तथा अपणे नाइकों धर्मकार्यमे अवश्य प्रेरणा करे, नाइकी तरें मित्रके साथनी उचिताचरण करे

॥ अथ स्त्रीके साथ उचित कहते हैं स्त्री विवाहिताके साथ स्नेह सं युक्त वचन बोलकें स्त्रीकों अनिमुख करे, वल्लन, और स्नेह संयुक्त वचन, निश्चय प्रेमका जीवन है, तथा स्त्री पासों स्नान करावे, अपणा स्नान प गचंपी प्रमुखमें स्त्री प्रत्यें प्रवर्त्तावे, जब स्त्री विश्वास पा करकें सच्चा स्नेह धरेगी, तब कदापि बुरा आचरण न करेगी, तथा देश काल कुटुंब धना दि उचित वस्त्राभरण देवे, क्योंकि अलंकार संयुक्त स्त्री लक्ष्मीकी वृद्धि करती है, तथा स्त्रीकों रात्रिमें कहीं जाने न देवे, तथा कुशील पुरुषकी अरु पाखंमी नगत योगी योगीकोंकी संगति न करणे देवे, स्त्रीकों घरके काममे जोड देवे, तथा राजमार्गमें वेश्याके पाडेमे न जाने देवे, धर्मकृत्य पडिक्कमणा सामायिकादिक जे कर करणे वास्ते धर्मशाला उपाश्रयमें जावे, तदा माता बहिनादि सुशील धर्मिणी स्त्रीयोंकी टोलीमें जावे, आवे. घरका काम, दान देना, सगे संबंधीका सन्मान करणां, रसोइका कारण करणां, यह सब करे, तथा प्रनात समये शय्या उगावे, घर प्रमार्जन करे, दूधके बर्त्तन धोवे, चौकादि चुल्लेकी क्रिया करे, तथा नाम्मे धोने, अन्न पीसणां, गौ, नैंस दोहनी, दहि विलोनां, रसोइ करणी, खाने वालोंकों पुरोसनां, जूठे बर्त्तन शुचि करने, सासु, नरतार, नणंद, देवर, इतनोका विनय करनां, इत्यादि पूर्वोक्त कामामे स्त्रीकों जोडे, अर्थात् काम करणेमें तत्पर करे जे कर स्त्रीकों पूर्वोक्त कामोमें न जोडे, तब स्त्री, चपलतासे विकारको प्राप्त हो जाती है, काममे लगे रहनेंसें स्त्रीकी रक्षा, गोपना होती है, तथा नरतार स्त्रीके सन्मुख देखे, बोलावे, गुणकीर्त्तन करे, धन, वस्त्र, आ नूषण देवे, जिस तरे स्त्री कहे, उस तरे करे, स्त्रीकों दूर न छोडे, तब

नरतार उपर अत्यंत प्रेम हो जाता है, तथा स्त्रीकों न देख अतिदेखनेंसें, देख कर न बुलानेसें, अपमान देनेसें, अहंकार कर इन पूर्वोक्त बातोंसें प्रेम टूट जाता है.

तथा नरतार बहुत परदेशमें रहे,तब स्त्री कदाचित् अनुचित काम कर देवे, इस वास्ते बहुत काल परदेशमेंनी न रहनां चाहिये, तथा स्त्रीका अपमान न करे, स्त्री नूल जावे, तो शिक्षा देवे, रूस जावे, तो मना लेवे, तथा धनकी हानी वृद्धि, घरका गुह्य, स्त्रीके आगें प्रगट न करे,तथा क्रोधमें आ करकें दूसरी स्त्री न विवाहे, क्योंकि दो स्त्री करनी महा दुःखों का कारण है, कदाचित् संतानादिकके वास्ते दो स्त्रीनी कर लेवे, तदा दोनों उपर समनावसें प्रवर्त्ते, तथा स्त्री किसी काममें नूल जावे, तदा ऐसी शिक्षा देवे, कि जे कर फेर वो स्त्री,उस कामकों न करे, तथा रूसी स्त्रीकों जे कर नहिं मनावे, तो सोमनट्ट नार्या अंबावत् कूवेमें गिर पडे, इत्यादि अनर्थ करे. इस वास्ते स्त्रीसें सर्वकाम, स्नेहकारी वचनोंसें करावे, नतु कठिनतासें.

जेकर निर्गुण स्त्री मिले, तब विशेष करकें नरमाइसें प्रवर्त्ते, परंतु स्त्रीकों घरमें प्रधान न करे, जिस घरमें पुरुषकी तरे स्त्री सामर्थ्य प्रधान पणा करे, वो घर नष्ट हो जाते हैं, यह कहनां, बाहुल्यतासें है, क्योंकि कोइक स्त्री तो ऐसी बुद्धिमान होती है, किः– जेकर उसकों पूछके कार्य करें, तो बहुत गुणके ताइ होता है, जैसें तेजपालकी नार्या, अनुपदेवीकों तेजपाल अरु वस्तुपाल पूछके काम करते थे, तथा स्त्री जब धर्म कार्योंमें तप करे, चारित्र लेवे, उद्यापन करे, दान देवे, देवपूजा, तीर्थयात्रादि करे, तथा यह बातोंकों करनेका मनमें उत्साह धरे, तब धन देवे, सुशील सहायक दे के उसका मनोरथ पूर्ण करे, परंतु अंतराय न करे, क्योंकि स्त्री जो धर्मकृत्य करेगी उसमेंसें पतिकोंनी पुण्य होगा, क्योंकि रति उस कृत्य करणेमें बहुत राजी रहे है ॥ इति ॥ ५ ॥

५ अथ पुत्रके साथ उचिताचरण लिखते हैं. पिता अपने पुत्रकों बाल अवस्थामे बहुत मनोज्ञ पुष्टाहारसे पोषे, स्वेछा नाना प्रकारकी क्रीडा करावे, क्योंकि मनोज्ञ पुष्ट आहार देनेसे बालकको बुद्धि, बल, अरु कांतिकी वृद्धि होती है, स्वेछा क्रीडा करानेसे शरीर पुष्ट होता है, अरु अं

गोपांग संकुचित नहीं होते हैं ॥ यतंति ॥ श्लोक ॥ लालयेत् पंच वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ॥ प्राप्ते षोडशमे वर्षे, पुत्रोमित्रवदाचरेत् ॥ १ ॥ तथा गुरु, देव, धर्म अरु सुखी स्वजन, इनकी संगति करावे, जली जाति कुलआचार, शीलवान् ऐसा पुरुषके साथ मित्राचार करावे, क्योंकि गुरु आदिकका परिचय होनेसें बाल्यावस्थामें जली वासनावाला हो जाता है वल्कलचीरीवत् जाति, कुल, आचारशील संयुक्तकी मित्रतासें, दैवयोगसे कदापि अनर्थजी आ पडे. तोजी जले मित्रकी सहायसें कष्ट दूर हो जाता है, जैसें अजयकुमारके साथ मित्रता करनेसें आर्द्रकुमारकों जली वासना हो गइ. तथा जब अढार वर्षका पुत्र हो जावे, तब उसका विवाह करे क्योंकि बाल्यावस्थामें वीर्यक्षय हो जानेसें बुद्धि, पराक्रम अरु आयु अधिक नहीं होता है, सर्व जैनमतके शास्त्रोंमें ऐसेही लिखा है, कि जब पुत्रकों जोगसमर्थ जाने, तब पुत्रका विवाह करे, तथा जिस कन्यासें विवाह करावे, उस कन्याका कुल, जन्म, रूप, सरिखा होवे, तब विवाह करावे, तथा पुत्रके उपर घरका जार सर्व गेरे, घरका स्वामी बना देवे तथा जिस कन्यामें सरिखे गुण न होवे, उसके साथ विवाह करानां महा विडंबना है, विवाहजेद आगें लिखेंगे, जब पुत्रके उपर घरका जार होवेगा. तब चिताक्रांत होनेसें कोइजी स्वछंद उन्मादादि न करेगा, क्योंकि वो जान जावेगा कि धन, बडे क्लेशोंसे प्राप्त होता है, इस वास्ते अनुचित व्यय न करनां चाहियें, ऐसा वो आपसें जान जावेगा, परंतु पुत्रकी परीक्षा करकें पीछें उसके घरका जार माल देवे, जैसे प्रसेनजित राजानें श्रेणिकपुत्रकों दीया, तथा पुत्रकी तरें पुत्रीके साथ अरु जत्तीजादिकके साथ जी यथायोग्य उचित जान लेनां, ऐसेंही बेटेकी बहूके साथजी धनश्रीकी तरें उचिताचरण करे, तथा प्रत्यक्ष पणे पुत्रकी प्रशंसा न करे, तथा जब कष्ट पडे, तब दुःख सुखकी बात कहे. तथा आय व्ययका स्वरूप कहे, तथा पुत्रकों राजसजा देखावे, क्योंकि क्या जाने बिना विचारे कोइ कष्ट आ पडे. तब क्या करे? तथा कोइ दुष्टजन उपद्रव करे देवे तब राजसजा बिना बूटकारा नहीं होता है॥ श्लोक ॥ तत्पठति ॥ आर्या ॥ गंतव्यं राजकुले, द्रष्टव्याराजपूजितालोका॥ यद्यपि न जवंत्यर्था, स्तथाप्यनर्था विलीयंते ॥ १ ॥ तथा पुत्रकों परदेशका आचार, व्यवहारादिकसें जानकार

,, क्योंकि प्रयोजनके वशसें कदा काल देशांतरमेंजी जानां पडे, तो कोइ इष्ट न होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष उचित करे.

६ अब सगोंके साथ उचित करणां लिखते हैं, पिता, माता, स्त्रीके पक्षके जो लोक हैं, तिनकों स्वजन कहते है, यह स्वजनोंका कोइ घरके वडे काममें तथा सदा काल सन्मान करे, तथा आपनी स्वजनोंके काममें अग्रेश्वरी वने, जो स्वजन धनहीन होवे, रोगातुर होवे, तिसका उद्धार करे, क्योंकि स्वजनका जो उद्धार करणां है, सो तत्त्वसें अपणाही उद्धार करणां है तथा स्वजनके परोक्ष उनकी निंदा न करे, तथा स्वजनके वैरीयोंसें मित्राचारी न करे, स्वजनादिकसें प्रीति करणी होवे, तदा शुष्क कलह, हास्यादि, बचनकी लडाइ न करे, स्वजन घरमें न होवे, तो उसके घरमें एकिला न जावे, देव, गुरु, धर्म अरु धनके कार्यमें स्वजनोंके साथ सामिल रहे. जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया होवे, असे स्वजनके घरमें एकिला न जावे, तथा स्वजनोंके साथ लेने देनेका व्यापार न करे॥ तथाह ॥ यदीछेद्विपुलां प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत् ॥ वाग्वादमर्थसंबंध, परोक्षे दारदर्शनम् ॥ १ ॥ तथा इस लोकके कार्यमें स्वजनोंके साथ एक चित्त रहे, अरु जिनमंदिरादि कार्यमें तो विशेष करकें स्वजनसेंही मिलकें करे, क्योंकि असे कार्य जे कर बहुतोंसें मिलकें करे, तोही शोभा है. इत्यादि स्वजनोचित जाननां.

७ अब गुरुउचित कहते हैं. धर्माचार्यके साथ उचित नक्ति आंतरंगकी बहुमान, वचन, कायाका आवश्यक प्रमुख कृत्य करणां, गुरु पासों शुद्ध श्रद्धा करके धर्मोपदेश श्रवण करणां. गुरुकी आज्ञा माने मनसेंजी गुरुका अपमान न करे, गुरुके अवर्णवाद किसीकों बोलने न देवे, गुरुकी प्रशंसा सदा प्रगट करे, गुरुके प्रत्यक्ष वा परोक्ष स्तुति करे, गुरु स्तुति जो है, सो अगणित पुण्यबंधनेका कारण है, गुरुके छिद्र कदापि न देखे, गुरुसें मित्रकी तरें अनुवर्त्तन करे, गुरुके प्रत्यनीक निंदकको सर्व शक्तिसे निवारण करे, कदाचित् गुरु, प्रमादके वशसें कहीं चूक जावे, तब एकांत हितशिक्षा देवे, अरु कहे कि हे नगवन्! तुम सरीखोंकों यह काम करणां उचित नहि, गुरुका विनय करे. गुरुके सन्मुख जावे, गुरु निकट आवे, तो आसन छोडकें खडा हो जावे, गुरुकों आसन देवे, गुरुकी पग

चंपी करे, गुरुकों शुद्ध, निर्दोष, वस्त्र, पात्राहारादि देवे, यह द्रव्योपचा करे, अरु नावोपचार सो गुरुका परदेशमें सदा स्मरण करे, इत्यादि.

८ अब नगर निवासी जनोंका उचित कहते है. जिस नगरमें रहे, उस नगरके निवासी जनोके साथ उचित इसी प्रकारसें करनां कि:- अपणे सरीखी जीन व्यापारीयोंकी वृत्ति होवे, उनके साथ जो एकचित्तसें सुख, दुःख, व्यसन, कष्ट, राजउपद्रवादिमें बराबर रहे, उनके उत्साहमें उत्साहवान् होवे, राजदरबारमें किसीकी चुगली न करे, तथा नगरनिवासीयोंसें फटे नहीं, सर्वसें मिल कर राजका हुकुम करे, क्योंकि जब निर्बल पुरुष बहुते एकिठे होकें कार्य करे, तब तृणरज्जुवत् बलवान् हो जाते हैं, जब विवाद हो जावे, तब निःपक्ष होकें कार्य करे, किसीसे लंचा ले कें कूडा काम न करे, तथा किसीसें थोडीसी लडाइ हो जावे, तो उसका राजमें पुकार न करे, तथा राजाके कारनारीयोंसें लेने देनेका व्यापार न करे, क्योंकि उनलोकोंकों नाणां देनेके अवसरमें क्रोध आ जाता है, तब वो कोइ और अनर्थ कर देते है, तथा समानवृत्ति नागरोंकी तरें असमान वृत्ति वाले नगरनिवासीयोंके साथनी यथायोग्य उचिताचरण करे ॥ ८ ॥

९ अथ परतीर्थी परमत वालोके साथ उचिताचरण लिखते हैं. जो परमतवाला निक्षाके वास्ते उसके घरमें आवे, वो सर्वका उचित करे, तथा राजाका माननीयका विशेष उचित करे, उचित कृत्य सो यथायोग्य दान देना चाहे, जे कर उन साधुओंकी मनमें नक्ति नहीनी होवे, तोनी घरमें मांगने आयेकों देनां चाहिये, क्योंकि—दान देनां यह गृहस्थका धर्मही है, तथा महंत कोइ घरमें आ जावे, तो आसन, दान, सन्मुख जाना, उठके खडा होनां प्रमुख करे, तथा परमतवाला किसी कष्टमें पडा होवे, तदा उसका उद्धार करे, दुःखी जीवोंकी दया करे, पुरुषापेक्षा मधुर आलापादि करे, तथा अन्यमतवालेकों कामका पूछनादि करे. जैसें कि आपका आना किस प्रयोजनके वास्ते हूआ है ? पीछे जो कार्य वो कहे, सो कार्य जे कर उचित होवे, तो पूरा कर देवे, तथा दुःखी, अनाथ, अंधा, बधीर, रोगी प्रमुख दीन लोकोंकी दीनताकों यथाशक्तिसें प्रतिकार करे, जो श्रावकादि पूर्वोक्त लौकिक उचिताचरणमें कुशल नहीं होवे, तो वो जिनमतमेंनी क्यां

कर कुशल होवेंगे? तिस वास्ते अवश्य धर्मार्थीयोने उचिताचरणमें निपुण होनां चाहियें ॥ इति नवविध उचिताचरणं समाप्त ॥

अब अवसरमें उचित बोलनां, यही बडा गुणकारी है, तथा औरनी जो कुशोनाकारी होवे, सो त्यागे ॥ उक्तं च विवेकविलासादौ ॥ जंनाइ, डीक, हुंकार, तथा हसनां, यह सब मुख ढांकके करे, तथा सनाके बीच नाकमें अंगुली मालके मैल न काढे, हाथ मोडे नही, पर्यस्तिका न करे, पग न पसारे, निडा विकथा न करे, सनामें कोइ बुरी चेष्टा न करे, जो कुलीन पुरुष है, सो अवसरमें हसे, तो होठ फरकने मात्र हसे, परंतु मुख फाडके न हसे, अपणा अंग बजावे नहिं, तृण तोडे नहि, व्यर्थ जूमिमें लिखे नहि, नखों करकें दांत घसे नहिं, दांतों करी नख न तोडे, अनिमान न करे, नाट चारणकी करी हुइ प्रशंसा सुनके गर्व न करे, अपणे गुणोंका निश्चय करे, बातकों समझके बोले, नीच जन जो अपनेकों हीन वचन कहे, तो उसकों बदलेका हीन वचन न बोले, जिस वस्तुका निश्चय न होवे, सो बात प्रगट न कहे, जो कोइ पुरुश कार्य करे, अरु उस कार्य करणेमें वो समर्थ न होवे, तिसकों पहिलां वर्ज देवे, कहे कि यह काम तुम न करो, तथा किसीका बूरा न बोले,जेकर वैरीका बूरा बोले, तो उसका अटकाव नहिं, परंतु सोनी अन्योक्ति करकें बोले, तथा माता, पिता, रोगी, आचार्य, पराहुणा, अन्यांगत, नाइ, तपस्वी, वृद्ध, बाल, स्त्री, वैद्य, पुत्र, गोत्री, पामर, बहिन, बहिनोइ, मित्र, इन सर्वके साथ वचनकी लडाइ न करे, सदा सूर्यकों न देखे, तथा चंड सूर्यके ग्रहणकों न देखे, ऊंडे (गहिरे) कूवेकों झूकके न देखे, संध्या समय आकाश न देखे, तथा मैथुन करतेकों, शिकार मारतेकों, नंगी स्त्रीकों, यौवनवंती स्त्रीकों, पशुक्रीडाकों, कन्याकी योनिकों, इतनेकों देखे नहीं. तथा तेलमें, जलमें, शस्त्रमें, मूतमे, रुधिरमें, इतनी वस्तुओंमें अपणा मुख न देखे, क्योंकि इस कामसे आयु टूट जाती है, तथा अंगीकार करेकों त्यागे नहिं, नष्ट हो गइ वस्तुका शोक न करे, किसीका निडाछेद न करे, बहुतोंसे वैर न करे, जो बहुतोंकों सम्मत होवे, सो बोले, जिस काममें रस न होवे, सो न करे, कदापि करनां पडे, तोनी बहुतोंसे मिलके करे, तथा धर्म, पुण्य, दया, दानादि शुन काममे बुद्धिमान् मुख्य होवे, अग्रेश्वरी

वने, तथा किसीके बूरे करनेमें जलदी अग्रेश्वरी न वने, तथा सुपात्र साधुमें कदापि मत्सर ईर्ष्या न करे, तथा अपणे जातिवालेके कष्टकी उपेक्षा न करे, पंच एकठे मिल कर आदरसें उनकी कष्ट दूर करे, तथा माननीयका मानभ्रंश न करे, तथा दरिद्रपीडित, मित्र, साधर्मिक, ज्ञातिमें वुद्धिवाला होवे, तथा गुणों करकें बडा होवे, वहिन संतान रहित होवे, इन सर्वकी पालना करे, अपने कुलमें जो काम करने योग्य न होवे, सो न करे, इत्यादि. तथा नीतिशास्त्रोक्त तथा और शास्त्रोमें जो उचिताचरण होवे, सो करे, अरु अनुचित होवे,सो वर्जे, मध्यान्हमे पूर्वोक्त विधिमें विशेष करकें प्रधान शाल्योदनादि निष्पन्न निःशेष रसवती होवे, दूसरी वार जिनपूजा, जो मध्यान्हकी पूजा, अरु भोजन, इन दोनोका कालनियम नही, क्योंकि जव भूख लगे, सोइ भोजनकाल है, इस वास्ते मध्यान्हसें पहिलांभी प्रत्याख्यान पारकें देव पूजापूर्वक भोजन करे, तो दोष नहीं. वैद्यकग्रंथोंमेंभी लिखा है, कि:— एक प्रहरमें दो वार भोजन न करे, तथा दो प्रहर उल्लंघे नहीं, क्योंकि एक प्रहरमें दो वार खानेसें रसोत्पत्ति होती है, अरु जेकर दो प्रहर पीछें न खावे, तो वलक्षय होता है.

अव सुपात्रदानादिककी युक्ति लिखते हैं. सो ऐसें है कि:— भोजन वेलामें भक्ति सहित साधुओंकों निमन्त्रणा करकें, साधुके साथ घरमें आवे, अथवा साधु स्वयमेव आता होवे तव सन्मुख जाकें आदर करे. विनयसहित संविज्ञ भावित अभावित क्षेत्र देखे, तथा सुभिक्ष दुर्भिक्षादिक काल देखे, तथा सुलभ दुर्लभादि देने योग्य वस्तु देखे, तथा आचार्य, उपाध्याय, गीतार्थ. तपस्वी, वाल, वृद्ध, ग्लान, सह असहादि अपेक्षा करकें महत्त्व, स्पर्द्धा,मत्सर, स्नेह, लज्जा, भय, दाक्षिण्य, परानुयायिपणा, प्रत्युपकार, इच्छा, माया. विलंव, अनादर, वूरा वोलना, पश्चात्तापादि ये सर्व दानके दूषण वर्जके आत्माकों संसारसें तारनेके वास्ते ऐसी वुद्धिसें वेंतालीश दूषण रहित जो कुछ घरमें अन्न, पक्वान्न, पाणी, वस्त्रादि होवे, तिसकी अनुक्रमसे सर्व निमन्त्रणा करे, अपणे हाथमें पात्र लेकें पास रही भार्यादिकसे दान दिलावे, पीछें वंदना करकें अपने घरके दरवाजे तक साथ जावे, फेर पीछा आवे. जे कर साधु न होवे, तदा विना वादलों मेघकी तरें साधुका आनां देखे, जे साधु आ जावे, तो मेरा जन्म स

...न हो जावे, इस वास्ते दिशावलोकन करे, जो नोजन साधुकों न ...या होवे, सो नोजन श्रावक न खावे, तथा जो श्रावक लष्ट पुष्ट सा...कों विना कारण अशुद्ध आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोंकों रो...ीके दृष्टांत करिकें हितकारी नहिं है. तथा जिस साधुका निर्वाह न ...ोवे. दुर्भिक्ष होवे, साधु रोगी होवे तथा और कोइ कारण होवे, तो ...स साधुकों अशुद्ध अप्राशुक आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोकों ...हतकारी होवे, तथा रस्तेके थकेकों, रोगीकों, शास्त्र पढने वालेकों, ...ोच करेकों, पारणेके दिनकों, दान देवे, तो बहुत फल होता है, इस सु...ात्रदानका नाम अतिथिसंविनाग कहते है ॥ यदागम· ॥ अतिहि संविना...ो नाम नायगयाणं ॥ इत्यादि पाठका अर्थ कहते है, अतिथि सविनाग उ...कों कहते हैं, कि जो न्यायसें आया कल्पनीय अन्न, पाणी प्रमुख, देश, ...ाल, श्रद्धा सत्कार क्रमयुक्त उत्कृष्ट नक्तिसें आत्माकों अनुग्रह बुद्धिसें, संयत साधुकों दान देवे, सुपात्र दानसें देवता संबंधी तथा औदारिकादि सवधी अद्भुत नोग इष्ट सर्व सुखसमृद्धि राज्य प्रमुख मनगमतासंयोगादि प्राप्ति, और निर्विलंब, निर्विघ्न, मोक्षफलप्राप्ति है, क्योंकि अनयदान, अरु सुपात्र दान, तो मोक्ष देते है, और अनुकंपादान, उचितदान, अरु कीर्त्ति दान, यह तीनों सांसारिक सुखनोगोंके देने वाले हैं

पात्रनी तीन तरेका कहा है. एक उत्तम पात्र साधु है, दूसरा मध्यमपात्र श्रावक है, तीसरा अविरतिसम्यग्दृष्टि, सो जघन्यपात्र है. तथा अनादर, कालविलंब, विमुख, खोटा वचन बोलनां, अरु दान देके पश्चाताप करणां, ये पांच सत्दानके कलंक है. तथा आनदके आंशु आवे, रोमाच होवे, बहुमान देवे, मीठा बोले, दान दीये पीछें अनुमोदना करे, यह पांच सुपात्र दानके नूषण है, सुपात्रदानका परिग्रह परिमाण करनेका फल, रत्नसार कुमारकी तरे होता है, यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी. इस वास्ते ऐसे साधु आदि संयोगके मिलेसें सुपात्रदान, दिन प्रतिदिन विवेकवान् अवश्य करे.

तथा यथाशक्ति नोजनावसरमे आये साधर्मीयोंकों अपने साथ नोजन करावे, क्योंकि वोनी पात्र है, तथा अंधे आदि मागनेवालोंकोंनी यथायोग्य देवे, परतु किसी मागनेवालेको निराश न जाने देवे, धर्मकी निंदा

न करावे, कठिन हृदयवाला न होवे, नोजनके अवसरमें दयावंतको पाट लगाने न चाहियें, उसमेंनी धनवान् तो विशेष करकें कपाट गावेही नहि॥ आगमेऽप्युक्तं ॥ नेव दार पिहावेई, भुंजमाणो सुसावउ ॥ णुकंपा जिणदेहिं, सड्ढाणं न निवारिया ॥ १ ॥ दिठूण पाणिनिवहं, भीं नव सायरंमि डुक्कत्तं ॥ अविसेस अणुकंपं, डुहावि सामत्थउ कुणई ॥२॥ स्यार्थः– नोजन करतां हूआ दरवाजा जडे नहिं. क्योंकि अनुकंपादा श्रावककों जिनेश्वर नगवान्ने मने नहीं करा है, जीवोंका समूहकों न नक संसारमें डुःखपीडित देखकें विशेष रहित इव्य अरु नाव दोनों तरें अनुकंपा करे, उसमें इव्यसें तो यथायोग्य अन्नादि देवे, अरु नावसें नकों सन्मार्गमें प्रवर्त्तावे, श्रीपंचमागादिकमें जहां श्रावकोंका वर्णन करा है, तहां ऐसा पाठ है, "अवगुंठिअ डुवारा" इस विशेषण करकें निक्षुक विकोंके प्रवेश वास्ते सदा किंवाड उघाडे रखे, दीनोद्धार तो संवत्सरी दान देनेंसें तीर्थंकरोनेनी करा है, कदापि काल डुकाल पड जावे, तब तो श्रावक जो होवे, सो विशेष करकें दीनोद्धार, दानादिसें करे. क्योंकि आगेंनी विक्रमादित्यके संवत् १३१५ में नद्रेसर गामके वसनें वाला श्रीमाल जाति शाह जगडु श्रावकने (११२) एक सौ बारह दानशाला करकें दान दीया है, तथा विक्रमादित्यके संवत् १४२ए में सोनी सिंहा श्रावकने २४००० मण अन्न, दीन जीवोंकों डुकालमें दीया है, तथा निर्दूषण आहार देवे, तो सुपात्र दान शुद्ध है.

तथा माता, पिता, नाइ, बहिन, पुत्र, वहू, सेवक, ग्लान, अरु बांधे हूये गौ प्रमुख इन सर्वकी चिंता करकें अर्थात् इन सर्वकों नोजन कराके पीछें पंच परमेष्टि स्मरण करके, प्रत्याख्यान पारके, सर्व नियम स्मरण करकें, साम्यतासें नोजन करे. साम्यता ऐसें जाननी कि जो अन्न, पाणी, आपसमें विरुद्ध न होवे, तथा उलटा न परिणमे, आपणे स्वनावके माफक होवे, तिसकों साम्य कहते हैं. जो पुरुष संपूर्ण जन्म तक साम्यतासें नोजन करे, वो कदी विषनी खावे, तोनी अमृत हो जावे, अरु असाम्यतासें अमृत खायानी विष हो जाता है, परंतु इतना विशेष है, कि.– साम्यतामेंनी पथ्यही खानां चाहियें, नतु अपथ्यं. तथा खानेका अत्यंत गृद्धि न होनां चाहियें, कव नाडिसें जब देव उतर जाता है, तब

सर्व जोजन बराबर हो जाता है, इस वास्ते एक क्षणमात्रका स्वादके वास्ते अति लोल्यता न करनी चाहियें, तथा अनक्ष्य अनंतकाय, बहु सावद्य वस्तु, अर्थात् बहुत पापवाली वस्तु न खावे, तथा जो थोडा खाता है, सो बहुत बलादिवान् होता है, तथा जो बहुत खाता है, सो अल्प खानेके फलवाला होता है, तथा अधिक खानेसें अजीर्ण वमन विरेचनादि मरणांत कष्टजी हो जाता है ॥ श्लोक ॥ हितमितविपक्वजोजी, वामशयी नित्यचंक्रमणशीलः ॥ उज्झितमूत्रपुरीषः, स्त्रीषु जितात्मा जयति रोगान् ॥ १ ॥ अर्थः—जो जूख लगे तो हितकारी ऐसा अन्न थोडा जीमे, वामा पासा हेठ करकें सोवे, नित्य चलनेका स्वजावशील होवे, जब बाधा होवे, तबही दिसामात्रा करे, स्त्रीसें जोग न करे, वो पुरुष रोगोंकों जींत लेता है.

अथ जोजनविधि, व्यवहार शास्त्रादिकोंके अनुसार लिखते है. अतिप्रजातमें, अतिसंध्यामें, तथा रात्रिमें जोजन न करना चाहिये, तथा सडा, वास्या, अन्न न खावे, चलता हूआ न खावे, तथा जीमणा (दाहिण) पग ऊपर हाथ रखके न खावे, हाथ ऊपर रखकें न खावे, खुल्ले आकाशमें न खावे, धूपमें बैठकें न खावे, अंधारेमें वृक्षके तलें न खावे, तर्जनी अंगुली ऊंची करकें कदापि न खावे, मुख, हाथ, पग, अरु वस्त्र, विना धोयां न खावे, नंगा हो कर मैले वस्त्रोंसें, दाहिणे हाथसें, थालकों विना पकडे, न खावे. धोती आदिक एक वस्त्र पहिरकें न खावे, जीजे वस्त्र पहिरके न खावे, जीजे वस्त्रसें मस्तक लपेटकें न खावे, यदा अपवित्र होवे, तदा न खावे, अति गृद्ध रस लंपट हो कर न खावे, तथा जूते सहित, व्यग्रचित्त, नि.केवल जूमि ऊपर बैठकें, अरु मंजे ऊपर बैठकें न खावे. विदिशिकी तर्फ तथा दक्षिणकी तर्फ मुख करकें न खावे, पतले आसनपैं बैठकें जोजन न करे, तथा आसन ऊपर पग रखकें जोजन न करे, चमालके देखते न खावे, जो धर्मसे पतित होवे, उसके देखते न खावे, तथा फूटे पात्रमे अरु मलीन पात्रमें न खावे. जो शाकादिक वस्तु विष्टासें उत्पन्न होवे, सो न खावे, बालहत्यादि जिसने करी होवे इनने तथा रजस्वला स्त्रीने जो वस्तु स्पर्शी होवे, तथा जो वस्तुको गाय, श्वान, पंखीने सूंघी होवे. तथा जो वस्तु अजाणी होवे, तथा जो वस्तु फेरके उष्ण करी होवे. सो न खावे,

तथा बचबचाट शब्द करकें न खावे, तथा मुख फाटे तो बुरा लगे ऐसे मुख करकें न खावे, तथा भोजनके अवसरमें दूसरोंकों बुलाकें प्रीति उप जावे, अपणे देवगुरुका नामस्मरण करकें समासन ऊपर बैठकें, जो अपनी माता, बहिन, ताइ, (पितासें बडे भाइकी औरत) भाणजी. स्त्री प्रमुखने राध्या होवे, सो पवित्र पणे भोजन परोसा हूआ उसकों, मौन करकें दाहिना स्वर चलते खावे. जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सूंघके खावे, इसमे दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल. अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखकें स्वाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावे, तो रस हण्या जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति लवण खावे, तो नेत्र बिगड जाते है, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहित हो जाती है, तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कौडा द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जाता है, तथा कषायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं

जो पुरुष शाक न खावे, अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे,तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष, रोगोकों जीत लेता है, भोजन करती वखत पहिलां मीठा अरु स्निग्ध भोजन करे,वीचमें तीक्ष्ण भोजन करे,पीछें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ स्निग्धमधुरैः पूर्वं,मश्नीयादन्वित रसैः ॥ द्रव्याम्ललवणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः॥

तथा जो पहिलां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कडुआ रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवत अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीको भोजनसे पहिलां पीवे, तो मंदाग्निका जनक है. तथा भोजनके बिचमे पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा भोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान है,भोजनके अनंतर सर्वरससें लिप्त हुये हाथसे एक चलु रोज पीवे; पशुकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीछें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसे पाणी न पीवे.पाणी थोडा पीणा पथ्य है.पाणीसें भीजे हुये हाथोंकों गला,तथा कपोल, हाथ, नेत्र,इतने स्थानोंमें न लगावे,न पूंजे,गोडे (जानु) का स्पर्श करे,तथा अंगमर्दन,दिसा जाना,भार उठाना, बैठना,स्नान

करनां, ये सर्व भोजन कीया पीछें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमान पुरुष भोजन करकें बैठ जावे, तो पेट बडा हो जाता है, तथा उपरिकों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल वधे, वामे पासें सोवे, तो आयु वधे, भोजन करकें दौडे, तो मरण होवे, भोजन कीयां पीछें वामे पासें दो घडी तांई सोवे, परन्तु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नही तो सौ पग (सौ फिंग) चले, (फिरे) अन्यत्रभी कहा है कि देवकों, साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोंकों, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्रसूर्यके ग्रहणमें जे कर शक्ति होवे, तो विवेकवान् पुरुष भोजन न करे. ऐसेही "अजीर्ण प्रभवारोगा" इस वास्ते अजीर्णमेंभी भोजन न करे.

" ज्वरकी आदिमें लंघन करना श्रेष्ठ है, परतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोधज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर तथा नेत्ररोगके हूये लंघन करे.

- तथा देव गुरुके वंदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते वखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करता, वडा पुण्य कार्य आरंभ करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, भोजन न करनां चाहियें. तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें बहुत गुणकारी है, तथा भोजन करा पीछें नमस्कार स्मरण करके उठे, चैत्यवंदना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे, तथा भोजनके पीछें गंठिसहित दिवसचरिमं प्रत्याख्यान विधिसें करे, पीछें गीतार्थ साधु, गीतार्थ श्रावक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपे स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंकों पढावे, स्वाध्याय करे, पीछें संध्यामें जिनपूजा करे, पीछें पडिक्कमणा करे, पीछें स्वाध्याय करे, पीछें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचंपी करे, पीछें घर जा कर सकल परिवारकों जोडकें धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमार्गें तो श्रावककों एक वारही भोजन करना चाहियें ॥ यदुक्तंच ॥ उस्सग्गेणं तु सड्ढोय, सचित्ताहार वज्जउ ॥ इक्कासणग भोइअ, बंभयारि तहेव य ॥ १ ॥ जेकर एक भुक्त न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा भाग अर्थात् चार घडी दिन जब रहे,तब भोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घडी दिन रहनेसें पहिलांही भोजन कर लेवे, पीछें यथाशक्ति चार आहार, तीन

आहार, दो आहारका त्यागरूप दिवसचरिम सूर्य उगते तांइ करे,तो मुख्य वृत्तिसे तो दिन होतेही करना चाहियें, परंतु अपवादमें रातकोंनी करे.

इतिश्री तपगच्छीय गणिश्रीमणिविजय तच्छिष्य मुनिश्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्राद्धविधिशास्त्रानुसारेण श्रावक दिनकृत्यप्रकाशक नामा नवम परिच्छेदः संपूर्ण. ॥ ९ ॥

॥ अथ दशम परिच्छेद प्रारंभः ॥

इस परिच्छेदमें श्रावकोंका एक रात्रिकृत्य, दूसरा पर्वकृत्य, तीसरा चौमासिककृत्य. चौथा संवत्सरीकृत्य, अरु पाचमा जन्मकृत्य, यह पांच कृत्य अनुक्रमसें लिखेंगे. तिसमें प्रथम रात्रिकृत्य लिखते हैं.

साधुके पास तथा पौषधशालादिमें यत्नपूर्वक प्रमार्जना पूर्वक सामायिक करकें प्रतिक्रमण करे, पीछें साधुओंकी पगचपी करे, यद्यपि साधुने श्रावकके पासों उत्सर्गमार्गमें विश्रामणादि नही करावणी, तोनी श्रावक विश्रामणा करणेके नाव करे, तो महाफल है. पीछें श्राद्धदिनकृत्य, श्रावकविधि, उपदेशमाला अरु कर्मग्रंथादि शास्त्रोंकी स्वाध्याय करे, पीछें सामायिक पारके घरमें जावे.

पीछें सम्यक्त्वमूल बारह व्रतमें, सर्वशक्तिसें यत्न करणादिरूप तथा सर्वथा अर्हत् चैत्य,अरु साधर्मिक वर्जित वासस्थानमे अनिवासरूप तथा पूजा प्रत्याख्यानादि अभिग्रहरूप, यथाशक्ति सप्त क्षेत्रमें धन खरचनरूप एता यथायोग्य सकल परिवारकों धर्मोपदेश कथन करे, जेकर श्रावक अपणे परिवारकों धर्म न कहे,तब उन परिवारकों धर्मकी प्राप्ति न होवेगी. तो इस लोक परलोकमें जो वे पापकर्म करेंगे,तो सर्व उस श्रावकको लगेंगे,क्योंकि लोकमें यह व्यवहार है कि— जो चोरकों खाने पीनेकों देवे, सोनी चोर गिना जाता है ऐसे धर्ममेंनी जान लेनां, इस वास्ते श्रावकने द्रव्य तथा नावसें अपने कुटुंबको शिक्षा देनी चाहियें, उसमें द्रव्यसें तो पुत्र, कलत्र, बेटी प्रमुखकों यथायोग्य वस्त्रादि देवे, अरु नावसें तिनकों धर्मका उपदेश करे,तथा दुःखीये सुखीयेकी चिंता करे ॥अन्यत्राप्युक्तं॥ राज्ञि राष्ट्रकृतं पापं, राज्ञः पाप पुरोहिते ॥ नर्त्तरि स्त्रीकृत पापं, शिष्यपापं गुरावपि ॥ १ ॥ धर्म देशना दीये पीछें, रात्रिका प्रथम प्रहर वीत्या पीछें, शरीरकों हितकारी श

यामें विधिसें निद्रा अल्पमात्र करे, गृहस्थ बाहुल्यता करकें मैथुनसें व
र्जित होवे,जे कर गृहस्थ जावजीव तक ब्रह्मव्रत पालने समर्थ न होवे,तदा
पर्व तिथिके दिन तो अवश्य ब्रह्मचर्यव्रत पालनां चाहिये

नींद लेनेकी विधि नीतिशास्त्रके अनुसारें यह हैः– जिस मांचेमें जीव
पडे होवे, जो खाट छोटी होवे, जांगी हुइ होवे, मैली होवे, दूसरे पाये संयु
क होवे, तथा अग्निके बले काष्ठकी खाट होवे, सो त्यागे, खाटमें तथा
आसनमें चार जातकी लकडी लगे,तब तांइ तो शुन है,परंतु पांचादि काष्ठ
लगे, तो अशुन है, तथा पूजनिक वस्तुके उपर न सोवे, तथा पाणीतें
पग नींजे न सोवे, तथा उत्तर दिशि अरु पश्चिमदिशि तर्फ शिर करके न
सोवे, वासकी तरें न सोवे, पगोंके ठिकाणे न सोवे, हाथीके दांतकी तरें
न सोवे, देवताके मंदिरके मूलगंनारेमें. सर्पकी बंबी उपर, वृक्षके हेठ,
तथा श्मशानमें सोवे नहीं, किसीके साथ लडाइ हुइ होवे, तदा मिटाके
सोवे, सोने वखत पाणी पास रखे, तथा दरवाजा जडके, इष्टदेवकों नम
स्कार करके वडी शय्यामें अछी तरें ढांकनेके वस्त्र समारकें, सर्वाहार त्या
गकें, वामा पासा नीचें करकें सोवे.

दिनकों सोवे नहीं. परंतु क्रोध, शोक, अरु मद्यके मिटाने वास्ते
तथा स्त्रीकर्म, अरु जारके थकेवेकें मिटाने वास्ते तथा रस्तेके खेदके मि
टाने वास्ते तथा अतिसार, श्वास, हिजकी प्रमुख रोग दूर करने वास्ते
सोवे, तथा जो बाल होवे, वृद्ध होवे, बलक्षीण होवे, सो सोवे, तथा
तृषा, शूल, गड, गूंमडकी वेदना करकें विव्हल होवे, सो सोवे, तथा जि
सकों अजीर्ण हुवा होवे, वाय हुवा होवे, जिसको खुसकी हुइ होवे,
तथा जिसकों रात्रिमें निद्रा थोडी आती होवे, वो दिनमेंनी सो जावे.
तथा ज्येष्ठ अरु आषाढ महीनेमे दिनमेंनी सोनां अछा है, और म
हीनोमें सोवे, तो कफ अरु पित्त करता है, तथा बहूत नींद लेनी बहुत
काल लग सूता रहनां, अछा नहीं, तथा रातकों सोवे तदा दिशावकाशिक
व्रत उच्चारकें सोवे तथा चार सरणां लेवे, सर्व जीवराशिसे खामणां करे,
अठारह पाप स्थानक व्युत्सर्जन करे, डुष्कृतकी निंदा करे, सुकृतानुमोदन
करे, तथा ॥ जइ मे हुज्ज पमाउ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीये ॥ आहा
रमुवहि देहं, सवं तिविहेण वोसरियं ॥ १ ॥ नमस्कार पूर्वक इस गा

थाकों तीन वार पढे. साकार अनसन करे, पंच नमस्कार स्मरण सोनेके अवसरमें पढे, स्त्रीसें दूर अलग शय्यामें सोवे, जेकर निकट सोवे, तब एक तो विकार अधिक जागता है, तथा दूसरा जिस वासना युक्त पुरुष सोवे, सो जितना चिर जागे नही. उतना चिर वेही वासना उस पुरुषकों रहती है, इस वास्ते स्त्रीसें अलग दूसरी शय्यामें सोवे, तथा पागल (दीवाना) हो जावे. तथा मरणावसरमें गफलत हो जावे, तोभी तिसके जो सचित्त अवस्थामें वासनाथी, वेही वासना है, ऐसें जाननां ॥ इत्याप्तोपदेशः ॥ इस वास्ते सर्वथा उपशांतमोह हो करके, धर्म वैराग्यादि भावना करके, वासित हो करके निद्रा करे, तो खोटा स्वप्न न होवे, जिस रीतिसें अछा धर्ममय स्वप्न देखे. इसी रीतिसें सोवे, जे कर कदाचित् उसका आयु समाप्तिभी हो जावे, तोभी वो अछी गतिमें जावे.

तथा सूता पीछे रात्रिमें जब जाग जावे, तदा अनादि कालका अभ्यास रससे कदाचित् काम पीडा करे, तब स्त्रीके शरीरका अशुचिपणा विचारे, अरु श्रीजंबूस्वामी तथा थूलिभद्रादि महा ऋषियोंका तथा सुदर्शनादि महा श्रावकोंकी दुष्कर शील पालनेमें दृढता विचारे, तथा कषायादि दोषके जीतनेका उपाय जो भवस्थिति अत्यंत दुःखदाता है, धर्म मनोरथ इनकी चिंतवणा करे, तिनमें स्त्रीके शरीरकों अपवित्रता, जुगुप्सनीयादि सर्व विचारे, जैसें श्रीहेमचंद्रसूरिजीने योगशास्त्रमें लिखा है. तथा पूज्यश्री मुनिसुंदर सूरिजीनें अध्यात्मकल्पद्रुममें लिखा है, तैसें विचारे, सो लेशमात्र इहा लिखते है.

चाम, हाड, मज्जा, आंदरा, चरबी, नसा, रुधिर, मांस, विष्टा, मूत्र, खेल, खंकारादि अशुचि पुजलका, पिंड स्त्रीका शरीर है. इस पिंडमें तुं क्या रमणिक वस्तु देखता है? जो विष्ठेकों दूरसें देख कर लोक थूथूकार करते है, वेही मूढ लोक विष्टे अरु मूत्रसे पूर्ण, ऐसें स्त्रीके शरीरकी अभिलाषा करते है! विष्ठेकी कोथली बहुत छिद्रोंवाली जिसके छिद्र द्वारा कृमीजाल निकलते है, अरु कृमीजालसें भरी है. ऐसी स्त्री है, तथा चपलता, माया, कूड, ठगी, इनों करकें सस्कारी हुइ है, तातें जो पुरुष मोहसें इसका संग करे, भोगविलास करे. तिसको नरकके तांइ है, ऐसी स्त्री विष्ठेकी कोथली जिसके इग्यारों द्वारोंसें अशुचि झरती है, जिस द्वारकों सूंघो,

सीमें महा सडे हूये कुत्तेके कलेवर समान दुर्गंध आती है, तो फेर कामीजन क्यों कर उन स्त्रीके शरीरमें रागांध होते है? इत्यादि स्त्रीके शरीरकी अशुचि विचारे, वो पुरुषकों धन्य है, वो पुरुष जंबुकुमार, जिसने नवपरिणीत आठ पद्मिनी स्त्री, अरु निनानवे क्रोड सौनइये छिनकमे त्याग दीया, तिसका माहात्म्य विचारे, तथा श्रीथूलिनद्र अरु सुदर्शन शेठके शीलका माहात्म्य विचारे.

कषाय जींतनेका उपाय इस तरें करेः—क्रोधकों क्षमा करकें जीते, मानकों नरमाइसें जींते, मायाकों सरलताइसें जींते, लोनकों संतोषसें जीते. रागकों वैराग्यसें जीते,द्वेषकों मित्रतासें जीते, मोहकों विवेकसें जींते, कामकों स्त्रीके शरीरकी अशुचि नावनासें जीते, मत्सरकों परकी संपदा देखके पीडा न करनेसें जींते, विषयकों संयमसें जीते, अशुन मन, वचन, अरु काया इन तीनोंकों तीन गुप्तिसें जींते,आलसकों उद्यमसें जीते, अविरतिपणाकों विरतिपणासें जींते, इस प्रकार करकें यह सब, सुखसें जीते जाते है, आगेंनी बहुत महात्माउने इनकों इसी तरे जीता है.

नवस्थिति महादुःखरूप है, क्योंकि चारों गतिमें जीव नाना प्रकारके दुःख पा रहे हैं, तिनमें नरकगतिमें तो सातों नरकोंमे क्षेत्रवेदना है,तथा पांच नरकोंमें परस्पर शस्त्रों करकें उदीरी वेदना है, तथा तीन नरकमें परमाधार्मिक देवताकृत वेदना है,आख मींचके उघाडे,इतना कालनी नरकवासी जीवोंकों सुख नही है. निःकेवल दुःखही पूर्व जन्मका करा हूआ पापोंसे उदय हूआ है. रात, अरु दिन. एक सरीखे दुःखमें जाते हैं, जितना नरकगतिमें जीव दुःखकों पावे है, उस्सें अनंतगुणा दुःख निगोदमें जीव पावे है, तथा तिर्यंचगतिमें अंकुश, पराणा. लाठी, सोटा, शृंगमोडन, गजमोडन, तोडन, छेदन, नेदन, दहन, अंकन, परवशादि, अनेक दुःख पावे है. तथा मनुष्य गतिमें गर्न, जन्म, जरा, मरण, नानाप्रकारकी पीडा, रोग, व्याधि, दरिद्रता, माता, पिता, स्त्री, पुत्रका मरणादि अनेक दुःख पावता है, तथा देवगतिमें चवनका दुःख, दासपणेका दुःख, परानव, ईर्षादि अनेक दुःख है, इत्यादि नवस्थिति विचारे.

तथा धर्ममनोरथ नावना. सो श्रावकके घरमें जो ज्ञान, दर्शन, व्रत सहित मैं दासनी हो जाऊं, तोनी अछा है, परंतु मिथ्यादृष्टिमे चक्रवर्त्ती राजानी

न होवं ? तथा कब मैं संविज्ञ सो संवेगी वैराग्यवंत गीतार्थ गुरुके पा...
स्वजनादि संग रहित प्रव्रज्या ग्रहण करुंगा ? तथा कब मै तिर्यंचके दिन्न
चके जयसें निःप्रकंप हो कर श्मशानादिमें विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करुंगा ?
तथा कब मै तपसें कृश शरीर हो कें उत्तम पुरुषोंके मार्गमें चलुंगा ? इत्या
दिक जावनासें कामके कटकको जीते ॥ इति श्राद्धविधि ग्रंथानुसार रात्रिकृत्य ।

अथ श्रावकका पर्वकृत्य लिखते है. पर्व जो अष्टमी, चतुर्दशी आदिक दि
वस, तिसमे धर्मकी पुष्टि करे तिसका नाम पौषध है, सो पौषधक जन्न
व्रतवाले श्रावककों पर्वके दिनमें अवश्य करनां चाहियें, जे कर पर्वके दि
न शरीरमें शाता न होवे तदा पौषध न कर सके, तो दो वार प्रतिक्रमण
करे, तथा बहुत वार सामायिक अरु दिशावकाशिक व्रत अंगीकार करे,
तथा पर्वदिनोमें ब्रह्मचर्य पाले, आरंज वर्जे, विशेष तप करे. चैत्यपरिपा
डी करे, सर्वसाधुर्उकों नमस्कार करे, तथा सुपात्रदान, देवपूजा अरु गु
रुनक्ति, यह सर्व, ओर दिनोंसें विशेष करे, धर्मकरणी तो सर्वदिनोमें कर
णी अछी है, जे कर सदा न करी जावे, तो पर्वके दिन तो अवश्यमेव कर
णी चाहियें सो, पर्व ये है अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, अमावास्या, यह
एक मासमे ठे पर्व, अरु पक्षमें तीन पर्व, तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एका
दशी, चतुर्दशी, यह पाच तिथि, तीर्थंकरोनें कही है. उसमें दूजके दिन
दो प्रकारका धर्म आराधना करनां. पंचमीके दिन ज्ञानकों आराधनां. अष्ट
मीकों अष्टकर्मका नाश करणां, एकादशीमे इग्यारह अंगकों आराधनां,
चतुर्दशीकों चौदह पूर्वकों आराधनां, यह पांच तथा पूर्वोक्त अमावास्या
अरु पूर्णमासी एव षट् पर्व हूये. अरु वर्षमें ठे अठाइ पर्व है चौमासी प
र्वादि पर्वोमें जेकर सर्वथा आरंज न त्याग सके, तो स्वल्प स्वल्पतर आरं
न करे. तथा पर्वके दिन सर्व सचित्ताहार वर्जे, श्रावकको तो नित्यही
सचित्ताहार वर्जनां चाहियें, जेकर शक्ति न होवे, तदा पर्वके दिन तो अ
वश्य वर्जे, तथा असे पर्वके दिनोंमें स्नान, शिर दिखाने, गूंथन करानां,
वस्त्र धोनां, वस्त्र रंगनां, गाडा हलादि चलानां, धान्यका मूढक बंधनां, को
ल्हु, अरहट चलानां, दलना, ठडनां, पीसणां, पत्र, पुष्प, फल तोडनां,
सचित्त खडी हरमलीका मर्दन करनां, धान्य काढनां, लींपनां, माटी खो
दनी तथा घर बनानां, इत्यादि आरंज सर्व यथाशक्तिसें त्यागनां चाहियें,

तथा सर्व सचित्ताहार न त्याग सके, तो नाम लेकें कितनीक वस्तु खानेकी छूट रखे, उपरांत त्याग देवे तथा छेहों अठाइयोंमें जिनवर पूजा करनां, तप करनां. ब्रह्मचर्य पालनां, छेहों अठाइयोमें चैत्र तथा आसोजकी यह जो दो अठाइ है, सो शाश्वती है, इन दोनोमें वैमानिक देवताभी नंदी श्वरादिमे यात्रोत्सव करते है तथा तीन चौमासेकी तीन अठाइ अरु चौथी पर्यूषणकी तथा दो चैत्र अरु आसोजकी, यह सब मिल कर छे अठाइ हैं.

तथा तिथि जो प्रभातसमय प्रत्याख्यानकी वेलामे होवे, सो जैनमतमें माननी प्रमाण है, सूर्योदय अनुसारे लोकमेंभी दिनका व्यवहार होनेसें माननी प्रमाण है, तथा च निशीथभाष्ये ॥ चउमासी अ वरीसे, पक्खिय पंच ठमीसु नायवा ॥ ताउ तिहिउ जासि, उदेइ सूरो न अन्नाउ ॥ १ ॥ पूआ पच्चखाणं, पडिक्कमणं तहय नियम गहण च ॥ जीए उदेइ सूरो, तीए तिहिए उ कायवं ॥ २ ॥ उदयम्मि जा तिहि सा, पमाणमिअरी कीरमाणी ए ॥ आणानंगणवञा, मिछत्त विराहण पावे ॥ ३ ॥ अस्यार्थः— चौमासी, संवत्सरी, पक्खी, पंचमी, अष्टमी, ये तिथियां सूर्योदयमे होवे, तब प्रमाण है, नान्यथा. पूजा, पडिक्कमणा. प्रत्याख्यान, तैसेंही नियम ग्रहण करनां सो जिस तिथिमें सूर्योदय होवे, तिसमें करनां चाहियें, जो तिथि सूर्योदयमें होवे, सो प्रमाण है, तथा उदय तिथि विना जो कोइ और तिथि करे, माने, सो आज्ञाका विराधक, अनवस्था कारक, मिथ्या दृष्टि है. पाराशरस्मृत्यादिमेंभी लिखा है ॥ श्लोक ॥ आदित्योदयवेलायां, या स्तोकापि तिथिर्भवेत् ॥ सा संपूर्णेति मंतव्या, प्रभुता नोदयं विना ॥१॥ उमास्वातिवाचकप्रघोषश्चैवं श्रूयते ॥ क्षये पूर्वा तिथिः कार्या, वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥ श्रीवीरज्ञाननिर्वाणं, कार्यं लोकानुगैरिह ॥ २ ॥

तथा श्रीअर्हतोंके जन्मादि पंचकल्याणकके दिनभी पर्व है, जब दो, तीन, कल्याणक होवे, तब तो विशेष करके पर्व माननां चाहिये, शास्त्रों में सुनते है, कि श्रीकृष्ण वासुदेव सर्व पर्व आराधनेमे अपणेकों असमर्थ जान कर श्रीनेमिनाथ अरिहंतकों पूछता हूआ कि, उत्कृष्ट पर्व कौनसा है? तब भगवान् कहते भये कि हे कृष्ण वासुदेव! मगसिर शुक्ल एकादशी, यह पर्व सर्वोत्तम है, क्योंकि इस दिन श्रीजिनेंद्रोंके पांच कल्याणिक भये है, सर्व क्षेत्रोंके मेढ सौ कल्याणिक हूये है, तब श्रीकृष्ण वासुदेवने

मौन पौषधोपवास करकें तिस दिनकों माना, तबसेंही "यथा राजा तथा प्रजा." यह रीतिसें सब लोक एकादशी मानने लगे, सो आज तांइ प्रसिद्ध है.

तथा दूज, पंचमी, अष्टमी,एकादशी, चतुर्दशी,इन तिथियोमें प्रायः जीवोंका परनवायु बंधता है, इस वास्ते इन तिथियोंमें विशेष धर्मकरणी करे, तथा पर्वके महिमाके प्रजावसें अधर्मी निर्दयादिनी धर्मी अरु दयावान् हो जाता है, कृपणनी धन खरच देते हैं, कुशीलनी सुशील हो जाते हैं. वो जयवंत रहो, कि जिसने संवत्सरी, चातुर्मासी आदि अष्ठ पर्व कथन करे हैं, क्योंकि जो अनार्योंके चलाये पर्व है,तिनमें आग जलानां,जीव मारने, रोनां, पीटनां, धूल उमानी, वृक्षोंके पत्रादि तोडने, इत्यादि नाना प्रकारके पाप होते हे, अरु जो पर्व, परमेश्वर अरिहंतने कहे हैं, उनमें तो निःकेवल धर्मकृत्यही करना कहा है, इस वास्ते पर्वदिनमें पौषधादि करे, पौषधके नेद, अरु विधि,यह सब श्राद्धविध्यादि शास्त्रोसें जान लेना ॥ इति

अथ चौमासिककृत्य विधि लिखते है, चौमासेमें विशेष करके नियम व्रत परिग्रह परिमाण करनां चाहिये, वर्षा (चौमासेमें) बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते विशेष नियमादि करनां चाहियें, वर्षादमें गाडा न जानां, तथा हल फेरनां न करे, तथा राजादन, अर्थात् खिरनी आंबादिमें कीडे पड जाते है, सो न खाने चाहियें, देशोंका विशेष अपनी बुद्धिसें समझ लेनां, तथा नियमनी दो तरेके है, एक सुनिर्वाह, दूसरा दुर्निर्वाह, तिनमें धनवतोंकों व्यापार, अरु अविरतियोंकों सचित्तका त्याग, रसका त्याग, तथा शाकका त्याग करनां, अरु सामायिकादि ये अंगीकार करनां, यह दुर्निर्वाह है. अरु पूजा, दान, महोत्सवादि सुनिर्वाह है, अरु निर्धनोंकों इस्सें विपरीत जान लेनां, तथा चित्त एकाग्र करनां. यह तो सर्वहीकों दुःष्कर है, इनमें दुर्निर्वाह नियम न हो सके तो सुनिर्वाह नियम अंगीकार करे, तथा चौमासेमें ग्रामांतर न जावे, जे कर निर्वाह न होवे तो जिस गाममें अवश्य जानां है, तिसकों वर्जके और जगें न जावे. सर्व सचित्तका त्याग करे, निर्वाह न होवे. तो परिमाण करे, तथा दो, तीन वार जिनराजकी अष्टप्रकारी पूजा करे.संपूर्ण देववंदन सर्व जिनमंदिरोमें जिनबिंबोंकी पूजा वंदना करनी,स्नात्रपूजा महामहोत्सव, प्रनावनादि करे, गुरुकों वृहत्‌वंदना तथा और साधुओंकों प्रत्येक वंदनाकरे.

चुविंशतिस्तवका कायोत्सर्ग करे, अपूर्वज्ञान पढे, गुरुकी वैय्यावृत्य करे, ब्रह्मचर्य पाले,अचित्त पाणी पीवे,सचित्तका त्याग करे, बासी, विदल, रोटी, पूरी, पापड, वडी, सूका साग, पत्ररूप हरिया साग, खारक, खजूर, द्राक्ष, खांम, शुंठ्यादि,यह सर्व, नीली फूलण, कुंथुआदि लट कीडे पडनेसें खाने योग्य नहिं रहते है, इस वास्ते इनका त्याग करे, कदाचित् औषधादि विशेष कार्यमें लेनी पडे, तो सम्यग्रीतिसें शोधकें लेवे, तथा खाट, स्नान, शिरगुंदानां, दातण, पगरखा, इनका त्याग करे, तथा नूपण, वस्त्र रगनेका निषेध करे, तथा घर, हाट, नीत, स्तंन, खाट, पाट,पट्टक,पट्टिका, शिका, अरु घृत तैलादिकका वासण, इंधन धान्यादि सर्व वस्तुमें नीली फूली हो जाती है. तो इसकी रक्षा वास्ते पहिलांही चूना आदि खार लगा देवे, मैल दूर करे, धूपमें न गेरे, शीतल स्थानमें रख देवे, तथा दिनमें दो तीन वार जल बाणे, स्नेह, गुड, छाछ प्रमुखके वासणका मुख यत्नसें ढककें रखे, तथा उसामणका अरु स्नानका पाणी, जहां जीव न होवे, तहां पृथक् पृथक् नूमिमें थोडा थोडा गेरे, तथा चूला अरु दीपक प्रमुख उघाडा न छोडे, तथा खंमनां, पीसनां, रांधनां, वस्त्र नाजन धोने, इत्यादि कामो देख कें यत्नसें करे, तथा जिनमंदिर अरु धर्म शालाको समराकें रखे,तथा यथाशक्ति उपधान तप प्रतिमा मासादि वहे,तथा कषाय अरु इंड्रियकों जीते, तथा योगशुद्धि तप. बीशस्थानक तप, अमृत अष्टमी तप, एकादशांग तप, चौदह पूर्वतप, नमस्कार तप, चौवीश तीर्थकरके कल्याणिक तप, अक्षयनिधि तप, दमयंती तप, नइमहानइादि तप, संसारतारण अठाइ तप, पक्ष मासादि विशेष तप करे, तथा रात्रिकों चतुर्विध आहार, त्रिविध आहार त्याग करे, पर्वदिनमें विकृति त्यागे, पर्व दिनमे पौषधोपवासादि करे, तथा निरंतर पारणेमे अतिथिसंविनाग करे, चातुर्मासिक अनिग्रह पूर्वाचार्योंनें इस तरेसें लिखा है, ज्ञानाचारमें, दर्शनाचारमें, चारित्राचारमें, तपआचारमें, तथा वीर्याचारमें इत्यादि अनेक प्रकारका अनिग्रह करे. सो इस रीतिसें है —ज्ञानाचारमे शक्ति अनुसारें सूत्र पढे, सुने. चिते, तथा शुक्ल पंचमीकों ज्ञानकी पूजा करे, तथा दर्शनाचारमें काजा काढे. अर्थात् समार्जना करे, देहरेमें लीपे, गुंहली करे. मांमली करे, चैत्यजिनप्रतिमाकी पूजा करे, देववंदना करे, जिनबिंबोंकों निर्मल करे,

तथा चारित्रमें जूयांकी यत्ना करे, वनस्पतिमें कीडे पडे खार न देवे, इंधनमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमें जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीकों कलंक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी अरु गुरुकी सोगंद न खावें, किसकी चुगली न करे, किसीके अवर्णवाद न बोले, माता पितासें छाना काम न करे, निधान तथा पडा हूआ धन देख के जैसें शरीर और धर्म न विगडे, तैसें करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पाले, रात्रिकों स्वदारासें संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इच्छा परिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करें, तथा स्नानका, उवटनेका, विलेपनका, आभरणका, फूलका, तंबोलका, बरासका, अगरका, केशरका, कस्तूरिका, इतनी भोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीठ, लाख, कुसुंभा, नील, इनसें रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नीलमणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंबीर, जंबरूक, जंबू, राजदन, नारंगी, शंतरा, वीजोरा, काकडी, अखोड, वदाम, कोठफल, टींवरू, विल, खजुर, द्राक्ष, दाडिम, उत्तिजका फल, नालिअर, अवली, बोर, वीलूक फल, चीभडा, चीभडी, कयर, करमेदा, भोरड, निंबू, आंवली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया हूआ नाना प्रकारके फूल, पत्र, सचित्त, वहुवीजा, अनंतकाय, इतनी वस्तु वर्जे, तथा विगय अरु विगयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणेका, हल वाहनेका, स्नानकी वस्तुका परिमाण करे, तथा खंमनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण करे, झूठी साख न देवे, तथा पाणीमे कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण करे. व्यापारका परिमाण करे. चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ सभाषण करना, स्त्रीकों देखनां त्यागे. तथा अनर्थदंड त्यागे, सामायिक, पौषध करे, अतिथिसंविभाग करे. इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे. तथा जिनमंदिरको देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संभाल करे, पर्वमें तप करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका छाननां देवे, तथा औषधी देवे, साधर्मीवत्सल यथाशक्ति करे, गुरुकी विनय करे, मास मासमें सामायिक करे, वर्षमें पौषध करे ॥ इत्यादि ॥ इति श्राद्धआह्निक चौमासिक नियमस्वरूप कथनं समाप्तं ॥

अथ श्रावकोंका वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी लिखने हैं.

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वद्रव्यकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसें साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कंबल, पूंछणां, सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंम, दंमिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुकों देवे, औरनी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोनी देवे, ऐसेंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंकों देवे, ऐसेंही श्रावक, श्राविकारूप संघको नक्ति यथाशक्तिसें पहरावणादि करकें सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोंकोंनी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट, तिसमे सर्वदर्शन सर्व संघकों करे,सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहा अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्ये देवे, इस रीतिसें संघ पूजा करे, तो निर्धनकोंनी महा फल है ॥ यत. ॥ संपत्तौ नियमाशक्तौ,सहनं यौवने व्रतं ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्प,महालानाय जायते॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल करे,सो सर्व साधर्मीयोंकी अथवा कितनेककोंकी यथाशक्ति यथायोग्य नक्ति करे,तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमे, तथा और किसी कार्यमें पहिलें तो साधर्मियोंकों निमंत्रणा करकें विशिष्ट नोजन, तांबूल, वस्त्रानरणादि देवे, तथा किसी साधर्मीकों कोइ कष्ट पडे, तब अपणा धन खरचके उसका कष्ट दूर करे,जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसें सहाय करे, परदेशसें देशमें पहुंचावे, तथा धर्मसें सीदाताकों जैसें बने तैसें स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे. तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मीयोंकों विद्या पढावे, पूछना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथामे यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पौषधशालादि करावे, तथा श्राविकाके साथनी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकानी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वाली होती है. तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमे अनुरक्त होवे, वो सर्वको साधर्मिकपणे माननी चाहिये, तिसकानी माताकी तरें बहिनकी तरें बेटीकी तरें हितकरणा चाहियें, बहुत करके राजाका तो अतिथि संविनाग व्रत साधर्मीवा

त्सल करनेसेंही हो सक्ता है, क्योंकि मुनिकों तो राजपिंड लेनांही नहीं है. तिस वास्ते श्रीभरतचक्री, तथा दंडवीर्य राजादिकोंनें ऐसेही करा है. तथा श्रीसंभवनाथ अर्हतके जीवनें तीसरे भवमें धातकीखंड ऐरावतक्षेत्रमें क्षेमापुरी नगरीमें विमलवाहनराजाने-महा दुर्भिक्षमें सकल साधर्मिकादिकोंकों भोजनादिक देनेसें तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करा है, तथा देवगिरि मांडव गढमें शाह जगत्सिंहने तथा थिरापद्र नगरमें श्रीमाल आभूने तीन सौ साठ साधर्मियोंकों धन देकें अपणे तुल्य करा, तथा शाह सारंगादि अनेक पुरुषोंने बडा बडा साधर्मिवात्सल्य करा है ॥ इति ॥ २ ॥

३ तीसरी यात्राविधि कहते हैं, वर्ष वर्षमे जघन्यसें एक यात्रा तो अवश्य करनी चाहिये, यात्राभी तीन तरेंकी है, एक अष्टाइयात्रा, दूसरी रथयात्रा, तीसरी तीर्थयात्रा, तिसमें अष्टाइमें विस्तार सहित सर्व चैत्यपरिवाडी करे, इसका नाम चैत्ययात्राभी कहते हैं, तथा रथयात्रा श्रीहेमचंद्रसूरिकृत परिशिष्ट पर्वमें जैसी सांप्रतिराजाने करी है, तैसें करे, तथा महापद्मचक्रवर्त्तीने जेसें माताके मनोरथ पूरणे वास्ते करी है, तैसें करे, तथा जैसी कुमारपाल राजाने रथयात्रा करी तैसें करे ॥ इति ॥ ३ ॥

तीसरी तीर्थयात्राका स्वरूप लिखते हैं, तहां श्रीशत्रुंजय रैवतादि तीर्थ तथा तीर्थंकरोंके जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण, अरु विहारभूमि, यह सर्व प्रभूत भव्यजीवोंकों शुभभावका संपादक है, इस वास्ते संसारसें तारणे का कारण होनेसें इसकों तीर्थ कहना चाहिये. तिन तीर्थोंमें जानेसें सम्यक्त्व निर्मल होता है, अव जिनशासनकी उन्नति करनेके वास्ते जिस विधिसे यात्रा करे, सो विधि यह है,कि:—चलनेके स्थानसें ले कर यात्रा करे, तहां तक, एक वार भोजन करे, दूसरा सचित्त परिहार, तीसरा भूमिशयन, चौथा ब्रह्मचारी, पांचमा सर्व सामग्रीके हूयेभी पगें चलना, छठा सम्यक्त्वधारी पणा. तथा यात्रा वास्ते राजासें आज्ञा लेवे, विशिष्ट मंदिरोकों गजावे, विनय बहुमान सहित स्वजन और साधर्मियोंकों बुलावे,तथा गुरुकों साथ ले जाने वास्ते निमंत्रणा करे. अमारी ढंढेरा फिरावे, मंदिरमें महापूजा महोत्सव करावे, खरची रहितोंकों खरची देवे, वाहन विनाकों वाहन देवे. निराधारोंकों यथायोग्य आधार देवे, सार्थवाहकी तरें ढंढेरा फिराकें लोकोंकों उत्साहवत करे, तथा आडंबर सहित बडा चरु, घडा,

थाल,फेरा,तंबू,कडाहिया साथ लेवे,चलतां कूपादिककों सज करे, तथा गाडा, सेजवाला रथ, पर्यंक, पालखी,ऊंट,घोडा प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसंघकी रक्षा वास्ते वडे योद्धोंकों नौकर रक्खे, योद्धोंकों कवच अंगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अछे मुहूर्त्तमें, शुभ शकुनमें प्रस्थान (चलना) करे, भोजनादिसें श्रीसंघका सत्कार करकें संघप तिकातिलक देवे,आगें पीछें रखवाला रक्खे, संघके चलने उतरणेका संकेत करे, तथा संघवालोंकी गाडी आदिक टूट जावे, तो समरा देवे, अपणी शक्तिअनुसार सर्वसंघकों सहाय देवे, तथा गाम नगरमें जहां जिनमंदिर आवे, तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवाडी आदि वडा महोत्सव करे, जी र्णचैत्यका उद्धार करे, तथा जब तीर्थकों देखे, तब सुवर्ण, रत्न, मोती आदिकसें वधापना करे, लापसी, लड्डु प्रमुखका लाहणा करे, तथा साध र्मिवात्सल्य, यथोचित दान देवे, वडे उत्सवसें जब तीर्थकों प्राप्त होवे, तब प्रथम हर्षपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घट्टन, घीकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूलघर कदलीघरादि महापूजा करे, डकूलादिमय महाध्वज देवे, मांगनेवालोंकों नांहि न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सव करे, तथा तीर्थोपवास छठ प्रमुख तप कोडि लाख अक्षतादि विविध प्रकारका उजमणां ढोवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ. चौवीश, व्यासी, बावन, वहत्तरादि ढोवे,सर्व भक्ष्य भोजनके थाल ढोवे, डकूलादि मय चंडुवा पहरावणी करे, तथा अंगलूहणां, दीपक, तेल, धोती, चंदन, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (छावडी) कलश, धूपधाणां, आरति, आभरण, प्रदीप, चामर, भृंगार, स्थाल, कचोलक, घंटा, झालरी, पडहादि विविध प्रकारके वाजित्र देवे, देहरी करावे, कारीगरोकों सत्कार देवे, तीर्थके वि गडे कामकों समरावे, सार संभाल करे, तीर्थके रक्षकोंकों वहु सन्मान देवे, जैनके मंगतोंकों, दीनोंकों, उचित दान देवे. तथा साधर्मिवात्सल्य गुरुभक्ति करे, इस रीतिसें यात्रा करके तैसेंही पीछा फिरे,वर्षादि तक तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधिः ॥ इति यात्रात्रयस्वरूपं समाप्तम् ॥३॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्लिख्यते ॥ मंदिरमें स्नात्र महोत्सवमें घृतका मेरु

करे, अष्ट मांगलिक नैवेद्यादि ढोवें, बहुत बहुत जातिवत चंदन, केसर, पुष्प, अबरादि ल्यावे. सकल श्रावकसमुदाय मेले, गीत नृत्यादि आडंबर रचावे, डकूलादि महाध्वज देवे, प्रौढाडंबरसे प्रभावनादि. निरंतर तथा पर्वदिनमें करे. जेकर निरंतर अथवा पर्वदिनमेंभी न कर सके, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे. स्नात्र महोत्सवमें स्वधनकुलप्रतिष्ठादि अनुसारें सर्वशक्तिसें करे. जिनमतका महा-उद्योत करे ॥इति स्नात्रविधि ॥४॥

तथा देवद्रव्यकी वृद्धि वास्ते प्रतिवर्ष मालोद्घट्टन करे. इंद्रमाला तथा और मालाभी यथाशक्ति करे, ऐसेही पहरावणी, नवीन धोती, विचित्र प्रकारका चंडुआ, अंगलूहणा, दीपक, तेल, जातिवत केसर, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुख चैत्योपयोगी वस्तु, प्रतिवर्ष यथाशक्तिसे देवे ॥५॥

तथा सुंदर अंगी, पत्रभंगी, सर्वांगाभरण, पुष्पगृह, कदलीगृह, पूतली, पाणीके यंत्रादिककी रचना करे, तथा नाना गीत नृत्यादि उत्सवसें महापूजा रात्रि जागरण करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

तथा श्रुतज्ञानकी पुस्तकादिककी पूजा कर्पूरादिसें सदा सुकर है, अरु प्रशस्त वस्त्रादिकसे विशेषपूजा तो प्रतिमास शुक्लपंचमीके दिन श्रावककों करनी योग्य है, जे कर शक्ति न होवे, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे, इसका विस्तार, जन्मकृत्यमें ज्ञानभक्तिद्वारमें लिखेंगे॥८॥

तथा पंचपरमेष्ठि नमस्कार, आवश्यकसूत्र, उपदेशमाला, उत्तराध्ययनादि ज्ञान दर्शनका तप, इत्यादिमे जघन्य एक वार उद्यापन करे, जिसमें लक्ष्मी सफल होवे.जब जप तपका उद्यापन करे,तब चैत्य उपर कलशारोपण करे, फल चढावे, अक्षत पात्रके मस्तक उपर अक्षत देवे, जैसें भोजन उपर तांबूल देते है, तैसी तरें यहभी जान लेना. यह उपधान, उद्यापनविधि, शास्त्रांतरसें जान लेनी ॥ इति उद्यापनविधिः ॥ ९ ॥

तथा तीर्थकी प्रभावना वास्ते वाजे गाजे प्रौढाडंबरसें गुरुका प्रवेश करावे, यह व्यवहारभाष्यमें कहा है, क्योंकि इससे जिनमतकी प्रभावना होती है, तथा यथाशक्ति श्रीसंघका बहुमान करणा, तिलक करणा, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुखसें विलेपन करे, तथा सुगंधि फूल, भक्तिसें नालियरादि विविध तांबूलप्रदानरूप भक्ति करे. क्योंकि शासनकी उन्नति करनेसें तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करता है, यह कथन ज्ञातासूत्रमें है ॥ १० ॥

तथा गुरुके योग मिले हूए जघन्यसेंनी एक वर्षमें एक वार आलोचना लेवे, अपणे करे हूए सर्व पापकों गुरुके आगे कह देवे, पीछें गुरु जो प्रायश्चित्त देवे, सो लेवे, फेर उस पापकों न करे, तिसका नाम आलोचना लेनी है, ऐसी श्राद्धजितकल्पादिमें विधि लिखी है. पक्ष पीछें, चार मास पीछें, एक वर्ष पीछें, उत्कृष्ट बारा वर्ष पीछें, निश्चेंही आलोचना करे, अपणा शल्य काढनेंकों क्षेत्रसें सात सौ योजन, अरु कालसें बारा वर्ष तक गीतार्थ गुरुका अन्वेषण करे, तथा जिस गुरुके आगें आलोचना करे, सो गुरु कैसा होवे ? सो लिखते हैं. गीतार्थ होवे, मन, वचन, काया स्थिर होवे, चारित्रवंत होवे, आलोचना ग्रहणमें कुशल होवे, प्रायश्चित्तका जाणकार होवे, विषाद रहित होवे, ऐसा गुरु होवे, सो आलोचना प्रायश्चित्त देने योग्य होता है.

तिनमें गीतार्थ उसकों कहते है, कि जो १ निशीथादि छेद शास्त्रोंका मूलपाठ, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी, इनका जानकार होवे, तथा ज्ञानादि पंचाचार युक्त होवे, तथा २ आधारवत आलोचितपापका धारणे वाला होवे, ३ आगमादि पांच व्यवहारका जानने वाला होवे, तिसमेंभी इस कालमें तो जितव्यवहार मुख्य है, तिसका जानने वाला होवे, ४ प्रायश्चित्त आलोचककी लज्जा दूर करानेवाला होवे, ५ आलोचककी शुद्धि करने वाला होवे, ६ आलोचकके पापकर्म, औरके आगे न कहे, ७ जैसे वो आलोचक निर्वाह कर सके, तैसें प्रायश्चित्त देवे, ८ जो प्रायश्चित्त न करे, तिसकों इस लोक अरु परलोकका भय दिखावे, यह आठ गुण युक्त गुरु होता है.

साधुने तथा श्रावकने १ प्रथम तो अपणे गछमें गछके आचार्य आगें, २ तदयोगे (तदभावे) उपाध्यायके पास, ३ तदभावे प्रवर्त्तकके पास, ४ तदभावे स्थविरके पास, ५ तदभावे गणावछेदकके पास, स्वगछमे इन पांचोंके अभावसे संभोगी एकसमाचारी वाले गछांतरसे पूर्वोक्त आचार्यादि पांचोंके पास क्रमसे आलोचे, तिनकेभी अभावसे असंभोगी संवेगी गछमे पूर्वोक्त क्रमसें आलोचे, तिनकेभी अभाव हूआ गीतार्थ पार्श्वस्थके पास आलोचे, तिसके अभावसे गीतार्थ सारूपीके पास आलोचे, तिसके अभावे पश्चात्कृतके पास आलोचे, सारूपी उसको कहते है, कि

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंडित, अबद्धकच्छ, रजोहरण रहित, ब्रह्मचारी, स्त्रीरहित भिक्षावृत्ति होवे, अरु जो सिद्धपुत्र होता है, सो शिखसहित, अर्थात् चोटी सहित, स्त्री सहित होता है, तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चारित्र छोडकें गृहस्थके वेषवाला होता है आलोचनाके अवसरमें पार्श्वस्थादिककोंभी गुरुकी तरें वंदना करे, क्योंकि विनयमूल धर्म है, इस वास्ते वंदना करे, जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपणे आपको गुणहीन जान कर वंदना न करावे, तब तिसकों आसन उपर बैठा कर प्रणाम मात्र करकें आलोचना लेवे, तथा पश्चात्कृतकों इत्वर सामायिक आरोपण लिंग दे कर पीछेसें उसके पास यथाविधिसें आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अभावें जहां राजगृहादि गुणशील चैत्यादिकमें जहां श्री अर्हंत गणधरादिकोंने बहुत वार प्रायश्चित्त लोकोंकों दीया है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है, वास्ते तिस देवताको अष्टमादि तपसें आराधके तिसके आगे आलोचे, कदाचित् वो देवता चव गया होवे, अरु उसकी जगे और उत्पन्न हूआ होवे, तदा वो देवता महाविदेहके अर्हंतकों पूछके प्रायश्चित्त देवे, तिसके अभावें अर्हंत प्रतिमाके आगें आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे, तिसके अभावें पूर्वोत्तर मुख करके अर्हंतसिद्धोंके समक्ष आलोवे, परंतु शल्य न रक्खे, आलोचना करनेवाला पुरुष, मायारहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे, जो कोइ किसी कारणसें आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है.

आलोचना करनेवाला दश दोष वर्जके आलोचना करें, सो दश दोषका नाम लिखते हैं. १ गुरुको वैयावृत्यादिकसे खुशी करकें पीछें आलोवे, जिस्सें वो गुरु थोडा प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोडा दंड देता है, ऐसें अनुमान करकें आलोवे, ३ जे दूसरोंने देखा होवे, सो आलोवे, परंतु जो अपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसकों न आलोवे, ४ बादर दोषकों आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषकों न आलोवे, ५ सूक्ष्मदोष आलोवे, परंतु बादर दोष न आलोवे, ६ अव्यक्त स्वरसें आलोवे, ७ ऐसें गुरु समझे नहीं, ऐसें रौला करकें आलोवे, ८ आलोया हूआ बहुतोंको सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पास आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपणे अपराधकों आलोवे, यह दश दोष हैं.

आलोचना करनेसें जो गुण होता है, सो कहते हैं. जैसें बोझा उ
ने वाला भारके दूर हूए हलका होता है, तैसा पापसें वो हलका हो
ाता है, तथा पापरूप शल्य दूर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है,
ात्मपरके दोषोंसें निवृत्ति तिसकों देखकें औरभी आलोचना करेंगें, सर
ता होती है, शुद्ध हो जाता है, वो डुष्कर कामके करने वाला है,
योंकि दोषकों सेवनां तो डुष्कर नहीं है, किंतु आलोचना प्रकाश क
नां, यह डुष्कर है, तथा श्री तीर्थंकरकी आज्ञाका आराधक होता है,
ःशल्य होता है, आलोचनावालेकों ये गुण होते हैं. यह आलोचना
ंध श्राद्धजितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसारे लीखा है, आलोचना करनेसें
ाल, स्त्री, यति इत्यादि पाप तथा देवादिद्रव्यभक्षण पाप, तथा राज
त्नी गमनादि महापापभी सम्यक्रीतिसें आलोवे, गुरुदत्त प्रायश्चित्त करे,
ो दूर हो जाते है, नहीं तो दृढपरिहारि प्रमुख उसी भवमें मोक्ष कैसें
ाते? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना लेवे ॥ इति
ाद्धविध्यनुसारे वर्षकृत्यं संपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अठारह द्वारों करकें लिखते है. १ तिसमें प्रथम
चित द्वार है, सो पहिलां तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां
हनेसें धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहां श्रावककों वास
रनां चाहियें. क्योंकि और जगे वसनेसें दोनों भव बिगड जाते हैं, भी
ल्लपल्लीमें, चोरोंके गाममें, पर्वतके किनारे, हिंसक लोकोमें, डुष्ट लोकोंमे.
र्मीलोकोंके निंदकोंमें, इत्यादि स्थानमें वास न करे, परंतु जहां जिन
ैत्य होवे, जहां मुनि आते होवें, जहां श्रावक वसते होवें, जहां बुद्धि
ान् लोक स्वभावसेंही शीलवान् होवे, जहा प्रजा धर्मशील होवे, बहुत
ल, इंधन, होवे, तहां वास करे. जैसा अजमेरके पास हर्षपुर नगर था,
सें नगरमे रहनेसें धनवत, गुणवत अरु धर्मवंतकी संगतिसें विनय, वि
ार, आचार, उदारता, गंभीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती
, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते बुरे गामोंमें चाहो धन
ाप्ति होवे, तोभी वास न करे ॥ उक्तं च ॥ यदि वाछंति मूर्खत्वं, ग्रामे वस
नत्रयं ॥ अपूर्वस्यागमोनास्ति, पूर्वाधीतं च नश्यति ॥१॥

उचितस्थानभी स्वचक्र, परचक्र, परस्पर विरोध, डुर्भिक्ष, मारी,(हैजा)

प्रजाविरोध, अन्नादि वस्तुक्षय, इत्यादि कारण हो जावे, तो तत्क्षण छोड जाना चाहियें, नही तो त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी. जैसें आगें कोंके जयमें लोक दिल्लिकों छोडके गुजरातादि देशोमें जानेसें सुखी धनी हूए हैं, तथा क्षितिप्रतिष्ठित, चनकपुर, ऋषभपुर, प्रमुखके उजडनेकी व्यवस्था जान लेनी. सो इस रीतिसें है कि:- क्षितिप्रतिष्ठित उजडके चनकपुर वसा, अरु चनकपुर उजडके ऋषभपुर वसा, अरु ऋषभपुर उजडके राजगृह वसा. तथा राजगृह उजडके चंपा वसी. अरु चंपा उजडके पाटलीपुत्र अर्थात् पटना वसा ऐसें आवकभी पूर्वोक्त हानी जानें नगरकों छोडकें और जगें जा कर वसे.

तथा रहनेका घरभी अछे पडोसीयोंके पास करे. परंतु वेश्या, पंच, भिक्षाचर, श्रमण, बौद्ध, तापसादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाल, मांसी, जूआरी, चोर, नट, नचानेवाला, भाट, कुकर्मी, इत्यादिकोंके पडोसमें हाट न लेवे, न वसे, जे कर देहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथा चौकमें, धूर्तकें अरु प्रधानके पास रहे, तो धन अरु पुत्र दोनोंका क्षय होवे. तथा मूर्ख, अधर्मी, पाखंडी, पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, चंडाल, मदोन्मत्त, गुरुतल्पग, वैरी, स्वामीवंचक, लोभी, तथा ऋषि, स्त्री, अरु बालहत्या करनेवाला. इनके लोक जे कर अपणा भला चाहे, तोभी इनके पडोसमें न रहे, क्योंकि इनकी संगतिमें गुणहानी प्रमुख अनेक दूषण होते है. इस वास्ते इनके पडोसमें न रहे.

तथा भला स्थान वो होता है, कि जहा हड्डीका शल्य न होवे, ... न होवे, जहा घास उगती होवे, भला वर्ण, गंधवाली मिट्टी होवे, मधुर जल होवे. खोदता धन निकले, वो जगा शुभ है तथा जो भूमि, शीतकालमें उष्ण स्पर्शवाली होवे, अरु उष्ण कालमें शीतस्पर्शवाली होवे, वो जगा बहुत शुभ है. एक हाथमात्र भूमि पहिला खोदकें फेर तिस मट्टी करकें पोछें वो खाड भरे, जे कर मट्टी अधिक रहे, तो श्रेष्ठभूमि जाननी, अरु जो मट्टी बराबर रहे, तो समानभूमि जाननी. अरु मट्टी ओछी हो जावे तो नेष्टभूमि जाननी.तथा सौ पग चाले इतने कालमें जिस भूमिकामें पाणी न सूके, सो उत्तम भूमि जाननी. अरु जे कर सौ पग चाले इतने कालमें एक अंगुली भर पाणी शोष होवे, तो मध्यम भूमि जाननी

रु एक अंगुलीकेनी उपरात पाणी शूके, तो अधमनूमि जाननी, तथा ज्ञांतरमें जिस नूमिके खातमें फूल गेरे, वो फूल जे कर शूके नहीं, तो उत्तम नूमि जाननी, अर्द्ध शूके, तो मध्यमनूमि जाननी, अरु सर्व शूक जावे, तो अधम नूमि जाननी, तथा जिस नूमिमें व्रीहि बोइ हुई तीन दिन पीछे उगे, तो उत्तम, पांच दिन पीछे उगे तो मध्यम, अरु सातदिन पीछे उगे, तो हीन नूमि जाननी

सर्पकी वंबी उपर घर बनावे, तो रोग होवे, पोली नूमि उपर घर बनावे, तो निर्धन होवे, शल्ययुक्त नूमि उपर घर बनावे, तो मरण पावे, मनुष्यका हाड अरु केशका शल्य होवे, तो मनुष्योंकी हानी करे. खरका शल्य होवे. तो राजा प्रमुखका नय होवे, श्वानका हाड होवे, तो बालक मरण पावे, बालकका हाड होवे, तो गृहस्वामी परदेशमें उजड जावे, गौका शल्य होवे, तो गौरूप धनकी हानी होवे, मनुष्यके केश तथा कपाल अरु नस्म होवे, तो मरण देवे.

तथा प्रथमप्रहर अरु पश्चिम प्रहर वर्जकें शेष प्रहरमें वृक्षकी अरु ध्वजाकी छाया घर ऊपर पडे, तो डुःखदायी है, अर्हतके मंदिरके पीछे न वसे, ब्रह्मा और कृष्णके पास न रहे, चमिका और सूर्यके सन्मुख रहे नहीं, महादेवके तो किसी पासेंनी न रहे, कृष्णके वामें पासें अरु ब्रह्माके दाहिणे पासे न रहे, निर्माल्य (स्नानका पाणी) ध्वजकी छाया, चिते न वर्जे, जिनमंदिरके शिखरकी छाया अरु अर्हतकी दृष्टि होवे, तहां न वसे. तथा नगर अथवा गामके ईशान कोणमे घर न बनावे. बनावे, तो नीच जातिवालेकों डुःखदायी है.

घर बनावे, तो पूरा मोल देवे, पडोसीकों डुःख न देवे, घर खेती वगैरत किसीको डुःख न देवे, ऐसेही ईट, काष्ठ, पाषाण प्रमुख वस्तु निर्दोष, दृढ, बलवान्, अरु जो नवीन होवे, सो योग्य मोल दे कर लेवे, जो विक्रय होती होवे, तिसका योग्य मोल दे कर लेवे. परंतु आप ईट पकावा न लगावे, तथा जिनप्रासादादिककी ईटादि न ग्रहण करे, क्योंकि शास्त्रमेंनी कहा है, जो देहरा, कूवा, वावडी, मसाण, मठ, अरु राजाके मंदिर, इनके पाषाण, ईट, काष्ठकों, [illegible] मात्रनी वर्जे, क्योंकि इनका

पाषाणके, स्तंभ, पीठ, पट्टा, द्वार, शाखा, ये सर्व गृहस्थके घरमें, वि कारी हैं, अरु धर्मके स्थानमें सुखदायी हैं.

तथा पाषाणमय घरमें काष्ठके स्तंभ, अरु काष्ठमय घरमें, पाषा स्तंभ, मंदिरमें तथा घरमें बनानां वर्जे, तथा हलका काष्ठ, कोल्हु काष्ठ, गाडेका काष्ठ, अर्हटका काष्ठ, चरखेका काष्ठ, कांटेवाले वृक्ष काष्ठ, पंच उंबरका काष्ठ, थोहरका काष्ठ, ये काष्ठ घरमें न लगावे, त बीजोरा, केला, दाडिम, वेरी, जंबीरी, हलद, आंवलीकी कर अरु धत्तू इतनेका काष्ट वर्जे, तथा इन वृक्षोंकी जड पडोससें घरमें प्रवेश करे, थवा इनकी छाया घरमें पडे, तो कुलका नाश करे, तथा पूर्वदिशिकी ता घर उंचा होवे.तो धनका नाश करे,तथा दक्षिणदिशें उंचा होवे,तो धन वृद्धि करे, पश्चिमदिशें उंचा होवे, तो धनादिकी वृद्धि करे, उत्तर दिशि होवे, तो उजड जावे, तथा जो गोल घर होवे, बहुत कूणे वाला होवे, थवा एक कूणा दो कूणा तीन कूणा होवे, अरु दक्षिण वामो तरफ होवे, ऐसे घरमें न वसे. तथा जिस घरके कवाड स्वयमेव उघडे अरु मि वो घर सुखकारी नही.

तथा घरके द्वार आगें कलशादि चित्राम होवे, तो शुभ है, तथा गनी, नाटारंभ, भारत रामायणका युद्ध, राजाओंका युद्ध, ऋषियोंका रित्र, देवचरित्र, ये चित्राम करानां, घरमें शुभ नही, तथा फलवृक्ष, फू वेल, सरस्वती, नवनिधान, यक्षस्तंभ, लक्ष्मीदेवी, कलश, वर्द्धमान, दह स्वप्नावलि, ये चित्राम करानां शुभ है

तथा खजूर, दाडिम, केलां, कोहला, बीजोरां, ये जिसघरमें उगे, उ घरका नाश करते हैं, वटवृक्ष उगे तो लक्ष्मीका नाश करे, कांटावाले वृक्ष उगे, तो शत्रुका भय करे, बडे फल वाला वृक्ष उगे, तो संतानक नाश करे, इन वृक्षका काठनी वर्जे, तथा कोइ शास्त्र ऐसा कहता है कि घरके पूर्व बडवृक्ष होवे, तो अछा है, दक्षिणपासें उदंबरवृक्ष शुभ है, प श्चिमभागें पीपल, उत्तरपासे श्रीकृष्णवृक्ष अछा है.

तथा घरमें पूर्वदिशिमें लक्ष्मीका घर करे, अग्निकोणमें रसोइ करे, द क्षिणदिशिमें शयनकी जगा करे, नैऋतकोणमें शस्त्रशाला करे, पश्चि मदिशें भोजनक्रिया करे, वायुकोणमें धान्य संग्रह करे, उत्तर पासे जल

खनेका स्थान करे, ईशानकोणमें देवगृह करें, तथा दक्षिणपासें अग्नि, पाणी, गाय, वायु, दीवेकी भूमि बनावे, तथा वामे पासें भोजन, धान्य, द्रव्य, वाहन, देवताकी भूमि करे, यह पूर्वादि दिशा सो घरके दरवाजेकी अपेक्षासे जाननी. लौकवत्. नतु सूर्यापेक्षा.

तथा घर वनानेवाले सूत्रधार मजूर प्रमुखकों वोले प्रमाणसें कबुक अधिक मजूरी देवे, इसमें शोभा है, गृहस्थकों चाहियें वैसा घर वनावे. परंतु व्यर्थ वडा घर न वनावे, क्योंकि उसमें व्यर्थ धन खरचनां है, घरका द्वार, मर्यादासें योग्य जाणकें रखे क्योंकि बहुत दरवाजे बनानेसें दुष्ट जनोंके आने जानेसें स्त्री अरु धनका नाश हो जाता है, तथा दरवाजेका किंवाड दृढ बनावे, सांकल अर्गलादिसें सुरक्षित करे, किंवाडभी सुखें खुल जावे, ऐसे बनावे, भींतमें भोगल रखनेसें पंचेंड्रिय जीवकी विराधना होती है, किवाड भेडे, तब यत्नसें भेडे. ऐसे प्रणाला खालादि कानी यथाशक्तिसें उद्यम करे, इसी तरें देश, काल, स्वविभव उचित स्वजाति उचित घर वनाकें विधि सहित स्नात्रपूजा, साधर्मिकवात्सल्य, संघपूजा करकें भले मुहूर्तमें भले शकुनमें प्रवेश करे, तो बहुत सुखदायी होवे, त्रिवर्गकी सिद्धिका हेतु होवे ॥ इति प्रथम उचित द्वार ॥ १ ॥

२ दूसरा विद्या द्वार कहते है विद्या सो लिखित, पठित, वाणिज्यादि कलाका ग्रहण करे, अर्थात् अध्ययन करे, क्योंकि जो विद्या नही शीखता है, सो मूर्ख रहता है, पग पगमें पराभव पाता है, अरु विद्यावान् परदेशमेंभी माननीय होता है, इस वास्ते सर्व प्रकारकी कला शीखनी चाहियें. क्या जाने क्षेत्र कालके विशेषसे किस कलासें आजीविका करणी पडे? जिसने सर्वकला शीखी होवे, उसनेभी पूर्वोक्त सात प्रकारकी आजीविकामेसें जिस करकें सुखे निर्वाह होवे, सो आजीविका करणी. जे कर सर्वकला शीखने समर्थ न होवे, तब जिस कलासे अपनां सुखें निर्वाह होवे, अरु परलोकमें अछी गति होवे, सो कला शीखे, पुरुषकों दो वातें अवश्य शीखनी चाहिये, उसमें एक तो जिस्सें सुखें निर्वाह होवे सो, अरु दूसरी जिस्सें मरके अछी गतिमे जावे, यह दो वातें अवश्य शीखनी. २

३ तीसरा विवाहद्वार. सो विवाह[illegible] [illegible]शुद्धिका हेतु होनेसे उचित ही करणा चाहियें, विवाह अन्यगात्रै, सो [illegible] करना चाहिये, तथा समान

शुद्ध होवे, मजूरोंसें ठग न करे, सूत्रधार कारीगरोंकों सन्मान देवे, तथा पूर्वे जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करकें जाननी काष्ठादि जो ल्यावे, सोनी देवाधिष्ठातावनादिसें सूका ल्यावे, परंतु अविधिसें न ल्यावे, तथा आप. ईंट पकावे, तो अच्छा नहीं, नोकरोंकों काम करनेवालोंकों व्हरावसेंनी कबुक महीना अधिक देवे, क्योंकि ये लोक तुष्टमान होकें अच्छा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुन परिणामके वास्ते गुरु संघ समक्ष ऐसें कहे, कि जो इहां अविधिसें पारका धन मेरे पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसकों होवे, इसी तरें जिनमंदिर बनावे परंतु नूमि खोदनी, पूरणी, पाषाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, चिनने प्रमुखमें महा आरंन होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनाना चाहिये ? ऐसी आशंका न करनी. क्योंकि यत्नसें करकें प्रवृत्त होनेसें निर्दोष है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम.धर्मदेशना करणी, दर्शन व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रनावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हेतु होनेसें तथा शुनोदयका हेतु होनेसें कूपके दृष्टांतसें महालानका कारन है.

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यतः ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं नवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते ॥ १ ॥ जीर्णे समुद्धृते याव, त्तावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दोमहांस्तत्र. स्वचैत्यख्यातिधीरपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमच्च सेठी, कोडंबीएवि देसेणं काउं ॥ जिन्नेपुव्वायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थः– राजा, मंत्री, श्रेष्ठी, कोटंबीकोंकों उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधुनी करावे, जो जिनजवनका उद्धार करे, तिसनें नयंकर संसारसें अपणी आत्माका उद्धार करा है, ऐसा जान लेना. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही नवीन चैत्य कराना योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये हैं, अरु नवीन जिनमंदिर तो बत्तीश हजारही बनवाये हैं, ऐसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेनी नवीन जिनमंदिरों बनानेसे जीर्णोद्धार बहुत कराये हैं.

तथा जब चैत्य बनजावे, तब शीघ्रही प्रतिमा विराजमान करनी चाहियें ॥ यदाह श्रीहरिनद्रसूरि. ॥ जिनजवने जिनबिंबं. कारयितव्यं द्रुतं तु बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्येवं, तज्जवनं वृद्धिमजयति ॥ १ ॥ देहरेमें कुंडी

कलश, उरसा, प्रदीप, भंमार, बाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसें सिद्धराजराजाने, श्रीरैवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसें कुमारपालराजानें वीतनय पाटनके खुदानेसें त्रांबापत्रमें श्रीउदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करकें दीये, तैसें देवे, श्रीजिनमंदिरके बनानेका फल यह है कि:- जो यथाशक्तिसें अपणे धनके अनुसार श्रीजिनवरका नवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे,बहुत काल लग आनंद रूप,ऐसा देवविमानादिका परम सुख पावे॥५॥

६ अथ षष्ठ प्रतिमा द्वार. सो श्रीअर्हंतका बिंब,मणि,सुवर्ण, धातु, चंदनादि काष्ठ अरु पाशाण, माटी प्रमुखका पांच सौ धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ठ प्रमाण यथाशक्तिसें बनावे, श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेकों फल होता है,सो कहते है ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्तं ॥ सन्मृत्तिकामलशिलातलदंतरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचंदनचारुबिंबम् ॥ कुर्वंति जैनमिह्ये स्वधनानुरूपं, ते प्राप्नुवंति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद दोहग्गं, कुजाइ कुसरीर कुगइ कुमईउ ॥ अवमाण रोग सोगा, न हुंति जिणबिंब कारीणं ॥ १ ॥ अर्थः- जो जिनबिंबका कराने वाला है, सो दारिद्र, दौर्भाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तिर्यंचकी गति,बूरी बुद्धि, परवशपणा, रोगी, अरु शोकी पणाकों न पावे.

तथा प्रतिमाभी वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुलक्षणा संततिकी वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित द्रव्यसें बने, दोरंगादि रगवाले पाषाणकी बने जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरकी उन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका मुख, नाक, नेत्र, नाभि, कटि, इतने अंग, भंग होवे, तो वो प्रतिमाको मूल नायक न करनां चाहिये, अरु आभरण सहित, वस्त्रसहित भरण निसहित, लंछन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाको सौ वर्षसें उपर होगया होवे, अरु आगें जो प्राभाविक पुरुषकी प्रतिष्ठी हुइ प्रतिमा अतिशयवाली होवे, सो प्रतिमा जे कर खंडित होवे, तोभी पूजनें योग्य है. तथा बिंबके परिवारके पाशाणमयमें, जेकर दूसरा रंग होवे, तो वो बिंब, सुखकारी नही. जिनराजाके बिंब, सम अंगुल प्रमाण होवे, सो शुभ नही, तथा एक अंगुलसें लेके इग्यारह अंगुल प्रमाण बिंब घरमे पूजना चाहियें. इसतें उपरांत बडा बिंब जिनमंदिरमें पूजना. श्री.

शुद्ध होवे, मजूरोंसें ठग्न न करे, सूत्रधार कारीगरोंकों सन्मान देवे, तथा पूर्वें जो घर वनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करकें जाननी. काष्ठादि जो ल्यावे, सोन्नी देवाधिष्ठातावनादिसें सूका ल्यावे, परंतु अविधिसें न ल्यावे, तथा आप. ईंट पकावे, तो अन्ना नही, नौकरोंकों काम करने वालोंकों ठहरावसेंन्नी कछुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तुष्टमान होकें अच्छा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुन्न परिणामके वास्ते गुरु संघ समक्ष ऐसें कहे, कि जो इहां अविधिसें पारका धन मेरे पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसकों होवे, इसी तरे जिनमंदिर बनावे, परंतु न्नूमि खोदनी, पूरणी, पाषाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, विनने प्रमुखमें महा आरंन होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनाना चाहियें? ऐसी आशंका न करनी, क्योंकि यत्नसें करके प्रवृत्त होनेसें निर्दोष है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशना करणी, दर्शन व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रन्नावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हेतु होनेसें तथा शुन्नोदयका हेतु होनेसे कूपके दृष्टांतसें महालान्नका कारन है.

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यतः॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं न्नवेत्॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते॥ १॥ जीर्णे समुद्धृते याव, त्तावत्पुण्यं न नूतने॥ उपमर्दो महांस्तत्र, स्वचैत्यख्यातिधीरपि॥ २॥ तथा॥ राय अमच्च सेठी, कोडंबीएवि देसेणं काउं॥ जिण्णुद्धारणे, जिणकप्पीवावि कारवई॥ १॥ अर्थः— राजा, मंत्री, श्रेष्ठी, कौटंबीकोंकों उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधुन्नी करावे, जो जिनन्नवनका उद्धार करे, तिसनें न्नयंकर संसारसें अपणी आत्माका उद्धार करा है. ऐसा जान लेनां. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही नवीन चैत्य करानां योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये है, अरु नवीन जिनमंदिर तो छत्तीश हजारही बनवाये है, ऐसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेंन्नी नवीन जिनमंदिरों बनानेसें जीर्णोद्धार बहुत कराये हैं.

तथा जब चैत्य बन जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा विराजमान करनी चाहिये॥ यदाह श्रीहरिन्नद्रसूरिः॥ जिनन्नवने जिनबिंबं, कारयितव्यं द्रुतं तु बुद्धिमता॥ साधिष्ठानं ह्येवं, तद्भवनं वृद्धिमद्भवति॥ १॥ देहरेमें कुंनी

कलश, उंरसा, प्रदीप, नंमार, वाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसें सिद्धराजराजाने, श्रीरैवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसें कुमारपालराजानें वीतजय पाटनके खुदानेसें त्राबापत्रमें श्रीउदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, तैसें देवे, श्रीजिनमंदिरके बनानेका फल यह है कि.– जो यथाशक्तिसें अपणे धनके अनुसार श्रीजिनवरका नवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे,बहुत काल लग आनंद रूप,ऐसा देवविमानादिका परम सुख पावे॥५॥

६ अथ षष्ठ प्रतिमा द्वार. सो श्रीअर्हंतका बिंब,मणि,सुवर्ण, धातु, चंदनादि काष्ठ अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सौ धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ठ प्रमाण यथाशक्तिसें बनावे. श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेकों फल होता है,सो कहते है ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्तं ॥ सन्मृत्तिकामलशिलातलदंतरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचंदनचारुबिंबम् ॥ कुर्वंति जैनमिह ये स्वधनानुरूपं, ते प्राप्नुवंति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्द दोहग्गं, कुजाइ कुसरीर कुगइ कुमईउ ॥ अवमाण रोग सोगा, न हुंति जिणबिंबकारीणं ॥ १ ॥ अर्थः– जो जिनबिंबका कराने वाला है, सो दारिद्र, दौर्भाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तिर्यचकी गति.बूरी बुद्धि, परवशपणा, रोगी, अरु शोकी पणाकों न पावे

तथा प्रतिमाजी वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुलक्षणा संततिकी वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित द्रव्यसें बने, दोरगादि रगवाले पाषाणकी बने जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरकी उन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका मुख, नाक, नेत्र, नाभि, कटि, इतने अंग. नंग होवे, तो वो प्रतिमाजी मूल नायक न करना चाहिये, अरु आनरण सहित, वस्त्रसहित, मरण निसहित, लंछन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाकों सौ वर्षसें ऊपर कर देवे, हो गया होवे, अरु आगें जो प्रनाविक पुरुषकी प्रतिष्ठी हुइ ऐसी लेपना अतिमा जे कर खंमित होवे, तोनी पूजने योग्य है. तथा बिंबके अंगीकार पाषाणमयमें, जेकर दूसरा रग होवे. तो वो बिंब, सुखकारी नहीं राजाके बिंब, सम अंगुल प्रमाण होवे, सो शुन नहीं, तथा एक अंगुलसें मोदह इग्यारह अंगुल प्रमाण बिंब घरमे पूजनां चाहियें. इस्से उपरमें वसं, भी.

शुद्ध होवे, मजूरोंसें ठग न करे, सूत्रधार कारीगरोंकों सन्मान दे
तथा पूर्वे जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करकें जानने
काष्ठादि जो ल्यावे, सोभी देवाधिष्ठातावनादिसें सुका ल्यावे, परंतु अविधि
न ल्यावे, तथा आप, ईट पकावे, तो अच्छा नही, नोकरोंकों काम कर
वालोंकों ठहरावसेंभी कछुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तु
मान होकें अच्छा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुभ परिणाम
वास्ते गुरु संघ समक्ष औसें कहे, कि जो इहां अविधिसें पारका धन मे
पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसकों होवे, इसी तरें जिनमंदिर बना
परंतु भूमि खोदनी, पूरणी, पाषाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, ि
नने प्रमुखमें महा आरंभ होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनाना चा
यें ? औसी आशंका न करनी, क्योंकि यत्नसें करके प्रवृत्त होनेसें निर्दे
है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशना करणी, दर्श
व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रभावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हे
होनेसें तथा शुभोदयका हेतु होनेसे कूपके दृष्टांतसें महालाभका कारन है

अरु जीर्णोद्धारमें औसी रीति है. यत ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधा
यत्फलं भवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते ॥ १ ॥ जी
समुद्धृते याव, त्तावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दोमहांस्तत्र, स्वचैत्यख्याति
रपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमच्च सेट्ठी, कोडंबीएवि देसेणं काउं ॥ जि
पुव्वायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थ — राजा, मंत्री, श्रेष्ठ
कौटंबीकोंकों उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधु
करावे, जो जिनभवनका उद्धार करे, तिसनें भयंकर संसारसें अपणी आ
त्माका उद्धार करा है, औसा जान लेना. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही
वीन चैत्य कराना योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जी
र्णोद्धार कराये हैं, अरु नवीन जिनमंदिर तो छत्तीश हजारही बनवाये है
औसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेभी नवीन जिनमंदिरों क
रानेसे जीर्णोद्धार बहुत कराये हैं.

तथा जब चैत्य बने जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा बिराजमान करनी च
हियें ॥ यदाह श्रीहरिभद्रसूरि ॥ जिनभवने जिनबिंबं, कारयितव्य द्रुतं तु
बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्येवं, तद्भवनं वृद्धिमद्भवति ॥ १ ॥ देहरेमे कुंभी

कलश, उरसा, प्रदीप, भंमार, बाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसें सिद्धराजराजाने. श्रीरैवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसें कुमारपालराजानें वीतजय पाटनके खुदानेसें ताबापत्रमें श्रीउदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, तैसें देवे, श्रीजिनमंदिरके बनानेका फल यह है कि:— जो यथाशक्तिसें अपणे धनके अनुसार श्रीजिनवरका जवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे,बहुत काल लग आनंद रूप,ऐसा देवविमानादिका परम सुख पावे॥५॥

६ अथ षष्ठ प्रतिमा द्वार सो श्रीअर्हतका बिंब,मणि,सुवर्ण, धातु, चंदनादि काष्ठ अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सौ धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ठ प्रमाण यथाशक्तिसें बनावे, श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेकों फल होता है,सो कहते है ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्तं ॥ सन्मृत्तिकामलशिलातलदंतरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचंदनचारुबिंबम् ॥ कुर्वंति जैनमिह्ये स्वधनानुरूपं, ते प्राप्नुवंति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्दं दोहग्गं, कुजाइ कुसरीर कुगइ कुमईउ ॥ अवसाण रोग सोगा, न हुंति जिणबिंब कारीण ॥ १ ॥ अर्थः— जो जिनबिंबका कराने वाला है, सो दारिद्र, दौर्भाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तिर्यचकी गति,बूरी बुद्धि, परवशपणां, रोगी, अरु शोकी पणांकों न पावे.

तथा प्रतिमाजी वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुलक्षणा संततिकी वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित द्रव्यसें बने, दोरंगादि रंगवाले पाषाणकी बने. जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरकी उन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका मुख, नाक, नेत्र, नाभि, कटि, इतने अंग, भंग होवे, तो वो [illegible] मूल नायक न करनां चाहिये, अरु आभरण सहित, वस्त्रसहि[illegible]कों देखके सहित, लंछन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाकों सौ वर्षसें [illegible] जाना,तो हो गया होवे, अरु आगें जो प्रभाविक पुरुषकी प्रतिष्ठी हुइ [illegible] जैसे पुरु[illegible]तिमा जे कर खंडित होवे, तोभी पूजने योग्य है. तथा बिंबके [illegible]ंकरस्वामी पाषाणमयमे, जेकर दूसरा रंग होवे. तो वो बिंब, सुखकारी [illegible] गाल व बिंब, सम अंगुल प्रमाण होवे, सो शुभ नहीं, तथा एक अंगुलसें [illegible] अंग इग्यारह अंगुल प्रमाण बिंब घरमें पूजनां चाहिये. इस्सें आगमें वर्त[illegible]र

शुद्ध होवे, मजूरोंसें ठगे न करे, सूत्रधार कारीगरोंकों सन्मान देवे तथा पूर्वे जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करकें जाननी काष्ठादि जो ल्यावे, सोभी देवाधिष्ठातावनादिसें सूका ल्यावे, परंतु अविधि न ल्यावे, तथा आप, ईंट पकावे, तो अच्छा नही, नौकरोंकों काम करनेवालोंकों ठहरावसेंभी कछुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तुष्टमान होकें अच्छा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमे शुभ परिणाम वास्ते गुरु संघ समक्ष ऐसें कहे, कि जो इहां अविधिसें पारका धन मेरे पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसकों होवे, इसी तरें जिनमंदिर बनावे परंतु भूमि खोदनी, पूरणी, पाषाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, ननेमे प्रमुखमें महा आरंभ होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनाना चाहियें ? ऐसी आशंका न करनी, क्योंकि यतनसें करकें प्रवृत्त होनेसें निर्दोष है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशना करणी, दर्शन व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रभावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हेतु होनेसें तथा शुभोदयका हेतु होनेसे कूपके दृष्टांतसें महालाभका कारन

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यत ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं भवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते ॥ १ ॥ जीर्णे समुद्धृते याव, त्तावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दो महांस्तत्र, स्वचैत्यख्यातिरपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमच्च सेठी, कोडंबीएवि देसेणं काउं ॥ जिण्णुद्धारणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थः— राजा, मंत्री, श्रेष्ठी, कौटंबीकोंकों उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधु करावे, जो जिनभवनका उद्धार करे, तिसनें भयंकर संसारसें अपणी आत्माका उद्धार करा है, ऐसा जान लेना. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही नवीन चैत्य कराना योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये है, अरु नवीन जिनमदिर तो छत्तीश हजारही बनवाये ऐसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेभी नवीन जिनमंदिर बनानेसें जीर्णोद्धार बहुत कराये है.

तथा जब चैत्य बने जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा विराजमान करनी चाहिये ॥ यदाह श्रीहरिभद्रसूरिः ॥ जिनभवने जिनबिंबं, कारयितव्यं द्रुतं बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्येवं, तद्भवनं वृद्धिमद्भवति ॥ १ ॥ देहरेमें कु

तिस नाभिकुलकरकी मरुदेवी नामक भार्याकी कूखमें आषाढवदि चौथकी रात्रिकों सर्वार्थसिद्ध देवलोकसें च्यवकें ऋषभदेवका जीव, गर्भमें पुत्रपणे उत्पन्न हूआ, मरुदेवीने चौदह स्वप्न देखे, इंद्रमहाराजने स्वप्न फल कह्या, चैत्रवदि अष्टमीकों ऋषभदेवजीका जन्म हूआ, छप्पनदिग्कुमारी और चौशठ इंद्रने मिलके जन्ममहोत्सव करा, मरुदेवीनें चौदह स्वप्नकी आदिमें बैलका स्वप्न देखा था, तथा पुत्रके दोनो साथलोंमें बैलका चिन्ह था, इस वास्ते पुत्रका नाम ऋषभ दीया.

बाल अवस्थामें श्रीऋषभदेवकों जब भूख लगती थी, तब अपने हाथका अंगूठा मुखमें लेकें चूस लेते थे. उस अंगूठेमें इंद्रनें अमृत संचार कर दीया था, जब ऋषभदेवजी बडे हूए, तब देवता उनको कल्पवृक्षोंके फल ल्या कर देते थे, वे फल खा लेते थे, जब ऋषभदेव कुछ न्यून एकवर्षके हूए, तब इंद्र आया, हाथमें इक्षुदंड ल्याया, क्योंकि रीते हाथसें स्वामीके समीप न जानां चाहियें, इस वास्ते इक्षुदंड ल्याया, उस वखतमें श्रीऋषभदेवजी नाभिकुलकरकी गोदीमें बैठे थे, तब ऋषभदेवकी दृष्टि, इक्षुदंड उपर पडी, तब इंद्रनें कह्या के हे भगवन्! इक्षु अकु अर्थात् इक्षु भक्षण करोगे? तब ऋषभदेवजीनें हाथ पसाख्या, तब इंद्रने ऋषभदेवजीका इक्ष्वाकुवंश स्थापन करा, तथा श्रीऋषभदेवजीके वंशवालोंने काशकार पीया, इस वास्ते गोत्रका नाम काश्यप हूआ, श्रीऋषभदेवजीके जिस जिस वयमें जो जो काम उचित था, सो सो शक्र (इंद्र)ने करा, यह अनादिसें जो जो शक्र (इंद्र) होते है, तिनका जीतकल्प है, जो प्रथम भगवान्के वयोचित सर्वकाम करने.

इस अवसरमें एक लडकी लडका बहिन और भाइ बालावस्थामें ताडवृक्षके हेठ खेलते थे, उहां ताडके फल गिरनेसे लडका मर गया. तब लडकीकों नाभिकुलकरने यह ऋषभदेवजीकी भार्या होवेगी? ऐसा विचार करकें अपने पास रख लीनी, तिसका नाम सुनंदा था. और दूसरी जो ऋषभदेवजीके साथ जन्मी थी, तिसका नाम सुमंगला था, इन दोनोंके साथ ऋषभदेव बालावस्थामे खेलते हूए यौवनके प्राप्त हूए, तब इंद्रने विवाहका प्रारंभ करा, आगें युगलके समयमें विवाहविधि नहीं थी, इस वास्ते यह विवाहमें पुरुषके कृत्य तो सर्व इंद्रने करे, और स्त्री

योंकी तर्फसें सर्वकृत्य इंद्राणीयोनें करे, तहांसें विवाहविधि जगत्‌में प्रच लित हूई, तब श्रीऋषभदेव दोनों भार्याके साथ सांसारिक विषयसुख भो गता, जब छै लाख पूर्व, वर्ष व्यतीत हूए, तब सुमंगला राणीके भरत और ब्राह्मी यह युगल जन्मे; तथा सुनंदाके बाहुबली और सुंदरी यह युगल जन्मे, पीछेसें सुनंदाके तो और कोइ पुत्र पुत्री नहीं जन्मे, प रंतु सुमंगला देवीके उणपंचास (४९) अर्थात् एक कम पंचास जोडे पुत्रों हीके जन्मे. यह सब मिल कर सौ पुत्र और दो पुत्रीयों, श्रीऋषभदेवके अ पत्य अर्थात् पुत्र पुत्री हूए हैं.

तिन सौ पुत्रके नाम लिखते है १ भरत, २ बाहुबली, ३ श्रीमस्तक, ४ श्रीपुत्रांगारक, ५ श्रीमल्लिदेव, ६ अंगज्योति, ७ मलयदेव, ८ भार्गव तार्थ, ९ बंगदेव, १० वसुदेव, ११ मगधनाथ, १२ मानवर्त्तिक, १३ मा नयुक्ति, १४ वैदर्भदेव, १५ वनवासनाथ, १६ महीपक, १७ धर्मराष्ट्र, १८ मायकदेव, १९ आस्मक, २० दंमक, २१ कलिंग, २२ ईषकदेव, २३ पुरुषदेव, २४ अकल, २५ भोगदेव, २६ वीर्यभोग, २७ गणनाथ, २८ तीर्णनाथ, २९ अंबुदपति, ३० आयुर्वीर्य, ३१ नायक, ३२ काल्हिक, ३३ आनर्त्तक, ३४ सारिक, ३५ ग्रहपति, ३६ करदेव, ३७ कछनाथ, ३८ सु राष्ट्र, ३९ नर्मद, ४० सारस्वत, ४१ तापसदेव, ४२ कुरु, ४३ जंगल, ४४ पंचाल, ४५ शूरसेन, ४६ पुट, ४७ कालंगदेव. ४८ काशीकुमार, ४९ कौ शल्य, ५० भद्रकाश, ५१ विकाशक, ५२ त्रिगर्त्त, ५३ आवर्त्त, ५४ साल्लु, ५५ मत्स्यदेव, ५६ कुलियक, ५७ मुषकदेव, ५८ वाल्हीक, ५९ कांबोज, ६० मधुनाथ, ६१ साड्क, ६२ आत्रेय, ६३ यवन, ६४ आभीर. ६५ वानदेव, ६६ वानस, ६७ कैकेय, ६८ सिंधु, ६९ सौवीर, ७० गंधार, ७१ काष्ठदेव, ७२ तोषक, ७३ शौरक, ७४ भारद्वाज, ७५ शूरदेव, ७६ प्रस्थान, ७७ कर्णक, ७८ त्रिपुरनाथ, ७९ अवंतिनाथ, ८० चेदिपति, ८१ विष्कंभ, ८२ नैषध, ८३ दशार्णनाथ, ८४ कुसुमवर्ण, ८५ भूपालदेव, ८६ पालप्रभु, ८७ कुशल, ८८ पद्म, ८९ महापद्म, ९० विनिद्र, ९१ विकेश, ९२ वैदेह, ९३ कछपति, ९४ भद्रदेव, ९५ वज्रदेव, ९६ सांद्रभद्र, ९७ सेतज, ९८ वत्स नाथ, ९९ अंगदेव, १०० नरोत्तम; यह ऋषभ देवके सौ पुत्रोंका नाम जानना.

इस अवसरमे जीवोंके कषायों प्रबल हो जानेसें पूर्वोक्त हकारादि तीनों

दंमका लोक नय नही करने लगे, इस अवसरमें लोकोने सर्वसें अधिक ज्ञानवानादि गुणों करकें संयुक्त श्रीऋषनदेवकों जानकें युगलक लोक, श्रीऋषनदेवकों कहते हूए कि अबके सब लोक दंमका नय नही करते है? श्री ऋषनदेवजी गर्नमेंनी मति, श्रुत, अरु अवधि, यह तीन ज्ञानों करकें संयुक्त थे, यह श्रीऋषनदेवजीके पूर्वनवोंका वृत्तांत आवश्यक तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनां, तब श्रीऋषनदेव वो युगलक पुरुषोंकों कहते नये कि जो राजा होता है. सो दंम करता है, और राजा जो होता है, सो मंत्री कोटवालादि सेना संयुक्त होता है, अरु कृतानिषेक होता है, फेर उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती है, ऐसा वचन सुन कर, वे मिथुनक बोले कि ऐसा राजा हमारानी हो जावे? तब ऋषनदेवजी बोले जो तुमारी मनसा ऐसी है, तो नानिकुलकरसें याचना करो, पीछें तिनोनें नानिकुलकरसें विनति करी, तब नानिकुलकरने कहा, जाउ ऋषनदेवजी तुमारा राजा हूआ, तब वे मिथुनक, ऋषनदेवकों राज्यानिषेक करने वास्ते पद्मिनी सरोवरमें गये, इस अवसरमें इंद्रका आसन कंपमान हूआ, तब अवधिज्ञानसें राज्यानिषेकका अवसर जानके यहां आ कर श्रीऋषनदेवकों राज्यानिषेक करा, मुकुटादि सर्व अलंकार जो कुछ राजाके योग्य थे, सो पहिराये, इस अवसरमें मिथुनक लोक पद्मसरोवरसे नलिनीकमलोंमें पाणी ल्याये, उनोने आ कर जब श्रीऋषनदेवजीकों अलंकृत देखा, तब सन्नोंने चरणों उपर जल गेर दीया, तब इंद्रने मनमें चिंता करी कि ये वडे विनीत पुरुष है, ऐसा जान कर वैश्रमणकों आज्ञा दीनी कि इन विनीतोंके रहने वास्ते विनीता नामा नगरी वसाउ, तब विनीता नगरी वैश्रमणनें वसाइ. इसका स्वरूप, शत्रुंजयमहात्म्यसें जान लेनां.

अथ संग्रहके वास्ते हाथी, घोडे, गौ प्रमुख श्रीऋषनदेवके राज्यमें वनोंसें पकडे गये, तब श्रीऋषनदेवने चार प्रकारका संग्रह करा १ उग्रा, २ नोगा, ३ राजन्या, ४ क्षत्रिया, उसमे जिनकों कोटवालकी पदवी दीनी, सो दंमके करनेसें उग्रवंश कहलाया, तथा जिनको श्रीऋषनदेवजीने गुरु अर्थात् उंचे वडे करकें माने, तिनोंका नोगवंश कहलाया, तथा जो श्रीऋषनदेवजीके मित्र थे उनोका राजन्यवंश नाम रखा गया, तथा शेष जो रहे, तिनका क्षत्रियवंश हूआ.

अथ आहारकी विधि कहते हैं, जब कल्पवृक्षोंके फलोंका अनाव हूआ,तब पक्काहारका खाना किस तरेंसें हूआ ? सो लिखते हैं. कालके प्रना वसें कल्पवृक्ष फल देनेंसें रह गये, तब लोक,और वृक्षोंके कंद, मूल,पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केइक इक्षुका रस पीने लगे, तथा सत्तरे जातका कच्चा अन्न खाने लगे, परंतु कितनेक दिनो पीछें कच्चा अन्न उनकों जीर्ण न होनेसें ऋषजदेवजीने उनकों कहा कि तुम हाथोंसें मसलकें तूतडा दूर करकें खाउ फेर कितनेक दिनो पीछें वैसेंजी पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, ऐसें बहुत तरेसें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, तोजी कालदोषसें अन्न पाचन न होने लगा. इस अवसरमें जंगलोंमें वांसादिके घसनेसें अग्नि उत्पन्न हूआ.

प्रश्नः– तुम कहते हो कि ऋषजदेवजीकों जातिस्मरण और अवधि ज्ञान था, तो फेर ऋषजदेवजीने प्रथमसेंही अग्नि बनाना उस अग्निसें अन्न रांधके खाना क्युं न बतलाया ?

उत्तर.– हे नव्य ! एकांत स्निग्ध कालमे और एकांत रुक्षकालमे अग्नि किसी वस्तुसेंजी उत्पन्न नही हो सक्ति, कदाचित् कोइ देवता विदेहके त्रसें अग्निकों लेजी आवे, तोजी यहां तत्काल बूज जाती थी, इस वास्ते अग्निसें पकाकें खानेका उपदेश नहीं दीया, पीछें तिस अग्निकों तृणादि दाह करता देखकें अपूर्व रत्न जानकें पकडने लगे, जब हाथ जले, तब मर खा कर दौडकें श्रीऋषजदेवजीसें सर्व वृत्तांत कहा, तब श्रीऋषजदेवने अग्नि ले आनेकी विधि बताइ,तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आये,तब हस्ती उपर बैठे हूये ऋषजदेवने हाथीके शिर उपरही मिट्टिका एक कुंनासा बना कर उनोंके पासें अग्निमे पका कर उसमे अन्न राध कर खाना बताया, पीछें जिसके हाथसें वो कुंना पकडाया वो कुंनार नामसें प्रसिद्ध हूआ,इसी वास्ते

बने. यह एकेक शिल्पके अवांतर नेद वीश वीश हैं, इस वास्ते सर्व मिल कर एक सौ शिल्प उत्पन्न हूए.

अथ कर्मद्वार लिखते हे. कर्मद्वारमें १ खेती करणी, वाणिज्य करणां, धनका ममत्व करणां, इत्यादि कर्म वताये. प्रथम मट्टीके संचयोंमे नरकें, अहरण, हथोडी प्रमुख वनाये, पीछें उनसे सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा नरतादि पर्यालोकोंकों बहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ इन, सन्नोंका नाम मात्र अैसें हे·– १ लिखनेकी कला, २ पढनेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल बजानां, ७ पटह बजानां, ८ मृदंग बजाना, ९ वीणा बजानां, १० वशपरीक्षा, ११ नेरीपरीक्षा, १२ गजशिक्षा, १३ तुरगशिक्षा, १४ धातुर्वाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मंत्रवाद, १७ वलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ छंदबंधन, २२ तर्कजल्पन, २३ नीतिविचार, २४ तत्त्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ षड्नाषा, २९ योगान्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अंजनविधि, ३२ अठारह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इंद्रजालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ वाणिज्य करणां, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंनन, ४० अग्निस्तंनन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्द्दनविधि, ४४ ऊर्ध्वगमन, ४५ घटबंधन, ४६ घटन्रमन, ४७ पत्रछेदन, ४८ मर्मनेदन, ४९ फलाकर्षण, ५० जलाकर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरंजन, ५३ अफलवृक्षोंको सफल करणा, ५४ खड्गबंधन, ५५ छुरी बंधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ लो[illegible]न, ५८ दांत समारणे, ५९ काललक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दंमयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वाग्युद्ध, ६७ गारुडविद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ नूतमर्द्दन, ७० योग सो द्रव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला. यह पुरुषोंकों बहत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कह्या

अब स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ, तिसका नाम कहते हें, १ नृत्यकला, २ औचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मंत्र, ६ तंत्र, ७ ज्ञान,

अथ आहारकी विधि कहते है, जब कल्पवृक्षोंके फलोंका अभाव हूआ,तब पकाहारका खाना किस तरेंसें हूआ ? सो लिखते हैं. कालके प्रभावसें कल्पवृक्ष फल देनेंसें रह गये, तब लोक,और वृक्षोंके कंद, मूल,पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केइक इक्षुका रस पीने लगे, तथा सत्तरे जातका कच्चा अन्न खाने लगे, परंतु कितनेक दिनो पीछें कच्चा अन्न उनकों जीर्ण न होनेसे ऋषभदेवजीने उनकों कहा कि तुम हाथोंसें मसलकें तूतडा दुर करकें खाओ फेर कितनेक दिनो पीछें वैसेंभी पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, ऐसें बहुत तरेसे कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, तोभी कालदोषसे अन्न पाचन न होने लगा, इस अवसरमें जगलोंमें वांसादिके घसनेसें अग्नि उत्पन्न हूआ

प्रश्नः– तुम कहते हो कि ऋषभदेवजीकों जातिस्मरण और अवधि ज्ञान था, तो फेर ऋषभदेवजीने प्रथमसेंही अग्नि बनाना उस अग्निसें अन्न रांधके खानां क्युं न बतलाया ?

उत्तर.– हे भव्य ! एकांत स्निग्ध कालमे और एकांत रुक्षकालमें अग्नि किसी वस्तुसेंभी उत्पन्न नहीं हो सक्ति, कदाचित् कोइ देवता विदेहक्षेत्रसें अग्निकों लेभी आवे, तोभी यहां तत्काल बूज जाती थी, इस वास्ते अग्निसें पकाकें खानेका उपदेश नही दीया, पीछें तिस अग्निकों तृणादि दाह करता देखकें अपूर्व रत्न जानके पकडनें लगे, जब हाथ जले. तब डर खा कर दौडकें श्रीऋषभदेवजीसें सर्व वृत्तात कहा, तब श्रीऋषभदेवनें अग्नि ले आनेकी विधि बताइ,तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आये,तब हस्ती उपर बैठे हूये ऋषभदेवने हाथीके शिर उपरही मिट्टिका एक कूंभारा बना कर उनोंके पासे अग्निमें पका कर उसमें अन्न राध कर खानां बताया, पीछें जिसके हाथसें वो कुंभा पकडाया वो कुंभार नामसे प्रसिद्ध हूआ,इसी वास्तें कुंभारको प्रजापति पर्यायपति कहते है, फेर तो शनैःशनैः सर्वतरेंका आहार पकाके खानेकी विधि प्रवृत्त हो गइ,सर्वविधि श्रीऋषभदेवजीनेही बताइ है.

अथ शिल्पद्वार कहते है. श्रीऋषभदेवजीके उपदेशसें पाच मूल शिल्प अर्थात् कारीगर बने, तिसका नाम लिखते है. १ कुंभकार, २ लोहकार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुननें वाले, ५ नापित अर्थात् नाइ, ये पाच शिल्प

बने. यह एकेक शिल्पके अवांतर भेद वीश वीश हैं, इस वास्ते सर्व मिल कर एक सौ शिल्प उत्पन्न हूए.

अथ कर्मद्वार लिखते हे कर्मद्वारमें १ खेती करणी, वाणिज्य करणां, धनका ममत्व करणां, इत्यादि कर्म बताये. प्रथम मट्टीके संचयोंमे भरके, अहरण, हथोडी प्रमुख बनाये, पीछें उनसें सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा भरतादि पर्यालोकोंकों बहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ इन, सबोंका नाम मात्र ऐसे हे:— १ लिखनेकी कला, २ पढनेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल बजानां, ७ पटह बजानां, ८ मृदंग बजानां, ९ वीणा बजानां, १० वशपरीक्षा, ११ भेरीपरीक्षा, १२ गजशिक्षा, १३ तुरंगशिक्षा, १४ धातुवाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मंत्रवाद, १७ वलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ छंदबंधन, २२ तर्कजल्पन, २३ नीतिविचार, २४ तत्त्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ षड्भाषा, २९ योगाभ्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अंजनविधि, ३२ अठारह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इंद्रजालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ वाणिज्य करणां, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंभन, ४० अग्निस्तंभन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्दनविधि, ४४ ऊर्ध्वगमन, ४५ घटबंधन, ४६ घटभ्रमन, ४७ पत्रछेदन, ४८ मर्मभेदन, ४९ फलाकर्षण, ५० जलाकर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरंजन, ५३ अफलवृक्षोंको सफल करणा, ५४ खड्गबंधन, ५५ छुरी बंधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ लो[illegible]ान, ५८ दांत समारणे, ५९ काललक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दंडयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वाग्युद्ध, ६७ गारुडविद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ भूतमर्दन, ७० योग सो द्रव्यानुयोग. अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला. यह पुरुषोंकों बहत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कह्या

अब स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ, तिसका नाम कहते हैं, १ नृत्यकला, २ औचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मंत्र, ६ तंत्र, ७ ज्ञान,

त्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीऋषनदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सूत्रमें देख लेनां.

ब्राह्मी जो नरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह् बाहुबलीके साथ कर दीया, और बाहुबलीके साथ जो सुंदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह् नरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हूआ.

श्रीऋषनदेवजीने युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हूए बहिन नाइका विवाह् दूर कीया, श्रीऋषनदेवकों देखके लोकनी इसी तरें विवाह् करने लगे, श्रीऋषनदेवनें बहुत काल तांइ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सर्वतरेंके सुख उत्पन्न हूए, इस हेतुसें श्रीऋषनदेवकों जैनीलोक, जगत्का कर्त्ता मानते हैं, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी सृष्टि कहते हैं, वेनी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगतका कर्त्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि नगवान् आदि, अर्हतआदि, तीर्थंकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसे बडा, इत्यादि जो नाम, और महिमा गाते है, वे सर्व श्रीऋषनदेवजीकेही गुणानुवाद हैं, और कोइ सृष्टिका कर्त्ता नहीं है.

मूर्ख और अज्ञानीयोंनें स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमें मनमानी कल्पना कर लीनी है, उस कल्पनाकों बहुत जीव आज तांइ सच्ची मानते चले आये है, क्योंकि सर्वमत जैनके विना ब्राह्मणोनेही प्रायः चलाये है, इस वास्ते ब्राह्मणोही मतोंके विश्वकर्मा है, अरु लौकिक शास्त्रोंमें जो कुछ है, सो ब्राह्मणोहीके वास्ते है. ब्राह्मणत्नी लौकिक शास्त्रोंने तार दीये, क्योंकि शास्त्र बनाने वालोंके संतानादि, खूब खाते,पीते,और आनंद करते है, इन ब्राह्मणोंकी तथा वेदोकी उत्पत्ति जैसे आवश्यक आदिक शास्त्रोंमे लिखी है, तैसे नव्य जीवोंके जानने वास्ते यहां मैंनी लीखुंगा

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, नरत पुत्रकों विनीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुबली पुत्रकों तक्षिलाका राज्य दीया. शेष पुत्रोंकों और और देशोंका राज्य दीया, उनही पुत्रोके नामसे बहुत देशोंका नामनी तैसाही पड गया, जैसें अंगदेश, वंगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोंकानी पुत्रोंके नामसें पड गया.

८ विज्ञान, ९ दंभ, १० जलस्तंभ, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मेघ वृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार, १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति, २२ धर्मनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरभीकरण, २६ लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९ कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिछेद, ३१ तत्कालबुद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि, ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्नभेद, ३५ घटभ्रम, ३६ सारपरिश्रम, ३७ अंजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाटव, ४१ भोज्य विधि, ४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शालिखंमन, ४६ मुखमंमन, ४७ कथाकथन. ४८ कुसुमगुंथन, ४९ वरवेष, ५० सकलभाषाविशेष, ५१ अभिधानपरिज्ञान, ५२ आभरण पहनने, ५३ नृत्योपचार, ५४ गृह्याचार, ५५ शाठ्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरंधन. ५८ केशबंधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वितमावाद, ६१ अंकविचार, ६२ लोक व्यवहार, ६३ अंत्याक्षरिका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका. यह स्त्रीकी चौसठ कला कही.

अबकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायोंका प्रकरभूत है, इस वास्ते सर्व कला इनहीके अंतर्भाव है, जैसे प्रथम लिपि कलाके अढारह भेद दक्षिण हाथसें ब्राह्मीपुत्रीकों सिखाइ, तिसके नाम कहते हैं १ हंसलिपि, २ भूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि, ७ कीरीलिपि, ८ डावडीलिपि, ९ सैंधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नडीलिपि. १२ नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमित्ती लिपि, १६ चाणक्कीलिपि, १७ मूलदेवी, १८ उड्डीलिपि, यह अढारह प्रकार की ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके भेदसें अनेक तरेकी हो गइ, जैसेंकी १ लाटी, २ चौडी, ३ डाहेली, ४ कानडी, ५ गौर्जरी, ६ सोरठी, ७ मरहठी, ८ कोंकणी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हाडी, १३ कीरी, १४ हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी. १८ महायोधी, इत्यादि लिपि सिखाइ, तथा सुंदरी पुत्रिकों वाम हाथसे अंकविद्या सिखाइ, जो जगतमें प्रचलित कला है, जिनोसे अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वे सर्व श्रीऋषभदेवने प्रवर्त्ताइ है. तिसमे कितनीक कला कइ वार लुप्त होजाती है, फिर सामग्री पा कर प्रगटभी हो जाती है, परतु नवीन विद्या वा कला कोइभी नहीं उ

त्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीऋषनदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सूत्रमें देख लेनां.

ब्राह्मी जो नरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह बाहुबलीके साथ कर दीया, और बाहुबलीके साथ जो सुंदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह नरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हूआ.

श्रीऋषनदेवजीने युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हूए बहिन नाइका विवाह दूर कीया, श्रीऋषनदेवकों देखकें लोकनी इसी तरें विवाह करने लगे, श्रीऋषनदेवने बहुत काल तांइ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सर्व तरेंके सुख उत्पन्न हूए, इस हेतुसें श्रीऋषनदेवकों जैनीलोक, जगत्का कर्त्ता मानते हैं, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी सृष्टि कहते है, वेनी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगतका कर्त्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि नगवान् आदि, अर्हतआदि, तीर्थंकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसें वडा, इत्यादि जो नाम, और महिमा गाते हैं, वे सर्व श्रीऋषनदेवजीकेही गुणानुवाद हैं, और कोइ सृष्टिका कर्त्ता नहीं है.

मूर्ख और अज्ञानीयोंनें स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमें मनमानी कल्पना कर लीनी है, उस कल्पनाकों बहुत जीव आज तांइ सच्ची मानते चले आये है, क्योंकि सर्वमत जैनके विना ब्राह्मणोनेही प्रायः चलाये हैं, इस वास्ते ब्राह्मणोही मतोंके विश्वकर्मा है, अरु लौकिक शास्त्रोंमें जो कुछ है, सो ब्राह्मणोहीके वास्ते है. ब्राह्मणनी लौकिक शास्त्रोने तार दीये, क्योंकि शास्त्र बनाने वालोंके संतानादि, खूब खाते, पीते, और आनंद करते है, इन ब्राह्मणोंकी तथा वेदोंकी उत्पत्ति जैसें आवश्यक आदिक शास्त्रोंमें लिखी है, तैसें नव्य जीवोंके जानने वास्ते यहां मैंनी लीखुंगा.

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, नरत पुत्रकों विनीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुबली पुत्रकों तक्षिलाका राज्य दीया, शेष पुत्रोंकों और और देशोंका राज्य दीया, उनही पुत्रोंके नामसें बहुत देशोंका नामनी तैसाही पड गया, जैसें अंगदेश, वंगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोंकानी पुत्रोंके नामसें पड गया.

८ विज्ञान, ९ दंन, १० जलस्तंन, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मेघ वृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति २२ धर्मनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरनीकरण २६ लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९ कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिछेद, ३१ तत्कालबुद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्ननेद, ३५ घटभ्रम, ३६ सारपरिश्रम, ३७ अंजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाटव, ४१ नोज्य विधि, ४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शालिखंमन ४६ मुखमंमन, ४७ कथाकथन, ४८ कुसुमगुंथन, ४९ वरवेष, ५० सकलना षाविशेष, ५१ अभिधानपरिज्ञान, ५२ आनरण पहनने, ५३ नृत्योपचार ५४ गृह्याचार, ५५ शाठ्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरंधन, ५८ केशबंधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वितंमावाद, ६१ अंकविचार, ६२ लोक व्यवहार, ६३ अंत्याक्षरिका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका. यह स्त्रीकी चोशठ कला कही

अबकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायोंका प्रकरजूत है, इस वास्ते सर्व कला इनहीके अंतर्नाव हैं, जैसें प्रथम लिपि कलाके अठारह नेद दक्षिण हाथसें ब्राह्मीपुत्रीकों सिखाइ, तिसके नाम कहते हैं १ हंसलिपि २ नूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि ७ कीरीलिपि, ८ डावडीलिपि, ९ सैंधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नई लिपि. १२ नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमित्त लिपि, १६ चाणक्कीलिपि, १७ मूलदेवी, १८ उमीलिपि, यह अठारह प्रकार की ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके नेदसे अनेक तरेंकी हो गइ, जैसेकी १ ला टी, २ चोडी, ३ माहेली, ४ कानडी, ५ गोर्जरी, ६ सोरठी, ७ मरहठी, ८ कोंक णी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हाडी, १३ कीरी, १४ हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी १८ महायोधी. इत्यादि लि. सिखाइ, तथा सुंदरी पुत्रिको वाम हाथसें अंकविद्या सिखाइ, जो प्रचलित कला है, जिनोसे अनेक कार्य सिद्ध होते है, वे सर्व प्रवर्त्ताइ हैं. तिसमें कितनीक कला कइ वार लुप्त होजाती है, फिर पा कर प्रगटनी हो जाती है, परतु नवीन विद्या वा कला को

धुओंकों दे देता था, एकदा समय मरीची मांदा (रोग ग्रस्त) हूआ, तव विचार किया कि मैं तो असंयती हूं, इस वास्ते साधु मेरी वैयावृत्त नहीं करते हैं, अरु मुझे करानीभी युक्त नहीं है, तो कोइ चेलाभी मुझे वैयावृत्त वास्ते करनां चाहियें, तिस कालमें श्रीऋषभदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीछें एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेकों आया, तव मरीचीने उसकों यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तव कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यों कर है? तव मरीचीने कहाकि मैं साधु पणा पालने समर्थ नहीं हूं, इस वास्ते मैं यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है, तब कपिलने कहा कि मुझे श्री ऋषभदेवके साधुओंका धर्म रुचता नहीं है, तुम कहो. तेरे पासभी कुछ धर्म है, या नहीं है,? तव मरीचीने जाना, यह भारीकर्मी जीव है, मैं राही शिष्य होने योग्य है, इस लोभसें मरीचीने कह दीया कि वहांभी धर्म है, अरु मेरे पासभी कछुक धर्म है, यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है उस वखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोइभी पुस्तक नहीं था, निःकेवल जो कुछ आचार मरीचीने कपिलकों वता दीया. सोइ आचार कपिल करता रहा, मरीचीने उत्सूत्र भाषण करनेसें एक कोटाकोटी सागरोपम लग संसारमें जन्म मरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया अरु पीछेंसे कपिल ग्रंथार्थ ज्ञान शून्य मरीचीकी वताइ हूइ रीति ऊपर चलता रहा, उस कपिलका आसुरीनामा शिष्य हूआ, कपिलने आसुरीकोंभी आचार मात्रही मार्ग वतलाया, कपिलने औरभी वहुत शिष्य बनाये, उनके प्रेममें तत्पर थका, मरके ब्रह्मनामक पाचमे देवलोकमें देवता हूआ, तव उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसें देखा, कि मैने क्या दानादि अनुष्ठान करा है? जिस्सें मैं देवता हूआ, हूं, तव अवधिज्ञानसें ग्रंथज्ञानशून्य अपणे आसुरीनामा शिष्यकों देखा, तव विचार करा कि मेरा शिष्य कुछ नहीं जानता? इसकों कुछ तत्त्व उपदेश करुं? ऐसा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पचवर्णके मंमलमें रह कर तत्त्वज्ञानका उपदेश करता भया, कि अव्यक्तसें व्यक्त प्रगट होता है, तिस अवसरमें पष्ठितत्र शास्त्र, आसुरीने वनाया, तिसमें ऐसा कथन करा कि प्रकृतिसे महान होता है, अरु महा

शत्रुंजय तीर्थ ऊपर देह त्यागकर, मोक्ष गया, इस वास्ते शत्रुंजयका नाम पुंमरीकगिरि रक्का गया.

नरतके पांच सौ पुत्रोने जो दीक्षा लीनी थी, तिनमें एकका, नाम मरीची था, वो मरीचीने जैन दीक्षाका पालनां कठिन जान कर अपणी आजीविकाके चलाने वास्ते नवीन मनःकल्पित उपाय खडा कीया, क्योंकि उसने गृहवास करनेमें तो बडी हीनता जाणी. तब एक कुलिंग बनानां चाहा, सो इसी रीतिसें बनाया कि साधु तो मनदंम, वचनदंम, अरु काय दंम, इन तीनो दंमोंसें रहित है, और मैं तो इन तीनो दंमों करकें संयुक्त हुं, इस वास्ते मुफकों त्रिदंम रखनां चाहियें, दूसरा साधु तो इव्य अरु नाव करकें मुंमित है. सो लोच करते हैं, अरु मै तो इव्य मुंमित हुं, इस वास्ते मुफे उस्तरे पाठनेसें मस्तक मुंमवानां चाहियें, शिखानी रखनी चाहियें, तीसरा साधु तो पांच महाव्रत पालते है, अरु मेरे तो सदा स्थूल जीवकी हिंसाका त्याग रहो चौथा साधु तो निःकचन है, अर्थात् परिग्रह रहित है, अरु मुफकों एक पवित्रकादि रखनी चाहियें, पांचमा साधु तो शीलसें सुगंधित है, अरु में अैसा नहीं हूं इस वास्ते मुफे चंदनादि सुगंधी लेनी ठीक है, ठठा साधु तो मोह रहित है, अरु मैंतो मोह संयुक्त हूं, इस वास्ते मुफे मोहाछादितकों ठत्री रखनी चाहियें. सातमा साधु जूते रहित है, मुफकों पगोंमे कुछ उपानह (जुती) प्रमुख चाहियें. आठमा साधु तो निर्मल है, इस वास्ते उनके शुक्लांबर वस्त्र है, अरु मै तो क्रोध, मान, माया, अरु लोन, इन चारों कषायों करकें मैला हूं इस वास्ते मुफे कषाय वस्त्र अर्थात् गेरुके रंगे (नगवे) वस्त्र रखने चाहियें, नवमा साधु तो सचित्त जलके त्यागी है, इस वास्ते मै ठानके सचित्त पाणी पीउंगा, स्नानन्नी करुंगा, इस तरें स्थूलमृषावादादिसेंनी निवृत्त हूआ, इस प्रकारके मरीचीने स्वमतिसें अपणी आजीविकाके वास्ते लिंग बनाया, यही लिंग, परिव्राजकोंका उत्पन्न हूआ.

मरीची नगवान्‌के साथही विचरता रहा, तब साधुओंसें विसदृश लिंग देखकें लोक पूछते हूए, तब मरीची साधुका यथार्थ धर्म कहता था, अरु अपणा पाखंमवेष पूर्वोक्त रीतिसें प्रगट कह देता था, जो पुरुष, इसके पास धर्म सुन कर दीक्षा लेनी चाहता था, तिसकों नगवान्‌के सा

धुओंकों दे देता था, एकदा समय मरीची मांदा (रोग ग्रस्त) हूआ, तव विचार किया कि मै तो असंयती हूं, इस वास्ते साधु मेरी वैयावृत्त नही करते है, अरु मुझे करानीभी युक्त नही है, तो कोइ चेलाभी मुझे वैयावृत्त वास्ते करनां चाहियें, तिस कालमें श्रीरुषभदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीछें एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेकों आया, तव मरीचीने उसकों यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तब कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यों कर है? तब मरीचीने कहाकि मैं साधु पणा पालने समर्थ नही हूं, इस वास्ते मै यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है, तब कपिलने कहा कि मुझे श्रीरुषभदेवके साधुओंका धर्म रुचता नही है, तुम कहो. तेरे पासभी कुछ धर्म है, या नही है, ? तव मरीचीने जानां, यह भारीकर्मी जीव है, मेराही शिष्य होने योग्य है, इस लोभसें मरीचीने कह दीया कि वहांभी धर्म है, अरु मेरे पासभी कछुक धर्म है, यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है उस बखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोइभी पुस्तक नही था, निःकेवल जो कुछ आचार मरीचीने कपिलकों बता दीया. सोइ आचार कपिल करता रहा, मरीचीने उत्सूत्र भाषण करनेसें एक कोटाकोटी सागरोपम लग संसारमें जन्म मरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया अरु पीछेंसें कपिल ग्रंथार्थ ज्ञान शून्य मरीचीकी बताइ हूइ रीति ऊपर चलता रहा, उस कपिलका आसुरीनामा शिष्य हूआ, कपिलने आसुरीकोंभी आचार मात्रही मार्ग बतलाया, कपिलने औरभी बहुत शिष्य बनाये, उनके प्रेममें तत्पर थका, मरके ब्रह्मनामक पाचमे देवलोकमें देवता हूआ, तव उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसें देखा, कि मैंने क्या दानादि अनुष्ठान करा है? जिस्सें मै देवता हूआ, हूं, तव अवधिज्ञानसें ग्रंथज्ञानशून्य अपणे आसुरीनामा शिष्यकों देखा, तव विचार करा कि मेरा शिष्य कुछ नहीं जानता? इसकों कुछ तत्त्व उपदेश करुं? अैसा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पंचवर्णके मंडलमे रह कर तत्त्वज्ञानका उपदेश करता भया, कि अव्यक्तसे व्यक्त प्रगट होता है, तिस अवसरमे षष्ठितंत्र शास्त्र, आसुरीने बनाया, तिसमें अैसा कथन करा कि प्रकृतिसे महान् होता है, अरु महा

पीछें भरतका बेटा आदित्ययश हूआ, अर्थात् सूर्ययश जिसके संतान वाले भरत क्षेत्रमें सूर्यवंशी कहे जाते है,अरु बाहुबलीका बडा पुत्र चंद्रयश था तिसके संतानवाले चंद्रवंसी कहे जाते हैं. श्री ऋषभदेवजीके कुरु नामा पुत्रके संतान सब कुरुवंशी कहे जाते है. जिनमें कौरव पांडव हूये हैं.

जब भरतका बडा बेटा सूर्ययश सिंहासन पर बैठा, तब तिसके पास का कणी रत्न नही था, क्योंकि काकणी रत्न, चक्रवर्त्तीके शिवाय और किसी पास नही होता है, इस वास्ते सूर्ययश राजानें ब्राह्मण श्रावकोंके गलेमें सुवर्णमय यज्ञोपवीत करवा दीयें जनेउ इतिभाषा तथा भोजन प्रमुख सर्व भरत महाराजकी तरें देता रहा. जब सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी पर बैठा, तब तिसने रूपेके यज्ञोपवीत बनवा दीये, आगें तिनोंकी संतानोने पंचरंगे रेशमी पटसूत्र मय यज्ञोपवीत बनाते रहे, आगें सादे सूतके बनाये गये, यह यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति है.

भरतके आठ पाट तक तो ब्राह्मणोंकी भक्ति भरतकी तरे करते रहे पीछें प्रजाभी ब्राह्मणोंकों भोजन कराने लगे, तब सर्व जगे ब्राह्मणपूजनीक समझे गये, आठमां तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रभ स्वामीके वखत तक सर्व ब्राह्मणव्रतधारी, जैनधर्मी श्रावक रहे, अरु श्रीचंद्रप्रभ भगवानके पीछें कितनाकि काल व्यतीत भये, इस भरत खंडमें जैनमत अर्थात् चतुर्विधसंघ और सर्व शास्त्र विछेद हो गये, तब तिन ब्राह्मणाभासोंकों लोक पूछने लगे कि धर्मका स्वरूप हमकों बतलाउ, तब तिनोने जो मनमें माना, और अपणा जिसमें लाभ देखा सो धर्म बतलाया, अनेक तरेंके ग्रंथ बनाते रहे.

जब नवमे श्रीसुविधिनाथ पुष्पदंत अरिहंत हूए, तिनोने जब फेर जैन धर्म प्रगट करा, तब कितनेंक ब्राह्मणाभासोंने न माना, स्वकपोलकल्पित मतहीका कदाग्रह रक्खा, साधुओके द्वेषी बन गये, चारों वेदोंका नामभी बदल दीया, अरु उन वेदोमें मतलबभी औरका और लिख दीया.

अब चारोवेदोकी उत्पत्ति लिखते हैं. जब भरतराजाने ब्राह्मणोकों पूजा, तब दूसरा लोकभी ब्राह्मणोकों बहुत तरेका दान देने लग गये, तब भरत चक्रवर्त्तीने श्रीऋषभदेवजीके उपदेशानुसार तिन ब्राह्मणोंके स्वाध्याय करने वास्ते श्रीआदीश्वर ऋषभदेवजीकी स्तुति और श्रावकके धर्मका स्वरूपगर्भित ऐसे चार आर्यवेद रचे, तिनके यह नाम रक्खे १

संसारदर्शन वेद, २ संस्थापनपरामर्शन वेद, ३ तत्त्वाववोध वेद, ४ विद्या प्रवोध वेद, इन चारोंमें सर्वनय, वस्तुके कथन संयुक्त तिन ब्राह्मणोकों पढाये, तब वे ब्राह्मण, अरु पूर्वोक्त चार वेद, आठमे तीर्थंकर तक यथार्थ चले आये, परतु जब आठमे तीर्थंकरका तीर्थ विछेद हूआ, तद् पीछें, तिन ब्राह्मणाचासोनें धनके लोनसें तिन वेदोंमें जीवहिंसा आदिकी प्ररूपणा करके उलट पुलट कर माले, जैनधर्मका नामनी वेदोमेंसें निकाल डीया, वलकि अन्योक्ति करकें "दैत्यदस्युवेदवाह्य' इत्यादि नामोंसें साधुओंकी निंदा गर्भित १ रुग्, २ यजु, ३ साम, ४ अथर्व, ये चार नाम कल्पन कर दीये. तिन ब्राह्मणोंमेंसूं जिनोनें तीर्थंकरोंका उपदेश मान्या, उनोनें पूर्ववेदोंके मंत्र न त्यागे, सो आज तक दक्षिण करणाटक देशमें जैन ब्राह्मणोंके कंठ है. ऐसा सुना और देखानी है. तथा उन प्राचीन वेदोंके कितनेक मंत्र मेरें पासनी हैं यत उक्तं आगमे ॥ सिरिनरह चक्कवट्टी,आयरिय वेयाणविस्सु उप्पत्ती ॥ माहण पढणछमिणं, कहियं सुहझाण विवहारं ॥ १ ॥ जिणतिछे वुछिन्ने, मिछत्ते माहणेहिं तेठविया ॥ अस्संजयाण पूआ, अप्पाणं काहिया तेहिं ॥ २ ॥ इत्यादि यहांसें आगें तिनवेदोंकी रचना हिंसा संयुक्त याज्ञवल्क्य, सुलसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोने विशेष कर रचना रच दइ, तिसकानी स्वरूप किंचित् मात्र यहां लिख देते है.

वृहदारण्यक उपनिशद्की नाष्यमें लिखा है, कि जो यज्ञोंका कहने वाला सो यज्ञवल्क्य तिसका पुत्र याज्ञवल्क्य इस कहनेसेंनी यही प्रतीत होता है, जो यज्ञोंकी रीति प्राय· याज्ञवल्क्यसेंही चली है, तथा ब्राह्मण लोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, कि याज्ञवल्क्यने पूर्वली ब्रह्मविद्या वमके सूर्य पासों नवीन ब्रह्मविद्या सीखके प्रचलित करी, इस्सेंनी यही अनुमान निकलता है, जो याज्ञवल्क्यने प्राचीन वेद छोड दीये, और नवीन वनाये.

तथा श्रीत्रेशठ सलाका पुरुष चरित्र ग्रंथमें आठमे पर्वके दूसरे सर्गमें ऐसा लिखा है, कि काशपुरीमें दो संन्यासिणीया रहती थी, तिसमे एकका नाम सुलसा था, अरु डूसरीका नाम सुनद्रा था, यह दोनोही वेद अरु वेदांगोकी जानकारथी तिन दोनो वहिनोने वहुवादीयोंकों वादमें जीता, इस अवसरमें याज्ञवल्क्य परिव्राजक तिनके साथ वाद करनेकों

आया, आपसमें ऐसी प्रतिज्ञा करी कि जो हार जावे, वो जींतने वालेकी सेवा करे, तब याज्ञवल्क्यने सुलसाकों वादमें जीतके अपणी सेवा करने वाली बनाइ,सुलसाजी रात दिन याज्ञवल्क्यकी सेवा करने लगी,याज्ञवल्क्य अरु सुलसा यह दोनों यौवनवंत (तरुण) थे, इस वास्ते दोनो कामातुर हो के नोगविलास करने लग गये, सचतो है कि अग्नि और फूस मिलकें अग्नि क्यों कर प्रज्ज्वलित न होवे? निदान दोनो काम क्रीडामें मग्न होकर काशपुरीके निकट कुटीमें वास करते थे, तब याज्ञवल्क्य सुलसासें पुत्र उत्पन्न हूआ पीछें लोकोंके उपहासके नयसें उस लडकेको पीपलके वृक्षके हेठ छोड कर दोनों नठके कहीकों चले गये, यह वृत्तांत सुनंदा जो सुलसाकी बहिनथी उसने सुना, तब तिस बालकके पास आइ, जब बालककों देखा, तो पीपलका फल स्वयमेव मुखमें पडेको चबोल रहा है, तब तिसका नामनी पिप्पलाद रक्खा, और तिसकों अपणे स्थानमें ले जाकें यत्नसें पाला, अरु वेंदादि शास्त्र पढाये, तब पिप्पलाद वडा बुद्धिमान् हूआ, बहुत वादीयोंका अनिमान दूर करा, पीछें, तिस पिप्पलादके साथ सुलसा और याज्ञवल्क्य यह दोनो वाद करनेकों आए, तिस पिप्पलादनें दोनोकों वादमें जीत लीया, और सुनंदा मासीके कहनेसें जान गया कि, यह दोनो मेरे माता पिता है. और मुझे जन्मतेकों निर्दय हो कर छोड गये थे, जब बहुत क्रोधमें आया तब याज्ञवल्क्य अरु सुलसाके आगें मातृमेध पितृमेध यज्ञोंकों युक्तिसें सम्यक् रीतिसें स्थापन करके पितृमेधमें याज्ञवल्क्यकों और मातृमेधमे सुलसाकों मारके होम करा, मीमांसक मतका यह पिप्पलाद मुख्य आचार्य हूआ. इसका वातली नामा शिष्य हूआ, तबसें जीवहिंसा संयुक्त यज्ञ प्रचलित हूए.

याज्ञवल्क्यके वेद बनानेमे कुछनी शंका नहीं, क्योंकि वेदमें लिखा है. "याज्ञवल्केति होवाच" अर्थात् याज्ञवल्क्य ऐसे कहता हूआ, तथा वेदमें जो शाखा है, वे वेदकर्त्ता मुनियोकेही सबबंसे है, इस वास्ते जो आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जीवहिंसा संयुक्त जो वेद है, वे सुलसा अरु याज्ञवल्क्यादिकोंने बनाये है, सो सत्य है. क्योंकि कितनीक उपनिषदोमे पिप्पलादकानी नाम है, तथा और मुनियोंकानी कितनेक जगेमें नाम है.

जमदग्नि कश्यप तो वेदोमें खुद नामसें लिखे हैं, तो फेर वेदोंके नवीन हो नेमें क्या शंका रहती है ?

तथा लंकाका राजा रावण जब दिग्विजय करनेके वास्ते देशोमें चतुरंग दल ले कर राजायोंकों अपणी आज्ञा मना रहा था, इस अवसरमे नारद मुनि, लाठी, सोटे, और, लात, घूंसयोंका पीटा हूआ पुकार करता हूआ रावणके पास आया, तब रावणने नारदकों पूछा कि तुझकों किसने पीटा है ? तब नारदने कहा कि राजपुर नगरसें मरुत्त नामा राजा है, सो मिथ्यादृष्टि है, वो ब्राह्मणाभासोंके उपदेशसें यज्ञ करने लगा, होमके वास्ते सौनिकोंकी तरें वे ब्राह्मणाभास अरराट शब्द करते हूए, अैसे बिचारे पशुओंको यज्ञमें मारते हूए मैनें देखा, तब मै आकाशसें उतरकें जहां मरुतराजा ब्राह्मणोंके साथमें बैठा था, तहां आ कर मरुत राजाकों कहा कि यह तुम क्या करने लग रहे हो ? तब मरुतराजाने कहा ब्राह्मणोके उपदेशसें देवताओंकी तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञमें पशुओंकी बलिदानसें करता हूं. यह महाधर्म है, तब नारद कहता है, कि में वो मरुतराजाकों कहा कि हे राजा जो चारोंवेदोंमे यज्ञ करना कहा है, वो यज्ञ में तुमकुं सुनाता हूं, आत्मा तो यज्ञका यष्टा अर्थात् करनेवाला है, तथा तपरूप अग्नि है, ज्ञानरूप घृत है, कर्मरूपी ईंधन है, क्रोध, मान, माया, अरु लोभादि पशु हैं, सत्य बोलनेरूप यूप अर्थात् यज्ञस्तंभ है, तथा सर्व जीवोंकी रक्षा करणी यह दक्षिणा है, तथा ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह रत्नत्रयी रूप त्रिवेदी है. यह यज्ञ वेदका कहा हूया है. अैसा यज्ञ जो योगाभ्यास संयुक्त करे, तो करनेवाला मुक्त रूप हो जाता है, और जो राक्षस तुल्य होकें छागादि मारकें यज्ञ करता है, सो मरकें घोर नरकमें चिरकाल तक महाडुःख भोगता है, हे राजा ! तू उत्तमवंशमें उत्पन्न हूआ है, बुद्धिमान् और धनवान् है, इस वास्ते हे राजन् तूं इस व्याधोचित पापसे निवर्त्तन हो जा, जेकर प्राणीवधसेंही जीवोंकों स्वर्ग मिलता होवे तब तो थोडेही दिनोंमे यह जीवलोक खाली हो जावेगा, यह मेरा वचन सुनकें यज्ञकी अग्निकी तरे प्रचन्ड हूए होये ब्राह्मण हाथमे लाठी, सोटे, ले कर सर्व मेरेकों पीटने लगे, तब जैसे कोइ पुरुष नदीके पूरसें मरकर दीपेमें चला आता है तैसें में दौडता हूआ

तेरे पास पहुंचा हूं. हे रावण राजा! बिचारे निरपराधि पशु मारे जाते हैं, तूं तिनकी रक्षा करणेमें तत्पर हो, जैसें मै तेरे शरणसें बचा हूं ऐसें तूं पशुओंकोंभी बचा तब रावण विमानसें उतरकें मरुत राजाके पास गया मरुत राजाने रावणकी बहुत पूजा, भक्ति आदर, सन्मान करा. तब रावण कोपमें हो कर, मरुत राजाकों ऐसें कहता हूआः—अरे! तूं नरक का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा है? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूपसर्वज्ञ तीर्थंकरोने कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने पशुओंकों मारके धर्म समझा, तब तुमकों हितकारक क्योंकर होवेगा? इस वास्ते यह यज्ञ तुमकों दोनो लोकमें अहितकारक है, इसें छोड दो, नहीं तो इस यज्ञका फल तेरेकों इस लोकमें तो मै देता हूं, और परलोकमें तुमारा नरकमें वास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यज्ञ करना छोड दीया, क्योंकि रावणकी आज्ञा उस वखत ऐसी भयंकरथी, कि कोइ उसकों उल्लंघन नहीं कर सक्ता था, इस कथानकसें यहभी मालुम हो जाता है, कि जो ब्राह्मण लोक कहते हैं कि आगें राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देते थे, सो क्या जाने रावणादि जबरदस्त जैनधर्मी राजाओं पशुवध रूप यज्ञका करणा छुडा देते थे, तबसेंही ब्राह्मणोने पुराणादि शास्त्रोमें उन जबरदस्त जैनराजाओंकों राक्षसोंके नामसें लिखा है? तथा यहभी सुननेमें आया है, कि नारदजीनेभी मायाके वशसें जैनमत धारके वेदोंकी निंदा करी थी तो क्या जाने? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया हो?

पीछें रावणने नारदकों पूछा कि ऐसा पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ कहांसें चला है तब नारदजीनें कहा किः—शुक्तिमती नदीके किनारे उपर एक शुक्तिमती नगरी है सो वीशमें श्रीमुनिसुव्रत स्वामी हरिवंश तीर्थंकरकी औलादमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अभिचंद्रनामा राजा हूआ, तिस अभिचंद्रराजाका वसुनामा बेटा हूआ, वो वसु महाबुद्धिमान, सत्यवादी, लोकोमें प्रसिद्ध हूआ, तिस नगरीमें खीरकदंबक उपाध्याय रहता था तिसके पर्वत नाम पुत्र था, वहां एक तो राजाका बेटा वसु दूसरा पर्वत और तीसरा में (नारद) हम तीनो खीरकदंबक उपाध्यायके पास पढते थे, एकदा समय हमतो तीनो जन पाठ करनेके श्रमसें रात्रिकों सो गये थे और उपाध्याय जागता था हम छत उपर सूते

थे तब दो चारण साधु ज्ञानवान्, आकाशमें परस्पर वार्ता करते चले जाते थे, कि यह खीर कदंबक उपाध्यायके तीन छात्रोमेंसुं दो नरकमें जायेंगे अरु एक स्वर्गमें जायेगा, यह मुनियोंका कहनां सुन करके उपाध्यायजी चिंता करने लगा कि जब मेरे पढाये हूये नरकमें जायगे, तब यह मुझको बहुत दुःख है,परंतु इन तीनोंमेंसूं नरक कौन जायगे ? और स्वर्ग कौन जायगा ? इस बातके जानने वास्ते तीनोकों एक साथ बुलाया, पीछें वो गुरुने हम तीनोंकों एकेक पीठिका कुक्कड दीया और कह दीयाकि इनकों अैसी जगेमें मारो जहां कोइभी न देखता होवे ! पीछें वसु अरु पर्वत यह दोनो तो शून्य जगाओंमें जाकर दोनो पीठके बनाये कुक्कडोंकों मार ल्याये और में उस पीठके कुक्कडकों ले कर बहूत दूर नगरसें बाहिर चला गया, जहां कोइभी नहीं था, तहां जा कर खडा हूआ, चारों उर देखने लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न हूआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वत्स यह कुक्कड तू तहां मारी, जहां कोइ देखता न होवे,तो यह कुक्कड देखता है, अरु मेंभी देखता हूं, खेचर देखते हैं, लोकपाल देखते हैं, ज्ञानी देखते हैं, अैसा तो जगत्में कोइभी स्थान नहीं जहां कोइभी न देखता होवे, इस वास्ते गुरुके कहनेका यही तात्पर्य है, कि इस कुक्कडका वध न करनां क्योंकि गुरुपूज्य तो सदा दयावत और हिंसासें पराङमुख है, निःकेवल हमारी परीक्षा लेने वास्ते यह आदेश दीया है, तब मैनें अैसा विचार करके विनाही मारे कुक्कडेकों लेके गुरुके पास चला आया, और कुक्कडेके न मारनेका सबब सर्व गुरुकों कह दीया, तब गुरुने मनमें निश्चय कर लीया कि यह नारद अैसे विवेकवाला है, सो स्वर्ग जायगा तब गुरुजीने मुझकों छातीसें लगाया, और बहुत साधुकार कहा, तथा वसु और पर्वतभी मेरेसें पीछे गुरुके पास आये, और गुरुकों कहते हूये कि हम कुक्कडाकों अैसी जगे मारके आये है,कि जहां कोइभी देखता नहीं था तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर देखते थे, तब हे पापिष्टो ! तुमने कुक्कड क्यों मारे ? अैसे कह कर गुरुने शोचा कि पर्वत, और वसुके पढानेकी मेहनत मैनें व्यर्थही करी, मै क्या करुं ? पानी, जैसे पात्रमें जाता है, वैसाही बन जाता है. विद्याकाभी यही स्वभाव है. जब प्राणोसें प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रसे प्यारा वसु

तेरे पास पहुंचा हूं. हे रावण राजा! विचारे निरपराधि पशु मारे जा
हैं, तूं तिनकी रक्षा करणेमें तत्पर हो, जैसें मैं तेरे शरणसें बचा हूं औ
तूं पशुउकोंभी बचा तब रावण विमानसें उतरकें मरुत राजाके पा
गया मरुत राजाने रावणकी बहुत पूजा, भक्ति आदर, सन्मान करा. त
रावण कोपमें हो कर, मरुत राजाको ऐसें कहता हूआः–अरे! तूं नर
का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा है? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूपसर्व
तीर्थंकरोने कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने प
ओंकों मारके धर्म समझा, तब तुमकों हितकारक क्योंकर होवेगा? इ
वास्ते यह यज्ञ तुमकों दोनो लोकमें अहितकारक है, इसे छोड यो. न
तो इस यज्ञका फल तेरेकों इस लोकमें तो मै देता हूं, और परलोकमें
मारा नरकमें वास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यज्ञ करनां छोड दीय
क्योंकि रावणकी आज्ञा उस वखत ऐसी भयंकरथी, कि कोइ उसक
उल्लंघन नहीं कर सक्ता था, इस कथानकसें यहभी मालुम हो जाता है
कि जो ब्राह्मण लोक कहते हैं कि आगें राक्षस यज्ञ विध्वस कर देते थे
सो क्या जाने रावणादि जबरदस्त जैनधर्मी राजाओं पशुवध रूप यज्ञक
करणां छुडा देते थे, तबसेंही ब्राह्मणोने पुराणादि शास्त्रोमें उन जबरदस्त
जैनराजाओंकों राक्षसोंके नामसें लिखा है? तथा यहभी सुननेमें आया
है, कि नारदजीनेभी मायाके वशसें जैनमत धारके वेदोंकी निंदा करी थी
तो क्या जाने? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया हो?

पीछें रावणने नारदकों पूछा कि ऐसा पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ
कहासें चला है तब नारदजीनें कहा कि:–शुक्तिमती नदीके किनारे उपर
एक शुक्तिमती नगरी है सो वीशमे श्रीमुनिसुव्रत स्वामी हरिवंश तीर्थंकरकी
औलादमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अभिचंद्रनामा राजा
हूआ, तिस अभिचंद्रराजाका वसुनामा बेटा हूआ, वो वसु महाबुद्धि
मान, सत्यवादी, लोकोमे प्रसिद्ध हूआ, तिस नगरीमें खीरकदंबक
उपाध्याय रहता था तिसके पर्वत नाम पुत्र था, उहा एक तो राजाका बेटा
वसु दूसरा पर्वत और तीसरा में (नारद) हम तीनो खीरकदंबक उपा
ध्यायके पास पढते थे, एकदा समय हमतो तीनो जन पाठ करनेके श्र
मसें रात्रिकों सो गये थे और उपाध्याय जागता था हम छत ऊपर सूते

थे तब दो चारण साधु ज्ञानवान्, आकाशमें परस्पर वार्ता करते चले जाते थे, कि यह खीर कदंबक उपाध्यायके तीन छात्रोमेंसुं दो नरकमें जायेंगे अरु एक स्वर्गमें जायेगा, यह मुनियोंका कहनां सुन करके उपाध्यायजी चिंता करने लगा कि जब मेरे पढाये हूये नरकमें जायगे, तब यह मुझको बहुत दुःख है, परंतु इन तीनोंमेंसूं नरक कौन जायगे ? और स्वर्ग कौन जायगा ? इस बातके जानने वास्ते तीनोकों एक साथ बुलाया, पीछें वो गुरुने हम तीनोंकों एकेक पीठिका कुक्कड दीया और कह दीयाकि इनकों ऐसी जगेमें मारो जहा कोइभी न देखता होवे ! पीछें वसु अरु पर्वत यह दोनो तो शून्य जगाओंमें जाकर दोनो पीठके बनाये कुक्कडोंकों मार ल्याये और में उस पीठके कुक्कडकों ले कर बहूत दूर नगरसें बाहिर चला गया, जहां कोइभी नही था, तहा जा कर खडा हूआ, चारों उर देखने लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न हूआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वत्स यह कुक्कड तूं तहां मारी, जहां कोइ देखता न होवे, तो यह कुक्कड देखता है, अरु मेंभी देखता हूं, खेचर देखते है, लोकपाल देखते है, ज्ञानी देखते है, ऐसा तो जगत्में कोइभी स्थान नही जहां कोइभी न देखता होवे, इस वास्ते गुरुके कहनेका यही तात्पर्य है, कि इस कुक्कडका वध न करनां क्योंकि गुरुपूज्य तो सदा दयावंत और हिंसासें पराङमुख हैं, नि केवल हमारी परीक्षा लेने वास्ते यह आदेश दीया है, तब मैनें ऐसा विचार करके विनाही मारे कुक्कडेकों लेके गुरुके पास चला आया, और कुक्कडेके न मारनेका सबब सर्व गुरुकों कह दीया, तब गुरुने मनमें निश्चय कर लीया कि यह नारद ऐसे विवेकवाला है, सो स्वर्ग जायगा तब गुरुजीने मुझकों छातीसें लगाया, और बहुत साधुकार कहा, तथा वसु और पर्वतभी मेरेसें पीछे गुरुके पास आये, और गुरुकों कहते हूये कि हम कुक्कडाकों ऐसी जगे मारकें आये हैं, कि जहा कोइभी देखता नही था तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर देखते थे, तब हे पापिष्ठो ! तुमने कुक्कड क्यों मारे ? ऐसे कह कर गुरुने सोचा कि पर्वत, और वसुके पढानेकी मेहनत मैनें व्यर्थही करी, मै क्या करुं ? पानी, जैसे पात्रमे जाता है, वैसाही बन जाता है. विद्याकाभी यही स्वभाव है. तब प्राणोसे प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रसें प्यारा वसु

यह दोनो नरकमें जायगे तो मुझे फेर घरमें रह कर क्या करणा है? असे निर्वेदसें क्षीरकदंबक उपाध्यायने दीक्षा ग्रहण करी, साधु हो गया. तिसके पद उपर पर्वत बैठा क्योंकि व्याख्या करणेमें पर्वत बडा विचक्षण था और मैं (नारद) गुरुके प्रसादसें सर्वशास्त्रोंमें पंमित हो कर अपणे स्थानमें चला आया, तथा अभिचंद्रराजाने तो संयम लीया, और वसु राजा राजसिंहासन ऊपर बैठा, वसुराजा जगत्मे सत्यवादी प्रसिद्ध हो गया अर्थात् वसुराजा झूठ नहीं बोलता है, असा प्रसिद्ध हो गया, वसु राजानेभी अपणी प्रसिद्धिकों कायम रखने वास्ते सत्य बोलनाही अंगीकार कीया, वसुराजाकों एक स्फटिकका सिंहासन गुप्त पणे असा मिला कि:— सूर्यके चांदणेमें जब वसुराजा उसके ऊपर बैठताथा, तब सिंहासन लोकोंकों बिलकुल नही दीख पडताथा, इसी तरें वसुराजा आकाशमें अधर बैठा दीख पडताथा,तब लोकोंमें यह प्रसिद्धी होगइ, कि सत्यके प्रभावसें वसुराजाका सिंहासन देवता आकाशमें थांभे रखते हैं, तब सब राजा डरकें वसुराजाकी आज्ञा मानने लग गये, क्योंकि चाहो सच्ची हो चाहो झूठी हो तोभी प्रसिद्धि जो है सो पुरुषके जयकारी होती है

तब एकदा प्रस्तावमें (नारद) वो शुक्तिमतीनगरीमें गया, उहां जा कर पर्वतकों देखा तो वो अपणे शिष्योंकों ऋग्वेद पढा रहा है, और उसकी व्याख्या करता है, तब ऋग्वेदमें एक असी श्रुति आई "अजैर्यष्टव्य मिति" तब पर्वतने इस श्रुतिकी असी व्याख्या करी जो अजानाम छागका (बकरीका) है तिनोंसें यज्ञ करनां तिनकों मारके तिनके मांसका होम करनां, तब मैंने पर्वतकों कहा हे भ्राता? यह व्याख्या तूं क्या भ्रांतिसें करता है? क्योंकि गुरु श्रीक्षीरकदंबकने इस श्रुतिकी असें व्याख्या नहीं करी है, गुरुजीने तो तीन वर्षका धान्य पुराणे जौका असा अर्थ यह श्रुतिका करा है, "न जायंतइत्यजा" जो बोनेसें न उत्पन्न होवे, सो अजा, असा अर्थ श्रीगुरुजीने तुमकों और हमकों शिखलाया था वो अर्थ, तुमने किस हेतुसे भूला दीया? तब पर्वतने कहा कि तुमने जो अर्थ करा है, यह अर्थ गुरुजीने नहीं कहा था, किंतु जो अर्थ मैने करा है, यही अर्थ गुरुनें कहा था क्योंकि निघंटमेंभी अजा नाम बकरीका ही लिखा है, तब मैने (नारदने) पर्वतकों कहा कि शब्दोंका अर्थ दो तरेंके होते है, एक

मुख्यार्थ दूसरा गौणार्थ तो यहां श्रीगुरुनें गौणार्थ करा था गुरु धर्मोप देष्टाका वचन और यथार्थ श्रुतिका अर्थ, दोनोंकों अन्यथा करकें हे मित्र तूं महापाप उपार्जन मत कर तब फेर पर्वतने कहा कि अजा शब्दका अर्थ श्रीगुरुजीने मेषका करा है, निघंटमेंनी ऐसेही अर्थ है, इनको उल्लंघन करकें तूं अधर्म उपार्जन करता है? इस वास्ते वसुराजा आपणा सहाध्यायी है, तिसकों मध्यस्थ करकें इस अर्थका निर्णय करो, जो कूठा होवे तिसकी जीव्हाछेद करणी, ऐसी प्रतिज्ञा कही, तब मैनेंनी पर्वतका कहना मान लीया क्योंकि साचकों क्या आंच है? तब पर्वतकी माताने पर्वतकों छाना कहा कि हे पुत्र! तूं ऐसा कूठा कदाग्रह मत कर क्योंकि मैंनेंनी इस श्रुतिका अर्थ तीन वर्षका धान्यही सुना है, इस वास्ते तूंने जो जीव्हाछेदकी प्रतिज्ञा करी है, सो अछी नही करी, क्योंकि जो विना विचारें काम करता है, वो अवश्य आपदामें पडता है, तब पर्वत कहने लगा कि हे माताजी! जो में प्रतिज्ञा करी है, वो अबमैं किसीतरेसेंनी दूर नहीं कर सक्ता हूं, तब माता अपने पर्वत पुत्रके दुःखकी पीडी हूइ दुःखिनी हो कर वसुराजाके पास पहुंची क्योंकि पुत्रके जीवतव्य वास्ते कौन ऐसो है, जो उपाय न करे? जब वसुराजाने अपनी गुरुकी पत्नीकों आता देखा तब सिंहासनसें उठके खडा हूआ, और कहने लगाकि मैनें आज क्षीरकदंबकका दर्शन करा जो माता तुजकों देखा, अब हे माता! कहो (आज्ञा करो) मै क्या करुं? और क्या देउं? तब ब्राह्मणी कहणे लगी कि तूं मुजे पुत्रकी भिक्षा दे क्योंकि विना पुत्रके मैनें हे पुत्र! धन. धान्य क्या करणा है? तब वसुराजा कहने लगा हे माता! मेरेकोंतो पर्वत पूजने और पालने योग्य है, क्योंकि गुरुकी तरे गुरुके पुत्रके साथनी वर्त्तना चाहियें, यह श्रुतिका वाक्य है, तो फेर आज किसकों कालने क्रोधमें आकर पत्र नेजा है, जो मेरे नाइ पर्वतकों मारा चाहाता है? इस वास्ते हे माता? तूं मुजे सर्व वृत्तांत कह दे, तब ब्राह्मणीने अपणे पुत्रका अज व्याख्यान और जिव्हाछेदनेकी प्रतिज्ञा कह सुनाइ, और कहाकि जो तैने अपने नाइकी रक्षा करनी है, तो अजा शब्दका अर्थ मेष अर्थात् बकरी बकरा करानां क्योंकि महात्मा जन परोपकारके वास्ते अपने प्राणनी दे देते हैं, तो वचनसें परोपकार करनेंमें तो क्या क

हनां है? तब वसु राजाने कहा कि हे माताजीमें मिथ्यावचन क्यों कर बोलुं? क्योंकि सत्यबोलनेवाले पुरुष जेकर अपणे प्राणनी जाते देखें तोनी असत्य नहीं बोलते हैं, तो फेर गुरुका वचन अन्यथा करणा और झूठी साक्षी देणी, इसका तो क्याही कहना है? तब ब्राह्मणीने कहा यातो गुरुके पुत्रकी जान बचेंगी, या तेरा सत्यव्रतका आग्रहही रहेगा, और मेंनी तुझे अपणे प्राणकी हत्या देऊंगी तब वसुराजाने लाचार हो कर ब्राह्मणीका वचन माना, पीछें क्षीरकदंबककी नार्या प्रमुदित हो कर अपने घरकों गइ, इतनेहीमें मैं (नारद) और पर्वत दोनो जने वसुराजाकी सनामें गये, तव तहां वडे वडे विद्वान् एकिठे सनामें मिले, और स्फटिकके सिंहासन ऊपर बैठके वसुराजा सनाके बिचमें सनापति बन कर बैठा, तव पर्वतने और मैने अपणी अपणी व्याख्याका पक्ष वसुराजाकों सुनाया, और ऐसानी कहाकि हे राजन तूं! सत्य कह दे कि गुरुने इन दो अर्थोमेंसें कौनसा अर्थ कहा था? तब वृद्ध ब्राह्मणोनें कहा हे राजा तूं सत्य सत्य जो होवे सो कह दे क्योंकि सत्यसेंही मेघ वर्षता है, और सत्यसेंही देवता सिद्ध होते हैं, सत्यके प्रनावसेंही यह लोक खडा है, और तूं पृथ्वीमें सत्य वादी सूर्यकी तरें प्रकाशक है, इस वास्ते सत्यही कहनां तुमकों उचित है, और हम इस्सें अधिक क्या कहें? यह वचन सुनकरनी वसुराजाने अपने सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञाकों जलाजली दे कर "अजान्मेषान्गुरुर्व्याख्यदिति" अर्थात् अजाका अर्थ गुरुने मेष (बकरे) कहे थे, ऐसी साखी वसुराजाने कही, तब इस असत्यके प्रनावसें व्यंतर देवताने वसुराजाके सिंहासनकों तोडके वसुराजाकों पृथ्वीके ऊपर पटककें मारा, तब तो वसुराजा मरके सातमें नरकमें गया, पीछें वसुराजाके राज सिंहासन ऊपर वसुराजाके आठपुत्र १ पृथुवसु, २ चित्रवसु, ३ वासव, ४ शक्र, ५ विनावसु, ६ विश्वावसु, ७ सूर, ८ महासूर, ये आठो अनुक्रमसें गद्दी ऊपर बैठे. वो आठोंहीकों व्यंतर देवताओनें मार दीये, तव सुवसुनामा नवमा पुत्र तहांसें नाग कर नागपुरमे चला गया और दसमा वृहध्वज नामा पुत्र नाग कर मथुरांमे चला गया,और मथुरामे राज करणे लगा. इस वृहध्वजकी संतानोमें यदुनामा राजा बहुत प्रसिद्ध हूआ, इस वास्ते हरिवंशका नाम छूट गया और यदुवंशी प्रसिद्ध हो गये.

यदु राजाके सूर नामक पुत्र हूआ, तिस सूर राजाके दो पुत्र हूवे, एक वडा शौरी और दूसरा छोटा सुवीर हूआ, शौरि राजा पिताके पीछें वना, शौरिने मथुराका राज्यतो अपने छोटे जाइ सुवीरकों दे दीया, और आप कुशावर्त्त देशमें जा कर अपणे नामका शौरिपुर नगर वसा कें राजधानी बनाइ, शौरिका बेटा अंधकविष्ण, आदि पुत्र हूआ, और अंधकविष्ण,के दश बेटे हूयें १ समुद्रविजय, २ अक्षोन्य, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान्, ६ अचल, ७ धरण, ८ पूर्ण, ९ अभिचंद्र, १० वसुदेव, तिनमें समुद्रविजयका वडा बेटा अरिष्टनेमि जो जैनमतका बावीशमा तीर्थंकर हूंआ, और वसुदेवके बेटे प्रतापी कृष्णवासुदेव,अरु वलभद्रजी हूये, तथा सुवीरका बेटा जोजवृष्णि और जोजवृष्णिका उग्रसेन और उग्रसेनका कंस बेटा हूआ,और वसुराजाका दूसरा बेटा सुवसु जो नागके नागपुर गया था, तिसका बृहद्रथ नामा पुत्र हूआ तिसने राजगृहमें आ कर राज करा, तिसका वेटा जरासिंधु हूआ, यह मैनें यहां प्रसंगसें लिख दीयाहै.

तव उहांतो नगरके लोक और पंमितोनें पर्वतका वहुत उपहास करा, सवने पर्वतकों कहा कि तूं कूगा है, क्योंकि तेरे साखी वसुकों कूगा जान कर देवताने मार दीया,इस वास्ते तेरेसें अधिक पापी कौन है ? असें कह कर लोकोनें मिलकें पर्वतकों नगरसें वाहेर निकाल दीया, तव महाकाल, असुर, उस पर्वतका साहायक हूआ.

यहां रावणने नारदकों पूछाकि वो महाकाल असुर कौन था ? नारदने कहा यहां चरणा युगल नामा नगर है, तिसमें अयोधन नामा राजा था, तिसकी दिति नामा नार्याथी, तिन दोनोंकी सुलसा नामक वहुत रूपवान् वेटी थी, तिस सुलसाका स्वयंवर उसके पिताने करा उहा और सर्व राजे बुलवाये, तिन सर्व राजाओंमेंसूं सगर राजा अधिक था तिस सगरराजाकी मंदोदरी नामा रणवासकी दरवाजेदार सगरकी आज्ञासें प्रतिदिन अयोधनराजाके आवासमें जाती हूइ, एकदिन दिति घरके वागके कदलीघरमे गइ, और सुलसाके साथ मंदोदरीभी तहां आ गइ,तव मंदोदरी, सुलसा और दिति इन दोनोकी वाता सुननेके वास्ते तहां छिप गइ, तव दिति. सुलसाकों कहने लगी, हे वेटी ! मेरे मनमें इस तेरे स्वयंवरमे वडा शल्य है, तिसका उद्धार करनां तेरे अधीन है,इस वास्ते तूं सुनले मूलसें

श्रीऋषभदेव स्वामीके नरत अरु बाहुबली यह दो पुत्र हूये, फेर तिनके दो पुत्र हूये तिनमे नरतका सूर्ययश और बाहुबलीका चंद्रयश जिनोंसें सूर्य वंश और चंद्रवंश चले है. चंद्रवंशमें मेरा नाइ तृणबिंडुनामा हूआ, तथा सूर्यवशमें तेरा पिता राजा आयोधन हूआ,और आयोधन राजाकी बहिन सत्ययशा नामा तृणबिंडुकी नार्या हूइ,तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा नत्रीजा है,तो हे सुंदरी ! मैं तेरेकों तिस मधुपिंगलकों दीया चाहती हूं,और तूंतो क्या जाने स्वयंवरमें किसकों देइ जावेंगी ? मेरे मनमें यह शल्य है इस वास्ते तूंने स्वयंवरमें सर्वराजाओंकों ग्रेडकें मेरे नत्रीजे मधुपिंगलकों वरनां, तब सुलसाने माताका कहनां स्वीकार कर लीया, और मंदोदरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाकों कह दीया, तब सगर राजाने अपने विश्वनूतिनामा पुरोहितकों आदेश दीया,वो विश्वनूति बडा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्षणोंकी संहिता बनायी तिस संहितामें असें लिखा कि सगर तो शुनलक्षण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तककों संदूकमें बंद करकें रख ग्रेडा जब सब राजा आ कर स्वयंवरमें एकठे बैठे, तब सगरकी आज्ञासें विश्वनूतिने वो पुस्तक काढा अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसकों यातो मार देनां, अथवा स्वयंवरसें बाहिर निकाल देनां, यह कहनां सबोनें मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेकों अपलक्षण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसें आपही निकल गया, तब सुलसानें सगरकों वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपणे अपणे स्थानोंकों चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसें बाल तप करकें साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव हूआ, तब अवधिज्ञानसें सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें जूठा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हूआ था, सो देखा जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंकों मै मारुं ? तब तिनके ग्रिड्र देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पास पर्वतकों देखा, तब ब्राह्मणका रूप करके पर्वतकों कहनें लगा कि हे पर्वत ! मै तेरे पिताका मित्र हूं, मेरा नाम शाण्डिल्य है, मै और तेरा पिता हम दोनो साथ होकर गौतम उपाध्यायके पास पढे थे, मैंने सुना था कि नारदनें और दूसरे लोकोंने तुजे

बहुत दुःखी करा, अब मैं तेरा पक्ष पुरुंगा, और मंत्रों कर कें लोकोंकों विमोहित करुंगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलके लोकोंकों नरकमें गलने वास्ते तिस असुरने बहुत व्यामोह करा, व्याधि नूतादि दोष लोकोंकों कर दीये, पीछें उंहां जो लोक पर्वतका वचन मान लेता था, तिसकों अछा कर देताथा, शांमिल्यकी आज्ञासें पर्वतनी लोकोंकों अछा करने लगा, उपकार करकें लोकोंकों अपने मतमें मिलाता जाता था, तब तिस असुरने सगर राजाकों तथा तिसकी राणीयोंकों बहुत नारी रोगादिकका उपद्रव करा, तब तो राजानी पर्वतका सेवक बना, अरु पर्वतने शांमिलके साथ मिलकें तिसका रोग शांति करा, तब पर्वतने राजाकों उपदेश करा कि हे राजा! सौत्रामणि नामा यज्ञ करके, मद्यपान अर्थात् सराब पीनेंमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमें अगम्य स्त्री (चांमाली) आदि तथा माता बहिन, बेटी आदिसें विषय सेवन करना चाहियें, मातृमेधमे माताका और पितृमेधमें पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमें करे, तो दोष नहीं, तथा कछुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करकें तर्प्पण करे, कदाचित् कछु न मिले तो शुद्ध ब्राह्मणके मस्तककी टटरी ऊपर अग्नि स्थापन करकें होम करें, क्योंकि टटरीनी कछुकि तरें होती है. इस बातमें हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोंमें लिखा है, श्लोक ॥ सर्वंपुरुषैवेदं, यद्भूतयच्चविष्यति ॥ इशानोर्यमृतत्वस्य, यदन्नेनातिरोहति ॥१॥ इसका नावार्थ यह है, कि जो कुछ है, सो सब ब्रह्मरूपही है, जब एकही ब्रह्म हूआ, तब कौन किसिकों मारता है? इस वास्ते यथारुचिसें यज्ञोमे जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस नक्षण करो, इसमें कुछ दोष नहीं. क्योंकि देवोद्देश करनेंसे मांस पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाकों अपने मतमें स्थापन करकें अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमें वो पर्वत यज्ञ कराता हूआ तब कालासुरने अवसर पा करकें राजसूयादिक यज्ञनी कराता हूआ, और जो जीव यज्ञमें मारे जाते थे, तिनकों विमानोंमे बैठाके देवमायासे दिखाता हूआ, तब लोकोकों प्रतीत आ गइ पीछें वो निःशंक होकर जीवहिंसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजानी यज्ञ करनेंमे बडा तत्पर हूआ, सुलसा और सगर दोनों मरके नरकमे गये, तब महाकालासुरनें सगर राजाकों नरकमे मार पीटादि महादुःख देके अपणा वैर लीया, इस वास्ते

हे रावण! पर्वत पापीसें यह जीवहिंसारूप यज्ञ विशेष करकें प्रवर्त्त हूये हैं. हे राजा रावण! सो यह यज्ञ तैनें निषेध करा. यह कथा सुनके राजा रावणने प्रणाम करकें नारदकों विदा करा, इस तरेंसें जैन मतके शास्त्रोंमें वेदोंकी उत्पत्ति लिखी है सो आवश्यकसूत्र, आचारदिनकर, त्रेशठश लाका पुरुष चरित्रमें सर्व लिखा है, तांहांसें देख लेना.

और इस वर्त्तमान कालमें जो चारों वेद है इनकी उत्पत्ति माक्षर मों क्षमूलर साहिब अपने बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथमें तो ऐसा लिखते हैं, कि वेदोंमें दो भाग है, एक छंदोभाग, दूसरा मंत्र भाग है, तिनमें छं दोभागमें इस प्रकारका कथन है, जैसें अज्ञानीके मुखसें अकस्मात् वचन निकला हो, तैसें इसकी उत्पत्ति एकत्तीससौ वर्षेसें हूइ है, और मंत्रभागकों बने हूये उनतीससो वर्ष हूये हैं, इस लिखनेसें क्या आश्चर्य है? जो कि सीने उलट पुलटके फेर नवीन वेद बना दीयें हों. इन वेदों उपर उवट, सायण, रावण, महीधर, अरु शंकराचार्यादिकोंनें भाष्य बनाये हैं, टीका, दीपिका, रची हैं, फेर अब उन प्राचीन भाष्य दीपिकाकों अयथार्थ जानकें दयानंदसरस्वती स्वामि अपणें मतके अनुसार नवीन भाष्य बना रहे है, परंतु पंमित ब्राह्मण लोक, दयानंद सरस्वतीके भाष्यकों प्रामाणिक नही मानते हैं अब देखा चाहियें क्या होता है? और जैनमत वालोंनेंतो जबसें उनके शास्त्रोंके लिखने मुजब आर्य वेद, बिगाडे गये उसीदिनसें वेदोकों मानने छोड दीये हैं॥ इतिवेदोत्पत्तिः॥

जब श्रीऋषभदेवजीका कैलास पर्वतके उपर निर्वाण हूआ, तब सर्व देवता निर्वाण महिमा करनेकों आये, तिन सर्व देवताओंमेंसूं अग्निकुमार देवतानें श्रीऋषभदेवकी चितामें अग्नि लगाइ, तबसेंही यहश्रुति लोकमें प्रसिद्ध हूइ है "अग्निमुखावैदेवा" अर्थात् अग्निकुमार देवता सर्वदेवताओंमें मुख्य है, और अल्पबुद्धियोंनेंतो यह श्रुतिका अर्थ ऐसा बनालीया है कि अग्निजो है, सो तेतीसक्रोड देवताओंका मुख है. यह प्रभुके निर्वाणका स्वरूप सर्व आवश्यक सूत्रसें जान लेना.

जब देवताओंने श्रीऋषभदेवकी दाढा वगैरे लीनी, तब श्रावक ब्राह्मण मिलकर देवतायोंकों अतिभक्तिसें याचना करते हूये, तब वे देवता तिनकों बहुत जान करकें बडे यत्नसें याचनेके पीछे हूये देख कर कहते हूये कि

अहो याचका ! अहो याचका तवहीसें ब्राह्मणोंकों याचक कहने लगे, तब ब्राह्मणोने श्रीरूषनदेवकी चितामेंसें अग्नि ले कर अपने अपनें घरोमें स्थापन करते हूये, तिस कारणसें ब्राह्मणकों आहिताग्नय कहने लगे.

श्री रूषनदेवकी चिता जले पीछें दाढादिक सर्व तो देवता ले गये, शेष नस्म अर्थात् राख रहगयी सो ब्राह्मणोने थोडी थोडी सर्व लोकोंकों दीनी, तिस राखकों लोकोने अपणे मस्तक ऊपर त्रिपुंमाकारसें लगायी, तबसें त्रिपुंमलगानां, शुरु हूआ. इत्यादि बहुत व्यवहार तबसेंही चला है.

जब नरतने कैलास पर्वतके ऊपर सिंहनिषद्या नामा मंदिर बनाया, उसमें आगें होनेंवाले त्रेवीश तीर्थकरोंके और श्री रूषनदेवजीकी मिलकर चोवीश प्रतिमाकी स्थापना करी. और दंमरत्नसें पर्वतकों असें छीला कि जिस ऊपर कोइ पुरुष पगोंसें न चढ सके उसमें आठ पद (पगथीए) रखे इसी वास्ते इन कैलास पर्वतका दूसरा नाम अष्टा पद कहते है, तब सेंही कैलास महादेवका पर्वत कहलाया. महादेव अर्थात् बडेदेव सो रू षनदेव तिसका स्थान कैलास पर्वत जाननां.

नरत अरु बाहुबलि यह दोनी दीक्षा लेकें मोक्ष गये,तब नरतके पीछें सूर्ययश गद्दी ऊपर बेठा, तिसकी औलाद सूर्यवंशी कहलाये, तिसकें पीछें सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी ऊपर बैठा, असेंही अतिबल, महाबल, ते जवीर्य, कीर्त्तिवीर्य अरु दंमवीर्य, ये आठ अनुक्रमसें अपने अपने बापकी गद्दी ऊपर बैठे, अपने अपने राजका प्रबंध करते रहे, परंतु नरतके राजसें इनोंने आधा (तीन खंमका) राज्य करा, और अंतें नरतकी तरें राज्य छोड कर मोक्षमें गये, इनके पीछें गद्दी ऊपर असंख पाट हूये, तिनकी व्यवस्था चित्रांतरगंमिकासे जान लेनी यावत् जितशत्रूराजा हूये ॥ इति संक्षेपतः श्रीरूषनाधिकार. संपूर्णः ॥

अब अजितनाथ स्वामीके वखतका स्वरूप लिखते हैं. अयोध्या नग रीमें श्रीनरतके पीछें जब असंख्य राजा हो चुके, तब इक्ष्वाकुवंशमे जित शत्रु राजा हूआ, विनीता नगरीकाही दूसरा नाम अयोध्या है, परंतु अब जो अयोध्या है सो वो अयोध्या नहीं वो तो कैलास पर्वतके पास थी, और यह तो नवीन अयोध्या उसके नामसें वसी है, जितशत्रु राजाका छोटा नाइ सुमित्र युवराज था, जितशत्रुकी विजया देवी राणी थी,

तिसके चौदह स्वप्न पूर्वक अजितनाथ नामा पुत्र हूआ, और सुमित्रकी राणी यशोमतीकोंभी चौदह स्वप्न देखने पूर्वक सगरनामा पुत्र हूआ जब दोनों यौवनवंत हूए तब जितशत्रु और सुमित्रतो दीक्षा लेके मोक्ष रूप हो गये. तब श्रीअजितनाथ राजा हूये अरु सगर युवराजा हूये कितनेक काल राज करके श्री अजितनाथजीने तो स्वयमेव दीक्षा ले कर तप करा, और केवलज्ञान पा कर दूसरा तीर्थंकर हूआ पीछे सगर राजा हूआ, सो सगर दूसरा चक्रवर्ति हूआ है, यह सगर राजाने भरतकी तरें षट् खंडका राज्य करा, यह सगर राजाके जन्हु कुमार प्रमुख शाठ हजार बेटे हूये, तिनोंनें दंड रत्नसें गंगा नदीकों अपने असली प्रवाहसें फेरके और कैलासके गिरदनवाह खाइ खोदके उस खाइमें गंगाकों लाके गेरा, क्योंकि उनोंनें विचार करा था कि हमारे बडे भरतने जो इस पर्वत ऊपर सुवर्णरत्नमय श्रीऋषभादि तीर्थंकरोंका मंदिर बनाया है, तिसकी रक्षा वास्ते इस पर्वतके चारों ओर खाइ खोद कर उसमें गंगा फेर देउं, जिससें तीर्थकी विशेष रक्षा हो जावेगी, तिन शाठ हजारकों नाग देवताने मार दीया, क्योंकि खाइ खोदने और जल भरनेसें उनको तकलीफ पहुची थी, तब गंगाके जलनें देशमे बडा उपद्रव करा, तब सगरराजाका पोता जन्हुका बेटा भगीरथने सगरकी आज्ञासें दंड रत्नसें भूमि खोदके गंगाकों समुद्रमें मिलाया, इसी वास्ते गंगाका नाम जान्हवी और भागीरथी कहा जाता है, सगरराजाने श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर श्रीभरतके बनाये ऋषभदेवजीके मंदिरका उद्धार करा, तथा और जैनतीर्थोंकाभी उद्धार करा,तथा यह समुद्रभी भरतक्षेत्रमें सगरही देवताके सहाय्यसें लाया, लंकाके टापूमें वैताढ्य पर्वतसें सगरकी आज्ञासे घनवाहन पहिला राजा हूआ, और लंकाके टापूका नाम राक्षसद्वीप है तिसका यह हेतु हैकि घनवाहन राजाके वंसके राक्षस कहलाये, इसी वंसमें राजा रावण और बिभीषणादि हूये है. इत्यादि सगरचक्रवर्तीके समयका हाल त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां, क्योंकि तिस चरित्रके तेत्तीस हजार काव्य है इस वास्ते मै सारा हाल उसका इस ग्रंथमें नहीं लिख सक्ता हूं, परंतु संक्षेप मात्र वृत्तांत लिखुंगा. सगरचक्रवर्त्ति राज्य करके पीछे श्री अजितनाथजीके पास दीक्षा ले कर, संयम तप करकें केवलज्ञान पा,

कर मोक्ष पहूंचे, और अजितनाथ स्वामीजी समेतशिखर पर्वतके ऊपर शरीर छोडकें मोक्ष गये, श्रीरुषभदेव स्वामीके निर्वाणसें पंचाश लाख कोडी सागरोपमके व्यतीत हूयां श्रीअजितनाथ तीर्थंकरका निर्वाण हूआ तिनोंके पीछें तीस लाख कोडी सागरोपम व्यतीत हूये, श्रीसंभवनाथजी तीसरे तीर्थंकर हूये, राज्य सर्व सूर्यवशी, चंद्रवशी, और कुरुवशी, आदिक राजाओंके घरानेसें रहा ॥ इति श्रीअजितनाथ और सगरचक्रवर्तीका अधिकार संपूर्ण ॥

अब श्रावस्ती नगरीमें इक्ष्वाकुवशी जितारिराजा राज्य करता था, तिसकी सेना नामें पटराणी थी, तिनोंका संभव नामा पुत्र तीसरा तीर्थंकर हूआ, यह चोवीसही तीर्थंकरोंका वर्णन प्रथम परिछेदमें यंत्र और वार्तामें लिख आये हैं. इस वास्ते यहां संक्षेपसें लिखेंगे. और तीर्थंकरोंके आपसमें जो अंतरकाल है सोभी यंत्रोंमें देख लेनां. इति तृतीय तीर्थंकरवृत्तांत

इनके पीछें अयोध्यानगरीमें इक्ष्वाकुवशी संवरराजाकी सिद्धार्था नामक राणी तिनोंका पुत्र अभिनंदन नामक चोथा तीर्थंकर हूआ पीछें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवशी मेघराजाकी सुमंगला राणी तिनोकापुत्र सुमतिनाथ नामक पांचमा तीर्थंकर हूआ, पीछें कौसंबी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी श्रीधरराजाकी सुसीमा राणी तिनोका पुत्र पद्मप्रभनामक छठा तीर्थंकर हूआ, पीछे वाणारसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंसी प्रतिष्ठराजाकी पृथ्वी नामाराणी तिनोंका पुत्र श्रीसुपार्श्वनाथ नामा सातमा तीर्थंकर हूआ, पीछे चंद्रपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी महासेन राजाकी लक्ष्मणा * नामे राणी तिनोंका पुत्र श्री चंद्रप्रभ नामा आठमा तीर्थंकर हूआ, पीछें काकंदी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी सुग्रीवराजाकी रामा नामक राणी तिनोंका पुत्र श्रीसुविधिनाथ अपरनाम पुष्पदंत नामक नवमा तीर्थंकर हूआ.

यहां तक तो सर्व ब्राह्मण जैनधर्मी श्रावक और आर्य चारों वेदोंके पढने वाले बने रहे, जब नवमे तीर्थंकरका तीर्थ व्यवछेद हो गया, तबसें ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैनधर्मके द्वेषी और सर्व जगत्के पूज्य कन्या, भूमि, गोदानादिकके लेने वाले, सर्व जगत्मे उत्तम और सर्वके हर्ता कर्ता मतोंके मालक बन गये क्योंकि शूना घर देखके कुत्ताभि आटा खा जाता है, और जो जगत्में पाखंड तथा बुरे बुरे देवतादिकोंकी पूजा

है, तथा औरभी जो जो कुमार्ग प्रचलित हूवा है, वे सर्व इनोंहीने चलाये हैं, मानो आदीश्वर भगवानकी रची हूइ सृष्टिरूप अमृतमें जहर मालने वाले हूये, क्योंकि आगे तो जैनमतके और कपिलके मतके विना और कोइभी मत नहीं था कपिलके मतवालेभी श्रीआदीश्वर अर्थात् ऋषभदेवकोंही देव मानते थे, निदान यह इस हुंमा अवसर्पिणिमें आश्चर्य गिना जाता है.

तीस पीछें भद्दिलपुरनगरमे इक्ष्वाकुवंशी दढरथराजाकी नंदा नामा राणी तिनोंका पुत्र श्री शीतलनाथनामा दशमा तीर्थंकर हूआ, इनही तीर्थंकरके शासनमें हरिवंश उत्पन्न हूआ है, तिसकी कथा लिखते हैं.

कौशांबिनगरीमें वीरा नामा कोली रहताथा, तिसकी वनमाला नामा स्त्री अत्यंत रूपवंती थी सो नगरके राजाने छीनकें अपणी राणी बना लेइ, वीरा कोली स्त्रीके विरहसें बावला हो गया हा वनमाला हा वनमाला औसें कहता हूआ नगरमे फिरने लगा एकदा वर्षाकालमें राजा वनमालाके साथ महिलके जरोखेमें बेठा था, तव राजा राणीनें वीरेकों तिस हालमें देखके बडा पश्चात्ताप करा, अरु विचार करने लगे कि हमने यह बहुत बुरा काम करा,उसी वखत वीजली गिरनेसें राजा राणी दोनो मरके हरिवासक्षेत्रमें युगल स्त्री पुरुष हो गये, तव वीरा कोली राजा राणीका मरण सुनकें राजी हो गया पीछें तापस बनकें तप करा,अज्ञान तपके प्रभावसें किल्बिष देवता हूआ तब अवधिज्ञानसें राजा राणिकों युगलीये हूये देख कर विचार करा कि यह भद्रक परिणामी और अल्पारंभी है, इस वास्ते मरके देवता होवेंगे, तो फेर में अपना वैर किससे लेकंगा ? इस वास्ते औसा करुं किः— जिससें ये दोनों मरकें नरकमे जावे, औसा विचार के तिन दोनोंकों तहांसें उठा करकें भरत क्षेत्रमें चंपा नगरीके इक्ष्वाकुवंशी चंद्रकीर्त्ति राजा अपुत्रिया मरा था, लोक सब चितामें वैठे थे कि कौन यहांका राजा होवेगा ? पीछें तिस देवतानें ये दोनो उनकों सोंपे, और कहाकि यह तुमारा हरिनामा राजा हूआ, इसकी यह हरणी नामा राणी है, इनके खाने वास्ते तुमने फलमिश्रित मांस देना और इनसें शिकारभी करानां तव लोकोंनें तैसेही करा वे दोनों पापके प्रभावसें मरके नरकमें गये, और उनकी औलाद सब हरिवंशकी कहलायें इसी वंशमें वसुराजा हूआ इति हरिवंशोत्पत्ति ॥ इनश्री शीतलनाथजीकाभी शासन विछेद गया, इसी-

तरें पंदरह्वें तीर्थंकर तक सात तीर्थंकरोंका शासन विछेद होता रहा, और मिथ्याधर्म बढ गये.

तिस पीछें सिंहपुरी नगरीमें इक्ष्वाकु वंशी विष्णुराजा हूआ तिसकी विष्णु श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीश्रेयांसनाथ नामा इग्यारमां तीर्थंकर हूआ, तिनके समयमें वैताढ्यपर्वतसें श्रीकंठ नामा विद्याधरके पुत्रने वज्रोत्तर विद्याधरकी बेटीकों हरके अपने बहनोइ राक्षसवंशी लंकाका राजा कीर्त्ति धवलकी शरण गया, तब कीर्त्तिधवलने तीनसौ योजन परिमाण वानर द्वीप उनके रहनेकों दीया, तिनोंके संतानोंमेंसें चित्र विचित्र विद्याधरोने विद्यासें बंदरका रूप बनाया, तब वानर द्वीपके रहनेसें और वानरका रूप बनानेसें वानरवंशी प्रसिद्ध हूये, तिनोंहीकी औलादमें वाली और सुग्रीवादिक हूये हैं.

तथा श्रेयांसनाथके समयमें पहिला त्रिपृष्ठ नामा वासुदेव हरिवंशमें हूआ, तिसकी उत्पत्ति ऐसें हैः– पोतनपुर नगरमें हरिवंशी जितशत्रु नामा राजा हूआ, तिसकी धारणी नामा राणी थी, तिसका अचल नामा पुत्र और मृगावती नामा बेटीथी,सो अत्यंत रूपवान् औ यौवनवती थी, उसकों देखकें उसके पिता जितशत्रुने अपणी राणी बना लीनी तब लो कोंने जितशत्रु राजाका नाम प्रजापति रक्खा, अर्थात् अपनी बेटीका पति ऐसा नाम रक्खा, तबहीसें वेदोमें यह श्रुति लिखी गइ " प्रजापतिर्वैस्वा दुहितरमन्य ध्यायद्दिवनित्यन्यआहुरुसमित्यन्येतामृश्योभूत्वा तदसावावि त्योभवत्" इसका भावार्थ यह है किः–प्रजापतिब्रह्मा अपनी बेटीसे विषय सेवनेकों प्राप्ति होता हूआ, हमारें जैनमतवालोंकी तो इस अर्थसें कुछ हानी नहीं, परंतु जिनलोकोंने ब्रह्माजीकों वेदकर्त्ता हिरण्यगर्भके नामसें इश्वर माना हैं, औ इस कथाकों पुराणोंमें लिखा है, उनका फजीता तो जरुर दूसरे मतवाले करेंगे ? इसमें हम क्या करे ? क्योंकि जो पुरुष अपने हाथोंसेंही अपना मुह काला करे, तब उसकों देखने वाले क्योंकर हांसी न करेगे ? यद्यपि मीमांसाकें वार्त्तिककार कुमारिलनें इस श्रुतिके अर्थके कलंक दूर करणेकों मनमानी कल्पना करी है, तथा इस कालमें दयानंद सरस्वतीनेभी वेदश्रुतियोंके कलंक दूर करनेकों अपनी बनाइ भा ष्यमें खूब अर्थोंके जोड तोड लगाये है, परंतु जो पुराणवालेने कथानक

लिखा हैं, तिसकों क्योंकर छिपा सकेंगें ? इसमें यह मशल मशहूर है कि:– बूंदकी बात तो विलायत गइ अब क्यों घडे रुडहाते हो अब हमारे मतमेंतो वेदश्रुति और ब्रह्मा (प्रजापति) का अर्थ यथार्थही कराहै. अरु जब त्रिपृष्ट और अचल दोनो योवनवंत हूये तब तिनोने त्रिखंडका राजा अश्वग्रीवकों मारकें तीन खंडका राज्य करा.

तिस पीछें चंपा पुरीका इक्ष्वाकुवंशी वसुपूज्य नामा राजा हूआ, तिसकी जया नामा राणी तिनोंका पुत्रश्रीवासुपूज्यनाथ नामा बारहवां तीर्थकर हूआ,तिनोके वारें दूसरा द्विपृष्ट वासुदेव और अचल बलदेव हूये.और इनका प्रतिशत्रु रावण समान तारक नामा दूसरा प्रतिवासुदेव हूआ, इन सर्व वासुदेव और चक्रवर्ती आदिकोंका संपूर्ण वरनन त्रेशठशलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां.

तिस पीछें कपिलपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्मा नामा राजा हूआ, तिसकी श्यामा नामा राणी, तिनोंका पुत्र श्री विमलनाथ नामा तरेहवां तीर्थंकर हूआ, तिनोंके वारें तिसरा स्वयंभु वासुदेव और भद्रनामा बलदेव तथा मैरक नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन राजा हूआ तिसकी सुयशाराणी तिनोंका पुत्र श्रीअनंतनाथ नामा चौदहवां तीर्थंकर हूआ, तिनके वारें चौथा पुरुषोत्तम नामा वासुदेव और सुप्रभनामा बलदेव तथा मधुकैटभ नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें रत्नपुरी नगरीमे इक्ष्वाकुवंशी भानुनामा राजा हूआ, तिसकी सुव्रतानामा राणी तिनोंका पुत्र श्रीधर्मनाथ नामा पंदरहवा तीर्थंकर हूआ, तिनकें वारे पांचमां पुरुषसिंह नामा वासुदेव और सुदर्शन नामा बलदेव तथा निशुंभ नामा प्रतिवासुदेव हूआ, यहांतक पांच वासुदेव हूये सो पांचोही, अरिहंतोके सेवक अर्थात् जैनधर्मी हूये.

तिस पीछें पंदरहवे धर्मनाथ और शोलवे श्रीशांतिनाथजीके अंतरमे तीसरा मघवा नामा चक्रवर्त्ती और चौथा सनत्कुमार नामा चक्रवर्त्ती हूये.

तिस पीछें हस्तिनापुरी नगरीमे कुरुवंशी विश्वसेन राजा हूआ तिसकी अचिरा राणी तिनका पुत्र श्रीशांतिनाथ नामा हूवा सो पहिला गृहवासमें तो पांचमां चक्रवर्त्तिथा पीछें दीक्षा लेके केवली होकर शोलवां तीर्थंकर हूआ.

तिस पीछें हस्तिना पुर नगरमें कुरुवंशी सूरनामा राजा हूआ, तिसकी श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीकुंथुनाथ हूआ, सो प्रथम गृहस्थावस्थामें छठा चक्रवर्त्ती था, अरु दीक्षा लीया पीछें सत्तरहवां तीर्थंकर हूआ.

तिस पीछे हस्तिनापुरनगरीमें कुरुवंशी सुदर्शन नामा राजा, हूआ तिसकी देवी राणी, तिनोंका पुत्र श्रीअरनाथ हूआ, सो गृहस्थावासमें तो सातवां चक्रवर्त्ति था और दीक्षा लीया पीछें अठारहवां तीर्थंकर हूआ.

अठारहवें और उन्नीसवें तीर्थंकरके अंतरेमें आठवां कुरुवंशी सुभूम नामा चक्र वर्त्ती हूआ यह सुभूमके वखतमेंही परशुराम हूआ इन दोनोंका संबंध जैनमतके शास्त्रोंमें जैसे लिखा है तैसेंमेंभी यहां लिख देता हूं.

यह कथा योग शास्त्रमें ऐसें लिखी है कि, वसंत पुर नामा नगरमें उछन्नवंश नामा अर्थात् जिसका कोइभी संबंधी नहीं था ऐसा अग्निक नामा एक लडका था सो अग्निक एकदा समये किसी सार्थवाहके साथ देशांतरकों जाता हूआ मार्गमें साथसें भूलके जंगलमें एक तापसके आश्रममें गया, तब कुलपति तापसने तिसकों अपना पुत्र बनाकें रखलीया, पीछें तहां अग्निकने बडाभारी घोर तप करा और बडा तेजस्वी हूआ, जगत्मे यमदग्नि तापसके नामसें प्रसिद्ध हूआ इस अवसरमें एक जैनमति विश्वानर नामा देव और दूसरा तापसोंका भक्त धन्वंतरि नामा देव, यह दोनो देव परस्पर विवाद करने लगे तिसमें विश्वानर तो ऐसा कहने लगाकिः– श्रीअर्हंतका कहा धर्म प्रामाणिक है? और दूसरा कहने लगा कि तापसोंका धर्म सच्चा है, तब विश्वानरने कहाकि दोनो धर्मके गुरुओंकी परीक्षा कर लो तिसमेंभी अर्हंतधर्मके तो जघन्य गुरुजो होवे तिसकी और तापस धर्मके उत्कृष्ट गुरु जो होवें,तिसका धैर्य देख लो, तब मिथिला नगरीका पद्मरथ राजा नवाही जिन धर्मी हो कर भावयति हूआथा सो चंपानगरीमें गुरुओंकें पास दीक्षा लेने वास्ते जाताथा तिसको प्रथमें तिन दोनो देवताओने देखा, तब रस्तेमे दुःख देनेवाले बहुत कंटे कंकरे बना दीये, तथा रस्तेके सिवाय दूसरे स्थानमे बहुत कीडे आदि जीव हरजगें बना दीये तब राजा भावयतिके भावोसें कमल समान कोमल, नंगे पगोंसें उन कांटे कंकरोके उपर चला जाता है, पगोंमेंसुं रुधिरकी ततीरीयां छूटती है, तोभी जीवों संयुक्त भूमि उपर नहीं चलता है, तब देवता

ओंने गीत नाटकका बडा प्रारंभ करा तोभी वो राजा क्षोभायमान न हू
आ तब दोनों देवता सिद्धपुत्रोंका रूप करकें राजाकों कहने लगे हे मह
भाग तेरी आयु अभि बहुत है. तुं स्वछंद भोगविलास कर क्योंकि यौवनमें
तप करनां ठीक नहीं इस वास्ते जब तूं वृद्ध हो जावेंगा, तब दीक्षा ले
लीजो यह वात सुन कर राजा कहने लगा यदि मेरा बहुत आयु है, त
ब मै बहुत धर्म करुंगा क्योंकि जितना ऊंचा पाणी होता है, तितनीही कम
लकी नालिभी बढ जाती है और यौवनमें जो इंद्रियोंकों जीतनां है, सोइ अ
सली तप होता है तब तिन देवताओंने जानां यह तो कदापि चलायमान
न होगा, पीछें वो दोनो देवता मिल कर सर्वसें उत्कृष्ट जमदग्नि तापसके पास
परीक्षा करणेंकों गये, तब तिनोंने जिसकी वडवृक्षकी जटाकी तरे तो धरतीसें
जटा लग रही है, और पगोमे सर्प्पोंकी बिंबीया बन गइ है, औसे हालम
जमदग्निकों देखा, तब वो दोनोंदेवतानें देव मायासें जमदग्निकी दाढीमें
घोंसला बनाकर चिडा और चिडी बनकर घोंसलेमें दोनो बेठ गये पीछें
चिडा चिडीसें कहने लगा मै हिमवत पर्वतमें जाउंगा तब चिडी कहने
लगी मै तुझे कभी न जाने देउंगी, क्योंकि तूं तहां जाके किसी और चि
डीसें आसक्त हो जावेंगा, फेर मेरा क्या हाल होवेगा? तब चिडा कहने
लगा कि जो मै फिर कर न आउ, तो मुझे गौ घातका पाप लगे, तब
चिडी कहने लगी मै तेरी शपथकों नही मानती हों, जो मैं सपथ (सौ
गंद) कहूं वो तूं करे. तो मै जाने देउगी, तब चिडेने कहा तूं कह दे तब
चिडी कहने लगी कि जो तूं किसी चिडीसें यारी करे तो इस जमदग्नि
का जो पाप है, सो तुझकों लगे चिडाचिडीका औसा वचन सुणके जम
दग्निकों क्रोधोत्पन्न हूआ तब दोनों हाथोंसें चिडा चिडीकों पकड लीया
और कहता हूआ कि मै तो बडा दुष्कर तप जो पापोंका नाश करने वाला
है, सो कर रहा हों तो फेर मेरेमें औसा कौनसा पाप शेष रह गया है जिस्से
तुम मुझे पापी बतलाते हो? तब चिडा यमदग्निको कहता है, हे ऋषि!
तू हमारें उपर कोप मत कर. क्योंकि हमने झूठ नहीं कहा है, और जो
तेरेकों अपने तपका घमंड हैं, सो तप तेरा निष्फल है, क्योंकि तुमारे
शास्त्रोमे लिखा है. जो "अपुत्रस्यगतिर्नास्ति" अर्थात् पुत्र रहितकी गति
नहीं यह तुमनें शास्त्रमे नहीं सुना? तो जिसकी शुभगति न हूइ तिस्सें

अधिक और पापी कौन है? तब जमदग्निने शोचा कि हमारे शास्त्रमें तो जैसें चिडेने कहा है, तैसेंही है तब मनमें विचारा जब मेरे स्त्री, और पुत्र नही, तब मेरा सर्व तप ऐसा है, जैसा पाणीके प्रवाहमें मूतना, तैसा है, पीछें जमदग्निके मनमें स्त्रीकी चाहना उत्पन्न हूइ, यह देखके धन्वंतरि देवता श्रावक जैनधर्मी हो गया अरु उहांसे दोनो देवता अदृश्य हो गये और जमदग्नि तहांसें उठके नेमिक कोष्टक नगरमें पहुचा तिस नगरमें जितशत्रुराजा था. तिसके बहुत बेटीयां थी तिस राजा पासों एक कन्या मांगु? ऐसा विचार किया? राजाजी आसनसें उठके और हाथ जोडके कहता हूआ कि आप किस वास्ते आये हो? और मुझे आदेश देओ क्या करुं? तब जमदग्निने कहा मैं तेरे पास तेरी एक कन्या मागने आया हूं तब राजाने कहा मेरी सौ (१००) पुत्री हैं तिनमेंसू जो, नसी तुमकों वांछे सो तुम लेल्यो, तब जमदग्नि कन्यायोके महिलमें गया और कहने लगा कि तुममेंसें जिसने मेरी धर्मपत्नी (स्त्री) बनना है, सो कह देवे कि मैं तुमारी स्त्री बनूंगी, तब तिन राजपुत्रीयोने जटाला और पलित धोलेकेशोंवाला दुर्बल और भीख मांगके खानेवाला जब देखा और उसका पूर्वोक्त वचन सुना तब सबोंने थूंका और कहा कि ऐसी वात कहते हूये तुझकों लज्जा नही आती है? यह वात सुनकर जमदग्निकों वडा क्रोध चढा, तब विद्याके प्रभावसें उन राजपुत्रीयोंकों कूबडी और महाकुरूपवान् बना दीया, अरु आप तहासें निकलके महिलोके अंगनमें आया, तहां एक छोटी राजाकी बेटी रेणु पुजमें (मट्टीके ढेरमे) खेल रही थी, तिसकों हाथमें बिजोरेका फल ले कर कहने लगा हे रेणुका! तु मुझकों वांछती है? तब तिस बालिकाने बिजोरेकों देखके हाथ पसारा तब मुनिने कहा मुझकों यह वाछती है ऐसें कहकर मुनिने उसको ले लीया पीछे राजाने कितनीक गौआ और धन देकर लडकीका विवाह उसके साथ विधिसें कर दीया. तब जमदग्निने शालीयोके स्नेहसें सर्व कन्यायोंकों अच्छा कर दीया, और तिस रेणुका भार्याको लेकर अपणे आश्रममें आया पीछें तिस मुग्धा. मधुर आकृति, हरणीसमान लोचनाकीको प्रमसें वृद्धि करता भया, जब जमदग्निकों अंगुलियो ऊपर दिन गिणतेको वो रेणुका सुंदर यौवन कामके लीला वनको प्राप्त हूइ, तब जमदग्निने

अग्निकी साक्षी करकें रेणुकासें फिर विवाह करा, जब रेणुका ऋतुकालको प्राप्ति हूइ, तब जमदग्नि कहने लगा कि मैं तेरे वास्ते चरु साधता हूं,चरु "होममें मालनेकी वस्तुओंकों कहते है" जिस्सें सर्व ब्राह्मणोंमें उत्तम प्रताप वाला तेरेकों पुत्र होवेगा, तब रेणुकानें कहा हस्तिना पुरमे कुरुवशी अनंतवीर्य राजाकों मेरी बहिन व्याही है तिसके वास्ते तूं क्षत्रिय चरुजी साध्य,अर्थात् मंत्रोंसें संस्कार करके सिद्धकर पीछे जमदग्निने ब्राह्मण चरु तो अपणी नार्या वास्ते अरु क्षत्रिय चरु तिस नार्याकी बहिन वास्ते सिद्ध करा तब रेणुकाने मनमें विचार कराकि मै जैसें अटवीमें हरिणीकी तरें रहती हूं, तो मेरा पुत्रजी वैसेही जंगलोमें रहेगा, इस वास्तेमें क्षत्रिय चरु नक्षण करुं, जिस्सें मेरा पुत्र राजा होकें इस जंगल वाससें बुट जावे, ऐसा विचारकें क्षत्रिय चरु खा लीया और ब्राह्मण चरु अपनी बहिनकों नक्षण कराया, तब तिन दोनोंके दो पुत्र हूये तिसमें रेणुकाके तो राम नामक पुत्र हुये, और रेणुकाकी बहिनके कृतवीर्य पुत्र हूये, क्रमसें दोनों वडे हूये, राम तो आश्रममें पला, और कृतवीर्य राज महेलोंमें पला, राम तो क्षत्रीतेज अर्थात् क्षत्रिय पणेंकी तेजी देखानें लगा अन्यदा एक विद्याधर अतिसार रोग वाला तिस आश्रममें आ गया, अतिसारके प्रजावसें आकाशगामिनी विद्या जूल गया, तब तिस मांदे विद्याधरकी रामने औषध पथ्यादि करकें जाइकी तरें सेवा करी, पीछे तिस विद्याधरने तुष्टमान होके रामको परशुविद्या दीनी, तब रामजी सरकडेके वनमें आकर तिस विद्याकों सिद्ध करता हूआ, तिस विद्याके प्रजावसें राम परशुराम नाम करकें जगत्में प्रसिद्ध हूआ, एकदा अवसरमें अपना जमदग्नि पतिकों पूछकें रेणुका वडी उत्कंठासें अपणी बहिनके मिलने वास्ते हस्तिना पुरमें गइ, तहां रेणुकाकों अपणी शालि जान कर अनंतवीर्य राजा हसी मशकरी करने लागा, और रेणुकाका बहुत सुंदर रूप देख कर कामातुर होकें उसके साथ निरंकुश हो कर विषय सेवन करने लगा, तब अनंतवीर्यके नोगसें रेणुकाके एक पुत्र जन्मा, पीछे जमदग्नि पुत्र सहित रेणुकाकों आश्रममें ल्याया क्योंकि पुरुष जब स्त्रीयोंका लुब्ध हो जाता है तब बहुततासें कोइजी दोष नहीं देखता है, जब परशुरामने अपनी माताकों पुत्र सहित देखा, तब क्रोधमें आकर परशुसे अपनी माताका और तिस लड

केका दोनोंका शिर काट माला, जब यह वृत्तांत अनंतवीर्य राजाने सुना, तब क्रोधमें नर कर और फौज ले कर जमदग्निका आश्रम जाल फूक तोड फोक गेरा और सर्व तापसोंकों त्रास मान करा, तब तापसोंने दौडते हूयां जो रौला करा तिसकों परशुरामनें सुना और सारा वृत्तांत सुनके परशु लेके राजाकी सेना ऊपर दोडा, परशुरामनें परशुसें राजा और राजाकी सेना सुनटोंकों काष्टकी तरे फाडके गेर दीया. आप पीछें आश्रममें चला गया, उधर प्रधान राजपुरुषोंनें अनंतवीर्यके बेटे कृतवीर्यको राजसिंहासन उपर बैठाया, परंतु वो उमरमें छोटा था, एकदिन अपणी माताके मुखसें अपने पिताके मरणेका वृत्तांत सुनकें सर्पके मुंसे हूयेकी तरे आ कर जमदग्निकों मार दीया, तब परशुराम आपना पिताका वध देखकें क्रोधमें जाज्वल मान हो कर हस्तिनापुरमें आकें कृतवीर्यकों मारकें आप राजसिंहासन उपर बैठ गया, क्योंकि राज्य जो है, सो पराक्रमके आधीन है, तब कृतवीर्यकी तारा नामा गर्नवती राणी परशुरामके नयसें दौडकर किसी जंगलमें तापसोंके आश्रममें गइ, तब तिन तापसोंनें दया करकें तिस राणीकों अपने मठके नौंहरेमें निधानकी तरें छिपाके रखा, तहा तिस राणीके चौदह स्वप्न सूचित पुत्र जन्मा तिसका नाम तिसकी माताने सुनूम रखा, क्षत्रिय जो जहां मिलता है, तहांही परशुरामका कुहाडा जाज्वलमान होजाता है, तब परशुराम परशुसें क्षत्रियोंका शिर काट देता है, अन्यदा परशुराम जिहां छिपी हूइ राणी पुत्रसें रहती थी तिस आश्रममें आया तहां परशुरामका परशु जाज्वलमान हूआ, तब परशुरामनें तापसोंकों पूछा, क्या यहा कोइ क्षत्रिय है, तब तापसोने कहा हम गृहस्थावासमें क्षत्रिय थे, तब परशुरामनेनी क्षत्रियोंकों छोडके सात वार निःक्षत्रिय पृथ्वी करी, अर्थात् सात वार चढाइ करके अपणी जाणमें कोइनी क्षत्रिय बाकी नही छोडा, जैसें अग्नि, पर्वत ऊपर घांसकों नही छोडती है, तैसें परशुरामनेनी जो जो क्षत्रिय राजादि प्रसिद्ध थे, तिनोंकों मारके तिनोंकी दाढासें एक थाल नरा, और परशुरामने छाना निमित्तियेको पूछा कि मेरामरणां किसके हाथसे होगा ? तब निमित्तियेने कहा कि जो तैने दाढासें थाल नरा है, सो थाल जिसके देखनेंसे दाढाकी खीर बन जायेगी, और इस सिंहासन ऊपर बैठके जो तिस खीरकों खा

यगा, तिसके हाथसें तेरा मरणा होवेगा, यह सुन कर परशुरामने दान शाला बनाइ, और दानशालाके आगें एक सिंहासन रचाया, तिस ऊपर क्षत्रियोंकी दाढांवाला स्थाल रखवाया, अब इधर तापसोंके आश्रममें प्रतिदिन तापस सजूम बालककों लाड लडाते, खिलाते, अंगणके वृक्षकी तरे वृद्धि करते हूये रहते है, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोइ निमित्तियेकों पूछने लगा कि मेरी जो पद्मश्री कन्या है, तिसका वर कौन होवेगा? तब तिस निमित्तियेने सुजूम वर बतलाया, और उसका सर्व वृत्तांतभी सुना दीया, तब मेघ विद्याधरनें अपनी बेटी सुजूमकों व्याही, और तिसकाही सेवक बन गया एकदा कूपके मेंडककी तरे और कंही जानेंमे रहित हूआ होया सजूम अपनी माताकों पूछनें लगा कि हे माता! इतनाही लोक है, कि जिसमें हम रहते है, क्या इस्सें अधिकभी है? तब माता कहने लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत है, तिसमे मक्खिके पग जितनी जगामें यह आश्रम है, इस लोकमें बहुत प्रसिद्ध हस्तिना पुर नगर है, तिस नगरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था, परंतु परशुराम तेरें पिताकों मारकें हस्तिना पुरका राजा बन गया है, और तिस परशुरामने निःक्षत्रिय पृथ्वी कर दइ है, तिस परशुरामके भयसें हम यहां आश्रममे छिपे हूये बैठे हैं. अपनी माताका यह कहना सुनके सजूम भौमकी तरे अर्थात् मंगलके तारेकी तरें लाल हूआ, और तहांसें निकलके सीधा हस्तिना पुरमें आया, तब लोकोंने पूछा कि तूं ऐसा अत्यद्भुत सुंदर किसका बेटा है? तब कहा मै क्षत्रियका पुत्र हूं तब लोकोंने कहा तूं यहां ज्वलती आगमें क्यों आया? तब तिसने कहा मै परशुरामकों मारनेके वास्ते आया हूं, तब लोकोने बालक जानके उसकी बात उपर कुछ ख्याल न करा अब सुजूम सिंहकी तरें उस पूर्वोक्त सिंहासन उपर जाके बैठा, और तहां देवताके विनियोगसें दाढाकी क्षीर बन गइ, तिसकों सुजूम खाने लग गया तब तहां जो रखवाले ब्राह्मण थे, वे सर्व सुजूमको मारणेकों उठे, तब मेघनाद विद्याधरने सब ब्राह्मणकों मार दीया तब कंपता हूआ और दांतोंकों चाबता हूआ, क्रोधमें भरा हूआ, ऐसा परशुराम कोहाडा (परशु) लेके सजूमकों मारने आया परशुरामने सजूमके मारणेकों परशु चलाया वो परशु सुजूमतक पहूंचनेंसें पहिलाही आगके अंगारेकी तरें बुझ गया,

विद्या देवी जो थी, सो सुनूमके पुण्य प्रनावसें परशुकों छोड के नाग गइ तब सुनूमनें शस्त्रके अनावसें थालही उगके परशुरामकों मारा तिस थालका चक्र बन गया, तिस चक्रने परशुरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेंही सुनूम आठवां चक्रवर्त्ति हूआ.

इस कथा उपर लोकोंनें जो यह कथा बना रक्की, सो ठीक नहीं है,सो कथा कहते है. जैसें कि परशुराम परशुसें क्षत्रियोंकों काटता हूआ राम चंद्रजीके पास पहूंचा और परशुसें रामचंद्रजीकों मारने लगा, तब राम चंद्रजीने नरमाइसें पग चंपी करकें उसका तेज हर लीया, तब परशुरामका परशु हाथसें गिर पडा, और फिर न उग सका यह श्रीरामचंद्र नही था, परंतु यहतो सुनूम नामा आठमां चक्रवर्त्ती था, जिसनें परशुरामका काम तमाम कीया, इस कथाके बनानें वालोनें परशुरामकी हीनता दूर करनेकों श्रीरामचंद्रजीका संबंध लिख दीया है, असली सुनूमचक्रवर्त्ति लिखने वालांने यहनी शोचा होगा एक अवतारने दूसरे अवतारका अंस खींच लीया, इसमें परशुरामकी लघुता न होवेगी, परंतु यह नही शोचा होगा कि दोनों अवतार अज्ञानी बन जायेगे जब परशुराम आपही अपने अंशकों कोहाडेसें काटने लगा, तब तिसमे और अधिक अज्ञानी कौन बनेगा ? जब सुनूम चक्रवर्त्ति आठमा हूआ, तब जैसे परशुरामने सात वार निःक्षत्रिया पृथ्वी करी थी, तैसें सुनूमने पिछले वैरसें इक्कीश वार निर्ब्राह्मण पृथ्वी करी अपणी जाणमें कोइनी ब्राह्मण जीता नहीं छोडा, इसी वास्ते इन राजायोंकों ब्राह्मणोंनें दैत्य. राक्षसके नामसें पुस्तकोंमे लिख ढीया है,यह दोनों मरके अधोगतिमें गये ॥ इति परशुराम और सनूमचक्रवर्त्तिका संबंध संपूर्ण ॥

यह सनूमचक्रवर्त्तिसें पहिला इसी अंतरेमें छठा पुरुषपुंमरीक वासुदेव तथा आनंद नामा बलदेव और बलि नामा प्रतिवासुदेव हूये,तथा सुनूमके पीछें इस अंतरेमें दत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नंद नामा बलदेव और प्रल्हाद नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें मिथुला नगरीमें इक्ष्वाकुवशी कुंन राजा हूआ, तिसकी प्रजावती राणी तिनकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवीसमा तीर्थंकर हूआ.

तिस पीछें राजगृह नगरीमे हरिवशी सुमित्र राजा हूआ, तिसकी

पद्मावती राणी तिनका पुत्र मुनिसुव्रतनामा वीशमा तीर्थंकर हूआ, इ नोंके समयमें महापद्म नामा नवमा चक्रवर्ती हूआ, तिसका संबंध त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां परंतु तिसके नाइ विष्णु कुमारका थो डासा संबंध यहां लिखते है.

हस्तिना पुर नगरमें पद्मोत्तर नामा राजा तिसकी ज्वालादेवी राणी तिनका वडा पुत्र विष्णुकुमार, और छोटा नाइ महापद्म हूआ, तिस अव सरमें अवंती नगरीमें श्रीधर्मनामा राजेके मंत्रि नमुचि अपर नाम वल यह नामके मिथ्यादृष्टि ब्राह्मणने श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकरका शिष्य श्री सुव्रताचार्यके साथ अपनी मतका विवाद करा, वादमें हार गया तव रा त्रिकों तलवार लेके आचार्यकों मारने चला, रस्तेमें पग थनये यह स रूप राजानें सुनके अपनें राज्यसें वाहिर निकाल दीया तव नमुचि वल तहांसें चलके हस्तिना पुरमें युवराज महापद्मकी सेवा करने लगा किसी काममें तुष्ट मान होके महापद्मने तिसकों यथेच्छा वर दीया पीछें पद्मोत्तर राजा और विष्णु कुमार दोनोंनें सुव्रत गुरुके पास दीक्षा लेकें पद्मोत्तर मोक्ष गयां, और विष्णु कुमार तपके प्रनावसें महालब्धिमान् हूआ इस अवस रमें सुव्रताचार्य फेर हस्तिना पुरमें आये, तव नमुचिवलनें विचारा कि यह वैर लेनेका अवसर है, तव महापद्म चक्रवर्तीसें विनति करीकि—मैंने जैसें वेदोमें कहा है,तैसें एक महायज्ञ करना है इस वास्ते मै पूर्वोक्त वर मागना चाहाता हूं, तव महापद्मने कहा मांग तव नमुचिने कहा मुझे कितनेक दिन तक आपनां सर्व राज दे देवो, यह सुनकर महापद्मने उसके कहे दिन तक सर्व राज उसें दे कर आप अपने अंतेउरोमें चला गया, तव नमुचिवलने नगरसें निकलके यज्ञ वास्ते यज्ञ पाडा वनाया, उसमें दी क्षा ले के आसन उपर बैठा तव जैनमतके साधु छोडके दूसरे सर्व पाखं मी निक्षु और गृहस्थ नेटना ले के आये नेट दे के सर्वोने नमस्कार करा, तव नमुचिवलने पूछा कि नहीं आया होये, असा तो कोइ रहा नहीं ? तव लोकोने कहा कि जैनमती सुव्रताचार्य वर्जके सर्व दर्शनी आ गये है, तव नमुचिवलने यह छिद्र प्रगट करकें और क्रोधमें नरके सिपा ही बोलानेको नेजे, और कहला नेजा कि राजा चाहो कैसाही हो, तो नी सर्वकों मानने योग्य है, उसमेंनी साधुओंकों तो विशेष करकें मान

नां चाहियें, क्योंकि राजासें उपरांत ऐसें अनाथ लिंगीयोंकी रक्षा करने वाला कौन है? तथा मेरा तुम कुछ करने समर्थ नहीं. और वडे अभिमानी हो, तथा हमारे धर्मके निंदक हो इस वास्ते मेरे राजसें बाहिर हो जाउ, जो रहेगा, उसकों में मार डालूंगा इसमें मुझे पापभी नहीं होगा, तव गुरुने आ कर मीठे वचनसें कहा कि हमारा यह कल्प नहीं जो गृहस्थके कार्यमें जाना, परंतु हम अभिमानसेंही नहीं आये ऐसा मत समझना क्योंकि साधु समभावसें अपने धर्मकृत्यमें लगे रहते हैं, तव नमुचिवल अति शांतिवृत्तिवाले मुनियोकों कठोर हो कर कहनें लगा कि सात दिनके अंदर मेरे राजसें बाहिर हो जाउ जो रहेगा, सो मारा जायगा, यह सुनके सब साधु अपने तपोवनमें आये, और शोचने लगे कि अब क्या उपाय करीयें? तब एक साधु कहने लगा कि महापद्म चक्रवर्त्तिका वडा भाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् वडी शक्तिवाला मेरु पर्वत उपर है, तिसके कहनेसें यह नमुचिवल प्रशांत हो जावेगा, इस वास्ते कोइ चारण साधु उसकों यहां बोला ल्यावे तो ठीक है तव एक साधु बोला कि मेरी उहां मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परतु पीछें आवनेकी शक्ति नही है तब गुरु कहने लगे कि तुमकों पीछा विष्णु मुनिही यहां ले आवेंगे. तुम जाउ तव वो साधु लब्धिसें एक क्षणमे तहां गया, और सर्व वृत्तांत सुनाया, तव विष्णु मुनि उस साधुकोंभी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आकें वंदना करी, पीछें गुरुकी आज्ञासें एकिलाही राज सभामे आया उहां एक नमुचिवलके विना और सर्व सभाके लोकोंनें उठके वंदना करी तव विष्णु मुनिने धर्मोपदेश देकर कहाकि निःसंगी साधुओंसें वैर करणा, यह महा नरकका कारण है, क्योंकि साधु किसीका कुछ बिगाडते नही, और जगत् तो और वडे पुरुषोंकों नमस्कार करते है, किसी शास्त्रमें मुनि निंदे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है, कि —तुच्छ, क्षणिक राजके पानेंसे अंधे अधम पुरुष अपणेकों साधुओंसें नमस्कार कराया चाहते है, और नमुचिवलको कहा तुं इस वुरे कामको जानेदे जिस्से साधु सब सुखसे रहे, और तूं क्युं मत्सरमें मगन होके अपणा आप बिगाडा चाहता है? साधु चौमासेमें विहार करते नही क्योंकि चौमासेमें जीवोकी वहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगे तेराही राज्य

है, तो सर्व साधु सात दिनमें कहां चले जाय? तब नमुचि बल क्रुधकी तरें होकर बोला कि बहुत कहनेसें क्या है? पांच दिनसें उपरांत जो कोइ तुमारा साधु मेरे राज्यमे रहेगा, तो मैं उसकों चोरकी तरे वध करुंगा, और तूं हमारे मानने योग्य है, इसी वास्ते तूं जाकर साधुओंकों कहदे जो कि जीवनां चाहते हो तो नमुचिके राज्यसें बाहिर चले जाउ क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है, और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कदम अर्थात् तीन डिग जगा देता हूं, तिस्सें बाहिर किसी साधुकों देखूंगा तिसका शिरछेद करुंगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके योग्य नहीं यह तो बडा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जडही उखाडनी चाहिये. तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसें लाख योजनकी देह बनाइ, एक डिगसेंतो भरतक्षेत्रादि मापा और दूसरी डिंग पूर्वापर समुद्र उपर धरी और तीसरी डिंग नमुचिबलके शिर उपर रखके सिंहासनसें हेठ गेरके धरतीमें घसोड दीया नमुचि मरके नरकमें पहुंच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंनें कानोमें मधुर गीत सुनाकर शांत करा, तब शरीरकों संकोचके गुरोंके पास जाकर आलोचना करी, पापका प्रायश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर संयम पालके मोक्षगया.

इस कथासें ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणोने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु भगवान्नें वामन रूप करके यज्ञ करते बलिराजाकों छला, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाकों बिगाडके अपने मतके अनुसार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीभगवान्कों क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यज्ञ करने वालेके साथ छल करता? यह तो निःकेवल बुध्दि हीनोका काम है, जो अपनी बेटीयोंसें तथा परस्त्रीयोसे विषय सेवन करा कहनां, तथा भगवान्ने झूठ बोला, औरोसे बोलाया, चोरी करी, औरोंसें कुशील भगवान्ने सेवन करा, छलसें मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके है, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह काम कभीभी नहीं करता तो और करने वालेकों परमेश्वर भूलकेभी न माननां चाहिये ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिबलका सबंध समाप्त ॥

वीसमें और इक्कवीसमें तीर्थकरके अंतरमें श्री अयोध्या नगरीके दशरथराजाकी कौशल्या राणीका पद्म (रामचंद्र) नामा पुत्र हूवा, सो आ

वमा बलदेव और दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण अपर नाम लक्ष्मण सो आठमां वासुदेव हूआ जिनोंका प्रतिशत्रु रावण प्रतिवसुदेव लंकाका राजा हूआ सो जगतमें प्रसिद्ध है. इन तीनोंका यथार्थ स्वरूप पद्मचरित्रसें जान लेनां, परंतु लौकिक रामायणमें जो रावणके दश शिर लिखे हैं,सो ठीक नही है,क्योंकि मनुष्यके स्वाभाविकही दश शिर कदापि नही हो शक्ते है, पद्मचरित प्रथमानुयोग शास्त्रमें लिखा है कि रावणके वडे वडेरोंकी परपरायसें एक वडा नव माणिकका हार चला आता था,सो रावणने बालावस्थासें अपने गलेमें पहिर लीये थे और वे नौंही माणक वहुत वडे थे, सो चार माणक एक पासें स्कंधके ऊपर हारमे जडे हूये थे, और पांच माणक दूसरे पासे जडे थे, दोनों स्कंधो ऊपर नव माणकमें नवमुख दीखते थे, और एक रावणका असली मुख था इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है. तथा रावणके समय सेंही हिमालयके पहाडमें बद्रीनाथका तीर्थ उत्पन्न हूआ है, तिसकी उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोसे ऐसे जानी जाती है कि.—यह असली पार्श्वनाथकी मूर्त्तिथी, तिसकाही नाम बद्रीनाथ रक्खा गया है. इसका पूरा स्वरूप गद्यबंद पार्श्वपुरानसें जान लेना.

तिस पीछें मिथुलानगरीमे इक्ष्वाकुवशी विजयसेनराजाकी विप्रा राणी तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इकवीसमा तीर्थंकर हूआ तिनोके वारे हरिषेणनामा दशमां चक्रवर्त्ति हूआ है, तथा यह इकवीसमे और बावीसमें तीर्थंकरके अतरेमे इग्यारहमा जयनामा चक्रवर्त्ती हूआ.

तिस पीछें सौरीपुर नगरमे हरिवंशी समुद्रविजय राजा तिसकी शिवा देवी राणी तिनका पुत्र श्रीअरिष्ट नेमिनामा बावीशमा तीर्थंकर हूआ तिनोके वारे तिनोके चाचेके वेटे नवमे कृष्णवासुदेव और राम बलदेव (बलभद्रबलदेव) इनका प्रतिशत्रु जरासिंधू प्रतिवासुदेव हूआ. तिनमें कृष्ण अरु बलभद्र तो जगतमे वहुत प्रसिद्ध है क्योंकि लोक श्रीकृष्ण वासुदेवको साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार जगत्काकर्त्ता मानते है, यह बात कृष्ण वासुदेवके जीते हूये नहीं हूइ, किंतु उनके मरे पीछें लोक कृष्ण वासुदेवकों ईश्वरावतार मानने लगे है, तिसका हेतु त्रेसठ सलाका पुरुष चरित्रमें ऐसें लिखाहै कि.—जब कृष्ण वासुदेवनें कुसबी वनमे शरीर छोडा तब काल क

रकें वालुप्रना पृथ्वी (पातालमें) गये और बलनद्रजी एक सौ वर्ष जैनदीक्षा पालके पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें गये वहां अवधिज्ञान सें अपनें नाइ श्रीकृष्ण कों पातालमें तीसरी पृथ्वीमें देखा,तब नाइके स्नेहसें वैक्रिय शरीर बनाकर श्री कृष्णके पास पहूचा और श्रीकृष्णसें आलिंगन करके कहा कि मै बलनद्रनामा तेरे पिछले जन्मका नाई हूं, मै काल करकें पाचमें ब्रह्मदेवलोकमें उत्पन्न हूआ हूं, और तेरे स्नेहसें यहां तेरे पास मिलनेकों आया हूं सो मैं तेरे सुख वास्ते क्या काम करुं ? इतना कह कर जब बलनद्रजीनें आपनें हाथों ऊपर कृष्णजीको लीया, तब कृष्णका शरीर पारेकी तरें हाथसें छरके नूमि ऊपर गिर पडा, और मिलकर फेर संपूर्ण शरीर पूर्ववत् हो गया. इसीतरें प्रथम आलिंगन करनेंसें फेर विरतात कहनेंसें और हाथों ऊपर उठानेसें कृष्णनेंनी जान लीयाकि यह मेरे पूर्वनवका अति वह्नन बलनद्र नाई है तब कृष्णजीने संभ्रमसें उठके नमस्कार करा तब बलनद्रजीनें कहा हे ज्राता ! जो श्रीनेमिनाथने कहाथाकि यह विषय सुख महादुःखदाई है सो प्रत्यक्ष तुमकों प्राप्त हूआ और तुझकर्मनियंत्रितकों मैं स्वर्गमेंनी नही लेजा सक्ता हूं परंतु तेरे स्नेहसें तेरे पासमें रहा चाहता हूं तब कृष्णने कहा हे ज्राता ! तेरे रहनेंसेंनी तो मैनें करे हूये कर्मका फल अवश्यमेव नोगनाही है परंतु मुझकों इस दुःखसें वो दुःख बहुत अधिक है जो में द्वारिका और सकल परिवारके दग्ध होजानेसें एकला कुसंबी वनमें जरा कुमारके तीरसे मरा और मेरे शत्रुओंकों सुख तथा मेरे मित्रोंकों दुःख हूया जगतमें सर्व यदुवशी बदनाम हूये इस वास्ते हे ज्राता ! तूं नरतखंममे जा कर चक्र,शारग, शंख, गदाका धरने वाला और पीत (पीले) वस्त्र वाला, तथा गुरुड ध्वजा वाला, ऐसा मेरा रूप बना कर विमानमें बैठ कर लोकोंकों दिखला तथा नीलवस्त्र और तालध्वज अरु हल, मूशल, शस्त्रका धरनेंवाला ऐसा तूं विमानमे बैठके अपना रूप सर्वजगें दिखलाकर लोकोकों कहोकि राम कृष्ण दोनो हम अविनाशी पुरुष है, और स्वेच्छा विहारी हैं, जब लोकोंकों यह सत्य प्रतीत हो जावेगा तब हमारा सर्व अपयश दूर हो जावेगा यह श्रीकृष्णजीका कहना सर्व श्रीबलनद्रजीने स्वीकार कर लीया, और नरतखंममें आकर कृष्ण बलनद्र दोनोका रूप करकें सर्व जगे विमानारूढ दिख लाया और ऐसे क

हने लागा कि नो लोको ! तुम कृष्ण बलनद्र अर्थात् हमारे दोनोंकी सुंदर प्रतिमा बनाकर ईश्वरकी बुद्धिसें बडे आदरसें पूजो क्योंकि हमही जगतके रचनेवाले और स्थिति संहारके कर्त्ता हैं और हम अपणी इछासें स्वर्ग (वैकुंठसें) यहां चले आते है, और पीछें स्वर्गमें अर्थात् वैकुंठमें अपनी इछासें चले जाता है और द्वारका हमनेही रची थी तथा हमनेही कंसका संहार करा है, क्यों कि जब हम, वैकुंठमै जानेकी इछा करते है, तब सर्व अपना वंश द्वारिका सहित दग्ध करके चले जाते है, हमारे उपरांत और कोई अन्य कर्त्ता, हर्त्ता नहीं है ऐसा बलनद्रजीका कहना सुननेसें सर्व ग्राम (नगर) के लोकोंने कृष्ण बलनद्रजीकी प्रतिमा सर्व जगे बना कर पूजी तब प्रतिमा पूजनेवालोंकों बहुत सुख धनादिसें बलनद्रने आनंदित करा, इस वास्ते बहुत लोक हरिनक्त हो गये, जबसें नक्त हूये तबसें पुस्तकोमें कृष्णजीकों पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि नामोंसें लिखा, क्याजाने जबसें बलनद्रजीनें कृष्णकी पूजा कराई, तबसेंही लोकोने कृष्णकोंही ईश्वरावतार माना हो ? और उस समयकों पांच हजार वर्ष हूये हों, जिस्सें लौकीकमें कृष्ण हूयेकों पांच हजार वर्ष कहते हैं.

बाइसमे अरु तेइसमें तीर्थंकरके अंतरेमें बारमा ब्रह्मदत्तनामा चक्रवर्ती हूआ, तिस पीछे वाणारसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी अश्वसेन राजा हूआ तिसकी वामादेवी राणी तिनका पुत्र श्रीपार्श्वनाथ नामा तेइसमा तीर्थंकर हूआ तिस पीछें क्षत्रियकुंम नामा नगरमें इक्ष्वाकुवंशी दूसरा नाम सूर्यवंशी सिद्धार्थ नामा राजा हूआ तिसकी त्रिसला नामा राणी तिनका पुत्र श्रीवर्द्धमान महावीरनामा चोवीशमा चरम छेला तीर्थंकर हूआ, आज काल जो जैनमत नरत खंममें प्रचलित है, सो इसही श्रीमहावीरका शासन अर्थात् उनहीके कहे उपदेशसें चलता है, और जो जैनमतके शास्त्र है, वे सर्व इसही श्रीमहावीर नगवत के उपदेशानुसार रचे गये है यह श्रीमहावीर नगवतका संपूर्ण वृत्तांत देखना होवे, तदा आवश्यक सूत्रवृत्ति कल्पसूत्र वृत्ति तथा श्रीमहावीर चरितादि ग्रंथोंसें जान लेनां.

इति श्रीतपगछीय मुनिश्रीगणि मणिविजय तछिष्य मुनिबुद्धिविजय तछिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रीऋषनादि महावीर पर्यंत पूर्ववृत्तांत निरूपण नाम एकादश परिछेदः संपूर्णः ॥ १ ॥

अथ द्वादश परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह परिच्छेदमें श्रीमहावीर भगवानसें लेकर आजकाल पर्यंत कितनाक वृत्तांत लिखते है. श्रीमहावीर भगवंतके इग्यारह शिष्य मुख्य, और सर्व साधुओंसें बडे हूये, तिनका नाम कहते है १ इंद्रभूति. अर्थात् गौतम स्वामी, २ अग्निभूति, ३ वायुभूति, ४ व्यक्तस्वामी, ५ सुधर्मस्वामी, ६ मंडिकपुत्र, ७ मौर्यपुत्र, ८ अकंपित, ९ अचलभ्राता, १० मेतार्य, ११ प्रभास, यह इग्यारह बडे शिष्य श्रीमहावीर भगवंतके हूए और सर्व शिष्य तो चौदह हजार साधु हूये, परंतु चौदह हजारसें कदेभी अधिक नही हूये, और साध्वी छत्तीस हजार हूइ, तथा श्रेणिक, उदायन, कोणक. उदायी, वत्सदेशका उदायन. चेटक, नवमल्लिक क्षत्रियजातिके, नवलेछिक क्षत्रिय जातिके. उज्जयनका राजा चंडप्रद्योत, अमलकप्पा नगरीका स्वेत नामे राजा, पोलासपुरका विजय राजा, क्षत्रिय कुंडका नंदिवर्द्धन राजा, वीतभय पट्टनका उदायनराजा, दशार्णपुरका दशार्णभद्र राजा, पावापुरीका हस्तिपाल राजा, इत्यादि अनेक राजे श्रीमहावीर भगवंतके सेवक थे. अर्थात् श्रावक थे, और आनंद. कामदेव, संख पुष्कली प्रमुख श्रावक, और जयंती, रेवती, सुलसा प्रमुख श्राविका तो लाखोंही थे, तिन श्रावकोंमें एक सत्यकी नामा अविरति, सम्यग्दृष्टि श्रावक हूआ है, तिसका संबंध आवश्यक शास्त्रमें इसी तरें लिखा है. सो कहते है –

विशालानगरीके चेटक राजाकी छठी पुत्री सुज्येष्ठानामा कुमारी कन्याने दीक्षा लीनी थी अर्थात् जैनमतकी साध्वी हो गइ थी, वो किसी अवसरमें उपाश्रयके अंदर सूर्यके सन्मुख आतापना लेती थी, इस अवसरमें पेढाल नामा परिव्राजक अर्थात् संन्यासी विद्या सिद्ध था, सो अपनी विद्यादेनेके वास्ते पात्र पुरुषकों देखता था, और उसका विचार असाथा कि– यदि ब्रह्मचारणीका पुत्र होवे. तो सुनाथ होवेगा. तब तिस सन्यासीने रात्रिमे सुज्येष्ठाकों नग्न पणे शीतकी आतपना लेतीकों देखा, तब धुंध विद्यासे अंधकारसें विमोह अर्थात् अचेत करके उसकी योनिमें अपने वीर्यका संचार करा, तिस अवसरमें सुज्येष्टाकों ऋतुधर्म आ गया था, इस वास्ते गर्भ रह गया तब साथकी साध्वीयोंमें गर्भकी चर्चा होने लगी, पीछे अति-

शय ज्ञानीने कहा कि सुज्येष्ठानें विषयन्नोग किसीसें नहीं करा, अरु तिस विद्याधरका सर्ववृत्तांत कहा, तव सर्वकी शंका दूर हो गई पीछें समयमें सुज्येष्ठाके पुत्र जन्मा, तव तिस लडकेकों श्रावकने अपने घरमे ले जाकें पाला, तिसका नाम सत्यकी रक्खा, एकदा समय सत्यकी साध्वीयोंके साथ श्रीमहावीर नगवानके समवसरणमें गया, तिस अवसरमें एक कालसंदीपक नामा विद्याधर, श्रीमहावीरकों वंदना करकें पूछने लगा कि मुझकों किससें नय है, तव नगवत श्रीमहावीर स्वामीने कहा कि, यह जो सत्यकी नामा लडका है, इससें तुझकों नय है तव कालसंदीपक सत्यकीके पास गया, अवज्ञासे कहने लगा कि अरे तूं मुझकों मारेगा ? असें कह कर जोरावरीसें सत्यकीकों अपने पगोंमे गेरा तव तिसके पिता पेढालने सत्यकीका पालन करा, और अपणी सर्व विद्यायोंकों सत्यकीकों दे दई, सत्यकी महारोहिणी विद्याका साधन कर रहा था, इस सत्यकीका यह सातमा नव रोहिणीविद्या साधनमे लग रहा था, रोहिणी विद्याने इस सत्यकी के जीवकों पांच नवमें तो जानसे मार गेरा और छठे नवमें छै महीने शेष आयुके रहनेंसें सत्यकीके जीवने विद्याकी इछा न करी परंतु इस सातमें नवमे तो तिस रोहिणी विद्याकों साधनेका आरंन करा तिसकी विधि लिखते है.

अनाथ मृतक मनुष्यकों चितामें जलावे और गीले (आले) चमडेकों शरीर उपर लपेटके पगके वामें अंगूठेसें खडा होकर जहां लग वो चिताका काष्ठ जले तहां लग जाप करे इस विधिसें सत्यकी विद्या साध रहा था, वहा काल संदीपक विद्याधरन्नी आ गया, और चितामें काष्ठ प्रक्षेप करकें सात दिन रात्री तक अग्नि बुझने न देनी, तव सत्यकीका सत्य देखकें रोहिणी देवी आप प्रगट हो कर कालसंदीपककों कहने लगी कि मत विघ्न करः— क्योंकि मै इस सत्यकीके सिद्ध होने वाली हूं, इस वास्ते मै सिद्ध हो गइ हूं, तव रोहिणी देवीने सत्यकीकों कहा, कि मै तेरे शरीरमे किधरसे प्रवेश करु ? सत्यकीने कहा मेरे मस्तकमें हो कर प्रवेश कर, तव रोहिणीने मस्तकमें हो कर प्रवेश करा, तिस्से मस्तकमे खडा पड गया तव देवीने तुष्टमान हो कर तिस मस्तककी जगों तीसरे नेत्रका आकार वना दीया तवतो सत्यकी तीन नेत्रवाला प्रसिद्ध हूआ. पीछें सत्यकीने शोचाकि पेढालने मेरी माता राजाकी कुमारी वेटीकों विगडा है, असा

शोच कर अपने पिता पेढालकों मार दीया, तब लोकोंने सत्यकीका नाम रुद्र (भयानक) रख दीया, क्योंकि जिसने अपना पिता मार दीया उससें और भयानक कौन है? पीछें सत्यकीने विचारा कि कालसंदीपक मेरा वैरी कहां है? जब सुना कि कालसंदीपक अमुक जगामें है, तब सत्यकी तिसके पास पहुंचा, फेर कालसंदीपक विद्याधर तहांसें भाग निकला तोभी सत्यकी तिसके पीछें लगा, तब कालसंदीपक हेठ ऊपर भागता रहा, परंतु सत्यकीने तिसका पीछा न छोडा, फेर कालसंदीपकने सत्यकीके भुलाने वास्ते तीन नगर बनाये, तब सत्यकीने विद्यासें तीनो नगरभी जलादीये तब कालसंदीपक दौडके लवणसमुद्रके पाताल कलशमें चला गया. सत्यकीने तहां जा कर कालसंदीपककों मार डाला, तिस पीछे सत्यकी विद्याधर चक्रवर्त्ति हूआ, तीन संध्यामें सर्व तीर्थंकरोंकों वदना करकें नाटक करता हूआ, तब इंद्रने सत्यकीका नाम महेश्वर दीया, तिस महेश्वरके दो शिष्य हूये, एक नंदीश्वर, दूसरा नादीया, तिनमें नादीया तो विद्यासे बैलका रूप बना लेता था, और तिस ऊपर चढके महेश्वर अनेक क्रीडा कुतूहल करता था, महेश्वर श्रीमहावीर भगवतका अविरति सम्यग्दृष्टि श्रावक था, परतु बडा भारी कामीथा और ब्राह्मणोंके साथ उसका बडा भारी वैर हो गया, तब विद्याके बलसें सैकडों ब्रह्मणोंकी कुमारी कन्यायोंकों विषय सेवन करकें बिगाडा, और लोक तथा राजा प्रमुखकी बहु बेटीयोंसें काम क्रीडा करने लगा, परंतु उसकी विद्यायोंके भयसें उसे कोइ कुछ कहता नही था, जेकर कोइ मनाभी करता था, सो मारा जाताथा, महेश्वरने विद्यासें एक पुष्पक नामा विमान बनाया तिसमें बैठके जहां इछा होती तहा चला जाता था, ऐसें उसका काल व्यतीत होता था, एकदा प्रस्तावें महेश्वर उज्जयन नगरमें गया, तहां चंद प्रद्योतकी एक शिवा नामा राणीकों छोडके दूसरी सर्व राणीयोंके साथ विषय भोग करा, औरभी सर्वलोकोंके बहु बेटीयोंकों बिगाडना शुरु करा, तब चंद्रप्रद्योतकों बडी चिंता हूइ, अरु विचाराकी कोइ ऐसा उपाय करीयें कि जिस्से इस महेश्वरका विनाश (मरणां) हो जावे— परतु तिसकी विद्याके आगें किसीका कोइ उपाय नही चलताथा, पीछें तिस उज्जयन नगरमें एक उमा नामा वेश्या बडी रूपवंत, रहतीथी, उसका यह कौलथा कि जो कोइ इतना धन

मुझे देवे, सो मेरेसें भोग करे, जो कोइ उसके कहे मूजब धन देता था सो उसके पास जाता था, एक दिन महेश्वर उस वेश्याके घर गया, तब तिस उमावेश्याने महेश्वरके सन्मुख दो फूल करे एकविकशा हूआ दूसरा मिचा हूआ, तब महेश्वरने विकशे फूल (खिडे फूलकी) तर्फ हाथ पसारा तब उमावेश्याने मिचा हूआ कमल महेश्वरके हाथमे दीया, और कहा कि यह कमल तेरे योग्य है, तब महेश्वरनें कहा क्यों यह कमल मेरे योग्य है ? तब उमानें कहा इस मिचे हूए कमल समान कुमारी कन्या है, सो तुझकों भोग करने वास्ते वल्लभ है, और मैं खिले हूए फूल समान हों, तब महेश्वरने कहा तूंभी मेरेकों बहुत वल्लभ है, ऐसा कह कर महेश्वर उसके साथ भोग भोगने लगा, और तिसकेही घरमें रहने लगा, तिस उमाने महेश्वरकों अपनें वशमें कर लीया उमाका कहनां महेश्वर उल्लंघन नहीं कर सकता था, ऐसें जब कितनाकि काल व्यतीत हूआ तब चंडप्रद्योतने उमाकों बुलायके उसकों बहुत धन, और आदर सन्मान देकर कहा कि तूं महेश्वरसें यह पूछेकिः– ऐसाभी कोइ काल है कि जिस कालमें तुमारे पास कोइभी विद्या नही रहती ? तब उमाने महेश्वरकों पूर्वोक्त रीतिसें पूछा, तब महेश्वरने कहा कि जबमैं मैथुन सेवता हूं तब मेरे पास कोइभी विद्या नहीं रहती, अर्थात् कोइ विद्या चलती नही तब उमाने चंडप्रद्योतराजाकों सर्वकथन सुना दीया, तब राजाने उमासे कहा कि जब महेश्वर तेरेसें भोग करेगा, तब हम उसकों मारेंगे तब उमाने कहाकि मुझकों मत मारना तब चंडप्रद्योतने कहाकि तुझकों नहीं मारेगे ? पीछें चंडप्रद्योतनें अपने सुभटोंकों गुप्त (छाना) उमाके घरमे छिपा रक्खा, जब महेश्वर उमाके साथ विषय सेवनमे मग्न होकें दोनोका शरीर परस्पर मिलके एक शरीरवत् हो गया, तब राजाके सुभटोंने दोनों हीको काट डाला, और अपने नगरका उपद्रव दूर करा, पीछें महेश्वरकी सर्व विद्यायोंने उसके नंदीश्वर शिष्यकों अपना अधिष्ठाता बनाया जब नंदीश्वरने अपने गुरुकों इस विटंबनासें मारा सुना, तब विद्यासें उज्जयनके उपर शिला बनाइ, और कहने लगाकि हे मेरे दासो ! अब तुम कहां जाउगे ? मे सबकों मारुगा क्योंकि मैं सर्वशक्तिमान् ईश्वर हूं किसीका मारा मै मरता नही हूं, मै सदा अविनाशी हू, यह सुनकर बहुत लोक डरे औ

र सर्वलोक विनती करके पगोंमें पडे, अरु कहने लगेकि, हमारा अपराध क्षमा करो, तव नंदीश्वरनें कहाकि जे कर तुम उसी अवस्थामें अर्थात् उमाकी जगमें महेश्वरका लिंग स्थापन करकें पूजो, तो मै तुमकों जीता छोडेगा, तव लोकोने तैसेही वना कर पूजा करी, पीछे नंदीश्वरनेजी अपनेही गाम गाममें नगर नगरमें लोकोंकों मरा मरा करकें मंदिर वनवाये तिनमें पूर्वोक्त आकारे जगमें लिंगस्थापन कराकें पूजा कराई, यह श्रीमहावीरके अविरतिसम्यगूदृष्टि श्रावक महेश्वरकी उत्पत्ति है

तथा श्रीमहावीर स्वामीके विद्यमान होते राजगृह नगरमें श्रेणिकराजाकी चेलणा राणीके कोणिक नामा पुत्र हूआ, परंतु कोणिकका श्रेणिकके साथ पूर्व जन्मका वेर था, इस वास्ते कोणिक राजानें श्रेणिक राजाकों पकडके पिंजरेमें दे दीया, और राज सिंहासन उपर आप वैठा, जब अपनी माता चेलनाके मुखसें सुना कि श्रेणिककों जैसा तूं वल्लभ था, ऐसा कोइभी पुत्र वल्लभ नहीं था, क्योंकि जब तूं वालक था तब तेरी अंगुली पक गइ थी, तिस्सें तुजे रात्रिमें निंद नहीं आती थी, और तूं सर्व रात्रिमे रोता था, तब तेरा पिता तेरी अंगुलीकों अपने मुखमें ले कर चूसके उसकी राध रुधिरकों थुंकता था, इत्यादि तेरे पितानें तेरे साथ राग (स्नेह) करा है, और तुमने उस उपकारके वदले अपने पिताकों पिंजरेमें वंद कीया, वाह रे पुत्र! तेरी लायकी! यह सुनके कोणिक राजा वडा दुःखी हूआ, और रोता हूआ आप कुहाडा लेकर दौडाकि मै अपने हाथसें पिताका पिंजरा काटके वाहिर निकालूंगा और राजसिंहासन उपर वैठावुंगा परंतु जब श्रेणिकराजाने देखा कि कोणिक कुहाडा लेकर दौडा आता है, तब विचार करा कि क्याजाने मुजे किस कुमौतसें मारेगा? तब श्रेणिक राजा कुछ खाके मर गया, जब कोणिकने आकर देखा कि पिता तो मर गया तब बहुत रोया पीटा, महाशोकसें दाह लग गया, जब राजगृहके अंदर वाहिर श्रेणिकके मकान महिल सिंहासनादि देखता है, तब वडा दिलगीर (शोकवंत) होता है, इस दुःखसे राजगृह नगरकों छोडके चंपा नगरी अपनी राजधानी वनाके रहने लगा, तोभी पिताके वियोगसें सेवा न करनेसें दुःखी रहने लगा, तब प्रधान (मंत्रीयोंनें) मता करकें एक जाना पुस्तक वनवाया, उसमें ऐसा कथन.[illegible] कि:—जो पुत्र अपने

रें हूये पिताकों पिंम प्रदान वस्त्र जोडे, आनूषण, शय्या प्रमुख ब्राह्म
णोंकों देता है, वो सर्व श्राद्धादि सामग्री उसकें पिताकों प्राप्ति होते हैं,
स पुस्तककों धुंयेके मकानमें रखकें धुंयेसें पुराने पुस्तकवत् बना दीया,
र कोणिक राजाकों सुनाया कोणिकनेजो पिताकी नक्तिवास्ते पिंम प्रदा
दि बहुत धन लगा करके करा, तबहीसें मृतकोंकों पिंम प्रदान श्रा
दि प्रवृत्त हूये हैं. क्योंकि जगत्में प्रसिद्ध है कि कर्ण राजाने श्राद्ध च
ाये हैं, सो इसी कोणिक राजाका नाम लोकोने कर्ण राजा करकें लिखा है.

तथा अन्निका सुत जैनाचार्य अत्यंत वृद्ध गंगा नदी उतरतेकों केवल
ान हूआ, और जहां प्रयाग है. तहां शरीर छोडकें मोक्ष हूआ, तिस
गे देवताओंने तिस मुनिकी महिमा करी तबसें प्रयाग तीर्थकी मानता
ली, अर्थात् प्रयाग तीर्थकी उत्पत्ति हूई, महावीर स्वामीके वखतमें जो
रूप राजादि व्यवहारोंकाथा तथा जैनमतका जहां तक विस्तारथा
ो आवश्यकसूत्र वीरचरित्र तथा वृहद्कल्पादि शास्त्रोंसें जान लेना.

तथा श्रीमहावीरके समयमें राजगृह नगरीका राजा श्रेणिक तिसके पीछें
ोणिक हूआ जिसने श्रेणिकके मरनेंसें पीछें चंपानगरीकों अपनी राजधानी
नाई तिसका बेटा उदायी हूआ जिनके कोणिककें मरे पीछें उदासीसें चं
कों छोडके पाटली पुत्र नगर (पटना) वसाके अपनी राजधानी बनाया.

श्रीमहावीर नगवत विक्रम संवतसें (४७०) वर्ष पहिलां पावापुरी न
ीमे हस्तपाल राजाकी पुराणी राजसनामें बहत्तर वर्षकी आयु नोगके
ार्त्तिक वदि अमावास्याकी रात्रिके पीछले प्रहरमें पद्मासन अर्थात् चौकडी
रे हूये, शरीरादि चार कर्मकी सर्व उपाधी छोडकें निर्वाण हूये (मोक्ष
हूये) तिस समयमें गौतमस्वामी और सुधर्म स्वामी यह दो वडे शिष्य
ीतेथे, शेष नव वडे शिष्य तो श्रीमहावीरजीके जीते हूयेही एक मा
का अनशन करकें केवलज्ञान पाके मोक्ष चले गये थे, यह इग्यारहही
डे शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद और छै वेदांगादि सर्वशास्त्रोंके
ानकार थे, इन इग्यारहोके चौतालीससै (४४००) विद्यार्थीथे.

इनोंका संबंध असे है,कि– जब नगवत श्रीमहावीरजीकों केवलज्ञान
आ, तिस अवसरमें मध्यपापा नगरीमे सोमल नामा ब्राह्मणने यज्ञ क
का आरंन करा था, और सर्व ब्राह्मणोमे श्रेष्ठ विद्वान् जान कर इन पू

वोंक्त गौतमादि इग्याराही आचार्योंकों बुलायाथा तिस समय तिस यज्ञ पाडाके ईशान कूणमें महासेन नामा उद्यानमें श्रीमहावीर नगवंतका समवसरण रत्न सुवर्ण रौप्यमय क्रमसें तीन गढ संयुक्त देवोने बनाया तिसके वीचमें वेठके नगवंत श्रीमहावीरस्वामी उपदेश करने लगे, तव आकाश मार्गके रस्ते सैकडो विमनोमें वेठे हूये चार प्रकारके देवता नगवत श्रीमहावीरके दर्शनकों और उपदेश सुननेकों आते थे, तव तिनों यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोने जाना कि यह देव सब हमारे करे हूये यज्ञकी आहुतीयां लेने आये हैं, इतनेमे देवता तो यज्ञ पाडेकों गेडके नगवानके चरणोंमें जाकर हाजर हूये, तथा और लोकनी श्रीमहावीर नगवतका दर्शन करकें और उपदेश सुनकें गौतमादि पंमितोंके आगें कहने लगे, कि:– आज इस नगरके बाहिर सर्वज्ञ सर्वदर्शी नगवान् आया है, नतो उसके रुपकी कोई तारीफ कर सक्ता है, अरु न कोई उसके उपदेशसें संशय रहता है, और लाखों देवता जिनोके चरणोंकी सेवा करते हैं, ताते हमारे वडेनाग्योदय हैं, जो अैसे सर्वज्ञ अरिहंत नगवतका हमने दर्शन पाया अैसा जब गौतमजीने सुना कि सर्वज्ञ आया तव मनमें ईर्ष्याकी अग्नि नडकी अरु अैसे कहने लगाकि:– मरेसें अधिक और सर्वज्ञ कौन है? में आज इसका सर्वज्ञ पणा उडा देता हू? इत्यादि गर्व संयुक्त नगवान् श्रीमहावीरके पास पहुंचा, और नगवानकों चौत्तीश अतिशय संयुक्त देखा, तथा देवता, इंड, मनुष्योंसे परिवृत देखा, तव वोलनेकी शक्तिसें हीन हुवा नगवंतके सन्मुख जाके खडा हो गया तव नगवंतने कहा कि:– हे गौतम इंडनूति! तूं आया? तव गौतमजीने मनमें विचाराकि जो मेरा नामनी ये जानते हैं, तोनी में सर्व जगे प्रसिद्ध हूं मुके कोन नहीं जानता? तो इने मेरा नाम लीया, इस वातमे कुछ आश्चर्य और सर्वज्ञ इसकों नहीं मानता हूं, किंतु मेरे मनमें जो शंशय है तिसको दूर कर देवें तोमें इसकों सर्वज्ञ मानूं, तव नगवंतने कहा, हे गौतम! तेरे मनमें यह संशय है– जो जीवहै कि नही? और यह संशय तेरेकों वेदोंकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोसें हूआ है, वो श्रुतियो यह हैं सो कहते हैं.

"विज्ञानघनएवैतेन्च्योनूतेन्च्य समुछाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीतीत्यादि" इस्सें विरुद्ध यह श्रुति है– सर्व अयमात्मा ज्ञानमय

ादि इन श्रुतियोंका अर्थ जैसा तेरे मनमें भासन होता है. तैसाही प्र
र श्रुतिका अर्थ कहते हैं. नीलादि रूप होनेसें विज्ञानही चैतन्य है, चै
य विशिष्ट जो नीलादि तिस्सें जो घन सो विज्ञानघन सोविज्ञानघन
: प्रत्यक्ष परिछिद्यमान रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, इन पाच
ोंसें उत्पन्न हो कर फेर तिनके साथही नाश हो जाता है अर्थात् भू
के नाश होनेसें उनके साथ विज्ञानघनकाभी नाश हो जाता है, इस
ुसें प्रेत्यसंज्ञा नही अर्थात् मरके फेर परलोकमें और कोई नर नार
ा जन्म नहीं होता, इस श्रुतिमें जीवकी नास्ती सिद्ध होती है, और
ारी श्रुति कहती है किः– यह आत्मा ज्ञान मय अर्थात् ज्ञान स्वरूप है,
ें आत्माकी सिद्धी होती है, अब ये दोनो श्रुतियों परस्पर विरोधी हो
ं प्रमाण नही हो शक्ती है, और बहुत परस्पर आत्माके स्वरूपमें वि
ी मत है, कोइ कहता हैकिः– एतावानेवपुरुषो,यावानिंद्रियगोचरः ॥
े वृकपदं पश्य,यद्वदंत्यबहुश्रुता ॥ १ ॥ इस श्लोकका अर्थ चार्वाकम
ं लिख आये हैं यहभी एक आगम कहता है, तथा "न रूपं भिक्षवः
ल:" अर्थात् आत्मा अमूर्त्त है, यहभी एक आगम कहता है, तथा
ाकर्त्तानिर्गुणोभोक्ताआत्मा" अर्थः– अकर्त्ता सत्व, रज, अरु तम, इन
नों गुणोंसें रहित सुख दुःखका भोगने वाला आत्मा है, यहभी एक
ागम कहता है. अब इनमेंसें किसकों सच्चा और किसकों झूठा माने?
स्पर विरोधी होनेसें सर्व तो कुछ सच्चे होही नही शक्ते है, तथा युक्ति
ाणसेंभी मरके परलोक जाने वाली आत्मा सिद्ध नहीं होती है, ताते
ौतम! यह तेरे मनमें संशय है, अब इसका उत्तर कहता हूं कि तूं
पदोंका अर्थ नही जानता है इत्यादि श्रीगौतमजीके संशयकों दूर
ा, ये सर्व अधिकार मूलावश्यक और श्रीविशेषावश्यकसें जान लेना,
ं ग्रंथके भारी और गहन हो जानेके सबबसें यहां नहीं लिखा क्योंकि
ा इग्यारह गणधरोंके संशय दूर करनेका कथनके चार हजार श्लोक
पीछें जब गौतमजीका संशय दूर हो गया, तब गौतमजी पांचसौ अ
विद्यार्थीयोंके साथ दीक्षा लेकें श्रीमहावीर भगवतका प्रथम शिष्य हूआ.
इसीतरें इंद्रभूतिकों दीक्षित सुनके दूसरा भाई अग्निभूति बडे अभिमा
ंभर कर चला और कहने लगा किः– मेरे भाईकों इंद्रजालीयेने छलमें

बराबर करके तिसका पूर्वपक्ष खंमन करा, सो विस्तारसें मूलावश्यक तथा विशेषावश्यकसें जानलेनां अग्निजूतिनेजी गौतमवत् दीक्षा लीनी॥ २॥

अग्निजूतिकी दीक्षा सुनके तीसरा वायुजूति आया परंतु आगे दोनो जाईयोंके दीक्षा ले लेनेसें इसकों विद्याका अनिमान कुबनी न रहा, मनमें विचार कराकि मै जा कर जगवानकों वंदना (नमस्कार) करुंगा ऐसा विचारके आया आ कर जगवंतकों वदना (नमस्कार) करी तव जगवतने कहा तेरे मनमें संशयतो है परंतु ढोनसेंतूं पूब नही शक्ता है संशय यह हैकिः— जो जीव है सो देहही है और यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदश्रुतिसें हूआ है, और तूं तिन वेदपदोंका अर्थ नहीं जानता है वे वेद पद ये है.— "विज्ञानघनइत्यादि" पहिले गणधरकी श्रुति जाननी इस्सें देहसें न्यारा जीव (आत्मा) सिद्ध नही होता है, और इस श्रुतिसें विरुद्ध यह श्रुति है, "सत्येन लन्यस्तपसा ह्येपब्रह्मचर्येण नित्यज्योतिर्मयो हिशुन्नोयं पश्यंति धीरायतयः संयतात्मानइत्यादि" इस श्रुतिसें देहसें निन्न आत्मा सिद्ध होती है, इस वास्ते तुजकों संशय है, पीछे जगवान्ने यह सर्व संशय दूर करे, तब तीसरा वायुजूतिनेजी अपने पांच सौ विद्यार्थीयोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥

वायुजूतिकी तरें शेष आठ गणधर क्रमसें आये, तिसमें चौथा अव्यक्तजी आया तिनके मनमें यह संशयथा किः— पाचजूत है कि नही? यह संशय विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ वे परस्पर विरुद्ध श्रुतियों यह हैः— "स्वप्नोपम वै सकलमित्येव ब्रह्मविधिरंजसाविज्ञेयइत्यादीनि" तथा इससें विरुद्ध यह श्रुति है "द्यावाप्टथिवी जनयन्देवइत्यादि" तथा पृथिवीदेवता, अपोदेवता, इत्यादीनि इनका अर्थ तेरे मनमें ऐसा जासन होता है·— अर्थ स्वप्न सरीखा वैनिपात अवधारणार्थें संपूर्ण जगत है "एप ब्रह्मविधि" अर्थात् यह परमार्थ प्रकार है, अंजसा सीधेन्यायसें जाननां योग्य है, यह श्रुति पांचजूतका अजाव कहती है, और श्रुतियों पांचजूतकी सत्ताकों कहतीयां है, इस वास्ते तेरेकों संशय है, तेरे मनमें यहजी हैकि.— युक्तिसें पांचजूतसिद्ध नही होते है. पीछें जगवानने इसका पूर्वपक्ष खमन करा वेद पदोंका यथार्थ अर्थ कराये,यह अधिकार उक्त ग्रंथोंसें जान लेनां यह सुन कर चौथा वायुजूतिनेजी अपने पाचसौ शिष्योंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ४ ॥

अब पांचमा सुधर्मा नाम गणधर आया, इसकोनी उसी तरें सर्वांग
... तेरे मनमें यह संशय है कि:– मनुष्यादि तवें जैसें
... है तैसे ही अगले जन्ममें होते है ? कि मनुष्य कुछ और पशुआ
... होते है ! यह संशय तेरेकों परस्पर विरुद्ध वेद श्रुतियोंसें हूआ
... यह है:– 'पुरुषोवैपुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वं इत्यादीनि"
... इस जन्ममें पुरुष स्त्री आदि है वे पर जन्ममेंभी ऐसेही हो
... विरुद्ध यह श्रुति है "श्रगालोवैएषजायते यः सपुरीषोदह्यते
... इन सर्व श्रुतियोंका भगवानने अर्थ करके संशय दूर करा, तब इ
... शिष्यके साथ दीक्षा लीनी ॥ ५ ॥

तिस पीछे छठा मंडिक पुत्र आया, तिसके मनमें यह संशय था, कि
बंध मोक्ष है, वा नही है ? यह संशयभी विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ है, सो
श्रुतियां यह है:–"स एष विगुणोविभुर्न बध्यते, संसरति वा न मुच्यते मो
चयति वा ॥ एष बाह्यमभ्यंतरं वा वेदइत्यादीनि" इस श्रुतिका ऐसा अर्थ
तेरे मनमें भासन होता है, "एषअधिकृतजीवः" अर्थात् यह जीव जि
सका अधिकार है "विगुण." अर्थात् सत्वादि गुण रहित सर्वगत सर्वव्या
पक पुण्य पाप करकें इसकों बंध नही होता है, और संसारमें भ्रमणभी
नहीं करता है. और कर्मोंसें छूटताभी नहीं है, बंधके अभाव होनेसें दूस
रोंकों कर्मबंधसें छुडाताभी नहीं है, इस कहनेसें आत्मा अकर्त्ता है. सोई
कहता है:– यह पुरुष अपणी आत्मासें बाहिर महत् अहंकारादि
और अभ्यंतर स्वरूप अपना जानता नही क्योंकि जानना ज्ञानसें होता
है. और ज्ञानजो है. सो प्रकृतिका धर्म है, और प्रकृति अचेतन है, बंध
मोक्ष नही इस श्रुतिसें बंध मोक्षका अभाव सिद्ध होता है, अब इस्सें विरुद्ध
श्रुति यह है सो कहते हैं.– "नही वैसशरीरस्य, प्रिया प्रिययोरपहतिरस्ति
अशरीरं वा वसंतं प्रिया प्रिये नस्पृशत इत्यादीनि"

वान्ने तिसके पूर्वपक्षोंकों खंमन करकें संशय दूर करा,तब मंमितपुत्र साढे तीनसौ विद्यार्थियोंके साथ दीक्षित नया ॥ ६ ॥

७ तिस पीछें सातवां मोर्यपुत्र आया तिसके मनमें यह संशयथा किः– देवता हैं किंवा नही है? यह संशय परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ वो श्रुतियां यह हैः– सएपयज्ञायुधीयजमानोंज सास्वर्गलोकं गच्छति इत्यादि श्रुतियों स्वर्ग तथा देवताओंकी सिद्धि करतीयों हैं, इस्सें विरुद्ध श्रुति यह हैः– अपामसोमं अमृता अजूम, अगमामज्योतिर्विदामदेवान् ॥ किंनूनम स्मान्तृणवदराति. किमुधूर्त्ति रमृतमर्त्यस्येत्यादीनि" तथा कोजानाति मा योपमान् गीर्वाणानिं इयमवरुणकुबेरादीन् इत्यादि" इनका ऐसा अर्थ तेरे मनमे नासन होता है किः– पाणीकों पीते हूये एतावता सोमलताका रस पीते हूये अमृत (अमरण) धर्मवाले हम हूये है, ज्योति स्वर्ग और देवताकों हम नही जानते है तथा देवता हम हूये है, यहनी नहीं जानते देवता तृणेकी तरें हमारा क्या कर शक्ते हैं? यह श्रुति अनाव प्रतिपादन करती है, और यह नावकी प्रतिपादक है, "धूर्त्तिजराअमृतमर्त्यस्य" अमृतत्व प्राप्त पुरुषकों क्या कर सक्ती है? इन श्रुतियोंका यथार्थ अर्थ करकें और तिसका पूर्वपक्ष खंमन करकें नगवतने इनका संशय दूर करा, तब यहनी साढे तीनसो छात्रोंके साथ दीक्षित नया ॥ ७ ॥

८ तिस पीछें आठमा अकंपिक आया उसके मनमेंनी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसें नरकवासी है कि नही? यह संशय उत्पन्न हूआ था, वो परस्पर विरुद्ध श्रुतियों लिखते है.–"नारको वै एप जायते य. शूद्रान्नमश्नाति इत्यादि" इसका अर्थः– यह ब्राह्मण नारक होवेगा जो शूद्रका अन्न खाता है, इस श्रुतिसें नरक सिद्ध होता है, तथा "नह वैप्रेत्यनरके नारकाः सतीत्यादि सुगमार्थः इसश्रुतिसें नरकका अनाव सिद्ध होता है इनका अर्थ करके और पूर्वपक्ष खंमन करकें नगवान्ने तिसका संशय दूर करा तब अकंपिकनेनी तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षालीनी ॥ ८ ॥

९ तिस पीछें नवमा अचलभ्राता आया तिसकोंनी परस्पर वेदकी विरुद्ध श्रुतियोकेपदोसें पुण्य पाप है, कि नही? यह संशय था, सो वेद पद यह है– "पुरुषएवेदंग्निसर्वंइत्यादि दूसरे गणधर वत् इस्से विरुद्धपद यह है– "पुण्य·पुण्येन कर्मणा नवति, पापं पापेन कर्मणा नवति इत्यादि" इस्सें

पुण्यपाप सिद्ध होते हैं, यह संशयभी भगवानने दूर करा, तब यहभी तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षित भया ॥ ९ ॥

१० तिस पीछे दशमा मेतार्य आया उसकोंभी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें यह संशयहूआ था, कि:—परलोक है किंवा नही है? वो श्रुतियें यह है:— "विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अभाव कथक श्रुति जाननी" तथा "स वैअयं आत्मा ज्ञानमयइत्यादि" परलोक भाव प्रतिपादक श्रुति जाननी इनका तात्पर्य भगवानने कहा तब मेतार्यजीनेभी निःशंक होकें तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीछे इग्यारहवा प्रभास नामा गणधर आया. तिसके मनमेंभी वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसें यह संशयथा कि निर्वाण है कि नही है? वो श्रुतियों यह है:— "जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्नि होत्रं" इस्से विरुद्ध श्रुति यह है:— "द्वेब्रह्मणी वेदितव्ये परमपर च तत्र परं सत्यं ज्ञानमनंतब्रह्मेति" इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें भासन होता है कि:—अग्निहोत्र जो है, सो जीव हिंसा संयुक्त है, और जरा मरणका कारण है अरु वेदमें अग्नि होत्र निरंतर करणा कहा है, तब ऐसा कौनसा काल है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीयें? इस वास्ते आत्माकों मोक्ष (निर्वाण) कदापि नही हो शक्ता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिभी कहती है, इस वास्ते संशय हूआ है इसका जब भगवान्ने उत्तरदे के निःशंक करा तब तीनसौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी. यह श्रीमहावीर भगवतके वैशाखशुदि दशमीके दिन मध्यपापानगरीके महासेन वनमे (४४००) शिष्य हूये. तिस पीछे राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयों आदिकने दीक्षा लीनी. तथा जब भगवत श्रीमहावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इंद्रभूति अर्थात् गौतमगणधरको केवल ज्ञान हूआ, तब इझोंने निर्वाण महोत्सव करा; और सुधर्मास्वामीजीकों श्रीमहावीर स्वामीजीकी गद्दी ऊपर बैठाया श्रीगौतमजीकों गद्दी इस वास्ते न हूइ की केवलज्ञानी पुरुष कोइ पाट ऊपरनही बैठता है, क्योंकि केवली तो जो पूछे उसका उत्तर अपने ज्ञानसेंही देता है, परंतु ऐसा नही कहता है कि:— मैं अमुक तीर्थंकरकें कहनेसें कहता हूं, इस वास्ते केवलज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैठता है, जेकर बैठे तो तीर्थंकरका

शासन दूर हो जावे, यह कभी हो न शकी जो अनादि रीतिकों के वली जंग करे, इस वास्ते श्रीगौतमजी केवल ज्ञानी था सो गद्दी ऊपर नही बैठे और सुधर्म स्वामी बैठे.

१ श्रीसुधर्म स्वामी पचास वर्ष तो गृहस्थावास (घरमें) रहे, और तीस वर्ष श्रीमहावीर भगवंतकी चरण सेवा करी, जब श्रीमहावीर निर्वाण हूआ, तिस पीछें बारां वर्ष तक छद्मस्थ रहे, और आठ वर्ष केवली रहे, क्योंकि श्रीमहावीर अर्हतके पीछें केवली हो कर बारां वर्ष श्रीगौतमजी जीते रहे, और श्रीगौतमजीके निर्वाण पीछें श्रीसुधर्म स्वामीजीकों केवल ज्ञान हूआ, केवली हो कर आठ वर्ष जीते रहे, श्रीसुधर्म स्वामी जीकी सर्वायु एक सौ (१००) वर्षकी थी, सो श्रीमहावीरजीके पीछें वीश वर्ष मोक्ष गये २ श्रीसुधर्म स्वामी के पाट ऊपर श्रीजंबूस्वामी बैठे सो राजगृहनगरका वासी श्रीऋषभदत्तश्रेष्ठकी धारिणी नामा स्त्रीसें जन्मेथे निनानवे क्रोड सोनइये और आठ स्त्रीयोंकों छोड कर दीक्षा लेता भया, शोलांवर्ष गृहस्थ वासमें रहे, वीश वर्ष व्रतपर्याय, औ चौतालीस वर्ष केवलपर्याय पालके श्रीमहावीरके निर्वाण पीछें चौशठमें वर्ष मोक्ष गये.

यह श्रीजंबूस्वामीके पीछें भरतक्षेत्रमें दश बाते विछेद हो गइ तिसका नाम लिखते है.– १ मनः पर्यायज्ञान, २ परमावधि ज्ञान, ३ पुलाक लब्धि, ४ आहारकशरीर, ५ क्षपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकल्पमुनिकी रीति, ८ परिहारविशुद्धिचारित्र, तथा सूक्ष्मसंपराय, और यथाख्यात, यह तीन तरेके संयम, ९ केवलज्ञान, १० मोक्ष होनां, यह दश वस्तु विछेद हो गइ, श्रीमहावीर भगवतके केवली हूये, पीछें जब चौदह वर्ष वीते थे; तब जमाली नामा, प्रथम निन्हव हूआ, और शोलां वर्ष पीछें तिष्य गुप्त नामा दूसरा निन्हव हूआ. श्री जंबुस्वामीकी आयु एंसी वर्षकी थी

३ जबूस्वामीके पाट ऊपर प्रभवा स्वामी बैठे, तिनकी उत्पति ऐसे है:– विंध्याचल पर्वतके पास जयपुर नामा पत्तन था, तिसका विंध्य नामा राजा था तिसके दो पुत्र थे एक वडा प्रभव दूसरा छोटा प्रभु, विंध्यराजाने किसी कारणसे छोटे पुत्र प्रभुकों राज तिलक दे दीया, तब वडा वेटा प्रभव गुस्सें हो कर जयपुर पत्तनसे निकल कर विंध्याचलकी विषम जगामें गाम वसा कर रहने लगा, और खात्रखनन, वंदिग्रहण,

र्वायु नवे वर्ष नोगके स्वर्गमें गये, और नद्रबाहुस्वामीने १ आवश्यक निर्युक्ति २ दशवैकालिकनिर्युक्ति ३ उत्तराध्ययन निर्युक्ति ४ आचारांगकी निर्युक्ति, ५ सूत्रकृदंग निर्युक्ति, ६ सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ७ ऋषिनाषित नि र्युक्ति, ८ कल्प निर्युक्ति, ९ व्यवहार निर्युक्ति, १० दशा निर्युक्ति. ये दश निर्युक्तियों और १ कल्प, २ व्यवहार, ३ दशाश्रुतस्कंध, यह नवमे पूर्वसें उद्धार करकें बनाये और एक बहुत बडा नद्रबाहु नामे संहिता ज्योतिष शास्त्र बनाया, उपसर्गहर स्तोत्र बनाया, जैनमतीयों उपर बहुत उपकार करा इनही नद्रबाहुजीका सगा नाइ वराहमेहर हूआ, वो पहिलें तो जैनमतका साधु हूआ था, फेर साधुपणा छोडकें वराही संहिता बनाइ और जो वराह मिहर विक्रमादित्यकी सनाका पंमित था, वो दूसरा वराहमिहर था, संहिता कारक वो नहीं हूआ, इसका संपूर्ण वृत्तांत परिशिष्ट पर्वसें जान लेनां श्रीनद्रबाहुस्वामी गृहस्थावासमें पैतालीश वर्ष रहे, सतारे वर्ष व्रतपर्याय, अरु चौदह वर्ष युगप्रधान, सब मिल कर छहत्तर वर्षकी आयु नोगकें श्रीमहावीरसें एकसौ सत्तर (१७०) वर्ष पीछें स्वर्ग गये.

७ यह श्रीसंनूतविजय अरु नद्रबाहुस्वामीके पाट ऊपर श्रीस्थूलनद्रस्वामी बैठे इनका बहुत वृत्तांत है, सो परिशिष्टपर्वग्रंथसें जान लेनां, १ प्रनवस्वामी, २ शिय्यंनवस्वामी, ३ यशोनद्रस्वामी, ४ संनूतविजय, ५ नद्रबाहुस्वामी, ६ स्थूलनद्र,यह छहों आचार्य चौदह पूर्वके वेत्ता थे, श्रीथूलनद्रस्वामी तीस वर्ष गृहस्थावासमे रहे, चोवीश वर्ष व्रतपर्याय, अरु पैतालीस वर्षयुगप्रधान पदवी,सर्वायु निनानवें वर्षकी नोगकें श्रीमहावीरके पीछे (२१५) वर्ष स्वर्ग गये श्रीमहावीरसें दोसौ चौदह वर्ष पीछें आषाढाचार्यके शिष्य तीसरे निन्हव हूये

स्थूलिनद्रके वखतमें नवनंदोंका एक सौ पंचावन (१५५) वर्षका राज्य उछेद करकें चाणाक्य ब्राह्मणने चंद्रगुप्तराजाको राजसिंहासन उपर बैठाया, और चंद्रगुप्तके संतानोंने एक सौ आठ वर्ष तक राज्य कीया चंद्रगुप्त मोरपालका बेटा था, इस वास्ते चंद्रगुप्तका मौर्यवंश कहते हैं. यह चंद्रगुप्त जैनमतका धारक श्रावक राजा था, यह चंद्रगुप्त तथा नवनंदका वृत्तांत देखनां होवे, तदा परिशिष्ट पर्व, उत्तराध्ययनवृत्ति तथा आवश्यक वृत्तिसे देख लेनां.

श्री स्थूलभद्रस्वामीके पीछें उपर ले चार पूर्व, प्रथम संहनन, प्रथम संस्थान. व्यवच्छेद हो गये, तथा श्रीमहावीरसें दोसौ बीस (२२०) वर्ष पीछे अश्वमित्र नामा चोथा क्षणिकवादि निन्हव हूआ, और श्री स्थूलभद्रजीके समयमें बारां वर्षका डुर्भिक्ष (काल) पडा उस समयमें चंद्रगुप्तका राज था. तथा श्री महावीरके पीछें (२२८) वर्ष व्यतीत हूए गंग नामा पांचमां निन्हव हूआ.

८ श्री स्थूलभद्रके पीछे श्री स्थूलभद्रजीके दो शिष्य एक आर्यमहागिरि, और दूसरा सुहस्ति सूरि, आठमें पाट उपर बैठे, तिसमें आर्यमहागिरिके शिष्य १ बहुल, २ बलिस्सह, फेर बलिस्सहका शिष्य श्री उमास्वातीजी जिसनें तत्त्वार्थादि सूत्र रचे हैं, और उमास्वातीका शिष्य श्यामाचार्य जिसने प्रज्ञापना (पन्नवणासूत्र) बनाया, यह श्यामाचार्य श्रीमहावीरसें तीन सौ छिहत्तर वर्ष पीछें स्वर्ग गया, और आर्य महागिरजी तीस वर्ष गृहवासमें रहे, चालीस वर्ष व्रत पर्याय अरु तीस वर्ष युगप्रधान पदवी सर्वायु एक सौ वर्षकी भोगके स्वर्ग गया.

और दूसरा आठमें पाटवाला सुहस्तिसूरि, जिसने एक भिखारीकों दीक्षा दीनी वो भिखारी काल करके चंद्रगुप्तका बेटा बिंडुसार और बिंडुसारका बेटा अशोक और अशोकका बेटा कुणाल तिस कुणालका बेटा संप्रति राजा हूआ, तिस संप्रति राजाने जैनधर्मकी बहुत वृद्धि करी, क्योंकि कल्प सूत्रके प्रथम उद्देसेमें श्रीमहावीरके समयमें अबकी निसबत बहुत थोडे देशोमें जैनधर्म लिखा है, मारवाड, गुजरात, दक्षिण, पंजाब वगैरे देशोमें जो जैनधर्म है, सो संप्रति राजाहीसें फैला है, यद्यपि इस कालमें जैनी राजाके न होनेसें जैनधर्म सर्व जगें नही, परंतु संप्रतिराजाके समयमें बहुत उन्नति पर था, क्योंकि संप्रति राजाका राज्य मध्यखंड और गंगापार और सिंधु पारके सर्व देशोमें था, संप्रति राजाने अपने नौकरोंकों जैनके साधुओंका वेष बना कर अपने सेवक राजाओंके जो शक, यवन. फारसादि देशों थे, तिन देशोंमें भेजे, तिनोने तिन राजाओंकों जैनके साधुओंका आहार विहार आचारादि सर्व बताया. और समझाया पीछेसें साधुओंका विहार तिन देशोंमें कराकर लोकोंकों जैनधर्मी करा, और संप्रति राजाने (९९०००) निनानवें हजार जीर्ण (पु

राने) जिनमंदिरोंका उद्धार कराया अर्थात् पुराने टूटोफूटोंकों नया वनाया, और छवीस हजार (२६०००) नवीन जिनमंदिर वनवाये, और सोने, चांदी पीतल, पाषाण, प्रमुखकी सवा क्रोड प्रतिमा वनवाइ, तिसके वनवाये मंदिर नमोल, गिरनार. शत्रुंजय, रतलाम, प्रमुख अनेक स्थानोंमें खडे हमनें अपनी आंखोसें देखे हैं, और संप्रतिकी वनवाइ जिनप्रतिमा तो हमने सैंकडो देखी हैं, इस संप्रति राजाका वृत्तांत परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसें समग्र जान लेनां.

तिसही सुहस्ती सूरि आचार्यने उजयनकी रहने वाली नइसेवानीका पुत्र अवंती सुकुमालकों दीक्षा दीनी. और जहा उस अवंती सुकुमालने काल करा था, तिस जगे तिस अवंती सुकुमालके महाकाल नाम पुत्रने जिनमंदिर वनवाया, और तिस मंदिरमें अपने पिताके नामसें अवंति पार्श्वनाथकी मूर्त्ति स्थापन करी, कालांतरमें ब्राह्मणोने आपना जोर पा कर तिस मंदिरमें मूर्त्तिकों हेठ दाव कर उपर महादेवका लिंग स्थापन करके महाकाल (महादेवका) मंदिर प्रसिद्ध कर दीया, पीछे जब राजा विक्रम उजयनमें राजा हूआ, तिस अवसरमें कुमुदचंद्र अर्थात् सिद्धसेन दिवाकर नामा जैनाचार्यने कल्याणमंदिर स्तोत्र वनाया, तब शिवका लिंग फटकर वीचमेंसुं पूर्वोक्त पार्श्वनाथकी मूर्त्ति फिर प्रगट हूइ.

इसका संवंध अेसा हेकि.— विद्याधर गछमें स्कंदिलाचार्य तिनका शिष्य वृद्धवादि आचार्य था, तिस अवसरमें उजयनका राजा विक्रमादित्य था, तिसका मंत्री कात्यायन गोत्री देवऋषिनामा ब्राह्मण तिसकी देवसिका नामा स्त्री, तिनका पुत्र सिद्धसेन सो विद्याके अभिमानसें सारे जगतके लोकोंको तृणवत् (घासफुसशमान) समजता था, और अेसा जानता था किः— मेरे समान बुद्धिमान् कोइभी नहीं, और जो मुजकों वादमें जींत लेवे, तो मै उसकाही शिष्य वन जाऊंगा पीछे तिसने वृद्धवादीकी वहुत कीर्त्ति सुनी उनके सन्मुख जाने वास्ते सुखासन ऊपर बेठके भृगुकछ (भडोंच) कीतरफ चला जाता था, तिस अवसरमें वृद्धवादीभी रस्तेमें सन्मुख आता हूआ मिला, तब आपसमे दोनोका आलाप संलाप हूआ पीछे सिद्धसेनजीने कहा कि मेरे साथ तुम वाद करो, तब वृद्धवादीने कहाकि वाद तो करुं, परंतु इस जंगलमें जीते हारेका कहनेवाला कोइ साक्षी

नहीं, तब सिद्धसेनजीने कहा कि यह जो गौ चरानेवाले गोप है, येही
मेरे तुमारे साक्षी रहे, ये जिसकों कहदेंगे हारा सो हारा, तब वृद्धवादीने
कहा बहुत अच्छा, येही साक्षी रहे, अब तुम बोलो तब सिद्धसेनजीने ब
हुतसंस्कृत भाषा बोली और चुप करी तब गोपोंने कहा यह तो कुछभी
नहीं जानता, केवल ऊंचा बोलके हमारे कानोंकों पीडा देता है, तब गोप
कहने लगे हे वृद्ध ! तूं बोल ? पीछे वृद्धवादी अवसर देख कें कछा बाध
कर तिन गोपोंकी भाषामे कहने लगे, और थोडे थोडे कूदनेभी लगे, जो
कह उच्चारा सो कहते हैं. " नविमारिये नविचोरियें, परदारागमणनिवा
रियें ॥ थोवाथोवंदाइयें, सग्गिमट्टेमट्टेजाइयें ॥ १ ॥ फेरभी बोले और ना
चने लगे ॥ छंद ॥ कालो कंबल नीचोवट्ट, छाछें भरिउ दीवडो पट्ट ॥ ए
वड पडीउ नीले जाड, अवरकिसोछे सग्ग निलाड ॥ २ ॥ यह सुनकर
गोप बहुत खुशी हूये और कहने लगेकि वृद्धवादी सर्वज्ञ है, इसने कैसा
अच्छा कानोंकों सुखदायी हमारे योग्य उपदेश कहा, और सिद्धसेन तो
कुछ नहीं जानता तब सिद्धसेनजीने वृद्धवादीकों कहा कि हे भगवन् ! तुम
मेरेकों दीक्षा देकें अपना शिष्य बनाउ क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा थी के जो
कोइ मुझे हाराकहेंगे, तो मै हारा, और तुमारा शिष्य बनूंगा यह सुन
कर वृद्धवादीने कहा कि भृगुपुरमें राजसभाके बीच तेरा मेरा वाद होयेगा,
क्युं यह गोपोंकी सभामें वादही क्या है ? तब सिद्धसेनने कहा मै अव
सर नही जानता, तुम अवसरके ज्ञाता हो, इस वास्ते मे हारा पीछें वृद्ध
वादीने राजसभामें उसको पराजय करा, तब सिद्धसेनने दीक्षा लीनी. गु
रुने उनका नाम कुमुदचंद्रजी दीया, पीछें जब आचार्य पदवी दीनी, तब
नाम सिद्धसेन दिवाकर नाम रक्खा. पीछें वृद्धवादी तो और कहीकों वि
हार कर गये, और सिद्धसेन दिवाकर अवंती (उज्जयनमें) गये, तब उज
यनका संघ सन्मुख आया, और सिद्धसेन दिवाकरको सर्वज्ञ पुत्र ऐसा
बिरुद दीया, ऐसा बिरुद बोलते हूए अवती नगरीके चौकमें लाये, तिस
अवसरमें राजा विक्रमादित्य हाथी ऊपर चढा हूआ सन्मुख मिला तब रा
जाने सर्वज्ञ पुत्र ऐसा बिरुद सुनके तिनकी परीक्षा वास्ते हाथी उपर बै
ठेने मनसें नमस्कार करा तब आचार्यने धर्मलाभ कहा, तब राजाने पू
छा विनाही वंदना करे, आप मेरेकों धर्मलाभ क्यों कर कहा ? क्या यह

धर्मलाभ बहुत सस्ता है? तब आचार्यने कहा यह धर्मलाभ क्रोडचिंता मणि रत्नोंसेंभी अधिक है, जो कोइ हमकों वंदना करता है, उसकों हम धर्मलाभ कहते हैं. और ऐसेंभी नही,जो तुमने हमकों वंदना नही करी? तुमनेभी अपने मनसें वंदना करी, तो मनही सर्व कार्योंमें प्रधान है, इस वास्ते हमने धर्म लाभ कहा है, और तुमनेंभी मेरी परीक्षा वास्तेही मनमें नमस्कार करा है, तब विक्रमराजा तुष्टमान हो कर हाथीसें नीचे उतर कर सर्वसंघकी समक्ष वंदना करी, और एक क्रोड अशर्फी दीनी परंतु आचार्यने अशर्फीयों नही लीनी क्योंकि वे त्यागी थे, और राजाभी पीछे नही लेता, तब आचार्यकी आज्ञासें संघपुरुषोने जीर्णोद्धारमें लगा दीनी. राजाके दफतरमें तो ऐसा लिखा है ॥श्लोक॥ धर्मलाभ इतिप्रोक्ते,दूरा दुच्छ्रितपाणये ॥ सूरये सिद्धसेनाय, ददौकोटिं धराधिपः ॥१॥ श्रीविक्रमराजाके आगें सिद्धसेन दिवाकरने ऐसेभी कहा था कि ॥गाथा॥ पुण्णे वास सहस्से. सयंमि वरिसाण नवनवइकलि ए ॥ होइ कुमर नरिंदो, तुहविक्कम राय सारिच्छो ॥ १ ॥ अन्यदा सिद्धसेन चित्रकूटमें गये तहां बहुत पुराने जिनमंदिरमें एक वडा मोटा स्थंभ देखा, तव किसीकों पूछाकि यह स्थंभ किसतरांका है? एह सुन कर किसीने कहा कि यह स्थंभ औषध द्रव्यमय जलादि करकें अभेद्य वज्रवत् है. इस स्थंभमें पूर्वाचार्योंनें बहुत रहस्य विद्याके पुस्तक स्थापन करे है, परंतु किसीसें यह स्थंभ खुलता नही यह सुन कर सिद्धसेन आचार्यने तिस स्थंभकों सूंघा तिसकी गंधसे तिसकी प्रतिपक्षी औषधीयोंका रस छांटा तिस्सें वो स्थंभ कमलकी तरें खिल गया, तब तिसमें पुस्तक देखा तिनमें सु एक पुस्तक ले कर वांचा, तिसके प्रथम पत्रमें दो विद्या लिखी पाइ, एक सरसों विद्या और दूसरी सुवर्णविद्या, तिसमें सरसों विद्या उसको कहते है,कि जो काम पडे तव मंत्रवादी जितने सरसोंके दाने जपके जलाशयमें गेरे उतनेही अश्वार वैतालीश प्रकारके आयुधों सहित बाहिर निकलके मैदानमें खडे हो जाते हैं, तिनोंसें शत्रुकी सेना भंग हो जाती है. पीछे जब वो कार्य पूरा हो जाता है, तब अश्वार अदृश्य हो जाते है. और दूसरी हेमविद्यासें विनामेहनतके जितना चाहे, उतना सुवर्ण हो जाता है, ये दो विद्या सिद्धसेनने लेलीनी, पीछे जब आगे वांचने लगा तब

स्थंन मिल गया सर्व पुस्तक वीचमें रह गये और आकाशसें देव वाणी हूइ कि तूं इन पुस्तकोंके वाचने योग्य नहीं आगे मत वांचना, वांचेंगा तो तत्काल मर जायगा तब सिद्धसेनने मरकें विचार करा कि दो विद्यामि त्री दोही सही. पीछें चित्रोडसें विहार करके पूर्वदेशमें कुमार पुरमें गये, तहां देवपाल राजा था तिसकों प्रतिबोधके पक्का जैनधर्मी करा, तहां वो राजा सिद्धांत श्रवण करता है, जब ऐसे कितनाक काल व्यतीत हूआ, तब एकदा समय राजा छाना आया, और आंसुसें नेत्र भर कर कहने लगा किः—हे भगवन् हम बडे पापी है, क्योंकि आपकी ऐसी उत्तम गो ष्ठिका रस नहीं पीसक्ते है ? कारण कि हम बडे संकटमें पडे है, तब आ चार्यने कहा तुमकों क्या संकट हूआ ? राजा कहने लगा कि बहुत मेरे वैरीराजे एकठे हो कर मेरा राज्य छीना चाहते है, तब फेर आचार्यने कहा कि हे राजन्! तूं आकुल व्याकुल मत हो,जब मैं तेरा साहायक हों तो फेर तुझे क्या चिंता है ? यह बात सुन कर राजा बहुत राजी हूआ, पीछें आचार्यने राजाकों पूर्वोक्त दोनो विद्यायोंसें समर्थ कर दीया, तिन विद्यायोंसें परदल भंग हो गया, तिनका मेरा मंमा सर्व राजाने लूंट ली या,तब राजा आचार्यका अत्यंत भक्त हो गया उस्से आचार्य सुखोंमे पडके शिथिलाचारी हो गया यह स्वरूप वृद्धवादीजीनें सुना, पीछें दया करके तिनका उद्धार करने वास्ते तहां आये, दरवाजे आगें खडे हो कर कह ला भेजा कि एक बूढा वादी आया है, तब सिद्धसेननें बुला कर अपनें आगे बैठाया वृद्धवादी, सर्व अपना शरीर वस्त्रसें ढाक कर बोलेः—“अण फुल्लियफुल्लमतोडहिं, मारोवामोडिहिंमणकुसुमेहिं ॥ अच्चिनिरंजणजिण, हिं महिकाइवणेणवणु ॥१॥ इस गाथाकों सुणकर सिद्धसेनने विचारभी करा परतु अर्थ न पाया तब विचार कराकि क्या यह मेरे गुरु वृद्धवादी हैं ? जिनके कहेका मै अर्थ नही जानता हूं पीछें जब वार वार देखने लगा तब जाना कि यह मेरा गुरु है पीछे नमस्कार करकें क्षमापन मांगा, औरपूर्वोक्त श्लो कका अर्थ पूछा, तब वृद्धवादी कहने लगे “अणफुल्लियेत्यादि” अणफुल्लिय फुल प्राकृतके अनंतहोनेंसें अप्राप्त फूल फलोकों मत तोड, भावार्थ यह हैकि योग जो है, सो कल्पवृक्ष है, किस तरें कि जिस योग रूप वृक्षमें यम नि यम तो मूल है, और ध्यान रूप वडा स्कंध है, तथा समता पणा कवि

पर्णा, वक्तापर्णा, यश, प्रताप, मारण, उच्चाटन, स्तंभन, वशीकरणादि सिद्धियों कि जो सामर्थ सो फूल है, अरु केवलज्ञान फल है, अभी तो योगकल्पवृक्षके फूलही लगे है सो केवल ज्ञानरूप फल करकें आगे फलेंगे इस वास्ते तिन अप्राप्त फल पुष्पोंकों क्यों तोडता है? अर्थात् मत तोड असा भावार्थ है, तथा "मारोवा मोडिहि" जहां पांच महाव्रत आरोपा है तिनकों मत मरोड "मणुकुसुमेत्यादि" मनरूप फूलें करी निरंजनं जिनं पूजय (निरंजन जिनकों पूज) "वनात् वनंकिंहिंमसे" राजसेवादि बुरे नीरस फल क्यों करता है? इतिपद्यार्थ तब सिद्धसेनसूरिने गुरु शिक्षाकों अपने शिर उपर धरके और राजाकों पूछके वृद्धवादी गुरुके साथ विहार करा, और निविड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योंसें पूर्वोंका ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवास हूए पीछे एकदा सिद्धसेनजीने सर्वसंघ एकठा करकें कहा कि जेकर तुम कहोतो सर्वागमोंकों में संस्कृतभाषामें करदेउं तब श्रीसंघने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नही जानते थे? जो तिनहोंनें अर्द्धमागधीभाषामे आगम करे? असी बात कहनेसें तुमकों पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसें क्या कहें? तुम आपही जानते हो, तब सिद्धसेनने विचार करकें कहा कि, मैं मौन करकें बारांवर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेकें गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोहरणादि लिंग करकें और अवधूत रूप धारके फिरुंगा, असें कह कर गछकों छोडके नगरादिकोंमें पर्यटन् करने लगे बारां वर्षके पर्यंतमें उज्जयन नगरीमे महाकालके मंदिरमें शेफालिकाके फूलों करकें वस्त्ररंगे पहने हूए सिद्धसेनजी जाके बैठा तब पूजारी प्रमुख लोकोने कहा तुम महादेवको नमस्कार क्यों नही करता? सिद्धसेन तो बोलतेही नहीं हैं? असें लोकोंकी परंपरासे सुन कर विक्रमादीत्यनेभी तहां आ कर कहा "क्षीरलिनिक्षोनिक्षोकिमितित्वयादेवोनवंद्यते" तब सिद्धसेनने कहा मेरे नमस्कारसें तुमारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमकों महादुःख होवेगा मैं इस वास्ते नमस्कार नही करता हूं तब राजाने कहा लिंग फटे तो फट जानेदो परंतु तुम नमस्कार करो, पीछे सिद्धसेनजी पद्मासन बैठके कहने लगा, सुनो तब द्वात्रिंशका करकें देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥ श्लोक ॥ इंद्रवज्रवृत्तम् ॥ स्वयंभुवं भूतसहस्रनेत्र,मनेकमेकाक्षरभावलिंगं ॥ अव्यक्तम

व्याहत विश्वलोक, मनादिमध्यांतमपुण्यपापं ॥१॥ इत्यादि प्रथमही श्लोक पढनेसें लिंगमेंसे धूआं निकला तबलोक कहने लगे शिवजीका तीसरा नेत्र खुला है, अब इस भिक्षुकों अग्निनेत्रसें भस्म करेगा तबतो विजलीके तेजकी तरें तडतडाट करता प्रथम अग्नि निकला पीछें श्रीपार्श्वनाथजीका बिंब प्रगट हूआ, तब वादी सिद्धसेननें कल्याण मंदिरादि स्तवनों करी स्तवन करकें क्षमापन मांगा, तब राजा विक्रमादित्य कहने लगाकि हे भगवन्! यह क्या अदृश्यपूर्व देखनेमें आया? यह कौनसा नवीन देव है? और यह प्रगट क्यों कर हूआ? तब सिद्धसेनजीनें आवंतीसुकुमाल और तिसके पुत्र महाकालने पिताके नामसें आवंती पार्श्वनाथका मंदिर और मूर्त्ति बनाइ स्थापन करी, तिसकी कितनेक वर्ष लोकोंने पूजा करी अवसर पाकर ब्राह्मणोंने जिनप्रतिमाकों हेठ दाबके ऊपर यह शिवलिंग स्थापन करा इत्यादि सर्व वृत्तांत कहा,और हे राजन्! इस मेरी स्तुतिसें शासनदेवताने शिवलिंग फाडके वीचमेंसें यह प्रतिमा प्रगट कर दीनी, अब तूं सत्यासत्यका निर्णय कर ले तब विक्रमादित्यनें एक सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये, और देवके समक्ष गुरु मुखसें बारां व्रत ग्रहण करे, और सिद्धसेनकी बहुत महिमा करी, अपने स्थानमें गया और वादींद्र (सिद्धसेनदिवाकरको) संघने जिनधर्मकी प्रभावनासें तुष्टमान हो कर संघमें लीया. अरु पूर्ववत् आचार्य बनाया.

एकदा प्रस्तावे सिद्धसेन दिवाकर विहार करते हूये मालवेके देशमें जो ॐकारनामें नगर है,तहां गये,तिसनगरके भक्त श्रावकोनें आचार्यकों विनती करी,जैसें हे भगवन्! इसी नगरके समीप एक गाम था,तिसमें सुंदर नामा राजपुत्र ग्रामणी था, तिसकी दो स्त्रीयां थी, एक स्त्रीके प्रथम पुत्री जन्मी वो स्त्री मनमे खीजी तिस अवसरमें उसकी सौकनभी प्रसूत होने वाली थी,तब तिस बेटीवालीनें विचारा कि इसके पुत्र न होवे,तों ठीक है,क्योंकि नही तो यह पतिकों वल्लभ हो जावेगी, तब दाइसें मिलके उससें पैदा हूआ पुत्रकों बाहिर गिरा दीया, और तत्कालका मरा हूआ लडका उसके आगे रख दीया पीछें जौनसा लडका बाहिर गेरा गया था, उसकों कुलदेवीनें गौका रुप करकें पाला जब आठ वर्षका हूआ तब इस ॐकार नगरके शिवभवनके अधिकारी भरटनें देखा और अपना चेला बना लीया, एकदा प्रस्तावे

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग् विजय कार्यसें तहां पडाव करा तब रात्रिमें उस छोटे चेलेकों शिवभक्त व्यंतर देवतानें कहा कि शेर भोगराजाकों देनां, उसकी आंख अच्छी हो जावेगी, तैसेंही करा तिस्सें राजाकी आंख अच्छी हो गइ तब राजाने सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये और यह बडा ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोभी उसीनें बनवाया, और हम इस नगरमें रहते है परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेंसें हम जिनमंदिर बनाने नही पाते हैं, इस वास्ते आपसे विनति करते है, कि इस मंदिरसें अधिक हमारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरेंसें सामर्थ हों. तिनका वचन सुनकर वादिइने आवतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्रमादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया " दिदृक्षुर्भिक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोक उतागच्छतुगच्छतु॥१॥ तिस श्लोकको सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेंका श्लोक लिखकर भेजा " दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतु श्लोकः उतागच्छतु गच्छतु ॥ १ ॥ तिस श्लोकको सुनकर आचार्यने कहा भेजा कि भिक्षु तुमकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुलवाये और पिछानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तब आचार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेंसें बहुत दिन हूये चिरसें आना हूआ अब चार श्लोक तुम सुनो॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, भवताशिक्षिता कुत.॥ मार्गणौघ, समन्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्त्रे, लक्ष्मीःकरसरोरुहे ॥ कीर्त्तिःकिंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजातजाड्येव. चतुरंभोधिमज्जनात्, ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तंडमंडल ॥ ३ ॥ सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनै. ॥ नारयोलेभिरे पृष्ठं, नवक्षःपरयोषित ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनकें राजा बहुत खुश हूआ, और आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदुं तब आचार्यनें कहा मुझको कुछभी नही चाहिता. परंतु उँकार नगरमें चतुर्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें उंचा बनाउ और प्रतिष्ठाभी कराउ तब राजानें वैसेंही करा तब जिनमत प्रभावना देखकें संघ तुष्टमान हूआ. इत्यादि प्रकारसे जैनधर्मकी प्रभावना करते हूए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें जा कर अनशन करके देवलोक गये. तब तहांसे संघने एक भट्टकों सिद्ध

सेनकी गब्ध पास खबर करनेकों भेजा, तिस भट्टने सूरियोंकी सभामे आधा श्लोक पढा और वार वार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है.— स्फुरंति वादिखद्योता.. सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब वार वार यह अर्द्ध श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा भूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥ १ ॥ पीछे तिस भट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बडा शोक हूआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीसवर्ष व्रत पर्याय, तथा छैतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु भोगके श्रीमहावीरसें पीछें दोसौ एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ये आठमे पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए.

ए श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोंने क्रोडों वार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गछका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्का, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगछ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्दभिल्लराजाके उछेद करणेंवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमे प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीछे भृगुकछ (भडोचमें) श्रीआर्य खपुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिभद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रभावक चरित्रमें ऐसा लिखा है कि:— श्रीमहावीरसें (४७४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोने विक्रमादित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हूएहै;— जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवंति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याभिषेक हूआ, यह पालक चंड्प्रयोतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीछें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब नि

ना पुत्रके मरा तब तिसकी गद्दी ऊपर नंद नामा नाइ बैठा, तिनकी गद्दी में सर्व नंदनामा नव राजे हूए तिनका राज्य (१५५) वर्ष तक रहा नवमें नंदकी गद्दी ऊपर मौर्यवंशी चंद्रगुप्त राजा हूआ तिसका बेटा बिंदुसार तिसका बेटा अशोक तिसका बेटा कुणाल तिसका बेटा संप्रति महाराजादि हूए, इन मौर्यवंशीयोंका सर्व राज (१०८) वर्ष तक रहा यह पूर्वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीछे तीस वर्ष तक पुष्पमित्र राजाका राज्य रहा, तिस पीछें बलमित्र, भानुमित्र, यह दोनो राजाका राज्य (६०) वर्ष तक रहा, तिस पीछे नभवाहन राजाका राज्य (४०) वर्ष तक रहा, तिस पीछें तेरां वर्ष गर्द्दभिल्लीका राज्य रहा, और चार वर्ष शकोका राज्य रहा, पीछे विक्रमादित्यनें शकोंकों जीतके अपना राज्य जमाया यह सर्व (४७०) वर्ष हूए.

११ श्रीइंद्रदिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीदिन्नसूरि हूये १२ दिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीसिंहगिरि सूरि हूये, १३ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्रीवज्र स्वामी हूये, जिनकों बाल्यावस्थासें जातिस्मरण ज्ञान था, जिनकों आकाशगमन विद्याभी थी, जिनोंने दूसरे बारा वर्षी कालमें संघकी रक्षा करी, तथा जिनोंने दक्षिणपथमें बौधोंके राज्यमें श्रीजिनेंद्रपूजा वास्ते फूल लाके दीये, बौद्धराजाकों जैनमती करा, यह आचार्य पीछला दशपूर्वका पाठक हूआ, जिनोंसें हमारी वज्री शाखा उत्पन्न हूइ, इनका प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेना. सो वज्रस्वामी श्रीमहावीरसें पीछे चार सौ छानवे और विक्रमादित्यके संवत छब्बीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे चौतालीस वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और छत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वायु अठाशी वर्षकी भोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री शत्रुंजय तीर्थका संवत् १०८)मे तेरहवा वडा उद्धार करा, तिसकी श्री वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमहावीरसे (५०४) वर्ष पीछें स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमें दशमा पूर्व और चौथा संहनन और चौथा संस्थान व्यवछेद होगये, यहा श्रीसुहस्ती सूरि आठमें और श्रीवज्र. स्वामी तेरहवे पाटके बीचमें अपर पटावलियोंमें १ श्रीगुणसुंदरसूरि, २, श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंदिलाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रसूरि, ५, श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीभद्रगुप्ताचार्य, ७ श्रीगुप्ताचार्य, यह सात क्रमसें युग

प्रधान आचार्य हूये तथा श्रीमहावीरसें पांचसौ तेतीस (५३३) वर्ष पीछें श्रीआर्यरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोंका अनुयोग पृथग् पृथग् कर दीयें, ये प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेनां. तथा श्रीमहावीरसें (५४०) में वर्षें त्रैराशिके जीतने वाले श्रीगुप्त सूरि हूये, तिनका प्रबंध उत्तराध्यनकी वृत्ति तथा श्रीविशेषावश्यकसें जान लेनां, जिसने त्रैराशिक मत निकाला तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उलूक गोत्र था जब रोहगुप्त गुरुके आगे हारा, और मत कदाग्रह न छोडा, तब अंतरंजिका नगरीके बलश्रीराजाने अपने राज्यसें बाहिर निकाल दीया, तब तिस रोहगुप्तनें कणाद नाम शिष्यकरा, उसकों १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इन षट् पदार्थोंका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादनें वैशेषिक सूत्र बनाये, तहांसें वैशेषिक मत चला.

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर चौदवें श्रीवज्रसेन सूरि बैठे, वे दुर्भिक्षमे श्रीवज्र स्वामीके वचनसें सोपारक पत्तनमें गये तहां जिनदत्तके घरमें ईश्वरी नामा तिसकी भार्याने लाख रूपकके खरचनेसें एक हांडी अन्नकी रांधी, जिसमें विष (जहर) डालने लगी, क्योंकि उनोंनें विचाराथा के अन्न तो मिलता नही तिस वास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मर जायें गे, तिस अवसरमें श्रीवज्रसेन सूरि तहां आये, वो उनकों कहने लगे कि तुम जहर मत खाओ कलकों सुगाल हो जावेगा तैसेंही हूआ तब तिन शेठके चार पुत्रोनें दीक्षा लीनी, तिनके नाम लिखते है.– १ नागेंद्र, २ चंद्र, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोंसें स्व स्व नामके चार कुल बने. यह वज्रसेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावासमें रहे और (११६) वर्ष समान साधुव्रतमें रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वायु (१२८) वर्षकी भोगके श्री महावीरसे (६२०) वर्ष पीछें स्वर्ग गये, यहां श्रीवज्रस्वामी और वज्रसेन सूरिके बीचमे आर्य रक्षित सूरि तथा श्री दुर्बलिका पुष्प सूरि, यह दोनो युग प्रधान हूये, श्रीमहावीरसें (५८४) वर्ष पीछें सातवा निन्हव हूआ, तथा श्रीमहावीरसे (६०९) वर्ष पीछें श्री कृष्ण सूरिका शिष्य शिवभूति नामें था तिनें दिगंबर मत प्रवृत्त करा, सो अधिकार विशेषावश्यकादिकोसें जान लेनां.

१५ श्रीवज्रसेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंद्रसूरि बैठा, तिनके नामसे गछ

ना पुत्रके मरा तब तिसकी गद्दी ऊपर नंद नामा नाइ बैठा, तिनकी गद्दी में सर्व नंदनामा नव राजे हूए तिनका राज्य (१५५) वर्ष तक रहा न वमें नंदकी गद्दी ऊपर मौर्यवंशी चंद्रगुप्त राजा हूआ तिसका बेटा बिंदु सार तिसका बेटा अशोक तिसका बेटा कुणाल तिसका बेटा संप्रति महाराजादि हूए, इन मौर्यवंशीयोंका सर्व राज (१०८) वर्ष तक रहा यह पूर्वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीछे तीस वर्ष तक पुष्पमित्र राजाका राज्य रहा, तिस पीछें बलमित्र, भानुमित्र, यह दोनो राजाका राज्य (६०) वर्ष तक रहा, तिस पीछे नजवाहन राजाका राज्य (४०) वर्ष तक रहा, तिस पीछें तेरां वर्ष गर्दभिल्लीका राज्य रहा, और चार वर्ष शकोंका राज्य रहा, पीछे विक्रमादित्यनें शकोंकों जीतके अपना राज्य जमाया यह सर्व (४७०) वर्ष हूए.

११ श्रीइंद्रदिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीदिन्नसूरि हूये १२ दिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीसिंहगिरि सूरि हूये, १३ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्रीवज्र स्वामी हूये, जिनकों बाल्यावस्थासें जातिस्मरण ज्ञान था, जिनकों आकाशगमन विद्याभी थी, जिनोंने दूसरे बारां वर्षी कालमें संघकी रक्षा करी, तथा जिनोंने दक्षिणपथमें बौधोंके राज्यमें श्रीजिनेंद्रपूजा वास्ते फूल लाके दीये, बौध्दराजाकों जैनमती करा, यह आचार्य पीछला दशपूर्वका पाठक हूआ, जिनोंसें हमारी वज्री शाखा उत्पन्न हूइ, इनका प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेनां. सो- वज्रस्वामी श्रीमहावीरसें पीछे चार सौ छानवे और विक्रमादित्यके संवत छब्बीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे चौतालीस वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और छत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वायु अट्ठाशी वर्षकी भोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री शत्रुंजय तीर्थका संवत् १०८) में तेरहवा बडा उद्धार करा, तिसकी श्री वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमहावीरसें (५०४) वर्ष पीछें स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमे दशमा पूर्व और चौथा संहनन और चौथा संस्थान व्यवछेद होगये, यहां श्रीसुहस्ती सूरि आठमें और श्रीवज्र, स्वामी तेरहवे पाटके वीचमें अपर पटावलियोंमे १ श्रीगुणसुंदरसूरि, २, श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधिलाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रसूरि, ५, श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीभद्रगुप्ताचार्य, ७ श्रीगुप्ताचार्य, यह सात क्रमसें युग

प्रधान आचार्य हूये. तथा श्रीमहावीरसें पांचसो तेतीस (५३३) वर्ष पीछे श्रीआर्यरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोंका अनुयोग पृथग् पृथग् कर दीयें, ये प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेनां. तथा श्रीमहावीरसें (५४७) में वर्षे त्रैराशिके जीतने वाले श्रीगुप्त सूरि हूये, तिनका प्रबंध उत्तराध्यनकी वृत्ति तथा श्रीविशेषावश्यकसें जान लेनां, जिसने त्रैराशिक मत निकाला तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उलूक गोत्र था जब रोहगुप्त गुरुके आगे हारा, और मत कदाग्रह न छोडा, तब अंतरंजिका नगरीके बलश्रीराजाने अपने राज्यसें बाहिर निकाल दीया, तब तिस रोहगुप्तनें कणाद नाम शिष्यकरा, उसकों १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इन षट् पदार्थोंका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादनें वैशेषिक सूत्र बनाये, तहांसें वैशेषिक मत चला.

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर चौदवें श्रीवज्रसेन सूरि बैठे, वे दुर्भिक्षमें श्रीवज्र स्वामीके वचनसें सोपारक पत्तनमें गये तहां जिनदत्तके घरमें ईश्वरी नामा तिसकी भार्याने लाख रूपकके खरचनेसे एक हांमी अन्नकी राधी, जिसमें विष (जहर) मालने लगी, क्योंकि उनोंने विचाराथा कि अन्न तो मिलता नहीं तिस वास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मर जायें गे, तिस अवसरमें श्रीवज्रसेन सूरि तहां आये, वो उनकों कहने लगे कि तुम जहर मत खाउ कलकों सुगाल हो जावेगा तैसेंही हूआ तब तिन शेठके चार पुत्रोंनें दीक्षा लीनी, तिनके नाम लिखते है:— १ नागेंद्र, २ चंद्र, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोंसें स्व स्व नामके चार कुल बने. यह वज्रसेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावासमे रहे और (११६) वर्ष समान साधुव्रतमें रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वायु (१२८) वर्षकी भोगके श्री महावीरसें (६२०) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, यहा श्रीवज्रस्वामी और वज्रसेन सूरिके बीचमें आर्य रक्षित सूरि तथा श्री दुर्बलिका पुष्य सूरि, यह दोनो युग प्रधान हूये, श्रीमहावीरसे (५८४) वर्ष पीछे सातवा निन्हव हूआ. तथा श्रीमहावीरसे (६०९) वर्ष पीछे श्री कृष्ण सूरिका शिष्य शिवभूति नामें था तिनें दिगंबर मत प्रवृत्त करा, सो अधिकार विशेषावश्यकादिकोसें जान लेनां.

१५ श्रीवज्रसेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंद्रसूरि बैठा, तिनके नामसें गछ

का तीसरा नाम चंद्रगच्छ हूआ, (१६) श्री चंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री सामंतभद्रसूरि हूये, वे पूर्वगत श्रुतके जानकार थे, वैरागके रंगसें निर्मल हूए, जंगलोंमें रहते थे, तब लोकोंनें चंद्रगच्छका नाम वनवासी गच्छ रक्खा, १७ श्रीसामंतभद्र सूरिके पाट ऊपर श्रीवृद्धदेव सूरि हूये, तथा श्रीमहावीरसें (५९५) वर्ष पीछें कोरंट नगरमें नाहड नामा मंत्रीने तथा सत्यपुरमें नाहडमंत्रीने मंदिर बनवाया, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा जज्जग सूरिनें करी, प्रतिमा श्री महावीरकी स्थापन करी जिसकों "जयउवीरसच्चउरिमंमण" कहते हैं (१८) श्रीवृद्धदेव सूरिके पाट ऊपर श्री प्रद्योतन सूरि हूये.

१९ श्री प्रद्योतन सूरिके पाटऊपर श्रीमानदेव सूरि हूये, इनके सूरिपद स्थापनावसरमें दोनो स्कंधोंपर सरस्वती और लक्ष्मी साक्षात् देखकें यह चारित्रसे भ्रष्ट हो जावेगा ? औसें विचार करकें खिन्नचित्त गुरुको जानके गुरुके आगें औसा नियम करा कि:— भक्तिवाले घरकी भिक्षा और दूध, दही, घृत. मीठा, तेल, अरु सर्व पक्वान्नका, त्याग कीया, तब तिनके तपके प्रभावसें नमोल पुर जो पालीके पास है तिसमें १ पद्मा, २ जया, ३ विजया, ४ अपराजिता, ए चार नामकी चार देवी सेवा करती देखी, कोइ मूर्ख कहने लगाकि ए आचार्य स्त्रीयोंका संग क्यों करता है? तब तिन देवीयोंने तिसकों शिक्षा दीनी, तथा तिसके समयमें तिक्षिला (गजनी) नगरीमें बहुत श्रावक थे तिनमें मरीका उपद्रव हूआ तिसकी शांतिके वास्ते श्री मानदेव सूरिने नमोल नगरीसें शांतिस्तोत्र बना कर भेजा

२० श्री मानदेव सूरिके पाट ऊपर श्रीमानतूंग सूरि हूये जिनोने भक्तामर स्तवन करकें बाण अरु मयूर पंमितोंकी विद्या करकें चमत्कृत हूआ जो वृद्ध भोजराजा तिनकों प्रतिबोधा, और भयहर स्तवन करकें नागराजा वश करा. तथा भत्तिभरेत्यादि स्तवन जिनोनें करे है प्रभावक चरित्रमें प्रथम श्री मानतूंग सूरिका चरित्र कहा. और पीछें देवसूरिका शिष्य श्री प्रद्योतनसूरि तिनका शिष्य श्रीमानदेव सूरिका प्रबंध कहा. परंतु तहां संका न करनी चाहियें क्योंकि प्रभावक चरित्रमें औरभी कई प्रबंध आगे पीछें कहे हैं.

२१ श्रीमानतुगसूरिके पाट ऊपर श्रीवीरसूरि हैगा, सो वीरसूरिनें श्री महावीरसें (७७०) वर्षमें तथा विक्रम संवत्के तीन सौ वर्ष पीछें नागपुरमें श्रीनमि अर्हतकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी, यदुक्तं ॥ आर्या ॥ नागपुरे

नमिनवन, प्रतिष्ठयामहितपाणिसौन्नाग्यः ॥ अनवधीराचार्यं, त्रिनिः शतैः साधिके राज्ञः ॥ १ ॥

२१ श्रीवीरसूरिके पाट ऊपर श्रीजयदेवसूरि बैठे, २२) श्रीजयदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीदेवानंदसूरि बैठे इस अवसरमें श्रीमहावीरसें (८४५) वर्ष पीछे वल्लनी नगरी नंग हूइ, तथा (८८२) वर्ष पीछे चैत्येस्थिति तथा (८८६) वर्ष पीछे ब्रह्मद्विपिका २४) श्रीदेवानंदसूरिके पाट ऊपर श्रीविक्रमसूरि बैठे, २५) श्रीविक्रमसूरिके पाट ऊपर श्रीनरसिंहसूरि बैठे यतः ॥ नरसिंहसूरिरासी,दतोऽखिलग्रंथपारगोयेन ॥ यक्षोनरसिंहपुरे, मांसरतिस्त्याजितास्वगिरा ॥ १ ॥ २६) श्रीनरसिंहसूरिके पाट ऊपर श्रीसमुद्रसूरि बैठा ॥श्लोक॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ खोमीणराजकुलजोपि समुद्रसूरि, र्गछं शशास किल यः प्रवणः प्रमाणी ॥ जित्वातदाक्षपनकान् स्ववशं वितेने, नागद्रहेभुजगनाथनमस्यतीर्थम् ॥१॥२७) श्रीसमुद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव सूरि हूए ॥श्लोक॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ विद्यासमुद्रहरिनद्रमुनींद्रमित्रं, सूरिर्बनूव पुनरेव हि मानदेवः ॥ मांद्यात्प्रयातमपियोनघसूरिमंत्रं, लेनेंबिकामुखगिरा तप सोज्ञयंते ॥ १ ॥ श्री महावीरसें एक हजार वर्ष पीछें सत्यमित्र आचार्यके साथ पूर्वोका व्यवछेद हूआ, यहां १ श्रीनागहस्ति, २ रेवतीमित्र, ३ ब्रह्मद्वीप, ४ नागार्जुन, ५ नूतदिन्न, ६ श्रीकालकसूरि, ये छै युगप्रधान यथाक्रमसें श्रीवज्रसेनसूरि और सत्यमित्रके बीचमें हूए, इन पूर्वोक्त छै युगप्रधानोंमेंसे शक्रानिवंदित और प्रथमानुयोग सूत्रोंका सूत्रधार कल्प श्रीकालिकाचार्य श्रीमहावीरसें (९९३) वर्ष पीछें पंचमीसें चौथकी संवत्सरी करी तथा श्रीमहावीरात् (१०५५) वर्ष पीछे और विक्रमादित्यसें (५८५) वर्ष पीछे यकनी साधवीका धर्मपुत्र श्रीहरिनद्र सूरि स्वर्गवास हूए, तथा (१११५) वर्षपीछे श्रीजिननद्रगणि युगप्रधान हूआ. और यह जिननद्रीय ध्यानशतकका कर्त्ता होनेसें और हरिनद्रसूरिके टीका करनेसें दूसरा जिननद्र है, यह कथन पट्टावलिमें है, परंतु श्रीजिननद्रगणिक्षमाश्रमणकी आयु (१०४) वर्षकी थी, इस वास्ते जे कर हरिनद्रसूरिके वखतमें जीते होवे तोनी विरोध नहीं.

२८ श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविबुधप्रनसूरि हूआ, २९) श्रीविबुधप्रनसूरिके पाट ऊपर श्रीजयानंदसूरि हूआ, ३०) श्रीजयानंदसूरिके पा

ट ऊपर श्रीरविप्रभसूरि हूआ, सो महावीरसें पीछें (११७०) वर्ष और विक्रमसंवत्से (७००) वर्ष पीछें नमोल नगरमें श्रीनेमिनाथका प्रासाद (मंदिरकी) प्रतिष्ठा करी तथा श्रीवीरात् (११९०) वर्ष पीछें उमास्वाति युगप्रधान हूआ, ३१ श्रीरविप्रभसूरिके पाट ऊपर श्रीयशोदेव सूरि बैठे, य हां श्रीमहावीरसें (१२७२) वर्ष पीछें और विक्रम संवतसें (८०२) के सालमें अणहल पुर पट्टन वनराज राजेने वसाया वनराज जैनी रा जा था, तथा श्रीवीरात् (१२७०) और विक्रमादित्यके संवत् ८००) के सालमें भाद्रपद शुक्ल तीजके दिन बप्प भट्ट आचार्यका जन्म हूआ, जिस ने गवालियरके आम नाम राजाकों जैनी बनाया. इनका विशेष चरित्र प्रबंधचिंतामणि ग्रंथसे जान लेनां.

३२ श्रीयशोदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीप्रद्युम्नसूरि हूआ, ३३) श्रीप्रद्युम्न सूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव, सूरि उपधानवाच्यग्रंथका कर्त्ता हूआ, ३४) श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविमलचंद्र सूरि हूआ, ३५) श्रीविमलचंद्र सूरिके पाट ऊपर श्रीउद्योतनसूरि हूआ, सो उद्योतनसूरि अर्बुदाचल (आबू)के पहाड ऊपर यात्रा करणे आये थे, वहां टेली गामके पास वडी वडवृक्षकी छायामें बैठोने अपने पाटकी वृद्धि वास्ते अछा मुहूर्त देख करके श्रीमहावीरसें (१४६४) वर्ष और विक्रमसें (९९४) वर्ष पीछें अपने पाट ऊपर श्रीसर्वदेवप्रमुख आठ आचार्य स्थापे कोइ एकले सर्वदेव सूरिकोंही कहते है, वडे वडके हेठ सूरि पदवी देनेंसें तहांसे वन वासी गछका पांचमा नाम वडगछ हूआ, " प्रधानशिष्यसंतत्या, ज्ञानादि गुणैः प्रधानचरितैश्चवृद्धत्वा द्बृहद्गछइत्यपि "

३६) श्रीउद्योतनसूरिके पाट ऊपर श्रीसर्वदेवसूरि हूए, यहां कोइक त श्रीप्रद्युम्नसूरि और उपधान ग्रंथका कर्त्ता श्रीमानदेवसूरि इन दोनोंक पट्टधर नही मानते है, तिनके अभिप्रायसें सर्वदेवसूरि चौत्तीसमें पाट हु आ, सो सर्वदेवसूरि श्रीगौतमस्वामीकी तरे सुशिष्य लब्धिमान विक्रमसंव तसें (१०१०) वर्ष पीछें रामसैन्य पुरमें श्रीऋषभचैत्य तथा चंद्रप्रभचैत्यकी प्रतिष्ठा करी, तथा चंद्रावतीमें कुंकणमंत्रिकों प्रतिबोधके दीक्षा दीनी, ति सनेही चंद्रावतीमें जैनमंदिर बनवाया था, तथा विक्रमसें (१०२९) वर्ष पीछें धनपाल पंडितने देशी नाम माला बनाइ तथा विक्रमसे (१०९६)

वर्ष पीछें श्रीउत्तराध्ययनकी टीका करने वाला थिरापद्रीयगच्छमें वादी वेताल श्री शांति सूरि हूये.

३७ श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री देवसूरिके रूपश्री असा राजानें विरुद दीया, (३८) श्री देवसूरिके पाट ऊपर फिर श्री सर्व देवसूरिनामा हूये जिसने यशोभद्र नेमिचंद्रादि आठ आचार्योंकों आचार्य पदवी दीनी, तथा श्री महावीरसें(१४७६)वर्ष पीछें तक्षिलाका नाम गजनी रक्का गया, (३९) श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री यशोभद्र अरु नेमिचंद्र ये दो गुरु भाइ आचार्य हूये, तथा विक्रमसें (११३५) वर्ष पीछें कोइ कहता है, (११३९) वर्ष पीछें नवांगीवृत्ति करनें वाला श्री अभयदेवसूरि स्वर्ग वास हूये, तथा कूर्चपुरगच्छीय चैत्यवासि जिनेश्वरसूरि शिष्य श्री जिनवल्लभ सूरिनें चित्रकूटमें श्री महावीरके षट् कल्याणक प्ररूपे

४० श्री यशोभद्रसूरि तथा श्री नेमिचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री मुनिचंद्र सूरि हूये, जिनोंने जावज्जीव एकसौवीर पाणी पीना रक्का, और सर्व विगयका त्याग करा. तथा जिनोंने श्रीहरिभद्रसूरिकृत अनेकांत जयपताकादि अनेक ग्रंथोंकी पंजिका करी. उपदेशपदकी वृत्ति, योगबिंदुकी वृत्ति, इत्यादिकोंके करनेसें तार्किक शिरोमणि जगत्में प्रसिद्ध हूआ, और यह आचार्य बडा त्यागी निस्पृह हूआ. यहां विक्रम राजासे (११५९) वर्ष पीछें चंद्रप्रभसें पौर्णिमीयक मतोत्पत्ति हुइ तिस चंद्रप्रभके प्रतिबोधने वास्ते श्री मुनिचंद्रसूरिजीने पाक्षिक सप्तति का करी, है. तथा श्री मुनिचंद्रसूरिका शिष्य श्री अजितदेव सूरि वादी अरु श्री देवसूरि प्रमुख हूये तहां वादी श्री अजितदेव सूरिजीनें अणहल्ल पुरपाटणमे श्रीजयसिंह देवराजाकी सनामें अनेक विद्वज्जन संयुक्त चोराशीवाद वादियोंसें जीते, दिगंबरमतका चक्रवर्त्ती कुमुदचंद्र आचार्यकों जिनोंने वादमें जीता, और दिगंबरोंका पट्टनमें प्रवेश करना बंद कराया, सो आज तक प्रसिद्ध है. तथा विक्रमसें (१२०४) वर्ष पीछें फलवर्द्धिग्राममें चैत्यबिंबकी प्रतिष्ठा करी, सो तीर्थ आजभी प्रसिद्ध है. तथा आरासणेमें श्री नेमिनाथकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंने (८४०००) चोरासी हजार श्लोक प्रमाण स्याद्वादरत्नाकर नामा ग्रंथ बनाया, तथा जिनोंसे बडे नामावर चौवीश आचार्योंकी शाखा हूइ, इनोंका जन्म संवत् (११३४) में हूआ, (११५२) मे दीक्षा लीनी, (११७४) में सूरिपद

मिला, (१२३०) की श्रावणकृष्णसप्तमी गुरुवारें स्वर्गकों प्राप्त हूये, तिनोंके समयमें श्री देवचंद्रसूरिका शिष्य तीन क्रोड ग्रंथका कर्त्ता, कलिकालमें सर्वज्ञ बिरुदका धारक, पाटणके राजा कुमारपालका प्रतिबोधक, सवा लक्ष श्लोक प्रमाण पंचांग व्याकरणका कर्त्ता, श्री हेमचंद्रसूरि विद्या समुद्र हूआ, तिनका विक्रमसंवत् (११४५) में जन्म (११५०) में दीक्षा (११६६) में सूरिपद अरु (१२२९) में स्वर्गवास हूआ, इनोंका संपूर्ण प्रबंध देखनां होवे, तदा श्री प्रबंध चिंतामणि तथा कुमारपाल चरित्रसें देख लेनां. ४१ श्री मुनिचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री अजितदेव सूरि हूये, तिनोंके समयमें संवत् (१२०४) में खरतरोत्पत्ति, संवत् (१२१३) वर्षे आंचलिकमतोत्पत्ति, संवत् (१२३६) वर्षे सार्द्धपौर्णिमीयक मतोत्पत्ति, संवत् (१२५०) वर्षे आगमिक मतोत्पत्ति, हूइ, तथा श्री वीरनिर्वाणसें (१६९२) वर्षे वाग्भट मंत्रीने शत्रुंजयका चौदहमां उद्धार कराया, साढे तीन क्रोड रूपक लगाया.

४२ श्री अजितदेव सूरिपट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये, जिनोंनें विवेकमंजरी वृत्ति करी, जिनोका वडा शिष्य श्री सोमप्रभ सूरि शतार्थितया अर्थात् जिनोके बनाये एकेक श्लोकोंके सौ सौ तरेंके अर्थ निकलें और दूसरा मणिरत्न सूरिथा, (४३) श्री विजयसिंह सूरिपट्टे श्री सोमप्रभ सूरि और मणिरत्नसूरि हूये. ४४ श्री सोमप्रभ तथा श्री मणिरत्न सूरिके पाट ऊपर श्री जगचंद्र सूरि हूये, जिनोंनें अपणें गच्छकों शिथिल देखकें और गुरुकी आज्ञासें वैराग्य रसका समुद्र चैत्रवालगच्छीय श्री देवभद्र उपाध्यायके सहायसें क्रिया उद्धार कीया, और हीरलाजगचंद सूरि बिरुद पाया, क्योंकि जिनोंनें चितोडके राजाकी राजधानी अघाट अर्थात् (अहडमें) बत्तीस दिगंबराचार्योंके साथ वाद करता हूआ, हीरेकी तरें अभेद्य रहा, तब राजाने हीरलाजगचंद्र सूरि ऐसा बिरुद दीया तथा जिनोने यावज्जीव आचाम्लतपका अभिग्रह करा तब बारा वर्ष तप करता हूआ तब चितोडके रानाने तपा बिरुद दीया संवत् (१२८५) के वर्षमें वडगच्छका नाम तप गच्छ हूआ, यह छठा नाम हूआ १ निर्ग्रंथ, २ कोटिक, ३ चंद्र, ४ वनवासी, ५ वडगच्छ, ६ तपागच्छ, इन छहो नामोंके प्रवृत्त होनेके है आचार्य हेतुरूप हूये हैं, तिसका नाम अनुक्रमसे लिखते

हैं:- १ श्री सुधर्मस्वामी, २ सुस्थित सूरि, ३ श्रीचंद्र सूरि, ४ सामंतभद्र सूरि, ५ श्रीसर्वदेव सूरि, ६ श्रीजगच्चंद्र सूरि.

४५ श्री जगचंद्र सूरि पट्टे श्री देवेंद्र सूरि हूये, सो मालवेकी उज्जयनी नगरीमें जिनचंद्र नामा वडे शेठका वीरधवल नामा पुत्र तिसके विवाह निमित्त महोत्सव हो रहा था, तब वीरधवल कुमारकों प्रतिबोध करकें संवत् (१३०२) वर्षमें दीक्षा दीनी, तिस पीछें तिसके भाइकोंभी दीक्षा देकर चिरकाल तक मालव देशमें विचरे, तिस पीछें गुर्जर देशमें देवेंद्र सूरि श्री स्तंभ तीर्थमें आये, तहां पहिलां श्री विजयचंद्र सूरि गीतार्थोंकों पृथक् पृथक् वस्त्रके पोटले देता है, और नित्य विगय खानेकी आज्ञा देता है, और वस्त्र धोनेकी तथा फल, शाक लेनेकी और निर्वीकृतके प्रत्याख्यानमें विगयगतका लेना कहता है और आर्याका ल्याया आहार साधु खावे, यह आज्ञा देता है, और दिनप्रत्यें द्विविध प्रत्याख्यान और गृहस्थोंके आवर्जिने वास्ते प्रतिक्रमण करणेकी आज्ञा देता है, और संविभागके दिनमें तिसके घरमें गीतार्थ जावे, लेपकी संनिधि रखनी, तत्कालोष्णोदकका ग्रहण करणां इत्यादि काम करनेंसें कितनेक साधु शिथिलाचार्योंकों साथ लेकर सदोष पौषधशालामें रहा

इन विजयचंद्राचार्यकी उत्पत्ति ऐसें है. मंत्री वस्तुपालके घरमें विजयचंद्रनामा दफतरीथा, वो किसी अपराधसें जेहल खानेमें केद हूआ, तब श्री देवभद्र उपाध्यायने दीक्षा देनेकी प्रतिज्ञा करवा कर छुडा दीया, पीछें तिसने दीक्षा लीनी, सो बुद्धिबलसें बहुश्रुत हो गया, तब मंत्री वस्तुपालनें कहाकि ये अभिमानी है, इस वास्ते सूरिपदके योग्य नही है. इस तरें मने करते हूए तोभी श्री जगचंद्र सूरिजीने श्री देवभद्र उपाध्यायके कहनेंसें सूरिपद दे दीया, क्योंकि यह देवेंद्र सूरिका साहायक होवेगा ऐसा जान कर सूरिपद दीया, पीछें वो विजयचंद्र बहुत काल तक श्री देवेंद्र सूरिके साथ विनयवान् शिष्यकी तरें वर्त्तता रहा परंतु जब मालव देशसें श्री देवेंद्र सूरि आये, तब वंदना करनेकोभी नही आया, तब देवेंद्र सूरिजीने कहला भेजा कि एक वस्तिमें तुम बारां वर्ष कैसें रहे? तब विजयचंद्रने कहाकि शांत दांतकों बारां वर्ष एक जगेंमे रहनेसें कुछ दोष नहीं. और देवेंद्र सूरिजी तो अनेक संविग्नसाधु सर्व देवेंद्र सूरिके साथ रहे,

विप्र साधुकें समुदाय साथ उपाश्रयमेंही रहे, तब लोकोंने वडीशालामें रहनेंसें विजयचंद्रसूरिके समुदायका नाम वृद्धपौशालिक रक्खा और देवेंद्र सूरिजीके समुदायका लघुपौशालिक नाम दीया, और स्थंभतीर्थके चौकमें कुमारपालके विहारमें धर्मदेशा नामे मंत्रि वस्तुपालने चारोवेदोंका निर्णय दायक स्वसमय परसमयके जानकार श्रीदेवेंद्रसूरिजीकों वंदना देकें बहुमान दीया, और श्रीदेवेंद्रसूरिजी विजयचंद्रकी उपेक्षा करकें विचरते हूए क्रमसें पाल्हणपुरमें आये, तहां चौरासी इभ्यसेठ अनेक पुरुषोंकें साथ परिवरे, सुखासन उपर बैठे हूए शास्त्रके बडे श्रोता व्याख्यान सुनने आते थे, और पालनपुरके विहारमें रोजकी रोज एक मूढक प्रमाण अक्षत और सोला मण सोपारी दर्शन करनेवाले श्रावकोंकि चढाइ चढती होती थी, इत्यादि बडे धर्मी लोकोंनें गुरुकों विनति करी कि हे भगवन्! यहां आप किसीकों आचार्य पदवी देओ हमारा मनोरथ पूरो तब गुरुने उचित जानके पाल्हन पुरमें विक्रम संवत् १३२३) में वर्ष श्रीविद्यानंद सूरि नाम देकें वीरधवलकों सूरिपद दीनां, और तिसके अनुज भीमसिंहकों धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकी पदवी दीनी, तिस अवसरमें प्रल्हादनविहारके सौवर्ण कपिशीर्ष मंडपसें कुंकुमकी वर्षा हूइ, तब सर्व लोकोंकों बडा आश्चर्य हूआ.– श्री विद्यानंद सूरिजीने विद्यानंद नाम नवीन व्याकरण बनाया यडुक्तं ॥ विद्यानंदाभिधं येन, कृतं व्याकरणं नव ॥ भाति सर्वोत्तमं स्वल्प, सूत्रं बव्हर्थसंग्रह ॥ १ ॥ पीछें श्री देवेंद्र सूरिजी फेर मालवेकों गये श्री देवेंद्र सूरिजीके करे हूये ग्रंथोंका नाम लिखते हैं. १ श्राद्धदिनकृत्यसूत्रवृत्ती, २ नव्यकर्मग्रंथपंचकसूत्रवृत्ती, ३ सिद्धपंचाशिकासूत्रवृत्ती, ४ धर्मरत्नवृत्ती, ५ सुदर्शनचरित्र, ६ तीनभाष्य, ७ वृंदारवृत्ती, ८ सिरिउसहवद्धमाण प्रमुख स्तवन, कोइ कहते हैं कि श्राद्धदिनकृत्यसूत्रतो चिरंतन आचार्योंका करा है. विक्रम संवत् (१३२७)में वर्ष मालवदेशमें देवेंद्र सूरि स्वर्गवास हूये दैवयोगसें विद्यापुरमें तेरह दिनों पीछें श्रीविद्यानंद सूरिजी स्वर्गवास हूये,तब छै मास पीछें सगोत्र सूरिने श्रीविद्यानंद सूरिके भाइ श्री धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकों सूरिपद देके श्री धर्मघोष सूरि नाम दीया.

४६ श्री देवेंद्र सूरिपट्टे श्री धर्मघोष सूरि हूये, जिनोने मंडपाचलमें शा० श्री पृथ्वीधरकों पंचमाणुव्रत लेतेकों ज्ञानसे निषेध करा, क्योंकि

आचार्यनें ज्ञानसें जाना कि यह पुरुषके व्रत भंग होजावेगा ? इस भयसें निषेध करा, पीछे वो पृथ्वीधर, मंमपाचलके राजाका मंत्री हूआ, और धन करके तो धनद समान हो गया, पीछें तिसने चौरासी जिनमंदिर और सात ज्ञानके पुस्तकोंके भंमारे वनाये और श्री शत्रुंजयमें इकीस धडी प्रमाण सोना खरचकें रूपे मय श्री ऋषभदेवजीका मंदिर वनवाया, कोइ कहते है कि उप्पन धडी सुवर्ण खरचकें इंद्रमाला पहरि तथा धरती नगरमें किसी साधर्मीनें ब्रह्मचारीका वेष देनेंके अवसरमें पृथ्वीधरकों महाधनाढ्य जानकें तिसकी भेट करा, तब पृथ्वीधरने वोही वेष लेकर तिस दिनसें बत्तीस वर्षकी उमरमें ब्रह्मचर्य व्रत धारण करा, तिसके एकही जांजण नाम पुत्र था, जिसने श्री शत्रुंजय, उज्जयंतगिरिके शिखर उपर बारह योजन प्रमाण सुवर्ण रूप्यमय एकही ध्वज चढाइ, जिसने सारंगदेव राजासें कर्पूरका महसूल छुडाया, तथा जिसने मंमपाचलमें बहत्तर हजार (७२०००) रूपक गुरुके प्रवेशके उत्सवमें खरच करे.

तथा श्री धर्मघोष सूरिने देवपत्तनमे शिष्योंके कहनेसें मंत्रमय स्तुति बनाइ तथा देवपत्तनमें जिनोंके स्वध्यानके बलसें नवीनोत्पन्न हूये कपर्दी यक्षनें वज्र स्वामीके महात्मसें पुरानें कपर्दी मिथ्यादृष्टिकों निकालाथा.इनोंने उसको प्रतिबोधकें श्री जैनाबिंबोंका अधिष्ठाता करा, तथा जिनो आगें समुद्रके अधिष्ठाताने अपने समुद्रके तरंगोसें रत्न ढोकन करे, एकदा समय किसी दुष्टस्त्रीनें कार्मण संयुक्त वडे बनाकर साधुओंको दीए पर श्री धर्मघोष सूरिजीने वे वडे धरती उपर गिराए, अरु उस स्त्रीकों मंत्रसें पकडा पीछें जब बहु दुःखी हूइ. तब दया करके छोड दीनी, तथा विद्यापुरमे पहातरीयोंकी स्त्रीयोंनें धर्मघोषजीके व्याख्यान रसके भंग करने वास्ते कंठमे मंत्रसें केश गुच्छक कर दीया पीछे श्री धर्मघोष सूरिजीने जब जाना, तब तिन स्त्रीयोंको स्तंभन कर दीया, तब तिन स्त्रीयोनें विनति करी के आज पीछे हम तुमारे गछकों उपद्रव न करेंगे, तब गुरुजीने श्री संघके बहुत आग्रहसें छोडी, तथा उज्जयनीमें एक योगी जैनके साधुओंको रहने नहीं देता था जब श्री धर्मघोष सूरि तहां आये तब उस योगीनें साधुओंकों कहा कि अब तुम इहां आये हो सो तकडे हो कर रहना तब साधुओंने कहा हमभी देखेंगे कि तू क्या करेगा? पीछे उसने साधु

ओंकों दांत दिखलाये, तब साधुओंनें कफोणि (कूहनी) दिखलाइ पीछे साधुओंने जा कर यह सर्व समाचार अपने गुरुकों कहा, वंहा योगी नेंभी धर्मशालामें विद्याके बलसें बहुत चूहे बनादीये, तब साधु बहुत डरे पीछे गुरुजीनें घडेका मुख, वस्त्रसे ढांकके ऐसा मंत्र जपा कि जिस्सें योगी आराटि करता हूआ आकें पाऊमें पडा, और अपने अपराधका क्षमापना मांगा,- तथा किसी नगरमें शाकनीयोंके नयसें मंत्रके कपाट दीये जाते थे, एक दिन विना मंत्रे कपाट दीये गये, तब रात्रिकों शाक नीयोंनें उपद्रव करा, गुरुने उनकों विद्यासें स्तंभित करा, एकदा रात्रिमें गुरुकों सर्पके काटनेसें जब जहेर चढा, तब गुरुने संघकों विधुर देखकें कहा कि दरवाजेमें किसी पुरुषके मस्तकोपरि काष्ठकी भरीमें विषापहार एक वेलडी आवेगी वो वेलडी घसके मंकमें देदेनी उस्सें जहर उतर जायगा, संघनें तैसेंही करा गुरुराजी हो गये, पीछे तिस दिनसे जावज्जीव छे विग यका त्याग करा, और सदा जुवारकी रोटी नीरस जानके खाते रहे," श्री धर्मघोष सूरिजीके करे ये ग्रंथहै.— सो कहते हैः— १ संघाचारभाष्यवृत्ती, २ सुअधम्मेतिस्तव, ३ कायस्थिति भवस्थिति, ४ चौवीश तीर्थकरोंके चौ वीश स्तवन, तथा ५ स्रस्ताशर्मेत्यादिस्तोत्रं, ६ देवेंद्रैरनिशंइति श्लेषस्तोत्रं, ७ यूयं युवात्वमिति श्लेषस्तुतीयां, ८ जयवृषभेत्यादि स्तुति, यह जयवृषभे त्यादि स्तुति करणेका यह निमित्त थाकिः—एक मंत्रीने आठ यमक काव्य कह करके कहा, कि ऐसें काव्य अब कोइ नही बना सक्ता तब गरुने कहाकि ना स्ति नही तब तिसने कहा तो हमकों कर दिखलाउ तब गुरुजीनें जयवृषभे त्यादि छे स्तुति एक रात्रिमें बना कर भीतोंपर लिखकें दिखाइ तब तिसने बडा चमत्कार पाया, गुरुजीने तिसकों प्रतिबोधके जैनी करा, ये श्री धर्मघो ष सूरि विक्रम संवत् (१३५७) में स्वर्ग गये.

४७ श्री धर्मघोष सूरि पट्टे श्री सोमप्रभ सूरि हूये, जिनोंनें नमि ऊण भणइएवमित्यादि आराधना सूत्र करा, तिनका संवत् (१३१०) में जन्म, (१३२१) में दीक्षा, (१३३२) में सूरिपद, जिनोके इग्यारह अंग सूत्रार्थ कंठ थे, तथा "गुरुभिर्गीयमानायां मंत्रपुस्तकायां चलतचरित्रं मंत्रपुस्तिकां च " ऐसा कह कर तिसमंत्र पुस्तकाको ग्रहण करा, क्योंकि अपर कोइ योग्य नहीं था यह श्री सोमप्रभ सूरिने जलकुंकणदेशमें अ

कायके विराधनाके नयसें और मरुदेशमें शुद्धजलकी दुर्लभतासें साधुओं का विहार निषेध करा तथा नीमपल्लीमें दोकार्त्तिक मास हूये तब सोमप्रभजी प्रथम कार्त्तिककी एकादशीकों विहार कर गए क्योंकि उनोंनें जानाकि नीमपल्लीका नंग होगा अरु नंग हूए पीछें जो रहे वो, दुखी हूए, सोमप्रभ सूरिके करे ग्रथ जितकल्पसूत्र, यत्राखिलेत्यादि स्तुतीयां, जितेन येनेतिस्तुतीयां, श्री मद्धर्म्मेत्यादि, तिनके करे बडे शिष्य विमलप्रभ सूरि, श्रीपरमानंद सूरि, श्री पद्मतिलक सूरि, अरु श्री सोमविमल सूरि थे, जिस दिन पूर्वोक्त श्री धर्मघोष सूरि, देवगत हूए तिस दिनही (१३५७) वर्षे श्री सोमप्रभ सूरिजीने श्री विमलप्रभ सूरिकों सूरिपद दीया क्योंकि तिनोंने अपना स्वल्पही आयु जानां श्रीसोमप्रभजी (१३७३) वर्षे देवलोक गए

४८ श्रीसोमप्रभसूरि पट्टे श्रीसोमतिलकसूरि हूए, तिनोका (१३५५) में वर्षे माघे जन्म, (१३६९) वर्षे दीक्षा, (१३७३) वर्षे सूरिपदं, (१४२४) वर्षे स्वर्गगमनं, सर्वायु ६९) वर्षकी जाननी, तिनके करे ग्रंथ लखते हैः– १ बृहन्नव्यक्षेत्रसमास सूत्र, सत्तरिसयठाणं, यत्राखिलजयवृषनसस्ताशमे० प्रमुखकी वृत्ति, श्रीतीर्थराज०, चतुरर्थीस्तुतित वृत्ति, शुनभावानत० श्रीमद्वीरस्तुवेदित्यादिकमलबंधस्तवः शिवशिरसि श्रीनाभिसंनव० श्रीशैवेय० इत्यादि स्तवन.श्रीसोमतिलकसूरिक्रम करकें १ श्रीपद्मतिलकसूरि, २ श्रीचंद्रशेखरसूरि, ३ जयानंदसूरि, ४ श्रीदेवसुंदरसूरियोंकों सूरि पद दीया,तिनमें श्रीपद्मतिलक सूरि, सोमतिलक सूरिसें पर्यायमें वडे थे, सो एक वर्ष जीते रहे, और वडे वैरागी थे तथा श्रीचंद्रशेखर सूरि,विक्रम संवत् (१३७३)में जन्मे (१३८५)में दीक्षा, (१३९३) में सूरिपद, इनके करे ग्रंथः– १ उषितनोजनकथा,यवराजर्षिकथा, श्रीमत्स्तंनकहारबंधादिस्तवन है, जिनोके मंत्रों सो मंत्री रजहो तिनसेंनी उपद्रव करनेवाले गृह, हरिका, दुर्द्धर मृगराज, श्वान, शुरिति दूर हो जाते थे तथा श्रीजयानंदसूरिका विक्रम सवत् (१३८०) वर्षे जन्म, (१३९२) वर्षे आषाढ सुदिसातम सुक्रवारकेदिन धारानगरीमें व्रतग्रहण, (१४२०) मे सूरिपद (१४४१) में स्वर्ग गये तिनके करे ग्रंथ १ श्री स्थूलभद्र चरित्रं, २ देवाः प्रनोयं प्रमुख स्तवन है

४९ श्री सोमतिलक सूरि पट्टे श्री देवसुंदर सूरि हूए, तिनका (१३९६) वर्षे जन्म, (१४०४) वर्षे दीक्षा (१४२०) वर्षे अणहलपत्तनमें सूरिपदं,

ने वाला संवत् (१५३३) में नाणा नामा प्रथम साधु हूआ, इस मतकी उत्पत्ति ऐसें हूइ है, सो लिखते हैं:—

गुजरात देशमें अहमदावादमें जातिका दशाश्रीमालि लुंका नामें लिखारी वसता था. सो ज्ञानजी जतीके उपाश्रयमें पुस्तक लिख कर उसकी आमदनीसें गुजारा करताथा, एक दिन एक पुस्तककों लिख रहा था, तिसमेंसें सात पत्रे विना लिखे छोड दीये, जब पुस्तक वालेनें पुस्तक देखा तब पूछाकि इस पुस्तकके सात पत्रे क्यों छोड दीये? तब लुंका उसके साथ लडने लगा तिस वखत लोकोंने मार पीटके उपाश्रयसें बाहिर निकाल दीया, और नगरमें कह दीयाकि इस्सें कोइ जनभी पुस्तक न लिखावे, तब लुंका लाचार और क्रोधमें भरकर अहमदाबादसें छेतालीस कोसके लग भग नींबडी गाममें चला गया, उस गाममें लुकेकी बिरादरीका एक लखमसी नामा वणिया राजमें कारभारी था, तिसके आगें बहुत रोया, पीटा, जब तिसने पूछा क्या हूआ? तब लुंकेने कहाकि मै भगवान्का सच्चा मत कहने लगा था, तब तपगछके श्रावकोंने मुझे पीटा, अब मैं तेरे पास आया हूं, जेकर तूं मैरा मददकार बने, तो मैं सच्चामत प्रगट करुं, तब तिस लखमसीने कहाकि नींबडीके राज्यमें तूं बेशक अपणे सच्चे मतको प्रगट कर, मै तेरा मददगार हूं, खाने पीनेकोंभी देउंगा, और तेरा शास्त्रभी सुनुंगा, तब लुंकातो श्रीमहावीरके साधुओंकी और श्रीजिनप्रतिमाकी उथापना करने लगा, अरु कहने लगा कि यह साधु नहीं है, भ्रष्टाचारी है निर्दयी है, उलटाज्ञान सुनाते हैं, इत्यादि जो आपके मनमानी सो निंदा करी, और शास्त्रोमेंसेंभी जिन जिन शास्त्रोमें जिनप्रतिमाका जिकर नहीं था वो शास्त्रकों सच्चे माने, और जिनोमें थोडासा जिनप्रतिमाका कथन था, तिन पाठोंके अर्थ कुयुक्तिसें औरके और सुनाने लगा, अरु कहने लगा कि एकतीस शास्त्र सच्चे है, तिनमेंभी आवश्यकसूत्रकों तो बिलकुल विगाडके लोकोंने स्वकपोलकल्पित औरका और बना दीया है, क्योंकि श्रीआवश्यकमे बहुत जगें जिनप्रतिमाका अधिकार चलता है, पीछें एक दिन तिस लुकेकों किसीने कहा कि विना जैनदीक्षाके लीए शास्त्र पढनेका तो व्यवहारसूत्रमे निषेध करे है, तो फेर तुम गृहस्थ हो कर शास्त्र क्यों कर पढते हो? तब लुकेने कहा मै व्यवहारसूत्रकोंही सच्चा नहीं मानता हूं? इत्यादि प्ररूपणा

ग्वीश वर्ष तक करी, परंतु लुंकेके उपदेशसें साधु कोइनी न हूआ, जब संवत् (१५३३) का शाल आया तब, एक जाणा नामा वनीयके बेटेनें लुंकेके उपदेशसें वेष पहना, उसकों ऋषिजूणा नाम दीना, तिसका शिष्य संवत् (१५६८) में रूपजी हूआ, तिसका शिष्य संवत् (१५७८) में जी वाजीऋषि हूआ, तिसका शिष्य (१५८७) में वृद्धवरसिंहजी हूए, तिसका शिष्य संवत् (१६०६) में वरसिंहजी हूआ, तिसका शिष्य संवत् (१६४९) में जसवंतजी हूआ, इस लुंपक मतके तीन् नाम हूए, १ गुजराती, २ नागोरी, ३ उतराधो, ॥ इति लुंपक मतोत्पति ॥

५३ श्रीरत्नशेखरसूरि पट्टे श्रीलक्ष्मीसागरसूरि हूए, तिनका (१४६४) में वर्ष जन्म (१४७०) में वर्ष दीक्षा, (१५०१) वर्ष वाचक पद, (१५०८) मे सूरिपद, ५४ श्रीलक्ष्मीसागरसूरिपट्टे श्रीसुमतिसाधुसूरि हूआ, ५५ श्रीसुमतिसाधुसूरिपट्टे श्रीहेमविमलसूरि हूए, शिथिलसाधुओंके बीचमेंनी रहे, तोनी जिनोंनें साधुका आचार उल्लंघन न करा, तब कितनेक दिन पीछे बहुत साधुओंनें शिथिलपणा छोडा, तथा ऋषिहरगिरि, ऋषिश्रीपति, ऋषिगणपति, प्रमुख बहुत जनोंने लुंपक मत छोड के श्रीहेमविमलसूरिके पास दीक्षा लीनी, तिस अवसरमे सवत् (१५६२) मे कडुये नामक एक वणियेने कडुयामत निकाला और तीन थूइ मानी अरु इस कालमें साधु कोइनी नहीं दीखता, ऐसा पंथ निकाला, परतु इसग्रंथके लिखनेवालेके समयमें ये मत नहीं है,व्यवछेद हो गया है,तथा सवत् १५७०) में लुंका मतसें निकलकें बीजा नामा वेषधरने बीजामत चलाया, जिसकों लोक विजय गछ कहते है तथा संवत् (१५७२) वर्ष नागपुरीया तपगछसें निकलके उपाध्याय पार्श्वचंद्रने अपने नामका मत अर्थात् पासचंदीया मत चलाया.

५६ श्रीहेमविमलसूरि पट्टे श्रीसुविहितमुनि चूडामणि कुमत तमके मथनेकों सूर्यसमान श्रीआनंदविमलसूरि हूआ तिसका विक्रम संवत् (१५४७) में जन्म (१५५२) में दीक्षा (१५७०) मे सूरि पद तथा आनंदविमलसूरिके साधु शिथिलाचारीनी थे, तोनी तिनके वैरागरगका नग नहीं हूआ और जब उनोंने देखाकि जिनप्रतिमाके निषेधने वाले बहुत बढे और शुद्ध साधु तुछमात्र रह गए अरु उत्सूत्र प्ररूपण रूप जलमे नव्यजन वह चले तब मनमे दयादृष्टि लाके और अपने गुरुकी आज्ञासे

कितनेक संविग्न साधुओंकों साथ ले कर संवत् (१५८२) में शिथिलाचार परिहार रूप क्रिया उद्धार करा,देशमें विचरके बहुत भव्यजनोंका उद्धार करा, और अनेक इभ्योंके पुत्रोंकों धन कुटुंबका मोह त्याग कराके दीक्षा दीनी, और सोरठके राजा पासों खत लिखवाया कि जो जीते सो मेरे देशमें रहे अरु जो हारें सो निकाला जावे,तूणसिंह नामा श्रावक जिसकों बादशाहनें बैठने वास्ते पालकी दीनी हूइथी, और बादशाहनें जिसकों मलिक श्रीनगद लबिरुद दीयाथा ऐसा तूणसिंह श्रावकने गुरुकों बिनति करी कि साधुओंकों सोरठदेशमें विहार कराउ,तब श्रीगुरुजीने गणि जगर्षिकों साधुओंके साथ सोरठदेशमें विहार कराया, तथा जेसलमेरादि मरवाड देशमें जल डुर्लभ मिलता है, इस वास्ते पूर्वे श्रीसोमप्रभ सूरिनें साधुओंकों मने कर दीया था कि मारवाडमें न जानां, सो विहार कुमतिव्याप्त न हो जावें, तिन जीवोंकी अनुकंपा कर कें और लाभ जान कर साधुओंकों आज्ञा दीनी कि तुम मारवाडमें जा कर कुमतिमतकों खंमन करो, तब लघु वयमें शील करकें श्रीस्थुलिभद्रसमान वैराग्यनिधि निस्पृहावधि जावज्जीव जघन्यसें जघन्यभी षष्ठ अर्थात् दोदिनका उपवास करणा अरु पारणेके दिन आचाम्ल करणां, ऐसे अभिग्रहधारी महोपाध्यायश्रीविद्यासागरगणिनें मारवाडदेशमे विहार करा, तिनोंने जेसलमेरादिकोंमें खरतरांकों और मेवात देशमे बीजामतियोंकों और मोरवी आदिकमे लुंकामतीयोंकों प्रबोधके श्रावक बनाए सो आजतक प्रसिद्ध है, तथा पार्श्वचंद्रके ब्युदग्राहे वीरमगाममे पार्श्वचंद्रके साथ वाद करकें पार्श्वचंद्रकों निरुत्तर करा, तब बहुत जिनोंनें जैनधर्म अंगीकार करा, ऐसेही मालवेमे अरु उज्जयनी प्रमुख देशोंमें फिरकें धर्मकी प्रवृत्ति करी, यह श्रीविद्यासागर उपाध्यायजीने तपगच्छकी फिरवृद्धि करी, और क्रियाउद्धार करा पीछे श्रीआनंदविमलसूरिजी चौदह वर्ष तक जघन्यसेंभी नियत तप वर्जके वेलेसें कम तप नहीं करा, तथा जिनोंनें चतुर्थ, षष्ठ तप करकें वीश स्थानककी आराधना करी,यह संवत् (१५९६) वर्षे नवदिनका अनशन करिके स्वर्ग गए.

५७ श्रीआनंदविमलसूरि पट्टे श्रीविजयदानसूरि हूआ, जिनोंनें स्तंभ तीर्थ, अहमदावादपत्तन, महीशानकगाम, गंधार बंदिरादिमे महा महोत्सव पूर्वक अनेक जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके उपदेससें बादशाह

महमदका मान्य मंत्री गलराजा दूसरा नाम मलिक श्रीनगदलनें श्रीशत्रुंज यका वडा संघ निकाला. तथा जिनोंके उपदेशसें गांधार नगरके श्रावक रामजीने तथा अहमदावादी साह कुंअरजी प्रमुखोंने श्रीशत्रुंजय चौमुख अष्टापदादि जिनमंदिर बनवाए, गिरनार ऊपर जीर्ण प्रासादोद्धार करा तथा जिनके सूर्यकी तरें उदय होनेंसें वादी रूपीये तारे अदृश्य हो गये, श्रीविजयदान सूरि सर्व सिद्धांतका पारंगामी, अखंमित प्रताप वाला तथा अप्रमत्त पणे रूप करके श्रीगौतममुनिवत् था,तथा गूर्जर मालवक, कच्छ, मरुस्थली, कुंकणादि देशोमें अप्रतिबद्ध विहार करता हूआ, महातपस्वी, जावजीव एक घृतविगय विना सर्व विगयका त्यागीथा,जिनोंने एकादशाग सूत्र अनेक वार शुद्ध करे, और जिनोंने बहुत जीवोंकों धर्मप्राप्त करा, तिनका संवत् (१५५३) वर्षे जामलामें जन्म, (१५६२) वर्षे दीक्षा (१५८७) में, सूरिपदं (१६२२) वर्षे, वटपल्लीमें अनशनें स्वर्ग प्राप्त हूआ.

५८ श्री विजयदान सूरि पट्टे श्री हीरविजय सूरि हूआ. जिनका सं वत (१५८३) वर्षे मार्गशीर्षशुदि नवमी दिनें प्रल्हादन पुरका वासी ऊके जाती सा०कूंरा नार्या नाथी ग्रहे जन्म हूआ, (१५९६) वर्षे का र्त्तिकवदि दूज दिने पत्तन नगरें दीक्षा,(१६०७) वर्षे नारदपुरी मे श्रीऋषभ देवके मंदिरमें पंमित पदं, (१६०८) माघशुक्लपंचमीदिने नारदपुरीमें श्री वरकाणक पार्श्वनाथसनाथे नेमिजिन प्रसादें वाचकपदं, (१६१०) वर्षे सिरोही नगरे सूरिपदं,तथा जिनका सौभाग्य वैराग्य निःस्पृहतादि गुणोंकों वचन गोचर करनेंकों वृहस्पतिभी चतुर नहींथा तथा श्री स्तंनतीर्थमें जि नोंके रहनेसें श्रद्धावानोंने एक क्रोड रूपक प्रजावनादि धर्मकृत्योमें खरच करा, तथा जिनोंके चरण विन्यासके प्रतिपदमें दो मोहर अरु एक रूपक मोचन करा,और जिनोंके आगें श्रद्धालुओंने मोतीयोंसें साथीये करे,तथा जिनोने सिरोही नगरमें श्री कुंथुनाथ बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी तथा नारदपु रमें अनेक सहस्राबिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोके विहारादिमें युगप्र धान अतिशय देखनेमे आती थी, तथा अहमदावादमें लुंके मतका पूज्य ऋषि मेघजी नामा था तिसने अपने लुंके मतकों दुर्गतिका हेतु जान कर रजकी तरें आचार्य पद छोडके पच्चीश यतियोंके साथ सकल राजा धिराज वादशाह श्रीअकब्बर राजाकी आज्ञा पूर्वक वादशाही वाजंत्र व

जते हूये. महामहोत्सवसें श्री हीरविजय सूरिजीके पास दीक्षा लीनी, ऐसा किसी आचार्यके समयमे नहीं हूआ था, तथा जिनोंके उपदेशसें अकब्बर बादशाहनें अपने सर्व राज्यमें एक वर्ष में छे महिने तक जीव हिंसा बंद करी, जिजय छोडाया, इसका विशेष स्वरूप देखनां होवे. तो हीरसौभाग्यकाव्यमेसें देख लेनां

और संक्षेपसें यहांभी लिखते हैंः– एकदा कदाचित् प्रधान पुरुषोंके मुखसें अकब्बरशाहने श्री हीरविजय सूरिके निरुपम शम दम संवेग वैराग्यादि गुणो सुणके बादशाह श्री अकब्बरने अपनें नामांकित फुरमान भेज के बहुमान पुरस्सर गंधार बंदिरसें आगरेके पास फतेपुर नगरमे दर्शन करनेकों बुलाया, तब गुरुजी अनेक भव्यजीवोंकों उपदेश देते हूये, क्रमसें विहार करते हूये विक्रम संवत् (१६३९) वर्षे ज्येष्ठवदि त्रयोदशी दिने तहां आए तिसमें बादशाहका शिरोमणी प्रधान अबुल फजल नाम द्वारा उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि प्रमुख अनेक मुनियोंसें परिवरे हूए बादशाहकों मिले तिस अवसरमें बादशाहने बडी खातरसें अपनी सभामें बैठाए, और परमेश्वरका स्वरूप गुरुका स्वरूप अरु धर्मका स्वरूप पूछा, और परमेश्वर कैसे प्राप्त होवे ? इत्यादि धर्मविचार पूछा, तब श्री गुरुने मधुर वाणीसें कहा कि जिसमे अठारह दूषण न होवें, सो परमेश्वर है, तथा पंचमहाव्रतादि धारक गुरु है, और आत्माका शुद्धस्वभाव जो ज्ञान दर्शन, चारित्ररूप है, सो धर्म है तब अकब्बरशाहने ऐसा धर्मोपदेश सुनके आगरासें अजमेर तक प्रतिकोश कूवा मनार सहित बनाए, और जीवहिंसा छोडकें दयावान् हो गया, तब अकब्बरशाह अतीव तुष्टमान होके कहनें लगा कि हे प्रभु ! आप पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, देहादिकभी ममत्व रहित हो, इस वास्ते आपकों सोना, चांदी, देनां, तो ठीक नहीं, परंतु मेरे मकानमे जैनमतके पुराने पुस्तक बहुत है, सो आप लीजीये, और मेरे ऊपर अनुग्रह करीयें जब बादशाहका बहुत आग्रह देखा. तब श्री गुरुजीने सर्व पुस्तक ले के श्री आगरा नगरके ज्ञानभंडारमे स्थापन कर दीए, तब एक प्रहर तक गुरुजी धर्मगोष्टि करकें बादशाहकी आज्ञा लेके बडे आडंबरसें उपाश्रयमे आए, उस वखतमें लोकोंमे जैनमतकी उन्नति स्फीती हूइ, तिस वर्षमे आगरे नगरमें चोमासा करके सोरीपुर न

गरमें श्री नेमिजिनकी यात्रा वास्ते गये, तहां श्री ऋषभदेव और नेमिना थजीकी बडी और बहुत पुरानी दोनो प्रतिमा और उस तत्कालके ब नाए श्री नेमिनाथके चरणोंकी प्रतिष्ठा करी, फिर आगरेमें शा० मानसिंह कल्याणमल्लका कराया (बनवाया) श्री चिंतामणि पार्श्वनाथादि बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, सो आज तक आगरेमें श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रसिद्ध है, पीछे श्री गुरुजी फेर फतेपुर नगरमें गए और अकब्बर बादशाहसें मिले तहा एक प्रहर धर्मगोष्टि धर्मोपदेश करा, तब बादशाह कहने लगा कि:– मैनें आपकों दर्शनके उत्कंठित हो कर दूरदेशसें बुलाए है, और आप हमसें कुछभी नही लेते हो, इस वास्ते आपकोंजो रुचे सो मेरेसें मांगना चाहिये, जिस्सें मेरे मनका मनोरथ सफल होवे, तब सम्यग्वि चार करकें गुरुजीने कहा कि तेरे सर्वराज्यमे पर्यूषणोंके आठ दिनोंमें कोइ जनावर न मारा जाय और बंदिजन छोडे जाय मै यह मागा चाहता हूं, तब बादशाहने गुरुकों निर्लोभी, शांत, दांत, जान करके कहा कि आठ दिन तुमारी तर्फसें और चारदिन मेरी तर्फसें सर्व मिलकर बारहदिन तक अर्थात् भाद्रवावदि दशमीसें ले कर भाद्रवाशुदि छठ तक कोइ जानवर न मारा जायगा, पीछें बादशाहने सोनेके हर्फोंसें लिखवा कर छे फुरमान श्री गुरुजीकों दीए, छे फुरमानकी व्यक्ति ये है'– प्रथम श्री गूर्जरदेशका, दूसरा मालवेदेशका, तीसरा अजमेरदेशका, चौथा दिल्लीफतेपुरके देशका, पांचमा लाहोर मुलतान मंडलका. और छठा श्री गुरुके पास रखनेका पूर्वोक्त पांचोंदेशका साधारण फुरमान पांच, तो तिन तिन देशोंमें भेजके अमारि पटह बजवा दीया, तब तो बादशाहकी आज्ञासें जो नहींभी जा नते थे ऐसे सर्व आर्य अनार्य कुल मंडपमें दयारूपिणी वेलडी विस्तार वान् हो गइ. और बंदिवान जनभी बादशाहने गुरुपाससे उठ कर तत्काल छोड दीए,और एक कोशका कील अर्थात् तलावमे आप जाकर बादशाहने अपने हाथसें नानाजातिके नानादेशवालोंने जो जो जानवर बादशा हकों भेट कर हूए थे, वे सर्व छोड दीए, बादशाहसें गुरुजी अनेकवार मिले और अनेक जिनमंदिर अरु उपाश्रयोंके उपद्रव दूर करे, और जब श्री हीरविजय सूरि अपर देशकों जाने लगे, तब बादशाहसें ऐसा फुर मान लिखवा ले गए, तिसकी नकलमै इस पुस्तकमें लिखता हूं.

जलालुदीन बादशाह.
अकब्बर बादशाह.
गाजीकाफुरमान.

अकब्बरमोहरकी वंशावली.
जलालुदीनअकब्बर बादशाह.
हुमायुन बादशाहका बेटा.
बाबरशाहका चीन बेटा.
उमरशेख मीरजांका बेटा.
सुलतान अबुस इदका बेटा.
सुलतान महम्मदशाहका बेटा.
मीर शाहका बेटा.
अमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा

सूबे मालवा तथा अकब्बराबाद, लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अजमेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा और जो हाल मेरे ताबेके मुलक है तथा आंयदा, मुतसद्दी, स्त्रवा, करोरी तथा जगीरदार इन सबोंकों मालुम रहे, कि जो हमारा पूरा इरादा यह है कि सर्व रइयतका मन राजी रखनां, क्योंकि रइयतका जो मन है सो परमेश्वरकी एक बडी अनामत है, और विशेष करके वृद्ध अवस्थामें मेरा यही इरादा है, कि:— मेरा नला चाहने वाली रइयत सुखी रहे तिस वास्ते हरेक धर्मके लोकोंमेंसें जो अच्छे विचार वाले परमेश्वरकी नक्ति करनेमें अपनी उमर पूरी करते है, तिनकों दूर दूर देशोंसे मैने अपने पास बुलवाये, और तिनकी परीक्षा करके अपनी सोबतमें रखता हूं, और तिनकी बाते सुनके मै बहुत खुश होता हूं, तिस वास्ते हमारे सुननेमें आया है कि श्रीहीरविजय सूरि जैन स्वेतांबरमतका आचार्य गुजरातके बंदरोमें परमेश्वरकी नक्ति करता है, मैने तिनकों अपनें पास बुलवाया, और तिनकी मुलाकात करकें हम बहुत खुश हूए, कितनेक दिन पीछें जब तिनोंने अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तब अरज करी कि जो गरीबपरवरकी मरजीसे अैसा हुकुम होना चाहिये कि— सिद्धाचलजी, गिरनारजी, तारगाजी, केसरीआनाथजी, तथा आबुजीका पहाड, जो गुजरातमें है, तथा राजगृहके पाच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथजी जे बंगालके मुलकमें है, तथा पहाड हेठली सर्व मंदिरोंकी कोठीयो तथा सर्व नक्ति करनेकी जगायोंमें, तथा तीर्थकी जगायोमे जो जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायों सर्व मेरे ताबेके मुलकोंमें जिस विकाने होवे, उन पहाडो तथा मंदिरोंकी आस पास कोइनी आदमी, कोइ जानवरको न मारे, यह अरज

करी अब ये बहुत दूरसें हमारे पास आयें हैं, और इनकी अरज वाजवी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसलमानी महजवसें (मतसें) विरुद्ध मालुम होती है, तोभी परमेश्वरके पिछाननें वाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है, कि:– कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनोंके रेवाज बहाल रक्खे इस वास्ते यह अरज मेरी समझमें सच्ची मालुम हुइ, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेंसें जैनश्वेतांवरी धर्मवालोंकी है, तिस वास्ते इनकी अरज कबुल करी गइकि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारंगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा आबुका पहाड जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो बंगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोंकी जगायों तथा पहाड नीचे तीर्थकी जगायों जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांवरी धर्मकी जगायों होवे, सो हीरविजय जैनश्वेतांवरी आचार्यकों देनेमें आइ है, और इनोंनें अच्छीतरेंसें परमेश्वरकी भक्ति करनी चाहिये.

और एक बात यहभी याद रखनी चाहियें जो कि ये जैनश्वेतांवरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैनें श्रीहीरविजय सूरि आचार्यकों दीनी है, परंतु हकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायों जैन श्वेतांवर धर्मवालोंकीही है, और जहांतक सूर्यसें दिन रोशन रहे, तथा जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैन श्वेतांवरी धर्मके लोकोंमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनकों हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडों उपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा तीर्थकी जगायोंमें जानवर नही मारनां, और इस हुकम उपर अमल करना, इस हुकमसें फिरनां नहीं, तथा नवीन सर्णद मांगनी नही लिखा तारीक ७ मी माह उरदी बहेस मुतावेक माह रबीयुल अवल सन् ३७ छुनसी यह अकब्बर बादशाहके दीये फुरमानकी नकल है

तथा थानसिंघकी कराइ अपर साह दूजणमल्लकी कराइ श्रीफतेपुरमें अनेक लाख रुपइये लगाके वडे महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा निराम नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमें करा, फेर वहां बादशाहकी गोष्ट वास्ते

श्रीशांतिचंद्र उपाध्यायकों छोड गये, और आप गुरुजी मेड्डते, नागपुर चौमासा करकें सिरोंही नगरमें गये, तहां नवीन चतुर्मुख प्रासादमें श्री आदिनाथके बिंब तथा श्री अजितनाथके प्रासादमें श्री अजितनाथके बिंबकी प्रतिष्ठा करकें अर्बुदाचलमें यात्रा करनेंकों गये, और पीछें श्री शांतिचंद्रउपाध्यायने नवीन कृपारस कोश नामा ग्रंथ बनाके अकब्बर बादशाहकों सुनाया, तिसके सुननेंसें बादशाहने दयाकी बहुत वृद्धि करी, तिसका स्वरूप यह है किः— बादशाहके जन्मके दिनसें एक मास अरु पर्यूषणाके बारां दिन, तथा सर्व रविवार, तथा सर्वसंक्रांतिके दिन, नवरोजकामास, सर्व ईदकेदिन, सर्व मिहर बासरा, सर्व सोफी अनादिन इत्यादि सब मिलकर एक वर्षदिनमें छै महीनें तक जीवहिंसा बंद कराइ, तिसके फुरमान लिखवाए सो फुरमान अबतक हमारें लोकोंके पास है, इसमें कुछ शंका नहीं कि श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि और उन्नति बहुत करी? मुसलमानोंकोंभी जिनोंने दयावान् करा तथा स्थंभनतीर्थे संवत् (१६४६) में स्थंभनतीर्थवासी शा० तेजपालके बनवाये मंदिरकी प्रतिष्ठा करी.

५९ श्री हीरविजय सूरि पट्टे श्री विजयसेन सूरि हूए इनका (१६०४) वर्षे जन्म (१६१३) वर्षे मातापिता सहित दीक्षा, (१६२६) वर्षे पंडित पद, (१६२८) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६५२) वर्षे भट्टारक पद, (१६७१) वर्षे स्थंभनतीर्थे स्वर्गवास जिनके वेखहरख, अरु परमानंद येदोशिष्योनें अकब्बर बादशाहके बेटे जाहांगीरको धर्म सुनाके प्रतिबोधा, और जाहांगीर बादशाहसें फुरमान कराया तिसकी नकल यह है.

नुरुद्दीन महम्मद जहांगीर बादशाह गाजीका फुरमान.	जहांगीरकी मोहरमे बशावलि नुरदीनमहम्म जहांगीर बादशाह. अकब्बर बादशाह. हुमायुन बादशाह. बाबर बादशाह. मीरजा उमरशेख. सुलतानअबुसइस. सुलतान मीरजामोहम्मशाह मीरांशाह अमीरतैमुर साहिब. किरान.

मेरे सर्वराजके विशेष करकें गुजरातकें सूबे, मोटे हाकिम तथा कीफायत करने वाले आमील तथा जांगीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोंके कार कुनोंकों मालुम होवे कि जो परमेश्वरके पिछानने वाले लोक है, तिनका यह दस्तूर है, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नही बलकि सर्व जीव सुखी रहें, और अब वेखहरख, तथा परमानंद यतीयोंनें इनी यांकी रक्षा करने वालोंकी दरबारमें आकर तखतके पास खडेरहनें वालोंसे अरज करी कि विजयसेन सूरि तथा विजयदेव सूरि और जे अछी बुद्धि वाले लोक है, तिनकी हरेक जगें तथा हरेक सहरोमें देहरा अर्थात् जिन मंदिर तथा धर्मशाला है,तिनमें ये लोक ईश्वरकी नक्ति करते है औ प्रार्थना करते हैं,और वेखहरख तथा परमानंद यतीकी परमेश्वरकों राजी रखनेंकी हकीगत हमने अछी तरेंसें जान लीनी है, तिस वास्ते इनीयाकों ताबे करने वाला हुकम हूआ किः—कोइ आदमीने इन जैनलोकोंके मंदिर तथा धर्मशालामें उतरना नही तथा कारन विना अडचल नही करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा बनाया चाहेंतो तिनकों किसीतरेंकी मनाई तथा हरकत नही करणी और तिनके साधुओंके उपाश्रयोंमे कोइनेनी उतरणा नहीं, और जो ये लोक सोरठके मुलकमें शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करने वास्ते जावें तो कोइनी आदमी तिन यात्राळुओंसे कुछ न मांगे ला लच न करे, और पूर्वोक्त वेखहरख अरु परमानंदयतिकि अरज तथा खाहिस ऊपर हुकम बडा नारी हूआ कि दर अठवाडेमें रविवार तथा गुरुवार तथा दर महिनेमें शुदि पडिवाका रोज तथा इदके दिन तथा दर वर्षमे न वरोज तथा माहशहरयुरमा जे हमारा मुबारक दिन है तिनमें एक एक व र्षके हिसाब प्रमाण मेरे सर्व राज्यमें कोइ जीवकी हिंसा न होवे, तथा श कार करना तथा पक्षीयोंका पकडना, मारनां, तथा मछलीयोंका मारनां, ये बंद कीया जावे तथा इस तरेके औरनी काम इन पूर्वोक्त दिनोंमें न होने चाहिये, ये बात जरूर है, जे पूर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशां चलानेकी को शिश करके मेरे फुरमानके हुकमसे कोइ फिरे नहीं, विरुद्ध चले नहीं लि खा ता० माह सहर युरमे सन् ३ जुलसी यह फुरमान खाजांहांनके चौ पानीयां तथा सेवक अली तकीके वर्त्तमान पत्रमें दाखल हूआ तरजुमा करनेवाला मुनशी सइयद अबडलामीयां साहिव उरेंजी.

६० श्री विजयसेन सूरि पट्टे श्री विजयदेव सूरि हूये तिनका (१६३४) वर्षे जन्म (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५०) वर्षे पंडित पदं, (१६५६) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग, ६१ श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये तिनका (१६४४) वर्षे जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७३) वर्षे वाचक पद, (१६८२) वर्षे सूरि पदं, (१७०८) वर्षे स्वर्गगतं, ६२ श्री विजयसिंह तथा श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयप्रभ सूरि हूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६८९) वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंडित पदं, (१७१०) वर्षे उपाध्याय पदं, (१७१३) वर्षे भट्टारक पदं, (१७४९) वर्षे स्वर्गगमनं, इनोंके समयमें मुहबधे ढूंढीयोंका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं.—

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साहुकार दशाश्रीमालि वसता था, तिसकी फूला नामें बालविधवा एक बेटीथी, तिसने एक लवजी नामा लडका गोदी लीया, तिस लवजीकों लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते भेजा, तहां यतीयोंकी संगतसें वैराग्य उत्पन्न हूआ, और लुंकेके यती वजरंगजीका शिष्य हूआ, तब दो वर्ष पीछें अपने गुरुकों कहने लगा कि जैसा शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नही पालते हो ? तब गुरुने कहा पंचमकालमे शास्त्रोक्त सर्व क्रिया नही हो सक्ति है, तब लवजीने कहा तुम भ्रष्टाचारी मेरे गुरु नही मैंतो आपही सयम फेरकें लेऊंगा इस तरेका क्लेश करके ऋपि लवजीने लुंके मतकी गुरु शिक्षा छोडके अपने साथ दो यति और लीए तिसमें एकका नाम नूणा,दूसराका नाम सुखजी इन तीनोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा, और मुंहके ऊपर कपडेकी पट्टी बांधी, तब इनका नवीन वेष देखके गामोंमे किसी श्रावकने इनके रहनेकों जगा न दीनी, तब ये उजडे हूये मकानोंमें जा रहे गुजरात देशमें फूटे टूटे मकानकों ढूंढ कहते है, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम ढूंढिये रक्खा, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें वडे वडे क्लेश भोगने पडे परंतु इनके त्यागकों देखके कितनेक लुंकेमति इनकों माननेभी लगे, क्योंकि यह भेडचाल जगत्मे प्रसिद्ध है, और भोले लोक तो ऊपरली हूंवां फूंवा देखके रागी हो जाते हैं, और गुजरातके बहुत लोक ऐसे हव ग्राही हैकि.—जो बात पकड लेवे उस बातकों बहुत मुसकलसें छोडते है, इसी वास्ते जैनमतमें

केइ फिरके गुजरात देशसेंही निकले है. पीछें तिस लवजीका शिष्य अहम दावादके कालुपुरेका वासी उसवाल सोमजी हूआ, तिसने स्वयंकी थ्यात पना बहुत करी, तिसके चेलोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गिरधरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और लुकेमति कुंवरजीके चेलेभी इनके शिष्य बने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जीवाजी, ६ समरथ, ७ तोडुजी, ८ मोहनजी, ९ सदानंदजी, १० गोधाजी, थे एक गुजरातका वासी धर्मदास छींपीने मुंमसुंमाकें मुख ऊपर पट्टी बांधके अपने आपकों ढूंढिया साधु मशहूर कीया, तिनमे हरिदासका चेला वृंदावन हूआ, और वृंदावनका चेला भुवानीदास हूआ, और भुवानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचंद हूआ, मलूकचंदका महासिंघ, और महासिंघका कुशालराय और कुशालरायका छजमल, और छजमलका रामलाल, और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिंह, ये दोनों मेनें देखे है अब इन दोनोंके चेले वसंतराय, और रामवकस वगेरे जीते है ये पंजाव देशमें आज काल पडे फिरते है.

और जीवाजीका चेला लालचंद हूआ, लालचंदका अमरसिंह हूआ सो मारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोंके चेले अव अजमेर अरु कृष्णगढके जिल्लेमें बहुत रहते है, और श्यामिदास जिनोंके परिवारके कन्हीराम, लेखराज, तखतमल, प्रमुख अव मारवाडमे रहते है. और जो कोटेबूंदीमें तथा मालवेमें लालचंद. गणेशजी, गोविंदरामजी, हूये, तथा अमीचंद, हुकमचंद, उदयचंद, फतेचंद ग्यानजी छगन, मगन, देवकरण, अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते है येभी हरिदासकेही चेले है. तथा अमरसिंघका चेला दीपचंद, दीपचंदका, चेला धर्मदास, धर्मदासका जोगराज. जोगराजका हजारीमल्ल, हजारीमल्लका लालजीराम, लालजीरामका गंगाराम, गंगारामका जीवणमल्ल, जो इस वखत दिल्लीके आसपासके गामोंमे फिरते है, तथा अमरसिंघके परिवारमे धनजी, मनजी, नाथुराम, अरु ताराचंदादि हूये, हैं, जिनोंके चेले रतीराम, नंदलाल, हूये. नंदलालका चेला रूपचंद, रूपचंदका विहारी, जोकि पंजाबमें कोट जगरावांदि गामोमे रहिते है. तथा कानजी और धर्मदास छींपीके चेलेयोंमेंसें दीपचंद, गुपालजी प्रमुख ये लींमडी, वट

विजयगणि इनदोनोंने श्रीविजयसिंहसूरिकी आज्ञा लेकें गछमेंकि शिथिल साधुओंकों देखकें और ढूंढकमतके पाखंम अंधकारके दूर क वास्ते क्रिया उद्धार करा, और जिनोंनें काशीके पंमितोंसें जयपता का ऊमा पाया, और गुजरात प्रमुख देशोंसें प्रतिमा उछापक कुलिंगी के मतरूप अंधकारकों दूर करा, और जिनोंके रचे हूए (१००) ग्रंथ ध्यात्मसार, स्याद्वादकल्पलता, शास्त्रसमुच्चयकीवृत्ति, मल्लवादी सूरिकृत चक्र उद्धारादि, अनेक बडेबडे एक सौ ग्रंथ है.

श्रीगणिसत्यविजयजी क्रिया उद्धार करके श्रीआनंदघनजीके साथ व वर्ष लग वनवासमें रहे, और बडी तपस्या योगाभ्यासादि करा, जब हुत वृद्ध हो गए, जंघामे चलनेका बल न रहा, तब अणहल पट्टनमे रहे तिनके उपदेशसें तिनके दो शिष्य हूए, एक गणिकपूरविजयपं त, और दूसरा पंमित कुशलविजयजी, तिनमे गणिकपूरविजयजीनेंतो नेक अर्हत बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, और अनेक ग्राम नगरोंमें धर्मकी द्धि करी, बडे प्रभावक हूए, श्रीगणिकर्पूरविजयजीके दो शिष्य हूए, क पंमित वृद्धिविजय गणि, दूसरा पंमित क्षमाविजयगणि, श्रीपंमित विजयगणिके शिष्य पंमित श्रीजिनविजय गणि, तिनका शिष्य पंमित मविजयगणि, तिनका शिष्य पंमित पद्मविजयगणि, तिनका शिष्य पं त रूपविजयगणि, तिनका शिष्य पंमित कीर्त्तिविजयगणी तिनका शिष्य मत कस्तूरविजयगणी तिनका शिष्य मुनिमणिविजयगणि, तिनका शिष्य त बुद्धिविजय गणि, तिनका शिष्य पंमित मुक्तिविजय गणि, तिनोंके पका दीक्षित लघु गुरु भ्रातृ इस जैनतत्त्वादर्शग्रंथके लिखनेवाला मुनि मारास आनंदविजय नामक हू इतिगुरावलिसंपूर्ण ॥

अब इस ग्रंथके लिखनेवालेके समयमें इतने नवीनपंथ निकले है सो खते है – गुजरातदेशमे स्वामी नाराणकापंथ, और बंगालदेशमें ब्रह्म माजीयोंका पंथ, और पंजाबदेशमें लोदीहानेंसें दश कोशके अंतरे एक णीनामा गाम है तिसमें रहनेवाला जातिका त्रखाणतिख तिसके देशसें कूका नामे पंथ, और कोइलमे मौलवी, अहमदशाहका नवीन रका, तथा दयानंदसरस्वतीस्वामीका निकाला आर्यसमाजका पंथ यादि अनेकमत पुराने मतोकों छोडके निकाले है, क्योंकि इनोंनें अ

पनी बुद्धि समान प्राचीनोंके करे पुस्तक तथा वेदार्थोंको नही त
जेकर इसीतरें नवीन नवीन मत निकलते रहेतो कोइकदिनमे ब्राह्मण
मताधिकारीयोंकी रोजी मारी जायगी, और धर्म अरु नियम कि
सिका कायम रहेगा ?

इति श्रीतपगछीय मुनिगणिश्री मणिविजय तच्छिष्य मुनि श्रीबुद्धिवि
छिष्य मुनि आत्मरामआनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे गुरुआवलि
थन रूप द्वादशः परिछेद. संपूर्ण ॥ १२ ॥

॥ इति मुनि श्री आत्माराम आनंद
विजयजी विरचित द्वादश परिछेद
रूप जैनतत्वदर्श ग्रंथः समाप्तः ॥

ए चोपडीमुनिचारित्रविजेपंजावीकी